GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY

CLASS ______

CALL No. 954.09 Bha.

D.G.A. 79.

भारतवर्ष

और उसका

स्वातन्त्र्य-संग्राम

10104

अर्थात्

15860

भारतवर्ष द्वारा
स्वाधीनता प्राप्ति के लिये किये गये
विविध संघर्षों और आन्दोलनों
का प्रामाणिक और विस्तृत इतिहास

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY New Delhi

लेखक:—
सुखसम्पत्तिराय भण्डारी

954.09
Bha

प्रकाशक:—
डिक्सनेरी पब्लिशिंग हाउस
ब्रह्मपुरी, अजमेर।

मूल्य साधारण संस्करण ८॥)
बढ़िया सुनहरी जिल्द सं० १०॥)

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY, NEW DELHI
Acc. No. 68
Date 7.2.51
Call No. 954/Bha

विषय सूचि

नाम	पृष्ठ संख्या
१ प्राचीन भारत की सभ्यता	
२ मोहेंजोदड़ो और प्रागैतिहासिक भारतीय सभ्यता	८–
३ प्राचीन भारत का राजकीय इतिहास	१२–२२
४ मौर्य साम्राज्य का आदर्श शासन	२३–२८
५ भारत में ग्राम पंचायतें	२९–३०
६ भारत की आर्थिक समृद्धि	३१–४२
७ भारत में यूरोपियनों का आगमन	४३–४८
८ भारत में अंग्रेज कब और कैसे आये	४९–६
९ बंगाल में अंग्रेजों का प्रवेश	६२
१० सिराजुद्दौला	६
११ मीरकासीम	१२३
१२ क्लाइव का पुनः आगमन	१४०–१
१३ वारनहेस्टिंग्ज का शासन और स्वदेशी राज्यपद्धति का नाश	१५२–१५
१४ उद्योगधन्धे और व्यापार का नाश	१५६–१७६
१५ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में समृद्धिशाली भारत कैसे दरिद्र हुआ।	१७७–१८८
१६ किसानों की दीनहीन दशा क्यों हुई	१८९–२०६
१७ भारतवर्ष की साम्पत्तिक अवस्था	२०७–२१६
१८ भारतीय जागृति की प्रथम ज्योति	२१०–
१९ भारत में विचार-क्रान्ति का आरम्भ	२२
२० समाचार पत्रों का प्रकाशन और मानव-अधिकारों का आन्दोलन	२२–२४४
२१ दक्षिण भारत में प्रथम सुधार-आन्दोलन	२४५–२४८
२२ मार्क्स और भारतवर्ष	२४९–२५२

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY, NEW DELHI.
Acc. No. 10104 (२)
Date 21.5.59
Call No. 954.09/Bha

नाम	पृष्ठ
२३ सन् १८५७ ई० से पूर्व के सशस्त्र विद्रोह	२५३
२४ सन् १८५७ ई० का स्वातन्त्र्य-युद्ध	२५५
२५ आतङ्क का राज्य	२६२
२६ विद्रोह की असफलता के कारण	२६६
२७ सन् १८५७ ई० के विद्रोह के बाद	३०१
२८ कांग्रेस की उत्पत्ति	३०४
२९ महान् आत्माओं का उदय-राष्ट्र-जागृति	३१२
३० भारतवर्ष में धार्मिक और सामाजिक जागृति	३३२
जागृति की लहर	३४१
लॉर्ड कर्जन का आगमन	३४७
बंगभंग का आन्दोलन	३४८
३४ १९०७ की कांग्रेस	३६०
३५ बंगभंग के बाद	३६३
३६ बंगाल में क्रान्तिकारक उपाय	३६४
३७ बंगाल में साहित्यिक जागरण	३६८
३८ बंग भंग के समय के भारतीय नेता	३७०
३९ सरकारी दमन	३७६
४० माण्टेगु-चेम्सफोर्ड योजना	३८०
४१ प्रथम महायुद्ध का आरम्भ	३८२
४२ सन् १९१६ ई० की संयुक्त कांग्रेस	३८८
४३ क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों का इतिहास	३९०
४४ बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन	३९६
४५ बंगाल मे क्रान्तिकारी सङ्गठन	४०८
४६ गांधी युग का आरम्भ	४२२
४७ गांधीजी और उनके सत्याग्रह संग्राम	४२१

नाम	पृष्ठ
४८ पंजाब में अमानुषिक अत्याचार	४०५
४९ कसूर में अत्याचार	५[illegible]
५० अमृतसर की कांग्रेस	५१५
५१ गांधीजी और अहिंसात्मक असहयोग	५१७
५२ सन् १९२१ ई० का महान् आन्दोलन	५२६
५३ अहमदाबाद की कांग्रेस	५३७
५४ बारडोली का सत्याग्रह	५४६
५५ चौरीचौरा का काण्ड	५[illegible]
५६ गया कांग्रेस के बाद स्वराज्य	[illegible]
५७ पार्टी की गतिविधि	[illegible]
५८ राष्ट्रीय जीवन मे सुस्ती	[illegible]
५९ हिन्दू-मुस्लिम दंगे	[illegible]
६० साइमन कमीशन का बहिष्कार	[illegible]
६१ उग्रवादी दल और क्रान्तिकारी दल	५७७
६२ लाहौर कांग्रेस	६०१
६३ सन् १९३० ई० का महान् स्वतंत्रता-संग्राम	६०३
६४ नमक-सत्याग्रह आन्दोलन	६१३
६५ प्रथम गोलमेज कान्फ्रेन्स	६३२
६६ कराँची की कांग्रेस	६४५
६७ द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेन्स और गांधीजी	६५[illegible]
६८ महात्माजी का भारत आगमन	६[illegible]
६९ अहिंसात्मक युद्ध का जोर	६६५
७० महात्मा गांधी का अनशन	६६६
७१ तृतीय गोलमेज परिषद्	६७३
७२ आतंकवादी आन्दोलन का जोर	६७५

नाम	पृष्ठ
७३ सन् १९३२ ई० का राजनैतिक आन्दोलन	६७६
७४ महात्मा गांधी का २१ दिन का उपवास	६८३
७५ व्यक्तिगत सत्याग्रह	६८६
७६ गांधीजी का फिर से अनशन	६९१
७७ साम्प्रदायिक निर्णय पर मतभेद	६९४
७८ बम्बई का कांग्रेस अधिवेशन	७०३
७९ प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों की स्थापना	७०७
८० कृषक तथा मजदूर आन्दोलन	७१८
८१ सन् १९३८ ई० का कांग्रेस अधिवेशन	७२१
८२ द्वितीय महायुद्ध और कांग्रेस की नीति	७२३
८३ व्यक्तिगत सत्याग्रह	७२७
८४ क्रिप्स योजना	७३१
८५ भारत छोड़ो आन्दोलन	७३७
८६ बंगाल का भीषण अकाल	७५७
८७ महात्मा गांधी का उपवास	७६५
८८ गांधी जिन्ना वार्तालाप के पूर्व की स्थिति	७६९
८९ राजाजी का फार्मूला	७७७
९० मुस्लिम राजनीति	७८१
९१ मुस्लिम राज्य संघ की कल्पना	७९९
९२ पाकिस्तान की उत्पत्ति	८०१
९३ मि० जिन्ना और पाकिस्तान	८०५
९४ देसाई-लियाकत समझौता	८१२
९५ शिमला कॉन्फ्रेन्स	८१५
९६ ब्रिटेन में मजदूर राज्य की स्थापना	८१८
९७ केबिनेट मिशन	८२१

नाम	पृष्ठ
९८ केबिनेट मिशन और अन्तर्कालीन सरकार	८२९
९९ संविधान सभा का संगठन	८४०
१०० रैडक्लिफ महोदय का निर्णय-देश विभाजन	८५१
१०१ साम्प्रदायिक उपद्रव	८६१
१०२ लौकिक राज्य	८७२
१०३ देश-विभाजन और विशाल जन-समूह का आवागमन	८९६
१०४ देशी राज्यों का विलीनीकरण	८८२
१०५ हैदराबाद की समस्या	८९०
१०६ काश्मीर	८९२
१०७ महात्मा गांधी की हत्या	८९६
१०८ भारत का समानतन्त्र का सदस्य होना	९०७
१०९ भारत सर्वोच्चसत्ताधारी स्वतंत्र जनतन्त्र की स्थापना	९०९

Printed by Shri Moti Singh Bhati at Agrawal Printing Press, Ajmer.

भूमिका

सैकड़ों वर्षों के बाद भारतवर्ष को पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्ति का सुअवसर प्राप्त हुआ है। मानव-जाति के इतिहास में यह एक चिरस्मरणीय घटना रहेगी। इस शुभ घटना ने भारतवर्ष को संसार के महान् स्वतन्त्र राष्ट्रों की पंक्ति में ला बिठाया है। अगर हमारे शासकगण इस स्वर्ण अवसर का योग्य ढंग से उपयोग करें और हमारे प्राचीन आदर्शों के साथ वर्तमान आदर्शों का समन्वय कर शासनसूत्र का संचालन करें तो यह निःसन्देह विश्वास किया जा सकता है कि भारतवर्ष संसार को एक नवीन संदेश देकर मानव जाति के आध्यात्मिक और भौतिक प्रगति के मार्ग को प्रकाशमान कर सकता है। अगर उसके शासकगण इस देश की संस्कृति और परम्परा की अवहेलना कर केवल मात्र विदेशी विचारधारा के प्रभाव में बहते रहे तो इस देश का भविष्य सन्देहास्पद हो जायगा। इसीलिए कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द घोष और स्वामी विवेकानन्द प्रभृति महान् विचारकों ने पूर्व-पश्चिम (East and west) के मधुर सम्मेलन को भारतवर्ष ही क्या, पर सारी मानव जाति के लिए परम हितकर बतलाया है। महात्मा गांधी का तत्त्वज्ञान विशुद्ध भरतीय था और उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की कटु आलोचना कर भारत की प्राचीन सरल और आध्यात्मिक संस्कृति पर अपने आन्दोलन की नींव रक्खी थी।

भारत स्वातन्त्र्य-संग्राम की आत्मा को समझने के लिए उसकी पृष्ठ भूमि का ज्ञान होना आवश्यक है। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द घोष और महात्मा गांधी

जिन्होंने इस प्राचीन राष्ट्र में नवचेतना और नवप्रकाश का संचार किया; भारतीय संस्कृति को आधार भूत मानकर अपने कार्यक्रम बनाए थे। हां, उन्होंने बाहरी प्रकाश की अवहेलना न की। बाहर से जो कुछ उन्होंने लिया उसे अपनी भूमि पर खड़े रहकर आत्मसात किया। इन महा पुरुषों के ग्रन्थों से यह बात स्पष्टतया प्रकट होती है।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर मैंने इस ग्रन्थ में भारतीय संस्कृति, प्राचीन भारत की विभिन्न राज्य-प्रणालियां, प्राचीन भारत के जनतन्त्रों तथा भारत की प्राचीन मानव हितकारी शासन-प्रणालियों पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की है।

साथ ही में प्राचीन गौरवशाली भारत का किस प्रकार और किन कारणों से पतन हुआ, इसका ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया गया है, जिससे कि हमारे पाठक यह जानें कि जिन कारणों से मध्ययुग में भारतवर्ष का पतन हुआ था, जिनसे वे राष्ट्र को भविष्य में बचाते रहें।

संसार परिवर्तनशील है। प्रकाश के बाद अन्धकार और अन्धकार के बाद प्रकाश आता है। इसी नियमानुसार पराधीन भारत में स्वातंत्र्य भावना की फिर से ज्योति चमकने लगी। ईस्वी सन् १८२० के लगभग कलकत्ते के हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों और प्रिन्सिपल ने भारतवर्ष के लिए पूर्ण स्वातन्त्र्य का समाचार पत्रों में जो आन्दोलन किया था, उसका उल्लेख भी इस ग्रन्थ में किया गया है। इसके बाद राजा राममोहनराय, श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति महानुभावों ने भी भारतीय जनता के राजनैतिक अधिकारों के लिए जोरदार आवाज उठाई। इन महापुरुषों के द्वारा की गई सेवाओं पर भी इस ग्रन्थ में कुछ प्रकाश डाला गया है।

इसके बाद ईस्वी सन् १८५७ के भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध पर भी इसमें समुचित प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। साथ में यह भी दिखलाया गया है कि किन कारणों से उक्त संग्राम का इतना देश-

व्यापी संगठन् सम्पन्न हुआ ।

ईस्वी सन् १८५७ के बाद महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में स्वराज्य और स्वातन्त्र्य भावना का जिस प्रकार उदय और विकाश हुआ उसका भी ऐतिहासिक विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है। स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द प्रभृति महान् विचारकों ने देश की स्वतन्त्र मनोवृत्ति को बनाने में जो बहुमूल्य सहायता दी है, उसका भी यथा अवसर विवेचन किया गया है। लोक-मान्य तिलक, लाला लाजपतराय, श्री अरविन्द घोष, बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि पुण्य श्लोक महान् नेताओं ने अनेक कष्ट सहकर राष्ट्र को उस समय स्वातंत्र्य भावना के प्रकाश से आलोकित किया था, उसका संक्षिप्त विवरण भी पाठकों को इस ग्रन्थ में मिलेगा। यहां यह कहना आवश्यक है कि उक्त देशभक्त महानुभावों ने अपने अनुपम त्याग कष्ट-सहन और दूरदर्शितापूर्ण राजनीति के द्वारा महात्मा गांधी के आन्दोलन के लिए उर्वरा भूमि तैयार कर रक्खी थी।

बंगभंग के आन्दोलन ने भी स्वराज्य भावना की ज्योति को अधिक प्रज्वलित करने में बड़ी सहायता दी। इस आन्दोलन के नेताओं ने सारे देश में राजनैतिक चेतना फैलाने में बड़ा काम किया। इस आन्दोलन में सैकड़ों युवकों का बलिदान हुआ और इस बलिदान से राष्ट्र की आत्मा को बल मिला। बंगभंग के समय और उसके बाद भारत में यत्र-तत्र क्रान्तिकारी आन्दोलन चलते रहे और उनका संचालन अधिकतर नवयुवकों ने किया। इन्हीं क्रान्तिकारी आन्दोलनों को दबाने के लिए रौलेटएक्ट बनाया गया, जिसके खिलाफ़ देश में घोर आन्दोलन हुआ। इसी समय जलियानवाला बाग का भीषण हत्या काण्ड हुआ, जिसने राष्ट्र की आत्मा को कम्पा दिया। इसके कुछ समय बाद लोकमान्य तिलक का स्वर्गवास हो गया और सारे राष्ट्र के नेतृत्व का सूत्र महात्मा गांधी के हाथ में आया। इन्होंने देश के सामने भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र अहिंसा को आधारभूत रखकर सत्या-

ग्रह का दिव्यास्त्र जनता के सामने रक्खा। जनता ने इसे अपनाया और यह महान् संग्राम अनेक उतार चढ़ावों का सामना करते हुए प्रगति करता गया। संसार इस दिव्यास्त्र से विमुग्ध सा हुआ और इसे अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति भी प्राप्त होती गई। मानवता के महान् सिद्धान्त पर इसकी नींव रक्खी गई और इसका उद्देश्य भारत के स्वातन्त्र्य के साथ साथ अखिल मानवजाति का कल्याण रक्खा गया। ईश्वर ने इस आन्दोलन में सहायता दी और इससे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां भी अनुकूल होतीं गईं। ब्रिटेन में मजदूर दल का मंत्रिमंडल बन जाने से भी इस आन्दोलन को बड़ी अनुकूलता मिली। आखिर महात्मा गांधी के इस अभूतपूर्व आन्दोलन को सफलता मिली और देश सैकड़ों वर्षों के बाद सर्वोच्च सत्त धारी जनतन्त्र बनने में समर्थ हुआ। संसार के इतिहास में यह एक अद्भुत् घटना समझी जाती है।

महात्मा गांधी के आन्दोलन के साथ साथ और भी कई प्रकार के आन्दोलन चलते रहे, जिन्होंने अपने अपने ढंग से देश को स्वातन्त्र्य मार्ग पर बढ़ाने में बड़ी सहायता की। इन आन्दोलनों पर भी इस ग्रन्थ में प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, मैं उनका और उनके कर्त्ताओं का कृतज्ञतापूर्ण उल्लेख अन्यत्र कर रहा हूं।

इस ग्रन्थ के बाद विदेशों में होने वाले भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन पर भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने के लिये भी सामग्री जमा कर रहा हूँ।

२७-८-५० } सुखसम्पत्तिराय भन्डारी

भारतवर्ष और उसका स्वातंत्र्य-संग्राम

प्राचीन भारत की सभ्यता

अंग्रेजी के संसार प्रख्यात लेखक और वक्ता एडमण्ड बर्क का कथन है कि संसार का कोई देश किसी बुरे शासन की आधीनता में उन्नति नहीं कर सकता। किसी देश की सभ्यता तब तक विकसित नहीं हो सकती, जब तक कि उसे वहां की सरकार की योग्य अनुकूलता प्राप्त न हो। बर्क महोदय का यह कथन कितना सत्य है, इसकी साक्षी संसार का इतिहास दे रहा है। अगर किसी देश ने किसी समय में प्रशंसनीय उन्नति प्राप्त की है और संसार के सामने उसने गौरवपूर्ण होकर अपना मस्तक ऊँचा उठाया है, तो यह एक निश्चित बात है कि उस देश की सरकार ने उस समय में उस देश की उन्नति में तथा सभ्यता के विकास में पूर्ण सहयोग किया होगा। हां, अन्य भी कुछ साधन हैं, जिनसे देश उन्नति के पथ पर आगे बढ़कर अपनी सभ्यता का विकास करता है तथा अपनी गौरव वृद्धि करता है; पर सरकार की अनुकूलता तथा सहायता इन सब में मुख्य है, क्योंकि बिना सरकार की सहायता तथा अनुकूलता के देश की उन्नति तथा विकास में जो बाधाएँ उपस्थित होती हैं उनके प्रत्यक्ष उदाहरण ब्रिटिश भारत में और अन्यत्र कई जगह देख रहे थे। हम यह भी देख रहे हैं कि किसी अवनतिगत शासन में प्रजा के उठते हुए उन्नति और स्वाधीनता के भाव किस बुरी तरह से दबाये जाते

है और किस तरह प्रजा के भावों को कुचलकर उसे ऊँचा उठाने की बजाय अन्धेरे गड्ढे में गिराया जाता है। हां, यह अवश्य होता है कि मानवीय हृदय में उठने वाले स्वाधीनता और समानता के इन भावों को चाहे कोई सरकार कुछ समय के लिये अपनी अत्याचार पूर्ण नीति से दबा दे, पर वह इन भावों का समूल नाश नहीं कर सकती। मानवी अंतःकरण में बारम्बार दबाये जाने पर भी, किसी विशेष परिस्थिति के कारण, ये भाव भीतर ही भीतर इकट्ठे होते रहते हैं और जब इन्हें अपने आविष्करण का मार्ग नहीं मिलता, तब ये स्फोट की तरह फूट निकलते हैं और वे पहले मानसिक क्रान्ति को उत्पन्न कर फिर उस भीषण क्रान्ति ज्वाला को उत्पन्न करते हैं जिसमें पुरानी शासन पद्धति की आहुति पड़कर किसी ऐसी शासन पद्धति का जन्म होता है, जो मानवी स्वाधीनता और समानता की रक्षक होती है और जिसमें मानवी भावों की रुख के अनुसार कार्य किया जाता है। फिर एक नया युग शुरू होता है और इसमें मानवी स्वाधीनता के नगारे जोर से बजने लगते हैं, इसमें हर एक मनुष्य को चाहे वह उच्च कुल में पैदा हुआ हो या नीच कुल में, अपनी आत्मा के पूर्ण आविष्करण करने का मौका मिलता है और उसका दृष्टि-बिन्दु हमेशा "उन्नति" रहता है। एक नीच कुल में जन्मा हुआ बालक भी समझने लगता है कि पूर्ण योग्यता प्राप्त करने पर वह इस देश का बड़ा से बड़ा प्रेसिडेन्ट हो सकता है। महत्वाकांक्षा की यह दिव्य भावना देश के प्रत्येक होनहार नवयुवक के हृदय में एक ईश्वरीय शक्ति का संचार करती है और इससे देश में नयी जान पड़ती है। इससे सभ्यता का आश्चर्यकारक विकास होता है और मानवी आत्मा को उन्नति के पथ पर पहुंचाने वाले साधनों का बहुत प्रादुर्भाव होता है। इससे साहित्य, विज्ञान, दर्शनशास्त्र तथा अनेक कला कौशल्य की अपूर्व वृद्धि होती है और वह देश संसार का नेता बनने का अभिमानपूर्ण गौरव प्राप्त कर सकता है। हमारे कहने का मतलब यह कि जहां हमें यह मालूम हो कि अमुक देश अमुक समय में सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान

होकर जगद्गुरु बनने का सौभाग्य प्राप्त किये हुए था, तो हमें यह तत्काल जान लेना चाहिये कि उस समय में उस देश की शासन पद्धति भी अत्यन्त श्रेष्ठ, उदार और दिव्य रही होगी; क्योंकि जब तक किसी देश में शान्ति न हो, लोगों के अन्तः करण निर्व्याकुल न हों तथा योग्य मनुष्यों को अपनी बुद्धि और प्रतिभा विकसित करने के अनकूल साधन न मिलें, तब तक ऊँचे २ विचारों का, तत्वों का तथा आविष्कारों का जन्म नहीं हो सकता। सम्भव है कि किसी समय इस देश में अत्याचार पूर्ण शासन रहा हो, पर जिस वक्त इस देश से संसार को प्रकाशित करने वाली दिव्य ज्ञानज्योति का आविष्कार हुआ हो उस समय तो देश की शासन पद्धति अवश्य ही उत्कृष्ट और दिव्य रही होगी।

हम अपने इसी तत्व को भारतवर्ष पर लगाना चाहते हैं। यह बात तो प्रायः पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं प्राचीन काल में एक समय भारतवर्ष की सभ्यता संसार की सिरमौर थी। भारत ने अपनी दिव्य ज्ञानज्योति से अंधकार में गिरे हुए संसार के कई देशों को प्रकाश बतलाया था। यहां तत्त्वज्ञान के उन ऊँचे सिद्धान्तों का जन्म हुआ था जिन पर आज घमण्डी पाश्चात्य संसार भी लट्टू है और वह मुक्त कंठ से यह स्वीकार कर रहा है कि जहाँ उसके तत्व ज्ञान का अन्त होता है, वहाँ भारतीय तत्त्व ज्ञान का आरम्भ होता है। जब हमारे अभिमानी युरोपियन बन्धु वृक्षों के पत्तों से अपने शरीर को ढकते थे और असभ्य मनुष्यों की तरह इधर उधर घुमते फिरते थे, तब हमारे भारतवर्ष में ऐसे ऐसे सिद्धान्तों का—ऐसे ऐसे आविष्कारों का—विकास हो रहा था जिसके लिये हमें ही नहीं पर सारी मनुष्य जाति को अभिमान होना चाहिये।

हमारे उक्त कथन की पुष्टि कई सुप्रख्यात पाश्चात्य ग्रन्थकारों के लेखों से होती है। उन्होंने दिखलाया है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष ने संसार में ज्ञान की ज्योति फैलायी थी और पाश्चात्य देशों के तथा चीन प्रभृति अन्य देशों के महान् पुरुषों ने यहाँ आकर ज्ञान प्राप्त

किया था। ग्रीक का महान् तत्वज्ञानी पायथागोरस हिन्दू तत्वज्ञान का अध्ययन करने के लिये यहां आया था और आत्मा के आवागमन का सिद्धान्त वह यहाँ से ले गया था। डाक्टर एनफिल्ड अपनी History of philosophy में लिखते हैं:—

" We find that it (India) was visited for the purpose of acquiring knowledge by pythagoras Anaxarches, pyrrho, and others who afterwards became eminent philosophers in Greece."

अर्थात् हम देखते हैं कि हिन्दुस्तान में पायथागोरस Anaxarches और पायरो (pyrrho) ज्ञान प्राप्त करने के लिये आये थे। ये महानुभाव ग्रीस के नामाङ्कित तत्वज्ञानी हो गये।

इसी ग्रन्थ में आगे चल कर लेखक महाशय कहते हैं:—

" Some of the doctrines of Greeks concerning nature are said to have been derived from the Indians

अर्थात् प्रकृति सम्बन्धी ग्रीक लोगों के कुछ सिद्धान्त, कहा जाता है, हिन्दुओं से लिये गये।

एक स्वेडिन काउन्ट का कथन है:—

"Pythagoras and plato hold the same doctrine, that of pythagoras being probably derived from India whither he travelled to complete his philosophical studies"

अर्थात् पायथागोरस और प्लेटो एक ही सिद्धान्त को मानते थे, जो कि हिन्दुस्तान से लिया गया है। पायथागोरस ने अपना तत्वज्ञान का अभ्यास पूर्ण करने के लिये हिन्दुस्तान में सफर की थी।

प्रोफेसर शेगेल का कथन है।

"The doctrine of transmigration of souls was indigenous to India and was brought into Greece by Pythagoras."

पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दुस्तान का है और वह ग्रीस में पायथागोरस के द्वारा लाया गया।

जब ग्रीस में तत्त्वज्ञान का विकास हो रहा था, जब ग्रीक तत्वज्ञान में, यूरोप का शिरोमणि माना जा रहा था, तब भारतवर्ष ग्रीस का गुरु माना जाता था और उस समय तत्वज्ञान का मूल और निर्मल झरना चहुँ ओर हिंदुस्थान से ही प्रवाहित होता था। ईसा की दूसरी शताब्दी तक हिन्दू तत्वज्ञान की युरोप में बड़ी कीर्ति फैली हुई थी। यहाँ तक की ग्रीस के दो मशहूर तत्वज्ञानी अपनी सब मिल्कियत अपने एक मित्र को सौंप कर तत्वज्ञान का अध्ययन करने के लिये हिन्दुस्तान आये थे। वे ब्राह्मणों के मध्य रहकर अपने जीवन का शेष अंश बिताना चाहते थे।

मि० प्रिन्सेप कहते हैं :—

"The fact however that he (Pythogoras) derived his doctrines from India is very generally admitted"

अर्थात् यह बात बहुत ही सर्व साधारण तौर से स्वीकृत की जाती है कि पायथागोरस ने अपने सिद्धान्त हिन्दुस्तान से लिये थे।

सर मॉनियर विलियम ने भी यह बात मुक्तकंठ से स्वीकार की है कि उपरोक्त दोनों तत्वज्ञानी अपने तत्वज्ञान के लिये हिन्दुओं के ऋणी हैं। एलेक्झण्डर पॉलिस्टर का कथन है पायरो Pyrrhon महान सिकन्दर बादशाह के साथ भारत गया था और उसका संशयवाद (Scepticism)

बौद्ध धर्म से लिया गया है।" रेव्हेरण्ड वार्ड कहते हैं 'यह बात निश्चित है कि पायथागोरस भारत गया था और वह गौतम बुद्ध का समकालीन था।' प्रोफेसर मेकडॉनल्ड कहते हैं कि :—

"According to Greek tradition Thales, Empedocles, Anaxagoras, Democritus, and others undertook journeys to oriental countries in order to Study Philosophy" अर्थात् ग्रीक दन्तकथाओं के अनुसार थेल्स एम्पिडोक्ल्स, एनेक्सगोरस और डिमाक्रेटिस ने तत्वज्ञान का अध्ययन करने के लिये पूर्वीय देशों में सफर की थी। प्रोफेसर मेकडॉनल्ड कहते हैं कि दूसरी और तीसरी शताब्दि में क्रिश्चियन संशयवाद (Gnostcism) पर हिन्दू तत्वज्ञान का प्रभाव अवश्य गिरा था। काउन्ट Bjornstjerna कहते हैं कि ग्रीक तत्वज्ञान में बहुत समता पाई जाती है।" हिन्दू लोग तत्वज्ञान में ग्रीकों से बहुत चढ़े बढ़े थे और इससे हिन्दू ग्रीकों के गुरू थे, न कि शिष्य। मि: कॉलब्रूक फरमाते हैं:—

"The Hindus were in this respect the teachers & not learners" अर्थात् इस विषय में हिन्दू गुरु थे, न कि शिष्य।

एक फ्रेन्च पंडित का कथन है;—

The traces of Hindu philosophy which appear at each step in the doctrines professed by the illustrious men of Greece abundantly prove that it was from fhe East came their science, & that many of them no doubt drank deeply at the principal fountain अर्थात ग्रीस के कीर्तिमान महानुभावों के द्वारा प्रकट किये गये सिद्धान्तों में पद पद पर हिन्दू तत्वज्ञान के चिन्ह मिलते हैं। उनसे यह बात सिद्ध होती है कि उनका (ग्रीकों का) विज्ञान

पूर्वीय देशों से आया था और उनमें से बहुतों ने निःसन्देह मूल स्तोत्र से तत्वज्ञान का अखामृत पान किया था।

इस प्रकार सैंकड़ों पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे भारतीय तत्वज्ञान व साहित्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है और उन्होंने यह स्वीकार किया है कि तत्वज्ञान (Philosophy) के दिव्य ज्ञान का झरना, सबसे पहले यहीं से सारे संसार में प्रवाहित हुआ था और मानवी आत्मा को परम विकास और परमोन्नति की दिव्य अवस्था पर पहुंचानेवाले कई बड़े-बड़े सिद्धान्तों के मूल आविष्कार यहां हुए। संसार में सबसे पहले संस्कृति और सभ्यता का प्रकाश यहीं से फैला और यही दिव्य भूमि संसार की सबसे पहली ज्ञानदात्री थी।

मोहेंजोदड़ों और प्रागैतिहासिक

भारतीय सभ्यता

मोहेंजोदड़ों और हड़प्पा में भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग द्वारा जो खुदाइयाँ की गई हैं उनसे भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर नवीन प्रकाश पड़ा है। अनेक भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि सिन्धु प्रान्त की सभ्यता, तत्कालीन अन्य देशों से, बढ़चढ़ कर थी। यह प्रागैतिहासिक सभ्यता का उत्कृष्ट नमूना था। संसार की संस्कृति के इतिहास की विचारधारा को इसने एक नवीन मार्ग दिखलाया है।

मोहेंजोदड़ों से प्राप्त सामग्री से पता लगता है कि यह नगर उस काल में (ईसवी सन् से लगभग ३०००–४००० वर्ष पूर्व) सभ्यता और संस्कृति तथा वैभव के ऊँचे शिखर पर पहुँचा हुआ था। यह सभ्यता सिन्धु प्रान्त तक ही सीमित नहीं थी, वरन्, सर जॉन मार्शल के मतानुसार, इसका प्रभाव गंगा, यमुना, नर्मदा तथा ताप्ती की घाटी तक पहुँची हुई थी। हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ों की खुदाइयों से ज्ञात हुआ कि पंजाब में इस सभ्यता का दृढ़ प्रभाव था। उत्तर-पूर्व में इस सभ्यता के अवशेष रूपड़ तक मिले हैं। डेरा जाट, बन्नू, तथा झोब की ओर भी प्रस्तर-ताम्र-युग की वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। श्री माधव स्वरूप वत्स ने काठियावाड़ की लिम्बडी स्टेट में भी सिन्धु आदर्श की अनेक वस्तुएं प्राप्त की थीं। पश्चिम में नाल (कलात स्टेट) तथा बलुचिस्तान के पूर्वी भाग में भी सिन्धु सभ्यता का प्रभाव फैला हुआ था। उस

समय बलूचिस्थान अधिक सभ्य देश नहीं था, इसलिये वह और सुसंस्कृत देशों की सभ्यताओं से ज्ञान तथा प्रकाश पाता था।

मोहेंजोदड़ों का शासन-प्रबन्ध

यहां की खुदाइयों से जो बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है, उससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उस समय संसार के देशों में यहाँ का शासन प्रबन्ध सर्वोत्कृष्ट रहा होगा। उस प्रागैतिहासिक युग में शासन और सभ्यता का इतना विकास देख कर सचमुच आश्चर्य होता है। मि० मैके का कथन है कि मोहंजोदड़ों एक प्रतिनिधि (Governor) के अधीन था। कुछ प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि सुविधा तथा सुचारु प्रबन्ध के लिये नगर कई भागों में विभक्त था। प्रत्येक भाग के लिये एक रक्षक नियुक्त था। इन रक्षकों के लिये सड़कों के कोनों पर मकान बने हुए थे। एक सड़क के बीच में दीवार बनाकर उसे दो भागों में विभाजित कर दिया गया था। इन सड़कों पर रोशनी (Light) का भी प्रबन्ध था। स्थान स्थान पर कूड़ा कर्कट रखने के लिये पीपों का रखना, नालियों को ठीक समय पर साफ करना, मकानों का ठीक स्थानों पर बनवाना, जल की सुन्दर व्यवस्था करना तथा सड़कों का उचित निरीक्षण करना आदि बातों से ज्ञात होता है कि मोहंजोदड़ों में अवश्य कोई जानपद या म्यूनिसिपल बोर्ड था और वही संस्था नगर के स्वास्थ्य तथा सुविधा के लिये योजनायें करती थी। यह बतलाना कठिन है कि शहर में कौन कौन से अफसर थे, किन्तु इनमें शायद ६ मुख्य अधिकारी रहे होंगे जिनका उल्लेख शुक्राचार्य ने शुक्रनीतिसार में किया है या इस नगर में नगरपति या कौटिल्य वर्णित "नागरक" रहा हो। सफाई के लिये अवश्य कोई हैल्थ आफिसर नियुक्त रहा होगा। नगर की स्वास्थ्य रक्षा के लिये अनेक वैसे ही विधान रहे होंगे, जिनका वर्णन धर्म-शास्त्रों में प्रायः मिला करता है।

मि० हन्टर का कथन है कि मोहेंजोदड़ों में प्रजातन्त्र सरकार थी। प्रजातन्त्र सभा के सदस्य ही सम्भवतः नगर का प्रबन्ध करते थे। इस सभा में अनेक राजनैतिक दलों के मतानुयायी प्रतिनिधी थे। नगर का प्रबन्ध बड़े ही सुचारू रूप से संचालित किया जाता है।

नगर निर्माण-कला का विकास

मोहेंजोदड़ों की नगर निर्मांण प्रणाली बड़ी सुन्दर और विशद थी। सुविख्यात पुरातत्वविद् श्री दीक्षित महोदय का कथन है कि "ऐसी सुन्दर और सुव्यवस्थित प्रणाली संसार के किसी भी प्राचीन देश में देखने को नहीं मिलती।"

नगर निर्मांण के समय वहां के निवासी उचित स्थान चुनते थे और इसके बाद वे नक्शा बनाते थे। इस नक्शे में यह दिखाया जाता था कि कहां पर कौनसा मकान बनेगा और किस दिशा की ओर प्रधान सड़कें बनाई जावेंगी। सड़कें एक दूसरी से प्रायः समकोण पर कटती थीं। ये सड़के बिल्कुल सीधी थीं। एक लम्बी सड़क, जिसको राजपथ नाम दिया गया है, पौन मील तक साफ की गई है। यह सड़क कहीं कहीं पर ३३ फीट चौड़ी थीं। गलियों ३ फीट से ७ फीट तक चौड़ी होती थीं। प्रधान सड़कें पूर्व से पश्चिम या उत्तर से दक्षिण को जाती थी। इन सड़कों पर स्थित भवनों को शुद्ध हवा मिलती रही होगी। हवा का एक झौंका एक कौने से दूसरे कौने तक की हवा को शुद्ध कर देता रहा होगा। इधर उधर की सब गलियाँ राजपथ से मिल जाती थी। प्रायः सभी सड़कें समानान्तर हैं। इस समय सबसे महत्वपूर्ण सड़क वह थी जो दक्षिण की ओर जाती हुई स्तुप भाग को दो भागों में बाँटती थी। इन सड़कों पर पहिये वाली तीन गाड़ियाँ और पैदल मनुष्य अच्छी तरह चल सकते थे।

नगर निर्मांण की तरह मोहेंजोदड़ों तथा हड़प्पा की तत्कालीन

सभ्यता ने और भी अनेक दिशाओं में बड़ी प्रगति की थी, जिसका उल्लेख सर जॉन मार्शल, डी० ए० मैके, श्री काशीनाथ दीक्षित आदि महोदयों ने अपने खोजपूर्ण ग्रन्थों में किया है। इसमें सन्देह नहीं सिन्धु प्रान्त की खुदाइयों से इतिहासवेत्ताओं के दृष्टिकोण में भारत के प्राचीन इतिहास को एक नवीन रूप प्राप्त हुआ है।

प्राचीन भारत का राजकीय विकास

प्राचीन भारत में न केवल आध्यात्मिक, साहित्यिक और दार्शनिक विषयों में प्रगति की थी, पर उसने राजनैतिक विषय में भी बड़ी उन्नति की थी। जब से कौटिल्य के अर्थशास्त्र का प्रकाशन हुआ है, तब से संसार के विचारशील व मनस्वी सज्जनों का भारतीय राजनीति के विषय में बड़ा मत-परिवर्तन हो गया है। उस समय से इस दिशा में इतिहास के विद्वानों द्वारा काफी अन्वेषण हुए और तत्कालीन राजनीति पर बहुत कुछ प्रकाश डाला गया। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, श्री घोषाल महोदय, श्री विनयकुमार सरकार, श्री प्रमथनाथ बनर्जी, श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त आदि कई इतिहास के धुरन्धर विद्वानों ने इस विषय पर अन्वेषणात्मक ग्रन्थ लिख कर यह दिखलाया है कि भारतवर्ष ने जनतन्त्र के विकास में उस समय की परिस्थिति के अनुसार, बड़ी प्रगति की थी।

सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल अपने अन्वेषणात्मक ग्रन्थ "Hindu Polity" में लिखते हैं:—

"हमें इस विषय का ज्ञान प्राप्त कराने वाले साधन हिन्दू साहित्य के विस्तृत क्षेत्र में मिलते हैं। वैदिक, संस्कृत तथा प्राकृत ग्रन्थों और इस देश के शिलालेखों तथा सिक्कों में रचित लेखों से हमें इस विषय की बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। सौभाग्यवश इस समय हमें हिन्दू राजनीति शास्त्र के कुछ मूल ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। ये थोड़े से ग्रन्थ

उस विशाल ग्रन्थ भण्डार का अवशेष मात्र हैं, जिन्हें समय समय पर हिन्दू भारत के अनेकानेक राजनीतिज्ञों और शासकों ने प्रस्तुत किया था। इस प्रकार के अवशिष्ट ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ कौटिल्य का अर्थ शास्त्र (ई० पू० ३००) है जिसमें पूर्व या आरंभिक मौर्यों के साम्राज्य शासन विधान आदि दिये हुऐ हैं। यह स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत हुआ था। कौटिल्य ने अपने अर्थ शास्त्र में ऐसे अठारह, उन्नीस आचार्यों के नाम दिये हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और भी आचार्य हैं जिनका उल्लेख अन्यान्य स्थानों पर हुआ है। उदाहरण स्वरूप महाभारत को लीजिये, जिसमें हिन्दू राजनीति विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास दिया है और जिसमें इन आचार्यों के अतिरिक्त एक और आचार्य 'गौर शिरा' का उल्लेख है। आश्वलायन गृहयसूत्र में एक और आचार्य का उल्लेख है जिसका नाम "आदित्य" दिया है। आचार्यों और लेखकों की इस विस्तृत सूची से पता चलता है कि कौटिल्य के समय से शताब्दियों पूर्व इस देश में राजनीति शास्त्र का अध्ययन होता था और जिस समय कल्पसूत्रों की रचना समाप्त हो रही थी, उस समय तक यह एक प्रामाणिक विषय हो गया था।"

वैदिक काल की जनतन्त्रीय संस्थायें

युरप के अनेक विद्वानों ने अपनी अन्वेषणाओं के बाद यह स्वीकार किया है कि ऋग्वेद संसार के उपलब्ध ग्रन्थों में सबसे प्राचीन हैं। लोकमान्य तिलक ने अपने एक अत्यन्त खोजपूर्ण ग्रन्थ Orion (ओरायन) में इसका कार्यकाल ई० पू० ७०००–८००० वर्ष बतलाया है। ऋग्वेद के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि उस प्राचीन काल में भी भारतवर्ष ने जन-तन्त्रीय शासन संस्थाओं की संस्थापना की थी। श्रीयुत अविनाशचन्द्र दास ने अपने खोजपूर्ण ग्रन्थ

" Rigvedic Culture " में ऋग्वेद् कालीन 'सभा' और 'समिति' नामक दो राजनीतिक संस्थाओं पर प्रकाश डाला है। आप लिखते हैं:—

"वैदिक आर्यों में जन-तन्त्रीय प्रवृत्तियाँ थीं । वे अपने दलगत (Tribal) हितों की रक्षा में तत्पर रहते थे । सार्वजनिक तथा अपने ग्राम सम्बन्धी शासन कार्यों पर विचार करने के लिये वे सभाओं में इकट्ठे होते थे और उन विषयों पर खुले दिल से वादानुवाद करते थे। हर एक महत्वपूर्ण ग्राम में एक स्थायी संस्था थी जिसका नाम 'सभा' था। (Rv VI-286; VIII,4. 9; X.34. 6) इस सभा का स्वतन्त्र भवन होता था, जिसमें ग्राम के वृद्ध और सम्माननीय सज्जन ग्राम-शासन सम्बन्धी विषयों पर विचार विनिमय करते थे। ऋग्वेद् में एक दो स्थानों पर (१६७,२) ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि स्त्रियाँ भी इसमें भाग लेतीं थीं । उपनिषद्-काल में तो इस प्रकार की लोक सभाओं में स्त्रियों के भाग लेने के स्पष्ट उदाहरण मौजूद हैं।"

कौटिल्य अर्थशास्त्र के आविष्कारक डा० श्याम शास्त्री अपने The evolution of Indian polity नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:-

"इन सभाओं या परिषदों की सदस्यता के सम्बन्ध में यह दिखलाई देता है कि इसमें आने के लिये किसी के लिये किसी भी प्रकार की रोक टोक नहीं थी। वृद्ध और युवक, शिक्षित और अशिक्षित सभी इनमें स्वतन्त्रता के साथ सहयोग दे सकते थे । इनमें कोरम (Quorum) का कोई सवाल नहीं था और सभा को पूर्ण रूप से अधिकार युक्त बनाने के लिये प्रत्येक बालिग ग्रामवासी का उपस्थित होना आवश्यक था।"

कृष्ण यजुर्वेद नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि ये सभायें बहुत बड़े पैमाने पर होतीं थीं और किसी को भी अपने विचार करने के अधिकार से च्युत नहीं किया जाता था।

इन सभाओं में पुरोहितगण शिक्षित लोगों का और सामन्तगण कृषक तथा व्यापारी लोगों का प्रतिनिधित्व करते थे। इन सभाओं में, राजाओं के निर्वाचन के प्रश्न तथा राजाओं को राजच्युत करने या सिंहासन पर वापिस अधिष्ठित करना आदि के विषयों पर खुली चर्चा होती थी। यह बात सन्देहास्पद है कि राजा लोग इनमें उपस्थित होते थे या नहीं। अगर वे उपस्थित होते थे तो सभाध्यक्ष के रूप में होते थे। जब किसी राजा के चुनाव या उसे वापस राज्याधिकार प्राप्त करने के विषय में लोक सभा में विचार होता था, तब वह राजा नियमानुसार उस सभा में उपस्थित नहीं रहता था।

ऋग्वेद में 'सभा' व 'समिति' का उल्लेख कई स्थानों पर आया है। सुप्रसिद्ध लेखक Hillevraldt का कथन है कि ये दोनों संस्थाएँ एक थी। पर प्रख्यात जर्मन इतिहासवेत्ता लुडविग (Ludwig) ने अपने ऋग्वेद के अनुवाद में यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि 'समिति' एक विशुद्ध लोक सभा होती थी जिसमें सब लोग सहयोग दे सकते थे। इसमें राजा और अमीर उमराव भी शामिल होते थे।' झीमर (Zimmer) महोदय का कथन है कि समिति में राजा का निर्वाचन होता था।' ऋग्वेद में इसके स्पष्ट उल्लेख हैं (X. 173. 1) इन समितियों की बैठकें बड़े नगरों में होतीं थीं और लोक तथा उनके प्रतिनिधि उनमें शामिल होते थे।

प्रजा द्वारा राजा का चुनाव

इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में राजतन्त्र की संस्था (Monarchy) अति प्राचीन काल से चली आ रही है, पर वैदिक काल में राजाओं के प्रजा द्वारा चुने जाने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। झिमर महोदय का कथन है कि "वैदिक काल में राजा प्रजा द्वारा चुना जाता था।" (Vedie Index) आगे चल कर झीमर महोदय फिर कहते

है कि "लोक या उनके प्रतिनिधि, सभा या समिति में इकट्ठे होते थे और राजा के चुनाव के लिये अपनी सम्मति प्रदर्शित करते थे।" ऋग्वेद में एक मन्त्र है जिसमें लोक या प्रजा द्वारा राजा के चुने जाने का स्पष्ट उल्लेख है। (१०. १२४. ८)।

ऋग्वेद के दूसरे मन्त्रों से यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय राजा का चुनाव उसकी योग्यता को दृष्टि में रख कर होता था और राजा को अपने पद की रक्षा के लिये जनता की सदिच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था। जब तक प्रजा उसके शासन प्रबन्ध से खुश रहती थी तब तक वह उसे कर देती थी, पर ज्योंही उसे शासन में अन्याय या अत्याचार दिखलाई देता वह कर देना बन्द कर देती थी। लोगों को अपने अधिकार, स्वत्व व कर्तव्यों का पर्याप्त ज्ञान था और उनकी आवाज को राजा किसी तरह भी अवहेलना की दृष्टि से नहीं देख सकता था। (See Rigvedic Culture by Avinash Chandra Das).

ऋग्वेद से अथर्ववेद का रचनाकाल उत्तरकालीन है। उसमें भी कई ऐसे मन्त्र हैं जिनमें राजा के प्रजा द्वारा चुने जाने के स्पष्ट उल्लेख हैं। इस विषय में कुछ मन्त्र नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

"इन्द्रेन्द्र मनुष्या परेहि संह्यज्ञास्था वरुणै संविदानः।
सत्वायमह्वत स्वे सधस्थे सदेवान यक्षत स २ कल्पयाद् विशः॥
३. ४. ६।"

अर्थात् हे राजन! आप जनता के सामने आइये। आप अपने निर्वाचन करने वालों के अनुकूल हैं। इस पुरुष (पुरोहित) ने आपको आपके योग्य स्थान पर यह कह कर बुलाया है कि "इसे देश की स्तुति करने दो, और जाति (विश०) को भी सुमार्ग पर चलाने दो"।

"त्वां विशो वृणुता राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्चदेवी।
वर्ष्मन राष्ट्रस्यं ककुदि श्रयस्व ततोन उग्रो विभजा वसुनि॥ ३-४

अच्छात्वायन्तु हविनः सजाता अग्निदूर्तो अजिर संचरातै।
जायाः पुत्राः समनसोभवन्तु बहुबलिं प्रति पश्यासा उग्रः॥

अर्थात् हे राजन ! राज्य-कार्य चलाने के लिये प्रजा तुझे निर्वाचित करे। इन पांचों प्रकाशयुक्त दिशाओं में प्रजा तुझे निर्वाचित करे। राजा के श्रेष्ठ सिंहासन का आश्रय लेकर तू हम लोगो में उग्र होते हुए भी धन की बांट किया कर। तेरे अपने देश निवासी ही तुझे बुलाते हुए तेरे पास आवें। तेरे साथ चतुर तेज युक्त एक दूत हो। राष्ट्र में जितनी स्त्रियां और उनके पुत्र हों वे तेरी ओर मित्र भाव से देखें, तबही तू उग्र होकर बहुबलि ग्रहण करेगा।

इस प्रकार के कई मन्त्र अथर्ववेद में मिलते हैं जिनमें प्रजा द्वारा राजा के निर्वाचन करने के उल्लेख हैं। एक तरह से देखा जाय तो अथर्ववेद के काल में राजा प्रेसीडेन्ट की तरह होता था। उसे प्रजा ही चुनती थी और प्रजा ही निकाल सकती थी। इन मन्त्रों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि जिस प्रकार राजा को निर्वाचित करने का प्रजा को अधिकार था, उसी प्रकार राजा को शासन च्युत करने का भी उसे पूर्ण अधिकार था। इसके साथ साथ वैदिक मन्त्रों से यह भी पाया जाता है कि उस समय वंशानुगत राज्य की प्रथा नहीं थी। जो भी पुरुष योग्य, अनुभवी, विद्वान्, बलवान् और सदाचारी होता था वही प्रजा द्वारा निर्वाचित किया जाता था। अलौकिक तेज, दिव्य प्रतिभा तथा प्रशंसनीय सद्गुण देखकर ही प्रजा राजा को चुनती थी। राज गद्दी पर बैठ जाने के बाद भी कोई राजा अयोग्य और अत्याचारी निकल जाता तो प्रजा को यह अधिकार था कि वह उसे गद्दी से उतार दे। राजा को राज्याधिकार लेते समय इस आशय की पुरोहित से प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी; "मैं नियमानुसार शासन करूँगा। यदि नहीं करूँ तो आप मुझे सब प्रकार के दण्ड दे सकते हैं। मेरी निद्रा, प्रशंसा, पुत्र, कलत्र, और जीवन तक तुम्हारे हाथ में है। तुम्हें अधिकार है कि यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करूँ और

स्वेच्छाचारी होकर प्रजा को हानि पहुंचाऊं व उसके प्रति द्रोह करूँ तो तुम मुझे अपने प्रिय परिजनों से अलग कर सकते हो। मुझे बन्दी गृह में बन्द कर सकते हो।"

यदि कोई राजा अपनी प्रतिज्ञा पालन न कर अन्याय और अधर्म करता था तो उसके लिये दण्ड विधि भी थी। शुक्राचार्य के शब्दों में वह इस प्रकार थीः—

गुणनीति बल द्वेषी कुलभूतोऽप्य धार्मिकः।
नृपो यदिभवेत् तन्तुत्यजेदाष्ट्र विनाशकम्॥
तत्पदे तस्य कुलजं गुण युक्तं पुरोहितः।
प्रकृत्यनुमतं कृत्वा स्थापयेद्राज्य गुप्तये॥

अर्थात् जो राजा गुण, नीति, राज्य के प्रचलित नियमों और बल का शत्रु हो गया हो; जो अच्छे कुल में पैदा होकर भी अधार्मिक हो गया हो; उस विनाशक को राज्य से हटा देना चाहिये। उसके स्थान पर, राष्ट्र की रक्षा के लिये, राज पुरोहित और राज कर्मचारियों का मत लेकर, उसके कुल में उत्पन्न हुए किन्तु गुण युक्त, उसके सम्बन्धी को अधिष्ठित करना चाहिये।

इसी प्रकार का आदेश मनुस्मृति में भी हैः—

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयः त्यन वेक्षया।
सोऽचिराद भ्रश्यते राज्याज्जीविश्च स वान्धवः॥

अर्थात् जो राजा मूर्खता तथा मोहवश होकर अपनी प्रजा को सताता है, वह शीघ्र ही राज्य से च्युत किया जाता है और बन्धुओं सहित मृत्यु लोक को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार राजा को उसके पापों के प्रायश्चित देने के अनेक विधान हमारे धर्म शास्त्रों में मिलते हैं। कई बातों में तो हमारे भारत के प्राचीन राजा महाराजाओं की शक्ति आधुनिक युरोपिय देशों के

सम्राटों से भी अधिक मर्यादित थी। यहां तक कि अपराध करने पर जो दण्ड साधारण नागरिक को मिलता था, उससे भी अधिक दण्ड राजा को दिये जाने का विधान था। यथा

कार्षापण भवेद्दण्डय सहस्त्रमिति धारणा।
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेयं भवति किल्बिषम्॥

अर्थात जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो, उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसे दण्ड होने चाहिये।

उक्त वर्णन से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि उस समय राजा प्रजा द्वारा निर्वाचित होते थे। उनके अधिकार नियमित रहते थे। प्रजा को जिस प्रकार राजा को निर्वाचित करने का अधिकार था, उसी प्रकार राजा को, अत्याचारी, दुर्व्यसनी और प्रजा पीड़क होने पर राज्यच्युत करने का भी प्रजा को अधिकार था। प्रजा द्वारा राजा को राज्यच्युत करने के और उसे उसके अपराधों के लिये योग्य दण्ड देने के हिन्दू शास्त्रों में उल्लेख हैं।

रामायण और महा भारत में जनमत का आदर

रामायण में लिखा है कि जब महाराजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र को राजसिंहासन देना चाहा, तब उन्होंने अपने प्रजाजनों की सभा बुलाकर उनकी अनुमति ली थी। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण में यह भी उल्लेख है कि महाराजा दशरथ अकेले राज्य कार्य्य नहीं करते थे, वरन् वे विद्वान् और योग्य मन्त्रियों की परिषद् की सहायता से राज्य संकट चलाते थे। महाभारत में राजा पृथु का प्रजा द्वारा चुने जाने का स्पष्ट उल्लेख है।

प्राचीन भारत में गणतन्त्र राज्य

वेदों के गम्भीर अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वैदिक युग के आरम्भ में केवल राजाओं द्वारा ही शासन हुआ करता था। पर उत्तर कालीन वैदिक युग में, ऐसा प्रतीत होता है, राजतन्त्र की प्रथा तोड़ दी गई थी। इस बात को सुप्रख्यात प्रवासी मैगेस्थेनीज ने भी स्वीकार किया है(※)। प्रजातन्त्र शासन के प्रमाण परवर्ती वैदिक साहित्य, ऋग्वेद के ब्राह्मण भाग तथा यजुर्वेद और अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। बौद्ध साहित्य की जातक कथाओं में भी गणतन्त्र राज्यों के स्थान स्थान पर उल्लेख आये हैं। जैन साहित्य में भी गणतन्त्रों के वर्णन हैं। कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में इन्हें संघ कहा है। सुप्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ 'मज्झिम-निकाय' में संघ और गण साथ साथ आये हैं और बिना किसी सन्देह के यह कहा जा सकता है कि उनसे भगवान् बुद्धदेव के समय के गण तन्त्रों का अभिप्राय है। सुप्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने अपने विख्यात ग्रन्थ अष्टाध्यायी में हिन्दू प्रजा तन्त्रों का महत्वपूर्ण उल्लेख किया है। पाणिनि का समय ५०० ई० पू० बतलाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि पाणिनि के समय प्रजातन्त्रों का कितना महत्त्व था। पाणिनि ने कई प्रजातन्त्रों या संघों का उल्लेख किया है।

बौद्धयुग के गणतन्त्र राज्य

भगवान् बुद्धदेव के समय भारतवर्ष में कई गणतन्त्र राज्य थे। बुद्धदेव का जन्म, जिस स्थान में हुआ था, वह भी एक गणतन्त्रीय राज्य में था। ये गणतन्त्र पूर्व में कौशल और कौशांभी के राज्यों तक और पश्चिम में अंग राज्य तक विस्तृत थे, अर्थात् उनका विस्तार गोरख-

(※) Epitome of Megasthenes Divd II 38 Mc Crindle, Megasthenes pp. 38, 40.

पुर और बलिया के जिले से भागलपुर जिले तक तथा मगध के उत्तर से हिमालय के दक्षिण तक था। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री काशी-प्रसाद जायसवाल ने इन गणतन्त्रों का उल्लेख इस प्रकार किया है:—

(१) शाक्यों का गणतन्त्र—इनकी राजधानी गोरखपुर जिले के कपिलवस्तु नामक नगर में थी और जिसमें उनके बहुत ही समीपवर्ती राज्य भी सम्मिलित थे।

(२) कोलियों राम ग्राम।

(३) लिच्छिवियों का राज्य—इनकी राजधानी वैसाली में थी, जिसे आजकल बसाढ़ कहते हैं और जो मुजफ्फरपुर जिले में है।

(४) विदेहों का राज्य-इनकी राजधानी मिथिला (जिला दरभंगा) में थी। ये अंतिम दोनों मिल कर वृजी अथवा वज्जी कहलाते थे।

(५) मल्लों का राज्य—यह बहुत दूर तक फैला हुआ था और यह दक्षिण में शाक्यों तथा वृजियों के राज्य तक चला गया था, अर्थात् आधुनिक गोरखपुर जिले से पटने तक चला गया था और जो दो भागों में विभक्त था। इनमें से एक राज्य की राजधानी कुशी नगर (कुशीनारा) तथा दूसरे की पावा में थी।

इस प्रकार बौद्ध युग में और भी गणतन्त्र राज्य थे।

कौटिल्य अर्थशास्त्र और गणतन्त्र

कौटिल्य सम्राट चन्द्रगुप्त का प्रधान मन्त्री था। उसने राजनीति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है, जो 'अर्थ-शास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है। उक्त ग्रन्थ में राजनीति तथा राजधर्म के साथ साथ तत्कालीन गणतन्त्रों का भी उल्लेख किया है। इन गणतन्त्रों में मुख्य मुख्य ये थे:-

१ लिच्छविक २ वृजिक ३ मल्लक ५ कुकुर ६ कुरु ७ पांचाल ८ कांभोज ९ सुराष्ट्र १० क्षत्रिय ११ श्रेणी।

इनके अतिरिक्त उस समय क्षुद्रकों व मालवों के भी प्रजातन्त्र राज्य थे, जिनका वर्णन कौटिल्य के ग्रन्थ में नहीं है।

सम्राट् सिकंदर ने जब भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब उसके साथ कई इतिहास लेखक आये थे, जिनमें मेगास्थनीज़ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसने अपने प्रवास-वर्णन में कुछ प्रजातन्त्र राज्यों का उल्लेख किया है। वह लिखता है:—

"वे लोग.........जहाँ राजा होता है वहाँ सब बातों की सूचना राजा को देते हैं और जहाँ लोग स्वाधीन होते हैं, अपना शासन आप करते हैं, वहाँ मजिस्ट्रेटों—स्थानीय अधिकारियों—को सूचना देते हैं।"

सिकन्दर के साथ आनेवाले दूसरे इतिहास-लेखक मैकक्रिंडल ने अपने ग्रन्थ "Invasion of India by Alexander" में लिखा है "भारतवर्ष के प्रत्येक गाँव को उन्होंने (यूनानियों) एक स्वतंत्र प्रजातन्त्र समझा था।"

यूनान के एक अन्य लेखक 'ऐरियन' ने भी अपने ग्रन्थ में कुछ ऐसे राज्यों का उल्लेख किया है जिनमें प्रजातन्त्री शासन व्यवस्था थी। जब सिकन्दर व्यास नदी के तट पर पहुँचा, तब उसने सुना कि व्यास नदी के पार एक ऐसा देश है जहाँ बहुत सुन्दर प्रजातन्त्री शासन प्रणाली प्रचलित है, और जहाँ लोग अपने अधिकारों का उपयोग बहुत ही न्याय तथा विचार पूर्वक करते हैं।

जब सिकन्दर वापस लौटा तब उसे सिन्धु नदी के तट पर और भारतीय सीमा पर कितने ही ऐसे राज्य मिले जो प्रजातन्त्री थे। इन लेखकों ने कुछ और भी प्रजातन्त्रीय राज्यों का वर्णन किया है, जिनका उल्लेख हम यहाँ विस्तार भय के कारण नहीं करेंगे।

कहने का सारांश है कि यहाँ भारतवर्ष में जहाँ एक तन्त्र राज्य प्रणाली (Monarchy) थी, वहाँ कई स्थानों में प्रजातन्त्र राज्य प्रणाली (Republic) होने के भी उल्लेख मिलते हैं। यह कहना भ्रमपूर्ण है कि प्राचीन भारतवासी प्रजातन्त्र शासन प्रणाली से अज्ञात थे, तथा भारत वासियों में जनतन्त्र की भावना का अभाव रहा है।

मौर्य साम्राज्य का आदर्श शासन

मौर्य—शासन का पूर्ण विवरण हमें कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र और मेगास्थनीज के प्रवास वर्णन में मिलता है। ये दोनों ग्रन्थ तत्कालीन इतिहास और राजनीति पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। सम्राट् चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था को देख कर वास्तव में आश्चर्य होता है। कौटिल्य ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के अनेक शासन विभागों पर विस्तृत विवेचन किया है, जिनकी ओर वर्तमान भारतीय राजनितिज्ञों का ध्यान अवश्य जाना चाहिये। इस समय सारे भारतवर्ष में राजनैतिक एकता स्थापित थी और देश बड़ा शक्तिशाली हो गया था। इसके अतिरिक्त, यद्यपि देश एकतंत्रीय शासन में था पर उसके अन्तंगत कई छोटे मोटे प्रजातन्त्र भी थे, जिन्हें मौर्य सम्राट् की ओर से पर्याप्त उतेजना मिलती थी। मौर्य साम्राज्य के समय के शासन तन्त्र पर हम किसी स्वतंत्र ग्रन्थ में विस्तृत रूप से प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। पर यहां हम सम्राट् चन्द्रगुप्त के पौत्र सम्राट् अशोक के दिव्य शासन पर कुछ पंक्तियाँ लिखकर पाठकों को उस समय की दिव्य शासन-व्यवस्था का थोड़ा सा दिग्दर्शन करा देना चाहते हैं।

सम्राट् अशोक के शिलालेख देश के विभिन्न स्थानों पर मिलते हैं। उन शिलालेखों से हमें सम्राट् अशोक के राजनैतिक व धार्मिक आदर्शों का और उनके धर्म राज्य का पर्याप्त परिचय मिलता है। संसार प्रसिद्ध पाश्चात्य ग्रन्थकार एच० जी० वेल्स (H. G. Wells) ने कहा है:—

"सम्राट् अशोक के २८ वर्ष का शासन मानव जाति के इतिहास में सबसे अधिक प्रकाशमान घटना है। उन्होंने भारतवर्ष में स्थान स्थान पर कुएं खुदवाये और छाया के लिये वृक्ष लगवाये। उन्होंने रोगियों के लिये स्थान स्थान पर औषधालय खुलवाये और उद्यान लगवाये जिनमें

फल, फूल और औषधियां पैदा होती थीं, उन्होंने विदेशियों के लिये अलग सचिवालय कायम किये। स्त्री-शिक्षा का प्रबंध किया, और भगवान् बुद्धदेव के सन्देश को फैलाने के लिये दूर दूर तक प्रचारक भेजे।

इस प्रकार महाराज अशोक सम्राटों में सबसे महान् थे और अपने समय से १०० वर्ष आगे थे।"

(A short history of world by H. G. Wells)

इन्हीं महाशय ने इसी ग्रन्थ में लिखा है:—

"Amidst the tens of thousands of names of monarchs that crowd the columns of history, their Majesties and Graciousnesses, and Serenities and Royal Highnesses, and the like, the name of Asoke shines, and shines almost alone, a star. From the Volga to Japan, his name is still honoured. China, Tibet and even India, though it has left his doctrine, preserve the tradition of his greatness. More living men cherish his memory to-day than have ever heard the names of Constantine or Charlemagn."

(H. G. Wells)

इसका आशय यह है कि संसार के सहस्र सहस्र उन सम्राटों में जिन्होंने इतिहास के पृष्ठों को सुशोभित किया है, महाराजा अशोक का नाम प्रकाशमान् सितारे की तरह अकेला ही चमकता है। वोल्गा से जापान तक उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। चीन, तिब्बत और यहां तक कि भारतवर्ष में भी उनकी महानता का इतिहास सुरक्षित है। आज भी संसार में कांस्टेन्टाइन से चार्लेमन तक अधिक मनुष्य उनके नाम को आदर सहित स्मरण करते हैं।

महाराजा अशोक का राजनैतिक आदर्श इतना उच्च और दिव्य था कि उसकी तुलना संसार के किसी भी उन्नत से उन्नत शासन से नहीं की जा सकती। अहिंसा के महान् धर्म का उन्होंने सार्वत्रिक प्रचार किया था। न केवल मनुष्य जाति का ही, पर सकल प्राणियों का सुख उनकी राजनीति का प्रधान आदर्श था। उनके शासन में हम मानवता और दिव्यता का उच्च आदर्श देखते हैं। उनके शिलालेखों से प्रगट होता है कि वे अपने को सिर्फ लोगों के इह-लौकिक कल्याण के लिये ही उत्तरदायी नहीं समझते थे, पर उनके पारलौकिक सुख के लिये भी वे अपने आपको जिम्मेवार समझते थे। प्रजा के लिये उनके द्वार हर दम खुले रहते थे। यद्यपि वे बौद्ध धर्मावलम्बी थे और उनके शासन पर भगवान बुद्धदेव का बड़ा प्रभाव था, पर वे अन्य धर्मावलम्बियों को भी समदृष्टि से देखते थे और उनके कल्याण के लिये उतना ही प्रयत्न करते थे जितना कि बौद्ध मतावलम्बियों के लिये करते थे। उन्होंने अपने राज्य में प्राणीवध को बिलकुल बन्द कर दिया था। इससे उनके धर्म राज्य में जीव मात्र सुख और शान्ति से विचरते थे। संसार के इतिहास में सम्राट् अशोक का शासन सदा अमर रहेगा और वह शासन-कर्ताओं के लिये एक उच्च आदर्श का काम देगा।

गुप्त सम्राटों का शासन

सम्राट् अशोक के बाद गुप्त साम्राज्य का शासन-काल भारत के लिये स्वर्णयुग कहा जाता है। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय का नाम भारत के इतिहास के पृष्ठों को सदा गौरवान्वित करता रहेगा। कई इतिहास वेत्ता इन्हीं महाराजा चन्द्रगुप्त को भारतीय इतिहास के अमर रत्न विक्रमादित्य भी मानते हैं। उनके मतानुसार विक्रमादित्य उनकी उपाधि थी। इसके लिये वे प्रमाण देते हैं कि जितने शिलालेखों में विक्रम सम्वत् का नाम आया है वे सब छठी शताब्दि या उसके बाद के हैं। इस विषय में

इतिहासवेत्ताओं में मतभेद है। पर यह बात निश्चित है कि सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त एक महान नृपति हुए जिन्होंने भारतवर्ष में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया। उन्होंने प्रजा कल्याण की भावना को ही अपने शासन का आदर्श बनाया था।

इन्हीं महाराज चन्द्रगुप्त के राज्य काल में एक चीनी प्रवासी-फाहियान-भारतवर्ष में आया। इसने महाराजा चन्द्रगुप्त के राज्य का जो सुमनोहर वर्णन किया है उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

"भारतवासी बड़े धर्मनिष्ठ और दयावान थे। जिन लोगों को परमात्मा ने धन और वैभव दिया था, उनके हृदय में करुणा और उदारता भी भरदी थी। वे केवल स्वार्थ ही के लिये अपनी संपत्ति का उपयोग नहीं करते थे, परोपकार में भी साधारणतया उसका कुछ भाग लगाया करते थे। देश में धर्मार्थ संस्थायें बहुत थीं। जगह जगह अन्नक्षेत्र खुले हुए थे। मार्गों पर यात्रियों के रहने के लिये धर्मशालाएँ बनी हुई थीं। राजधानी में धर्मार्थ औषधालय भी थे जिनमें असहाय, अनाथ तथा दीन दुखिया लोगों की मुफ्त चिकित्सा की जाती थी। सब रोगों के रोगी इन अस्पतालों में लिये जाते थे। उनकी देख भाल के लिये वहां चिकित्सक सदा रहते थे। उनकी दशा के अनुसार पथ्य भी उन्हें औषधालय से ही मिलता था। पूरा आराम होने तक वे वहाँ रह सकते थे। इन औषधालयों के व्यय का सारा भार नगर के कुछ दानशील धनाढ्य पुरुषों ने अपने ऊपर ले रखा था।

इतिहासकार विंसेंट स्मिथ का कथन है कि "उस समय संसार भर में कहीं भी ऐसे अच्छे सार्वजनिक औषधालय बने हों इसमें सन्देह है। अशोक की मृत्यु के बाद भी उसके उपदेशों का इस प्रकार शुभ फल फलते रहना उसकी दूरदर्शिता की अपने आप प्रशन्सा कर रहा है।"

फाहियान ने अपने ग्रन्थ में भारतीय शासन के विषय में जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि राजा सर्व प्रिय था और शांति-

मय उपायों से काम लेता था। प्रजा पर कोई कठोर अंकुश नहीं था। राज्य की तरफ से प्रजा के कामों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा डाले बिना लोग जो चाहते, कर सकते थे। सारा मध्य देश जनपदों में विभक्त था। जनपदों के अधिपति भी दयालु थे और शासन करने में अपने सम्राट् का अनुकरण करते थे। प्रजा भी नागरिकों के उच्च आदर्श को जानती थी और उसके अनुसार व्यवहार करती थी। फाहियान ने उन्हें सद्‌गुणों में परस्पर स्पर्धा सा करते देखा। अतएव अपराध बहुत कम होते थे। हजारों मील के लम्बे सफ़र में फाहियान को कोई डाकू या ठग नहीं मिला। इसलिये राज-नियम भी कड़े नहीं थे। राष्ट्र में मृत्युदण्ड का अभाव था और शारीरिक दण्ड की न्यूनता यह प्रमाणित करती है राज्य-सत्ता के लिये लोगों के हृदय में अत्यन्त ऊंचा स्थान था। साधारणतः जुर्माना ही काफी समझा जाता था। राजद्रोह सरीखे अपराध के लिये कभी कभी हाथ कटाने का दंड दिया जाता था। पदाधिकारियों के नियत वेतन भोगी होने से उनको प्रजा पर अत्याचार करने का अवसर नहीं था। उदार और चतुर शासक के शासन काल में प्रजा सब प्रकार सुखी थी। देश में संपत्ति अपार थी। चांदी सोने की कमी नहीं थी। खाने पीने के पदार्थ और नित्य के व्यवहार की अन्य चीजें इतनी सस्ती थीं कि कौड़ियों में काम चल जाता था। फाहियान ने भारतवर्ष को अत्यन्त सुख और समृद्धि में पाया उसके भाग्य की सराहना की। ऐसा सुख और शान्तिमय शासन उसके देशवासियों को प्राप्त नहीं था और यह बात उसे भारत में रह रह कर याद आती थी।

गुप्त साम्राज्य के बाद हर्ष का राज्य काल भी भारतवर्ष के लिये बड़ा सुखकारक था। लोग सुखी और धन धान्य पूर्ण थे।

हमारे कहने का आशय यह है कि प्राचीन भारत के जनतन्त्रों और राज तन्त्रों में प्रजा सुखी और समृद्धिशाली थी। इस विषय का विस्तृत वर्णन करने का यहां क्षेत्र नहीं है।

गत् अध्यायों में हमने सिर्फ यही दिखलाया था कि प्राचीन भारत में बीसों गणतन्त्र राज्य हो गये हैं जहाँ लोक प्रतिनिधियों द्वारा राज्य का शासन संचालित किया जाता था। राजतन्त्रों में भी राजा अपने आप को प्रजा का सेवक समझता था और वह प्रजा द्वारा चुन कर अधिष्ठित किया जाता था। महाराजा अशोक और महाराजा चन्द्रगुप्त द्वितीय सरीखे प्रजा सेवक और प्रजा कल्याणकारी सम्राटों के उदाहरण संसार के इतिहास में नहीं मिल सकते। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने "The Discovery of India" नामक ग्रन्थ में इस बात को स्पष्टतया स्वीकार किया है कि यद्यपि अशोक एक सम्राट् थे, पर वे एक ऐसे सम्राट् थे जिनकी शानी का सम्राट् संसार में दूसरा नहीं हुआ।

भारत में ग्राम पंचायतें

प्राचीन भारत में ग्राम पंचायतों का एक जाल सा बिछा हुआ था। ये ग्राम पंचायतें इस प्रकार के छोटे गणतन्त्र राज्य (Republic) थे जिनमें ग्राम जनता के प्रतिनिधि शासन करते थे।

भारतवर्ष के भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड मेटकॉफ ने सन् १८३० के मसौदे में हिन्दू ग्राम मंडल के सम्बन्ध में लिखा है :—

The communities are little republics, having nearly every thing of want within themselves and almost independent of any foreign relations. They seem to last when nothing else lasts. Dynasty after dynasty tumbles down, revolution succeeds to revolution. Hindu, Pathan Moghal, Maratha, Sikh, English, all are masters in turn but the village Communitees remain the same. In times of trouble they arm and fortify themselves. As hostile army passes through the Country, the village Communities collect their cattle within their walls and let the enemy pass unprovoked............This Union of village communities, each one forming a state in itself, has, I believe, contributed more than any other cause to preservation of the people of India thro-

ugh all the revolutions and changes which they have suffered, and is in a high degree conductive to their happiness and to the enjoyment of a great portion of freedom and independence."

अर्थात् भारतवर्ष के ग्राम मण्डल छोटे छोटे लोक सत्तात्मक राज्य हैं। वे आप अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। अतः किसी वस्तु के लिये उन्हें दूसरे पर अवलम्बित नहीं रहना पड़ता। अन्य संस्थायें नष्ट हो गईं किंतु वे सजीव हैं। एक के बाद एक कई राजघराने नष्ट हो गये, कई राज्यक्रांतियाँ हुईं। हिन्दू, पठान, मुगल, मरहठे, सिख और अंग्रेजों ने अनुक्रम से देश जीता, किन्तु ग्राम मण्डल पूर्ववत् बने ही रहे। शत्रु के आक्रमण के समय प्रत्येक गांव अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर तैयार रहता है। जब शत्रु गांव के पास से निकलता है तो वे अपने पशु शहर-पनाह में बन्द कर देते हैं और शत्रु को बिना छेड़ छाड़ किये हो जाने देते हैं। ...... ग्राम मण्डलों के इस ऐक्य के कारण वे एक प्रकार के छोटे से राज्य मालूम होते हैं। इसीसे वे सब विघ्न बाधाओं को पार कर केवल स्वतन्त्र ही नहीं रहे, परन्तु उनके सुख और स्वातंत्र्य रक्षण के लिये भी, यह ऐक्य बहुत काम आया।"

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखते हैं:—

"One foreign conqueror after another has swept over India but the Village municipalities have stuck to the soil like their own kusa grass."

अर्थात् अनेक विदेशी विजेताओं ने एक के बाद एक चढ़ाईयाँ कीं, किन्तु यहाँ के ग्राम मण्डल पूर्ववत् कुश की तरह जमीन से चिपके ही रहे।

भारत की आर्थिक समृद्धि

जिस प्रकार दर्शक-शास्त्रों के गूढातिगूढ़ सिद्धान्तों के आविष्कार में, आध्यात्मिक और आत्मिक रहस्यों के प्रकाशित करने में, भारतवर्ष ने संसार में सर्वोपरि आसन प्राप्त कर रखा था, उसी प्रकार विविध कलाओं की उन्नति में और व्यापार-विस्तार में भी इसका बड़ा नाम था। सारे संसार के बाजारों पर भारतीय माल का प्रभुत्व था और यहां का बना माल संसार में सर्व श्रेष्ठ समझा जाता था। जिस प्रकार आजकल पाश्चात्य देश अपना पक्का माल भारत भेजकर मालामाल हो रहे हैं इसी प्रकार पहले भारत अपना पक्का माल विदेशों को भेजकर अटूट सम्पत्ति प्राप्त करता था। सुप्रसिद्ध डाक्टर बूलर (Buhler) ने ऋग्वेद के कई मन्त्रों को उद्धृत कर के यह दिखलाने की चेष्टा की है कि वैदिक समय में भी आर्य लोग अन्य राष्ट्रों के साथ अपना व्यापारिक सम्बन्ध करके अगणित द्रव्य प्राप्त करते थे। नाव और जहाज बनाने का हुनर भी उस समय मौजूद था। ऋग्वेद मन्त्र १/११६/५ में अगाध समुद्र को चीरते हुए सौ पतवारों से सज्जित जहाज का वर्णन है। कई विदेशियों के ग्रन्थों में भारतवासियों के विस्तृत व्यापार के, उनके अतुलनीय वैभव के, उनके बड़े बड़े उद्योग धन्धों के उल्लेख मिलते हैं। इन ग्रन्थों से यह भी पता चलता है कि पूरे तीन हजार वर्ष तक भारतवर्ष व्यापारिक संसार का शिरोमणि रहा था और फिनासियन्स, ज्यू, असेरियन, यूनानी मिसरानी और रोमन लोगों के साथ इसका सम्बन्ध था। भारतवर्ष से कई प्रकार का पक्का माल उन देशों को जाता था। बढ़िया बढ़िया रेशमी कपड़े, रूई की अत्यन्त बारीक और

मुलायम मलमलें, ऊन के वस्त्र, भिन्न भिन्न प्रकार के उत्कृष्ट सुगन्धित तेल, शक्कर की बनी हुई विविध प्रकार की चीजें, तरह तरह की औषधियां, भांति भांति के रंग, पिपरमेन्ट, दालचीनी, सलमे-सतारे और कशीदे के कपडे आदि कई प्रकार के पदार्थ यहां से यूरोप आदि देशों को भेजे जाते थे। इन चीजों की वहां पर बड़ी कद्र होती थी लोग बडे चाव से इन्हें खरीदते थे। हां, विदेशों से भी कुछ चीजें यहां आती थीं। पर व्यापार का पलड़ा हमेशा हमारे पक्ष में रहता था। आज भी हमारे ही पक्ष में रहता है, पर उसमें और इसमें जमीन आसमान का अन्तर है। आज विदेश हम से वह अन्नादि सामग्री लेते हैं जो मनुष्य जीवन के लिये परम आवश्यक है और इसके बदले में हमें विलास की अनावश्यक सामग्री देते हैं जिसके अभाव में भी हमारा जीवन सुख पूर्वक चल सकता है। और इसमें भी जो रूपया बाकी (Balance) का बचता है वह भी होम चार्जेज (Home Charges) आदि कई रूपों में विदेश चला जाता है, अर्थात आजकल जिस तरह भारत का धन विदेशों में खींचा जा रहा है वैसा पहले नहीं खींचा जाता था। हम भी प्राय: पक्का माल विदेशों को भेजते थे और विदेशों से भी पक्का ही माल पाते थे, एवं इसमें हमारे व्यापार का पलड़ा बहुत भारी रहता था। हिन्दुस्तान बढिया बढिया माल तैयार कर विदेशों को भेजता था और उसके बदले में सोना, चांदी आदि बहुमूल्य धातुएं तथा माणिक्य, रत्न इत्यादि जवाहिरात पाता था। इस प्रकार एक समय हिन्दुस्तान रत्नों की खान सा हो गया था। यहाँ की सम्पत्ति अतुलनीय हो गई थी। यहां के समान रत्नादिक कहीं न थे।

अनेक प्रमाणों का अन्वेषण करके सुप्रसिद्ध डाक्टर साईस ने यह सिद्ध करने का सफल प्रयत्न किया है ईसवी सन् के तीन हजार वर्ष पहले भारतवर्ष और असेरिया के बीच अव्याहत रूप से व्यापारिक सम्बन्ध था। हिन्दुस्थान से बना हुआ पक्का और कच्चा माल उक्त देश को जाता था और इसके बदले में हिन्दुस्तान मूल्यवान् धातु के रूप में

मूल्य प्राप्त करता था। साथ ही में डॉक्टर साहब इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि कुछ माल असीरिया से भी हिन्दुस्थान को आता था। पर इस माल की तादाद हिन्दुस्थान से जानेवाले माल की अपेक्षा बहुत ही कम थी। जैक्सन साहब ने बम्बई के गजेटियर में सिद्ध किया है कि भड़ोच, सुपारावन्दर और बेबीलोनिया के बीच ईसवी सन् से से ७००–८०० वर्ष पूर्व भी व्यापार होता था और हिन्दुथान इन देशों से खूब द्रव्य प्राप्त करता था। मिस्र और हिन्दुस्थान के बीच इससे भी पहले व्यापार प्रचलित था। यह बात हिरोडोटस आदि यूनानी ग्रन्थकारों के ग्रन्थों से पाई जाती है। अमेरिका के येल विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर मि० डे. ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "History of Commerce" में अनेक प्रमाण देकर यह दिखलाया है कि ईसा से ३२०० वर्ष पहिले हिन्दुस्तान और चीन के बीच जोर शोर से व्यापार जारी था। सुप्रसिद्ध जर्मन पण्डित वोन बूलन" (Von Bohlen) ने बड़ी खोज और अध्ययन के बाद यह नतीजा निकाला की मनुष्य जाति के बाल्यकाल से ही हिन्दुस्थान और अरब के बीच व्यापार शुरू था। प्रोफेसर व्ही बाल ने अपने पुस्तक (A Geologist contribution to the History of Ancient India)" में यह सिद्ध किया है कि ईसा से १२०० वर्ष पहिले वैभव और सम्पति में हिन्दुस्थान सारे संसार का शिरोमणि था। यहाँ मूल्यवान् रत्नों का अगाध भण्डार था और दूर दूर के देशों से इसका अव्याहत सम्बन्ध था। प्रोफेसर विल्किसन ने अपने 'Ancient Egyptians' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि मिस्र के २००० वर्ष के पुराने मकबरों में हिन्दुस्थानी कील और अन्य हिन्दुस्थानी चीजें मिलती हैं। इससे भारतवर्ष और मिस्र का अत्यन्त प्राचीन व्यापारिक सम्बन्ध ज्ञात होता है। प्रोफेसर मेकक्रिंडल ने अपने "Ancient India, as described in Classical literature" नामक ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध भारत प्रवासी यूनानी पण्डित हिरोडोट्स का वर्णन लिखा है। उसमें आपने हिरोडोट्स के कई लेख उद्धृत किये

है, जिनमें एक जगह हिरोडोट्स का लिखा हुआ यह वाक्य भी उद्धृत है। "हिन्दुस्थान सोने से भरा पूरा और मालामाल है।" प्रोफेसर बाल ने भी हिन्दुस्थान की अटूट सम्पत्ति के अस्तित्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। सम्राट अशोक के समय में भी विदेशों के साथ हिन्दुस्तानी की अच्छी व्यापारिक गति-विधि होने के उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में पाये जाते हैं। अशोक के बाद आन्ध्र और कुशान (Kushan) काल में हिन्दुस्थान का वैदेशिक व्यापार बहुत चढ़ा बढ़ा था। यह बात उस काल के विदेशी लेखकों के लेखों से स्पष्ट होती है। इसके अतिरिक्त इसके सम्बन्ध में कई मुद्रा सम्बन्धी प्रमाण भी मिलते हैं। आन्ध्र काल का समय ईसा से २०० वर्ष पूर्व से लेकर ईसवी सन् २५० वर्ष तक है। दक्षिण हिन्दुस्थान के प्रमाणभूत इतिहासज्ञ मि० आर, सेवल (R. Sewele) लिखते हैं "आन्ध्र युग, भारतवर्ष के लिये अत्यन्त समृद्धिशाली युग था। इस समय स्थल और समुद्र का व्यापार बहुत बढ़ा चढ़ा था। और पश्चिमी यूनान, रोम, मिश्र, चीन और पूर्वी देशों के साथ इसका व्यापारिक सम्बन्ध था।" प्लिनी नामक इतिहास लेखक लिखता है कि रोम से भी हिन्दुस्तान में कई प्रकार के धात्विक द्रव्य आते थे। आन्ध्र युग के लिये डाक्टर भाण्डारकर ने लिखा है:—

Trade and commerce must have been in a flourishing condition during this early period"

अर्थात् इस युग में (आन्ध्र युग में) भारत का व्यवसाय और व्यापार अवश्य उन्नतावस्था में होना चाहिये। एक पाश्चात्य इतिहासज्ञ के मतानुसार इस काल में रोम से हिन्दुस्तान को ढेरों सोना आता था और इसके बदले यहां के रेशम के बढ़िया बढ़िया वस्त्र, जवाहिरात, और कई प्रकार की धातु की बनी हुई चीजें बाहर जातीं थी।

रोम सम्राट् आगस्टस से लगा कर सम्राट् निरो तक भारतवर्ष और पाश्चात्य देशों का व्यापार बड़ी उन्नत अवस्था में रहा। हिन्दुस्तान की

बनी हुई विलास सामग्री के प्रति धनिक रोम लोगों की रूचि बढ़ने लगी। यह रुचि इतनी बढ़ी कि इससे उस समय कई विचारवान् लोगों को यह डर होने लगा कि कहीं इससे रोम दिवालिया न हो जावे। प्लिनी नामक ग्रन्थकार जो ईसवी सन् ७७ में हुआ, इस बात पर बड़ा दुःख प्रगट करता है कि रोमन लोग फजूल-खर्च और विलासप्रिय होते जाते हैं। वे इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यों तथा बढ़िया वस्त्रों, जेवर आदि में इतना बेशुमार खर्च करते हैं कि कुछ पूछिए नहीं। कोई साल ऐसा नहीं जाता जिसमें हिन्दुस्थान रोम से करोड़ों रूपया न खींचता हो। मामसेन अपने "Provinces of the Roman Empire" नामक ग्रन्थ में लिखता है कि हिन्दुस्तान से रोम को प्रति वर्ष ५०,००,०००) पौण्ड मूल्य की विलास-सामग्री जाती थी। इसमें प्रधानतः सुगन्धित द्रव्य, रेशमी वस्त्र, बढ़िया मलमल आदि आदि होते थे। इनके अतिरिक्त रोम में अदरक की मांग भी अधिक थी। प्लिनी लिखता है कि यह सोने, चांदी की तरह तौल कर बिकता था। मि० विन्सेन्ट स्मिथ भारत और रोम के बीच में होनेवाले व्यापार के विषय में लिखते हैं:—

"तामिल भूमि का यह सौभाग्य है कि वह तीन ऐसी मूल्यवान् वस्तुएं उत्पन्न करती है, जो अन्य स्थान में अप्राप्य हैं। कालीमिर्च, मोती और पिरोजा (Beryls)। कालीमिर्च यूरोप के बाजारों में बड़े दामों पर बिकती है। दक्षिण भारत में मोती निकालने का उद्योग हजारों वर्ष के पहले भी बड़ी सफलता के साथ चल रहा था। दक्षिण हिन्दुस्तान के पैडिपुर ग्राम में पिरोजा की जो खान है उसी से प्राचीन संसार पिरोजा प्राप्त करता था। प्लिनी ने भारतवर्ष को जवाहिरात का केन्द्र स्थान कहा है। संसार का सबसे महान् और सबसे अधिक मूल्यवान हीरा 'कोहेनूर' जो संसार के अनेक देशों में घूमता हुआ कुछ वर्षों से लण्डन पहुंचा है, मूल में भारतवर्ष ही का था।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० थार्नटन्स ने अपने "Description of Ancient India" नामक ग्रन्थ में प्राचीन भारत के लिये इस आशय के वचन लिखे हैं।

"यूरोपिय सभ्यता के मूल जनक यूनान और इटली जब निरी जंगली अवस्था में थे तब भी भारतवर्ष वैभव और सम्पत्ति का केन्द्र स्थान था। यहां चारों ओर बड़े बड़े उद्योग-धन्धे जारी थे। यहां की जनता दिन रात काम में लगी रहती थी। यहां की भूमि उर्वरा थी, जिससे यहां फसल खूब पैदा होती थी। यहां किसानों को अपने परिश्रम का फल बहुत ही अच्छा मिलता था। वे धन धान्य पूर्ण होते थे। यहां बड़े बड़े चतुर कारीगर थे जो यहां के कच्चे माल से इतना नफीस उमदा पक्का माल तैयार करते थे जिसकी संसार भर में मांग होती थी और कई पाश्चात्य और पौर्वात्य राष्ट्र इसे बड़े चाव से खरीदते थे। यहां सूत और वस्त्र इतने मुलायम और खूबसूरत बनते थे कि जिनकी तुलना नहीं हो सकती।"

पाठक! देखिये, यह एक निष्पक्ष अंग्रेज इतिहासवेत्ता ने भारतीय वैभव का चित्र खींचा है। हम यदि स्वयं अपनी प्रशंसा करें तो पक्षपात का दोषारोप किया जा सकता है, पर एक विदेशी अंग्रेज इतिहास लेखक का खींचा हुआ यह चित्र कभी पक्षपात युक्त नहीं कहा जा सकता। यहीं क्यों, प्राचीन काल में जो अनेक विदेशी यात्री भारत में आये उन्होंने भारत की सुस्थिति का जिक्र अपने ग्रन्थों में जगह जगह किया है। मेगस्थनीज जो यहां विक्रम से २४३ वर्ष पूर्व आया था, लिखता है "भारत में बहुत से ऊंचे पहाड़ हैं, जिन पर हर किस्म के मेवे और फल होते हैं। और बहुत सी नदियों से प्लावित उपजाऊ मैदान हैं। यहां पर सब तरह के कद के बलवान पशु भी पाये जाते हैं। हस्त कौशल तथा दस्तकारी आदि के कामों में ये लोग दक्ष हैं। गेहूं, जौ, चना आदि अन्नों के सिवाय ज्वार, बाजरा तथा बहुत प्रकार की दालें

भी यहां अधिकता से होती हैं। पशुओं के खाने योग्य और कई प्रकार के अन्न उपजते हैं।" चीनी यात्री फाहियान जो सं० ४२० में हिन्दुस्तान में आया था लिखता है:—"यहाँ की प्रजा समृद्धिशालिनी है। यहां किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता और न अफसरों की डाली हुई किसी भी प्रकार की रुकावटें हैं। जो राज्य की भूमि जोतते हैं, वे लाभ का थोड़ासा अंश राजा को कर रूप में देते हैं। राजा किसी को शारीरिक दण्ड नहीं देते हैं।"

इस बात को पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं कि सिकन्दर के हमले से लेकर मुहम्मद गौरी के हमले तक भारतवर्ष अटूट सम्पत्ति और अतुलनीय वैभव से परिपूर्ण था; अर्थात् ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व से ईसवी सन् १००० तक भारत के साम्पत्तिक सौभाग्य सूर्य की प्रकाशमय किरणें सारे संसार को प्रकाशित कर रही थीं। महमूद गजनवी ने जब भारतवर्ष पर आक्रमण किया था तब उसने इस देश को सम्पत्ति से लबालब भरा हुआ देखा था। उस समय चारों ओर अखण्ड सम्पत्ति भरी हुई थी। रिफार्म पेम्फलेट नं० ९ में लिखा है:—

"Writers both Hindu & Musalman unite in bearing testimony to the state of prosperity in which India was found at the time of the first mohammedan Conquest. They dwell with admiration on the extent and magnificience of the capital of Kanauj and of the inexhaustible riches of the temple of Somnath.

अर्थात् मुसलमानों के प्रथम आक्रमण के समय हिन्दुस्तान की जो समृद्ध अवस्था थी, उसे हिन्दू और मुसलमान दोनों लेखक एक स्वर से स्वीकार करते हैं। वे कन्नौज की राजधानी के विस्तार और वैभव की तथा सोमनाथ के मन्दिर की अपार सम्पत्ति की बड़ी प्रशंसा करते हैं।

Nicolo di conti नामक सुप्रसिद्ध यात्री जो इसवी सन् १४८० में भारतवर्ष में आया था, अपने प्रवास-वर्णन में भारतवर्ष के विषय में लिखता है:—

"गङ्गा के किनारे बड़े बड़े सुन्दर शहर बसे हुए हैं जिनके आसपास रमणीय बगीचे और फुलवारियाँ लगी हुई हैं। शहरों के बाहर नयन मनोहर लता मण्डपों की बहार है। यहाँ मानों स्वर्ण की नदियां बह रही हैं। मोती और माणिक्य अटूट भरे हुए हैं।"

Casar Frederic & Ilen Batuta नामक दो सज्जनों ने मुहम्मद् तुगलक के समय भारतवर्ष में यात्रा की थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय हिन्दुस्तान में बड़ी अशान्ति व्याप्त हो रही थी। लूटमार का बाजार गर्म था। इतने पर भी उक्त सज्जन कहते हैं कि "हिन्दुस्थान में बड़े बड़े शहर हैं जिनकी घनी और विशाल बस्ती है और यहाँ समृद्धि की बाढ़ें आ रहीं हैं।"

बादशाह बाबर जो सोलहवीं सदी के आरम्भ में हिन्दुस्तान में आया था, वह यहां की अतुलनीय सम्पत्ति, अपार सोना, चांदी, जवाहरात, प्रचुर जन संख्या, महान् व्यापार, अपूर्व कलाकौशल देखकर दङ्ग रह गया। उसने अपने "बाबरनामा" में हिन्दुस्थान की इस वैभवपूर्ण अवस्था को प्रगट किया है। Sebastion Manrique नामक एक यूरोपियन भारत प्रवासी ने सन् १६१२ में भारत में भ्रमण किया था। उसने यहां के उमदा और नफीस वस्त्रों का वर्णन किया है और लिखा है कि यहां से समस्त पूर्वी और पश्चिमी देशों को कपड़ा जाता था। इसने बङ्गाल की तत्कालीन राजधानी ढाका का वर्णन किया है और कहा है कि इसमें दो लाख मनुष्यों की बस्ती थी। यहां बनने वाली संसार प्रसिद्ध मुलायम और बारीक मलमलों का भी उसने विवरण दिया है। इसने लाहौर और मुल्तान के बीच के प्रदेश में भी यात्रा की थी। रास्ते में वह कई छोटे छोटे गांवों में ठहरा था। इसने इन ग्रामों के विषय में

लिखा है कि ये धन-धान्य पूर्ण थे। इनमें गेहूं, चावल, रूई आदि पदार्थ कसरत से भरे हुए थे। ये लोग धन-धान्य सम्पन्न थे। ग्राम बड़े सुन्दर ढंग से बसे हुये थे। सिन्ध के ताता ग्राम में भी वह कुछ दिन ठहरा था। उसने इस ग्राम को अत्यन्त समृद्धिशाली बतलाया है। इसके अतिरिक्त उसने सिन्ध के आस पास के प्रदेश की असाधारण सम्पत्ति का जो वर्णन किया है उससे चित आनंन्दित हो उठता है। वह लिखता है:—

"इस प्रदेश में बढिया रूई के वस्त्र तैयार होते हैं, और इसके लिये हजारों कर्घे (Looms) चल रहे हैं। यहाँ बढिया रेशम भी पैदा होती है। नफीस और नयन-रंजक वस्त्र भी बुने जाते हैं। इन वस्त्रों पर सोना चांदी की जरी का और सलमें सितारे का जैसा काम बढिया होता है वह एक वारगी अपूर्व है। लोग खूब धनवान हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति बड़ी सुलभता से कर के कुछ द्रव्य बचा भी लेते हैं।"

मेन्डेरखो नामक एक जर्मन यात्री जो लगभग १६३८ ई० में हिन्दुस्तान आया था, लिखता है:—

भड़ौच नगर की आबादी घनी है। यह जुलाहों से भरा हुआ है। ये जुलाहे सबसे उमदा और नफीज वस्त्र तैयार करते हैं। अहमदाबाद जाते समय रास्ते में बडौदरा (बड़ौदा) आया। वह नगर भी जुलाहों से परिपूर्ण है। यह अत्यन्त सुन्दर और समृद्धिशाली नगर है। यहां बढ़िया सूती और रेशमी वस्त्र तैयार होते हैं। खम्भात नगर सूरत से बड़ा है और यहां बहुत भारी व्यापार होता है। आगरा जो हिन्दुस्तान की राजधानी है, इस्फान नगर से दूना है। यहाँ के रास्ते बड़े ही सुन्दर और विस्तृत हैं। यह नगर बड़ी ही सुन्दरता से बसा हुआ है और व्यापार भी खूब होता है। प्रजा बहुत समृद्धिवान है।"

इस बात के सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं कि ईस्ट इण्डिया कं० के शासन काल के पहले हमारी साम्पत्तिक और औद्योगिक अवस्था बहुत चढ़ी बढी थी। संसार का कोई देश भारत के समान समृद्धि

और वैभवशाली न था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में हम विदेशों को अधिक माल बेचते थे और उनसे कम खरीदते थे; अर्थात व्यापार का पलड़ा हमेशा हमारी ओर झुका हुआ रहता था।

भारतवर्ष कई बार लूटा गया। महमूद ने तीस वर्ष के अर्से में, इस पर सत्रह बार चढ़ाइयां कीं। वह नगरकोट का मन्दिर लूट कर ७०० मन स्वर्ण मुद्रा, ७०० मन सोने चांदी के बर्तन, ४० मन विशुद्ध स्वर्ण, २००० मन विशुद्ध चांदी एवं २० मन मणि मुक्ता स्वदेश ले गया। महमूद मथुरा नगर के आक्रमण में विशुद्ध की ६ मूर्तियां और उनके शरीर पर से ११ रत्न ले गया। मथुरा नगरी इस वक्त बड़ी समृद्ध अवस्था में थी। खुद महमूद ने इस नगरी के लिये लिखा है।

"यहां सहस्रों अट्टालिकायें विश्वासी के विश्वास की तरह दृढ़ भाव से खड़ी हैं। उनमें से अधिकांश सङ्गमर्मर की बनी हुई हैं। यहां असंख्य हिन्दू-मन्दिर हैं। अपरिमित अर्थ व्यय के बिना इस नगरी की ऐसी सुन्दर अवस्था नहीं हुई है। दो सौ वर्ष के यत्न और परिश्रम के बिना ऐसी दूसरी नगरी निर्मित नहीं हो सकती।"

महमूद जब सोमनाथ के मन्दिर के पास पहुँचा, तब वहां की अतुलनीय सम्पत्ति देखकर मुग्ध हो गया। वह क्या देखता है कि इस मन्दिर की दिवारों और ५६ खम्भों पर विविध भांति के रत्न जड़े हुए हैं। सोने की जंजीर में दीपक लटक रहे हैं, जिससे मन्दिर आलोक-मय हो रहा है। चालीस मन भारी सोने की जंजीर से एक बृहत् घण्टा बज रहा है। महमूद ने इस मन्दिर को लूट कर नष्ट कर दिया। उसने जब सोने की मूर्ति तोड़ी तब उसमें से अमूल्य रत्नों का ढेर बाहर निकल पड़ा। इन रत्नों का मूल्य अपार था। महमूद ने हिन्दुस्तान से जो द्रव्य लूटा, वह इतना अपार था कि उसे देखकर वह पागल सा हो गया था। जब उसका अन्तकाल समीप आया, तब वह उस विशाल द्रव्य को

देखकर फूट फूट कर रोने लगा, और कहने लगा कि हाय ! आज इस अटूट सम्पत्ति को छोड़कर मैं इस दुनियां से कूच कर रहा हूँ ।

महमूद गज़नवी की तरह तैमूरलङ्ग और नादिरशाह आदि बादशाहों ने भी उसे लूटा । बात यह है कि दुनियां की लालची आंखें सदा से इस स्वर्णभूमि भारतवर्ष पर रहीं और एक इतिहासज्ञ के मतानुसार यहाँ की अक्षय सम्पत्ति ही यहाँ की अधोगति का कारण हुई ।

खैर, अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि इतनी सम्पत्ति लुट जाने पर भी हिन्दुस्तान की दशा वैसी दीन हीन नहीं हुई थी जैसी की अब है । महमूद, तैमूरलङ्ग, नादिरशाह आदि की लूट के बाद भी भारत समृद्ध अवस्था में था । हमने पीछे कई प्रवासियों के वर्णनों का उल्लेख किया है, उनसे यह बात और भी साफ़ मालूम होती है । एक यह बात न भूलना चाहिये कि मुसलमानों ने सारे हिन्दुस्थान को नहीं लूटा, उसके कुछ हिस्सों को लूटा । महमूद जो सम्पत्ति लूट कर ले गया था, वह विशाल होते हुए भी उस सम्पत्ति की तुलना में कुछ न थी, जो यहां रह गई थी । उसके हमले हिन्दुस्थान के केवल उत्तरी पश्चिमी प्रान्तों तक ही परिमित थे । सारा का सारा मध्यभारत, दक्षिण भारत, पूर्वीय भारत, बंगाल, आसाम आदि कई समृद्धिशाली प्रान्त उसके हमलों से बिल्कुल बचे हुए थे । इससे सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि महमूद के हमलों का साम्पत्तिक प्रभाव ज्यादातर देश के कुछ हिस्सों पर पड़ा था, समग्र देश पर नहीं । इसके बाद तेरहवीं से अठारहवीं सदी के मध्य तक, केवल दो हमले हिन्दुस्थान पर हुए थे । इसमें पहला हमला तैमूरलङ्ग का था । इसने सन् १३९८ में दिल्ली को लूटा था और कहा जाता है कि वह अपने साथ लूट का बहुत सा माल ले गया था । इसने हिन्दुस्थान के थोड़े से हिस्से पर हमला किया था । वह दिल्ली के आगे नहीं बढ़ा । यही कारण है कि उसके बाद भी हिन्दुस्तान के अधिकांश हिस्सों की साम्पत्तिक स्थिति अच्छी थी । यदि ऐसा नहीं होता तो महमूद

की लूट के बाद आये हुए विदेशी यात्री भारत की अटूट समृद्धि की क्यों प्रशंसा करते ?

दूसरा हमला सन् १७०६ में नादिरशाह का हुआ। कहा जाता है कि वह भी अपने साथ अपार सम्पति ले गया। पर वह भी दिल्ली से आगे नहीं बढ़ा था। हिन्दुस्थान का अधिकांश भाग इसके जुल्मी हमलों से बचा रहा, और यही कारण है कि इसके बाद भी हिन्दुस्थान संसार के राष्ट्रों में सबसे अधिक समृद्धिशाली बना रहा। यहाँ की औद्योगिक और व्यापारिक उन्नति सर्वोपरि थी। यह सर्वोपरि स्थिति ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य काल के आरम्भ तथा मध्य तक बनी रही, यह बात कितने ही निष्पक्ष अंग्रेज लेखकों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है।

भारत में यरोपियनों का आगमन

जैसा कि हम गत अध्याय में कह चुके हैं, संसार में भारतवर्ष स्वर्ण-भूमि कहलाता था और संसार की लालची आँखें इसकी ओर सदा से रही थीं। हमारे शास्त्रों में तो कहा है कि देवता तक इस भूमि से ललचाते हैं, फिर मनुष्य की तो बात ही क्या। सिकन्दर को इस स्वर्ण-भूमि ने आकर्षित किया और महमूद गजनवी व मुहम्मद गौरी आदि मुसलमान बादशाहों को भी इसके लालच ने ही खींचा। इसी प्रकार इस स्वर्ण-भूमि की ओर यूरोप निवासियों का भी ध्यान आकर्षित हुआ। क्योंकि सुप्रख्यात ग्रीक प्रवासी हिरोडोट्स ने हिन्दुस्थान को सोने की खान बतलाया था। हिरोडोट्स के ग्रन्थ में कई ऐसे प्रमाण हैं जिनसे भारतवर्ष व ग्रीस का व्यापारिक सम्बन्ध सिद्ध होता है।

यूनानियों के बाद रोमन लोगों का उदय हुआ। हिन्दुस्थान के साथ इनका भी, बहुत बड़ा व्यापारिक सम्बन्ध था। रेशमी कपड़े, विविध प्रकार के जवाहिरात, मोती, सुगन्धित द्रव्य, हाथीदांत आदि कई पदार्थ हिन्दुस्थान से रोम जाते थे। यहां यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि उस समय हिन्दुस्थान से युरोप को कच्चा माल नहीं जाता था। यहां से विलास सामग्री का पक्का माल जाता था मेमसेन अपने, "Provinces of the Roman Empire" में लिखता है कि हिन्दुस्थान से रोम को प्रति साल ४०००००० पौंड की विलास सामग्री जाती थी।

रोमन लोगों का पतन होने पर व्हेनिशियन लोग वैभव के शिखर पर चढ़े। इनका लक्ष्य खास तौर से व्यापार की ओर था। अभी तक

हिन्दुस्थान के साथ युरोप का जो सम्बन्ध होता था, वह बड़े कठिन मार्गों द्वारा होता था। इन मार्गों में बहुत अड़चनें पड़ती थीं। खर्च भी बहुत पड़ता था। सुप्रसिद्ध पोर्चुगीज़ व्हासको-डे-गामा ने सन् १४९९ में हिन्दुस्थान के लिये एक नया मार्ग ढूँढ निकाला, तब से हिन्दुस्थान और युरोप का आवागमन पथ किञ्चित् सरल होगया। १६ वीं सदी में हिन्दुस्थान में पोर्चुगीज़ों का, १७ वीं सदी में डच लोगों का और १८ वीं सदी में फ्रेंच लोगों का वर्चस्व हो गया। इसके बाद अंग्रेजों की ध्वजा फहराने लगी।

इसी नये मार्ग का पता चलते ही पोर्चुगीज़ लोगों के साथ साथ ईसाई धर्म का भी खुले तौर से प्रवेश होने लगा। इसके पहले भी थोड़ा सा ईसाई धर्म का सिलसिला शुरू हो गया था। ईसवी सन् ६९ में सेंट थामस नाम के एक ईसाई पादरी ने मद्रास के पास शरीर त्याग किया था। इसके पहले कितने ही वर्ष तक वह मलावार व कारोमण्डल के किनारों पर ईसाई धर्म का उपदेश देता फिरता था। ईसवी सन् १८९ में टयाटीनस नामक ईसाई पादरी हिन्दुस्थान में आया था। ईसवी सन् की तीसरी सदी के अन्त में मलावार के किनारे ईसाई धर्म ने अच्छा प्रभाव जमा लिया था। सन् ४८६ में बेबिलोन से नेस्टोरियन नामक ईसाई पादरी मलावार के किनारे पर उतरा था, और वहाँ उसने अपना धर्म-प्रचार-कार्य शुरू कर दिया था। आठवीं सदी में आर्मेनियन् मिशनरी सेंट थामस ने मलावार के किनारे पर ईसाई धर्म का गिर्जा बनाया था। हिन्दुस्थान में यही सबसे पहला गिर्जा है। सन् ८८३ में इङ्गलेण्ड के राजा आलफ्रेड ने अपने दो धार्मिक प्रतिनिधि सेंट थामस के कब्रिस्तान की यात्रा को भेजे थे।

धर्म-प्रचार और व्यापार-वृद्धि इन दो उद्देशों को सामने रखकर पोर्चुगीज़ लोग हिन्दुस्थान में आये थे। यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पहला उद्देश दूसरे का पृष्ठपोषक नहीं था। वह उल्टा उसका

विधानक था। वास्कोडे-गामा पहले पहल कालीकट में आकर दाखिल हुआ। इस वक्त कालीकट नगर अत्यन्त समृद्धिशाली अवस्था में था। का राजा ज़ामारिन कहलाता था। उस देश का व्यापार लगभग छः सौ वर्ष से अरब के मुसलमानों के हाथ में था। वासको-डे गामा ने उस राजा को किसी तरह प्रसन्न कर लिया। जब गामा वापस पोर्च्युगाल के लिये रवाना होने लगा, तब उक्त राजा ने पोर्च्युगाल राजा को इस आशय का पत्र लिखा:—

"आपके घराने के सरदार वास्को-डे गामा का हमारे राज्य में शुभागमन होने से हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। हमारे राज्य में दालचीनी, लौंग, सोंठ, कालीमिर्च और जवाहिरात आदि की खूब समृद्धि है। हमारी इच्छा है कि हमें इन चीजों के बदले में आपकी ओर से सोना चांदी मिले।"

इस प्रकार पोर्च्युगीज़ों को जाने का जलमार्ग मिल जाने के कारण संसार के इतिहास में बड़ी भारी क्रान्ति हो गई। युरोप में उस समय पोर्च्युगीज़ लोगों का महत्व बहुत बढ़ गया। व्हेनिस, जिनोआ आदि राष्ट्रों का व्यापार डूब गया और वे राष्ट्र उदय होने लगे, जो नौकानयन विद्या में कुशल थे।

सन् १५०२ में पोर्च्युगाल से अलबुकर्क नाम का मनुष्य हिन्दुस्थान में आया। जहां वास्को-डे गामा केवल व्यापार-वृद्धि के लिये आया था, वहां अलबुकर्क राज्यस्थापना की कल्पना लिये हुए आया। सन् १५१०में उसने गोआ पर अधिकार कर लिया। सन् १५१५ में उसका गोआ ही में शरीरान्त हो गया। सन् १५२४ में वासको-डे गामा तीसरी मर्तबा हिन्दुस्थान को आया और सन् १५२७ में उसका कोचीन मुकाम पर देहान्त हो गया। सन् १५०० से लगाकर सन् १६०० तक पोर्च्युगीज़ों की खूब चहल पहल रही। इस के बाद इन की उतरती कला लगी। युरोप में पोर्च्युगीज़ सत्ता स्पेन की राज्यसत्ता के ताबे में

चली गई। आगे जाकर सन् १६४० में पोर्च्युगीज स्वतन्त्र हो गये। पर इस अर्से में डच लोगों ने हिन्दुस्थान में पोर्च्युगीज लोगों के व्यापार पर अधिकार कर लिया। हिन्दुस्थान में पोर्च्युगीज़ों के पतन के और भी कई कारण हैं। उन्होंने यहां अनेक राक्षसी और निष्ठुर कार्य किये। वे हद दर्जे के विलास प्रिय होगये। उनके राज्य में धर्म-छल बहुत बढ़ गया। उन्होंने यहां की स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार किये। इससे वे लोगों की निगाह में बहुत गिर गये और उनके लिये लोगों के मन में बुरे भाव पैदा हो गये। पोर्च्युगीज़ों के बाद हिन्दुस्थान में डच लोगों का सितारा चमका।

अंग्रेजों की तरह डच लोग भी हिन्दुस्थान में आने के लिये उत्तर की ओर से मार्ग ढूंढ रहे थे पर उसमें उन्हें सफलता नहीं हुई। अतएव उन्होंने पोर्च्युगीज़ों की शोध से लाभ उठाना चाहा। यह कहने की आवश्कता नहीं है कि हिन्दुस्थान में लगातार सौ वर्ष तक व्यापार करने के कारण पोर्च्युगीज़ों का प्रधान नगर लिस्बन शहर में लाये हुये माल को युरोप के बाजारों में बेचने के लिये पोर्च्युगीज़ लोगों को डच लोगों की सहायता लेनी पड़ी। डच जहाज लिस्बन से माल लेजाकर सारे युरोप में फैलाते थे। इसके बाद डच लोगों का मोर्चा भी हिन्दुस्थान की तरफ फिरा। लिन्सकोटेनस नाम का एक डच व्यापारी लिस्बन शहर में थोड़े समय तक रह कर वहां से वह पोर्च्युगीज़ लोगों के साथ हिन्दुस्थान के गोआ नगर को आया। वहां तेरह वर्ष रह कर उसने व्यापार सम्बन्धी बहुतसी जानकारी प्राप्त की। सन् १५९२ में वह अपने देश को वापिस लौटा और सन् १५६६ में उसने हिन्दुस्थान के सम्बन्ध में प्राप्त की हुई जानकारी को प्रकाशित कर दिया। इसके बाद हालेण्ड की राजधानी एम्सटर्डम में व्यापारियों की एक सभा हुई और उसमें हिन्दुस्थान में व्यापार के अर्थ सफर करने का निश्चय हुआ। इस निश्चय के अनुसार कार्नेलियस होमन नामक एक व्यापारी की आधीनता में सन् १५६५ में

चार जहाज अफ्रीका के रास्ते से हिन्दुस्थान आये। वे ढाई वर्षों में वापस गये। फिर चार पांच वर्षों में डच लोगों ने हिन्दुस्थान की ओर पन्द्रह यात्राएँ की। उन्होंने हिन्दुस्थान में व्यापार करने के अर्थ कई कम्पनियां भी सङ्गठित कीं। पीछे जाकर इन सब कम्पनियों का एकीकरण कर डच पार्लियामेंट ने सन् १६०२ में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी नामक एक बृहत् कम्पनी स्थापित की।

समग्र सतरहवीं सदी में डच लोगों का पूर्व की ओर की व्यापार पर आधिपत्य रहा। इसका कारण उनका समुद्र पर अबाधित अधिकार था। यहां यह बात कह देना आवश्यक है कि डच लोगों का उद्देश केवल व्यापार-वृद्धि था। पोर्च्युगीज़ों की तरह यहां का व्यापार डुबोकर ईसाई धर्म की वृद्धि करना और नये प्रदेश जीत कर अपना राज्य बढ़ाना आदि उद्देश उन्होंने अपने सामने नहीं रक्खे। किसी भी प्रदेश की राजकीय अन्तर्व्यवस्था में उन्होंने हाथ नहीं डाला।

सन् १६५२ में उन्होंने मद्रास के निकटवर्ती पालकालु स्थान में अपनी बस्ती (settlement) बसाई। उसके छः वर्ष बाद सन् १६५८ में उन्होंने सीलोन का जफणापट्टण किला पोर्च्युगीज़ों से हस्तगत किया। सन् १६६४ में उन्होंने मलाबार किनारे के पोर्च्युगीज़ लोगों के ताबे के सब स्थानों पर अधिकार कर लिया। सन् १६६९ में उन्होंने सेंट थामी स्थान से पोर्च्युगीज़ लोगों को निकाल दिया। इस प्रकार डच लोगों की तूती कुछ समय तक हिन्दुस्थान में बजने लगी, पर उनके वैभव को क्षय करने वाली एक दूसरी सत्ता का उदय हो रहा था और वह सत्ता अँग्रेजों की थी।

सन् १६२३ में डच लोगों ने अंबोयाना स्थान में अँग्रेजों को निर्दयता से कत्ल किया। बस, इसी समय से हिन्दुस्थान में ब्रिटिश सत्ता से बीज रूप सूत्रपात हुआ। डच लोगों की सँकीर्ण व्यापारिक नीति के कारण उनकी सत्ता डगमगाने लगी। निर्दयता और पाशविकता में डच लोगों ने

पोर्च्युगीज़ों को भी नीचा दिखला दिया। वे स्थानीय लोगों की सहानुभूति से हाथ धो बैठे। हिन्दुस्थान के लोग उनसे घृणा करने लगे। सन् १७५८ में क्लाइव ने चिकसुरा में डच लोगों को भारी शिकस्त दी। उन्हें पूर्ण रूप से पादाक्रांत कर दिया। डचों के बाद अंग्रेजों और फ्रेंचों का नम्बर आया। इन दोनों में खूब ठनी। आखिर फ्रेंचों का नाश होकर अंग्रेजों की सत्ता का किस प्रकार उदय हुआ, इस पर विशेष प्रकाश अगले अध्याय में डाला जायगा।

भारत में अंगरेज कब और कैसे आये

हिन्दुस्थान में अंग्रेज पहले पहल कब आये, इस बात का अन्वेषण करने से मालूम होता है कि ९ वीं सदी में इङ्गलैण्ड के राजा आलफ्रेड का भेजा हुआ प्रतिनिधि यहां सबके पहले आया। इसके बाद चारसौ पांचसौ वर्ष बाद चौदहवीं सदी में सर जार्ज मेडिव्हेल नाम का अंग्रेज आया। ऐतिहासिक दृष्टि से इन दोनों अंग्रेजों के आगमन में अभी थोड़ा बहुत सन्देह प्रकट किया जाता है, पर यह बात सच है कि १३९९ में मेडिव्हेल ने हिन्दुस्थान के प्रवास के सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इंगलैंण्ड में सबसे पहले यही पुस्तक छपी थी। दूसरे शब्दों में यह कह लीजिये कि इंगलेण्ड में जो सब से पहली बार पुस्तक छपी, वह हिन्दुस्थान के सम्बन्ध में थी। अगर उक्त दोनों अंग्रेजों की भारत यात्रा ऐतिहासक दृष्टि से सच भी हो तो भी वह विशेष महत्त्व नहीं रखती, क्योंकि वे किसी खास उद्देश को लेकर नहीं आये थे। वे देश देखकर वापस चले गये। आधुनिक काल में जो सब से पहला अंग्रेज आया और यहां बस्ती करके रहा, उसका नाम फादर स्टीफन था। सन् १५६९ के आक्टोबर मास में स्टीफन ईसाई धर्म का प्रचार करते हुए व्यापार के अर्थ गोआ गया। उसकी आयु वहीं पुरी हो गई। इसने हिन्दुस्थान का अत्यन्त मनोरंजक वृत्तान्त लिख कर विलायत भेजा। मि० स्टीफन ने "ख्रिस्त पुराण" नाम का कोंकण-मराठी भाषा में ईसाई धर्म पर एक मनोरंजक ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ रोमन लिपि में लिखा गया है। इसने पोर्च्युगीज भाषा में मराठी-कोंकणी भाषा का एक व्याकरण भी लिखा था। सन् १५८६ में राल्फ फिंच नामक एक अंग्रेज

खुश्की के मार्ग से हिन्दुस्थान आने के लिये रवाना हुआ । ईरान के आखात पर पहुँचने पर पोर्चुगीज़ लोगों ने उसे कैद कर गोआ भेज दिया । जब यह हिन्दुस्थान से विलायत को वापस पहुँचा तब उसने यहाँ के लोगों के चरित्र और सम्पत्ति के विषय में अत्यन्त मनोरंजक वृत्तान्त प्रकाशित किया । इससे वहां के लोगों के चित्त में हिन्दुस्थान के लिये बड़ी उत्सुकता उत्पन्न हो गई । इसके तीन वर्ष बाद यानी सन् १५८६ में टामस कव्हेंडिश नामक अंग्रेज पृथ्वी का पर्य्यटन करते करते हिंदुस्थान आ पहुँचा । उसने यहां से बहुत जानकारी प्राप्त की । जब वह वापस इंगलेण्ड पहुँचा तब उसने भी हिन्दुस्थान की अतुलनीय सम्पत्ति और अलौकिक वैभव के मनोरंजक वृत्तान्त छपवाये । इससे हिन्दुस्थान के लिये अंग्रेजों की दिलचस्पी बहुत बढ़ गई । अब हम ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निर्माण होने का और अंग्रेजों की उन यात्राओं का वर्णन लिखते हैं जो शुरू शुरू में हिन्दुस्थान में आने के लिये की गईं थीं ।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का संगठन

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का नाम हमारे पाठकों ने अवश्य ही सुना होगा । इस कम्पनी के प्रतिनिधि या गुमाश्ते व्यापार के लिये सात समुद्र पार इंगलेण्ड से यहां आये और उन्होंने अपनी कूटनीति से धीरे २ अपना विशाल साम्राज्य संगठित कर लिया । आज हम अपने पाठकों को इसी कम्पनी का शुरू शुरू का कच्चा चिट्ठा सुनाते हैं । पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि जिस कम्पनी ने एक महान् साम्राज्य की नींव डाली, उसका सूत्रपात कितने छोटे पाये पर हुआ था ।

सतरहवीं सदी में इंगलेण्ड की महारानी एलिजाबेथ राज्य कर रही थीं । इन्होंने अपने प्रजा-प्रेम के कारण साधारण जनता की अच्छी सहानुभूति प्राप्त करली थी । महारानी मेरी के बाद महारानी एलिजाबेथ

इंगलेण्ड के राज्य शासन पर जब आसीन हुई थीं, उस समय उस देश में बड़ी अव्यवस्था फैली हुई थी। राज्यकोष खाली पड़ा हुआ था। देश दिवालिया हो रहा था। उद्योग धन्धों की अधोगति हो रही थी। फ्रांस से लड़ाई झगड़ा शुरू था। इस वक्त इंगलेण्ड की बड़ी शोचनीय अवस्था हो रही थी। पैसे की अज़हद तंगी थी। महारानी एलिज़ाबेथ इस दशा का सुधार करना चाहती थी। वह एक अच्छे विचारों की महिला थी। इंगलेण्ड के इतिहास में उनका नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। उनके वक्त में इंगलेण्ड में कई व्यापारी कम्पनियों का संगठन हुआ। उनसे हमें वास्ता नहीं। हम ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संगठन पर ही दो शब्द लिखना चाहते हैं। हक समिति (Haq Society.) द्वारा प्रकाशित "Lancaster's voyages" नामक ग्रन्थ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के विषय में जो कुछ लिखा है उसका आशय यह है:—

"सन् १६०७ में लंदन नगर के कुछ व्यापारियों ने मिल कर ७२००० पौंड की पूँजी से हिन्दुस्थान से व्यापार करने के लिये एक जॉइन्ट स्टाक कम्पनी स्थापित्त की। इस कम्पनी का उद्देश भारत से (Spices) मसाले और दूसरे पदार्थ लाना था। इन व्यापारियों ने ड्रेगोन, हेक्टर और एसेंसन आदि नाम के बड़े २ जहाज खरीदे। इन्होंने तत्कालीन महारानी एलिज़ाबेथ से हिन्दुस्थान में व्यापार करने के लिये इजाज़त चाही। श्रीमती महारानी ने उन्हें प्रसन्नता के साथ इजाज़त का परवाना दे दिया। इतना ही नहीं भारत के तत्कालीन सम्राट् के नाम भी एक सिफ़ारिशी पत्र लिख दिया।"

हां, यहां एक बात ऐतिहासिक महत्व की है, जिसे न भूलना चाहिये। महारानानी एलिज़ाबेथ को यह परवाना Charter देते समय बड़ा विचार पड़ा। उन्होंने सोचा कि भारतवर्ष में व्यापार करने के

- 10104

सम्पूर्ण अधिकार स्पेन के राजा❀ को प्राप्त हैं और स्पेन से सुलह करने का मौका आ रहा है, ऐसी दशा में हम लोगों को भारतवर्ष में व्यापार करने की इजाज़त दे देना मानो स्पेन के साथ शत्रुता करना है। इस विचार ने महारानी एलिजावेथ को बड़े असमंजस में डाल दिया। उन्होंने अपनी इस स्थिति को प्रकट भी कर दिया। इस पर इंगलेण्ड के कुछ व्यापारियों ने महारानी की सेवा में एक प्रार्थना–पत्र भेजा, जिसका आशय यह था;—"हमारी समझ में नहीं आता कि भारत जैसे समृद्धिशाली और धनवान प्रदेश में हमें व्यापार करने की इजाज़त देने में क्यों हिचकिचाहट की जाती है। हिन्दुस्थान में कई प्रदेश ऐसे हैं जो स्पेन या पोर्च्युगाल के व्यापारिक अधिकार सीमा के बाहर हैं। यहां व्यापार करने में कौन सी हानि है।" इसके अतिरिक्त इंगलेण्ड के व्यापारियों ने हिन्दुस्थान में कई देश, प्रांत और बन्दर ऐसे बतलाये जिनसे स्पेनिश या पोर्च्युगाल लोगों का कोई सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने कहा कि हिन्दुस्थान के अमुक अमुक प्रदेशों में पोर्च्युगाल या स्पेनिश लोगों को कोई विशेष हक प्राप्त नहीं हैं +। हमें एक विशाल प्रदेश में व्यापार करने से क्यों रोका जाता है।" एलिजावेथ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधियों के लिये सम्राट् अकबर को निम्न लिखित आशय का पत्र लिखाः—

❀ हम ऊपर लिख चुके हैं कि एक सदी तक हिन्दुस्थान में पोर्च्युगीज़ों की बड़ी व्यापारिक गति विधि रही और जब युरोप में पोर्च्युगाल स्पेन के ताबे में चला गया तब जो व्यापारिक हक पोर्च्युगाल को प्राप्त थे प्राप्त हो गये।

+ The merchants, however, after enumerating the ports and territories which had been in any way under the influence of the fcrmer Government of Portugal, gave a long list of countries to which the Spaniards could make no pretensions.

"सर्वशक्तिमान् प्रभु ने संसार में उत्तम वस्तुएं उत्पन्न कर सर्वत्र सुव्यवस्था स्थापित कर रखी है। उस सर्वशक्तिमान् का यह संकेत दिखलाई देता है कि सब राष्ट्र मिल कर उस प्रभु की उदारता का एक सा फायदा उठावें। आप पर-राष्ट्रीय लोगों का अपने देश में अच्छा सत्कार करते हैं। अतएव हमें व्यापारियों को आपके राज्य में जाने की इजाज़त देते हुए प्रसन्नता होती है। जब आप इनसे मिलेंगे तब आपको मालूम होगा कि ये व्यवहार में सभ्य हैं, आपको इनसे कभी किसी प्रकार की अप्रसन्नता न होगी। इनके पहले हिन्दुस्थान में स्पेनिश व पोर्च्युगीज़ व्यापारी इधर का माल आपके देश में ले जा रहे हैं। ये लोग व्यापार के कार्य्य में हमारे लोगों को तथा अन्य लोगों को नाहक़ तङ्ग करते हैं। सच पूछिये तो वे लोग (स्पेनिश और पोर्च्युगीज़) केवल व्यापार ही के उद्देश को लेकर हिन्दुस्थान नहीं गये हैं। वे लोग अपने आपको वहां का (हिन्दुस्थान का) बादशाह समझते हैं। वे यहां के (युरोप के) लोगों को साफ़ कहते हैं कि वहां (हिन्दुस्थान) के लोग हमारी प्रजा हैं। हमारे लोग व्यापार के सौम्य उद्देश को लेते हुए आपके देश में आ रहे हैं। हमें आशा है कि आप कृपा कर उन्हें अपने देश में आने देंगे, और आप हमारे देश के साथ व्यापार और स्नेह की वृद्धि करेंगे। हमारा पत्र लेकर जो गृहस्थ आप के पास आवेंगे और आपके साथ जो कुछ समझौता करेंगे उसे हम ईमानदारी से पालन करेंगे और आप उनके साथ जो उपकार करेंगे उसका बदला हम बड़ी प्रसन्नता से देंगे।"

---

and defied them to show why they should bar Her majesty's subjects from the use of vast, wide and open ocean, sea and of access to the territories of so many free princes and kings in whose dominions, they have no more authority than we.

अब हम यह दिखलाना चाहते हैं, कि मुग़ल सम्राट् के दरबार में अंग्रेजों का कैसे प्रवेश हुआ और उन्होंने किस प्रकार से कौन कौन-सी सुविधाएं (Concessions) प्राप्त कीं ! "Purchas's Pilgrims' नामक भ्रमण-वृत्तान्त में लिखा है:—

"सबसे पहला अंग्रेज जिसने महान् मुग़ल सम्राट् से अपने देश के लिये हक़ प्राप्त किये, वह जान मिल्डेनहाल था। वह सन् १६०० में लंडन से हिन्दुस्थान के लिये रवाना हुआ। वह सन् १६०३ में आगरे पहुँचा और मुग़ल दरबार में उपस्थित हुआ। सम्राट् ने उसका और उसके द्वारा लाये हुए पत्रों का बड़ा सत्कार किया। उसने सम्राट् को उन्नीस उम्दा घोड़े और जवाहिरात नज़र किये। इटालियन पादरियों के षड्यन्त्रों से उसे बहुत तङ्ग होना पड़ा था। उसे यहां की भाषा का ज्ञान नहीं था, जिससे उसे अपने कार्य्य के मार्ग को साफ़ करने में बड़ी अड़चनें पड़ीं। अतएव उसने फ़ारसी भाषा का अभ्यास करना शुरू किया और खूब परिश्रम कर उस पर ख़ासा अधिकार प्राप्त कर लिया। इसके बाद वह बादशाह को अपने भाव अच्छी तरह समझा सका और उसने अपने संतोष के लायक बादशाह से फ़र्मान हासिल कर लिये। दुःख है कि इन फ़र्मानों का इस वक्त पता नहीं लगता।

सन् १६११ में मि० थॉम्स बेस्ट + इंग्लैण्ड के तत्कालीन राजा जेम्स के सिफ़ारिशी पत्रों सहित सम्राट् जहांगीर की सेवा में उपस्थित हुआ। सन् १६१२ को २१ वीं आक्टोबर को उसने अहमदाबाद और सूरत के शासकों से अपनी व्यापार सम्बन्धी कुछ शर्तें तय कीं। पीछे जाकर मुग़ल सम्राट् से भी इन शर्तों को मंजूर करवा कर उनसे निम्न लिखित आशय का फ़रमान प्राप्त कर लिया:—

"मुग़ल सम्राट् की प्रजा और अंग्रेज़ों के बीच निरन्तर शान्ति रहे। इनका आपसी व्यापार पूर्ण रूप से खुला रहे। सब प्रकार के अंग्रेज़ी

+ See Purchar's Pilgrims Book II Page 456

माल पर ३॥) सैंकड़ा सायर महसूल लिया जावे। इंग्लेण्ड के राजा के लिये यह बात न्याय-सङ्गत होगी कि वे अपना राजदूत मुग़ल दरबार में रखें, जिससे कई पेचीदा सवालों का आसानी से निपटारा हो सके !"

सन् १६०९ में केप्टन हाकिन्स नामक एक अंग्रेज दिल्ली के बादशाह से मिलने गया। अंग्रेज कम्पनी के लिये सूरत में व्यापार करने की इजाज़त इसने प्राप्त कर ली। सन् १६११ में केप्टन हिपान नामक एक अंग्रेज ने कारोमंडल के किनारे पर मछलीपट्टन के पास पेटापुल्ली में एक कोठी कायम की। हाकिन्स के बाद और कई अंग्रेज़ मुग़ल दरबार में आये थे। सन् १६११ व १६१४ में पोर्च्युगीज़ और अंग्रेज़ जहाजी बेड़ों के बीच दो दो हाथ हुए। इसमें अंग्रेजों को सफलता हुई। सन् १६१६ में केप्टन कीलिंग नामक एक अंग्रेज़ कालीकत पहुँचा और उसने वहां सामूरी से व्यापारी सुलह की। इसी समय केप्टन डाउटन नामक अंग्रेज व्यापारी आया। उसने सूरत के व्यापारियों की सहायता से कपास, कपड़ा नील आदि के व्यापार बढ़ाने की योजना की। सन् १६१४ में इंगलैंड के राजा जेम्स ने सर थामस रो को राजदूत की हैसियत से सम्राट् जहांगीर के पास नजराना और निम्न लिखित आशय का पत्र देकर भेजा।

"श्रीमान् ! आपने शाही फर्मान देकर हमारे प्रति, हमारी प्रजा के प्रति, इङ्गलिश राष्ट्र के प्रति, जो कृपा प्रदर्शित की है, उसे हम स्मरण रखेंगे। अब हमारी प्रजा आपके राज्य में शान्ति और अमन चैन से और बिना किसी रुकावट के व्यापार कर सकेगी। हम आपके दरबार में अपने राजदूत सर थामस रो को भेजते हैं। हमने इन्हें सूचना करदी है कि वे ऐसा कार्य्य करें जिनसे दोनों राष्ट्रों की प्रजा का हित और कल्याण साधन हो। आशा है, आप इन पर कृपा रखेंगे। हम आपके प्रति जो सद्भाव और प्रीति रखते हैं, उसे बाह्य रूप में प्रकट करने के लिये आपकी सेवा में नजराना भेजते हैं। यह नजराना हमारे राजदूत आपको नजर करेंगे। दयामय ईश्वर आपको प्रसन्न रखें।"

ईसवी सन् १६१६ की १० वीं जनवरी को पहले पहल सर थॉमस रो अजमेर मुकाम पर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। इङ्गलेण्ड सम्राट् के पत्र के उत्तर में बादशाह जहांगीर ने राजा जेम्स को जो पत्र लिखा, उसका आशय यह है:—

"आपने अपने व्यापारियों के लिये मेरे पास जो पत्र भेजा, वह पहुँचा। आपने मेरे प्रति जो कोमल प्रेम (tender love) प्रकट किया है, उससे मुझे बहुत सन्तोष हुआ है। मैंने आपको अब तक पत्र नहीं लिखा, इसके लिये मुझे उम्मीद है कि आप बुरा न मानेंगे। मैं आपको यह पत्र अपना प्रेम ताजा करने के लिये भेज रहा हूँ। मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि मैंने अपने सब प्रान्तों में इस आशय का फर्मान भेज दिये हैं कि अगर कोई अंग्रेजी जहाज़ या व्यापारी मेरे राज्य के किसी बन्दर में पहुँचे तो उन्हें स्वतन्त्रता पूर्वक व्यापार करने की इजाज़त दी जावे। दुःख सुख के समय में उन्हें योग्य सहायता दी जावे। उनके प्रति किसी प्रकार की अशिष्टता न दिखलाई जावे। वे मेरी प्रजा की तरह स्वतन्त्रता-पूर्वक रह सकें। आपने पहले और अब अपने प्रेम-पुरस्कार के रूप में जो नजर भेजी है, उसे मैंने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया है। आपके व्यापारियों के लिये मैंने साफ़ साफ़ यह आज्ञा प्रकाशित कर दी है कि उनकी ख़रीद फ़रोख्त, माल की आमद रफ्त आदि किसी काम में कोई विघ्न उपस्थित न किया जावे। अगर मेरे देश में कोई मनुष्य ईश्वर से न डर कर एवं राजा का हुक्म न मान कर—धर्म हीन होकर—मित्रता के इस संघ को (League of friendship) तोड़ेगा तो मैं अपने पुत्र सुलतान कोरम को भेजकर उसे कटवा डालूँगा। हमारे पारस्परिक प्रेम की वृद्धि में कोई बाधा उपस्थित न हो—यह हमारी इच्छा है।"

दिल्ली के तत्कालीन सम्राट् ने इस प्रकार के फ़र्मान अंग्रेज़ व्यापारियों के लिये जारी किये थे। पाठक देख सकते हैं कि हिन्दुस्थान ने सात

समुद्र पार के विदेशियों के साथ कैसा अच्छा सुलूक किया था। आज कल अंग्रेज़ी उपनिवेशों में हमारे हिन्दुस्थानियों के साथ जैसा सुलूक किया जाता है, उसका मुक़ाबला उस सुलूक से कीजिये, जो सम्राट् अकबर और सम्राट् जहांगीर ने अंग्रेज़ व्यापारियों के साथ किया था। भारत का इतिहास इस प्रकार के आदर्शों से भरा पड़ा है। अस्तु

मुग़ल सरकार की इजाज़त से अंग्रेज़ों ने हुगली में उसी स्थान पर अपनी फेक्टरी खोली, जहां कि सन् १६२५ में डच लोगों ने अपनी बस्ती कायम की थी। बंगाल के अंग्रेज़ फेक्टरी वाले चीनी पट्टम या मद्रास के फेक्टरों के आधीन थे। हुगली बंदर उस समय व्यापारिक गतिविधि का मानों केन्द्रस्थल हो रहा था। वहां बहुत से विदेशी जमा हो रहे थे। पर इस वक्त बंगाल में किसी विदेशी को क़िला बनाने की इजाज़त नहीं थी। उन्हें अपनी आत्मरक्षा के लिये स्थानीय सरकार के आधीन रहना पड़ता था।

पर, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, अंग्रेज़ व्यापारियों को बादशाही फर्मानों से व्यापार करने की कई सुभीताएं और रियायतें प्रदान की गई थीं। यह बात यहां के निवासियों को अच्छी न लगीं। वे अंग्रेज़ों से स्वाभाविक रीति ही से द्वेष करने लगे। अंग्रेज़ों से यह बातें खुल्लमखुल्ला कही जाने लगी कि अपनी स्वाधीनता की भावनाओं के अनुसार यहां आचरण नहीं कर सकते। इसके सिवा मुग़ल शासकों को (Mughul Governors) भी अंग्रेज़ों से निराशा होने लगी। क्योंकि अंग्रेज़ उनकी हुकूमत के सामने उतना अधिक सिर झुकाना पसन्द नहीं करते थे, जितना यहां के देशी लोग करते थे +। इससे कई प्रकार की गड़बड़ पैदा हो गई थी।

इन झगड़ों ने कम्पनी के व्यापार को निःसन्देह धक्का पहुँचाया। ये झगड़े बढ़ते ही चले गये। मलाबार किनारे पर तो इन झगड़ों ने और

+ See Considerations on Indian-Affairs Page 58.

भी उग्ररूप धारण कर लिया। सन् १६५८ में तो कम्पनी ने विचार किया कि या तो यहां से हट जाना चाहिये या नवाब के अत्याचारों का ज़ोर और शक्ति से मुक़ाबला या प्रतिरोध करना चाहिये। नवाब के ज़ुल्मों को बम्बई के तत्कालीन गवर्नर ने + बढ़ा चढ़ा कर बतलाया था। बस, कम्पनी के लोग

एक नीच कार्य

पर उतर पड़े। उन्हें अपनी जलशक्ति का घमण्ड था, उन्होंने देखा था कि जलशक्ति से पोर्च्युगीज़ों ने सफलता प्राप्त की है, हमें भी सफलता होगी। अब कम्पनी ने अपनी शक्ति (force) लेकर सूरत को लूटमार करने और सब हिन्दुस्थानी जहाज़ों को नष्ट करने के लिये अपना जहाज़ी बेड़ा भेजा। इसी प्रकार एक दूसरा बेड़ा इसी लूटमार के नीच कार्य्य के लिये बंगाल भेजा गया। इसका नतीजा क्या हुआ, इसे पाठक बड़ी दिलचस्पी से पढ़ेंगे। मलाबार से जो जहाज़ी बेड़ा भेजा गया था, उसने बहुत कुछ लूट खसोट की, डाकेजनी की। बम्बई के तत्कालीन गवर्नर ने इस बेड़े से ऐसे ऐसे नीच कार्य्य करवाये, जिन से आज भी अंग्रेजों का मुंह शर्म से नीचा होना चाहिये। जो काम डाकू, बदमाश और उचक्के करते हैं, वैसे काम इस बेड़े ने किये। पर इसका नतीजा उसी वक्त कम्पनी के लिये बड़ी शर्म पैदा करने वाला हुआ। इस कार्य्य में उनका बहुत खर्च हुआ इसके अतिरिक्त मुग़ल सम्राट् से कम्पनी को

+ प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता हेमिलटन ने अपने "Account of East Indies" में इस गवर्नर के लिये लिखा है— "इस गवर्नर का नाम मि० चाइल्ड था। इसने यहां के लोगों पर बड़े बड़े जुल्म, अत्याचार और अन्याय किये। इसने लूटमार मचवाई। इसने कम्पनी को व्यर्थ के लिये लड़ाई में लगा दिया, जिसका अन्त कम्पनी के लिये बहुत बुरा और अपमानजनक हुआ।

जो अधिकार और रिआयतें प्राप्त हुई थी, वे सब जप्त कर ली गई। हिन्दुस्थानियों की निगाह में, उस वक्त कम्पनी की इज्जत बहुत गिर गई। उसकी साख (credit) को बड़ा धक्का पहुँचा। इसके अतिरिक्त कम्पनी के संचालकों की बुरी दशा हुई? एलेक्जेन्डर हेमिल्टन ने अपने "Account of the Eastern Indies" में लिखा है "मुग़ल बादशाह के सूरत स्थित गवर्नर याकूब ने बम्बई पर हमला कर उसे अंग्रेजों से छीन लिया, और उसने अंग्रेज फैक्टरी वालों को कैद कर लिया। इतनाही नहीं उसने इनकी बड़ी दुर्दशा की। उसने

गले और हाथ पैरों में लोहे की जंजीरें

डाल कर इन्हें आम सड़कों पर निकाला। इस समय इन अंग्रेज फेक्टरीवालों को अपने पापों का पूरा पूरा प्रायश्चित मिला। इसके बाद इन्होंने तत्कालीन भारत सम्राट औरङ्गजेब से क्षमा की भिक्षा मांगी। उन्होंने बड़ी दीनता और नम्रता के साथ सम्राट से क्षमा-याचना की। इस क्षमा-याचना के लिये इन्होंने मि० जार्ज वेल्डन और एब्राहम नेव्हेर नामक दो अंग्रेजों को सम्राट की सेवा में भेजा। ये दोनों सम्राट की सेवा में उपस्थित किये गये। पाठक! इस समय ये दोनों अंग्रेज हाथ जोड़े हुए क्षमा की याचना कर रहे थे! इन दोनों के हाथ दुपट्टे से बंधे हुए थे। सम्राट ने इन्हें धिक्कारा! इनकी खूब लानतमलामत की!! इन लोगों ने अपना अपराध स्वीकार किया। दया के लिए गिड़गिड़ाने लगे। इन्होंने प्रार्थना की कि श्रीमान्! आप हमें अपने पूर्व अधिकारों को फिर से प्रदान कीजिये और बम्बई से अपनी फौजें हटा लेने की दया कीजिये +। सम्राट औरङ्गजेब का हृदय इनकी करुण-ध्वनि से पिघल गया। उसने दया पूर्वक इन्हें क्षमा कर दिया। केवल यह शर्त मंजूर

+ इस वृत्तान्त को बोल्ट ने अपने Considerations on Indian affairs में लिखा है।

करवाली कि "बम्बई का गवर्नर चाइल्ड नौ मास के अन्दर अन्दर बम्बई से निकाल दिया जावे और उसे फिर हिन्दुस्थान आने की इजाज़त नहीं दी जावे। इसके अलावा मेरी प्रजा को यह विश्वास दिला दिया जावे कि अंग्रेज किसी प्रकार की बदमाशी, डकैती, चोरी नहीं करेंगे और मेरी प्रजा को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचावेंगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने मेरी प्रजा की जो क्षति की है, उसकी पूर्ति भी उन्हें करनी होगी।"

इस घटना के छः वर्ष बाद १६९६ में बर्द्वान—राजा की अध्यक्षता में बंगाल के कई पुश्तैनी जमींदारों ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। उन्होंने साफ़ कह दिया कि हम बंगाल के आधीन नहीं हैं। उन्होंने खासी फौज जमा करली वे हुगली, मुर्शिदाबाद और राजमहल पर अधिकार करने तथा उन्हें लूटने के लिये आगे बढ़े—एक खासा विद्रोह खड़ा हो गया। इस वक्त अंग्रेजों, फ्रेंचों और डचों ने अपने स्वार्थ-वश नवाब का पक्ष ग्रहण किया। उन्होंने इस स्थिति का फ़ायदा उठाकर अपने बस्ती (Settlement) की किले बन्दी करने की अनुमति प्राप्त कर ली। इस प्रकार डचों ने चिनसुरा में, फ्रेंचों ने चन्द्रनगर और अंग्रेजों ने कलकत्ते में फोर्ट विलियम नाम का एक किला खड़ा कर दिया।

जिस विद्रोह का हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं, उसे मिटाने के लिये सम्राट औरंगजेब ने आजीम-अलशान को भेजा। यह मनुष्य बड़े ही लालची और दुष्ट स्वभाव का था। अंग्रेजों ने इसे रिश्वत देकर इस बात की मंजूरी ले ली, जिससे अंग्रेज लोग जमींदारों से जमींदारी के हक खरीद सकें। इसकी मंजूरी से अंग्रेजों ने कोई एक मील चौरस रकबे की जमीन खरीद ली। इस खरीदी हुई जमीन के अन्दर गोविन्द-पुर और कलकत्ता नगर बसे हुए थे कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय कलकत्ता एक बिलकुल छोटा-सा देहात था सन् १७०७ में इसी कलकत्ता को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने प्रेसिडेन्सी बना लिया और इसे मद्रास की आधीनता से स्वतन्त्र कर दिया।

अंग्रेजों का व्यापार बढ़ता ही चला गया। हाँ, इस में मुगल शासकों की ओर से बाधाएँ उपस्थित हुआ करती थीं। सन् १७१५ में कम्पनी ने दिल्ली के तत्कालीन सम्राट् की सेवा में एक डेप्युटेशन भेजा। इस डेप्युटेशन में जान सरनम नामक एक अंग्रेज और काजी सरहद (Serhaud) नामक एक अर्मेनियन व्यापारी था। इस डेप्युटेशन ने सम्राट् की सेवा में पहुँच कर अपनी उन तकलीफों का बयान किया, जो उन्हें मुगल हाकिमों के हाथ समय समय पर सहनी पड़ती थी। उन्होंने यह भी अर्ज की कि आगे ऐसा प्रबन्ध कर दिया जावे, जिससे हमें भविष्य में ऐसी तकलीफों और दिक्कतों का सामना न करना पड़े। इसके अतिरिक्त उन्होंने अधिक रिआयतों के लिये भी प्रार्थना की। इस पर तत्कालीन सम्राट् फर्रुखशियर ने उन्हें यह फर्मान (Grand Firman) दिया। इस फरमान में अंग्रेजों को अपने व्यापार में बहुत रिआयतें मिलीं। मुगल राज्य में उनके व्यापार पर सब प्रकार के कर माफ़ कर दिये गये। केवल उन्हें उसके बदले में १०,००० रु० प्रति वर्ष सरकार को देना पड़ता था। इस फर्मान का विवेचन मि० जेम्स फ्रेंफर ने अपने ग्रन्थ "History of Nadir Shah" में किया है। उसमें अंग्रेज़ों को महसूल सम्बन्धी कई और भी रिआयतें दी गई थीं।

बङ्गाल में अङ्गरेजों का प्रवेश

हमने गत पूर्व अध्याय में यह दिखलाया है कि भारतवर्ष में अंग्रेज कब और कैसे आये ? अब हम यहाँ बङ्गाल में अंग्रेजों की प्रारम्भिक बस्ती।(Settlement) पर थोड़ासा प्रकाश डालना चाहते हैं।

हिजरी सन् १०४६ में अर्थात् ईसवी सन् १६३७ में सम्राट् शाहजहाँ की लड़की के वस्त्रों में आग लग जाने से वह बुरी तरह जल गई। इसका इलाज करने के लिये वज़ीर आसदखाँ के द्वारा सूरत से एक युरोपियन सर्जन बुलाया गया। सूरत की अंग्रेज—कौंसिल ने इस कार्य के लिये मि० गेबरियल बाऊटन (Gabriel Boughton) को भेजा। इसने शाहजादी का इलाज किया। सौभाग्य से उसे सफलता हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि उक्त सर्जन मुगल सम्राट् का बहुत प्रिय पात्र हो गया। मुगल सम्राट् ने उससे पूछा—"आप क्या इनाम चाहते हैं ?" इस पर सर्जन महोदय ने अपने लिये कुछ न चाहा। उन्होंने अपने स्वार्थ के लिये सम्राट् से कुछ नहीं माँगा। उन्होंने जो कुछ माँगा अपने देश के लिये माँगा। उन्होंने सम्राट् से अर्ज की कि मेरे देशवासियों को बङ्गाल में बिना महसूल के व्यापार करने तथा फेक्टरियाँ खोलने की इजाज़त दी जावे। उनकी प्रार्थना सम्राट् ने स्वीकार कर ली और उन्हें बड़ी इज्जत के साथ बङ्गाल रवाना किया गया। सर्जन महाशय बङ्गाल पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही वे बङ्गाल के पीपली (Pepley) नामक स्थान के लिये रवाना हो गये। इसी साल याने ईसवी सन् १६३८ में इङ्गलेण्ड से उक्त थान पर एक जहाज पहुँचा। इसमें जो माल आया था, उसका सम्राट् के फर्मान के कारण महसूल नहीं लिया गया।

इसके दूसरे ही साल बङ्गाल सरकार का अधिकार शाहज़ादा शुज्जा को प्राप्त हुआ। जब यह खबर उक्त सर्जन बाऊटन को लगी तो वे शाहजादे साहब से मुजरा करने के लिये राजमहल पहुँचे। शाहजादा ने इनका बड़ा सत्कार किया। इस वक्त शाहजादे की एक बेगम को कोई व्याधि हो रही थी। इनका इलाज करवाया गया। इस वक्त भी सर्जन साहब को पूर्ण सफलता हुई। इससे शाहजादे के दरबार में भी उनकी इज्जत हो गई। दरबार में उनका खासा प्रभाव हो गया। उन्हें शाहजादे की ओर से कई प्रकार की सुभीताएँ दी गई।

इसके बाद सन् १६५० में वही जहाज फिर इङ्गलेण्ड से लौट कर आया। इसमें ब्रिगमन प्रभृति कई अंग्रेज आये। ये लोग बङ्गाल में अपनी फेक्टरियाँ स्थापित करना चाहते थे। मि० सर्जन बाऊटन ने यह बात शाहजादा से कही। मि० ब्रिगमन राजमहल बुलाये गये और शाहजादा से उनका परिचय करवाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि पीपली के अतिरिक्त बालासोर (Ballasore) और हुगली में भी अंग्रेजों को फेक्टरियाँ खोलने की इजाजत दे दी गई। इसके कुछ समय बाद सर्जन बाऊटन मर गये! पर पीछे शाहजादा ने अंग्रेजों के साथ बड़ी उदारता का व्यवहार किया। कुछ इतिहासवेत्ताओं ने बाऊटन के ऐतिहासिक अस्तित्व पर सन्देह प्रकट किया है। पर उनका यह सन्देह निर्मूल है। लण्डन के इण्डिया ऑफिस के पुराने कागज़-पत्रों में ३ जनवरी सन् १६४५ का लिखा हुआ एक पत्र मिला है। यह पत्र सूरत की अंग्रेजी कौंसिल के अध्यक्ष ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को लिखा था। उसका संक्षिप्त आशय यह है:—

"सम्राट् ने हम से एक अच्छा और सुचतुर सर्जन भेजने की इच्छा प्रकट की थी। हमने होपवेल जहाज के सर्जन बाऊटन को भेजना मुनासिब समझा। उन्होंने कम्पनी के लिये स्वतन्त्र व्यापार (Free trade) करने का फ़र्मान प्राप्त किया है।"

इसके अतिरिक्त और भी कुछ तत्कालीन पत्रों से सर्जन बाऊटन का ऐतिहासिक अस्तित्व सिद्ध होता है, और यह स्पष्टतया मालूम होता है कि बङ्गाल में अंग्रेजों के लिये बिना महसूल के व्यापार करने का सब से पहला अधिकार सर्जन बाऊटन ने प्राप्त किया। सन् १६६४ की Court Book में निम्न लिखित आशय का मजमून लिखा हुआ है:—

"हमने मि० ब्रिज और अन्यों से बिना महसूल के व्यापार करने के फ़र्मान के सम्बन्ध में बातचीत की। इससे हमें मालूम हुआ कि मि० बाऊटन ने सब से पहले बङ्गाल में बिना महसूल व्यापार करने का फर्मान प्राप्त किया।"

कई अंग्रेज इतिहासवेत्ता फर्मान प्राप्त करने का यश सर्जन बाऊटन को नहीं देना चाहते हैं। वे सर थॉमस रो को यह यश देना चाहते हैं। सर थॉमस रो ने अपने बन्धु अंग्रेजों के लिये सम्राट् जहाँगीर से जो फर्मान प्राप्त किया था, उसका उल्लेख इतिहासवेत्ताओं ने किया है, पर बंगाल के सम्बन्ध में खास तौर से सर्जन बाऊटन ने किया था। सर थॉमस रो की डायरी से भी पता चलता है कि बङ्गाल में सर थॉमस रो के प्राप्त किये हुए फर्मान ने विशेष काम नहीं किया। कुछ भी हो, अंग्रेजों के व्यापार का बङ्गाल में इसी समय से प्रधान रूप से सूत्रपात हुआ, और इसी समय से अंग्रेजों को नाम-मात्र के लिये ३०००) रुपया सालाना देने पर बङ्गाल और उड़ीसा में स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने की इजाजत मिल गई।

इसके थोड़े ही समय बाद बङ्गाल में घोर राज्य—परिवर्तन हुआ। पर एक अर्से तक अंग्रेजों के कारोबार पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। पर सन् १६८९ में नवाब शायस्ता खाँ और कम्पनी के एजेन्ट मि० जाब के साथ अनबन हो गई। इण्डिया ऑफिस के पुराने कागज-पत्रों से यह प्रकट होता है कि नवाब ने अंग्रेजों के मुख्य एजेन्ट मि० जाब को अपने मातहत नौकरों के साथ हुगली छोड़ने के लिये बाध्य किया। पर उसी

साल शायस्त खाँ की जगह पर इब्राहीम खाँ नवाब हुआ। यह अंग्रेज़ों पर बड़ा महरबान था। इण्डिया आफ़िस के पुराने काग़ज़ पत्रों में इसे न्यायवान नवाब कहा है। इसने मि० कारनक जॉब को वापिस बंगाल में लौट आने के लिये अनुरोध किया। मि० कारनक जॉब ने वह अनुरोध सादर स्वीकार किया और वे बंगाल को लौट आये। पर उस समय उन्होंने हुगली के बजाय कलकत्ते के उत्तर में चटानटी* नामक स्थान पर अपनी फेक्टरी कायम की।

यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि इस वक्त तक अंग्रेज़ों को क़िलेबन्दी करने का अधिकार नहीं था। आत्मरक्षा के लिये केवल सौ सैनिक रखने की उन्हें इजाज़त थी। पर इसी समय के लगभग सन् १६९५ में बङ्गाल के नवाब के ख़िलाफ़ एक भयङ्कर विद्रोह उठ खड़ा हुआ। इस विद्रोह के नेता बर्दवान के हिन्दू जमींदार सुरेन्द्रसिंह थे। बङ्गाल में इस समय बड़ी अराजकता फैल रही थी। नवाब की स्थिति ख़तरे में गिर गई थी। इस समय का लाभ अंग्रेज़ों ने उठाया। उन्होंने नवाब से क़िले बनाने की इजाज़त ले ली। फोर्ट विलियम नामक क़िले की नींव इसी समय से लगी। इण्डिया आफ़िस में रखे हुए पुराने पत्रों से पता चलता है कि उक्त क़िले की दीवारें पूरी भी न बनने पाई थी कि कुछ बलवाइयों ने उस पर हमला करना चाहा। पर वे भगा दिये गये।

बङ्गाल में बलवा हो जाने के कारण दिल्ली के सम्राट् द्वारा इब्राहीम खां बङ्गाल की नवाबी से हटा दिये गये और उनके स्थान पर शाहज़ादा अज़ीमुशाह बङ्गाल के नवाब बनाये गये। इन शाहज़ादा साहब से अंग्रेज़ों ने १६०००) रु० के नज़राने पर चटानटी, गोविन्दपुर और चटानटी नाम के तीन ग्रामों पर जमींदारी प्राप्त की। इसी समय अंग्रेज बङ्गाल में

* प्रोफेसर ब्लाकमेन के मतानुसार चटानटी गांव वहीं बसा हुआ था जहां आजकल सोवाबाजार बसा हुआ है।

पहले पहल ज़मींदार हुए। इन्हें अपनी ज़मींदारी में कुछ शासन सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त हुए। धीरे धीरे अंग्रेज़ों के पैर फैलने लगे और उन्होंने खासी शक्ति भी प्राप्त कर ली। सन् १७१३ में एक ऐसी घटना हुई जिसने अंग्रेज़ों के सौभाग्य को और भी बढ़ाया। इस समय दिल्ली के सम्राट् फर्रुखसियर किसी व्याधि द्वारा भयङ्कर रूप से आक्रान्त हो गये। हकीम और वैद्यों ने इनकी बड़े परिश्रम से चिकित्सा की, पर दुर्भाग्यवश सफलता न हुई। इस पर अंग्रेज़ सर्जन बुलाये गये। तत्कालीन सुप्रख्यात् अंग्रेज़ सर्जन मि० विलियम हेमिलटन सम्राट् की चिकित्सा करने के लिये दिल्ली पहुँचे। उन्हें इस चिकित्सा में सफलता हुई। सम्राट् ने उनसे पूछा, "कहिये आप क्या चाहते हैं"। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऊपर कथित अंग्रेज़ सज्जनों की तरह आप भी स्वदेश-भक्त थे। आपने अपने निजी स्वार्थ के लिये सम्राट् से कुछ नहीं मांगा। आपने सम्राट् से निवेदन किया कि अंग्रेज़ों के व्यापार करने के अधिकार और भी विस्तृत कर दिये जावें, तथा बङ्गाल के नवाब के अत्याचारों से उनकी रक्षा की जावे। सम्राट् ने मि० विलियम हेमिलटन की बात स्वीकार कर ली और उन्होंने उन्हें एक फ़र्मान दिया जिसका उल्लेख हम किसी गत अध्याय में कर चुके हैं।

सम्राट् की इस कृपा से अंग्रेज़ों की सौभाग्य-श्री बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। इसके बाद दस वर्षों में अंग्रेज़ों ने व्यापार में बहुत तरक्की कर ली। वे बङ्गाल में समृद्धिशाली व्यापारी समझे जाने लगे, पर बङ्गाल में मुर्शिदकुलीखां द्वारा इनके कार्य में समय समय पर बाधाएं उपस्थित होती रहती थीं। इसका कारण यह था कि नवाब को यह बात सहन न होती थी कि देशी लोगों की अपेक्षा अंग्रेज़ों को क्यों ज्यादा रिआयतें दी जाती हैं। मुर्शिदकुलीखां के बाद उनके दामाद शुजोद्दीनखां बङ्गाल के नवाब हुए। उन्होंने १४ वर्ष तक शासन किया। इन्होंने बड़ी मज़बूती से अंग्रेज़ों की नाजायज़ कार्य्यवाहियों का विरोध किया। सन् १७३९ में उनकी मृत्यु हो गई, और इनके पुत्र शरफ़राज खां को बङ्गाल की नवाबी

मिली। शरफ़राजख़ां बड़ा विलासी था। एक शासक में जो गुण होने चाहिये उनका उसमें लेश भी नहीं था। इसी के समय में दिल्ली पर नादिरशाह का हमला हुआ। इस हमले ने मुग़ल साम्राज्य की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया। मुग़ल सम्राट् का रहा सहा आतङ्क भी इस समय नष्ट हो गया। विभिन्न प्रान्तों के नवाब मुग़ल समाट् से स्वतन्त्र होकर अपने अपने प्रान्तों को दबा बैठे। इस समय 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ हो रही थी। इसी समय बङ्गाल के नवाब का एक हलके दर्जे का नौकर अलीवर्दीख़ां ने, जोकि होशियारी और बहादुरी के कारण बिहार का नायब हो गया था, बङ्गाल के नवाब के ख़िलाफ़ विद्रोह का झण्डा उठाया। हम पहले कह चुके हैं कि बङ्गाल का तत्कालीन नवाब बड़ा विलासी और कायर था। प्रजा और ज़मींदारों को इसके साथ तनिक भी सहानुभूति नहीं थी। राज्य के कर्मचारी भी इसके ख़िलाफ़ थे। इन सब लोगों ने अलीवर्दीख़ां की सहायता की। शरफ़राजख़ाँ लड़ाई में मारा गया और सन् १७४१ में अलीवर्दीख़ां बङ्गाल बिहार और उड़ीसा का नवाब घोषित कर दिया गया। नवाब अलीवर्दीख़ां बहादुर और दिलेर था। उसने १५ वर्ष तक योग्यता से शासन किया। उसके शासन काल में बङ्गाल पर बाहर के बड़े २ हमले हुए। इन आक्रमणों के कारण नवाब अलीवर्दीख़ां अपनी शक्ति का भली प्रकार सङ्गठन नहीं कर सका। इतना होते हुए भी उसकी धाक तत्कालीन सब शक्तियां मानती थीं। उसने बङ्गाल की रक्षा के लिये अंग्रेज़ों को भी कुछ रक़म देने के लिये मजबूर किया। नवाब अलीवर्दीख़ां बड़ा दूरदर्शी था, यह बात उसके उस उद्देश से प्रकट होती है, जो उसने अपने मृत्यु के समय सिराजुद्दौला को बतलाया था। उसने सिराजुद्दौला को अंग्रेज़ों की कुटिल नीति (Diplomacy) का परिचय करवा कर उनसे सावधान रहने के लिए सचेत कर दिया था। इस बहादुर और राजनीति कुशल नवाब की मृत्यु सन् १७५६ की ९ वीं एप्रिल को हो गई। इसके बाद सिराजुद्दौला नवाब की गद्दी पर बैठा। सिराजुद्दौला

किस प्रकृति का मनुष्य था और उसके समय के किस प्रकार की राजनैतिक घटनाएं हुईं और उनका भारत के भविष्य पर कैसा असर पड़ा, इन सब बातों का वर्णन आगामी अध्याय में किया जायगा।

सिराजुद्दौला

पिछले पृष्ठों में अंग्रेजों के बङ्गाल प्रवेश पर कुछ प्रकाश डाला गया है। जिस समय यह घटना चक्र घुम रहा था, उस समय भारततवर्ष में चारों ओर घोर अराजकता फैली हुई थी। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ हो रही थी। किसी केन्द्रीभूत प्रबल शक्ति के अभाव में जो बलवान् और धूर्त होता था, उसकी तूती बजने लगती थी। देश की कई शक्तियों में परस्पर संघर्ष हो रहा था। चारों ओर बड़ी गड़बड़ मची हुई थी। इसी परिस्थिति का राजनीति में निष्णान्त अंग्रेजों ने फायदा उठाने का निश्चय किया। उन्होंने देखा कि अपना प्रभुत्व कायम करने का यह अच्छा अवसर है।

बङ्गाल का शासन कई हाथ परिवर्तन करते हुए जिस प्रकार नवाब अलीवर्दीखां के हाथ में आया, उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अंग्रेज लेखकों के मतानुसार अलीवर्दीखां एक योग्य और समर्थ शासक था। उसने राजकाज योग्यता पूर्वक सञ्चालित किया था। वह दूरदर्शी भी था। अंग्रेजों की कुटिल नीति को वह भली प्रकार समझ चुका था। उसने अपनी मृत्यु के कुछ पहले अपने दौहित्र सिराजुद्दौला को अंग्रेजों की कूटनीति का परिचय कराते हुए उनसे सावधान रहने का आग्रह किया था, और उसे यह आदेश दिया था कि वह अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को दबाने की चेष्टा करे।

सिराजुद्दौला जिन परिस्थितियों में गद्दीनशीन हुआ था-उन पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। ऐसी दुर्गम परिस्थितियों में वही शासक सफल हो सकता था जो योग्य, दूरदर्शी, शासन-चतुर और दृढ़ चित्त हो, पर दुःख की बात है कि सिराजुद्दौला में इनमें से एक भी गुण न था। वह, जैसा कि तत्कालीन लेखकों ने लिखा है, अपने नाना के अत्यन्त लाड

प्यार से बिगड़ गया था। उसमें न तो शासन योग्यता थी और न इतनी राजनैतिक बुद्धि थी कि जिससे वह राजनीति में मंजे हुये और कुशल-अंग्रेज़ों से मुक़ाबला कर सके। ऐसे अपारिपक्व और अनुभव शून्य युवक का उस समय बङ्गाल की गद्दी पर आना वास्तव में एक दुर्भाग्य-पूर्ण घटना थी। फिर भी बहुतसे अंग्रेज लेखकों ने उसे जितना निकृष्ट रूप से चित्रित किया है वह उतना नहीं था। कर्नल मालेसन ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ Decisive battles of India में लिखते हैं—

"This prince, who has been painted by historians in the blackest colours, was not worse than the majority of the eastern princes. He was rather weak than vicious, unstable rather than tyrannical, had been petted and spoilt by his grand-father, had had but little education, and was still a minor. Without experience and without stability of character, suddenly called upon to administer the fairest provinces of India and to assume irresponsible power, what wonder that he should have inaugurated his accession by acts of folly?" "अर्थात् वह नवाब (सिराजुद्दौला) जिसे कि इतिहासकारों ने निकृष्टतम प्रकट किया है, उतना बुरा नहीं था जितना कि दिखलाया गया है वह अधिकांश पूर्वीय राजाओं से बुरा नहीं कहा जा सकता। वह दुष्ट नहीं था वरन् कमज़ोर था, ज़ुल्मी नहीं था पर डांवाडोल चित्त का था। वह अपने नाना के लाड प्यार से बिगाड़ दिया गया था। उसे बहुत ही कम शिक्षा मिली थी और अभी वह नाबालिग ही था। बिना अनुभव के और बिना चारित्रिक दृढ़ता के होते हुए भी उसे हिन्दुस्थान के सबसे अच्छे प्रान्त के शासन की बागडोर लेनी पड़ी थी। ऐसी दशा में उससे मूर्खता-पूर्ण कोई कार्य्य हो जावे तो आश्चर्य ही क्या है।"

सिराजुद्दौला और अङ्गरेजों का मनमुटाव

सिराजुद्दौला के सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय बाद उसका और अंग्रेज़ों का मनमुटाव शुरू हो गया। सिराजुद्दौला ने अपने प्रमोद भवन के पास मैसूरगंज नामक एक बाजार कायम किया था। उस बाजार की सारी आमदनी पर सिराजुद्दौला का अधिकार था। सिराजुद्दौला हमेशा इस प्रयत्न में रहता था, जिससे इस बाजार की आमदनी में वृद्धि हो। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि देशी वाणिज्य की उन्नति बिना बाजार की उन्नति असम्भव थी। अंग्रेज लोग प्रकट और गुप्त वाणिज्य से देशी व्यापारियों को हानि पहुँचा कर विदेशियों के लाभ का मार्ग जितना ही सुलभ करते गये, सिराजुद्दौला इन विदेशी वणिकों से उतना ही असन्तुष्ट होता गया। फ्रान्स, डेनमार्क, हॉलैण्ड आदि देशों के व्यापारियों को बिना महसूल के वाणिज्य करने का अधिकार नहीं था, इसलिये उनकी प्रतियोगिता से स्वदेशी व्यापार को विशेष हानि पहुँचाने की सम्भावना नहीं थी। किन्तु अंग्रेज़ लोग दिल्ली के बादशाह से फ़र्मान लेकर जल और स्थल सर्वत्र बिना महसूल अदा किये व्यापार करने लगे थे। वे स्वदेशी व्यापारियों के पथ पर बुरी तरह कांटे बिछाते थे। अतएव सिराजुद्दौला प्रधान रूप से अंग्रेज़ों ही से विशेष द्वेष रखने लगा। यहां एक बात और कह देना आवश्यक है, जिसने सिराजुद्दौला को बहुत चिढ़ाया। वह यह कि बिना महसूल का व्यापार केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी ही नहीं करती थी, पर कम्पनी के कर्मचारियों के प्रिय रिश्तेदार भी इस देश में आकर गुप्तरीति से बिना महसूल के व्यापार करते थे। जॉन उड नामक

इसी तरह के एक अंग्रेज़ सौदागर ने कम्पनी के पास निःशुल्क व्यापार का परवाना प्राप्त करने के लिये जो आवेदन—पत्र भेजा था, उसमें साफ़ साफ़ लिखा था कि "कम्पनी की तरह अन्य अंग्रेज़ सौदागरों को भी निःशुल्क व्यापार करने का परवाना न देने से सर्वनाश होगा।" मतलब यह इस वक्त क्या ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी और क्या उनके अज़ीज़ रिश्तेदार सब ही बिना महसूल के व्यापार करते थे। इससे सिराजुद्दौला को तो भारी हानि पहुँचती ही थी, पर साथ ही में देशी व्यापारियों का भी सर्वनाश होता जा रहा था। इससे सिराजुद्दौला अंग्रेजों पर बड़ा क्रुद्ध था, और वह उन्हें निकालने का अवसर ढूँढ़ा करता था। सेनापति मुस्तफाखां भी सिराज़ के इस प्रस्ताव का समर्थन करता था।

इसके अतिरिक्त और भी ऐसे अनेक कारण हुए, जिनसे सिराजुद्दौला और अंग्रेज़ों का मनोमालीन्य बढ़ता ही चला गया। हम उन कारणों में से दो एक का 'सिराजुद्दौला' नामक ग्रन्थ के आधार पर यहां उल्लेख करते हैं। अलीवर्दीखां की जीवित अवस्था में ढाका के दीवान राजवल्लभ के पुत्र कृष्णदास ने कलकत्ते में अंग्रेज़ों का आश्रय ग्रहण किया था। इस कृष्णदास के जिम्मे मालगुज़ारी का बहुत सा रुपया निकलता था। रुपये न वसूल होने के कारण सिराजुद्दौला ने इन्हें कैद करने का निश्चय किया था। कृष्णदास ज्यों त्यों कर छल छिद्र से कलकत्ते पहुँच गया। वह अपने साथ विपुल सम्पत्ति ले गया। कम्पनी की शरण ली। तत्कालीन इतिहास लेखक अर्मी महाशय ने इस घटना का यों जिक्र किया है।

अर्मी कहते हैं—"राजवल्लभ ने देखा कि सिराजुद्दौला मुझ पर नाराज़ है; अतएव ढाके में रहना ठीक निरापद नहीं। यह समझ कर उसने अपने पुत्र को अपनी सम्पत्ति के साथ कलकत्ते भेज दिया। उसने मुर्शिदाबाद-कासिम-बाज़ार की अंग्रेज कोठी के मालिक वाट्स साहब से

अनुरोध किया कि वे ऐसा यत्न करें जिससे कलकत्ते की अंग्रेज कम्पनी की कौन्सिल कृष्णदास को आश्रय प्रदान करे। इस समय कलकत्ते की कौन्सिल का प्रधान डेक आबहवा बदलने के लिये उड़ीसा गया हुआ था। कौन्सिल के अन्यान्य सदस्यों ने वाट्स साहब की सिफ़ारिश स्वीकार कर ली और वे कृष्णदास को आश्रय देने में राजी हो गये। यह बात सिराजुद्दौला को अच्छी न लगी। वह अंग्रेजों से बदला लेने के लिये सोचने लगा।

इसके कुछ समय बाद ही सिराजुद्दौला ने कलकत्ते की अंग्रेज कम्पनी को एक पत्र लिखा, जिसमें कृष्णदास को लौटा देने के लिये जोर दिया। इस पत्र के भेजने के सम्बन्ध में अर्मी के इतिहास में एक रहस्य प्रकट किया गया है। मुसलमानों के लिखे हुए इतिहास में इस रहस्य का जिक्र तक नहीं है। अर्मी ने लिखा है—"जो पत्र-वाहक सिराजुद्दौला का पत्र लाये थे, वे अलीवर्दीखां के एक प्रियपात्र कर्मचारी राजा रामसिंह के भाई थे। वे एक छोटी सी नांव से कलकत्ते के साधारण सौदागर की सूरत में उमीचन्द् के मकान पर उपस्थित हुए। उमीचन्द् ने उन्हें साथ लेजाकर हालवेल साहब से उनका परिचय करा दिया। हालवेल साहब उस समय कलकत्ते के पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट थे।"

"सिराजुद्दौला द्वारा भेजे हुए पत्र पर विचार करने के लिये कौन्सिल का एक अधिवेशन हुआ। उस समय कौन्सिल का एक सदस्य, उमीचन्द् के खिलाफ़ था। उसने कहा कि यह आदमी सिराजुद्दौला का भेजा हुआ नहीं है, यह सब उमीचन्द् का षड्यन्त्र है। इससे कौन्सिल ने उस आदमी को कोरा लौटा दिया। इससे सिराजुद्दौला आग बबुला होगया। उसने अंग्रेजों के दमन का निश्चय कर लिया।

इसके अतिरिक्त जब सिराजुद्दौला ने यह सुना कि अंग्रेज कलकत्ते में किलेबन्दी कर रहे हैं, तब उसने तत्काल ही अपने संकल्प को पूरा करने का इरादा किया।

सिराजुद्दौला का कासिम बाजार पर आक्रमण

उपरोक्त घटनाओं से हमारे पाठकों की यह कल्पना हो गई होगी कि सिराजुद्दौला और अंग्रेज़ों के बीच किस प्रकार मनोमालिन्य बढ़ता गया। नवाब ने तुरन्त ही कासिम बाजार के अंग्रेज़ी किले पर आक्रमण करने के लिये तीन हज़ार सिपाही भेजे। सन् १७५६ ईसवी की २२ मई को इस फौज ने कासिम बाजार पहुँच कर अंग्रेज़ी किले को घेर लिया। दूसरी जून को नवाब सिराजुद्दौला ससैन्य वहां उपस्थित हुआ। कासिम बाजार किले के आदमियों ने आत्म-रक्षा के लिये भी युद्ध नहीं किया। उन्होंने बिना शर्त के सिराजुद्दौला को आत्म समर्पण कर दिया। कासिम बाजार किले के पतन का समाचार जब कलकत्ते पहुँचा तो वहां के अंग्रेज़ों में भारी भय छा गया! वे भय से कांप गये! कलकत्ते की अंग्रेज कम्पनी ने सहायता के लिये बम्बई और मद्रास आदमी भेजे। किन्तु वहां से समय पर सहायता पहुँचने की संभावना किसी तरह नहीं की जा सकती थी। डच और फ्रान्सीसियों की सहायता मांगी गई। डच बिल्कुल इन्कार हो गये। फ्रान्सीसी राजी हुए तो सही, किंतु उन्होंने अंग्रेज़ों को कलकत्ता छोड़ चन्द्रनगर चले जाने के लिये कहा। अंग्रेज फ्रांसीसियों के इस प्रस्ताव से सहमत न हुए। इसी समय नवाब ने भी डच और फ्रान्सीसियों की सहायता मांगी, पर इसमें वह कृत-कार्य्य नहीं हुआ।

सिराजुद्दौला ने ६ जून को ससैन्य कलकत्ते की ओर कूच किया। १२ जून को उसकी सब फौज हुगली पहुँची। जब से अंग्रेज़ों ने यह सुना कि सिराजुद्दौला कलकत्ता में आक्रमण करने के लिये युद्ध यात्रा कर रहा है, तब ही से ढाका, बालेश्वर, जगदिया आदि विविध स्थानों की

अंग्रेजी कोठियों के कर्मचारियों को पत्र लिख गये कि बही खाता वगैरह समेट कर वे फौरन सुरक्षित स्थानों में चले जावें। राजर डेक उस समय कलकत्ते के गवर्नर थे। वे भी मुकाबले की तैयारी करने लगे।

इस ओर नवाब सिराजुद्दौला ने बाहरी शत्रुओं के हमले रोकने के लिये कलकत्ते से ढाई कोस दक्षिण गंगा के पश्चिमी किनारे के टाना नामक स्थान पर एक छोटा किला बनाया था। पचास सिपाही तेरह तोपों के साथ मुहाने की रक्षा के लिये उस किले में तईनात थे, और बहुत दिनों से उस पर किसी शत्रु का आक्रमण न होने के कारण वे मजे से पड़े पड़े विश्राम सुख का उपभोग कर रहे थे। अंग्रेजों ने तेरहवीं जून के प्रातःकाल को चार फौजी जहाज लेकर एकाएक उक्त किले पर हमला कर उस पर भीषण गोलावृष्टि शुरू कर दी। इस आकस्मिक हमले से नवाब के सिपाही किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। वे तितर बितर होकर हुगली की ओर भग गये। टाना की दुर्गप्राचीर पर अंग्रेजों की विजय-पताका फहराने लगी और अंग्रेजी सेना ने किले की चार दीवारी में लगी हुई नवाबी तोपों को तोड़ फोड़कर गंगा जी में फेंकना आरम्भ किया।

जब यह खबर हुगली पहुंची, तब सिराजुद्दौला आग बबुला हो गया। किले पर पुनः अधिकार करने के लिये फिर फौजें भेजी गईं। १४ जून को टाना के किले के फाटक पर लड़ाई हुई। इसमें नवाब की सेना को सफलता मिली। अंग्रेज सेना पराजित हुई। अंग्रेजी इतिहास लेखक अर्मी ने इस युद्ध का वृत्तान्त लिखा है:—

"नवाब ने निश्चय कर लिया था कि टाना के किले पर अधिकार कर लिया जावे। यह किला कलकत्ते से पाँच मील पर हुगली नदी और समुद्र के बीच में था। उसमें सिर्फ १३ तोपें थीं। दो जहाज तीन तीन सौ टन के थे। इनके अतिरिक्त और भी छोटे मोटे जहाज थे' परन्तु दूसरे दिन नवाब के २००० सिपाहियों ने जो हुगली से भेजे गये थे, आकर किले

को घेर लिया और वे तोपों से गोलाबारी शुरु कर दी। कुछ थोड़े से अंग्रेजी सिपाही उनका मुकाबला करने के लिये कलकत्ते से भेजे गये। पर उनकी भी दाल न गली और कलकत्ते वे वापस लौट आये।

अर्मो के अतिरिक्त और किसी अंग्रेज इतिहास लेखक के किसी इतिहास में अंग्रेजों की इस पराजय का उल्लेख नहीं है।

नवाब का कलकत्ता विजय

टाना के युद्ध-कांड का वर्णन पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। टाना के युद्ध के बाद नवाब ने अपनी फौज के साथ कलकत्ते की ओर कूच किया। पन्द्रहवीं जून को नवाब और उसकी फौज हुगली जा पहुँची। सोलहवीं जून को कलकत्ते के दुर्ग निवासी अंग्रेजों को नवाब की चढ़ाई का समाचार मिला। इससे उनमें बड़ी घबराहट फैल गई। उनकी हालत 'किं कर्त्तव्यःविमूढ़' सी हो गई। उस समय किले में जो अंग्रेज थे उनमें से एक ने अंग्रेजों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि किले में स्थित सभी अंग्रेज सलाह देने के लिये तैयार थे, किन्तु ठीक ठीक सलाह देने की शक्ति किसी में नहीं थी।

नवाब की फौजोंने अंग्रेजों के किले पर भीषण गोलावृष्टि करना शुरू कर दिया। दुर्गवासी अंग्रेज सेना ने आत्मरक्षा की चेष्टा की पर वह सफल न हो सकी। दुर्ग रक्षा का कार्य्य असम्भव समझकर दुर्गस्थ स्त्रियां जहाजों के द्वारा अन्यत्र भेज दी गई। उन्हें जहाज में पहुँचाने का भार लेकर मानिङ्हम और फ्राकलेण्ड नामक दो सिविलियन जहाज से भागे। क्रम से कितनों ही ने उनका पश्चानुसरण किया। कलकत्ते के तत्कालीन गवर्नर ड्रेक और सेनापति कप्तान मेनचिन ने भी जहाज की राह देखी। जहाज की ओर भागने में नाव डूबने से कितने ही लोग काल-कवलित हुए!

दुर्ग अब रक्षक हीन हो गया! जो लोग दुर्ग से न भाग पाये थे, वे पुनः आत्मरक्षा की चेष्टा करने लगे। उन लोगों ने कौन्सिल के अन्यतम सदस्य हालवेल पर रक्षा का सब भार सौंप दिया। हालवेल बड़े साहस के साथ दुर्ग रक्षा के लिये शत्रु की ओर गोला बरसाने लगे।

Ives jurney में लिखा है कि "हालवेल साहसी नहीं थे। कोई उपाय न रहने के कारण उन्हें इस समय लड़ना पड़ा था।"

कुछ भी हो, हालवेल दुर्ग की रक्षा न कर सके। नवाब ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दुर्ग अधिकृत होने पर नवाब ने सेनापति मीरजाफर के साथ दुर्ग में प्रवेश किया। अमीचन्द और कृष्णचन्द्र उनके सामने लाये गये। नवाब ने इनके प्रति किसी प्रकार का बुरा व्यवहार नहीं किया। अंग्रेजों ही के इतिहास में लिखा है कि जिस समय अमीचन्द और कृष्णचन्द्र ने नवाब के सामने उपस्थित होकर नवाब से अभिवादन किया तो नवाब ने इनका तिरस्कार करना तो दूर रहा, बड़े सन्मान के साथइन्हें आसन प्रदान किया। हालवेल साहब ने "Halwelle's Indian tracts" में यह बात मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है।

कलकत्ते का ब्लेक होल

कालकोठड़ी के हत्याकांड का रहस्य

अंग्रेज इतिहासवेत्ताओं ने नवाब सिराजुद्दौला की कलकत्ता विजय के साथ कालकोठड़ी के हत्याकांड को सम्बन्धित किया है। यह काल-कोठड़ी ब्लेक होल "Black Hole" के नाम से प्रसिद्ध है। हमने पूर्व अध्याय में सिराजुद्दौला की कुछ भी प्रशंसा नहीं की है। हम उसका अनुचित समर्थन करना नहीं चाहते। पर किसी घटना का शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करना इतिहासवेत्ता का प्रधान कर्त्तव्य है। अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों की छानबीन के बाद कालकोठड़ी के अस्तित्व में संदेह होने लगता है। इस पर प्रकाश डालने के पहले अंग्रेज इतिहासवेत्ताओंने कालकोठड़ी के हत्याकांड का जैसा वर्णन किया है उसका सारांश हम नीचे देते हैं।

"कलकत्ते में नवाब के हाथों १४६ अंग्रेज कैद हुए। एक बीस वर्ग फीट लम्बी चौड़ी कोठड़ी में ये सब भर दिये गये और उस कोठड़ी के द्वार बँद कर दिये! इस दिन सूर्य्य अपनी सहस्रों किरणों से तप रहा था। भयङ्कर गर्मी पड़ रही थी! इस कोठड़ी में हवा आने के लिये दो छोटे छोटे हवादानों को छोड़ कर और कुछ भी नहीं था। लोग एक के ऊपर एक भर दिये गये थे। १४६ प्राणियों के देह के घर्षण और दारुण ग्रीष्म के अत्यधिक प्रादुर्भाव से इस बन्द कोठड़ी में रहना असह्य हो गया। सभी ने आत्मरक्षा के लिये दरवाज़े पर आघात करके उसे तोड़ देना चाहा। उनका यह प्रयास निष्फल हुआ। सभी उन्मत्त हो गये। हालवेल भी इन हीं में थे। इन्होंने कभी डाटडप्पट बतलाकर और कभी खुशामद कर सब को शान्त करने की चेष्टा की, किन्तु सफलता न हुई। उन्होंने दरबान को कहा कि "भाई, तुम्हें एक हजार रुपया दूंगा

तुम हमें इस कोठड़ी में से निकाल कर दो कोठड़ियों में बन्द कर दो। दरबानने चेष्टा की, पर वह भी सफल न हुआ। हालवेल ने इसके उपरान्त उसे उससे अधिक रुपया देना स्वीकार किया। दरबान चला गया किन्तु लौट कर उसने कहा—"बड़ी मुश्किल है, नवाब सोते हैं, उन्हें कौन जगा सकता है?"

"धीरे धीरे यन्त्रणा बढ़ने लगी। पसीने की धाराएं बहने लगीं। प्यास से गले सूख गये! छाती फटने लगी! दम लेना मुश्किल हो गया! सबने अपने अपने कपड़े उतार डाले। टोपियां उतार डालीं! वेदना से घोर आर्त्तनाद हो उठा! अविराम पसीना बहने से महा दुर्गन्ध उठने लगी। लोग मूर्च्छित होने लगे! कितने ही लोग गिर पड़े। खड़े खड़े आदमियों के पैरों तले पड़ कर वे मर गये! इस वक्त आर्त्तनाद सुनाई दे रहा था! "पानी पानी" चिल्लाहट हुई! जमादार ने पानी की मस्कें ला ला कर हवादान के पास रखीं। सब "त्राही त्राही" करते हुए हवादान की ओर लपके। किन्तु जलदर्शन से और भी यन्त्रणा बढ़ गई। सभी आगे होकर पानी पीने की चेष्टा करने लगे। जो बलवान था वह दुर्बल को हटा कर पानी पीने के लिये अग्रसर होने लगा। दुर्बल ने गिर प्राण त्याग किये। किसी किसी ने हवादान के पास खड़े हो कर टोपी में पानी भर भर कर लोगों को दिया। किन्तु उससे प्यास नहीं मिटी। प्यास से विविध विकार उत्पन्न हुए। पहरेदार देख कर हंसी दिल्लगी करने लगे। किसी किसी ने हवादान के पास चिराग रख कर उसके प्रकाश में कैदियों की हंसी की। गोली खाकर मरने के लिये कोई कोई कैदी पहरेदारों को कहने लगे। कोई अपना अन्तिम समय समझ कर भगवान् का नाम लेने लगे। धीरे धीरे सब मर गये! सिर्फ २२ के प्राण बचे। हालवेल अचेत होकर मृतवत् पड़े थे। सबेरे कारागार का द्वार खोला गया। जीवित कैदी नवाब के पास भेजे गये और मरे हुए की लाशें गाड़ दी गईं।

पाठक ! देखिये, ऊपर कितने भयानक अमानुषिक काण्ड का दिग्दर्शन करवाया गया है ! अंग्रेज़ लेखकों ने कालकोठड़ी के हत्याकाण्ड का जो वर्णन किया है, उपर्युक्त पंक्तियों में उसकी छाया बतलाई गई है। अगर उक्त काण्ड सच्चा होता तो अवश्य ही वे लोग जो इस क्रूर काण्ड के जिम्मेदार थे, राक्षस और नरपिशाच के अतिरिक्त दूसरी उपमा नहीं पा सकते थे। पर अनेक ऐतिहासिक अन्वेषणाओं से काल कोठड़ी का हत्याकाण्ड केवल कपोल कल्पित और मिथ्या आविष्कार जान पड़ता है।

अंग्रेज़ों के लिखे इतिहासों में कालकोठड़ी का जो जिक्र है, वह वृत्तान्त उन्होंने हालवेल के वर्णन से लिया है। पर ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं जिनसे कालकोठड़ी के अस्तित्व ही में घोर सन्देह उत्पन्न होता है। तत्कालीन मुसलमानों के लिखे हुए इतिहासों में कालकोठड़ी का बिलकुल जिक्र नहीं है। "मुताखिरीन" एक प्रामाणिक इतिहास समझा जाता है। यह तत्कालीन एक मुसलमान सज्जन का लिखा हुआ है। इसमें सिराजुद्दौला की अनेक कुकीर्तियों का उल्लेख है। सारा "मुताखिरीन" ग्रन्थ देख जाने पर भी इसमें कालकोठड़ी के हत्याकाण्ड का वर्णन नहीं मिला। "मुताखिरीन" में केवल इतना ही लिखा है, "दुर्ग पर अधिकार करने के बाद लूट खसोट हुई। कितने ही अंग्रेज कैद किये गये। कितनी ही बीबियां मीरजाफर के अनुचर अमीरबेग के हस्तगत हुईं।" "मुताखिरीन" के अंग्रेजी अनुवादक कहते हैं कि इस घटना के विषय में सारे बङ्गाल की बात तो अलग रही, खास कलकत्तावासी भी नहीं जानते।" मुहम्मदअलीखां के" "नारीरफी मुजफ्फरी" ग्रन्थ में इस कालकोठड़ी का नाम-मात्र का भी उल्लेख नहीं है। अंग्रेज इतिहास-लेखक भी इस ग्रन्थ को प्रमाणिक बतलाते हैं। इस ग्रन्थ में लिखा है—ड्रेक साहब के भाग जाने पर किले के बाकी लोगों ने बड़ी हिम्मत के साथ युद्ध किया। किन्तु उनकी बारूद समाप्त हो गई जिससे दुर्ग शत्रुओं के हाथ जा पड़ा। लड़ाई में कितने ही लोग मारे गये। कितने ही बाद में

कैद किये गये। हरिचरणकृत "बहार गुलज़ार" में भी कालकोठरी का नामोल्लेख तक नहीं है। ब्रिटिश एडमिरल वाटसन साहब ने नवाब को जो पत्र लिखा, उसमें कालकोठरी का जिक्र तक नहीं किया। वाट्सन के पत्र में लिखा है:—हमारे कारखाने लूट लिये गये। बहुतों को मार डाला गया।" स्वयं लार्ड क्लाइव के पत्रों में इस हत्याकाण्ड का जिक्र तक नहीं है। क्लाइव ने कोर्ट आफ डाईरेक्टर्स को निम्न लिखित आशय की चिट्ठी लिखी थी, उसमें भी उक्त हत्याकाण्ड का कहीं उल्लेख नहीं है। उन्होंने चिट्ठी में लिखा था—"कुछ पत्र जो सिराजुद्दौला ने फरांसीसियों को लिखे थे वे मेरे हाथ आ गये। उनमें से मैं एक का अनुवाद आपके पास भेज रहा हूँ, जिससे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि हम लोग सिराजुद्दौला का नाश करने के लिये मजबूर हो गये थे।" युद्धक्षेत्र से भाग कर जो अंग्रेज़ फलता में जाकर रहे थे और जो रोज तरह तरह की गुप्त मन्त्रणाएं किया करते थे, उनके विवरणों की पुस्तक में किसी स्थान पर भी कालकोठरी के हत्याकाण्ड का उल्लेख नहीं है। दूरस्थित समुद्र के किनारे पर रहने वाले मद्रास के अंग्रेजों ने कलकत्ते पर पुनः अधिकार करने के लिये सेना भेजने के जिस वादविवाद में बहुत सा समय बिताया था, उसमें भी कहीं कालकोठरी का जिक्र नहीं है। मद्रास के अँग्रेज़ी दरबार के प्रार्थनानुसार हैदराबाद के निज़ाम और अरकाट के नवाब ने सिराजुद्दौला को जो चिट्ठियां लिखी थी, उनमें भी कहीं कालकोठरी की घटना का नामोल्लेख नहीं है। मद्रास कौन्सिल के तत्कालीन कर्त्ताधर्त्ता पिगट साहब ने बड़ी डाटडपट के साथ सिराजुद्दौला को जो पत्र भेजा था उसमें भी कालकोठरी के हत्याकाण्ड का नाम तक नहीं है। क्लाइव और वाट्सन ने प्लासी के युद्ध छिड़ने के पहले तक सिराजुद्दौला के साथ जो पत्र-व्यवहार किया था, उसमें किसी जगह पर भी कालकोठरी की उक्त विषम घटना का आभास नहीं पाया जाता। सिराजुद्दौला और अँग्रेज़ों के बीच जो सुलह हुई, उसमें भी इस हत्याकाण्ड का उल्लेख नहीं था। इस पर सुप्रख्यात अँग्रेज़ लेखक ओरटन ने बड़ा अफ़सोस जाहिर किया है

और लिखा–है "कालकोठड़ी के कष्टों का कुछ बदला नहीं मिला और इसका न मिलना सन्धि पर बड़ा भारी धब्बा है। उस घोर अत्याचार के लिये इस सन्धि-पत्र में कहीं भी उचित क्षमाप्रार्थना नहीं की गई है। शान्ति अवश्य चाहिये थी, परन्तु एसी शान्ति बहुत ही महँगी है, जिसमें जातीय अपमान् हो ?" थरटन के इन वाक्यों से क्या ध्वनित होता है? यही न कि सन्धि—पत्र में उक्त घटना का कहीं पता तक नहीं था। कलकत्ते पर पुनः अधिकार जमाने के लिये एक एक करके जो अँग्रेज़ मद्रास से बङ्गाल आये थे, उन सभी ने नवाब सिराजुद्दौला को पत्र लिखे थे। अगर कालकोठड़ी की घटना सत्य होती तो इन सभी पत्रों में उसका अवश्य ही उल्लेख होता। १५ अगस्त को मेजर किलप्याट्रिक ने एक नम्रता-पूर्ण पत्र नवाब सिराजुद्दौला के नाम भेजा था, उसमें उन्होंने उस सख्ती के बर्ताव की शिकायत की थी जो नवाब की ओर से अँग्रेज़ों की कम्पनी के साथ किया गया था और साथ ही में इस बात का विश्वास दिलाया गया था कि इतना होजाने पर भी उनके विचार नवाब के लिये उतने ही अच्छे हैं, जितने पहले थे। कर्नल क्लाईव के एक पत्र का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। एक दूसरे पत्र में कर्नल क्लाईव ने नवाब को लिखा था—"एडमिरल वाट्सन जो बादशाह के विजयी जहाजों के कप्तान हैं और मैं स्वयं जो एक सिपाही हूँ और जिस की दक्षिण की विजय का वृत्तान्त आपके कानों तक पहुँचा होगा, दोनों उस हानि का बदला लेने आ रहे हैं जो आपने अँग्रेज़ कम्पनी को पहुँचाई है, और यह आपके न्यायोचित विचारों के अनुकूल होगा कि आप अपने देश को लड़ाई का मैदान न बनाकर कम्पनी के नुक़सान की भरपाई कर दें।

कालकोठड़ी हत्याकाण्ड के आविष्कर्त्ता स्वयं हालवेल साहब ने सन् १७६० की चौथी अगस्त को सिलेक्ट कमेटी के सामने जिन मन्तव्यों को पढ़ा था, उनमें भी कहीं स्पष्ट शब्दों में कालकोठड़ी की घटना का उल्लेख

नहीं है। मीरजाफ़र के साथ अंग्रेज़ों की जो सन्धि हुई थी उसमें भी कालकोठड़ी का नामोनिशान नहीं है। कुछ वर्ष हुए डाक्टर भोलानाथ ने कालकोठड़ी पर एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने काल-कोठड़ी के हत्याकाण्ड को अस्वीकार किया है। राजशाही के वकील और "सिराजुद्दौला" नामक ग्रन्थ के लेखक "भारती" ने इस सम्बन्ध में एक लेख लिखा था, जिसमें आपने प्रकट किया था—

"हालवेल कथित १४६ कैदियों का कारागृह होना विशेष सन्देह जनक है। इसका कारण यह है कि जिस दिन हालवेल साहब ने दुर्गरक्षा का भार ग्रहण किया उस दिन दुर्ग में १६० आदमी होने की बात इतिहास में लिखी है। इन १६० आदमियों में दो दिनों की लड़ाई में कितने ही मीरजाफ़र की कृपा से सुरक्षित रूप से कलकत्ते पहुँच गये थे तब १४६ आदमी आये कहां से? इस प्रकार और भी अनेक प्रमाणों से यह प्रमाणित होता है कि कालकोठड़ी की घटना घटित नहीं हुई। यह हालवेल साहब की कल्पना का आविष्कार-मात्र है।" अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि हालवेल साहब ने इस हत्याकाण्ड की कल्पना कब और क्यों की?

हालवेल और कालकोठड़ी

कालकोठड़ी के हत्याकाण्ड की कहानी कब और किसके द्वारा प्रकट हुई। इसका हाल दिलचस्पी से खाली नहीं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका प्रधान प्रचारक या आविष्कर्त्ता हालवेल था। सन् १७५७ ईस्वी की २८ वीं फरवरी को उन्होंने अपने प्रियबन्धु विलियम डेविस को जो पत्र लिखा था, उसी से कालकोठड़ी के हत्याकाण्ड का पहला और विस्तीर्ण परिचय मिला था। जब १७५७ में उन्होंने साईरन नामक जहाज पर चढ़ कर विलायत की यात्रा की तो जहाज पर बैठे बैठे उसी बेकारी की हालत में उन्होंने इस विषाद-पूर्ण कहानी की रचना की थी। इसी-लिये इसका कोई प्रमाण नहीं पाया जाता कि प्लासी युद्ध के पहले तक

सर्वसाधारण को इसका कुछ भी ज्ञान था। प्लासी युद्ध के पश्चात् जिस समय इङ्गलेण्ड के निवासियों ने भारत प्रवासी अँग्रेज़ सौदागरों की अपकीर्ति और अत्याचारों के विषय में रौरा मचाना शुरू किया था उसी समय हालवेल साहब का उक्त-पत्र जनता के सामने उपस्थित किया गया था, जिसे पढ़कर इङ्गलेण्ड के स्त्री पुरुषों का हृदय कांप उठा ? वे सिराजुद्दौला को राक्षस और पिशाच समझने लगे। इससे अंग्रेज़ों के अत्याचारों की कहानियां विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गईं ? सभ्य संसार में सिराजुद्दौला के कलङ्कों का शोर मचने लगा।

उस समय की चारों ओर की अवस्था का सूक्ष्मभाव से आलोचना करने पर कालकोठड़ी के अस्तित्व में दरअसल घोर सन्देह उत्पन्न होता है। अब सवाल यह है कि इस घटना का आविष्कार करने में हालवेल ने क्या लाभ सोचा ? इसका थोड़ा सा उत्तर ऊपर की पंक्तियों में दिया गया है। हालवेल साहब की यह कल्पना अहेतुक नहीं थी। यह कल्पना क्यों हुई थी ? इसके कई कारण हैं ! फ्रान्सीसी हाकिम डुप्ले ने भारत में अपने देश के हाकिमों की सहानुभूति और सहायता नहीं पाई, इसलिये उनका अधःपतन हुआ। उनके अधःपतन से भारत में फ्रान्सीसियों का अधःपतन हुआ। हालवेल को शायद इस बात की चिन्ता रही हो कि कहीं-भारत के अंग्रेज़ भी विलायत की सहानुभूति और सहायता न खो बैठें। शायद इसी चिन्ता के फल से सिराजुद्दौला के चरित्र में चरम नृशंसता का आरोप करके हालवेल की कल्पना ने कालकोठड़ी का हत्याकाण्ड तैय्यार किया होगा ? हम ऊपर कह चुके हैं कि कालकोठड़ी के हत्याकाण्ड का समाचार सुनकर विलायतवालों का हृदय कांप उठा था। कितने ही लोगों का ख्याल है कि एक स्वाधीन नवाब के अकारण ही राजच्युत किये जाने से शायद भारतस्थित अंग्रेज़ों के नाम पर घोर कलङ्क लगेगा, बस इसी कलङ्क से छुटकारा पाने के लिये उक्त हत्याकाण्ड का आविष्कार किया था। इस प्रकार इस विषय में अनेक लोगों के अनेक मत हैं, पर बहुत से इतिहासज्ञ कालकोठड़ी के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते।

कालकोठड़ी का स्मारक

अंग्रेज़ी इतिहास लेखकों के मतानुसार कालकोठड़ी का बड़ा महत्व है। उसने हिन्दुस्थान में ब्रिटिश राज्य-शक्ति की नींव डाली। यदि यह सत्य है तो क्या कारण है कि कम्पनी का बनाया हुआ कालकोठड़ी का कोई स्मारक नहीं पाया जाता। कानपुर के हत्याकाण्ड का स्मृति-स्तम्भ बड़े यत्न के साथ सुरक्षित रखा गया है। मणिपुर के हत्याकाण्ड को चिरस्मरणीय बनाने के लिये भी स्मारक बनवाया गया है। ऐसी दशा में कोई कारण मालूम नहीं होता है कि कालकोठड़ी जैसी भयानक और महत्व पूर्ण घटना के लिये कम्पनी की ओर से स्मारक क्यों नहीं बनवाया गया। कहा जाता है कि हालवेल ने अपने निजी खर्च से एक स्मारक बनवाया था। स्मारक बनवाना कम्पनी का काम था। वह कम्पनी ने क्यों नहीं किया ? इसमें कोई न कोई रहस्य अवश्य होना चाहिये और बुद्धिमान पाठक इस रहस्य का पता बड़ी खूबी से लगा सकते हैं। कालकोठड़ी के वर्णन में जिन सब इतिहासों के नाम दिये हैं, उन सबमें इस स्मारक के सम्बन्ध में किसी बात का उल्लेख नहीं है। लार्ड कर्जन के शासन-काल के पहले तक कालकोठड़ी का कोई स्मारक नहीं पाया जाता था। कलकत्ते की हलमूस कम्पनी द्वारा प्रकाशित एक ग्रन्थ के पढ़ने से मालूम होता है कि सन् १८१८ में "कस्टम हाउस" बनने के लिये यह स्मारक तोड़ डाला गया। वेष्टिड् नामक एक अंग्रेज ने भी इस बात की पुष्टि की है। वेष्टिड् लिखता है "कालकोठड़ी में जो लोग मारे गये थे, सिर्फ उन्हीं के लिये नहीं, परन्तु जिन लोगों ने दुर्ग रक्षा के लिये आत्म-विसर्जन किया था, उनके स्मारक के लिये भी यह कीर्ति स्तम्भ बनवाया गया था।" पर यहां सवाल यह उठता है कि एक मामूली कस्टम-घर बनवाने के लिये यह स्मारक क्यों तोड़ा गया ? क्या यह स्मारक इतना नगण्य समझा गया कि एक मामूली कस्टमघर के बनवाने के लिये वह तोड़ डाला गया। जिस स्थान पर, अंग्रेज इतिहास लेखकों के मतानुसार

उनके १२३ भाइयों ने प्राण विसर्जन किये, जो ब्रिटिश शासन की नींव है, उसे गिरा देना क्या कोई अंग्रेज़ बरदाश्त कर सकता था। यह बातें ऐसी हैं, जिनपर ज़रा गहरे विचार की आवश्यकता है। हमें तो दो बातें मालूम होती है या तो स्मारक था ही नहीं, अगर था तो वह असत्य या महत्त्व–हीन समझ कर गिरा दिया गया।

बहुत वर्षों के बाद हमारे आला दिमाग़ लार्ड कर्जन ने कलकत्ते के लालदीघी के उत्तर—पश्चिम में इस कालकोठड़ी के स्मारक की प्रतिष्ठा की थी। कहा जाता है कि वर्षों से लार्ड कर्जन के दिमाग़ में यह ख्याल आ रहा था कि कालकोठड़ी के स्मारक बनने की ज़रूरत है। जिस दिन आपने इस स्मारक का उद्घाटन किया था, उस समय आपने यह बात कही थी। उनके कथन से जान पड़ा कि जब वे भारत के लिये रवाना हुए थे तब उनके साथ वेष्टिड साहब कृत कलकत्ता–पुरातत्त्व की पुस्तक थी। आपके कथनानुसार इसी पुस्तक से आपने कलकत्ते की काल-कोठड़ी का विशेष हाल जाना था। पर यह स्मारक पहले क्यों तोड़ा गया इसका समुचित निर्णय लार्ड कर्जन नहीं कर सके। उन्होंने कहा था—"No one quite knows why" अर्थात यह कोई नहीं जानता कि यह स्मारक क्यों तोड़ा गया ?

लार्ड कर्जन ही के कथन से मालूम हुआ कि वेष्टिड की पुस्तक पढ़कर जब उन्होंने हालवेल द्वारा एक स्मारक प्रतिष्ठा का हाल जाना, तब उन्हें उसके सम्बन्ध में पूरी पूरी बातें जानने का औत्सुक्य हुआ। उन्होंने अपनी जांच के बाद यह निर्णय किया—"इस समय जिस जगह कलकत्ते का डाकघर है उसी जगह पुराने किले के भीतर कालकोठड़ी थी" इसी स्थान को लार्ड कर्जन महोदय ने सर्व साधारण के दृष्टि गोचर करने की व्यवस्था की। इसके अलावा लार्ड कर्जन महोदय ने हालवेल से भी आगे बढ़कर एक कार्य किया। लार्ड महाशय फरमाते हैं—"हाल-वेल ने जिस स्मारक की प्रतिष्ठा की है उसमें सिर्फ पचास आदमियों का

नाम लिखा था । मैंने और भी बीस आदमियों के नाम संग्रह किये हैं जिन्होंने कालकोठड़ी में जीवनविसर्जित किया था ! इसके अलावा जो बीस आदमी कालकोठड़ी से निकल कर बाद को उसकी यन्त्रणा से मर गये, मैंने उनका भी नाम संग्रह किया है । फलतः कुल अस्सी आदमियों के नाम मेरे द्वारा स्मारक पर लगाये गये हैं ।"

कहा जाता है कि कालकोठड़ी में १४६ आदमी कैद हुए । इनमें से सिर्फ २३ बचे थे । यदि २३ बचे तो १२३ मरे । स्मारक में नाम दिये गये हैं सिर्फ ८० आदमियों के । क्या लार्ड कर्जन इतना यत्न करने पर भी सब के नाम नहीं जान सके ? अगर शेष के भी नाम प्रकट हो जाते तो लार्ड कर्जन के हक में भी कुछ अच्छा होता । हम तो यह बात साफ़ कहेंगे कि लार्ड कर्जन इस बात का कोई पक्का प्रमाण न दे सके कि पहले कालकोठड़ी का कोई स्मारक था । अगर था, तो वह क्यों गिराया गया ? अगर बिजली आदि से गिरा तो उसका पुनरुद्धार क्यों नहीं किया गया ? इन सब बातों की मीमांसा लार्ड कर्जन को कर देनी थी । उन्होंने इन बातों पर कुछ भी प्रकाश न डाला । जब उनके इस स्मारक स्थापना का विरोध होने लगा और बङ्गाल के इतिहास मर्मज्ञ श्रीयुत बिहारीलाल सरकार ने अनेक सुदृढ़ ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया कि कालकोठड़ी के हत्याकाण्ड का अस्तित्व ही नहीं था, तब लार्ड कर्जन बहुत बिगड़े और उन्होंने अपनी एक वक्तृता में कहा—

"मैंने सुना है कि अनेक लोग ऐसा कहते हैं कि कलकत्ते का काल-कोठड़ीवाला हत्याकाण्ड-कानपुर हत्याकाण्ड आदि जो घटनायें हुई हैं उनकी स्मृतिरक्षा का कोई उपयोग नहीं होना चाहिये । बल्कि ऐसी चेष्टा करनी चाहिये जिससे यह घटनाएं विस्मृत के गर्भ में चिरकाल तक विलीन हो जांय । कितने ही लोगों ने युक्ति प्रमाण दे कर इस विषय में तर्क वितर्क भी किया है । किसी ड्योढ़ सयाने ने तो एक लम्बा चौड़ा प्रबन्ध लिखकर यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि कलकत्ते की कालकोठड़ी

की घटना ही झूठ है याने कालकोठरी की हत्या नहीं हुई। उन लोगों का हेतुवाद है कि जो लोग उस समय वहां उपस्थित थे उन लोगों ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया। इस सम्बन्ध में मेरा मत बिलकुल ही जुदा है। भीषण दुर्घटना मानवी इतिहास का अंग है। विपद्-विभिषिकाएँ तो हुआ ही करती हैं। इन सब बातों का अस्तित्व स्वीकार न करना बहाना मात्र है। भारत के इतिहास में ऐसी घटनाओं का अभाव नहीं। जहां जातिगतद्वेष है, वहीं ऐसे निर्मम, कठोर, और लज्जाकर कुकार्य्यों का अनुष्ठान हुआ करता है। सिपाही विद्रोह उसका ज्वलन्त दृष्टान्त है; किन्तु इसी से इन सब घटनाओं को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं।" इसके बाद लार्ड कर्जन महोदय उपदेश करते हैं:—"क्षमा-गुण से वह विद्वेष पोंछ डालो—शमगुण से उसे शान्त करो—किन्तु एक व्यर्थ के घृणित संस्कार के वशवर्त्ती होकर तथा उसे अस्वीकार करके सम्मान योग्य व्यक्तिगण के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने का सुयोग न त्यागो। यही सब घटनाएँ कालगति का पथ-चिन्ह है। सर्वनियन्ता परमेश्वर ही इसका नियन्ता है। जिस सोपान मार्ग के अवलम्बन से अंग्रेज और भारतवासी एकता और बन्धुत्व के अङ्क में सम्मिलित होने चले हैं, उस सोपान पथ का कोई अंश या पाया नररक्त से अगर परिप्लुत हुआ हो तो वह कदापि उपेक्षणीय या परिवर्जनीय नहीं, बल्कि कलङ्क पोंछ कर शुद्ध भाव से उसकी रक्षा करना कर्त्तव्य है, जिस से हमारे बाद के लोग इससे शिक्षा लाभ कर सकें।" + कितनी अच्छी दलील है? प्रश्न क्या था और उत्तर क्या दिया गया? प्रश्न था, इतिहास के सम्बन्ध में और उत्तर में दी गई तत्वज्ञान की बातें। बलिहारी है! पाठक खुद ही लार्ड कर्जन की उक्ति का मूल्य समझ लें। इसके अलावा उक्त वाक्यों से यह भी पता लगता है कि लार्ड कर्जन कैसे हृदय के आदमी थे।

+ श्रीयुत बिहारीलाल सरकार के एक लेख से सङ्कलित

विश्वासघात

अंग्रेजों की कूटनीति संसार में प्रसिद्ध है। उन्होंने कूटनीति (diplomacy) ही के बल पर इस विशाल—साम्राज्य का संगठन किया था। सिराजुद्दौला ने जब से कलकत्ते पर अधिकार कर लिया था तब से अंग्रेज़ बड़े बेचैन थे। वे नाना प्रकार के षड्यन्त्रों को संगठित करने में लगे हुए थे। इधर पुर्निया की बग़ावत में फंसे रहने के कारण सिराजुद्दौला को अंग्रेजों पर यथेष्ट देखरेख करने का अवसर नहीं मिला। इस बीच में उन्होंने सिराजुद्दौला के कुछ आदमियों को फोड़ लिया। बेन्डु नामक एक पादरी अंग्रेजों के अनुरोध से कई सप्ताह तक कलकत्ते में रहा और वह गुप्तरूप से वहां की खबरें इकट्ठी कर अंग्रेजों के पास भेजता रहा था। इसकी चिट्ठी से पलता के अंग्रेजों को मालूम हुआ कि "सिराजुद्दौला के आदमी-मानिकचन्द-ने नदी की ओर बहुत सी तोपें लगा कर अपना प्रभाव जमा रक्खा है। पर ये सब उसके दिखावे हैं। तोपें निकम्मे और टूटी फूटी अवस्था में हैं। टानां के किले में सिर्फ २०० सिपाही हैं, हुगली के किले में ५० आदमी और बाहर ५०० अदमियों से ज्यादा नहीं हैं।" निर्लज्ज अमीचन्द ने लिखा था—"लोग नवाब के डर से कुछ कहने का साहस नहीं करते हैं, परन्तु अंग्रेजों के पुनर्गमन के लिये ख्वाजावाजिद आदि प्रधान सौदागर बड़े उत्सुक हो रहे हैं।" हालवेल साहब को खबर मिली:— "कलकत्ते का किला एक प्रकार से अरक्षित है। उसके चारों बुर्ज टूटे फूटे निकम्मे पड़े हैं। शहर के निवासी बेखटके खर्राटे की नींद सो रहे हैं।" अंग्रेज लोग किस कूटनीतिज्ञता से काम करते थे, उपर्युक्त बातें उसका नमूना है। मानिकचन्द, जिसका जिक्र पहले कई दफ़ा आ चुका है और जो सिराजुद्दौला का बनाया हुआ आदमी था, यह विश्वास किये बैठा था कि पुर्निया के युद्ध में

सिराजुद्दौला का नाश हो जायगा। जब ऐसा नहीं हुआ तो वह गुप्तरूप से अंग्रेजों की मदद और प्रकट रूप से कलकत्ते की रक्षा के लिये बाहरी आडम्बर रचने लगा।

इस तरफ के तो इस प्रकार के समाचार अंग्रेजों को मिल रहे थे और उस तरफ मद्रास स्थित अंग्रेज लोग कलकत्ते के पुनरुद्धार के लिये विचार कर रहे थे। मद्रास में अंग्रेजों में किस प्रकार की मन्त्रणाएं हुईं, इस पर विशेष लिखने की आश्यकता नहीं। क्लाईव और वाट्सन की अध्यक्षता में मद्रास से एक फ़ौज रवाना की गई। यहां यह लिखना आवश्यक हैं कि जिन्होंने क्लाईव और वाट्सन को बंगाल भेजा था उन्होंने किसी न किसी तरह कलकत्ते के वाणिज्याधिकार ही को फिर से प्राप्त करने की कोशिश की थी और बिना मारकाट और रक्तपात के यह कार्य्य सिद्ध करने के लिये उन्होंने दक्षिण के निज़ाम और अरकाट के नवाब से सिफ़ारिश की चिट्ठियां लिखा कर भेजीं थीं। परन्तु आगे क्लाइव और वाट्सन ने क्या किया? वे हमेशा इसी चिन्ता में निमग्न रहने लगे कि सेना की सहायता से बंगाल को लूट कर कौन कितना धन प्राप्त करें।

कुछ भी हो अंग्रेजों ने बहुत सी सैनिक तैयारी के साथ मद्रास से आकर पलता बंदर पर जहाजों के लँगर डाले। सेनापति वाट्सन ने सिराजुद्दौला को इस आशय का एक पत्र लिखा ×"मेरे मालिक, इग्लैंड के नरेश ने (जिनका नाम संसार के अन्य राजाओं में आदरणीय है) मुझे इस प्रदेश में ईस्टइन्डिया कंपनी के स्वत्वों और अधिकारों की रक्षा के लिये एक बड़ी जहाजी सेना के साथ भेजा है। जो लाभ मेरे प्रिय राजा की प्रजा के व्यापार से मुगल राज्य को हुए हैं उन्हें गिनाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे स्पष्ट हीं हैं। ऐसी दशा में यह सुन कर मुझे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि आपने एक बड़ी फ़ौज लेकर कंपनी की कोठियों पर आक्रमण किया और नौकरों को जबरदस्ती निकाल दिया एवं उनका माल असबाब, जो बहुत कीमती था, लूट

लिया और मेरे राजा की बहुत सी प्रजा को मार डाला। मैं कंपनी के नौकरों को फिर उनकी कोठियों तथा मकानों में बसाने आया हूँ। आशा करता हूँ कि आप उन्हें फिर वे ही पुराने हक और स्वतन्त्रता देंगे, जो उन्हें पहले हासिल थे। आपको वे भलाइयां याद रखनी चाहिये जो आपके देश में अंग्रेजों के रहने के कारण हुई हैं। मैं निःसन्देह आशा करता हूं कि आप इनके उन घावों को भरने और हानियों को पूरी करने के लिये राजी हो जावेंगे जो आपने पहुँचायी हैं और इस प्रकार शान्ति—पूर्वक इन क्लेशों का अन्त करके मेरे उस राजा के मित्र बन जावेंगे जो शान्तिप्रिय और न्याय परायण है। इससे अधिक और मैं क्या कहूं?"

कलकत्ते पर आक्रमण

कलकत्ते के किले का क्या हाल हो रहा था, इसका पता, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, अंग्रेजों को लग गया था। क्लाइव ससैन्य कलकत्ते पर आक्रमण करने के लिये निकला। २७ दिसम्बर को वह मायापुर पहुंचा। यहीं सिपाहियों ने जहाज से उतर कर बजबज किले की ओर यात्रा की। बजबज के किले पर सहज ही अधिकार कर लिया गया। यह खबर ज्योंही कलकत्ते के हाकिम मानिकचन्द को लगी, त्योंही वह ससैन्य, चाहे दिखावे के लिये ही क्यों न हो, दौड़ आया। फौरन ही दोनों दलों में युद्ध शुरू हो गया। कितने ही इतिहासवेत्ता कहते हैं कि इस रणपरीक्षा में मानिकचन्द ने अपने वीरोचित कर्त्तव्य पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि अंग्रेजों द्वारा दो चार ही गोले चलाये जाने पर वह भग गया। एक अंग्रेज इतिहासलेखक ने मज़ाक करते हुए लिखा है:—

"मानिकचन्द की पगड़ी के पास से होकर ज्यों ही बन्दूक की गोली सनसनाती हुई निकली कि वह चट चम्पत हो गया। मैदान में फिर वह क्षण मात्र भी न ठहरा। बज बज छोड़ कर, कलकत्ता छोड़ कर, कांपता हुआ वह सीधा एक दम मुर्शिदाबाद भाग गया।" हमारे

उक्त इतिहास लेखक ने उसका कुछ निर्णय न करके उसे भीरू तथा कायर कह कर उसका मजाक उड़ाया है। अंग्रेजों के साथ माणिकचन्द्र का जो मेल जोल चल रहा था, क्या माणिकचन्द्र के भागने से उसका कोई सम्बन्ध न था।

इसके बाद युद्ध बन्द हो गया। क्लाईव और वाट्सन दूसरी जनवरी को जिस समय कलकत्ते के किले के पास पहुंचे तो किले के सिपाहियों ने दो चार ही गोले चला कर पीठ दिखादी। सूने किले पर क्लाईव अपनी विजय पताका बड़ी जोरों के साथ उड़ाने लगा।

हुगली में लूटमार

कलकत्ते के प्रायः अरक्षित किले पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अंग्रेज विजय के मद से उन्मत्त हो गये। वे तरह तरह के अत्याचार करने लगे। अंग्रेज़ इतिहासकारों ने अंग्रेजों की अन्धेरी बाजू को छिपाने की चेष्टा की है। पर सत्य को आप एक समय तक दबा सकते हैं, सदा के लिये नहीं। सत्य कभी प्रकट हो ही जाता है। कलकत्ते पर अधिकार करने के बाद तत्कालीन कुछ अंग्रेज सैनिकों ने जो काम किया, वह सैनिकों के योग्य नहीं था। उन्होंने हुगली में लूटमार करना शुरू कर दिया।

हुगली की लूटमार के विषय में मुसलमान इतिहास लेखक सैयद गुलाम हुसेन ने लिखा है—

"अंग्रेज़ लोग जिस समय हुगली को लूटने में व्यस्त हो रहे थे, उस समय विलायत से उन्हें यह समाचार मिला कि फ्रान्स के साथ इङ्गलैण्ड फिर से युद्ध आरम्भ हो गया है।" हुगली की लूट का ज़िक्र करते हुए एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहास लेखक ने लिखा था—"बस लोग कह रहे थे कि बड़ी मुद्दत से अंग्रेज़ों की नौका पाप-भार से पूर्ण हुई है।"

अंग्रेज़ी सैनिकों ने हुगली को बुरी तरह लूटा। उन्होंने उस समय एक तरह से हुगली का सर्वनाश कर डाला। हुगली के बड़े बड़े आली-शान और विशाल भवनों को धूल में मिला दिया। कितने ही भूखे कङ्गालों की कुटिया जलाकर खाक कर दी गईं। हुगली का इतिहास प्रसिद्ध समृद्धिशाली नगर स्मशान की राख में परिणत हो गया। इस लूट का समाचार पाकर नौजवान सिराजुद्दौला के मन पर क्या असर होना चाहिये था? इसका अनुमान पाठक स्वयं लगा लें। इतने पर भी सिराजुद्दौला ने युद्ध को टालने की बड़ी चेष्टा की। इसका यह कारण था कि सिराजुद्दौला यह जान गया था कि अंग्रेज़ों ने कई प्रकार के प्रलोभन देकर उसके अधिकारियों को फोड़ लिया है और उसकी आन्तरिक स्थिति निर्बल हो गई है। सिराजुद्दौला के उक्त पत्र का अंग्रेज़ों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपनी मांगे दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ाते रहे।

सिराजुद्दौला ने सुलह की बातचीत करने के लिये कलकत्ते के पास मुकाम किया। यहाँ एक और घटना घटी जिसने सिराजुद्दौला को दुःखित और सशंक किया। क्लाइव के दो प्रतिनिधि नवाब से सुलह की बातचीत करने आये थे। वे दूसरे दिन रात को गुम हो गये। नवाब को मालूम हुआ कि ये लोग सुलह के लिये नहीं पर उसकी स्थिति का भेद लेने आये थे। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समय नवाब की स्थिति किंकर्तव्यविमूढ़ सी हो रही थी। उसके अन्तःकरण में निराशा और भय के बादल मण्डरा रहे थे। अंग्रेजों के अतिरिक्त उसे बाहर के अन्य आक्रमणों का भी भय था। वह इस समय केवल २० वर्ष का नवयुवक था। अपने नाना अलीवर्दीखां के लाड प्यार के कारण उसका जीवन संगठित न हो पाया था। कठोर परिस्थियों में जिन लोगों के जीवन का उद्गम और विकास होता है, वे संसार की कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करने को सक्षम हो जाते हैं। बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी वे अपने धैर्य को नहीं खोते। पर सिराजुद्दौला में यह बात

नहीं थी। उसके आस पास प्रतिकूल वायुमण्डल था। उसकी फ़ौजें समय पर वेतन न मिलने के कारण असन्तुष्ट थीं। उसके अधिकारी भी उससे अन्दर ही अन्दर ख़िलाफ़ हो गये थे। अंग्रेज़ों ने बड़ी बड़ी रिश्वतें देकर उन्हें अपनी ओर फोड़ लिया था। इन्हीं सब बातों से प्रभावित होकर सिराजुद्दौला ने अंग्रेज़ों से जो सन्धि की थी, उसमें उसकी पराजय-मनोवृत्ति का पता चलता है। यह सन्धि अलीनगर की सन्धि के नाम से मशहूर है। इसकी निम्न लिखित धाराएं थीं।

"ईश्वर और उसके दूतगण साक्षी हैं कि आज अंग्रेज़ों के साथ जो सन्धि की है, उससे च्युत न होऊंगा। उन पर मैं सदा अनुग्रह प्रकाश करूंगा" नवाब

१ दिल्ली के बादशाह द्वारा अंग्रेज़ कम्पनी को जो अधिकार और स्वत्व दिये गये हैं, उन पर कोई आपत्ति नहीं की जायगी। उसमें जो माफ़ी है वह भी स्वीकार की जायगी। वह कभी नहीं छिनी जायगी। फ़रमान में जो सब गांव दिये हैं—यद्यपि पहले के सुबेदारों ने उनके देने में आपत्ति की थी, किन्तु अब वे सब दिये जावेंगे। पर अंग्रेज़ कम्पनी इन गांवों के जमींदारों को बिना कारण क्षति नहीं पहुँचा सकेगी।

२ अंग्रेज़ों के हस्ताक्षर के साथ, बङ्गाल, बिहार और उड़ीसे के भीतर जिस किसी जगह से अंग्रेज़ों का माल आयगा या जायगा उसका टेक्स या महसूल नहीं लिया जायगा।

३ नवाब ने जो कम्पनी की कोठियां लेलीं हैं, उन्हें उनको लौटा देना होगा। इसी के साथ कम्पनी के लोगों का जो रुपया पैसा आदि ले लिया गया है, वह भी लौटा देना पड़ेगा। जो चीज़ें लूट ली गई हैं, उनका वाज़िब मूल्य नवाब को अदा करना पड़ेगा।

४ हम अंग्रेज़ जिस तरह आवश्यक और उचित समझेंगे, उसी तरह अपने कलकत्ते के किले को बनावेंगे या मज़बूत करेंगे।

४ मुर्शिदाबाद में जैसे सिक्के चलते हैं, उतने वज़न के वैसे ही सिक्के अंग्रेज़ प्रस्तुत करेंगे। वे भी देश में चलेंगे और उन पर कोई बट्टा न ले सकेगा।

उपरोक्त सन्धिपत्र से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि सिराजुद्दौला की इच्छा अंग्रेजों से युद्ध छेड़ने की नहीं थी। इस बात को कर्नल मालेसन (Col. Malleson) प्रभृति अंग्रेज लेखकों ने भी स्वीकार की है।

नवाब की कमज़ोरी और उसकी विपरीत परिस्थितियों ने अंग्रेज़ों के उत्साह को बहुत बढ़ा दिया। इसके अतिरिक्त यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि नवाब की अपेक्षा अंग्रेज अधिक चतुर, चालाक राजनीतिज्ञ और अवसर का फायदा उठाने वाले थे। सेना संचालन में भी इनकी विशेष योग्यता थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने ग्रन्थ "Discovery of India" में इस बात को स्वीकार किया है। कुछ भी हो, नवाब शान्ति चाहता था। उधर अंग्रेज कम्पनी किसी न किसी प्रकार छेड़छाड़ करने पर तुली हुई थी।

इसी बीच में कुछ अन्तर्राष्ट्रिय घटना चक्र चला। यूरोप में अंग्रेज़ों और फ्रेञ्चों में युद्ध घोषित हो गया। अतएव, अंग्रेज लोग भारत में फ्रान्सीसियों का सर्वनाश करने को तुल गये। उन्होंने फ्रान्सीसियों की बस्ती चन्द्रनगर पर आक्रमण कर दिया। यह भी नवाब को बुरा लगा; क्योंकि फ्रान्सीसियों के साथ उसके अच्छे सम्बन्ध थे। इस आक्रमण में भी अंग्रेज़ों की कुटिल नीति की विजय हुई।

फ्रान्सीसियों ने वीरतापूर्वक किले की रक्षा करने का संकल्प किया। पास ही नन्द कुमार की सेना तैयार खड़ी थी। इससे क्लाइव भयभीत हुआ। परन्तु विपत्ति पड़ने पर तत्कालीन उपाय सोचने में वह पूरा प्रवीण था। उसने शाम, दाम, दण्ड भेद आदि, सभी नीतियों से काम लेना शुरू किया। उसने अमीचन्द को नन्दकुमार के डेरे में भेजा। काम बन गया। अमीचन्द सहज ही में कृतकार्य्य हो गया। नन्दकुमार अपनी

सेना लेकर डंका बजाते हुए दूर स्थान में चले गये। जिन प्रतिभाशाली इतिहास लेखकों ने क्लाइव्ह का गौरव बढ़ाने के लिये लेखनी उठाई है, वे भी स्पष्ट शब्दों में लिख गये हैं—"इस युद्ध में केवल घूंस ही के जोर से नन्दकुमार परास्त हुआ था।" थरटन लिखता है:—"हुगली के फौजदार नन्दकुमार की आधीनता में नवाब के कुछ सिपाही चन्द्रनगर की सहायता के लिये पहले ही से वहां ठहरे हुये थे॥। परन्तु अमीचन्द ने नन्दकुमार को अंग्रेजों के अनुकूल रहने के लिये कुछ रुपया दे दिया, और जब वे पहुँचे तो सिराजुद्दौला के सिपाही चन्द्रनगर से हटा लिये गये।" इस स्थान पर नन्दकुमार ने जैसी घृणित वृत्ति का परिचय दिया, उसे हम किसी भी दशा में नहीं सराह सकते। उनके इस कार्य पर प्रत्येक देशवासी को घृणा होगी। हां, आगे चलकर उन्होंने जिस अलौकिक आदर्श का परिचय दिया वह स्तुत्य है। इसी प्रकार इस युद्ध में अंग्रेजों ने और भी षड्यन्त्र किये। अंग्रेजों के इतिहास से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि अबतक उनकी विजय कूटनीति की थी। इसी चन्द्रनगर की विजय को ले लीजिये। इसे अंग्रेजों ने "चन्द्रनगर की अलौकिक विजय" कहा है। इस विजय के एक रहस्य का उद्घाटन तो ऊपर हो ही चुका है। अब दूसरे रहस्य का उद्घाटन करते हैं जिस पर आधुनिक इतिहासवेत्ताओं ने जान या बेजान कर पर्दा डाल रखा है।

अंग्रेजो की अग्रगति को रोकने के लिये फ्रान्सीसियों ने गुप्तरूप से अनेक जहाज जलमग्न कर रखे थे। फ्रान्सीसियों के टेरान नामक जल-सैनिक को अंग्रेजों ने किसी तरह फोड़ लिया। इसने फ्रान्सीसियों के सब गुप्त रहस्य को प्रकट कर चन्द्रनगर के सर्वनाश में बड़ी सहायता दी। अगर टेरान इस गुप्त रहस्य को प्रकट न करता तो यह दुःसाध्य था कि अंग्रेज लोग इतने शीघ्र चन्द्रनगर के पास पहुँच सकते। खुद लार्ड क्लाइव्ह ने भी इस बात को स्वीकार किया है।

॥यह सेना फ्रांसीसियों की सहायता के लिये नवाब ने भेजी थी।

चन्द्रनगर की विजय के लिये १० अप्रेल सन् १७५७ को चुने हुए सदस्यों की सभा में क्लाइव्ह ने कहा था:—

"ईस्टइण्डिया कम्पनी को तथा उसके कर्मचारियों को उस बुद्धिमान और धनिक अमीचन्द् का चिर कृतज्ञ होना चाहिये जिसकी बदौलत हमें दीवान नन्दकुमार की सहायता और सहानुभूति प्राप्त हुई। जिस समय हमने हुगली पर आक्रमण किया था, उस समय नवाब की वह सेना, जो हुगली के तोपखानों से सम्बन्ध रखती थी, नन्द कुमार की आधीनता में, चन्द्रनगर के पास ही डेरा डाले पड़ी थी। यदि यह फौज वहां से न हटजाती तो हम लोगों के लिये चन्द्रनगर पर विजय पाना सर्वथा असम्भव था।"

इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने एक और चाल चली। हम ऊपर कह चुके हैं कि अंग्रेजों ने नवाब के दरबार में भयंकर षड्यन्त्र की सृष्टि कर रखी थी। उन्होंने मीर जाफर, जगत सेठ और राय दुर्लभ आदि से नवाब पर यह असर डलवाया कि अहमदशाह अब्दाली बंगाल पर आक्रमण करने आ रहा है। इसी से नवाब का ध्यान चन्द्रनगर से हट कर अहमदाबाद के आक्रमण की ओर लग गया और वह फ्रान्सीसियों की जैसी चाहिये वैसी सहायता न कर सका। इससे अंग्रेजों की बन आई। उनकी कूट नीति की विजय हुई। फ्रान्सीसियों की पराजय से सिराजुद्दौला की स्थिति और भी निर्बल हो गई।

भयंकर षड्यन्त्र

सुप्रसिद्ध अंग्रेज इतिहास लेखक कर्नल मालेसन ने लिखा है:—'नवाब को गिराने के लिये अंग्रेज निरन्तर चेष्टाएं कर रहे थे और अनेक हीन उपायों से वे उसके सेनापतियों को फोड़कर अपनी ओर मिला रहे थे।'

लॉर्ड क्लाइव ने हाऊस ऑफ कॉमन्स में गवाह देते हुए कहा था:—मैंने कभी इस बात को छुपाने की चेष्टा नहीं की। मेरा मत है कि ऐसी दशा में साधारणतः इस तरह के दगा फरेबों से काम निकाला जा सकता है। एक ही बार क्यों, ज़रूरत पड़ने पर मैं और भी सौ बार ऐसे काम करने को तैयार हूँ'।

कहने का मतलब यह है कि कंपनी के अधिकारियों ने पदपद पर कुटिलता से काम लिया। नवाब के प्रधान सेनापति मीरजाफर को नवाब बनाने का प्रलोभन देकर फोड़ लिया। उससे गुप्त रूप से एक सन्धि की, जिसकी निम्न लिखित धाराएं थीं।

"मैं जितने दिनों तक जीता रहूँगा, उतने दिनों तक इस सन्धि पत्र के नियमों का पालन करूंगा। ईश्वर और उसके दूत के सामने यह प्रतिज्ञा करता हूँ।

१ नवाब सिराजुद्दौला के साथ शान्ति के समय जो सन्धि हुई थी, उसकी शर्तें पालन करने में मैं सहमत हूँ।

२ देशी हो या विदेशी, जो अंग्रेजों का शत्रु होगा, वह मेरा भी होगा।

३ बंगाल में फ्रान्सीसियों की जो कोठियां हैं वे अंग्रेजों के अधिकार में चली जायेंगी। फ्रान्सीसियों को इस देश में बसने न दूंगा।

४ नवाब के कलकत्ते पर आक्रमण करने में अंग्रेजों की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति के लिये और सिपाहियों का खर्च अदा करने के लिये मैं उन्हें एक करोड़ रुपया दूंगा।

५ कलकत्ते के अंग्रेजों की जो चीजें लूटी गई हैं उनकी क्षतिपूर्त्ति के लिये पचास लाख रुपये दिये जावेंगे।

६ जेम्स मूर प्रभृति को माल लूटने के सम्बन्ध में क्षतिपूर्त्ति के बीस लाख रुपया देना मैं स्वीकार करता हूँ।

७ अर्मेनियों को क्षतिपूर्त्ति के लिए मैं ७ लाख रुपये दूंगा। जिस जिस परिमाण से क्षति पूर्ति की रकम देना होगी, उसका फैसला, एडमिरल वाट्सन, कर्नल क्लाइव, राजर डेकर, विलियम वाट्स, जेम्स किलपेट्रिक और रिचर्ड साहब करेंगे।

८ नाले के बाहर ६ हजार गज जमीन अंग्रेज कम्पनी को दूंगा।

९ कलकत्ते के दक्षिण कुलपी तक सब जगहों में अंग्रेजों की जमींदारी रहेगी। वहां के सब कर्मचारी अंग्रेजों के आधीन रहेंगे। वे सब दूसरे जमींदारों को जिस तरह माल गुजारी देते हैं, उसी तरह कम्पनी को देंगे।

१० जब मैं अंग्रेजों से सहायता के लिये फौज लूंगा तो उसका खर्च दूंगा।

११ हुगली के दक्षिण में मैं कहीं किला न बनाऊंगा

उक्त सन्धि प्लासी के युद्ध के पहले हुई थी। इससे भी पाठक समझ सकते हैं कि वाट्सन, क्लाईव प्रभृति ने प्लासी के युद्ध के पहले ही से सिराजुद्दौला को राज्यच्युत कर मीरजाफर को नवाब बनाने का निश्चय कर लिया था और इसी कार्य्य के लिये ये विविध षड्यन्त्रों की सृष्टि कर रहे थे। कहा जाता है कि इस षड्‌यन्त्र में कई उच्च वंश के लोग भी सम्मिलित हुए थे। कृष्ण नगर के महाराज कृष्णचन्द्र और

रानी भवानी भी इस षड्यन्त्र में शामिल थीं। रानी भवानी और कृष्णचन्द्र की बात बङ्गाल के सुप्रख्यात् कवि बाबू नवीनचन्द्र सेन ने "प्लासी युद्ध" में उल्लेख की है। बङ्गला भाषा के ग्रन्थ "क्षितीशवंशावलीचरित" में लिखा है:—

"नवाब सिराजुद्दौला का सर्वनाश करने के लिये मीरजाफर प्रभृति ने जो षड्यन्त्र रचा था, कृष्णचन्द्र भी उसमें शामिल थे। उस समय वे काली दर्शन का बहाना कर कालीघाट आकर क्लाइव से मिले और उन्होंने सिराजुद्दौला को राजच्युत करने की सलाह की। कृष्णचन्द्र भी इस षड्यन्त्र के प्रधान सञ्चालकों में थे। यही कारण है कि नवद्वीप में वे नमक हराम के नाम से धिक्कारे जाते हैं।"

इस प्रकार नवाब के अनेक उच्च कर्मचारी और देश के अनेक धनीमानियों को मिला कर अंग्रेज भीतर ही भीतर षड्यन्त्रों की सृष्टि कर रहे थे। इस पर भी मजा यह है कि ये ऊपर से नवाब के प्रति प्रेम दिखाने में त्रुटि नहीं करते थे। इसका एक उदाहरण देखिये। जिस समय मीरजाफर के साथ षड्यन्त्र चल रहा था, उसी समय एक आदमी ने पेशवा के पास से एक पत्र ला कर अंग्रेजों से भेंट की थी। उक्त पत्र में लिखा था कि मराठे २२ हजार सिपाहियों के साथ बङ्गाल पर आक्रमण करेंगे। यदि अंग्रेज उन्हें सहायता दें तो वे छः सप्ताह के अन्दर कलकत्ते पर आक्रमण कर सकेंगे। जो आदमी यह चिट्ठी लाया था, उसे अंग्रेज नहीं जानते थे। उसके लिये अंग्रेजों के मन में घोर सन्देह हुआ। उन्होंने ख्याल किया कि हमारा अभिप्राय जानने के लिये सिराजुद्दौला ने यह प्रपञ्च रचा है। कह नहीं सकते कि उक्त पत्र असली था या जाली, अंग्रेजों ने अपनी हितैषिता दिखलाने के लिये यह पत्र नवाब के पास भेज दिया। पत्र भेजने का और भी एक उद्देश यह हो सकता है कि यह पत्र पाकर नवाब, क्लाइव प्रभृति के जाल में, फंस जावे।

इसी प्रकार अंग्रेजों ने बड़े बड़े प्रलोभन देकर नवाब के कई बड़े २ अधिकारियों को फोड़ लिया था। ये अधिकारी ऊपर से तो अपने

आपको नवाब के हितैषी प्रगट करते थे, पर अन्दर ही अन्दर उसके नाश का भीषण षड्यन्त्र रच रहे थे।

सिराजुद्दौला की घबराहट

जब नवाब को विश्वासनीय साधन द्वारा यह मालूम हुआ कि उसका प्रधान सेनापति मीरजाफर भीतर ही भीतर अंग्रेजों से मिल गया है तो वह बहुत घबराया और उसने मीरजाफर को बुलवा भेजा। पर मीरजाफर नवाब के पास नहीं आया। इस पर नवाब खुद पालकी पर सवार होकर मीरजाफर की कोठी पर गया और गिड़गिड़ा कर वह अलीवर्दी खां की गद्दी की रक्षा करने का अनुरोध करने लगा। मीरजाफर ने कुरान पर हाथ रखकर नवाब को यह आश्वासन दिया कि वह नवाब को क धोखा न देगा और नवाब के पक्ष में तलवार उठाने से न हिचकेगा। सब प्रकार से मीरजाफर ने नवाब को ढाढस बंधाई। पर जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं अंग्रेजों के साथ उसकी सांठ-गांठ हो चुकी थी और अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला के बाद बंगाल का नवाब बनानेका उसे स्पष्ट वचन दे दिया था। इसलिये वह कुरान की कसम खाने पर भी नवाब के नाश का अन्दर ही अन्दर षड्यन्त्र करता रहा।

अन्य घटनायें।

हमने गत पृष्ठों में अंग्रेजों द्वारा चन्द्रनगर पर आक्रमण करने और फ्रान्सीसियों की पराजय का उल्लेख किया है। इस पराजय के बाद अंग्रेज सेना ने कितने ही ग्रामों और नगरों को बरबाद कर डाला। वर्द्धमान और नदिया के विस्तीर्ण प्रदेशों को तहस नहस कर डाला। फ्रान्सीसी लोग भगकर नवाब की शरण में, मुर्शिदाबाद जाने लगे। नवाब यह मानता था कि अंग्रेजों ने बिना किसी उचित कारण के फ्रान्सीसियों पर आक्रमण किया है, अतएव शासक की दृष्टि से उन्हें आश्रय देना उसका कर्त्तव्य

है। इसी विचार धारा से प्रभावित होकर उसने अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद में फ्रांसीसियों को आश्रय प्रदान किया। यह बात अंग्रेजों को अच्छी न लगी। वाट्सन ने (Watson) इस समय सिराजुद्दौला को एक पत्र लिखा जिसका आशय निम्न लिखित है।

"आपने और हमने बन्धुत्व स्थापन करने ही के लिये सन्धि की है। इस बातको आप न भूलियेगा। भागे हुए फ्रांसीसियों को बांध कर भिजवा दीजिये। यदि कोई व्यक्ति इसके विपरीत आचरण करने की राय दे तो निश्चय जानिये कि वह आपका शुभ चिन्तक नहीं है। ऐसी बात से देश में युद्ध की अग्नि प्रज्वलित हो जायगी। हमें सूचना मिली है कि फ्रांसीसी लोग भाग कर आपके पास पहुँचे हैं, और उन्होंने आपके सिपाहियों में भर्ती होने की प्रार्थना की है। यदि आप स्वीकार करेंगे तो फिर आपकी हमारी मित्रता का सम्बन्ध स्थिर नहीं रह सकेगा।"

सिराजुद्दौला पर बहुत जोर डाला गया कि वह शरणागत फ्रांसीसियों को निकाल दे। युद्ध की धमकियां दी गईं। युद्ध से देश की जो बरबादी होती है, सिराजुद्दौला इसे खूब समझता था। उसने अपने इन भावों को वाट्सन साहब पर प्रकट भी किया था:—

"यदि सन्धि होती तो दोनों ओर के सेनाओं के प्रचण्ड युद्ध से देश का सर्वनाश होता। प्रजा बरबाद होती। राज्यकर अदा नहीं होता। सब तरह से राज्य का अमङ्गल होता। इन्हीं बातों को रोकने के लिये सन्धि की गई।"

उपरोक्त वाक्यों से भी सिराजुद्दौला की मनोवृत्ति का पता लगता है। यह भी पता लगता है कि सिराजुद्दौला ने युद्ध से होने वाली खून खराबी और विविध हानियों को रोकने के लिये ही सन्धि के लिये आग्रह प्रगट किया था। पर अंग्रेजो ने सिराजुद्दौला की एक न सुनी। वे बारबार सिराजुद्दौला को दबाने लगे कि वह फ्रांसीसियों को व उनके सेनापति लॉ को निकाल दें।

सिराजुद्दौला ने बड़े दुख के साथ अंग्रेजों की यह बात भी स्वीकार कर ली। जब उसने सेनापति लॉ पर यह बात प्रगट की तब लॉ ने अंग्रेजों की कुटिल चालों का और सिराजुद्दौला के भावी विनाश का संकेत किया। उन्होंने यह भी कहा कि जब तक मैं और मेरे अनुचर वर्ग आपके पास रहेंगे तब तक अंग्रेजों को उनके षड्यन्त्रों में सफलता नहीं होगी। फिर आपकी जैसी मर्जी हो वैसा कीजिये।

लॉ साहब की बातों का सिराजुद्दौला पर बड़ा प्रभाव पड़ा, पर विशेष परिस्थिति के कारण उसने उस समय अंग्रेजों को सन्तुष्ट रखना मुनासिब समझा। अतएव उन्होंने लॉ साहब को कहा "लॉ, इस समय तुम अजीमाबाद जाकर रहो। समय होने पर मैं तुमको फिर बुलालूंगा।" नवाब की बात सुनकर ला साहब ने एक दुःखभरा दीर्घ श्वास छोड़ कर कहा, 'नवाब बहादुर', यह हमारी अन्तिम मुलाकात है। फिर मिलना कहां! यह बात कहकर लॉ साहब दरबार छोड़कर चले गये!!❀

❀ श्रीयुत बिहारीलाल सरकार के एक लेख से सङ्कलित।

प्लासी का युद्ध

भारत के इतिहास में प्लासी के युद्ध का बड़ा महत्त्व है। इसी समय से भारत में अंग्रेजों की नींव पड़ी थी। अब यह देखना है कि क्या इस युद्ध में अंग्रेजों ने सैनिक विजय पाई थी। क्या यह युद्ध तलवार के जोर से अंग्रेजों ने फतह किया था? क्या क्लाइव को इस युद्ध के कारण "प्लासी विजेता या प्लसी का वीर" (Hero of Plassy) कह सकते हैं? क्या यह विजय अंग्रेजों की कूटनीति (diplomacy) की विजय नहीं थी? इन्हीं सब बातों पर संक्षिप्त रूप से विचार करना आवश्यक है।

हम नवाब के प्रधान सेनापति मीरजाफर के विश्वासघात के लिये ऊपर बहुत कुछ लिख चुके हैं। हमने यह दिखलाया है कि सिराजुद्दौला के सामने राज-भक्ति और स्वामिनिष्ठा की प्रतिज्ञा कर लेने पर भी किस प्रकार वह भीतर ही भीतर सिराजुद्दौला के सर्वनाश की तैयारियां कर रहा था? आगे चल कर मीरजाफर ने जिस तरह नवाब का विश्वासघात किया और उससे सिराजुद्दौला का जिस प्रकार सर्वनाश हुआ, इन सब बातों का उल्लेख इस अध्याय में होगा।

कुरान जैसे धर्मग्रन्थ पर हाथ रख कर सौगंध खा लेने पर भी मीरजाफर अपनी बेजा कार्रवाइयों से बाज़ नहीं आया। मीरजाफर ने १६ जून गुरूवार के दिन क्लाइव को एक पत्र लिखा। क्लाइव को मीरजाफर का यह पत्र पाटुली की छावनी में मिला। इस पत्र में मीरजाफर ने यह स्वीकार किया कि:—"मेरी सिराजुद्दौला के साथ मित्रता की बातचीत हुई थी। विशेष परिस्थिति में गिर कर मैंने ऐसा किया।

पर इससे आप यह न समझियेगा कि मैं अंग्रेजों की सहायता करने में विमुख रहूँगा। आपके साथ मैंने जो प्रतिज्ञा की है–उससे मैं तनिक भी न हटूंगा"। यह पत्र पाकर भी क्लाइव को मीरजाफर का पूरा विश्वास न हुआ। क्लाइव सोचने लगा कि इसने जैसा अपने स्वामी को धोखा दिया है, क्या आश्चर्य है कि यह वैसा ही धोखा मुझे भी न देदे। लोगों को विश्वासघातकों का विश्वास बहुत कम होता है। अतएव क्लाइव की आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। क्लाइव के सामने ही काटोया का किला था। अर्मी ने लिखा है:—"यह निश्चय हो चुका था कि इस किले के अध्यक्ष केवल दिखावे के लिये थोड़ा सा बनावटी युद्ध करके इसे अंग्रेजों के सुपुर्द कर देंगे और खुद परजित हो जावेंगे"। षड्यन्त्रों की सृष्टि पहले हो चुकी थी। क्लाइव ने यह जानने के लिये कि नवाब के विश्वासघाती कर्मचारी-गण अपनी बात का कहां तक पालन करते हैं, उक्त किले पर आक्रमण करने के लिये मेजर कूट को २०० गोरे और २०० काले सिपाहियों सहित काटोया की ओर रवाना किया। यह किला युद्ध के लिये मशहूर है। मराठों के समय यहां कई भीषण युद्ध हुए। अतएव यह वीरों की लीला–भूमि प्रसिद्ध हो गया था। पर इस बार किले के फाटक पर युद्ध नहीं हुआ। किले के भीतरवाली नवाबी फ़ौज ने अँग्रेजों की गति रोकने के लिये कोई चेष्टा नहीं की। कुछ देर तक बनावटी लड़ाई का नाटक खेल कर नवाब की फौज अपने हीं हाथों से किले के भीतर के छप्परों में आग लगा कर भग गई। काटोया का किला सुनसान हो गया। अँग्रेजी सेना ने उस पर अधिकार कर लिया। प्राणों के भय से नगर निवासी अपना माल असबाब छोड़ कर भागने लगे। काटोया नगर में इस समय क्लाइव के हाथ इतना चावल लगा कि जिससे दस हज़ार सिपाही एक वर्ष तक गुज़र कर सकें। क्लाइव ने अपनी सेना सहित कटोया में डेरे डाले।

यहां आकर क्लाइव बड़े सोच विचार में पड़ा। यद्यपि कटोया का किला उसके सहज ही में हाथ लग गया था, पर उसके मन में मीरजा-

फ़र के लिये फिर भी सन्देह बना रहा। उसके दिमाग़ में तरह तरह के विचार आने लगे। आशा निराशा की मूर्त्तियां उसकी आंखों के सामने नाचने लगीं। कुछ और सम्वाद पाने के लिये दो दिन तक वह बाट देखता रहा। क्लाइव ने सोचा कि इस समय बरसात न होने से नदी का पार कर जाना सहज है, पर नदी का पार कर जाना जितना सहज है, क्या वहां से वापस लौट आना भी उतना ही सहज है। मेकाले ने लिखा है कि इस समय क्लाइव "किं कर्त्तव्य विमूढ़" सा हो गया। उसके होश-हवास जाते रहे। उसका इतिहास प्रसिद्ध रणकौशल और बाहुबल मानों एकाएक शिथिल पड़ गया। क्लाइव ने हाउस आफ़ कामन्स में गवाही देते हुये कहा था:—

"मैं बड़ा सशङ्कित हो गया। मैं सोचने लगा कि कहीं हार गया तो हार का समाचार लेजाने के लिये एक आदमी भी जिन्दा न बचेगा।" इसके बाद थोड़े ही समय में क्लाइव को मीरजाफ़र की ओर से एक पत्र मिला इससे क्लाइव का शक बहुत कुछ दूर हो गया। इसी समय क्लाइव ने महाराजा वर्द्धमान को लिखा कि—"आप अपनी घुड़ सवार सेना के साथ मुझ से आकर मिलिये।"

इसके आगे भी क्लाइव का मन बहुत चल विचल होने लगा। भय का भूत उसकी आंखों के सामने नाचने लगा। कभी कभी वह कटोया से आगे बढ़ने में भी हिचकने लगा। एक वक्त उसने अपने साथी अफ़सरों से कहा—"मेरी राय है कि जहां तक आये हैं वहीं ठहर जावें। आपकी क्या राय है।" क्लाइव की इस बात को उसके बारह सहयोगी सरदारों ने स्वीकार किया, परन्तु मेजर कूट ने इसका तीव्र विरोध किया और कहा—"आप लोग सख्त ग़लती कर रहे हैं। फ़ौज को अपनी विजय में पूरा पूरा विश्वास है। शत्रु के सामने आने पर साहस छोड़ कर बैठ जाने से सेना की हिम्मत टूट जायगी और फिर उसका उत्तेजित किया जाना प्रायः असम्भव हो जायगा। फ्रांसीसी सेनापति लॉ खबर पाते ही नवाब की

सेना के साथ मिल जायगा, इससे नवाब की ताक़त बढ़ जायगी। वह हम लोगों को घेर लेगा और हमारा कलकत्ते जाने का रास्ता भी बन्द कर देगा। इससे कई ऐसी आपदाएँ खड़ी हो जावेंगी, जिनका अभी आपको ख़्याल भी नहीं है। इससे आप हार जावेंगे। इस लिये, आइये! शीघ्र आगे बढ़िये। नहीं तो भग चलिये। इस जगह ठहरना बड़ा खतरनाक है।" छः सेनापतियों ने मेजर कूट का समर्थन किया, परन्तु उनकी बात इस समय नहीं मानी गई। क्लाइव ही की राय मानी गई। उस समय युद्ध यात्रा रोक दी गई।

इसके बाद क्लाइव के मनोभावों में एकाएक परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन क्यों और कैसे हुआ, इसके सम्बन्ध में इतिहासवेत्ताओं में मतभेद है। तत्कालीन अंग्रेज इतिहासवेत्ता अर्मी ने लिखा है–"सभा विसर्जित होते ही क्लाइव एक घने जंगल में चला गया। वह वहां गम्भीर ध्यान में निमग्न हो गया। वहां उसे यह आत्मिक प्रेरणा हुई कि आगे न बढ़ना सख्त बेवकूफ़ी है। इसलिये उसने डेरे पर वापस आते ही फ़ौज को सवेरे तैयार रहने के लिये हुक्म दिया। यह तो हुई एक पक्ष के इतिहासकारों की बात। दूसरे इतिहासकार इस सम्बन्ध में और ही बात कहते हैं। क्लाइव के एक साथी स्क्राफ्टन ने लिखा है—"२२ जून को मीरजाफर का पत्र पाते ही क्लाइव का इरादा बदल गया था और उसकी आज्ञा से २२ जून शाम के ९ बजे अंग्रेजी फ़ौज गङ्गा के पार हुई थी।" कुछ भी हो अंग्रेजी फ़ौज आगे बढ़ी और प्लासी मुकाम पर दोनों का मुक़ाबला हुआ। अब यह देखना है कि क्या प्लासी के युद्ध क्षेत्र में अंग्रेजों ने वास्तविक विजय प्राप्त की? क्या क्लाइव ने ऐसी वीरता दिखलाई, जिससे वह प्लासी विजेता या Hero of Plassy कहला सकता है।

जब अंग्रेजी फ़ौज प्लासी के मुकाम पर पहुँची तो क्लाइव ने शिकारगाह पर चढ़कर नवाब की फ़ौज देखी। वह विशाल थी। उसे देखकर क्लाइव स्तम्भित हो गया। पर उसने अपनी फ़ौज लड़ने के लिये तैयार

की। दोनों फ़ौजों का मुकाबला हुआ। सन् १७५७ की जून भारतवर्ष के इतिहास में चीरस्मरणीय रहेगा। इसी दिन सवेरे नवाब की ओर से फ्रान्सीसी सेनापति सेवटफ़े ने सबसे पहले तोप का वार किया। उनकी तोप के दगते ही नवाब की फ़ौज से दनादन गोले बरसने लगे। मुहूर्त भर में रणभूमि तोपों के धूएं से ढक गई। क्लाइव के इशारे से अंग्रेजी फ़ौज भी शत्रु पर गोले मारने लगी। अंग्रेजी फ़ौज के गोलों से भी नवाब के आदमी तड़ातड़ मरने लगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ब्रिटिश फ़ौज नवाब की फ़ौज से अधिक सुदृढ़ और सुशिक्षित थी। उसके पास अस्त्रशस्त्र भी बढ़िया थे। पर नवाब की फ़ौज ने भी गोले बरसाने में कसर न की। आध घण्टे ही के भीतर तीस अंग्रेज सेनापति धराशायी हुए। इस वक्त प्रासी के विजेता क्लाइव की बहादुरी का नमूना देखिये। वह अपनी सेना सहित पीछे हट गया और पास के बाग में आकर छिप गया। इस समय अंग्रेजी फ़ौज की दो तोपें भी बाहर रह गईं। क्लाइव की आज्ञा से सब लोग वृक्षों की आड़ में आकर बैठ गये। वृक्षों की आड़ में छिपे रहने पर भी क्लाइव की आशंका दूर नहीं हुई। वह झुंझला कर अमीचन्द को कहने लगा:—"मैंने तुम्हारा विश्वास कर बड़ा बुरा काम किया। मैंने धोखा खाया। तुमने मुझे वचन दिया था कि थोड़ी सी देर के लिये युद्ध का नाटक खेला जायगा, उसके बाद सारी कामनाएं सफल हो जावेंगी। सिराजुद्दौला की फ़ौज रणक्षेत्र में अपनी वीरता नहीं दिखलायेगी। इस समय तो इसके बिलकुल विपरीत हो रहा है।" मुताखिरीन में भी लिखा है—

"क्लाइव ने अमीचन्द से बदगुमान होकर गुस्से में आकर कहा कि ऐसा वादा था कि खफ़ीफ़ लड़ाई में मुद्दाबदिली हासिल हो जायगा। तेरी सब बातें खिलाफ़ पाई जाती हैं"। इस पर अमीचन्द ने जवाब दिया "केवल मीरमदन और मोहनलाल की सेनाएँ लड़ रही हैं। ये ही दोनों सिराजुद्दौला के सच्चे सहायक और स्वामी भक्त हैं। सिर्फ इन्हें ही

किसी न किसी तरह पराजित करना है। अन्यान्य सेनापतियों में से कोई भी शस्त्र नहीं चलायगा।" ❀

सिराजुद्दौला के विश्वासपात्र और नमकहलाल सेनापति बड़ी वीरता से युद्ध करने लगे। कहा जाता है कि इस समय यदि मीरजाफ़र की सेना आगे बढ़कर तोंपो में आग लगाती तो अँग्रेजों का बचना कठिन हो जाता, परन्तु मीरजाफ़र, यार लतीफ़ और रायदुर्लभ ने जहां जहां अपनी सेनाएँ जुटाई थीं, वे उन्हीं स्थानों पर चित्रवत् खड़े खड़े रण का तमाशा देख रहे थे। पसीने में तर हुए क्लाइव ने १२ बजे सम्मति लेने के लिये अपनी सैनिक सभा का अधिवेशन किया। इस में निश्चय हुआ कि सारे दिन बाग में रह कर किसी न किसी तरह आत्मरक्षा करना चाहिये। "महावीर प्लासी के विजेता" ने इस तरह छिप छिपा कर अपने प्राणों की रक्षा करके ही समर में विजय प्राप्त की। इस बात को वह स्वयं ही प्रकाशित कर गया है।

दैव ने अंग्रेजों का साथ दिया।

हम कह चुके हैं कि नवाब के मीरजाफर दुर्लभराय आदि सेनापति विश्वासघात कर अपनी सेनाओं को लेकर तटस्थ खड़े रहे। इससे अंग्रेजों को अप्रत्यक्ष सहायता हुई। पर इसके साथ ही साथ दैव ने भी इस समय अंग्रेजों का साथ दिया। हम यह भी कह चुके हैं कि नवाब के विश्वासपात्र सेनापति मीरमदन बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। फ्रेन्च सेनापति भी अपनी अतुलनीय वीरता का परिचय दे रहे थे। इन वीरों ने अंग्रेज़ी सेना के छक्के छुड़ा दिये थे। पर इसी बीच में क्या हुआ? बड़े ज़ोर का पानी बरसा। इस वक्त अंग्रेजों ने सावधानी कर अपना बारूद आदि फ़ौजी समान पाल से ढक दिया। नवाब की ओर यह व्यवस्था न हो सकी। नवाब का सब सैनिक समान पानी में भीग गया। इसका

❀ स्टुअर्टस् हिस्ट्री आफ बङ्गाल

परिणाम यह हुआ कि जिस तेज़ी से अंग्रेजों के गोले बरसने लगे; उस तेज़ी और जोर से नवाब के गोले नहीं बरस रहे थे। नवाब के सेनापति मीरमदन यहां भी युद्ध करते रहे। वे गोले बरसाते हुए अंग्रेजों की तरफ बढ़ने लगे। इसी समय अंग्रेजों के एक गोले से मीरमदन की जांघ टूट गई। अब उनके बचने की आशा न रही। सेवकगण उन्हें उठा कर नवाब के डेरे में ले गये। मीरमदन की यह स्थिति देख नवाब रो पड़ा। वह हाय हाय करने लगा! मनुष्य का सर्वस्व या प्रिय से प्रिय चीज खो जाने से जो दशा होती है, वही नवाब की हुई। नवाब ने खयाल किया था कि चारों ओर के विश्वासघातकों के षड्यन्त्र में महावीर प्रभु भक्त मीरमदन उनकी रक्षा करेंगे। पर आज वे ही मीरमदन घायल होकर इस असार संसार से कूच बोल रहे हैं। नवाब सतृष्ण नयनों से मीरमदन की ओर देखने लगे। इस समय मीरमदन ने धीमे स्वर से नवाब को कहा—

"+शत्रु की सेना बाग में भग गई है, पर आपका कोई भी सरदार युद्ध नहीं कर रहा है। वे अपनी अपनी फौजों के साथ चित्रवत खड़े खड़े तमाशा देख रहे हैं।" बस; इतना कहते कहते मीरमदन की विशाल भुजाएं निर्जीव हो गईं। सिराजुद्दौला के सिर पर मानों आकाश टूट पड़ा! उनकी आकस्मिक मृत्यु से सिराजुद्दौला का बल और भरोसा एकाएक विलुप्त होगया।

इस समय नवाब को चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देने लगा। निराशा का समुद्र उसके सामने उमड़ पड़ा। इस वक्त दूसरा कोई उपाय न देख कर सिराजुद्दौला ने फिर मीरजाफर को बुलाया। बड़े बहाने बाजी के बाद मीरजाफ़र अपने पुत्र मीरन और अन्य अनेक अमीर उमरावों के साथ सिराजुद्दौला के डेरे में गया। मीरजाफ़र को सन्देह था कि शायद सिराजुद्दौला उसे कैद कर लेगा। पर उसका यह सन्देह भ्रमपूर्ण सिद्ध हुआ। ज्योंही मीरजाफर डेरे में घुसा कि सिराजुद्दौला ने

+ "सिराजुद्दौला" से संकलित—

अपना राजमुकुट मीरजाफर के पैरों में रख दिया और व्याकुलचित्त होकर कहने लगा—"मीरजाफर अब भूतकाल की बात पर ध्यान मत दो। पहले जो होना था वह हो चुका। अब तुम मेरे इस राजमुकुट की रक्षा करो। नाना अलीवर्दीखां का कुछ लिहाज़ कर मेरी इज्जत बचाओ और मेरी जिन्दगी के सहायक बनो।" मीरजाफर के अन्तःकरण पर कुछ असर न हुआ। वह उपर से तो सिराजुद्दौला को कहने लगा कि "अवश्य ही शत्रु पर विजय प्राप्त करूंगा, परन्तु अब शाम हो गई है। फ़ौजे थक गई हैं। आज सारी फ़ौजें रणक्षेत्र से वापस आजावें। सवेरे फिर युद्ध होगा।" इस पर सिराजुद्दौला ने कहा—"क्या रात में अंग्रेजी सेना के आक्रमण करते ही सर्वनाश सङ्घटित न होगा?" इस पर विश्वासघातक मीरजाफर ने कहा–"फिर हम किस लिये हैं"। "विनाश काले विपरीत बुद्धिः" की उक्ति चरितार्थ हुई और मन से कहिये अथवा बेमन से, सिराजुद्दौला ने मीरजाफ़र की बात मान ली और फौजों को पड़ाव में वापस आने की आज्ञा देदी। मीरजाफ़र मुहूर्त भर में विद्युद्वेग से अपना घोड़ा उड़ा कर अपनी फ़ौज में चला गया और वहां से क्लाइव को सब बातें लिख भेजीं और साथ साथ यह भी लिख भेजा कि अब फौज़ लेकर आगे बढ़ो।" यह पत्र समय पर क्लाइव को नहीं मिला।

मीरजाफ़र के चले जाने पर नवाब अपने दूसरे विश्वासघातक और नमक हराम दुर्लभराय के शरणापन्न हुआ। नवाब ने उससे भी वे ही बातें कहीं जो उसने मीरजाफ़र से कहीं थीं। इस पर दुर्लभराय ने नवाब को बड़ी नम्रता से जवाब दिया—"हज़ूर डरते क्यों हैं? आज फ़ौज को लौटने की आज्ञा दीजिये और मुझ पर सब बोझ देकर मुर्शिदाबाद लौट जाइये।" जैसा हम उपर कह चुके हैं नवाब ने मीरजाफ़र और दुर्लभराय की बात मान कर फ़ौज को वापस डेरे में आने की आज्ञा दे दी।

इस वक्त नवाब की ओर से बङ्गाली वीर प्रभुभक्त मोहनलाल अतुल-विक्रम से युद्ध कर रहे थे। ऐसे समय में नवाब के दूत ने जाकर उन्हें

लड़ाई रोकने के लिये कहा। मोहनलाल ने यह बात न सुनी। उन्होंने समझा कि ऐसा करने से नवाब का सर्वनाश हो जायगा। नवाब का दूत फिर मोहनलाल के पास गया। इस समय भी मोहनलाल ने उसकी बात नहीं मानी। वह बड़ी वीरता से युद्ध करते रहे। तीसरी बार नवाब ने मोहनलाल के पास विशेष आज्ञा भेज दी। अब मोहनलाल ने चारों ओर देखा। उन्होंने देखा कि नवाब की फ़ौजें छिन्नभिन्न हो गईं। कई लौट गई थी। कई लौटने की तैयारी कर रही थीं। यह देख कर वे समझ गये कि नवाब का अधःपतन अनिवार्य्य है। वे क्षण भर भी विलम्ब न कर, किसी से कुछ न कह, क्षोभ और क्रोध से परिपूर्ण होकर, रणभूमि त्याग कर चले गये। उन्हें रणभूमि से जाते देख सिपाहियों ने भी मैदान छोड़ दिया। मीरजाफर की इच्छा पूरी हुई। इस समय मीरजाफ़र ने क्लाइव को लिखा—"मीरमदन मर गया। अब छिपने का कोई काम नहीं। इच्छा हो तो इसी समय, नहीं तो रात के तीन बजे, पड़ाव पर आक्रमण करना। सहज ही मेरा सब काम बन जायगा।"

मोहनलाल को पड़ाव की ओर वापस आते देखकर अंग्रेजी फ़ौज बाग के बाहर निकली। कहा जाता है कि इस समय 'प्लासी विजेता' क्लाइव नींद के खुर्राटे भर रहा था। मेजर किल्प्याट्रिक बाग में फ़ौज को तैयार कर रहा था। अंग्रेजी सेना बाग के बाहर हुई। क्लाइव भी नींद से जगाया गया। इस समय जब उसने सुना कि मेजर अपनी सेना को आगे बढ़ाया चाहता है तो वह दौड़ा हुआ फ़ौज में घुस पड़ा। उसने मेजर किल्प्याट्रिक को बांध लिया और कहा—"बिना मेरी आज्ञा के तुमने ऐसा साहस क्यों किया?" पर पीछे जाकर जब क्लाइव को असली हालत मालूम हुई, तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ और खुद फ़ौज कशीका भार लेने में उत्सुकता प्रकट करने लगा। क्लाइव ससैन्य आगे बढ़ने लगा। इस समय रणक्षेत्र में सन्नाटा छाया हुआ था। सिर्फ़ फ्रान्सीसी वीर सेफ्रेक्के जॉन डट कर युद्ध कर रहे थे। वे नवाब की

आज्ञा न सुनकर, मीरजाफ़र की बात पर कान न देकर, थोड़े से सिपाहियों के साथ बड़ी बहादुरी से मुकाबला कर रहे थे। पर बेचारे सेण्टफ्रे अपनी थोड़ी सी फ़ौज के साथ अंग्रेजों का कहां तक मुक़ाबला कर सकते थे। आख़िर उन्हें पीछे हटना पड़ा।

सिराजुद्दौला के ओर की फ़ौज के बहुत कुछ विशृंखलित होने का वृत्तान्त हम कहीं ऊपर लिख चुके हैं। हमने ऊपर दिखलाया है कि किन किन चालबाज़ियों से सिराजुद्दौला की फ़ौज की हिम्मत टूटी। वह इधर उधर भागने लगी। इस समय स्वार्थान्ध रायदुर्लभ सिराजुद्दौला के पास गया और उसने रणक्षेत्र का भयङ्कर चित्र उसके सामने रखा। उसने सिराजुद्दौला को यह बात समझाना शुरू किया कि:—"हजूर! इस समय रणक्षेत्र छोड़ कर चले जाइये। इसी में खैर है।" मुसलमान इतिहास लेखक ने लिखा है जिस समय दिन का अन्त हो रहा था, उस समय सिराजुद्दौला ने देखा कि असंख्य सेना तथा सरदारों में से कुछ थोड़े ही से आदमी उसके पक्ष में लड़ रहे हैं! ऐसी दशा में प्लासी से मुर्शिदाबाद को लौट चलना चाहिये। यह सोचकर सिराजुद्दौला ने दो हजार घुड़सवारों के साथ ऊंट पर सवार होकर रणभूमि से प्रस्थान किया।

इस तरफ़ अंग्रेजों ने प्लासी के मैदान में विजय प्राप्त कर ली। यह विजय किस ढङ्ग से प्राप्त की गई। यह किस प्रकार की थी, इस बात पर यहां प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। हमने अब तक जो कुछ भी लिखा है इससे पाठक इस बात का खुद अन्दाजा लगा सकते हैं। कुछ भी हो, अंग्रेजों ने बड़ी सस्ती और बिना बहादुरी की विजय प्राप्त करली। अंग्रेजों के सुप्रख्यात् इतिहास लेखक कर्नल मालेसन ने लिखा है—"प्लासी युद्ध वास्तविक युद्ध नहीं कहा जा सकता।"

——— —

सिराजुद्दौला की हत्या

पाठक ! अब हम आपको सिराजुद्दौला के जीवन-नाटक का अन्तिम अङ्क दिखलाते हैं। यह अङ्क अत्यन्त दुःखान्तक (Tragedy) है। इससे सँसारिक वैभव की क्षणभँगुरता प्रकट होती है। अच्छा, अब नवाब सिराजुद्दौला के जीवन का यह दुःखान्तक दृश्य ज़रा धैर्य के साथ देखिये।

हमने पूर्व परिच्छेदों में दिखलाया है कि विश्वासघातकों के विश्वास-घात और कूटनीतिज्ञ क्लाइव आदि के षड्यन्त्रों से किस प्रकार प्लासी के नामधारी युद्ध में नवाब की पराजय हुई। हमने दिखलाया है कि किस प्रकार रणक्षेत्र त्याग कर सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद गया और वहाँ शक्ति सङ्गठित करने का उद्योग करने लगा। अब हम आगे का हाल सुनाते हैं।

मुर्शिदाबाद छोड़कर नवाब ने पहले राजमहल जाने का इरादा किया, किन्तु बाद में यह संकल्प परित्याग कर वह भगवानगोले गया। वहां से वह नाव पर सवार होकर फ्रांसीसी सेनापति लॉ की आशा से आज़ीमगंज की ओर चला। विधि कि लीला देखिये ! जिस नवाब के हुक्म में लाखों आदमी थे, आज वह भूखों मर रहा है। नवाब, उसकी स्त्री, कन्या तथा अन्यान्य साथी तीन दिन तक भूखे रहे। तीन दिनों के उपरान्त राजमहल के उस पार एक फकीर के आश्रम में उन्होंने आश्रय ग्रहण किया। इस फकीर का नाम दानाशाह था। कहते हैं कि यह दानाशाह किसी समय सिराजुद्दौला द्वारा लाञ्छित हुआ था। कुछ इतिहास लेखक कहते हैं कि सिराजुद्दौला ने उसके कान कटवा लिये थे। पहले उसने सोचा अन्य मुसाफिर होगा। किन्तु नवाब का जूता देखकर उसे कुछ सन्देह हुआ। उसने उसी समय नाव के मल्लाह से असली

बात मालूम करली। फ़कीर का हृदय प्रतिहिंसा से जल उठा! फ़कीर ने इस वक्त कोई बात न कह कर सपरिवार नवाब के आथित्य सत्कार का अच्छी तरह बन्दोबस्त कर दिया। नवाब के परिवार ने दारुण क्षुधा मिटाने के लिये खिचड़ी पकाई थी। इसी समय फ़कीर ने एक आदमी भेज कर चुपके से उस पार राजमहल में सिराजुद्दौला के शत्रुओं को खबर भेज दी।+ समाचार पाते ही मीरजाफर के दामाद मीरकासिम मीर दाऊदखां सदलबल वहां आ पहुँचे। सिराजुद्दौला शत्रु की फ़ौज से घिर गया। नवाब की स्त्री लुत्फुन्निसा मीरकासिम के हाथ पड़ी। मीरकासिम ने डरा धमका कर उसके कुछ जेवर ले लिये।❀ मीरकासिम की देखा देख मीरदाऊद ने भी अन्यान्य रमणियों के अलङ्कार उतरवा लिये। इन दोनों के देखा देखी अन्य साथियों ने भी नवाब का सर्वस्व लूट लिया! एक दिन जो लोग नवाब के सामने जाने तक का साहस नहीं करते थे, जो लोग नवाब के करुणा–कटाक्ष के लिये सदा उत्सुक रहते थे, आज वे ही लोग विपदग्रस्त हतभाग्य नवाब को बुरी तरह लूट रहे हैं। नवाब ने उनसे कातर स्वर से कहा—"मैं धनजन, साम्राज्य नहीं चाहता। मुझे कुछ माहवार दो और इस लम्बे चौड़े बङ्गाल के एक कोने में रहने दो।" नवाब की यह कातरोक्ति व्यर्थ हुई! उसकी बात पर किसी ने कान तक नहीं दिया। नवाब सिराजुद्दौला सपरिवार बन्दी हुआ!

नवाब सिराजुद्दौला ने जिस दिन मुर्शिदाबाद परित्याग किया, ठीक उसके आठ दिन बाद वह कैदी के रूप में मुर्शिदाबाद लाया गया। इस समय उसके हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ियां पड़ी हुई थीं। बिहारीलाल सरकार प्रभृति भारतीय इतिहासकारों का मत है कि यदि कुछ दिन और सिराजुद्दौला कैद नहीं होता, तो शायद उसकी किस्मत का पासा

+ मुताख्खिरीन

❀ S-crofton–Clive's Evidance

पलट जाता। फ्रांसीसी सेनापति लॉ साहब उनकी सहायता के लिये राजमहल तक आ पहुँचे थे। राजमहल में उन्हें खबर मिली कि नवाब कैद हो गया है। तब वे निरुपाय होकर वापस लौट गये। उन्होंने प्रदेश की सीमा पार कर बक्सर से बहुत दूर पहुँच डेरा डाला।

मुर्शिदाबाद के निवासियों ने जब देखा कि बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के हाथ में हथकड़ी और पैरों में बेड़ियां पड़ी हुई हैं; वह भयङ्कर दुर्दशा में है तब उन्हें महाशोक हुआ! मुसलमान इतिहास लेखकों ने इस संस्मरणीय घटना को लक्ष्य कर लिखा है:—"ऐ विचारवान मनुष्यों! इस उदाहरण से सावधान हो जाओ और भाग्य के परिवर्तन को भली भांति देखो। संसार की सफलताओं पर अधिक विश्वास न करो। क्योंकि ये उसी प्रकार अस्थायी और अनिश्चित हैं, जिस प्रकार एक सार्वजनिक व्यक्ति रोज इस घर से उस घर जाता है।"❀

अर्मी के इतिहास से पता चलता है कि सिराजुद्दौला आधीरात के वक्त चोर और डाकुओं तरह हथकड़ी और बेड़ियों से बांध कर मीरजाफर के सामने उपस्थित किया गया। श्रीयुत दत्त महाशय लिखते हैं:—जो राज प्रसाद एक दिन सिराजुद्दौला के अखण्ड प्रताप से राजकीय गौरव का सम्भोग करता था, उसी महल में सिराजुद्दौला को बन्दी के रूप में प्रवेश करना पड़ा। यह दशा देख कर मीरजाफर का हृदय भी द्रवित होने लगा और ऐसा होना अनिवार्य्य भी था, क्योंकि सिराजुद्दौला ने स्वयं उसके साथ कोई बुराई न की थी और वह उस अलीवर्दी खां का स्नेह-भाजन दौहित्र था जिसकी दयालुता और उदारता के बदौलत मीरजाफर का भाग्य उदय हुआ था और मरते दम तक अलीवर्दीखां का विश्वास रहा था कि मीरजाफर मेरे गोद लिये हुए प्यारे बच्चे का साथ देगा। बेचारा सिराजुद्दौला बारबार उसके निकट प्राणों की भिक्षा मांगने लगा! मीरजाफर इस दृश्य को नहीं देख सका और सिपाहियों को उसने इसे

❀ S-cotts Translation

दूसरे स्थान पर ले जाने की आज्ञा दी।" एक दूसरे इतिहास लेखक ने लिखा है—"सिराजुद्दौला मीरजाफर को देखते हुए सजल नेत्रों से भूमि पर गिर पड़ा और गिड़-गिड़ा कर मीरजाफर से प्रार्थना करने लगा, "मेरी जान बचा लो, किन्तु मीरजाफर के नृशंस पुत्र मीरन ने सराजुद्दौला को मारने के लिये बारबार अनुरोध किया। मीरजाफर ने उसी क्षण सिराजुद्दौला को अपने सामने से ले जाने का हुक्म दिया। इसके बाद मीरन के इशारे से उपस्थित पहरेदारों ने सिराजुद्दौला को वहां से लेजाकर एक गंदी कोठड़ी में कै़द कर लिया और वहां प्रत्येक मुहूर्त्त में सिराजुद्दौला के प्राण-दण्डाज्ञा लिये प्रतीक्षा करने लगे। अनेक कर्मचारी गण उस समय मीरजाफर के पास उपस्थित थे। मीरजाफ़र ने उन से पूछा "अब क्या करना चाहिये?" उनमें बहुतों ने सिराजुद्दौला को कैद रखने की सलाह दी। इसी समय पापी मीरन ने मीरजाफर से कहाः—"आप इस समय महल में जाइये। मैं कैदी की उचित व्यवस्था कर देता हूँ"।

मीरजाफर पुत्र का मनोगत भाव समझ कर उस स्थान से चला गया। सिराजुद्दौला की मैले कुचैले जघन्य स्थान में कैद करा कर भी मीरन निश्चिन्त नहीं हुआ।⊛ मीरन अभागे सिराजुद्दौला को कत्ल करने पर तुल गया! कितने ही लोग मीरन के इस कुविचार से असहमत हुए। किन्तु दुष्ट मीरन अपने निश्चय पर डटा रहा। वह अब उस आदमी की खोज करने लगा जो सिराजुद्दौला को तलवार से काट सके। बहुत खोज करने पर इस पैशाचिक हत्याकाण्ड के करने के लिये एक लाल मुहम्मद नामक नर-पिशाच मिल गया, जो सिराजुद्दौला के घर पर पाला गया था। इसी कृतघ्न मुहम्मदखां ने अपने पर अपने भूतपूर्व स्वामी और अन्नदाता सिराजुद्दौला को तेज़ तलवार से काटने का भार लिया!

⊛ Beveridge

दो तीन घंटों के बाद ही मुहम्मदबेग सिराजुद्दौला को काटने के लिये तेज तलवार हाथ में ले उसके बन्दीगृह में गया। उसे देखते ही सिराजुद्दौला घबड़ा उठा! क्षण मात्र में उसकी सारी आशाएं विलीन हो गईं। वह बड़ी निर्दयता से कत्ल कर दिया गया!

दुष्ट मुहम्मद बेग इतने ही से सन्तुष्ट न हुआ। उसने मृत नवाब के जिस्म के टुकड़े टुकड़े कर डाले!! उन टुकड़ों को उसने हाथी की पीठ पर लदवाया! फ़ीलवान उस हाथी को लिये लिये शहर के चारों ओर फिरा। किसी प्रकार वह हाथी एकाएक हुसेनकुली खां के मकान के सामने जा खड़ा हुआ। इसके बाद नगर प्रदक्षिणा करते हुए जब हाथी सिराजुद्दौला की माता अमीनाबेगम के मकान के सामने पहुंचा, तो हृदय को टुकड़े टुकड़े करनेवाला कोलाहल उपस्थित हो गया। अभागी अमीना बेगम को अपने प्राणप्यारे सिराजुद्दौला की इस दशा का हाल मालूम नहीं हुआ था!! उन्होंने फाटक पर शोरगुल सुन कर पूछा—"यह किस का शोर है"। प्रकृत उत्तर पाते ही हतभागिनी अन्तः पुर वासिनी अमीनाबेगम ज्ञान शून्या हो, लज्जा शर्म परित्याग कर उन्मादिनी वेश में खुले हुए केश से नंगे पैर उर्द्ध श्वास से दौड़ बाहर निकल आईं। कितनी ही लौंडियां बांदियां भी उनके साथ निकल आईं! हाथी पर प्यारे पुत्र की लाश के टुकड़े देख अभागी बेगम जमीन पर गिर कर, छाती पीटपीट कर जोर जोर से रोने लगी! बेगम का वह शोकभाव देख कर उपस्थित दर्शक भी हाहाकार करने लगे! उस समय का वह शोक दृश्य वर्णनातीत है! खुद फीलवान भी इस हृदयद्रावक दृश्य को देख कर रो पड़ा। फीलवान के इशारे से हो या अन्य किसी कारण से हाथी भी वहां बैठ गया। उपस्थित दर्शकगण हाथी को घेर कर खड़े हो गये। हतभाग्य अमीना भी बिजली की तरह दौड़ कर, पुत्र के खण्डित मांसपिण्ड पर गिर कर उन्हें चुमने लगी। कितना हृदयद्रावक और करुणाजनक दृश्य था! इसी समय मीरजाफर का अनुगत सहचर खादिमहुसेन खां अपने महल की छत पर खड़े होकर सतृष्ण दृष्टि से सिराजुद्दौला की कटी कुटी

लाश देख रहा था। उपस्थित लोगों को अधीर देख कर, दङ्गाफिसाद की आशंका से उसने उसी समय कितने ही आदमी वहां भेजे। ये सब आदमी जबरदस्ती अमीना बेगम को और उनकी लौंडियों को उठाकर महल के भीतर ले गये।

"मुताखिरीन" में लिखा है कि मीरन ने घसीटीबेगम और अमीना-बेगम की हत्या की थी। वह और भी कितनों ही को मारना चाहता था किन्तु मार न सका। यह भी कहा जाता है कि मीरन के आदेश से सिराजुद्दौला का भतीजा मारा गया था। कलकत्ते के तत्कालीन गवर्नर वेनिस्टार्ट कहते हैं कि घसीटीबेगम, अमीनाबेगम, सिराजुद्दौला की बेगम लुतफुन्निसा, उनकी कन्या तथा ७० स्त्रियों को मीरन ने डुबो कर मार डाला था! सन् १८६५ की १ अक्टोबर को बङ्गाल सरकार ने कोर्ट आफ डाईरेक्टर्स को जो चिट्ठी लिखी थी, उससे जान पड़ता है कि घसीटीबेगम और अमीनाबेगम मारी गई थीं और कितनी ही स्त्रियां कैद की गई थीं।

सिराजुद्दौला और क्लाइव

कर्नल मालेसन ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ Decissive battles of India" में कहा है:--

"Whatever may have been his faults, Sirajuddaula had neither betrayed his master nor sold his country-nay more, an unbiased Englishman sitting in judgment on the events which passed in the interval between the 9th February and the 23rd June, can deny that the name of Sirajuddaula stands higher in the scale of honour than does the name of Clive."

अर्थात् सिराजुद्दौला में चाहे जो कुछ दोष रहे हों, परन्तु न तो उसने देश को बेचा था और न अपने स्वामी को धोखा दिया था। एवं हम यहां तक कहने को प्रस्तुत हैं कि कोई भी पक्षपात शून्य अंग्रेज यदि उन घटनाओं का फैसला करने बैठे जो ९ फरवरी से २३ जून तक सङ्गठित हुई थीं तो वह इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि क्लाइव की अपेक्षा सिराजुद्दौला का नाम प्रतिष्ठा के पल्ले में भारी है। उस शोकान्त नाटक में वही एक मात्र व्यक्ति था, जिसने धोखा देने की चेष्टा नहीं की।

मीरजाफ़र की नवाबी

मीरजाफर नवाब बना दिया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उसके कर्मचारियों को नवाबी के परोक्त करने में करोड़ों रुपये मिले। इन लोगों के यहां सोने चांदी की नदियां बहने लगीं। मीरजाफर का खज़ाना खाली हो गया। मीरजाफर केवल नाम का नवाब था। अधिकार तो सब अंग्रेजों के हाथ में थे। वह तो एक पुतला था, जो क्लाइव के इशारे पर नाचता था। इसी से कितने ही अंग्रेज लेखकों ने उस को क्लाइव का गधा कहा है। इस वक्त क्लाइव की कीर्ति-पताका विलायत में चारों ओर उड़ने लगी। वह बङ्गाल का गवर्नर भी बना दिया गया। डचों पर भी उसने भारी विजय प्राप्त की। उनके जहाज़ी बेड़े को उसने पूरी तरह से परास्त किया। डचों के साथ व्यवहार करने में क्लाइव ने जो अन्याय किया, उसको कोई अंग्रेज इतिहास लेखक समर्थन नहीं कर सका है। अब तक तो अंग्रेज एक व्यापारिक कंपनी के रूप में मशहूर थे, अब वे एक प्रबल-राजशक्ति के रूप में माने जाने लगे। फ्रांसीसी, पोर्चुगीज, डच आदि अन्य यूरोपीय शक्तियों का पतन सा हो गया। कहने का अर्थ यह है कि बँगाल में अंग्रेजों की पूरे तौर से तूंती बजने लगी। क्लाइव कम्पनी के लाभ में इतना काम कर सन् १७६० में इङ्गलैण्ड के लिये रवाना हो गया। इसके पहले उसने मीरजाफ़र पर खूब हाथ साफ़ किया। उसने न केवल कंपनी ही को मालामाल किया, पर खुद ने भी लाखों रुपयों का फ़ायदा उठाया।

मीरकासिम

लूट पाट का बाजार गर्म

मीरजाफर अधिक दिनों तक राज्य का उपभोग न कर सका। जब तक उसके द्वारा कम्पनी की और कम्पनी के नौकरों की जेबें गर्म होती रहीं; जब तक खूब अच्छी तरह से उनका मतलब बनता रहा, तब तक मीरजाफ़र नवाब की गद्दी पर आसीन रह सका। यद्यपि इस वक्त भी मीरजाफर, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, नाम ही का नवाब था। पर जब खज़ाना बिल्कुल खाली हो गया, सैनिकों को तनख्वाह न मिलने के कारण, उनके बग़ावत करने का डर होने लगा, तब हत्भाग्य मीरजाफर अपनी नाममात्र की नवाबी से भी अलग कर दिया गया उन पर कुप्रबन्ध का आरोप लगाया गया। मीरजाफर को नवाबी से अलग करने के लिये कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने अपना विरोध भी प्रकट किया, पर इसका कुछ नतीजा न निकला। मीरजाफर के स्थान पर मीरकासिम नवाब बनाया गया। इसके बदले में कम्पनी को बर्धमान, मीदनापुर और चिलगांव के परगने मिले। इन समृद्धिप्रद परगनों के अतिरिक्त मीरकासिम को कर्नाटक के युद्ध खर्च के लिये पांच लाख रुपया देना पड़ा। मीरकासिम को गुप्त रूप से यह भी चेतावनी दी गई कि जिन्होंने उसे नवाब बनाया है, वह उनका स्वार्थ न भूले। नवाब बनाने के उपलक्ष्य में तत्कालीन गवर्नर व्हेनिस्टार्ट को ५०००० पौंड, हालवेल को २७००० पौंड और अन्य कौंसिल के मेम्बरों को पच्चीस पच्चीस हजार पौंड मिले। कर्नल कौलौड ने (Colonel Coillaud), जिन्होंने शाह आलम को शिकस्त दी थी, इस प्रकार पहले तो रिश्वत लेना मुनासिब न समझा, पर पीछे जाकर उन्होंने २००० पौंड स्वीकार कर लिया। और भी कई कर्मचारियों को बड़ी बड़ी रकमें मिलीं।

इस प्रकार इस वक्त भी कम्पनी ने और उसके कर्मचारियों ने नवाब पर खूब हाथ साफ किया। वे मालामाल हो गये। इस अतुलनीय धन के प्रभाव से इन लोगों ने, जब ये विलायत गये, ऊंची स्थिति प्राप्त कर ली। समाज में उन का मान मरतबा खूब बढ़ गया। इस ओर तो कम्पनी और उसके कर्मचारियों के यहां सोने चांदी की नदियां बहने लगीं, और इस ओर मीरकासिम का ख़ज़ाना खाली हो गया। केप्टन टॉटर लिखते हैं कि मीरकासिम दरिद्री हो गया और कम्पनी को जो धन मिला, उसके प्रभाव से अंग्रेजों ने पांडचेरी में फ्रेञ्चों पर विजय प्राप्त की। मतलब यह कि प्लासी के युद्ध के बाद कम्पनी की क़िस्मत ने पलटा खाया और दिन बदिन उसके व्यापारिक प्रभाव के साथ साथ उसकी राजनैतिक सत्ता भी बढ़ने लगी।

मीरक़ासिम मीरजाफर की तरह निर्बल हृदय नहीं था। उसने अपने शासन कार्य्य में पूरी योग्यता का परिचय दिया। उसने अंग्रेजों के इशारे पर नाचना पसन्द नहीं किया। उसे यह बात नहीं रुची कि दूसरे उसे काठ का उल्लू बना दें और उससे नाजायज़ फ़ायदा उठावें। केप्टन टॉटर अपने "warren Hasting" नामक ग्रन्थ में कहते हैं,—

"मीरक़ासीम ने शासन के आरम्भ में तो अंग्रेजों की मर्जी सम्पादन करने का अच्छा प्रयत्न किया। उसने मीरजाफ़र के मुंह लगे नौकरों को बरख्वास्त कर दिये और उनसे वह सम्पत्ति छीन ली, जो उन्होंने नाजायज़ तौर से प्राप्त की थी। मीरजाफर के समय तनख्वाह न मिलने से जो सैनिक बग़ावत कर रहे थे, उन्हें भी उसने तनख्वाह का बकाया (arrears) देदिया। इतना ही नहीं उसने कम्पनी के सैनिकों को भी तनख्वाह दे दी। जो धन उसने कलकत्ते भेजा उससे अंग्रेजों को मद्रास में फ्रान्सीसियों के नाश करने में बड़ी सहायता पहुँची। मीरक़ासिम के शासन में हर एक सरकारी डिपार्टमेन्ट में महत्त्व पूर्ण सुधार हुआ। मीरक़ासिम के शासन काल के प्रथम दो वर्षों में जितनी सुदृढ़ता से न्याय का अमल किया गया और जितनी अच्छी तरह राज्य की आमदनी का

उपयोग किया गया, वैसा शायद ही कभी पहले बङ्गाल में किया गया होगा।" इसके अतिरिक्त और भी कई अंग्रेज इतिहासवेत्ताओं ने मीरकासिम के शासन की बड़ी प्रशंसा की है। मि० रॉबर्ट अपनी "History of British India" में लिखते हैं:—

Mirqasim was a ruler of considerable administrative ability and in many ways improved the position of his province अर्थात् "मीरकासिम एक ऐसा शासक था, जिसकी शासन सम्बन्धी योग्यता खूब चढ़ी बढ़ी थी और उसने कई तरह से अपने प्रान्त की स्थिति सुधारी थी।" पर दुःख है कि तत्कालीन कम्पनी के कर्मचारियों की बेईमानी और डाकूपन ने मीर कासिम के योग्य शासन को अधिक दिनों न चलने दिया। कंपनी के कर्मचारियों ने मीरक़ासिम के साथ कैसी कैसी बदमाशियां की इस का जिक्र ज़रा विस्तृतरूप से आगे किया जायगा।

हम किसी पिछले अध्याय में कह चुके हैं कि दिल्ली के बादशाह फर्रुखसियर ने ईस्टइन्डिया कम्पनी को फ़र्मान देकर उनके व्यापार पर महसूल माफ़ कर दिया था। वह फ़र्मान केवल कम्पनी को दिया गया था। इसका आशय यह नहीं था कि इस फ़र्मान का उपभोग कर कम्पनी के नौकर या अन्य अंग्रेज बिना राज्यकर दिये हुए मनमानी रीति से व्यापार करें और उक्त फ़र्मान का नाजायज़ फायदा उठावें। इस के अतिरिक्त यहां यह बात भी ध्यान में रखना चाहिये कि जिन दिनों में कम्पनी को यह फ़र्मान दिया गया था, उस वक्त कम्पनी की स्थिति इस वक्त से बिल्कुल जुदा थी। उस का व्यापार उस वक्त बहुत ही संकुचित था। पर अब कम्पनी का व्यापार बहुत बढ़ चुका था। ऐसी हालत में बिना महसूल दिये व्यापार करने से नवाब की आय में बहुत क्षति होती थी। अगर यह बुराई यहीं तक रह जाती तो भी ठीक थी, पर कम्पनी के नौकरों ने उक्त फ़र्मान का उपयोग अपने प्राइव्हेट व्यापार में भी करना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं, वे उसके बल पर दूसरे अंग्रेजों को भी, अपना स्वार्थ साधन कर

बिना महसूल दिये व्यापार करने की अनुमति देने लगे। इस वक्त चारों ओर अन्धेरा छा गया! जहां किसी ने अंग्रेज गवर्नर के दस्तखत का पास लिया कि फिर उसके माल पर महसूल नहीं लगता था। कम्पनी के नौकर रिश्वत लेकर यह पास चाहे जिस अंग्रेज या गुमास्ते को दे देते थे। कहा जाता है कि इससे उस वक्त कम्पनी का अदना से अदना नौकर तक इस प्रकार पास का दुरुपयोग कर दो तीन हजार रुपया मासिक पा लेता था। इससे यहां के व्यापारियों का व्यापार बुरी तरह नष्ट होता जा रहा था। नवाब ने इन अत्याचारों की, कम्पनी के जिम्मेदार अफसरों के पास, शिकायतें की, पर कुछ सुनवाई न हुई। इस प्रकार के व्यापार से देशी व्यापारियों की कैसी दुर्गति हुई। इस सम्बन्ध में वारेन हैस्टिंगस् ने सन् १७६२ के अप्रेल मास में तत्कालीन गवर्नर को लिखा था "मैंने:— देखा है कि हर एक देहात में देशी व्यापारियों की दूकानें बन्द हो गई हैं। और अंग्रेजी व्यापारियों और उनके अनुचरों के डर से लोग भागे जा रहे हैं। मेरा विश्वास है कि मेरे देश के लोगों के (अंग्रेजों के) उच्छृङ्खल (lawless) व्यवहार से नवाब की आमदनी को भयङ्कर नुकसान पहुँच रहा है। देश की शान्ति नष्ट हो रही है और हमारे राष्ट्र (इङ्गलेण्ड) की इज्जत को धब्बा लग रहा है। बलवान लोगों के द्वारा इस वक्त निर्बलों पर अत्याचार हो रहा है।" यह तो हुई महसूल की बात। इसके अतिरिक्त उस समय कम्पनी के कर्मचारियों ने और ऐसे ऐसे भयङ्कर अत्याचार किये हैं जिनसे सहृदय मनुष्य का कलेजा कांप उठता है।

पाठक जानते हैं कि प्राचीन समय में इस देश का व्यापार बहुत अच्छी दशा में था। यूरोप के कवियों, लेखकों और प्रवासियों ने इस देश की कारीगरी, कलाकुशलता और वैभव की बड़ी प्रशंसा की है। उस समय इस देश की वस्तुएं दुनियां के सब भागों में भेजी जाती थीं और वे अन्य देशों की वस्तुओं से ज्यादा पसन्द की जाती थीं। अकेले बंगाल से १५ करोड़ रुपये का महीन कपड़ा हर साल विदेशों को भेजा जाता था। पटना में ३३०४२६ स्त्रियां, शाहाबाद में १५६५०० स्त्रियां

और गोरखपुर में १७५६०० स्त्रियां चरखों पर सूत कात कर ३५ लाख रुपये कमाती थीं। इसी प्रकार दीनापुर की स्त्रियां ६ लाख और पुर्निया जिले की स्त्रियां १० लाख रुपये का सूत कातने का काम करती थीं। सन् १७५७ में जब लार्ड क्लाइव मुर्शिदाबाद गया था तब उस के सम्बन्ध में उसने लिखा था कि—'यह शहर लण्डन के समान विस्तृत, आबाद और धनी है। इस शहर के लोग लँदन से भी बढ़ कर माल-दार हैं"। परन्तु जब से अंग्रेज व्यापारी इस देश में आये तब से ये लोग हमारे व्यापार को नष्ट करने का उद्योग करने लगे। जब इनकी राज्यसत्ता का प्रभाव बढ़ा, तब तो इनके अत्याचार हद दर्जे को पहुँच गये। ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने तथा उसके कर्मचारियों ने जिस बेदर्दी और क्रूरता के साथ हमारे व्यापार को—हमारे कला कौशल को—नष्ट किया, उसका वर्णन हृदयद्रावक है। कई निष्पक्ष अंग्रेज लेखकों ने भी इस अत्याचार का हृदयद्रावक चित्र खींचा है। हम भी पाठकों को कच्चा चिट्ठा सुनाते हैं।

इतिहास के पाठकों से यह बात छिपी नहीं है कि मुग़ल शासन काल में और अलीवर्दीखां की नवाबी में बंगाल में कपड़े का व्यापार उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। जुलाहे लोग स्वतन्त्रता के साथ कपड़ा बुनते थे और जहां उन्हें अच्छा पैसा मिलता था वहीं वे उसे फ़रोख्त कर देते थे। इन के कारोबार में राज्य की तरफ से कोई रुकावट न थी, बल्कि राज्य की ओर से इन्हें काफ़ी उत्तेजन मिलता था। इसी से जुलाहे लोग खूब समृद्धिशाली हो गये थे। उनके बनाये हुए कपड़ों की मांग न केवल एशिया ही में थी, बल्कि युरोप में भी बहुतायत से थी। यूरोप के बाज़ारों पर यहां के बनाये हुए बढ़िया वस्त्रों का पूर्ण अधिकार था। कहा जाता है कि यहां के बने हुए नफ़ीस और उम्दा मखमल और रेशमी वस्त्रों का व्यवहार करके इंग्लिस्तान की बीबियां अपने पतियों को रिझाया करती थीं। ढाके की मलमल दुनियां भर में मशहूर थी। जुलाहे लोगों के घर सोने चांदी की नदियां बहा करती थीं। मि० वेल्टस नामक एक

तत्कालीन अंग्रेज सज्जन अपनी Considerations on Indian affairs* में लिखते हैं—"हाल में इङ्गलैंड में एक सज्जन हैं, जिन्होंने सिराजुद्दौला के शासन काल में केवल एक जुलाहे के यहां से बहुत बढ़िया और कीमती मलमलों के ८०० थान खरीदे थे।" हमारे कहने का मतलब यह है कि सिराजुद्दौला के शासन काल में भी बङ्गाल के जुलाहों की स्थिति अच्छी थी। पर जबसे अंग्रेजों की राज्यसत्ता का आरम्भ हुई, तब ही से यहां के उन्नतिशील और संसार प्रख्यात उद्योग धन्धों को शनिश्चर की दशा लगी! जिस प्रकार मनोहर और शान्तिमय चन्द्रमा को राहुग्रस्त कर लेता है, उसी प्रकार यहां के उद्योगधन्धों को इन लोगों ने पूर्णरूप से ग्रस्त कर लिया। सिराजुद्दौला के बाद बङ्गाल में अंग्रेजों की पूरी तूती बोलने लगी थी। इस वक्त ये लोग बङ्गाल के कर्त्ता-धर्त्ता और हर्त्ता हो गये थे। इस वक्त इन लोगों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से लूट मचाने में कसर न की। नादिरशाह और चङ्गेजखां की लूट से भारतवर्ष को जो नुक्सान नहीं पहुँचा, वह इन लोगों ने पहुँचाया। यह मत हमारा ही नहीं है। एडमण्ड बर्क ने ब्रिटिश पार्लामेन्ट के सामने गर्ज कर यही बात कही थी। तत्कालीन गवर्नर व्हेनिस्टार्ट ने भी अपने narrative में इस लूट का हृदयद्रावक चित्र खींचा है।

कम्पनी ने बड़ी तरकीब से यहां का व्यापार डुबोया और यहां के उद्योगधन्धों को नष्टभ्रष्ट किया! कम्पनी ने और उसके नौकरों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये, इस सम्बन्ध में हम कुछ अंग्रेजों की राय नीचे देते हैं।

"Considerations on Indian affairs" नाम के उक्त ग्रन्थ में बोल्टस साहब लिखते हैं–"यह बात बहुत सच है कि जिस तरह कम्पनी इस देश में व्यापार कर रही है, वह जुल्म और उपद्रव का एक लगातार दृश्य है, जिसके हानि कारक परिणाम प्रत्येक जुलाहे और कारीगर पर देख पड़ रहे हैं। अंग्रेज लोग इस देश में होने वाली प्रत्येक वस्तु का ठेका ले लेते हैं और अपनी ही खुशी से उनका भाव मुकर्रिर

करते हैं। जब उनका गुमाश्ता किसी गांव में पहुँचता है तो वह अपने चपरासी को भेज कर वहां के दलालों और जुलाहों को अपनी कचहरी में बुलवाता है और उनको कुछ रुपये पेशगी देकर एक तमस्सुक इस आशय का लिखवा लेता हैं कि इतना माल, इतने दिनों में; इस भाव से दिया जायगा। यह काम जुलाहों की रज़ामन्दी से नहीं किया जाता। कम्पनी के गुमाश्ते लोग, अपनी इच्छानुसार, जुलाहों से मनमानी शर्तें लिखवा लेते हैं। यदि कोई पेशगी लेने से इन्कार करता है तो रुपये उसकी कमर में बांध दिये जाते हैं और उसे कोड़े मार कर कचहरी से निकाल देते हैं। बहुतेरे जुलाहों के नाम कम्पनी के रजिस्टर में दर्ज रहते हैं। उन्हें किसी दूसरे पुरुष का काम करने की इजाज़त नहीं दी जाती। इस व्यवहार से जो दुःख होता है वह सचमुच कल्पनातीत है और उसका अन्तिम फल यही होता है कि बेचारे जुलाहे ठगे जाते हैं। जिस वस्तु की कीमत खुले बाजार में सौ रुपये होती हैं उसके लिये उन्हें सिर्फ ५०—६० रुपये दिये जाते हैं। जब जुलाहे इस प्रकार की कड़ी शर्तें पूरी नहीं कर सकते—जब वे तमस्सुक में लिखी हुई शर्तों के मुताबिक़ माल तैय्यार नहीं कर सकते तब उनकी सब जायदाद छीन ली जाती है और उसे बेचकर कम्पनी के लिये रुपये वसूल कर लिये जाते हैं। रेशम लपेटने वालों के साथ ऐसा अन्याय का बर्ताव किया गया है कि उन लोगों ने अपने अँगूठे तक काट डाले, इस हेतु से कि, उन्हें रेशम लपेटने का काम ही न करना पड़े!"

इस प्रकार के कितने ही भयङ्कर अत्याचार उस समय गरीब और अभागे भारतवासियों पर हो रहे थे। बङ्गाल में चारों ओर त्राहि-त्राहि मच रही थी। बंगाल का सत्यानाश हुआ जा रहा था। घर के घर बरबाद हो रहे थे! भयङ्कर लूट मच रही थी! इस लूट के विषय में एडमण्ड बर्क ने ब्रिटिश पार्लामेन्टके सामने व्याख्यान देते हुए कहा थाः—

"The English army of traders, in their march savaged worse than a Tarataria conqueror" अर्थात

अंग्रेजी व्यापारियों की फ़ौज तातारी विजेता से भी अधिक निकृष्ट बरबादी करती जाती थी।

देश को बरबाद करने के लिये—उसे भिखमंगी हालत में कर देने के लिये-उस समय जैसे २ नीच उपायों का अवलम्बन किया गया था, वह संसार के इतिहास में अपूर्व अत्याचार था। बँगाल के गांवों में परवाने भेज दिये जाते थे कि सिवा अंग्रेजी कम्पनी के गुमाश्तों के और किसी के हाथ माल न बेचा जावे। इससे बेचारे देशी व्यापारियों का व्यापार बिलकुल नेस्तनाबूद हो गया। यहां के व्यापारियों को इस बात की रोक कर दी गई थी कि वे अपने गुमाश्तों को माल खरीदने के लिये देहातों में भी न भेजें। इस प्रकार अनेक भीषण और राक्षसी अत्याचारों पर मि० बोल्टस ने अपने Considerations on Indian affairs" में एक पूरा अध्याय रंगा है। हम यहां उसका थोड़ा सारांश देते हैं:—

"व्यापार करने में जो सुविधाएं अंग्रेजों को दी गई थीं, उनका उन्होंने बड़ा नाजायज़ फ़ायदा उठाया। अंग्रेजों ने जुलाहों के साथ व्यवहार करने के लिये गुमाश्ते रख छोड़े थे। इन गुमाश्तों ने अपना ऐसा अधिकार प्रकट किया जैसा कि नवाब आदि ने भी प्रकट नहीं किया था। इन्होंने जुलाहों पर तरह तरह के अत्याचार करने में हद कर दी थी। उस समय बङ्गाल में कोई जुलाहा ऐसा नहीं था जिस पर इन अत्याचारों का असर न हुआ हो। हरएक पदार्थ जो बँगाल में बनता था, उसका ठेका (monopoly) ले लिया गया था। इससे उन पदार्थों का व्यापार सिवा अंग्रेजी कम्पनी, उसके कर्मचारियों और गुमाश्तों के और कोई नहीं कर सकता था। पदार्थों का मूल्य भी अपनी मर्ज़ी के अनुसार वे ही लोग मुकर्रिर कर दिया करते थे। कारीगरों के साथ बड़ी बड़ी सख्तियां और जुल्म किये जाते थे। कम्पनी ने न केवल पदार्थों का बल्कि कारीगरों तक का ठेका सा ले लिया था। ये बेचारे सिवा कंपनी और उस के गुमाश्तों के और किसी के लिये माल तैयार नहीं कर सकते थे। फ़ेंच

और डच लोगों को तो माल देने की मनाही थी, पर यहां के देशी व्यापारी भी जुलाहों के साथ क्रय विक्रय नहीं कर पाते थे। इन लोगों ने अपने नीच स्वार्थ के लिये कारीगरों और जुलाहों का सत्यानाश कर दिया !

"बेचारे जुलाहों को इस प्रकार के तमस्सुक पर दस्तख़त करने पर मजबूर किया जाता था कि अमुक अमुक माल अमुक तादाद में इतने नियमित मूल्य पर देंगे। अगर कोई जुलाहा या कारीगर इस पर दस्तख़त करने से इन्कार करता तो वह बांध दिया जाता और उस पर भयङ्कर रूप से कोड़े पड़ते। वे अंधेरी कोठड़ियों में बन्द कर दिये जाते थे। इस प्रकार के जुल्मों-अत्याचारों का सिलसिला जारी था। बना बनाया माल तक उन लोगों से ज़बर्दस्ती छीन लिया जाता"।

इसके अलावा और भी बातें देखिये कम्पनी के तत्कालीन अधिकारियों को इन अत्याचारों से भी तुष्टि नहीं हुई। कलकत्ते के गवर्नर और कौन्सिल ने १८ मई सन् १७६८ में एक घोषणा पत्र निकाल कर अर्मेनियनों, पोर्चुगीजों और फ्रान्सीसियों के लिये कारीगरों के साथ व्यापार करने का रास्ता बिल्कुल बन्द कर दिया।

ईस्ट इन्डिया कम्पनी इतने ही से सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने "नमक" जैसी आवश्यक भोजन सामग्री का भी ठेका ले लिया। इसके पहले यहां नमक का ठेका नहीं था। सन् १७६५ की १८ सितम्बर को अँग्रेजों की सिलेक्ट कमेटी की ओर से एक लम्बा चौड़ा घोषणापत्र निकला था उसमें एक जगह लिखा था:—

"That the salt, bettlenut and tobacco produced in or imported into Bengal shall be purchased by this established company aud public advertisements shall be issued strictly prohibitiing all other persons to deal in those articles." अर्थात् नमक सुपारी

तथा तम्बाकू आदि पदार्थ जितने बंगाल में पैदा होते हैं या बाहर से बङ्गाल में आते हैं, वह सब संस्थापित कंपनी द्वारा खरीद लिये जावेंगे, और विज्ञप्तियां निकाल कर दूसरे शख्सों को इन चीजों का व्यापार करने की सख्त मनाई कर दी जायगी।" इसके अलावा उक्त घोषणापत्र में यह भी कहा गया था कि बङ्गाल के नवाब द्वारा वहां के जमींदारों को यह परवाना भिजवा दिया जायगा कि वे अपनी जमींदारी में पैदा होने वाले नमक का ठेका केवल मात्र अंग्रेजों को को दें, दूसरों को नहीं।*" इससे बेचारी गरीब प्रजा को बड़ा कष्ट हुआ। अंग्रेज व्यापारियों ने मनमाने तौर से नमक का भाव बढ़ा दिया। उनका कोई प्रतिस्पर्धी न होने से बेचारी प्रजा को इन के मुँहमांगे दाम देने पड़ते थे। पहले हमारे यहां रुपये का सात आठ मन नमक मिलता था, पर जब से इसका व्यापार अकेले अंग्रेजों के हाथ आया तब से वह क्या भाव बिकता रहा था, इसका परिचय, हम समझते हैं, पाठकों को काफ़ी तौर से होगा। और भी अनेक तरह से, भांति भांति के उपायों का अवलम्बन कर हमारा व्यापार डुबोया गया! हमारी कारीगरी नष्ट की गई और भारतभूमि की यह दशा कर दी गई कि आज दस करोड़ भारतवासियों को एक समय भी यथेष्ट भोजन नहीं मिलता है। कंपनी के व्यापारियों ने हमारे व्यापार को जिस बेदर्दी के साथ नष्ट किया है; उसे कई निष्पक्ष और सहृदय अंग्रेज भी स्वीकार करते हैं। ट्रेवीलियन साहब कहते हैं,—"हम लोगों ने हिन्दुस्थानियों का व्यापार चौपट कर दिया! अब उन लोगों को भूमि की उपज के सिवा और कोई आधार नहीं है।"

---

*It is agreed that application be made to the Nawab for parwana on the several Zamindars of those districts strictly ordering and requiring them to contract of all the salt, that can be made on their lands, with the English alone.

मौरसाहब कहते हैं—"बहुधा ऐसा कहा जाता है कि इंग्लैंण्ड के व्यापार के लिये हिन्दुस्थान के व्यापार का लोप करना, अंग्रेजों की प्रवीणता का; एक दीप्तिमान उदाहरण है। मेरी समझ में यह इस बात का दृढ़ प्रमाण है कि अंग्रेजों ने हिन्दुस्थान में किस तरह जुल्म और उपद्रव किये और उन लोगों ने अपने देश की भलाई के लिये हिन्दुस्थान को किस तरह निर्धन—दरिद्र–स्वत्वहीन–कर डाला।"

कारपेन्टर साहब कहते हैं—"हम लोगों ने हिन्दुस्थान की कारीगरी का नाश कर दिया।" और भी कितने ही अंग्रेजों ने इस अत्याचार को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है।

मीरकासिम से ये अत्याचार नहीं देखे गये। उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से बार बार इन अत्याचारों को मिटाने की प्रार्थनाएं कीं। उसने कम्पनी को लिखा कि इस प्रकार के अत्याचारों से देश बरबाद हुआ जा रहा है! व्यापार डूब गया है! चारों ओर हाहाकार मच रहा है! भयङ्कर रूप से लोग लूटे जा रहे हैं, पर उसकी बात पर कान न दिया गया। तब निराश होकर उसने एक उचित पथ का अवलम्बन किया। उसने सब लोगों के लिये व्यापार पर महसूल माफ़ कर दिया, तब तो इन लुटेरे स्वार्थी कर्मचारियों के क्रोध का पार न रहा। ये मीरकासिम पर दांत पीसने लगे। मीरकासिम से यह हुक्म वापिस लेने के लिये कहा गया। उसने यह बात मँजूर न की। बस फिर क्या था? कम्पनी के क्रोधान्ध और स्वार्थी कर्मचारियों ने युद्ध की तैयारियां कीं। जहां जहां अंग्रेजों की फेक्टरियां थीं वहां युद्ध के लिये तैयारी करने के हुक्म भेजे गये। मीरकासिम इस पर बड़ा हैरान हुआ। उसे इस अजीब व्यवहार से बड़ा दुःख हुआ। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये कहां तक नीचता कर सकता है, उसकी परमावधि देख कर उसके अन्तःकरण को बड़ी चोट पहुँची। उसने कलकत्ते में कम्पनी को लिखा—

"मैं नहीं समझता कि मैंने किस तरह आपको धोका दिया या आपके साथ विश्वासघात किया। मैंने मीरजाफ़र के ख़ज़ाने के दो तीन

करोड़ रुपये हज़म नहीं किये, मैंने आपकी एक बीघे जमीन पर भी कब्ज़ा नहीं किया। क्या मैंने उस क़र्ज़ को अदा नहीं किया जो मीरजाफ़र के सिर था ? क्या मैंने आपसे फ़ौज का बकाया वसूल किया है ? मैंने आपको ऐसा देश दिया जिसकी आमदनी एक करोड़ रुपया है ! क्या ये बातें मैंने इस लिये कीं कि आप दूसरे को निज़ामत की मसनद पर बैठावें ?"

कम्पनी के स्वार्थी कर्मचारियों ने इस प्रार्थना पर भी ध्यान नहीं दिया। वे मीरक़ासिम का सर्वनाश करने पर तुल गये। हां, यहां हम वारेनहेस्टिंग्स की प्रशंसा किये बिना न रहेंगे। उन्होंने इस समय मीरक़ासिम के न्याययुक्त पक्ष का समर्थन किया। उन्होंने इस युद्ध को रोकने की चेष्टा की, पर कुछ फल नहीं हुआ। फल यह हुआ कि कौन्सिल में एक अंग्रेज सदस्य ने मीरक़ासिम का पक्ष समर्थन करने के लिये हेस्टिंग्स को एक जोर का घूंसा मारा, जिसके लिये वाट्सन साहब को उनसे माफ़ी मांगनी पड़ी। हेस्टिंग्ज़ ने सब परिस्थिति का विचार कर कौंसिल से इस बात का अनुरोध किया कि इन सब ख़राबियों का मूलोच्छेदन करने के लिये नवाब के अधिकार और हमारे स्वत्वों के बीच कोई सीमा निर्द्धारित की जानी चाहिये।" हेस्टिंग्ज के इस अनुरोध का भी कुछ फल नहीं हुआ।

इसी झगड़े को मिटाने के लिये 'वारेन हेस्टिंग्ज' कमीशन लेकर मीरक़ासिम के पास गये थे इस कमीशन ने नवाब के सामने उसके कई एक न्यायानुमोदित प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया था—पर जब कमीशन की रिपोर्ट कलकत्ते की कौंसिल में पढ़ी गई, तब कौंसिल के अधिकांश स्वार्थी मेम्बरों ने उस रिपोर्ट का घोर प्रतिवाद किया। हेस्टिंग्ज़ और तत्कालीन गवर्नर व्हेनिस्टार्ट के स्वीकृत प्रस्ताव कौंसिल वालों ने रद्द कर दिये। जब मीरक़ासिम को कलकत्ते की कौंसिल की कारंवाईयों के समाचार मिले. तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने देशी व्यापारियों के माल पर महसूल न लेने का नियम बहाल रखा।

नवाब के इस निश्चय को सुन कर कौन्सिल के स्वार्थी और अन्यायी सदस्यों ने नवाब को राज्यच्युत करने का निश्चय किया। मीरजाफ़र को नवाबी से च्युत करने का संकल्प अंग्रेजों की आज्ञामात्र से कार्य में परिणत हो गया था। किन्तु मीरक़ासिम मीरजाफ़र जैसा कायर, निकम्मा भीरू और अंग्रेजों का गुलाम नहीं था। उसे राज्यच्युत करना ज़रा टेढ़ी खीर थी। कौन्सिल की धारणा थी कि जो व्यक्ति कोई वस्तु किसी को देने का अधिकार रखता है तो वह उस दी हुई वस्तु को छीन लेने का अधिकारी भी है। मीरक़ासिम की धारणा इससे सर्वथा विपरीत थी। उसके विचार में अंग्रेजों की धारणा वृथा और तर्क शून्य थी। वह समझता था कि बङ्गाल न्याय से न तो अंग्रेजो का देश था और न उन्हें न्याय की दृष्टि से बङ्गाल को देने का अधिकार था, और न उसे फिर छीन लेने का।

जब नवाब ने देखा कि कौन्सिल के सदस्य अपनी अत्याचारी और अन्याय—युक्त नीति को पकड़ कर युद्ध करना चाहते हैं तब वह भी सतर्क हो गया। वह अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से हटा कर मुंगेर ले गया। नवाब भी युद्ध की तैयारियां करने लगा। मीरक़ासिम बङ्गाल की स्वाधीनता के लिये अन्तिम चेष्टा करने लगा। इस ओर अंग्रेजों ने चुपके चुपके पटना पर धावा मार उस पर अपना अधिकार जमा लिया। पहले नवाब की सेना, अचानक अंग्रेजों के आ टूटने पर विस्मित और किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो नगर छोड़ भाग गई, किन्तु पीछे से जब अंग्रेज़ विजय प्राप्त करने का आनन्द मना रहे थे और शराब के नशे में चूर हो रहे थे; उस समय नवाबी सेना ने सहसा आक्रमण कर अंग्रेजी सेना को मार भगाया और पटना पर फिर अधिकार कर लिया। इस आक्रमण में बहुत से अंग्रेज नवाब के हाथ पड़े। जब पटने के बखेड़े का समाचार नवाब को मिला तब उसने समझ लिया कि युद्ध का श्रीगणेश हो गया है। उसने अंग्रेजों की कोठियों पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। अंग्रेज़ों की कोठियों पर अधिकार कर वह उन कोठियों के अंग्रेजों को क़ैद कर मुङ्गेर

भेजने लगा। कहा जाता है कि नवाब ने आज्ञा दी थी कि जहां कोई अंग्रेज मिले, वह वहीं मार दिया जावे। अमायट (Amayat) नामक एक अंग्रेज कम्पनी की ओर से नवाब के साथ बातचीत करके कलकत्ते जा रहे थे, रास्ते में लोगों ने मार डाला और उनका काटा हुआ सिर बड़ी धूम धाम के साथ मुङ्गेर भेजा गया।

अंग्रेजों ने भी मुर्शिदाबाद पर हमला करने के लिये फ़ौज भेजी। यद्यपि नवाब की सुशिक्षित सेना के रहते मुर्शिदाबाद ले लेना सामान्य बात नहीं थी, पर स्वदेशद्रोही, स्वार्थ-तत्पर और विश्वासी लोगों के विश्वासघात से मीरक़ासिमकी की हुई आत्मरक्षा की सभी तैयारियां निष्फल हुईं। मुर्शिदाबाद अंग्रेज़ सेना के हाथ पड़ा। इसके बाद अभागे नवाब की कटवा में भी हार हुई। कटवा के बाद गिरिया में अंग्रेजी और नवाबी सेना का मुकाबला हुआ। यहां नवाब के सेनापति मीरबदरुद्दीन का पतन हुआ। सेनापति के मरते ही नवाब की सेना रणक्षेत्र छोड़ कर भागी। इसके बाद उदयानल का युद्ध हुआ। प्लासी की तरह उदयानल का युद्ध भी भारत के इतिहास में चिरकाल तक प्रसिद्ध रहेगा। प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला के दुर्भाग्य से मीरजाफ़र उसकी सेना का सेनापति था और उदयानल के युद्ध में मीरक़ासिम के भाग्यदोष से विश्वासघाती गुरमखां नवाब की सेना का सेनापति हुआ था। प्लासी की लड़ाई में बङ्गाल की स्वाधीनता का मार्तण्ड अस्ताचलगामी हुआ, और उदयानल के युद्ध में बङ्गाल की स्वतन्त्रता का दिवाकर अस्त हो गया। उदयानल में मीरक़ासिम के लगभग पचास सहस्र सैनिक थे। अंग्रेज केवल पांच सहस्र सैनिकों के साथ रात के समय उदयानल के दुर्ग में घुस गये। और नवाब के निरस्त्र सिपाहियों पर महावेग से टूट पड़े। नवाब के सिपाही भयभीत और निरुपाय होकर भाग गये। कहते हैं कि यह दुर्घटना मीरक़ासिम के एक नमक हराम, नृशंस विश्वासघातक सिपाही की दुरभिसन्धि का परिणाम थी। धीरे धीरे अंग्रेज नवाब के नगरों पर अधिकार

करते गये। मुंगेर और मुर्शिदाबाद को भी अंग्रेजों ने ग्रस लिया। मीरकासिम डेढ़सौ कैदियों को साथ लेकर पटना भाग गया। जिस समय नवाब ने सुना कि अंग्रेजों ने मुँगेर भी ले लिया, उसी समय उसने उन अंग्रेज कैदियों को कत्ल करने का हुक्म दिया। समरू नामक एक फ्रान्सीसी ने बड़ी निर्दयता के साथ इन निरस्त्र अंग्रेजों का क़त्ल किया !! चारों ओर की परिस्थति को देखते हुए नवाब का क्रोधान्वित होना स्वाभाविक था और क्रोध के आवेश में उसने इन निरस्त्र अंग्रेज कैदियों को कत्ल करने का हुक्म दिया, पर इस निर्दय हत्याकाण्ड का समर्थन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। अस्तु।

इस हत्याकाण्ड से अंग्रेजों का खून उबलने लगा। अब तो उन्होंने मीरकासिम का सर्वनाश करने का पूरा पूरा निश्चय कर लिया। इन अंग्रेजों कैदियों की हत्या होने के बाद एडम साहब ने पटना घेरा। मीरकासिम सकुटुम्ब अवध भाग गये। मीरकासिम ने अवध के नवाब से मिलकर अंग्रेजों के हाथ से बंगाल को मुक्त कराने की एक बार फिर चेष्टा की। मेजर मनरोने नवाब सिराजुदौला, मीरकासिम और बादशाह शाहआलम को बक्सर के युद्ध में हराया। सरजेम्स स्टेफिन कहते हैं:—"भारतवर्ष में ब्रिटिश शक्ति की नींव लगाने का उतना श्रेय प्लासी को नहीं है, जितना बक्सर को है। यहां बड़ी भयङ्कर लड़ाई हुई। मीरकासिम की फौज ने बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया। इसमें अंग्रेजों के ८४७ मनुष्य हताहत हुए। नवाब की ओर के २००० मरे। इसमें प्लासी की तरह केवल बङ्गाल के नवाब ही न थे, पर हिन्दुस्थान के बादशाह और उनके सचिव भी थे, जिन्होंने कि हार खाई।" मीरकासिम चारों ओर से निराश होकर भाग गये। वे कहां गये। इसका पता नहीं लगा। कहा जाता है कि वे फकीर बन कर देश त्यागी हुए। उपरोक्त घटना के बहुत दिनों बाद दिल्ली की सड़क पर लोगों ने एक लाश देखी थी, जो एक बहुमूल्य शाल से ढकी थी। उस शाल के एक कोने पर लिखा था,—"मीरकासिम अब कंपनी के स्वार्थी और अत्याचारी

कर्मचारियों के पथ का एक जबरदस्त कांटा दूर हो गया"। कलकत्ते की स्वार्थपरायण कौन्सिल ने बङ्गाल की नवाबी पर फिर "क्लाइव के गधे" मीरजाफर को बिठाया। इस वक्त भी इन स्वार्थियों ने नीति नियमों को को ताक में रख कर बँगाल के खजाने पर खूब हाथ साफ किया। मीर-जाफर से वह सब खर्च लिया गया जो अंग्रेजों का मीरकासिम के साथ युद्ध करने से हुआ था और भी मजा देखिये, मीरकासिम ने सब लोगों के लिये बिना महसूली खुला व्यापार कर देने के लिये अंग्रेजों का जो नुक्सान हुआ था, उसकी पूर्त्ति भी मीरजाफर से की गई। धनलोलुप कौन्सिल ने मीरजाफर से, कंपनी के कर्मचारियों को छोड़ कर अन्य सब लोगों के लिये बिना महसूली व्यापार करने का मार्ग बन्द करवा दिया। अब फिर अंग्रेज लोग बिना महसूल के व्यापार करने लगे और इस तरह वहां के देशी व्यापारियों का व्यापार नष्ट होने लगा। फिर वही बेढ-ङ्गी रफ्तार शुरू हो गई। अत्याचारों और जुल्मों का बाज़ार गर्म हो गया। धनलोलुप कंपनी के कर्मचारियों को भूखे व्याघ्र की तरह बङ्गाल को निरीह प्रजा के अवशिष्ट धनरूपी रक्त से अनन्त और राक्षसी क्षुधा मिटाने का फिर अवसर प्राप्त हुआ। चिरपददलित भारत की शस्य श्यामला बङ्ग-भूमि को भस्मसात् करने का उपक्रम रचा गया। बङ्गाल की गरीब प्रजा पर फिर वहां लूट शुरू हो गई, जिसे मिटाने के लिये हतभाग्य मीरकसिम ने असफल प्रयत्न किया था।

हतभाग्य मीरजाफ़र अधिक दिन तक जीवित नहीं रहा। वह बूढ़ा हो चुका था। नाना व्याधियों से उसका शरीर भी जीर्ण हो गया था। कुष्ट रोग से उसकी अँगुलियां गिर गई थीं। कितने लोग कहते हैं कि उसने सिराजुद्दौला के सामने नमकहलाल रहने के लिये इन्हीं अंगुलियों को कुरान पर रख कर कसम खाई थी। मीरजाफर ने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया और ईश्वर ने उसे यह दण्ड दिया, अस्तु। मीरजाफर के मरने के बाद बंगाल की कौन्सिल ने उसके पोते को गद्दी पर न बैठाते हुए उसके दूसरे लड़के को नवाबी की मसनद पर बैठाया।

इसे भी अंग्रेजों ने पूरी तरह अपने हाथ का कठपुतला बनाया। असल में सारी सत्ता अंग्रेजों के हाथ में थी। नाम के लिये इसे नवाबी की मसनद पर बैठा दिया गया था। इसके मिनिस्टर तक को अंग्रेज मुकर्रिर करते थे। इससे कहा गया कि,—"खबरदार, हमारे व्यापारिक हकों को स्पर्श तक मत करना। इंग्लेंड से कम्पनी के डाईरेक्टर इन स्वार्थी कर्मचारियों के अत्याचारी कामों के लिये विरोध सूचक प्रस्ताव भेजते रहे। पर ये लोग स्वार्थ में इतने अन्धे हो गये थे कि इन्होंने अपने मालिकों की भी बात न सुनी। जिस प्रकार किसी को खून की चाट लग जाने से फिर वह हमेशा खून का प्यासा रहता है, ठीक यही हालत कम्पनी के स्वार्थी कर्मचारियों की थी। उक्त नवाब से कलकत्ते के गवर्नर और उसके अन्य सहयोगियों ने १३९३५७ पौंड नज़राना के लिये थे। हद दर्जे की रिश्वतखोरी चलने लगी। नीतिनियमों के सारे बन्धन तोड़ दिये गये। जब इस अन्धेर की खबर विलायत पहुँची तब इन बुराइयों का प्रतिकार करने के लिये लार्ड क्लाइव को फिर हिन्दुस्थान भेजने की योजना हुई। इस वक्त क्लाइव बंगाल का गवर्नर और कमांडर—इन चीफ बनाया गया। क्लाइव को इस बात का आश्वासन दिया गया कि भारत में उसने जो जागीर प्राप्त की है, उसका वह दस वर्ष तक सानन्द उपभोग कर सकेगा। इस तरह कई प्रकार के अधिकार और आश्वासन लेकर क्लाइव फिर भारत के लिये रवाना हुआ।

क्लाइव का पुनः आगमन

क्लाईव हिन्दुस्थान में सकुशल पहुँच गया। उसने आकर देखा कि हिन्दुस्थान में ब्रिटिश सत्ता का सूर्य्य बड़ी तेज़ी से चमक रहा है। उसने देखा कि चारों ओर ब्रिटिश सत्ता का दबदबा छा गया है। इसके साथ ही उसने कम्पनी के कर्मचारियों की स्थिति देखी। देखा कि चारों ओर एक प्रकार की व्यापारिक लूट मची हुई है। रिश्वत, अत्याचार और जुल्म का बाज़ार बहुत गर्म है। चारों ओर कम्पनी के कर्मचारियों ने अन्धेर मचा रक्खा है। नीति-नियम सब कुछ ताक़ में रख दिये गये हैं। केवल स्वार्थ अपनी सत्ता अबाधित रूप से चला रहा है। जैसा कि पहले कह चुके हैं क्लाइव इन ही सब खराबियों को दूर करने के लिये विलायत से यहां भेजा गया था। क्लाइव ने यहां पहुँच कर इस बिगड़ी हुई रफ्तार में कुछ सुधार करना चाहा। उसने समझा कि मौजूदा कौंसिल को रखते हुए सुधार होना असम्भव है, अतएव उसने उस कौन्सिल को तोड़ दिया और अपनी इच्छानुसार एक सिलेक्ट कमेटी कायम की। इस कमेटी में क्लाइव ने ऐसे आदमियों को रक्खा, जिन से उसकी अच्छी पट सकती थी और जिनके सहयोग से वह बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारने की आशा करता था। इसके बाद उसने एक इक़रारनामा तैयार किया, जिस में कम्पनी के नौकरों के लिये नज़राना लेने की तथा बिना महसूल दिये रवानगी व्यापार करने की मनाही की गई थी। उसने इस में सफलता पाने के लिये कम्पनी से नौकरों की तनख्वाह बढ़ाने का प्रस्ताव किया, पर कम्पनी के डायरेक्टरों ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस पर क्लाइव ने कम्पनी के ऊंचे नौकरों के लिये नमक का ठेका लेने का पथ खोल दिया। इसमें कम्पनी के नौकरों को खास मुनाफ़ा मिलने लगा। कहा जाता है कि इस व्यापार में

तत्कालीन गवर्नर को १८६०० पौंड, फौज के कर्नल को ७०७० पौंड सालाना मुनाफा हुआ। इसी प्रकार अन्य नौकरों को भी उनकी हैसियत के अनुसार मुनाफा हुआ। इस व्यवस्था के लिये क्लाइव की विलायत में बड़ी निन्दा हुई। कहा गया कि जब डाइरेक्टरों ने कम्पनी के नौकरों के लिये सब प्रकार का स्वानगी व्यापार बन्द कर दिया, तब क्लाइव को क्या अधिकार था कि वह नमक का व्यापार उनके लिये खुला रख दे। इसके दो वर्ष बाद डायरेक्टरों ने कंपनी के नौकरों के लिये प्राइवेट व्यापार करने की पद्धति कतई बन्द कर दी और उनके लिये एक खास तरह का कमीशन मुकर्रिर कर दिया। कंपनी को अपने व्यापार में जितना मुनाफा होता था, उसी की औसत से कर्मचारियों को अपने दर्जे और तनख्वाह के मान से यह कमीशन दिया जाता था। इससे भी कर्मचारियों की अच्छी प्राप्ति हो जाती थी। गवर्नर को अपनी तनख्वाह के सिवा १८५०० पौंड कमीशन के मिलते थे। इसी प्रकार अन्य नौकरों को अपने अपने दर्जे और तनख्वाह के मान से कमीशन मिलता था।

यहां यह बतलाना आवश्यक है कि क्लाइव को अपने सुधार कार्य्य में पुरानी कौंसिल के मेम्बरों से तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा। वे लोग क्लाइव को कहने लगे कि "तुम अपनी ओर तो देखो। खुद तुमने कितने जायज़ और नाजायज़ ज़रियों से तथा नज़रानों से विपुल धन संग्रह किया है। तुम तो "भट्टजी भट्टे खावें और दूसरों को पथ बतलावें की कहावत को चरितार्थ कर रहे हो।" क्लाइव पर इन लोगों की धमकियों का खासा असर पड़ा; क्योंकि वह खुद पहले नज़राना लेकर खासा बदनाम हो चुका था। उसने सोचा कि इस बात पर ज़ोर देने से शायद बात का बतंगड़ न बन जावे और पार्लामेंट जांच करना शुरू न कर दे। इसके सिवा ऐसा करने से शायद वे गुल खिलें जिनसे क्लाइव भी अछूता न बचे। इस लिये सुधारों की इच्छा रखते हुए भी उसने काफी सख्ती से काम नहीं लिया। हां, यहां एक बात और कह देना आवश्यक

है। क्लाइव ने खुद नमक के शेअर नहीं लिये, पर उसने बहुतेरे शेअर अपने रिश्तेदारों को दिलवाये, जिनसे उन्हें अच्छा मुनाफ़ा मिला।

क्लाइव और दीवानी

इस वक्त क्लाइव ने कंपनी के लिये एक बड़े ही लाभ का कार्य्य किया। उसने तत्कालीन नामधारी सम्राट् शाह आलम से दीवानी की सनद प्राप्त कर ली। यह दीवानी क्या थी, इस पर भी यहां थोंड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक है। मि० व्हेनिस्टार्ट, जो क्लाइव के पहले कलकत्ते के गवर्नर रह चुके थे, दीवानी की व्याख्या इस प्रकार करते हैं,—"प्रान्त के दूसरे दर्जे के + अफसर का पद दीवान का पद (Office) था। जमीन की देख रेख करना, भूमि कर वसूल करना यही दीवान का काम था। यह अफसर दिल्ली के सम्राट् द्वारा नियुक्त होता था और इसका पद नवाब से बिलकुल स्वतन्त्र था। दीवान के कार्य्यक्रम में नवाब को हस्तक्षेप करने का अधिकार न था। हां, जब से मुग़ल सम्राट् शक्ति हीन हो गये, तब से नवाब ने दीवानी का अधिकार भी हस्तगत कर लिया था।" मि० हालवेल ने, जिनका ज़िक्र हम ऊपर कई दफ़ा कर चुके हैं और जो उस ज़माने में किसी समय कलकत्ते के गवर्नर रह चुके थे, लिखा है:—

"भूमि कर पर सम्राट् का स्वामित्व रहता है। जो इस भूमिकर को वसूल करता है वह दीवान कहलाता है। हर एक नवाबी में एक एक दीवान भी रहता था, जो भूमिकर और अन्य इस प्रकार के कर वसूल किया करता था। यह नवाब से बिलकुल स्वतन्त्र रहता था। भूमि कर वसूल कर सम्राट् के खजाने में भेज दिया जाता था।"

मतलब यह कि अब से दीवान का काम कंपनी के जिम्मे आ गया। दीवान तो सम्राट् का एक नौकर रहता था, जो भूमिकर वसूल

+ पहले दर्जेका अफसर वज़ीर कहलाता है।

कर बादशाही ख़ज़ाने में भेज दिया करता था, पर अंग्रेज तो दीवानी के पूरे पूरे मालिक बन बैठे। अब उन की पांचों अँगुलियां घी में तर रहने लगीं। अब वे बङ्गाल के कर्त्ता—धर्त्ता हो गये। दीवानी की प्राप्ति होने के बाद लॉर्ड क्लाइव और उनकी सिलेक्ट कमेटी ने कोर्ट आफ डायरेक्टर्स को ३० सितम्बर सन् १७६५ को निम्न लिखित आशय का एक पत्र लिखा थाः—

"नवाब और आपके नौकरों के बीच उच्च सत्ता के लिये जो निरन्तर झगड़े चल रहे हैं तथा आपके नौकरों में रिश्वतखोरी और भ्रष्टता का बाजार जिस प्रकार गर्म हो रहा है, उन सब खराबियों को दूर करने के लिये इससे कोई अच्छा उपाय नहीं सूचित किया जा सकता कि बंगाल, बिहार और उड़ीसे की दीवानी ले ली जावे। इस से इन खराबियों की जड़ में अपने आप कुठाराघात हो जायगा।"

"दीवानी के प्राप्त हो जाने से हिन्दुस्थान में आपका अधिकार स्थायी और सुरक्षित हो गया है। भविष्य में न तो किसी नवाब के पास इतनी सम्पति रह जायगी और न इतनी शक्ति रह जायगी कि वह आपको उलटने (overthrow) का प्रयत्न कर सके। वर्षों के अनुभव से हमारा यह निश्चय हो गया है कि बिना असन्तोष उत्पन्न किये और बिना ऐक्य में बाधा डाले शक्तियों में फूट उत्पन्न करना असम्भव है। हमारा तो विश्वास है कि स्थिति तब ही ठीक हो सकती है जब या तो सब कुछ हमारा ही हो जावे या सब कुछ पर नवाब ही का अधिकार रहे।"

इसके बाद सन् १७६५ के ३० सितम्बर को लार्ड क्लाइव और उनकी सिलेक्ट कमेटी ने कोर्टआफ डाइरेक्टर्स को लिखा थाः—

"You have, now, become the sovereigns of a rich and potent kingdom. अर्थात आप अब एक समृद्धि

शाली और शक्तिशाली राज्य के राजा हो गये हैं। इसी पत्र में अन्यत्र एक स्था.न पर लिखा था:—

"You are now not only the collectors but the proprietors of the Nawab's dominions. अर्थात् अब आप केवल नवाब के राज्य के कर वसूल करने वाले (collectors) ही नहीं रहे हैं, अब आप एक तरह से नवाब के राज्य के मालिक भी होगये हैं।" इसी तरह क्लाइव ने दूसरी बार भी कम्पनी के लिये बड़ कार्य्य किया, जिससे कम्पनी की सत्ता बहुत बढ़ गई। इसी प्रकार के कार्य्य कर क्लाइव फिर विलायत को लौट गया।

अत्याचारों का लगातार दृश्य

क्लाइव के लौट जाने के पांच वर्ष बाद लार्ड हेस्टिंग्ज बङ्गाल का गवर्नर नियुक्त हुआ। इस मध्यवर्ती पांच वर्ष के समय में Vereli (१७६७–६) और कार्टियर (१७७०–२) अनुक्रम में बङ्गाल के गवर्नर रहे। ये दोनों बड़ी कमज़ोर प्रकृति के थे। चारित्र्य-बल का इन में एक तरह से अभाव था। इनके वक्त में फिर वही अन्धाधुन्धी शुरू हो गई। रिश्वतखोरी, अत्याचार, धोखेबाज़ी और जुल्म का बाजार फिर गर्म हो गया। कम्पनी के नौकर बेचारे देशी आदमियों के व्यापार की बुरी तरह बलि लेने लगे। क्लाइव के किये हुये सुधारों पर पानी फिर गया। इसी अर्से में बङ्गाल में एक महाभीषण अकाल पड़ा। इस अकाल का वृत्तान्त पढ़कर कौन पाषाण हृदय होगा जिसका कलेजा पानी पानी न हो जावे और जिसकी आंखों से आंसुओं की धाराएँ न बह निकले! कहा-जाता है कि इस भयङ्कर अकाल ने कोई डेढ़ करोड़ आदमियों की बलि ली। इस अकाल की भीषणता के विषय में कम्पनी के नौकर ने लिखा था:—

"The scene of misery shocks human hearts too much. Certain it is that in several parts

the livnig have fed on the dead, अर्थात् कष्ट और दुःख का दृश्य इतना भयङ्कर था कि उससे मनुष्य जाति का हृदय कांप उठे ! कई जगह ज़िन्दे मनुष्य मुर्दों को खाते हुए दिखलाई पड़ते थे।" ऐसे समय में भी कम्पनी के नौकरों ने बड़ी बेदर्दी और असीम पाशविकता से भूमिकर वसूल किया था ! प्रजा की आर्थिक स्थिति का इस समय कुछ भी ख्याल नहीं किया गया। कम्पनी ने इस महाकरुणाजनक दुःस्थिति में भी मालगुज़ारी कौड़ी कौड़ी वसूल की। भूखे किसानों पर मालगुज़ारी वसूल करते समय बड़ी बड़ी सख्तियां की गई। बङ्गाल के हतभाग्य किसानों को मालगुज़ारी अदा करने के लिये बीज का धान तक बेच डालना पड़ा ! आबर साहब (Auber) ने अपनी "British power in India" में लिखा है:—

"The Gomasthas of English gentlemen not barely for monopolizing grain but for compelling the ryots to sell even the seed requisite for the next harvest." अर्थात् अंग्रेज सज्जनों के गुमाश्तों ने न केवल प्रस्तुत धानों ही का ठेका लेकर उस पर अधिकार कर लिया है, वरन उन्होंने बेचारे किसानों को दूसरी फ़सल के लिये आवश्यक बीज का धान तक बेचने के लिये मजबूर किया है। हाय ! इस वक्त कम्पनि के कर्मचारियों ने जिस पाशविकता और स्वार्थान्धता का परिचय दिया, उससे हृदय पर बड़ा ही खेदजनक प्रभाव पड़ता है। अन्न के दाने के लिये त्राहि त्राहि करती हुई हतभाग्य प्रजा के लिये कम्पनी ने कुछ नहीं छोड़ा। वेवरिज महोदय अपनी "History of India" में लिखते हैं:—

"Before the famine reached its height almost all the rice in the country was bought up by the servants of the company.

अर्थात् "अकाल के अपनी सर्वोच्चसीमा पर पहुँचने के पहले ही देश

का सारा चावल कम्पनी के नौकरों ने खरीद लिया था।" इसके अतिरिक्त इस वक्त जितनी मालगुज़ारी वसूल की गई उतनी सन् १७६१ से सन् १७७१ तक दस वर्ष के भीतर किसी वर्ष में वसूल नहीं की गई। हम कम्पनी की मालगुज़ारी का दस वर्ष का ख़सरा नीचे देते हैं। इस आमदनी की रक़म में भूमि कर की आमदनी के अतिरिक्त कम्पनी की अन्य प्रकार की आय भी शामिल है।

(मई से अप्रेल तक)

सन्	पौंड
सन् १७६१ से १७६२ तक × × × × ×	१२९५९५९
सन् १७६२ से १७६३ तक × × × × ×	१३५०६५१
सन् १७६३ से १७६४ तक × × × × ×	१३६६४६३
सन् १७६४ से १७६५ तक × × × × ×	१९६१६२६
सन् १७६५ से १७६६ तक × × × × ×	२६६६३५७
सन् १७६६ से १७६७ तक × × × × ×	३१९१७६३
सन् १७६७ से १७६८ तक × × × × ×	२९९६५३९
सन् १७६८ से १७६९ तक × × × × ×	३०३३२५५
सन् १७६९ से १७७० तक × × × × ×	३२९७७०६
सन् १७७० से १७७१ तक × × × × ×	२७९७३०६

पाठकगण ! ऊपर लिखे हुए ख़सरे के अङ्कों को देखकर तथा दुर्भिक्ष की भीषणता का विचार कर प्रजा के कष्टों और कम्पनी के गुमाश्तों के अत्याचारों के विषय में स्वयं अनुमान करलें।

सन् १७६९–७० ईसवी के दुर्भिक्ष में बंगाल प्रदेश में बड़ी अराजकता विद्यमान थी। बङ्गाल की प्रजा के भाग्यदोष से स्वार्थी व्यापारियों की सत्ता ज़ोर पकड़े हुए थी। उन्हें कोई परवाह न थी, चाहे बङ्गाली जीयें या मरें। उन्हें तो अपना मतलब बनाने की गर्ज़ थी। देश में उस समय धनी अवश्य थे, पर उनका धन ऐसी दशा में किस काम आ सकता था।

क्या धनी और क्या किसान किसी के घर में अन्न न था। धनवानों के घरों में रुपये और सोने की अशर्फियां थीं पर उनके नगर या ग्राम में खरीदने के लिये किसान तथा दुकानदारों की दुकानों में अन्न न था !

अंग्रेजों ने बहुत सा चावल बेचने के लिये जमा कर रखा था। अतएव बहुत से लोग पुर्निया, दीनाजपुर, बांकुडा, बर्द्धमान आदि नगरों से कलकत्ता की ओर रवाना हुए। गृहस्थों की कुल कामिनियां अपने प्राणाधिक सन्तानों को गोद में लेकर कलकत्ते की ओर रवाना हुईं। जिन कुलीन गृहस्थों की कुल ललनाओं ने अपने घर की देहली को लांघ कर कभी पैर नहीं दिया था आज वेही अपने बालबच्चों को गोद में लेकर भिखारिणी के वेश कलकत्ते की ओर रवाना हुईं। किन्तु इनमें से बहुतसी कलकत्ते पहुँचने भी न पाईं। ऐसी सैकड़ों कुलकामिनियां और सहस्रों शुष्क काय पुरुष रास्ते ही में हाय अन्न! हाय अन्न! करते हुए मर गये ! भूख शान्त करने के लिये इन्हें मुट्ठी भर भी अन्न न मिला। कई छोटे छोटे बच्चे भूख के मारे मार्ग ही में कालकवलित हो गये ! हाय ! घर से चलते समय माताओं की गोद भरी थी, अब वह सूनी हो गई ! सन्तान-वत्सला माता ने शोक एवं भूख से व्याकुल होकर मानव शरीर परित्याग कर दिया।

बाबू चण्डीचरण सेन ने बङ्गाल के नर नारी गण को सम्बोधन करके लिखा है :—

"हे बङ्गाल देश के नरनारी गण ! तुम आशा से प्रेरित होकर वृथा ही कलकत्ते जा रहे हो। कलकत्ते में जो चावल रखे हैं, वे तुम्हारे भाग्य में नहीं बदे हैं। तुम्हारे जीने से न तो कुछ लाभ है न मरने से कुछ हानि है। तुम्हारी किसी को चिन्ता नहीं है। तुम्हारे भाग्यदोष से आज प्रजावत्सल श्री रामचन्द्र का राम राज्य नहीं है। उदारचेता अकबर आज इस मृत्यु लोक में नहीं हैं। जो शासक आज तुम्हारी रक्षा का भार उठा चुके हैं, वे स्वयं अर्थगृद्ध होने से प्रजा की मङ्गल कामना क्यों करेंगे ?

उन्हें तो आज इस घोर दुर्भिक्ष के समय अपने सजातीय बन्धु बांधवों की और सेना की प्राण रक्षा करने की चिन्ता है। तुम्हारी अपेक्षा उनके सैनिकों के प्राण अधिकतर मूल्यवान् हैं। यदि सैनिकगण मर गये तो मानवी स्वतन्त्रता के मूल पर कौन कुठाराघात करेगा ?"

"हे बंगाल के विपद्ग्रस्त किसानों ! तुम किस आशा पर कलकत्ते जा रहे हो ? हम मानते हैं कि तुम देश को अन्न देते हो। पर तुम्हें मुट्ठी भर अन्न कौन देगा ? इस देश की कुछ कामिनियां यदि चाहें तो उन्हें मुट्ठी भर अन्न मिल सकता है, क्यों कि उनके आंचलों में मोहरें बंधी है। किन्तु क्या तुम ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों से बिना मूल्य दिये ही मुट्ठी अन्न पाने की आशा से कलकत्ते जा रहे हो ? हे कृषक गण ! तुम अपने अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी परमायु का यह अन्तिम दिन है ! तुम्हारे लिये इस संसार को छोड़ देने ही में लाभ है। दयामय भगवान तुम्हें अपनी दयामय गोद में लेने के लिये दोनों हाथ फैलाये बैठे हैं। इस नरपिशाच पूर्ण स्मशान सदृश्य बंगदेश में रह कर अब तुम्हें सुख शान्ति नहीं मिल सकती है।"

आगे चलकर उक्त सेन बाबू महोदय ने कलकत्ते के मार्गों का वर्णन करते हुए लिखा है:—

घोर दुर्भिक्ष उपस्थित है ! दुर्भिक्ष पीड़ित नर नारियों से कलकत्ते का रास्ता परिपूर्ण हैं। गंगा के उस पार सहस्रों नर नारी अन्न के लिये हाहाकार कर रहे हैं !! उनका आर्त्तनाद सुनकर मानो भगवती माता गंगा कलकल शब्द कर यह कह रही है "हमारी गोद में तुम्हारे लिये स्मशान तैयार हैं। दुःख सन्ताप छोड़ो। आओ तुम्हारे सब कष्ट और दुःख दूर हो जावेंगे, मैं तुम्हें निज गोद में स्थान दूंगी।"

अन्न बिना सहस्रों नरनारी मृत्यु के ग्रास बन चुके हैं। भगवती गङ्गा अपने तीव्र प्रवाह से बङ्ग देश की भूख से मारी हुई प्रजा के मृत

शरीरों को सागर की ओर बहाये ले जा रही है। छाती से बच्चों को लगाये सैकड़ों स्त्रियां गंगा पार अचेतनावस्था में पड़ी हुई हैं, किन्तु पापी प्राण अब भी शरीर का मोह छोड़ कर बाहर नहीं होते। डोम अन्य मुर्दों के साथ साथ टांगे पकड़ कर गङ्गा की ओर उन्हें घसीट कर ले जा रहे हैं, तथा उन्हें गंगा में फेंक रहे हैं। वह देखो दस पांच मनुष्यों का समूह हिताहित- शून्य हो कर वृक्षों के पत्तों को खा रहा है। गङ्गा के पार्श्ववर्त्ती वृक्षों में पत्तों का नामों निशान तक नहीं रहा है। सभी वृक्ष प्रायः पत्तों से शून्य हो गये हैं।"

"कलकत्ता नगर के भीतर एक मुट्ठी अनाज के लिये दुर्भिक्ष पीड़ित रमणियां गोद के बालकों को बेचने के लिये इधर उधर घूम रही हैं। इस घोर दुर्भिक्ष ने माता के हृदय को स्नेहशून्य कर दिया है। नर नारी पैशाचिक प्रकृति के हो गये हैं।

यह भयङ्कर अकाल केवल बंगाल ही में अपना रुद्ररूप प्रकट नहीं कर रहा था। बिहार उड़ीसा में भी उसका भयङ्कर प्रकोप था। सिताबराय कंपनी की ओर से पटने के नायब दीवान थे। सन् १७७० ईसवी की ४ जनवरी को वे लिख गये हैं—"पटने की स्थिति बड़ी ही शोचनीय है।" उनकी अप्रेल की रिपोर्ट से फिर मालूम होता है—"पटना शहर में प्रति दिन डेढ़ सौ मनुष्य मर रहे है।" पुरनिया के तत्त्वावधायक ने चारों परगनों में गांव गांव घूम कर जो दृश्य देखा था, उसकी रिपोर्ट में लिखा है—"एक मुहल्ले में पुरनिया के हजार घर की प्रजा वास करती थी, किन्तु इस समय एक प्रजा भी मौजूद नहीं। इस अकाल में दो लाख प्रजा ने अन्न कष्ट से प्राण त्याग किया।" दीनाजपुर की रिपोर्ट में इस दुर्भिक्ष की महा भयानकता का वर्णन करते हुए लिखा है—"प्रजा खाली हाथ है। मालगुज़ारी देने के लिये लोटा, थाली, गो बछड़े बेच रहीं हैं। स्वयं रिजाखां ने भी यह बात स्वीकार की है:—"मेरी चेष्टा में कुछ भी त्रुटि नहीं हैं। देवता प्रतिकूल हैं। इसी से देश नष्ट प्रायः हो

रहा है। जलाशय सूखे हुए हैं। लगातार आग लग रही है। प्रजा दुर्दशाग्रस्त है। सहस्त्र सहस्त्र मनुष्य नित्य काल के गाल में समा रहे हैं।"

एक सहृदय अंग्रेज ने अपनी आंखों से इस करुणाजनक दृश्य को देख कर इसके चालीस वर्ष बाद अंग्रेजी में एक हृदयस्पर्शिनी कविता लिखी थी। इन अंग्रेजमहानुभाव का नाम सर जान शोर था। आप एक समय भारत के गवर्नर जनरल भी रह चुके हैं। वह हृदय द्रावक कविता यह है:—

"Still fresh in my memory's eye the scene.
I view,
The shrivelled limbs,sunk eyes and lifeless hue.
Still hear the mother's shrieks and infants
moans,
Cries of despairs and agonising moans,
In wild confusion dead and dying be
Hark to the jackal yell and vultures cry,
The dogs fell howl, amidst the lare of day.
The riot unmolested on their prey!
Dire scenes of horror, which no pen can trace
Nor rolling year from memory's page efface.

कहा जाता है कि इस दुर्भिक्ष में बंगाल की एक तिहाई प्रजा अन्न कष्ट से हाय हाय करती हुई मर गई! इन मरने वालों में अधिक संख्या हतभाग्य किसानों ही की थी। किसानों के अभाव से बंगाल की कितनी ही भूमि बहुत काल तक बिना जुती पड़ी रही। मालगुजारी के रुपये वसूल करना कठिन हो गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी के वाणिज्य में भी धक्का लगा था। अतएव कम्पनी के अर्थलोलुप कर्मचारी बंगाल की वास्तविक स्थिति को बहुत काल तक नहीं छिपा सके। इस भीषण

दुर्भिक्ष का सम्वाद इंग्लेड पहुँचते ही सहृदय डण्डस (Dandas) और कर्नल वरगोई ने कम्पनी के कर्मचारियों के असद् आचरणों और अत्याचारों के अनुसन्धान के लिये एक कमेटी नियुक्त किये जाने की प्रार्थना की। कमेटी नियुक्त की गई। उस में वेनसीटार्ट और वरसिलट आदि कलकत्ते के कई एक गवर्नरों का एवं कलकत्ते की कौन्सिल के कई एक अर्थ पिशाच मेम्बरों के अत्याचार एवं कुकर्मों का भण्डा फूट गया। क्लाइव के ऊपर अभियोग चलाने का उपक्रम भी रचा गया।

कम्पनी के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने पार्लामेन्ट के तिरस्कार और धिक्कार से बचने के लिये कई एक सच्चरित्र लोगों को इस देश में भेजने की प्रतिज्ञा की। कम्पनी ने सुप्रख्यात् वक्ता और भारत हितैषी एडमण्ड बर्क को बंगाल की कौन्सिल की प्रेसिडेन्टी एव गवर्नरी के पद पर नियुक्त करना चाहा। किन्तु बँगाल की प्रजा को निज पापों का फल भोगने के लिये अभी कितने ही दिनों तक अत्याचारों की चक्की में पिसना बदा था। अतएव बर्क महोदय ने वहां आने से इन्कार किया। उनके अस्वीकार करने पर हेस्टिंग्ज बंगाल के गवर्नर नियुक्त किये गये।

वारन हेस्टिंग्ज का शासन

स्वदेशी राज्यपद्धति का नाश

ईस्ट इण्डिया कंपनी ने किस प्रकार बंगाल पर अपनी प्रभुता कायम की? किस प्रकार कंपनी के नौकरों ने बङ्गाल को लूट कर उसे दरिद्र किया? बङ्गाल पर अधिकार करने में किस प्रकार के हीन और छलकपट पूर्ण मायावी उपायों से काम लिया गया, इस पर गत अध्यायों में कुछ प्रकाश डाला गया है। साथ ही में यह भी ध्वनित किया गया है कि राजनीति के अखाड़े में बंगाल के तत्कालीन मुसलमान शासक अंग्रेजों के मुकाबले में कमजोर थे। इसके अतिरिक्त बंगाल का चारित्र्य-बल उस समय कितना गिरा हुआ था, इसका परिचय भी परवर्ती घटनाओं से स्पष्ट मिलता है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये कई लोगों ने किस प्रकार राष्ट्र के सामूहिक स्वार्थ को पादाक्रान्त कर देश को विदेशी दासता की शृंखला में जकड़ने में सहायता दी, इसका दुःखद ज्ञान उक्त घटनाचक्र में प्रत्यक्ष है। इसके अतिरिक्त यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि अंग्रेजों का सैनिक सङ्गठन अधिक वैज्ञानिक था और उनकी विजय के जितने कारण थे, उनमें यह भी एक प्रधान था। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पं० जवाहरलालजी नेहरू ने अपने प्रख्यात् और विचार-पूर्ण ग्रन्थ 'Discovery of India' में प्रकाश डाला है, भारतवर्ष शरीर और आत्मा से जर्जरित हो चुका था, उसकी प्रगतिशीलता कुण्ठित हो चुकी थी, और युरोपियन राष्ट्रों में बड़े बड़े प्रगतिशील परिवर्तन हो रहे थे। उनमें एक नवीन जीवन शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा था। वैज्ञानिक अन्वेषणाओं में वे जोर की प्रगति कर रहे थे। उद्योगधन्धों में

उन्होंने विज्ञान का सहयोग लेकर एक नवीन औद्योगिक अध्याय का सूत्रपात किया था। उनका मन परम्पराओं की शृंखलाओं से मुक्त हो चुका था। राजनीति में सर्वांगली एक तन्त्री शासन प्रणालियों के बदले उन्होंने अपने देश में जनतन्त्र शासन प्रणाली को अपनाया था। और भी ऐसे कारण थे, जिन्होंने उन्हें प्रगति के पथपर बढ़नेमें—शक्ति सङ्गठित करने में—राजनीति की घुड़ दौड़ में विजयी होनेमें—विशेष सहायता पहुँचाई। राष्ट्रों के शक्तिशाली बनने में कई तथ्यों का संयोग होता है और उन पर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करना, यह इतिहास लेखक का प्रधान कर्तव्य है।

जैसा कि हम ऊपर की पंक्तियों में लिख चुके हैं, अंग्रेज़ों ने बङ्गाल पर एक तरह से पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। क्लाइव आदि के कार्यों पर भी प्रकाश डाला जा चुका है। बंगाल का प्रथम गवर्नर-जनरल वारन हेस्टिंग्ज़ हुआ। उसने स्वदेशी शासन के बचेखुचे अवशेष को भी नष्ट कर दिया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है क्लाइव ने नवाब को पूर्ण रूपसे अधिकार हीन करके मुर्शिदाबाद और पटना में दो नायब मुक़र्रिर कर दिये थे। इनके नाम मोहम्मद रज़ाखां और शिताबराय थे। इनके हाथ में शासन-सत्ता दे रखी थी। ये अंग्रेज़ों के भक्त भी थे। इतने पर भी हेस्टिंग्ज ने ज़रासे बहाने पर इन्हें गिरफ़्तार कर लिया और बहुत बड़ी रकम देने पर इन्हें मुक्त किया। रज़ाखां को फिरसे पद दे दिया गया और बेचारा शिताबराय हृदय भङ्ग (broken heart) से अपनी जीवन-लीला समाप्त करने में विवश हुआ। कहा जाता है इस उधेड़बुन में हेस्टिंग्ज ने खूब हाथ मारा और लगभग १० लाख रुपयों की उसे प्राप्ति हुई।

इसके अतिरिक्त उसने नवाब के अलाउंस को कम कर दिया और तत्कालीन मुग़ल सम्राट् शाह आलम को दी जाने वाली ख़िराज़ (Tribute) को भी बन्द कर दिया। उसने शाहआलम से इलाहाबाद और

कोरा छीन कर वज़ीर को दे दिये। मिल ने लिखा है कि सोने के लोभ से (रिश्वत) आकर्षित होकर ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य किया गया। हेस्टिंग्ज का लोभ दिन ब दिन बढ़ता गया। उसने ४०,००००० चालीस लाख रुपया वज़ीर से लेकर रोहिलों का नाश किया। मि० जे० एच० क्लार्क (J. H. clarke) ने अपनी 'British India and Englands Responsibilities' नामक ग्रन्थ में लिखा है:—'there is no other instance of a civilised power entering into a war with the avowed object of destroying a people with which it had no quarrel अर्थात् किसी भी सभ्य राष्ट्र के इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि जिसमें उस राष्ट्र ने केवल ऐसे लोगों का नाश करने के लिए, जिनके साथ उसका कोई झगड़ा नहीं था, लड़ाई छेड़ी हो।

जैसा कि इतिहास के पाठकों को ज्ञात है, वारेन हेस्टिंग्ज को शासन में सहायता करने की एक सभा (Council) थी जिसके ५ सदस्य थे। इन सदस्यों में सर फिलिप्स फ्रान्सिस का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये बड़े निष्पक्ष और भारत-हितैषी थे। वारेन हेस्टिंग्ज के भ्रष्टाचार पूर्ण शासन का ये सदा जोरदार विरोध किया करते थे। इन्होंने महाराजा नन्दकुमार के एक पत्र को, जिसमें वारन हेस्टिंग्ज की रिश्वतखोरी के प्रमाण थे, कौंसिल के सामने रखा। इस पर वारन हेस्टिंग्ज बड़ा क्रोधित हुआ और उसने कौंसिल से खुले तौर से कहा कि उसे उक्त विषय पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है।

इतना ही नहीं वारेन हेस्टिंग्ज ने उल्टा नन्दकुमार पर जाली दस्तावेज़ बनाने का आरोप लगाया और कलकत्ता की सुप्रीम कोर्ट में उन पर मुक़द्दमा चलाया। उस समय सर एलिजा इम्पे (Sir Elijah Empey) उक्त न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश था। वह वारन हेस्टिंग्ज का मित्र व सहपाठी था। उसने न्यायान्याय व स्थानीय क़ानून का कोई लिहाज़ न कर महाराज नन्दकुमार को फांसी की सज़ा देदी! यहां यह

बात ध्यान में रखना चाहिये कि तत्कालीन स्वदेशी क़ानून में जाली दस्तावेज़ के लिए फांसी का विधान नहीं था। कई निष्पक्ष इतिहास वेत्ताओं ने तो इस पत्र को जाली भी नहीं बताया है वरन् वह सारा महाराज नन्दकुमार को फांसने का षड्यन्त्र था।

जब महाराजा नन्दकुमार को फांसी दी जाने वाली थी, तब घटना स्थल पर हजारों लाखों आदमी जमा हो गये थे। ज्यों ही उन्हें फांसी के तख़्ते पर ले जाया गया कि चारों तरफ हाहाकार मच गया! कई लोग दुःख से बेहोश हो गये। दुःख और शोक का गहरा सन्नाटा छा गया। इसका हृदयद्रावक वर्णन Trial of Maharaja Nand Kumar नामक ग्रन्थ में बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में किया गया है।

टॉलबायज़ (Talboys), व्हीलर (Wheeler), कोलब्रूक (Cole brooke) आदि अंग्रेज इतिहासवेत्ताओं ने वारेन हेस्टिंग्ज के अत्याचारों और विश्वासघातों का मार्मिक विवेचन किया है। उसने अवध की बेगमों पर जो पाशविक अत्याचार किये, उनका बर्क महोदय ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सामने दिल दहलाने वाला चित्र खींचा था। इन अभियोगों के लिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में जो मुकद्दमा चला, उसमें बर्क और सेरेडान के जो व्याख्यान हुए वे अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में एक अनमोल देन माने जाते हैं। इनके हृदयस्पर्शी व्याख्यान सुनकर—वारन हेस्टिंग्ज के भीषण अत्याचारों की कथा सुनकर—कई महिलाएं बेहोश होकर गिर पड़ीं! इङ्गलैंड में सन्नाटा छा गया। पर राजनैतिक दृष्टिकोण सामने रखकर वारन हेस्टिंग्ज इन अभियोगों से मुक्त कर दिया दिया गया। पर इन पापों का प्रायश्चित उसे कुछ न कुछ भोगना पड़ा और अत्यन्त दरिद्रावस्था में उसका प्राणान्त हुआ।

कोलब्रूक (Cole brooke) नामक एक महान् इतिहास लेखक ने लिखा है "Warren Hastings's yoke was the heaviest that ever conquerors put upon the necks of conquered nations."

उद्योगधन्धे और व्यापार का नाश।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरों ने विविध प्रकार के अत्याचारों से, भारत की अपार सम्पत्ति को किस प्रकार लूटा, इस का दिग्दर्शन हम करा चुके हैं। उससे पाठकों को यह ज्ञात हुए बिना न रहा होगा कि मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये कैसे कैसे नीच कार्य्य करने पर उतारू हो जाता है। अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि हमारे उद्योग धन्धोंका किस प्रकार नाश किया गया। किस प्रकार हमारा भारतवर्ष औद्यौगिक शिखर से नीचे गिराया गया। कितने ही लोग शायद यह कह सकते हैं कि भारत के उद्योग धन्धे विदेशी कारखानों के बने हुए मालका मुक़ाबला न कर सकने के कारण अपनी मौत आप मर गये थे। विदेशों में शक्ति-शाली यन्त्रों का आविष्कार हुआ और उनसे इतना सस्ता माल निकलने लगा कि भारतीय माल उनकी बराबरी न कर सका और यही उसकी अधोगति का कारण हुआ। हम किसी अंश तक इस बात को मानने के लिये तैयार हैं कि विलायत के शक्तिशाली यन्त्रों के द्वारा बने हुए माल का मुक़ाबला न कर सकने के कारण भारत के उद्योग धन्धों को चोट पहुँची। पर जिन लोगों को इन यन्त्रों के आविष्कार होने का हाल मालूम है, वे जानते हैं कि इन यन्त्रों की सफलता का कारण भारतवर्ष ही था। अगर भारत के उद्योग धन्धों पर अनुचित प्रहार न किये जाते और इन यन्त्रों के द्वारा बना हुआ माल भारत न खरीदता तो ये यन्त्र अपनी मौत आप मर जाते। इन यन्त्रों के आविष्कार के पहले ही भारत के उन्नति-शील उद्योगधन्धों पर किस किस प्रकार आघात पहुँचाये गये, इसका दुःख एवं वृत्तांत हम पाठकों को सुनाते हैं। हम पहले वस्त्र के कारोबार को लेते हैं।

वस्त्र-व्यवसाय को कैसे नष्ट किया गया

हज़ारों वर्षों के पहले जब कि हमारे आधुनिक युरोपियन लोग निरी जंगली अवस्था में थे और वृक्षों के पत्तों से अपने बदन को ढांकते थे, उस समय भारतवर्ष औद्योगिक संसार में सर्वोपरि आसन ग्रहण किये हुए था वहां के उद्योग धन्धे- उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचे हुए थे। यहां का विविध प्रकार का पक्का माल किस प्रकार विदेशों को जाता था और किस प्रकार अटूट द्रव्य यहां आता था, इसका कुछ दिग्दर्शन हम पूर्व के किसी अध्याय में करा चुके हैं। भारतवर्ष में, अन्य उद्योग धन्धों की तरह, वस्त्रों का कारोबार भी अत्यन्त उन्नत अवस्था को प्राप्त हो रहा था। संसार के बाजार यहां के बने हुए बढ़िया वस्त्रों से भरे रहते थे। हजार पांच सौ वर्ष की तो बात ही क्या, अति प्राचीन काल वैदिक-युग में भी लोग कपड़ा बुनना भली भांति जानते थे। ऋग्वेद के एक मन्त्र (१।२२।१६१) में ताने बाने का स्पष्ट उल्लेख है। ऋग के १०।१०७।६ तथा २।२६।२५ मन्त्रों में अच्छे अच्छे वस्त्र पहनी हुई सुन्दरियां और सुन्दर बने हुए वस्त्रों का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि कपड़े बुनने की कलायें उस समय अच्छी उन्नति पा चुकी थीं। महाभारत के समय में भी वस्त्रों का उद्योग बहुत बढ़ा चढ़ा था। महाभारत में लिखा है:—

मणि रत्नानि भास्वन्ति कार्पास सूक्ष्म वस्त्रकं।
चोल पांड्यावपि द्वारं न लेभांते ह्यु पस्थितौ॥

इस श्लोक से पाठकों को यह मालूम हुआ होगा कि महाभारत के समय में भारतवर्ष में रुई के बारीक और मुलायम कपड़े बनाये जाते थे और चोल व पांड्य देश इन के लिये विशेष प्रसिद्ध थे। इसी प्रकार महाभारत के समय में उत्तर भारत के प्रान्त ऊन और रेशम के मुलायम और बारीक वस्त्र तैयार करने के लिये मशहूर थे। ये वस्त्र विविध प्रकार

के सुमनोहर रंगों से रंगे भी जाते थे और उन पर कलाबत्त् का बढ़िया काम भी किया जाता था।

वाल्मीकि रामायण में भी सुमनोहर, मुलायम और बारीक वस्त्रों का कई स्थानों पर वर्णन आया है। भारतवर्ष के अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी इस प्रकार के कई वर्णन आये हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि हजारों वर्ष पहिले भी हमारे यहां बढ़िया से बढ़िया सुन्दर वस्त्र काम में लाये जाते थे।

कई प्राचीन ग्रीक और रोमन ग्रन्थकारों के ग्रन्थों से भी यह बात सिद्ध होती है। एक ग्रीक इतिहास वेत्ता ने स्वीकार किया कि ईसा के १७०० वर्ष पहले हिन्दुस्तान में वस्त्र बनाने का उद्योग तरक्की पर था और हिन्दुस्तान का सूती वस्त्र बनाने का उद्योग उतनाही प्राचीन है जितना इजिप्त का ऊनी वस्त्र बनाने का उद्योग है। ग्रीस से हीराडोट्स नामक एक मशहूर प्रवासी ईसा के ४५० वर्ष पहिले भारतवर्ष में आया था। उसमें लिखा है कि भारतवासी अक्सर रूई के बने हुये बढ़िया और मुलायम कपड़े पहनते हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्ट्रेबो लिखता है कि "हिन्दुस्तान में अत्यन्त प्राचीन काल से रंग बिरंगी छीटें, बढ़िया और मुलायम मलमलें और सुन्दर रंग बनते थे। बेन नामक इतिहास वेत्ता ने तो यह मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि:—

"The birth-place of cotton manufacture is India where it probably flourished long before the dawn of authentic history" अर्थात् रूई से बनाये जानेवाले माल का जन्मस्थान भारतवर्ष है और प्रमाणभूत इतिहास काल के बहुत पहले ही यह उद्योग तरक्की पर पहुँचा हुआ था।

एरायन नाम का एक ग्रीक प्रवासी जो ईसा की पहली या दूसरी सदी में हुआ, उसने अपने "The circum-navigation

of the Erysthean sea" नामक ग्रन्थ में हिन्दुस्तान के बढ़िया और सुन्दर वस्त्रों की बड़ी प्रशंसा की है। इस ग्रन्थ से यह भी मालूम होता है कि हिन्दुस्तान से छींटें, मलमलें और रुई तथा रेशम के बने हुए विविध प्रकार के वस्त्र अबंस्थान आदि दूर दूर देशों को जाते थे। इस समय मछलीपट्टम रुई के वस्त्रों के लिये संसार भर में प्रसिद्ध था। बङ्गाल में जैसी बढ़िया मलमलें बनती थीं उस समय संसार के किसी भी देश में वैसी बढ़िया मलमलें नहीं बनती थीं। ग्रीक लोग यहां की बनी हुई मलमलें खरीदते थे। इन मलमलों को ग्रीक लोग "Gangi" के नाम से पुकारते थे क्योंकि गंगा नदी के किनारे ये बनती थीं।

बौद्धकाल में यहाँ बढ़िया मलमलें और विविध प्रकार के सूती और रेशमी वस्त्र बनने के उल्लेख मिलते हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता थार्नटन ने अपने इतिहास में लिखा है कि "बुद्ध ने धार्मिक स्त्रियों को बारीक मलमल के वस्त्र पहनने से मना किया था, क्योंकि उन्होंने गंगा नामक एक स्त्री को मलमल के वस्त्रों में नग्न देखा था"। अर्थात् मलमल के कपड़े पहनने पर भी वह स्त्री नंगी सी दीख पड़ती थी।

सूत जो यहाँ बनता था उसके १७५ गज लम्बे टुकड़े का बोझ केवल एक रत्ती होता था। एक बार केवल आध सेर रूई में २५० मील लम्बा सूत काता गया था। एक मलमल का थान जो एक बांस की छोटी नली से निकाल लिया जाता था, वह अम्बारी सहित हाथी को पूर्णतः ढक सकता था। कितने ही मलमल के थानों का तोल साढ़े आठ तोला होता थी। यह थान १० गज लम्बे और आठ गिरह चौड़े होते थे और अंगूठी में होकर सहज ही निकाले जा सकते थे। ॐ

हिन्दुस्थान से सूती कपड़ा बनाने की कला प्रथम ही प्रथम अबंस्थान को गई। अंग्रेजी शब्द " Cotton " अर्बी शब्द "क्वेटन" का बिगड़ा

ॐ इनका वृत्तान्त बौद्धों की प्राचीन पुस्तकों में मिलता है।

हुआ रूप है। मार्को पोलो कहता है कि गंगा नदी के किनारे के सब प्रदेशों में कपास विपुलता से पैदा होता है। यहाँ कपास का माल भी विपुलता से बनता है।" तेरहवीं सदी में सूत के वस्त्र बनाने की कला चीन को गई और चीन से जापान गई। दसवीं सदी में वह स्पेन को गई और चौदहवीं में स्पेन से इटली को गई। मुसलमानों ने इसका अफ्रिका में प्रचार किया। इस प्रकार इस कला का प्रचार सारे संसार में हुआ, पर यह न भूलना चाहिये कि इसका जन्म स्थान भारतवर्ष ही था। बेन प्रभृति इतिहासवेत्ता इस बात को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं।

नौवीं सदी में यहाँ कुछ अरब प्रवासी आये थे। उन्होंने यहाँ की बनी हुई मलमलों की बड़ी तारीफ़ की है। उन्होंने लिखा है कि इस "हिन्दुस्थान में इतने असाधारण सुन्दर वस्त्र बनते हैं कि जितने कहीं नहीं देखे जाते एक मलमल का थान एक छोटी सी डिबिया में समा सकता है।" तेरहवीं सदी में मार्को पोलो नामक प्रवासी आया था, उसने लिखा है "मच्छली-पट्टन में सबसे उम्दा और सर्वाङ्ग सुन्दर ऐसी बढ़िया मलमलें बनती हैं कि जैसी संसार के किसी भी देश में नहीं बनती।" मुग़लों के शासन-काल में भी वस्त्र बनाने का उद्योग बड़ी तरक्की पर था। सम्राट् अकबर ने भारत के शिल्प वाणिज्य को बड़ा प्रोत्साहन दिया था। स्वर्गीय बंकिमचन्द्र लाहिरी ने अपने "सम्राट् अकबर" नामक ग्रन्थ में लिखा है :—

"सम्राट् अकबर ने शिल्प की भी बहुत उन्नति की थी। भारत के सर्व प्रकार के शिल्प को उत्साह प्रदान किया था। दरी बनाने के लिये बहुत से स्थानों पर राजकीय शिल्पशालाओं में ऐसी सुन्दर दरियाँ, तोपें और बन्दूकें तैयार होती थीं कि वैदेशिक भ्रमण करने वालों को देखकर आश्चर्य होता था। सम्राट् ने भारत में रेशम और पशमीने के वस्त्र बनाने के काम को भी बहुत उन्नत अवस्था में पहुँचाया था। काश्मीर और लाहौर में शाल के (दुशाले) उद्योग की उन्नति के लिये बहुत से उपाय अवलम्बन किये थे। सैकड़ों राजकीय शिल्प-

शालाओं में बहुत सी वस्तुएं राजकीय व्यय और तत्वावधान से प्रस्तुत होती थीं ।" बादशाह शाहजहाँ ने भी भारतीय शिल्प को अच्छा प्रोत्साहन दिया था। औरंगजेब ने यद्यपि हिन्दुओं पर कई प्रकार के जुल्म किये थे पर उसके जमाने में भी उद्योग धन्धों की हालत बढ़ी चढ़ी थी । उस ज़माने में कितनी बढ़िया मलमलें बनती थी, इसका परिचय निम्न लिखित दृष्टान्त से होगा । एक समय सम्राट् औरंगजेब की लड़की रोशनआरा अपने पिता के सामने ढाके की बनी हुई मलमल की २० पट की साड़ी पहने हुए आई । वह मलमल इतनी बारीक़ थी कि बीस पट लगाने पर उसका बदन ज्यों का त्यों दीखता था । औरंगजेब बड़ा नाराज़ हुआ और गुस्सा खाकर कहने लगाः—"ऐ बेशर्म और बेहया ! मेरे सामने नंगी क्यों आई है ? मेरी आँखों की ओट से एक दम हट जा ।" इस बात से पाठक जानते हैं कि औरङ्गजेब के शासन-काल में भी यहाँ कितनी बारीक़, और बढ़िया मलमलें बनती थीं ।

इसके बाद भी यह उद्योग ज्यों का त्यों उन्नतावस्था पर बना रहा । कई अंग्रेज लेखकों ने मुक्तकण्ठ से यह स्वीकार किया है कि अठारहवीं सदी तक यह उद्योग बड़ी अच्छी तरह चलता रहा था । सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मि० बेन ने लिखा है कि सन् १७२६ तक रुई के वस्त्र केवल प्रान्त विशेष ही में नहीं बनते थे, पर सारे हिन्दुस्थान में बनते थे । यहां रुई उसी तादाद में पैदा होती थी, जिस तादाद में अन्न पैदा होता था । बंगाल उमदा और बढ़िया मलमलों के लिये मशहूर था । कारोमण्डल के किनारे का मुल्क बढ़िया छींटों के लिये प्रख्यात था । सूरत मज़बूत कपड़ों के लिये प्रसिद्ध था । मच्छलीपट्टम में बढ़िया रूमाल बनते थे । कृष्णानदी के किनारे के मुल्क में बढ़िया रंग तैयार होता था ।

छींटों (Chintzes और ginghams) के तैयार करने में मच्छलीपट्टम की बड़ी नामवरी थी । ऊंचे कपड़े और छोटे कोट (petti-coats) मद्रास से आते थे । इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के और

विविध भाँति के भारतीय वस्त्र एशिया और युरोप के बाज़ारों में मशहूर थे।" यह अंग्रेज़ इतिहासवेत्ता बेनका कथन है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि अठारहवीं सदी तक बने हुए माल की संसार भर में कितनी क़द्र थी और किस प्रकार भारत के उद्योगधन्धे उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचे हुए थे।

बंगाल से रॉयल एशियाटिक सोसायटी का एक जरनल निकलता है। इसमें बड़े ही प्रमाणभूत अन्वेषणात्मक ऐतिहासिक लेख निकलते हैं। इसके सन् १८३७ के एक अंक में हिन्दुस्तान की बनी हुई मलमल के मूल्य पर डाक्टर वाट साहब ने एक लेख लिखा था। उसमें आपने लिखा था कि सन् १७७६ में सबसे बढ़िया मलमल की कीमत ५६ पौंड थी। एक पौंड लगभग १२) का होता था। इस हिसाब से ७५०) रुपये हुए। पाठक सोच सकते हैं कि हिन्दुस्तान में कितनी बढ़िया २ मलमलें तैयार होतीं थीं। क्या आजकल की यन्त्रों की बनी हुई बढ़िया से बढ़िया लंकाशायर की मलमल इसकी बराबरी कर सकती है? हिन्दुस्तान की बनी हुई मलमलें और अन्य वस्त्रों की प्रशंसा कई अंग्रेजों ने मुक्त कण्ठ से की है। मि थॉर्नटन कहते हैं:--

"The Indian Muslins are fabrics of unrivalled delicacy and beauty." अर्थात् हिन्दुस्तानी मलमलें इतनी मुलायम और सुन्दर होती हैं कि उनकी बराबरी नहीं हो सकती।" मि० एलफ़िनस्टन लिखते हैं:—

"The beauty and delicacy of which was so long admired and which in fineness of texture has never been approached in any country." अर्थात् इन मलमलों के मुलायमपन और सुन्दरता की बड़े अर्से से तारीफ़ हो रही है। इनकी बनावट इतनी उमदा है कि कोई देश इनके बराबरी को

मलमलें तैयार नहीं कर सका। एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है:—

The equisitely fine fabrics of cotton have attained to such perfection that the modern art of Europe with all the aid of its wonderful machinery has never yet rivalled in beauty the product of the Indian loom." अर्थात् रुई के सौंदर्यशाली वस्त्र इतनी पूर्ण अवस्था पर पहुँच गये थे कि यूरोप की आधुनिक कला, सब प्रकार की अद्भुत् मशीनरी की सहायता होते हुए भी हिन्दुस्तान के चरखे से बने हुए वस्त्रों के मुक़ाबले के वस्त्र नहीं बना सकी। इस प्रकार अनेक पाश्चात्य सज्जनों ने यहां के बने हुए अपूर्व और अद्वितीय वस्त्रों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। वेन ने अपने इतिहास में लिखा है कि हिन्दुस्तान की इन निहायत नाज़ुक और बारीक मलमलों के लिये युरोप में कई लोगों का यह ख़याल हो गया था कि इनकी बुनावट मनुष्यों के हाथ से नहीं हुई है, पर ये मकड़ी जैसे कीड़ों की बुनावट के फल हैं।

हिन्दुस्तानी मलमलों का और रेशमी कपड़ों का इङ्गलैंड और अन्य पाश्चात्य देशों में इतना व्यापक रूप से प्रचार हो गया था कि सन् १६६६ में एक अंग्रेज लेखक ने इस बात पर बड़ा दुःख प्रकाशित किया है कि इङ्गलैण्ड के सब लोग साधारणतया हिन्दुस्तान के बने कपड़े पहनने लग गये हैं। सन् १७०८ में डेनियल डेफो (Daniel Defoe) ने अपने एक समाचार-पत्र में इस आशय का एक लेख लिखा था:—

"इङ्गलैण्ड के लोगों की प्रवृत्ति पूर्व के बने हुए वस्त्रों की ओर जाती है। हिन्दुस्तानी छींटें और छपे हुए कपड़े पहले फ़र्श आदि बनवाने ही में काम में लिये जाते थे, पर अब हमारी महिलाएं तक इन्हें पहनने लग गई हैं...........औरों की तो बात ही क्या, खुद इङ्गलैण्ड

की रानी चीना सिल्क और हिन्दुस्तानी छींटें पहनना पसन्द करती है। इस वक्त चारों ओर हिन्दुस्तानी कपड़ा नज़र आ रहा है। हमारे बैठकखानों में, हमारे चेम्बर में, हमारे घरों में लगे हुए पर्दों में, हमारे बिछौने में और तकियों में, हमारे बच्चों व स्त्रियों की पोशाक में, चारों तरफ हिन्दुस्तान के बने हुए वस्त्र नजर आते हैं। प्रायः सब कपड़ा हिन्दुस्तान से आता है। (Almost every thing that used to be made of wool or silk relating either to the dress of our women or the furniture of our houses was supplied by Indian trade.)

कहने का मतलब यह है कि एक समय इङ्गलैण्ड आदि पाश्चात्य देशों के बाजार हिन्दुस्तानी पक्के माल से भरे रहते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी हिन्दुस्तानी माल के व्यापार में विलायत में सैकड़ा ८४ तक नफ़ कमाती थी। इतने पर भी विलायत में हिन्दुस्तानी माल बहुत सस्ता बेचा जाता था। यह बात विलायत वालों को खटकने लगी। उन्होंने देखा कि विलायत में हिन्दुस्तानी कपड़े वगैरे का शौक़ बढ़ता जा रहा है, लोग हिन्दुस्तानी कपड़ों पर बेतहाशा लट्टू हैं और हिन्दुस्तानी माल का प्रचार बे रोक टोक बढ़ने दिया गया तो इङ्गलैण्ड का औद्योगिक अभ्युदय न हो सकेगा और हिन्दुस्तान मालामाल हो जायगा। इन्हीं सब बातों का विचार कर इङ्गलैण्ड की सरकार ने हिन्दूस्तानी माल पर बहुत कड़ा महसूल लगा दिया। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक विलसन लिखते हैं:—

"The cotton and silk goods of India up to the period (1813 A. D,) could be sold for a profit in the British market at a price 50 to 60 percent lower than those fabricated in England. It consequently became necessary to protect the latter

by duties of 70 and 80 percent on their value. Had this not been the case, had not such prohibitory duties and decrees existed, the mills of paisley W Manchester would have been stopped in their out set, and could scarcely have been set in motion even by power of steam They were created by sacrifice of the Indian manufacture. Had India been Independent, she would have retaliated, would have improved prohibitive duties upon British goods and would thus have preserved her own productive industry form annihilation. This act of self-defence was not permitted to her; she was at the mercy of the stranger. British goods without paying any duty and the foreign mauufacturer employed the arm of political injustice to keep down and ultimately strangle a competitor with whom he could not have contended with equal terms." इसका सारांश यह है कि हिन्दुस्तान का सूती और रेशमी माल सन् १८१३ तक ब्रिटेन के बाजारों में इङ्गलैण्ड के बने हुए माल के मुक़ाबले में सैकड़ा पीछे ५० या ६० रुपये सैकड़े कम मूल्य पर बेचा जा सकता है और इसीलिये विलायती माल की रक्षा के लिये ७० से ८० तक भारत के कपड़ों पर महसूल लगाना आवश्यक प्रतीत हुआ। अगर ऐसा न किया जाता, अगर हिन्दुस्थानी माल के रोक के लिये यह महसूल न लगाया जाता तो पेसले (Paisely) और मैनचेस्टर के कारखाने शुरू ही से बन्द हो गये होते और भाफ़ की शक्ति से भी शायद ही फिर चले होते। वे भारत की कारीगरी और वाणिज्य का ध्वंस करके ही खड़े किये गये हैं या जिलाये रखे गये हैं। अगर हिन्दुस्तान स्वाधीन

होता तो वह इसका बदला चुकाता और वह भी ब्रिटिश माल के रोक के लिये महसूल लगाता और इस तरह अपने उद्योग धन्धों को नाश होने से बचा लेता। हिन्दुस्थान को आत्मरक्षा का मौक़ा नहीं दिया गया। वह विदेशियों के दया का भिखारी था। ब्रिटिश माल बिना किसी प्रकार के महसूल के उस पर लादा गया और विदेशी कारीगरों ने राजनैतिक अन्याय के शस्त्र का अवलम्बन कर इसे (भारत के उद्योग को) नीचे गिरा दिया गया और अंत में उसके बराबरी में खड़ा न हो सकने के कारण उसका गला घोंट दिया।"

पाठक! एक अंग्रेज़ ही के लिखे हुए वृत्तान्त से अनुमान कीजिये कि हमारे उद्योग धन्धों और व्यापार के साथ इङ्गलैंड ने कैसा सुलूक किया। हमारे यहाँ से जाने वाले माल पर तो सैकड़ा ८० और पीछे जाकर ८४ तक कर बैठाया गया और वहां से आने वाले माल पर नाम मात्र को २॥ रु० सैकड़ा या कुछ भी कर न रखा गया। मलाबार प्रान्त में क्यालिको नामक छींट का कपड़ा बनता था और बहुत तादाद में विलायत जाता था। परन्तु इस व्यवसाय को नाश करने के लिये भी पहले डेढ़ आने से तीन आने फ़ी गज़ महसूल बैठाया गया। जब इतने से भी काम न चला अन्य तो सन् १७२० ईसवी में क़ानून बनाया कि जो लोग विलायत में हिन्दुस्थानी क्यालिको (छींट) को बेचेंगे उनपर २० पौंड यानि २०० रुपया और जो खरीदेंगे उनपर पचास रुपया जुर्माना होगा।

आश्चर्य यह है कि इतने पर भी हिन्दुस्थानी माल की आयात न रुकी। इस पर और भी कड़े कानून बनाये गये! हर तरह से हिंदुस्थानी माल को रोकने का प्रयत्न किया गया और ब्रिटिश माल का हिन्दुस्थान में बे रोक टोक प्रचार होने दिया गया। इङ्गलैंड की देखा देखी यूरोप के देशों ने भी हिन्दुस्थानी माल को रोकने के लिये इसी प्रकार के कड़े कानून बनाये और उस पर इतना भारी महसूल लगा दिया कि वह वहाँ न जा सके। बेन ने लिखा है:—

"Not more than a century ago, the cotton fabrics of India were so beautiful and cheap that nearly all the governments of Europe thought it necessary to prohibit or load them with heavy duties to protect their own manufactures." अर्थात् हिन्दुस्थान के वस्त्र इतने सस्ते और सुन्दर थे कि कोई एक सदी का भी घर्सा न हुआ होगा कि युरोप के तमाम सरकारों ने अपने शिल्प की रक्षा के लिये हिन्दुस्थान के सूती वस्त्रों को रोकना या उन पर भारी महसूल लगाना आवश्यक समझा।' इङ्गलैंड हिन्दुस्थानी वस्त्रों पर दिन प्रति दिन किस किस प्रकार महसूल बढ़ाता गया, इसकी एक तालिका हम वेन के लेख के आधार पर नीचे प्रकाशित करते हैं:—

सन् ।	सफेद छींटें प्रति सैकड़ा टेक्स ।	मलमलों पर फी सैकड़ा टेक्स
	पौंड　शि०	पौंड　शि०
१७८७	१६—१०	१८—०
१७९७	१८—३	१६—१६
१७९८	२१—३	२२—१६
१७९९	२६—९	३०—३।।।
१८०२	२०—१	३०—१५।।।
१८०३	२६—१।	३०—१८।।।
१८०४	६५—१२।।	३४—७
१८०५	६६—१८	३५—०
१८०६	७१—१३	३७—६
१८१३	८५—२	४४—६

उपरोक्त तालिका से पाठकों को यह मालूम हुए बिना न रहा होगा कि हिन्दुस्तानी छींटों पर ८५ प्रति सैकड़ा तक महसूल बैठाया गया

* Useful Arts and manutacfactures of Great Britain

था। इससे हिन्दुस्तानी वस्त्रों के उद्योग को किस प्रकार हानि पहुँची होगी इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें? सचमुच हिन्दुस्तान के व्यवसाय का अत्याचार से गला घोंटा गया। इङ्गलैण्ड के व्यवसायी लोग हिन्दुस्तानी माल पर भारी से भारी महसूल लगवाकर और हिन्दुस्तान में बिना महसूल दिये माल भेजने का प्रबन्ध कर इंग्लैण्ड के व्यापार को बढ़ाने का प्रयत्न करने लगे। उस समय अगर उन्हें किसी बात की चिन्ता थी तो यही थी कि किसी प्रकार हिन्दुस्तान में विलायती माल की खपत ज्यादा हो। हाउस आफ़ कामन्स की सिलेक्ट कमेटी के सामने जॉन रैंकिंग नामक एक अंग्रेज व्यापारी ने सन् १८१३ में अपनी गवाही में यह स्वीकार किया था कि हिन्दुस्तानी माल पर जो कड़ा महसूल और रोक लगाई गई है, उसका उद्देश्य हमारे उद्योग धन्धों की रक्षा करना है।

जान पड़ता है कि सन् १८१० में पार्लियामेण्ट की एक जांच कमेटी इसलिये बैठी थी कि वह इस बात की जांच करे कि इंग्लैंड के कारीगरों के लाभ को किस प्रकार बढ़ाया जाय। यह बात उन प्रश्नों से साफ़ साफ़ मालूम होती है जो इसने उन लोगों से किये थे जो इसके सामने गवाही देने आये थे। वॉरनहेस्टिंग्ज़ से यह प्रश्न किया गया था:—

"From your knowledge of the Indian character and habits, are you able to speak to the probability of a demand of European commodities by the population of India, for their own use?"

अर्थात् हिन्दुस्तानियों के स्वभाव तथा आचरण के सम्बन्ध में आप की जितनी जानकारी है, उसके अनुसार क्या आप कह सकते हैं कि हिन्दुस्तानी लोगों के लिये युरोप की बनी चीजें खरीदना संभव है कि नहीं"? इसी प्रकार के प्रश्न सर जान मालकम, थामस मनरो आदि गवाहों से भी पूछे गये थे। इसके उत्तर में सभी ने प्रायः इस आशय के

वचन कहे थे "हिन्दुस्तान की बनी हुई चीज़ें ही हिन्दुस्तान की ज़रूरतों को पूरी कर सकती हैं। हिन्दुस्तानी बिलकुल विलास प्रिय नहीं है। हिन्दुस्तानी मज़दूर महीने में तीन या चार रुपये से अधिक पैदा नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानियों में विलायती चीज़ों के आदर होने की सम्भावना नहीं है।" सर थामस मनरो ने इसी समय कहा था कि हिन्दुस्तानी माल विलायती माल की अपेक्षा कई गुना अच्छा होता है। एक हिन्दुस्तानी शालको हम सात वर्ष से काम में ला रहे हैं और इतने दिन उपयोग में लाने पर भी उस में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

हिन्दुस्तान की कारीगरी को और यहाँ के व्यवसाय को नष्ट कर विदेशी विलायती माल की खपत बढ़ाने के लिये और भी कितने ही घृणित और लज्जादायक उपाय किये गये। पाठक यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत की कारीगरी पर भी कड़ा महसूल लगा दिया था। लॉर्ड बेंटिंग के समय में इस विषय पर जो अनुसन्धान हुआ था, उससे यह प्रगट होता है कि विलायत का बना हुआ कपड़ा भारत में केवल मात्र २॥)रु० प्रति सैकड़ा महसूल देकर बेचा जाता था और भारत ही के बने हुए कपड़े पर भारत ही में १७॥) रुपया प्रति सैकड़ा महसूल लगता था। देशी शक्कर पर विलायती शक्कर से इसी देश में ५) रु० अधिक महसूल लगता था। देशी चमड़े की चीजों पर इसी देश में १५) रु० प्रति सैंकड़ा महसूल देना पड़ता था। इस प्रकार भारत में तैयार होने वाली कोई २२५ प्रकार की कारीगरी की वस्तुओं पर बड़ाही अनुचित महसूल लादकर भारत का औद्योगिक सत्यानाश किया गया।

हमने ऊपर अब तक विशेष तौर से कपड़े ही का विवेचन किया है, पर उस वक्त इंग्लैण्ड की सरकार ने कपड़े के अतिरिक्त और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी चीज़ों पर कड़ा महसूल लगाया था, उसका एक ब्यौरा नीचे प्रकाशित करते हैं:—

नाम वस्तु	महसूल			नाम वस्तु	महसूल
घिव कुवार	७०)	से	२८०)	बकरे के ऊनकी चीजें	८४॥≈)
हींग	२३३)	से	६२२)	चटाई	८४॥≈)
इलायची	१५०)	से	२६६)	मलमिन (तनजेब)	३२॥)
काफी	१०५)	से	३७३)	क्यालिकों	८१)
काली मिर्च	२३६)	से	४००)	कपास का कपड़ा	८१)
चीनी	६४)	से	३६३)	लास	८१)
चाय	६७)	से	१००)		

रेशमी कपड़े की उस वक्त विलायत में जाने की बिलकुल मनाई थी। यदि कोई रेशमी कपड़ा विलायत में मंगाता था तो उसे विलायत के बंदर में उठने न देकर उसी घड़ी लौटते जहाज पर भारत में भेज दिया जाता था।

इन सब अत्याचारों और ज्यादतियों का फल यह हुआ कि दिन प्रतिदिन देशी शिल्प और व्यवसाय की जड़ कटने लगी और उसके स्थान में विलायती माल की आमद बढ़ने लगी। इसका फल यह हुआ कि सन् १७६४ में जिस भारत में १५६ पौंड से अधिक विलायती सूती कपड़ा नहीं आया था वहीं सन् १८०६ में १ लाख १८ हजार ४ सौ पौंड से भी अधिक विलायती सूती कपड़ा आया। इसके आगे भी विलायती कपड़े की आमद उन दिनों में कैसी कैसी बढ़ती गई और भारत की कम होती गई, उसकी एक तालिका नीचे प्रकाशित करते हैं।

सन्	विलायत से आया	विलायत को गया
१८१४	८१,२०८ गज़	१२६६६०८
१८२१	१६१३८,७२६	५३४४६२
१८२८	४२८२२,०७७	४२२५०४
१८३५	५१७७७,२७७	१०६००६

इस तालिका से पाठकों को मालूम हुआ होगा कि उस समय विलायती माल की आमद किस प्रकार बढ़ती गई और भारत की आमद किस प्रकार घटती गई। सन् १८३५ के बाद तो यह और भी अधिक तीव्र गति से बढ़ने लगी। इसके बाद भारत में किस प्रकार विदेशी कपड़ा आया सो पाठक देखिये।

सन्	रुपयों का कपड़ा आया
१८८४–८५	२४५६१०४८३
१९०३–०४	३०८४२८४६५
१९११–१२	४२८८८००००
१९१२–१३	५३३०४००००
१९१५–१६	३७७६२५०००
१९१७–१८	५६५१५८०००
१९१८–१९	६०५५४८०००

महायुद्ध के पहले के सालों का हिसाब देखने से मालूम होता है कि उस समय करोड़ों रुपयों का अनाप सनाप कपड़ा आता था। महायुद्ध के कारण यह आमद महायुद्ध के पूर्व के वर्षों से बहुत कुछ कम हो गई थी, पर महायुद्ध समाप्त होते ही फिर किस प्रकार भारत में विदेशी कपड़ा और सूत बढ़ता जा रहा है यह उपरोक्त अंकों से स्पष्ट ज्ञात होता है। यद्यपि उपरोक्त अंकों में विलायत के सिवाय अन्य देशों से भी कपड़ा आया है पर औसतन सैकड़े पीछे ८० रु० का माल विलायत से ही आया है।

यह तो हुई भारत और इङ्गलैंड के बीच के व्यवसाय की बात। इङ्गलैंड की तरह अन्य पाश्चात् राष्ट्रों में भी भारत के माल की आमदनी कम होने लगी।

अमेरिका, डेनमार्क, स्पेन, पोर्तुगाल, मोरेस तथा एशिया खण्ड के दूसरे देशों में भी भारत के माल की आमदनी कम होने लगी। सन्

१८०१ में भारत से अमेरिका १३६३३ गाँठें कपड़ा गया था, सन् १८२१ में यह संख्या घटकर केवल २५८ रह गई। सन् १८०० ईसवी तक डेनमार्क में प्रतिवर्ष कम बेश १५५० गाँठें कपड़ों की रफ़्तनी होती थी, किन्तु सन् १८२२ के आगे यह संख्या केवल १५० रह गई। सन् १७९९ ईसवीं में हिन्दुस्थान से ९७१४ गाँठें पोर्चुगाल गईं थीं, पर सन् १८२० में यह नम्बर १००० ही रह गया। मुहम्मद रज़ाखाँ के जमाने में बङ्गाली जुलाहे ६ करोड़ बङ्गालियों की कपड़े सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करके भी १६ करोड़ रुपये के कपड़े विदेशों को भेजते थे पर आज भेजना तो दूर रहा, करोड़ों रुपये के कपड़े विदेशों से यहाँ आते हैं और भारत वासियों की वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकता अधिकांश रूप से विदेशी कपड़ों से पूर्ण होती है।

डाक्टर बुकानंद ने कम्पनी की आज्ञा से सन् १८०७ में उत्तर भारत की कारीगरी और वाणिज्य की दशा जानने के लिये पटना, शाहाबाद, आदि स्थानों में पर्यटन किया था। उनकी जाँच से मालूम हुआ कि उस समय वहां २५०० बीघे ज़मीन में रूई की और १८०० बीघे ज़मीन में ईख की खेती होती थी। वहाँ ३३०४२६ औरतें केवल सूत कातकर अपनी जीविका चलाती थीं। दिन भर में कुछ घण्टे काम कर ये १० लाख ८१ हज़ार ५ रुपये नफ़ा पाती थीं। अंग्रेज़ व्यापारियों की ज्याद-तियों से महीन सूत की रफ़्तनी रुकने के साथ ही साथ उनका व्यवसाय घटने लगा और उनके जीविका की जड़ कटने लगी। जुलाहे भी, वहाँ, कपड़े बुनकर वार्षिक खर्च का निर्वाह कर साढ़े सात लाख रुपया नफ़ा का पाते थे। फ़तुहा, गया नवादा आदि स्थान टसर के लिये मशहूर थे। शाहाबाद में कोई १५९५०० स्त्रियां प्रतिवर्ष १२॥ लाख रुपया सूत कात कर कमातीं थीं। उस ज़िले में ७९५० करघे चलते थे। इसके अतिरिक्त कागज़, सुगन्धित वस्तुएं तेल, नमक आदि वस्तुओं का व्यवसाय भी बड़े ज़ोर पर था। भागलपुर में चाँवल का भाव रुपये का ३७॥ सेर था। उस समय उस ज़िले में १२००० बीघे ज़मीन पर कपास की खेती होती

थी ! वहाँ टसर बुनने के लिये ३२७४ करघे और कपड़ा बुनने के लिये ७२७६ करघे चलते थे। गोरखपुर में जहाँ १७५६०० स्त्रियां चरखे से सूत कातती थीं, वहां ६११४ करघों पर भी वस्त्र बुने जाते थे। २०० से ४०० तक नावें भी प्रतिवर्ष बनती थीं। इन सबों के अतिरिक्त वहाँ नमक और शक्कर बनाने के भी अनेक कारखाने थे। दीनाजपुर ज़िले में २१००० बीघे पर पटुआ, २४०० बीघे पर रुई, २४००० बीघे पर ईख, १२००० बीघे में नील और १५०० बीघे में तमाखू की खेती होती थी। इस ज़िले में १३ लाख से भी अधिक गायें और बैल थे। ऊंची जातियों की बहुतेरी विधवायें और किसानों की स्त्रियाँ सूत कात कर खर्च के अतिरिक्त ६१२००० रुपये फ़ायदे में पातीं थीं। वहां ५०० रेशम व्यवसायियों के घराने १२००००० रुपये नफे के पाते थे। वहां जुलाहे प्रतिवर्ष १६ लाख १४ हज़ार रुपये के कपड़े बुनते थे। मालदह ज़िले की मुसलमान स्त्रियों में सुई की कारीगरी का बहुत ही अधिक प्रचार था। सूत और कपड़े में भांति भांति के रंगों को चढ़ाकर हज़ारों मनुष्य अपना गुज़र करते थे। इसके अतिरिक्त पूर्निया ज़िले में स्त्रियां प्रतिवर्ष लगभग ३ लाख रुपयों का कपास खरीद कर जो सूत कातती थीं, उससे उनको १३ लाख रुपये मिल जाते थे। वहां दरी, फीता आदि का व्यवसाय भी बड़ी तरक्की पर था। अफ़सोस है कि कई प्रकार के कुटिल और अत्याचारी उपायों के द्वारा हमारा शिल्प-वाणिज्य मिट्टी में मिला दिया गया और हमारा देश, जो एक समय औद्योगिक संसार का शिरोमणि था इतनी अधोगति की स्थिति को पहुँच गया कि आज उसे अपनी साधारण आवश्यकता की पूर्ति के लिये दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है। ७५ वर्ष में अर्थात् सन् १७५७ से १८२६ तक के अर्से में हिन्दुस्थान की औद्योगिक इमारत निर्दयता के साथ गिरा दी गई !

जब कि इस औद्योगिक इमारत को गिराने की कुटिल चालें चलीं जा रही थीं, उस वक्त हिन्दुस्थानी कारीगरों ने अपनी औद्योगिक रक्षा के लिये कम्पनी के अधिकारियों से बहुत प्रार्थनायें कीं और कहा कि जैसा सुलूक

विलायती माल के साथ किया जाता है, वैसाही देशी माल के साथ भी किया जावे, पर उनकी बात स्वीकृत न हुई। सन् १८३१ के सेप्टेम्बर मास में बंगाल के १७२ सज्जनों ने विलायत को निम्न लिखित आशय का प्रार्थनापत्र भेजा:—

"हम बंगाल के नीचे सही करने वाले,सूती और रेशमी कपड़ा बनाने वाले तथा इनका व्यवसाय करने वाले, श्रीमानों की सेवा में अत्यन्त नम्रता पूर्वक निवेदन करते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन के वस्त्र बंगाल में आजाने के कारण हमारा व्यवसाय नष्ट होता जा रहा है। ग्रेटब्रिटेन का कपड़ा बिना किसी प्रकार के महसूल दिये ही कसरत से यहां आता है हमारे व्यवसाय और उद्योग की रक्षा के लिये ग्रेटब्रिटेन के बने हुए कपड़ों पर किसी प्रकार महसूल नहीं लगाया गया। इसके विपरीत बंगाल के बने हुए कपड़ों पर ग्रेट ब्रिटेन में अनाप सनाप महसूल लगाया गया है। हम श्रीमानों का ध्यान इन स्थितियों की ओर दिलाना चाहते हैं और हमें विश्वास है कि साम्राज्य के किसी हिस्से के उद्योगधन्धों और व्यवसाय मार्ग में बाधा न डाली जायगी। हम भी श्रीमानों से प्रार्थना करते हैं कि हमें भी वेही हक़ दिये जावें जो अन्यत्र ब्रिटिश प्रजा को प्राप्त हैं और हमें आशा है कि बंगाल के बने सूती और रेशमी कपड़ों को विलायत में बिना महसूल और रोक टोक के जाने की इजाज़त दी जायगी, जैसी ग्रेट ब्रिटेन के कपड़ों को बिना महसूल और रोक टोक के यहां आनेकी इजाज़त है............................हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमान् अपनी उदारता को बढ़ावेंगे और जातिपांति, देश और रंग का पक्षपात न कर श्रीमान् हमें ब्रिटिश प्रजा के हक़ देंगे"। इस प्रकार के और भी कितने ही प्रार्थनापत्र भेजे गये थे, पर अफ़सोस है कि एक की भी सुनवाई नहीं हुई। सुनवाई हो भी कैसे सकती थी क्योंकि इससे अंग्रेज़ कारीगरों और व्यवसायियों के स्वार्थ में हानि पहुँचने का डर था:—

जब भारतीय शिल्प की जड़ प्रायः कट चुकी, जब यहां के वस्त्र-व्यवसाय मृतप्रायः स्थिति को पहुँच गये और जब भारतीय धन से विलायत मालामल हो चुका और वहां के कारखानों को उन्नति करने की काफ़ी खुराक मिलगई, जब वाष्पीय यन्त्रों के आविष्कार से खूब सस्ता माल निकलने लगा तब इंगलैंडवालों ने सन् १८३६ ई० में उदारनीति की घोषणा कर स्वतन्त्र व्यापार-नीति (Free-trade Policy) को अंगीकार किया। इससे भारत के बने माल पर जो अब तक महसूल देना पड़ता था वह बंद हो गया। यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक इंग्लैंड के उद्योग-धन्धे अपरिपक्व अवस्था में थे और दूसरे देशों के उद्योग धन्धे का मुकाबला न कर सकते थे, तब तक उन्होंने केवल संरक्षण नीति (Protection) का अवलम्बन ही नहीं किया था, पर विविध प्रकार के कुटिल मार्गों का भी अवलम्बन किया था, जिसका विवेचन हम ऊपर कर चुके हैं। इसके बाद तो भारत में चारों ओर विलायती माल दीखने लगा। भारत का वस्त्र व्यवसाय पहले ही नष्ट हो चुका था और इस वक्त वह ऐसी पंगु स्थिति में था कि वाष्पीय या विद्युत् शक्ति के द्वारा चलनेवाली मशीनों से बने हुए वस्त्रों का किसी प्रकार का मुकाबला नहीं कर सकता था। इससे करोड़ों रुपये के विलायती वस्त्र भारत में आने लगे और भारत से इसके बदले में प्रचुर सम्पत्ति जाने लगी।

इस प्रकार विलायती सूत और वस्त्र का परिमाण बढ़ता गया। अगर युद्ध की बाधा न आती तो यह परिमाण कितना बढ़ जाता, इसकी कल्पना करना कठिन है।

जब इस प्रकार भारत का अपार धन विदेशों में जाने लगा तब कुछ लोगों की आंखें खुलीं और उन्होंने फिर विलायत से कलें मँगा कर कपड़े बनाने का काम शुरू करने का विचार किया। कोई साठ वर्ष पहले की बात है कि बम्बई निवासियों ने इस प्रकार का

प्रयत्न करना शुरू किया। जब अंग्रेज़ों को इस बात का पता लगा तो उन्होंने एक नियम बना दिया कि विलायत से भारत में कल आदि मँगाने के लिये अधिक महसूल देना होगा। इसके अलावा यहां पर विदेश से कलें मँगा कर कारखाना खड़ा करने में कितनी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं उसका अंदाजा भी पाठक लगा सकते हैं, इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी लोगों का ध्यान स्वदेशी कारोबार की ओर बढ़ने लगा और सन् १८८२ ई० में यह मिलें अच्छी तरह चलने लगीं और महीन धोतियां बनाने लगीं। पर अभाग्यवश इनका परिणाम यह हुआ कि भारत में महीन कपड़े बनाना असम्भव हो गया। एक बड़ी भारी विपत्ति का सामना और करना पड़ा। भारत वासियों की यह सफलता देख कर विलायती व्यापारियों के कान खड़े हो गये और उन्होंने भारत सरकार पर दबाव डाल कर भारत में आने वाली अमेरिका की लम्बी तन्तु वाली कपास की आमद रोकने के लिये उस पर ५) फी सैंकड़ा महसूल लगवादिया और मिश्रकी रुई को भी भारत में आने से रुकवा दिया। इतना होने पर भी एक नयी विपत्ति और सामने आई। सरकार ने यह कह कर कि आमदनी से खर्च ज्यादा हो रहा है इसलिये सन् १८६८ ई० में एक कानून पास किया कि देशी माल पर प्रति सैंकड़े ३॥) रु० टैक्स लगाया जाय। इस पर देश में बड़ा असंतोष फैला और लोगों ने साफ़ साफ़ कहा कि भारत सरकार की यह नीति केवल विलायती कारखाने वालों की रक्षा के लिये है जिससे देश में स्वदेशी प्रचार के बढ़ने से वहां का माल महंगा न पड़े अतएव इसे रद्द करने के लिये जगह जगह प्रस्ताव पास हुए। पर खेद है कि सरकार ने लोगों की बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। इसका नतिजा यह हुआ कि स्वदेशी माल पहले की अपेक्षा और महंगा हो गया। यहां पर पाठकों को यहभी ध्यान में रखना चाहिये कि देश में बनी हुई किसी वस्तु या कपड़े पर जो देश ही में बेचा जाता हो टैक्स लगाने का नियम पराधीन भारत को छोड़ कर और किसी अन्य उपनिवेश में नहीं था।

ईस्ट इण्डिया कंपनी के शासन में समृद्धिशाली भारत दरिद्र हुआ।

यह बात तो शायद कोई भी अस्वीकार न करेगा कि भारत की साम्पत्तिक और व्यापारिक कीर्ति सुनकर हमारे अंग्रेज व्यापारीगण यहां आये थे। उस समय भारत कितनी उन्नतावस्था पर पहुँच गया था, इस बात का पता उन्हीं के लेखों से चलता है। लार्ड क्लाइव, जिसे भारत में अंग्रेजी शासन के प्रथम संस्थापक होने का श्रेय प्राप्त है, मुर्शिदाबाद शहर की समृद्धि का वर्णन करते हुए लिखता है:—

"The city is as extensive, populous and rich as the city of London, with this difference that there are individuals in the first possessing infinitely greater property than in the last city." अर्थात् "यह नगर लंदन की तरह विस्तृत, जनाकीर्ण और धनवान् है। इन दोनों शहरों में अन्तर केवल यही है कि पहले शहर (मुर्शिदाबाद) के लोगों के पास दूसरे शहर (लंदन) के लोगों की अपेक्षा बहुत ही ज्यादा सम्पत्ति है।" मि० हावेल ने रिफ़ार्म पैंफ्लेट के "Tracts of India" नामक पुस्तिका में लिखा है:—

"In the year that Hyder established his sway over Mysore, Bengal, the brightest jewel in the Imperial Crown of the moguls, came into British possession. Clive described the new acquisition as a country of inexhaustible riches and one that

could not fail to make its new masters the richest corporation in the world. Bengal was known to last as the Garden of Eden the rich Kingdom Here the property as well as the liberty of the people are inviolate." अर्थात् जिस साल हैदरअली ने मैसूर पर अपना आधिपत्य जमाया उसी साल मुग़ल साम्राज्य का सर्वोज्ज्वल रत्न-बङ्गाल-ब्रिटिश के अधिकार में आया। क्लाइव ने इस नये राज्य को "अक्षय सम्पत्ति का देश" तथा अपने नये स्वामियों को संसार में सबसे अधिक धनवान् बनाने वाला देश कहा है। पूर्व में बंगाल 'एडन का बगीचा' अर्थात् समृद्धि शाली देश के नाम से मशहूर था। वहां के लोगों की मिल्कियत और स्वाधीनता अखण्ड थी। उस समय लोगों में कितनी सच्चाई और ईमानदारी थी उसका वर्णन आगे चल कर फिर इसी में किया गया है:—

"If a bag of money or valuables is lost in this district the man who finds it hangs on a tree and gives notice to the nearest guard" अर्थात् इस ज़िले में यदि किसी व्यक्ति को धन की तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं की थैली मिल जाती है, तो वह उसे किसी वृक्ष पर लटका देता है और सबसे पासवाले पहरेदार को उसकी सूचना दे देता है।" अलीवर्दीखां के शासन-काल में बङ्गाल की कैसी स्थिति थी इसके बारे में स्टुअर्ट साहब 'History of Bengal' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

" Such was the state of Bengal when Alivardikhan.........assumed its government. Under his rule...the country was improved, merit and conduct were the only passports to his favour. He placed Hindus on an equality with musalmans, in

choosing ministers & nominating them to high military & civil command. The revenues instead of being drawn to the distant treasury of Delhi were spent on the spot."

इसका सारांश यह है कि अलीवर्दीखां के शासनकाल में देश की अवस्था बहुत उन्नत हो गई थी। उसने हिन्दू और मुसलमानों को एक निगाह से देखा और शासन विभाग और फौजी विभाग के बड़े से बड़े पदों पर नियुक्त करने में भी हिन्दू मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं रक्खा। जो कुछ प्रजा से कर रूप में आमद होती थी वह वहीं पर खर्च की जाती थी और देहली के खज़ाने में नहीं भेजी जाती थी।

यह तो हुई बङ्गाल में अलीवर्दीखां के शासन काल की बात। इसके बाद, कोई दस वर्ष का भी अर्सा न हुआ होगा कि बङ्गाल में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का शासन हुआ। तब से उसकी स्थिति में परिवर्तन होने लगा। इस समय का हाल-खुद लार्ड क्लाइव ने लिखा है। वह लिखता है:—

"Every ship for some time had brought alarming tidings from Bengal. The internal misgovernment of the province had reached such a pitch that it could go no further" अर्थात् "कुछ अर्से तक हर एक जहाज बङ्गाल से भयभीत करनेवाले समाचार लाता था। प्रान्त का भीतरी कुशासन ऐसी हद तक पहुँच गया था कि जिसके पार वह जा ही नहीं सकता था।" स्टुअर्ट महोदय ने भी इस समय की भीषण स्थिति का हृदय-भेदक चित्र खिंचा है। उन्होंने कम्पनी के नौकरों के भीषण अत्याचारों को—उनकी रिशवतखोरी को-उनके स्वार्थ साधन के नीचातिनीच कृत्यों को—अपनी "History of Bengal" नामक ग्रन्थ में बड़ी अच्छी तरह दिखलाया है। उन्होंने एक जगह लिखा है:—

"The servants of the Company obtained for themselves a monoply of almost the whole internal trade. They forced the natives to buy dear & sell cheap They insulted with impunity the tribunals, the police and fiscal authorities..... Every servant of British factory was armed with all the power of the company..... Enormous fortunes were thus rapidly accumulated at Calcutta while thirty millions of human beings were reduced to an extremity of wretchedness......Under their old masters...when evil became unsupportable, the people rose and pulled down the Government. But the English Goverment was not to be shaken off. The Government, oppressive as the most oppressive form of barbarous despotism, was strong with all the strength of civilization." अर्थात् कम्पनी के नौकरों ने देश के आन्तरिक व्यापार को अपने मुट्ठी में कर लिया था। वे यहाँ के निवासियों को महंगे भाव में खरीदने और सस्ते भाव में बेचने के लिए मजबूर करते थे। वे अदालत, पुलिस और अर्थ-विभाग के अधिकारियों का स्वच्छन्दता से अपमान और बेइज्ज़ती करते थे। ब्रिटिश फेक्टरी का प्रत्येक नौकर कम्पनी के सब अधिकारों से सज्जित था। इस प्रकार कलकत्ते में इन लोगों ने अपार सम्पत्ति इकट्ठी करली और तीन करोड़ मानव प्राणी दरिद्रता की चरम सीमा पर पहुँच गये। इन अभागों के पुराने स्वामियों के राजत्व में जब शासन असह्नीय हो जाता था, तब लोग उठते और वे उस सरकार को गिरा देते। पर अंग्रेज़ सरकार का शासन डाँवाडोल नहीं किया जा सकता था। इस सरकार का शासन जङ्गली स्वेच्छाचारी शासन के समान अत्याचारी होते हुए भी सभ्यता की सर्वशक्ति के साथ सुदृढ़ था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के पहले अवध भी अत्यन्त वैभवशाली अवस्था में था। लोगों पर बिना बोझ पड़े ही तीस लाख की की आमदनी हो जाती थी; पर जब इस पर भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरों का हथलपड़ा चलने लगा, तब इसकी अत्यन्त दुर्दशा हो गई। उसकी आमदनी आधी रह गई। उस समय गवर्नर जनरल लॉर्ड हेस्टिङ्ग ने लिखा था:—

"I fear that our encroaching spirit and the insolence with which it has been exerted has caused our alliance to be as much dreaded by all the powers of Hindustan as our arms. Our encroaching spirit, and the uncontrolled and even protected licentiousness of individuals, has done injury to our national reputation. Every person in India dreads a connection with us."

इसका भावार्थ यह है कि हिन्दुस्थान के सभी राष्ट्र जितना हमारे बल से डरते हैं उतना ही हमारे साथ सन्धि और मैत्री करने से डरते हैं। इसका कारण यह है कि हस्तक्षेप करने का हमारा स्वभाव है, और हम इस स्वभाव का द्योतन जिस प्रकार करते हैं उससे दूसरों का बड़ा अपमान होता है। इस हस्तक्षेप करने की प्रकृति ने और कुछ व्यक्तियों की निरंकुश स्वेच्छाचारिता ने, जिनकी हमारे द्वारा रक्षा होती है, हमारी जातीय कीर्ति को बड़ी हानि पहुँचाई है। भारतवर्ष का प्रत्येक मनुष्य हमारे साथ सम्बन्ध करने से घबराता है।

Anquctil du Person नामक एक सज्जन ने Gentleman's magazine" में सन् १७६२ में "Brief account of a voyage to India" नामक लेख प्रकाशित करवाया था उसमें उसने मराठा–राज्य का हाल लिखा था:—

"When I entered the country of the Marathas, I thought myself in the midst of the simplicity and happiness of the golden age, where nature was yet unchanged, and war & misery was unknown The people were cheerful, vigorous aud in high health and unbounded hospitality was an universal virtue; every door was open and friends, neighbours and strangers were alike welcome to whatever they found." अर्थात् जब मैंने मराठों के मुल्क में प्रवेश किया, तब मैंने अपने आपको स्वर्णयुग की सादगी और सुख के मध्य में पाया। मैंने देखा कि यहाँ प्रकृति में अब तक परिवर्तन नहीं हुआ है। युद्ध और दुःख यहां अज्ञात् हैं। लोग आनन्द चित्त सशक्त और स्वस्थ हैं। अजहद मिहमानदारी यहाँ सर्वसामान्य धर्म समझा जाता है। हर एक दरवाजा खुला है और मित्रों, पड़ोसियों और अपरिचित लोगों का भी, जहाँ वे जाते हैं, वहीं स्वागत होता है। शिवाजी के खानदान में, आगे जाकर, माधवराव भी सिंहासनासीन हुए थे। उनके लिये ग्रैन्ट डफ अपनी "History of the Marathas" में लिखते हैं:—

"He is deservedly celebrated for his firm support of the weak against the oppressive, of the poor against the rich .... for his equity to all. अर्थात् उन्होंने जुल्मी के विरुद्ध कमज़ोर को और धनवानों के विरुद्ध ग़रीब को जो दृढ़ सहारा दिया तथा सबके साथ जो निष्पक्षता का बर्ताव किया, इसके लिये उनकी प्रशंसा की जाती है और वे उसके पात्र भी हैं।

इस समय हिन्दुस्थान के अन्य प्रान्तों से मराठों की सल्तनत की दशा अधिक उन्नत थी। माधवराव के दीवान रामशास्त्री शुद्ध चरित्र और सादे मिजाज़ के थे। उन्होंने प्रजा की स्थिति सुधारने में अपनी

सारी शक्तियों का व्यय किया। इन्हें लोभ छू तक नहीं गया था। रिश्वत का छींटा इन्हें बिल्कुल न लगा था। ये इतने निर्लोभी और सादे थे कि ये अपने घर में केवल इतना ही अन्न रखते थे, जो एक दिन के लिये काफ़ी हो।

पेशवा के राज्य में नाना फड़नवीस जैसे परम प्रजा हितैषी और अपूर्व प्रतिभा-सम्पन्न मुत्सद्दी हो गये हैं। बाजीराव की नाबालगी में इन्होंने कोई पच्चीस वर्ष तक शासन किया। इनके शासन-काल में प्रजा कैसी सुखी और समृद्धिशालिनी थी, इसक ज़िक्र सर जॉन मालकम ने यों किया है:—

"It has not happened to me ever to see countries better cultivated and more abounding in all the produce of the soil as well as in commereial wealth than the southern Maratha districts.........Poona the capital of the Peshwa was a very wealthy commercial town." अर्थात मैंने दक्षिण मराठा प्रान्तों के समान कोई ऐसे देश नहीं देखे, जिनमें इनसे अच्छी खेती होती हो और जो खेती से उपजानेवाले पदार्थों से ज्यादा लबालब भरे हों या जिनमें इनसे ज्यादा व्यापारिक सम्पत्ति हो। तत्कालीन होलकर राज्य की स्थिति के विषय में बयान करते हुए इन्हीं महाशय ने लिखा है:—

"I was surprised......to find that dealing in money to large amounts had continually taken place between cities, where bankers were in a flourishing state, and goods to a great extent continually passed through the province. The insurance offices which exist through all parts of India.........had never stopped their operations.

I do not believe that in Malwa the introduction of our direct rule could have contributed more, nor indeed so much to the prosperity to the commercial and the agricultural interests, as the re-establishment of the efficient rule of its former princes and chiefs. With respect to the southern Maratha district of whose prosperity I have before spoken ......I dont think either their commercial or agricultural interests likely to be improved under rule. Their system of administration on the whole is mild and paternal." अर्थात् मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नगरों नगरों के बीच बहुत विशाल परिमाण में पैसे का व्यवहार सदा चलता रहता है। वहाँ के बैंकर्स भी उन्नति की अवस्था में हैं। इस प्रांत में माल का आवागमन बहुत बड़ी तादाद में सदा हुआ करता है। बीमा के आफ़िस, जो सारे हिन्दुस्थान में स्थित हैं; कभी अपना कारोबार बंद नहीं करते। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि हमारे शासन ने इस प्रान्त की उन्नति में विशेष सहायता पहुँचाई हो। केवल यही नहीं पहले के राजाओं का शासन फिर स्थापित हो जाने पर किसानों और व्यापारियों की समृद्धि में जो वृद्धि हो सकती है, उतनी भी हमसे नहीं हुई। दक्षिण के मराठी मुल्कों के लिये मैं पहले कह चुका हूँ। मैं ख़याल नहीं कर सकता कि उनकी खेती सम्बन्धी और व्यापारिक स्थिति हमारे शासन में सुधर सकती है। उनकी (मराठों की) शासन-पद्धति नर्म और पितापुत्र की सी (Paternal) है।" आगे चलकर मालकम साहब ने राज्य की उस प्रशंसनीय सहायता का ज़िक्र किया है जो किसानों और व्यापारियों को उन्नति के लिये मुक्त हस्त से उदारता पूर्वक दी जाती थी। इन्हीं मालकम महोदय ने हमारे इन्दौर की परम पुण्यशीला

महारानी अहल्याबाई के दिव्य और रामराज्य की बड़ी ही प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि महारानी अहल्याबाई बड़ी ही प्रसन्न होती थी, जब वह अपने यहाँ के सर्राफ़ों (Bankers) और किसानों को उन्नतावस्था में देखती थीं। कर्नल मालकम साहब ने श्रीमती महारानी अहल्याबाई के राज्यकाल में साहूकारों और किसानों की समृद्धिशाली अवस्था को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है कि मालवे में उनका आदर्श शासन था।

इसके अतिरिक्त बरार के मराठा राजा के राज्य की भी इस समय बड़ी समृद्धिशाली और उन्नतावस्था थी। युरोपियन प्रवासियों ने इस प्रान्त के उन्नतिशील ज़िलों का, औद्योगिक पुरों का, उपजाऊ भूमि का, भव्य मन्दिरों का और विशाल व शानदार इमारतों का बड़ा बढ़िया चित्र खींचा है।

यह तो हुई मराठों के राज्य की बात, अब दूसरी ओर झुकिये। रिफ़ार्म पेंफ़लेट में एक अंग्रेज़ की गवाही का उल्लेख है। वह इस प्रकार है—

"In passing through the Rampore territory, we, could not fail to notice the high state of cultivation to which it has attained when compared with the surrounding country. Scarcely a spot of land is neglected and although the season was by no means favourable, the whole district was covered with an abundant harvest. The management of the Nawab Fyzoolakhan is celebrated throughout the country. When works of magnitude were required ......the means of undertaking them were supplied by his bounty. Water-courses were constructed, the

rivulets made to overflow and fertilise the adjacent districts; and the paternal care of a popular chief was constantly exerted to afford protection to his subjects, to stimulate their exertions, to direct their labours to useful objects and to promote by every means the success of their undertaking." अर्थात् रामपुर राज्य में से गुज़रते हुए हम खेती की उस उच्च स्थिति को देखे बिना नहीं रह सकते, जो उसने आस पास के मुल्क की तुलना में प्राप्त की है। यहां शायद ही कोई जमीन का टुकड़ा बेकार पड़ा होगा। यद्यपि ऋतु अनुकूल नहीं थी, तो भी सारा ज़िला विपुल फ़सल से परिपूर्ण है। नवाब फैजुल्ला खां के प्रबन्ध की प्रशंसा सारे मुल्क में हो रही है। जब बड़े बड़े कामों के करने की आवश्यकता होती है, तब भी ये अपनी दानशीलता और उदारता का परिचय देते हैं। इन्होंने नहरें, तालाब आदि बनवाये, नालों की इस ढंग से व्यवस्था की कि वे आस पास के ज़िलों को उपजाऊ बनावें। इसके अतिरिक्त इस लोकप्रिय नवाब की पितृतुल्य चिन्ता हमेशा अपनी प्रजा की रक्षा में—उनके कामों और प्रयत्नों में उत्साह पहुँचाने में—उनके परिश्रम को उपयोगी कामों में लगाने में और हर तरह से उनके कामों में सफलता प्राप्त करवाने में लगी रहती थी। अब येही अंग्रेज महाशय रोहिलों के शासन की अंग्रेजी शासन से तुलना करते हुए लिखते हैं:—

"If the comparison for the same territory be made between the management of the Rohillas and that of our own government, it is painful to think that the balance of advantage is clearly in favour of the former." अर्थात् अगर रोहिलों के प्रबन्ध और हमारे सरकार के प्रबन्ध की तुलना की जावे तो, यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि

रोहिलों का प्रबन्ध ही श्रेष्ठतर मालूम होगा। आगे चलकर फिर लिखा गया है:—

"While the surrounding country seemed to have been visited by a desolating calamity, the lands of the Rajahs Diyaram and Bhugwantsingh under every disadvantage of the season were covered with crops produced by better husbandry or greater labour." अर्थात् जबकि आसपास के मुल्क पर नाशकारी विपत्ति आयी हुई दीखती है, पर राजा दयाराम और भगवंतसिंह का मुल्क, ऋतु की प्रतिकूलता होते हुए भी, फ़सल से भरा हुआ है, जो कि श्रेष्ठतर कृषि और विशेष परिश्रम से पैदा की गई है।" पाठक, उपरोक्त कथित आसपास का मुल्क ब्रिटिश शासन में था, इस बात को उपरोक्त लेखक ने आगे चलकर कहा है।

इस ओर तो अंग्रेज़ सज्जन एक देशी राजा के उदार और उच्चतम शासन के लिये प्रशंसा कर रहें हैं और दूसरी ओर ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत बङ्गाल की कैसी दुर्दशा हो रही है उसका वर्णन डाक्टर मार्शमन अपने 'The friend of India' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"No one has ever contradicted the fact that the condition of the Bengal peasantry is almost as wretched and degraded as it is possible to conceive living in the most miserable hovels, scarcely fit for a dog—Kennel, covered with tattered rags and unable in many intances, to procure more than a single meal a day for himself and family. The Bengal ryot know nothing of the most ordinary comlorts of life. We speak without exaggerat-

ion when we say that if the real condition of those who raise the harvest, which yields between three and four millions a year, were fully known, it would make the ears of one who heard theres of tingle. अर्थात् इस बात का अभी किसी ने खण्डन नहीं किया है कि बङ्गाल के किसानों की दशा इतनी हीनतामय और पतित हो गई है कि जिसका ख़याल करना भी कठिन है। ये अत्यन्त दीन श्रेणी के झोंपड़ियों में रहते हैं। ये झोंपड़ियाँ इतनी तंग होती हैं कि वह एक कुत्ते के पिंजरे के लिये शायद ही काफ़ी हो। ये बेचारे फटे टूटे चिथड़े पहने रहते हैं और इन्हें शायद एक वक्त भी मुश्किल से भोजन मिलता होगा। बङ्गाल के किसानों को जीवन की अत्यन्त साधारण आराम सामग्री मिलना तो दूर रहा, पर इसके विषय में वे जानते तक नहीं हैं। यह कहना कुछ अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि अगर इन लोगों की सच्ची हालत जानी जाय जो कि इस फ़सल को उत्पन्न करते हैं, जिससे तीस चालीस लाख की सालाना आमदनी होती है तो सुनने वालों के कान खड़े हो जावेंगे।"

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के पहले जिस बंगाल को अंग्रेज़ों ने "एडन" का बगीचा कहा था, जिसे लार्ड क्लाइव ने "अटूट सम्पत्ति का देश" कहा था, उसी की उसके सौ वर्ष के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में कितनी हीन और बुरी दशा होगई, इसको हमने अंग्रेज़ों के लिखे हुए प्रमाणों से दिखलाया है। भारत के भूतपूर्व वाइसरॉय लार्ड कार्नवालिस ने ये उद्गार निकाले थे कि "लोग ग़रीब और हीन दशा को प्राप्त होते जा रहे हैं।"

किसानों की दीन हीन दशा क्यों हुई।

यह तो इस ग्रन्थ के पूर्व अध्यायों के पढ़ने से मालूम हुआ होगा कि अंग्रेजी शासन के पहले यहां के किसान अच्छी स्थिति में थे। इस बात को कई अंग्रेज लेखकों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। पर जब से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का आरम्भ हुआ तब से इनकी अधोगति का सूत्रपात हुआ। ज़मीन का लगान बहुत बढ़ा दिया गया और किसानों पर तरह तरह के दूसरे जुल्म हुए। सर रमेशचन्द्र दत्त ने दिखलाया है कि "हिन्दुओं और मुग़लों के शासन में जिस हिसाब से ज़मीन का लगान लिया जाता था, उससे कहीं ज्यादा प्रजा की दरिद्रता बढ़जाने पर भी, अब वसूल किया जाने लगा। यहीं नहीं किन्तु बंगाल को छोड़कर अन्य प्रदेशों में जमीन का लगान क्रमशः बढ़ता ही चला जा रहा है। अधिक लगान देने ही के कारण लोगों की ऐसी दीनहीन दशा हो रही है। किसान लोग इस भय से खेती नहीं करते कि न जाने कब ज़मीन का लगान बढ़ा दिया जाय।" आगे चलकर फिर सर रमेश-चन्द्र दत्त ने बतलाया है कि सन् १७६२ ईस्वी से १८२२ तक सरकार ने बंगाल के जमींदारों की आमदनी पर सैंकड़े पीछे ६० और उत्तर भारतवर्ष में सैंकड़े ८०) रु० कर लगाया था। मुगल शासन के समय भी इसी हिसाब से कर लेने की रीति थी। परन्तु वे लोग जितना लगान नियत करते थे उतना वसूल नहीं करते थे। इसके सिवा प्रजा की शिल्प तथा वाणिज्य सम्बन्धी उन्नति करने की ओर उनकी विशेष दृष्टि रहती थी। महाराष्ट्र देश के राजा लोग भी राजकर वसूल करने में कठोरता नहीं करते थे; किन्तु अंग्रेज जितना कर चाहते थे, उतना कड़ाई के साथ वसूल करते थे।" यह तो हुई स्वर्गीय सर रमेशचन्द्र

दत्त की उक्ति। अब हम इस सम्बन्ध में अंग्रेजों ही के प्रमाण देते हैं। बंगाल में बड़ी निर्दयता और क्रूरता के साथ लगान वसूल किया जाता था। ६ मई सन् १७७० को ईस्ट इण्डिया कंपनी के डायरेक्टरों ने जो पत्र लिखा था, उसमें नीचे लिखे आशय के वचन भी थे:—

"भयंकर अकाल का दृश्य उपस्थित हो रहा है। इससे जो मृत्युएँ हो रहीं हैं और जो भिखमंगी बढ़ रही है वह अवर्णनीय है। पुर्निया जैसे उपजाऊ प्रान्त के कोई १/३ लोग भूख के मारे तड़प तड़प कर मर गये! अन्य प्रान्तों में भी ऐसी ही भीषण स्थिति उपस्थित हो रही है।" इसी वर्ष ११ सितंबर को इन्हीं डायरेक्टरों ने फिर लिखा था, "इन अभागे भूखों मरनेवाले लोगों के दुःखों का जितना वर्णन किया जावे, उतना ही थोड़ा है" इसके उपरान्त १२ फरवरी को उन्होंने लिखा था:—

"Not withstanding the great severity of the late famine and the great reduction of people thereby, some increase has been made in the settlements both of the Bengal and Bihar provinces for the present year." अर्थात् पिछले अकाल की बहुत तेजी होते हुए भी और इससे लोगों की बहुत कमी हो जाने पर भी बंगाल और बिहार प्रान्तों के बंदोबस्त में जमीन का लगान वर्तमान वर्ष के लिये बढ़ा दिया गया है। १० जनवरी सन् १७७२ को इन्होंने लिखा था:—

"The collections in each departmeut of revenue are as successfully carried on for the present year as we could have wished," अर्थात् रेविन्यू के हर एक विभाग में वसूली उतनी ही सफलता के साथ की जा रही है, जैसी कि हमारी इच्छा थी।

जब देश में चारों ओर अकाल के कारण हाहाकार मच रहा था; जब देश में चारों ओर मृत्यु का वीभत्स चित्र उपस्थित हो रहा था; जब मानवी दुःख अपनी अंतिम सीमा तक पहुँचा हुआ था, ऐसे समय में भी सख्ती के साथ किसानों से लगान वसूल किया गया था। सरकारी तौर से इस बात का अंदाजा लगाया गया है कि सन् १७७० के अकाल में बंगाल की एक तिहाई १/३ जनता भूख के मारे प्राण त्याग करने को बाध्य हुई थी, अर्थात् उस समय कोई एक करोड़ आदमी भूख के मारे मर गये! इतने पर भी लगान वसूल करने में कसर न की गई। उलटे इस साल ज्यादा लगान वसूल किया गया। उस समय के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज ने लिखा था:—

"Not withstanding the loss of at least one third of the inhabitants of the province, and the consequent decrease of the cultivation, the net collection of the year 1771 exceeded even those of 1768." अर्थात् इस प्रान्त में एक तिहाई जनता के नष्ट हो जाने पर भी तथा खेती में बहुत कमी हो जाने पर भी सन् १७७१ में लगान की रकम सन् १७६८ की रकम से भी ज्यादा बढ़ गई।

इसके बाद जब मुगल बादशाह शाहआलम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल, बिहार और ओड़िसा की दिवानी या रेविन्यू का शासन सौंपा तब लगान वसूल करने के लिये द्वैध पद्धति (dual system) काम में लाई जाने लगी अर्थात् उस वक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा नियुक्त निरीक्षकों (Supervisors) की देख रेख में नवाब के नौकर भूमिकर वसूल करते थे जिससे प्रजापर बड़े जुल्म होते थे। इससे जमींदार और किसानों को बड़ा नुकसान पहुँचता था। इस समय से लगान निरन्तर बढ़ता ही चला गया। इससे सरकार की आमदनी में दिन पर दिन वृद्धि होने लगी। मि० शोर ने (जो पीछे

Lord Teignmouth के नाम से मशहूर हो गये थे) १८ जून सन् १७८६ में जो मतभेद पत्र लिखा था उसमें आपने दिखलाया था कि सन् १५८२ में टोडरमल ने ज़मीन का जो बन्दोबस्त (Settlement) किया था। उसमें केवल बंगाल में लगान के १०७०००० पौंड वसूल होते थे। सुलतान शुजा के ज़माने में जो बन्दोबस्त हुआ था, उसमें ज़मीन का लगान १३१२००० पौंड कूता गया था। जाफ़र खाँ के ज़माने में जो बन्दोबस्त हुआ था उसमें यह रकम बढ़कर १४२६००० पौंड हो गई। शुजाखाँ के बन्दोबस्त में यह रकम १७२८००० तक पहुँच गई। ब्रिटिश शासन के शुरू होने के पहले के पांच वर्षों का हिसाब देखिये।

सन्	ज़मीन वसूली
१७६२–६३	६४६०००
१६६३–६४	७६२०००
१७६४–६५	८१८०००
१७६५–६६	१४७००००

साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उक्त अन्तिम वर्ष में अर्थात् सन् १७६५–६६ में मुग़ल बादशाह के द्वारा दीवानी अधिकार ब्रिटिश को दे दिये गये थे। इस साल महम्मदरज़ाखाँ ने नवाब और कम्पनी के दुहरे हुक्म (Dual authority) से लगान वसूल किया था। इसके बाद सन् १७६०–६१ में अंग्रेज़ों ने जो लगान वसूल किया था वह २६८०००० पौंड था अर्थात् जाफ़रखाँ और शुजाखाँ के वसूल किये हुए लगान से यह रकम लगभग दूनी थी और महाराजा नन्द-कुमार ने सन् १७६४ में जो लगान वसूल किया था, उससे यह तिगुनी थी। इतना ही नहीं, महम्मद रज़ाखाँ ने अंगरेज़ों की देख-रेख में जो लगान वसूल किया था उससे भी यह रकम लगभग दूनी थी। एक लेखक ने लिखा है:—

"It was Bengal which had suffered terribly from the rapacity of the early British administrators and if she has prospered under the permanent settlement, she has well earned that prosperity by her early losses." अर्थात् वह बंगाल प्रान्त था जिसने पहले के ब्रिटिश शासकों के जुल्म से बहुत दुःख सहा और यदि उसने दवामी या स्थायी बंदोबस्त से उन्नति की है तो यह उसकी पहले की हानि का परिणाम है।

यह तो हुई बंगाल की बात। अब मद्रास प्रान्त की ओर आइये। ब्रिटिश शासन के पहले मद्रास प्रान्त की स्थिति कैसी थी, इसका सबूत उस गवाही से मिलता है जो १८८२ में मि० जार्ज स्मिथ ने पार्लियामेण्टरी कमेटी के सामने दी थी। इस सम्बन्ध में उक्त कमेटी के सामने इस आशय के प्रश्नोत्तर हुए थे।

प्रश्न—आप हिन्दुस्तान में कितने दिन तक और किस हैसियत से रहे?

उत्तर—मैं सन् १७६४ में हिन्दुस्तान पहुँचा और सन् १७६७ से सन् १७७१ के अक्टूबर मास तक वहां रहा।

प्रश्न—जब आप पहले पहल मद्रास पहुँचे तब वहां की व्यापारिक स्थिति कैसे थी?

उत्तर—उस समय मद्रास की अवस्था बहुत ही समृद्धिशाली थी हिन्दुस्तान में वह व्यापार का केन्द्र था।

प्रश्न—जब आपने मद्रास छोड़ा तब वहां की व्यापारिक अवस्था क्या थी?

उत्तर—उस समय वहां बहुत ही कम या नाम मात्र का व्यापार रह गया था।

प्रश्न—जब आपने इस प्रान्त के कर्नाटक जिले को पहले पहल देखा, तब वहां के व्यापार और खेती की क्या स्थिति थी ?

उत्तर—उस वक्त कर्नाटक की खेती की दशा बहुत अच्छी थी और वह समृद्धि की अवस्था में था। वहां व्यापार भी बहुत बढ़ी चढ़ी हालत में था।

प्रश्न—जब आपने मद्रास प्रान्त छोड़ा तब वहां की खेती, जन-संख्या और देशी व्यापार की क्या हालत थी ?

उत्तर—खेती की दशा बहुत ही गिर गई थी और व्यापार को भी बड़ा धक्का पहुँचा था।

इन प्रश्नों से पाठक खुद अंदाज़ा लगा सकते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में मद्रास प्रान्त के व्यापार और खेती की किस प्रकार अधोगति हुई थी।

मद्रास प्रान्त के तंजौर परगने की हालत के विषय में सन् १८८२ में 'Committee of Secrecy' के सामने मि० प्रेट्री ने जो गवाही दी थी, उसका सारांश यह है:—

"तंजौर की वर्तमान स्थिति पर कुछ कहने के पहले मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि उसकी कुछ वर्षों की पहले की स्थिति पर भी कमेटी के सामने कुछ कह डालूँ। ज्यादा अरसा नहीं हुआ कि तंजौर परगना अत्यन्त समृद्धिशाली और उन्नत अवस्था में था। वहां पर खेती की सबसे अच्छी स्थिति थी। जब मैंने पहले पहल सन् १७६८ में उसे देखा था, तब उसकी हालत अब से बिल्कुल जुदा थी। तंजौर पहले बाहरी और अंतरंग व्यापार का केन्द्र स्थान था। वहां बम्बई और सूरत से रुई आती थी। बङ्गाल से कच्चा तथा पक्का रेशम आता था। सुमात्रा मलक्का आदि टापुओं से शक्कर आदि पदार्थों की आमदनी होती थी। पेगू से सोना, घोड़े हाथी और शहतीर आते थे। चीन से भी उसका व्यापा-

रिक सम्बन्ध था। उस ज़िले से भी मखमले, छींटें, रूमाल खीनख़ाब आदि कई प्रकार का बढ़िया माल बाहर जाता था। वहां की भूमि बड़ी उपजाऊ थी। संसार के बहुत कम देशों को इतनी नैसर्गिक सुविधाएं होंगी, जितनी तंजौर को है। पानी की वहां पर बहुत विपुलता है। उस परगने का स्वरूप बड़ा ही सुन्दर है। उसमें बहुत विविधता हैं। अपने आकार प्रकार से वह इङ्गलैंडसा जान पड़ता है। पर दुःख है कि उसकी अवनति बड़ी शीघ्रता से हो रही है, डर हो रहा है कि कहीं उसकी विपुल समृद्धि के चिन्ह तक न मिट जायँ।

सन् १७७१ तक जैसा कि मुझे मालूम हुआ है वहां के कारीगर तरक्की की हालत में थे, देश धन धान्य पूर्ण था। लोक-संख्या विस्तृत थी। खेती बड़ी अच्छी हालत में थी। वहां के निवासी धनवान् और परिश्रमी थे। पर उस साल के बाद से लेकर वहां के राजा के फिर गद्दीनशीन होने तक वह कई बार समर भूमि बना। वहां राज्य-क्रान्तियां हुईं। व्यापार कारीगरी और खेती की उपेक्षा की गई और तब से इसकी हालत गिरती गई।

अब एक बार बम्बई प्रान्त की सरकारी मालगुज़ारी की ओर दृष्टी डालनी चाहिये। महाराष्ट्र नरेशों के शासन–काल में इस देश की प्रजा से एक वर्ष में ८० लाख रुपये लिये जाते थे किन्तु जिस वर्ष अंग्रेजों ने इस प्रदेश में अधिकार किया उसके दूसरे ही वर्ष १ करोड़ १५ लाख रुपये वसूल किये गये। इसके कारण प्रजा पर कैसे अत्याचार होने लगे थे; इसका कुछ पता सरकारी रिपोर्ट से लग सकता है जो इस प्रकार है:—

Every effort was made, lawful and unlawful, to get the utmost out of the wretched peasantry, who were subjected to tortures, in some instances, cruel and revolting beyond description, if they

could not or would not yield what was demanded. Numbers abandoned their homes and fled into neighbouring native states; large tracts of land were thrown out of cultivation, and in some districts no more than one third of the cultured area remained in occupation."

अर्थात् अभागे किसानों के पास से यथा सम्भव धन वसूल करने के लिये न्याययुक्त और अन्याययुक्त सभी प्रकार के उपाय काम में लाये गये थे। जितना धन इन किसानों से मांगा जाता था, यदि वे उसे देना स्वीकार न करते थे या न देते थे तो उन पर कभी कभी अवर्णनीय अत्याचार किये जाते थे। इस प्रकार के अत्याचारों से पीड़ीत होकर सैंकड़ों किसान अपना अपना घर छोड़ कर समीप के देशी राज्यों में जाकर बस गये। सुविस्तृत भूमि बिना खेती के पड़ी रह गई और किसी किसी ज़िले में तो खेती होने योग्य भूमि के एक तिहाई भाग से अधिक भूमि में खेती ही नहीं हुई।

उड़ीसा में भी प्रजा का धन लूटने के लिये थोड़े प्रयत्न नहीं हुए हैं। सरकारी कागज़ पत्रों में ही प्रकाशित हुआ है कि सन् १८२२ ईस्वी में उड़ीसा के किसानों से सरकारी कर्मचारियों ने सैंकड़ा पीछे ८३) रुपये के हिसाब से लगान वसूल करने की कोशिस की थी, किन्तु इस प्रकार धन की खींच अधिक दिनों तक न चल सकी। सन् १८३३ ईस्वी के पीछे वह लोग अपनी कमाई से सैंकड़ा पीछे ७१) रुपये लगान में देने लगे। इस समय घट कर इसका परिमाण सैंकड़ा पीछे ४४) रुपये रह गया है किन्तु बङ्गाल में दवामी बन्दोबस्त होने के कारण प्रजा को सैंकड़ा पीछे ११) रुपये ही लगान में देने पड़ते हैं। उड़ीसा के समान अवध प्रान्तों में भी १८२२ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरों ने ज़मींदारों से सैंकड़ा पीछे ८३) रुपये लगान लेने का क़ानून पास किया था— इसके परिणाम स्वरूप उस प्रान्त में चारों ओर हा हा कार मचने लग गया।

इस प्रकार राजधर्म का अपमान और प्रजा पर अत्याचार करके जो धन इकट्ठा हुआ करता था उसका बहुत थोड़ा भाग इस देश में खर्च किया जाता था और अधिकांश विलायत भेज दिया जाता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साझीदार कर्मचारी और विलायती पार्लमेण्ट-महासभा-के मेम्बर लोग इस प्रकार भारत से धन लूटकर अपनी दरिद्रता दूर करते थे। किसानों से जो धन मिलता उसे कम्पनी ले लेती और इस देश के धनी सौदागर तथा राजा महाराजाओं को दबाकर उनसे ज़बरदस्ती और अन्याय से जो धन लिया जाता उससे कम्पनी के नौकर मालामाल होते थे। खाली बङ्गाल देश में ही १७५७ ईस्वी से १७६५ ईस्वी तक में कम से कम ५९४०४९८०) रुपये घूँस के लिये गये थे। पार्लियामेण्ट के मेंबर कहीं आलोचना न करें इसलिये कम्पनी और उसके कर्मचारी पार्लियामेण्ट के मेम्बरों को भी घूँस देकर वश में कर लेते थे!

कई बार यह घूँस का धन इकट्ठा करने के लिये ही प्रजा का धन लूटना आवश्यक समझा गया था। उस समय के इङ्गलैंड नरेश भी इस प्रकार घूँस लेने से बचे नहीं थे। कहते हैं कि एकबार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कामों की जाँच करने का प्रस्ताव उठने पर स्वयं इङ्गलैंड नरेश ने सब गड़बड़ी शान्त करदी थी। मि० जी० क्लार्क (Clarke) अपने "British India and England's Responsibilities" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"Nor was the Company in good repute at home An enquiry was set at foot, and it was found that the company had devoted in one year £1,000,000 to bribery. But the House of Commons stifled enquiry. The receipients of bribes were amongst the highest classes and the king himself was said to have accepted a large sum.

अर्थात कम्पनी की उसके खास निवास स्थान इङ्गलैण्ड में भी बड़ी बदनामी थी। एक जाँच शुरू की गई थी, जिसमें यह पाया गया था कि कम्पनी ने केवल एक साल में १,००,००,००० पौंड रिश्वत के दिये थे, रिश्वत लेनेवाले सर्वोपरि श्रेणी मनुष्यों में से थे। कहते हैं कि उस समय स्वयं राजा ने भी बहुत बड़ी रकम ली थी। नहीं कह सकते कि सुसभ्य और चरित्रवान् अंग्रेज जाति के इतिहास में इन घटनाओं का महत्व कहां तक है !

महमूद गज़नवी, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली और मध्य भारत के पिंडारी लोग भारतवर्ष के धनवानों को लूटकर कितने रुपये ले गये, इसका उल्लेख और हिसाब बालकों के पढ़ने के इतिहासों में और समय समय पर अन्य प्रकार से प्रकाशित हुआ करता है; किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में भारतवर्ष के गरीब किसानों का कितना रुपया लूटा गया इसका हिसाब लगाना सहज नहीं है।

मिस्टर डिग्बी का कथन है—"अनुमान होता है कि प्लासी की लड़ाई के बाद प्रायः ५० वर्षों में भारतवर्ष से साढ़े सात अरब से पन्द्रह अरब रु० तक इङ्गलैंड में भेजे गये हैं।" मिस्टर ब्रुक्स एडम्स "Law of civilisation and decay" नामक ग्रन्थ के २६३ वें पृष्ट में लिखते हैं:—

"Possibly since the world began, no investment has ever been yielded the profit reaped from the Indian plunder" जब से दुनियाँ का आरम्भ हुआ है, तब से शायद ही पूँजी लगाने पर इतना लाभ नहीं हुआ है, जितना कि हिन्दुस्थान की लूट से हुआ है।

अब तक केवल इसी बात का वर्णन किया गया है कि अंग्रेजी शासन के आरम्भ काल से ही इस देश के किसानों का धन खींचने का

कार्य किस प्रकार किया गया था। सन् १८७६ ई० में बम्बई प्रान्त में अस्सी लाख रुपये लगान के वसूल होते थे। सन् १८८३ ई० में अँग्रेजों ने उसका परिमाण बढ़ाकर डेढ़ करोड़ रुपये कर दिया। इसके उपरान्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मनमाना शासन दूर करके दयामयी महारानी विक्टोरिया ने भारत का शासन भार अपने हाथ में ले लिया। उनके शासन में शासन विभाग की और अनेक बातों में तो सुधार हुआ, किन्तु खेती करके जीनेवाली प्रजा के दुर्दिन तिस पर भी दूर नहीं हुए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में बम्बई प्रान्त की प्रजा को डेढ़ करोड़ रुपये लगान में देने पड़ते थे। किन्तु इतने पर भी सरकारी कर्मचारियों का धन लोभ नहीं मिटा? अस्सी लाख के बदले दो करोड़ तीन लाख रुपये वसूल करने की व्यवस्था करके भी उन लोगों ने राज्य की आमदनी बराबर बढ़ाना जारी रखा। अतएव अधिक भार सहन न कर सकने के कारण सन् १८०० ई० में किसान लोग बागी हो गये; अनेक स्थान में लड़ाई झगड़े और शांति भंग होने के कारण अफ़सर चिन्तित हुए। तब इस विद्रोह की जाँच करने के लिये एक कमीशन बैठा। उस समय यह स्थिर हुआ कि खासकर बार बार ज़मीन का बन्दोबस्त करके बेहद लगान बढ़ाते रहने से ही (Extravagantly heavy assesment) यह विद्रोह खड़ा हुआ है।

इतनी गड़बड़ी होते हुए भी राजकर्मचारियों की खींच कम न हुई तीस साली बन्दोबस्त में जिन ज़मीनों का लगान निश्चित हो चुका था, उनमें से बहुतेरी भूमि की मियाद पूरी होने पर फिर से बन्दोबस्त करने की आज्ञा हुई थी। गत सन् १८८८ ईस्वी के ३१ मार्च तक २७७८१ ग्रामों में १३३६६ ग्रामों का नया बन्दोबस्त हो गया था। इन गावों से पहिले १४४०००००) रुपये लगान में वसूल होते थे। अब नये बन्दोबस्त में १ करोड़ ८८ लाख रुपये वसूल करने की व्यवस्था हुई। शेष गांवों का नया बन्दोबस्त अकाल पड़ने के कारण कुछ समय

के लिये रोक दिया गया था, तो भी ७८ गाँवों का नया बन्दोबस्त करके १०३५३०,) रु० लगान के बदले १३३५६०) रु० कर दिया गया। सांराश यह कि इस नये बन्दोबस्त में औसत ३० रुपये सैंकड़ा लगान बढ़ा दिया गया है। इधर डायरेक्टर ऑफ लैण्ड रेकार्डस् एण्ड अग्रिकलचर अर्थात् भूमि और कृषि–विभाग के अध्यक्ष महाशय की १८८७ साल की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसमें बम्बई प्रान्त के विषय में लिखा है:—

"Seventyfive percent of the cultivated area is under food grains. The reporting authorities agree that there is a large number of cultivators who do not get a full years supply from their land." अर्थात् खेती होने योग्य भूमि के तीन चौथाई भाग में–रुपये में–बारह आने अनाजों की खेती होती है; किन्तु सभी राजपुरुष एक मत होकर कहते हैं कि अधिकांश किसान खेती करके साल भर के खर्च के लिये भी अनाज संग्रह नहीं कर सकते।

डायरेक्टर साहब का मन्तव्य प्रकाशित होने पर भी जमीन का लगान बढ़ाया गया था। यदि अब भी अकाल के समय मृत्यु संख्या न बढ़े तो और क्या हो! इस अवसर पर इस देश की खेती के साधनों की दशा का भी वर्णन करना उचित है। सन् १८६४ ई० में सम्पूर्ण बम्बई प्रान्त में ८० लाख ८० हजार बैल भैंस आदि खेती के लिये उपयोगी पशुओं की संख्या थी, किन्तु सन् १६०१ ईस्वी में प्रकाशित हुआ कि उनकी संख्या केवल ५२ लाख ७१ हजार रह गई है; अर्थात् छः वर्ष में में कृषि के लिये उपयोगी पशुओं की एक तृतीयाँश से भी अधिक घट गयी है। खेती करने के योग्य अथवा खेती होनेवाली भूमि का विस्तार देखते हुए पशुओं की यह संख्या बहुत ही कम है। बम्बई प्रान्त में एक हल के बैलों अथवा भैंसों को प्रति वर्ष ६० बीघे भूमि कमानी पड़ती है! किसानों की इससे बढ़कर और शोचनीय दशा का प्रमाण क्या

होगा ? मद्रास के किसानों की दशा का उल्लेख करते हुए सुप्रसिद्ध 'इंगलिशमैन' पत्र के संपादक ने १७ फरवरी सन् १८८० ईस्वी के अंक में लिखा था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में मद्रास प्रांत की भूमि से लगान वसूल किया जाता था। महारानी के शासन-काल में उससे दस लाख रुपये अधिक याने एक तिहाई हिस्सा अधिक वसूल होता है। किसानों की सुख सम्पन्नता बढ़ाने के लिये कोई व्यवस्था नहीं होती है उलटे लगान की वृद्धि के साथ मद्रास प्रान्त में अकाल का प्रकोप भी बढ़ रहा है।

बंबई की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के सिवीलियन सभासद मिस्टर जी, रोजर्स ने सन् १८९३ ई० में भारतवर्ष के अण्डर सेक्रेटरी महाशय को लगान वसूल करने की कड़ाइयों और अत्याचारों का वर्णन करते हुए दिखलाया था:–"सन् १८७९–८० ईस्वी से लेकर १८८९–९० ई० तक ११ वर्ष के बीच में लगान वसूल करने के लिये मद्रास के राजकर्मचारियों ने ८४०७१३ मनुष्यों को १९६३३६४ बीघे जमीन बेदखल करा कर नीलाम करवादी है। किन्तु इतने पर भी उनका पेट नहीं भरा। किसान लोग अपनी जमीन से बेदखल हो कर छुटकारा न पा सके। सरकारी लगान अदा करने के लिये उनको अपने घर, द्वार, बिछौने कपड़े-लत्ते आदि तक बेचकर ८९३४०८१) रुपये सरकार को देने पड़े हैं !"

"ऊपर लिखी हुई प्रायः १९६२३६४ बीघे जमीन में से पौने बारह लाख बीघे जमीन खरीददारों के अभाव में सरकार को खरीदनी पड़ी है। यदि लगान का परिमाण अधिक न होता तो अवश्य ही उसके मोल लेने के लिये खरीददारों को टोटा न रहता। जमीन के लगान की अधिकता के विषय में इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है ?"

मध्यप्रदेश की स्थिति के विषय में सन् १९०४ में माननीय मिस्टर विपिन कृष्ण बसु महाशय ने बड़े लाट की लेजिस्लेटिव कौंसिल-व्यवस्थापक सभा—में कहा था:–" इस प्रदेश के किसी किसी जिले में गत दस

वर्षों के बीच में सैंकड़े पीछे १०२) तथा १०४) के हिसाब से प्रजा का लगान बढ़ गया है। इन दस वर्षों में प्रजा अकाल आदि से बहुत ही तंग रही है। तो भी अफसर लगान बढ़ाने से बाज़ नहीं आते। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि सरकार की तरफ से इस विषय का अब तक कोई ठीक प्रतिवाद नहीं किया गया है। मलाबार के भी कई परगनों में पिछले बन्दोबस्त के समय सैंकड़े पीछे ८४ से १०४ रुपये तक लगान बढ़ गया है। अकेले तंजौर जिले में ही गत दस वर्षों में सरकारी आमदनी डेढ़ करोड़ रुपये बढ़ गई है।"

कर्नाटक की प्रजा के लगान की दर के विषय में भूमि और कृषि-विभाग के डायरेक्टर महाशय ने कहा थाः—

"Despite its liability to famine it pays a higher land revenue than the Deccan or Kocan." अर्थात् इस प्रदेश में दुर्भिक्ष आदिकी अधिक संभावना रहने पर भी यहां के किसानों को दक्षिण विभाग के किसानों की अपेक्षा अधिक लगान देना पड़ता है।

केवल दक्षिण और मध्यप्रदेश में ही नहीं, एक बंगाल को छोड़कर, सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत के सारे प्रदेशों में बीस अथवा तीस वर्षों में नया बन्दोबस्त होने के समय किसानों का लगान बढ़ा दिया जाता है और इस प्रकार सरकारी आमदनी बढ़ाई जाती है।

१९ वीं सदी के आरम्भ में अनेक बुद्धिमान शासनकर्ताओं ने बंगाल के समान सम्पूर्ण भारतवर्ष में दवामी बन्दोबस्त करा देने का प्रयत्न किया था। सन् १८७८ ई० में मद्रास में सर टामस मनरो ने प्रजा के साथ जो रैयतवारी बंदोबस्त किया वह बंगाल के दवामी बन्दोबस्त के समान ही था। विलायत में जांच करने के लिये जो कमेटी बैठी थी उसमें गवाही देते समय आपने साफ़ साफ़ यह स्वीकार किया था कि बंबई प्रदेश में भी पहिले चिरस्थायी बन्दोबस्त प्रचलित था।

सन् १८०३ ईस्वी में जब अङ्गरेजों ने प्रयाग और अवध का सूबा अपने अधिकार में लिया तब वहां लगान के विषय में चिरस्थायी बन्दोबस्त करने की करार की बात सुनी थी, किन्तु पीछे के राज कर्मचारियों ने --विशेष कर रेवेन्यू विभाग के कर्मचारियों ने—धन के लालच में अन्धे होकर पिछले करार का उल्लंघन कर डाला और सभी विभागों में बीस अथवा तीस वर्ष के अंतर से बन्दोबस्त करके लगान बढ़ाने की व्यवस्था प्रचलित करदी। नहीं जानते, सरकार किस अवस्था में प्रजा पर लगान का कितना बोझ बढ़ायगी। सरकार से इस विषय में नियम स्थिर कर लेने के लिये कई बार प्रार्थनाएँ भी की गईं थीं। इसके अनुसार प्रजाप्रिय लार्डरिपन महोदय ने कुछ नियम बनाये भी थे; किन्तु उनके भारतवर्ष से विदा होते ही राज कर्मचारियों ने पहले के समान यथेच्छाचार और धींगाधींगी का रास्ता खुला रखा। इस विषय के नियम बनाने में राज कर्मचारियों ने अब तक भी देखने में उदासीनता प्रकट नहीं की है कि जमींनदार लोग प्रजा से अधिक से अधिक कितना लगान ले सकेंगे और कैसी दशामें कितना लगान बढ़ा सकेंगे आदि जो हों परन्तु अब भी सरकार अपना लगान बढ़ाने के विषय में स्वयं किसी प्रकार के नियमों में बंधकर रहना नहीं चाहती। यही नहीं किन्तु यदि रेविन्यू विभाग के कर्मचारी अन्याय पूर्वक लगान बढ़ादें तो उनके विरुद्ध अपील करने पर कुछ सुनाई ही नहीं होती। यदि प्रजा अधिक गड़बड़ मचाती है तो उन्हीं कर्मचारियों को फिर से विचार करने के लिये कहा जाता है जिन्होंने लगान बढ़ाया है। तब उस जांच का ध्यान रखकर किसी किसी का लगान नाम मात्र को कम कर दिया जाता है। कहना नहीं होगा कि ऐसे प्रसंगों में प्रजा के साथ प्रायः न्याय नहीं किया जाता। प्रजा की इस कठिनाई को दूर करने के लिये श्रीमान् बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने अपने राज्य में नियम किया है कि बन्दोबस्त विभाग के कर्मचारी यदि किसी पर अनुचित रूप से लगान

बढ़ादें तो खुल्लमखुल्ला अदालत में स्वतंत्र प्रकृति के विचारकों के पास उनके विरुद्ध अपील हो सकेगी। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान गवर्नमेन्ट भी ऐसा नियम करदे तो गरीब किसानों के अनेक कष्ट दूर हो जावें, परन्तु न जाने क्यों ब्रिटिश गवर्नमेन्ट प्रजा की इस सुविधा की ओर ध्यान नहीं देती। इसीलिये जो कर्मचारी अन्याय करके लगान बढ़ाते हैं उन्हीं से अभागी प्रजा को सुविचार की प्रार्थना करनी पड़ती है।

सन् १६०२ के भारतीय बजट पर बहस करते हुए बड़े लाट महोदय की व्यवस्थापक सभा के सभासद् माननीय मिस्टर गोपाल कृष्ण गोखले महोदय ने किसानों की दुर्दशा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया था। उन्होंने कहा था कि यूरोप की अपेक्षा भारतवर्ष के किसानों से ज़मीन का लगान अधिक परिमाण में लिया जाता है। यूरोप के देशों के किसान जिस खेत में १००) की फ़सल उत्पन्न करते हैं उसके लिये कितना कर देते हैं, यह बात नीचे के हिसाब से मालूम पड़ेगी:—

देश का नाम	लगान फ़ी सैंकड़ा	दर
इङ्गलैंण्ड	”	८।)
फ्रान्स	”	४॥)
जर्मनी	”	३)
ऑस्ट्रिया	”	४॥=)
इटाली	”	७)
बेलजियम	”	२॥)
हॉलैंड	”	२॥)

यहां यह भी कह देना चाहिये कि जल-कर, पूर्ति-कर, चौकिदारी-टैक्स और स्टांप-कर आदि भी इसीमें सम्मिलित हैं। फ्रान्स में सड़क आदि सम्बन्धी टैक्स भी इसी में शामिल हैं। भारतवर्ष में ये सम्पूर्ण स्थानिक कर ज़मीन के लगान में शामिल नहीं किये जाते। ये सम्पूर्ण

कर स्वतंत्र रीति से देते रहने पर भी इस देश के किसानों को बहुत अधिक लगान देना पड़ता है। यदि सर रमेशचन्द्रदत्त महोदय के हिसाब की बात छोड़कर सरकारी हिसाब पर ही विश्वास करें तो भी मालूम होगा कि यूरोप के देशों के किसानों को सब तरह के टैक्स मिलाकर सैंकड़ा पीछे ६) रुपये से अधिक सरकार को नहीं देना पड़ता, परन्तु भारत के किसानों को दरिद्रता के कीचड़ में फँसे रहने पर भी केवल ज़मीन का लगान ही सैंकड़ा पीछे १५) रुपये और कहीं कहीं २०) रुपये तक देना पड़ता है। इस देश की ज़मीन की उपजाऊ शक्ति दिनोंदिन घटती जा रही है। किसानों के पशु आदि खेती के साधन क्रमशः शोचनीय दशा को प्राप्त हो रहे हैं। अति वृष्टि, अनावृष्टि तथा पत्थर–पाले आदि के उपद्रवों से भी उनके नाकों दम आ गया है। उनकी दुर्दशा का ठिकाना नहीं है। तिस पर ऋण की बात का तो पूछना ही क्या है ? भारत के किसानों का प्रायः दो तिहाई भाग कर्ज के भयानक दलदल में फँसा हुआ है। इनके आधे भाग के किसानों के ऋणमुक्त होने की कुछ भी आशा नहीं है तो भी सरकार उनसे लगान की बहुत बड़ी रकम और अन्य कर लेने में संकोच नहीं करती। यही नहीं किन्तु मुद्रा शासन प्रणाली के कारण चाँदी का भाव घट गया है जिससे उनके संचित चाँदी के गहने आदि की कीमत भी घट गई है। इस प्रकार सब ओर से कर्मचारियों ने उन्हें टोटे में डाल कर बिना पंख का पखेरू बना रखा है; और उन्हें कभी और भी निर्बल करते ही जाते हैं।

इसके बाद सेटलमेण्ट विभाग का जुल्म है। बारबार ज़मीन की पैमाइश करके इस विभाग के कर्मचारी क्रमशः ज़मीन का लगान बढ़ाते जाते हैं। गत दस वर्षों में इन लोगों के प्रयत्न से बंबई, युक्तप्रान्त, मद्रास, अवध और मध्यप्रदेश में सरकारी लगान की संख्या १ करोड़ ४ लाख रुपये बढ़ गई है। इन सभी प्रदेशों में इन पिछले दस वर्षों में बारम्बार अकाल, अनावृष्टि आदि बाधाएँ होने के कारण खेती के कामों

में अनेक विघ्न उपस्थित होते रहे हैं। ऐसी विपत्ति और दुःख के समय सरकार को उचित था कि उनका कर—भार कम करती। परन्तु ऐसे कुसमय में भी उसने प्रजा से १ करोड़ ४ लाख रुपये अधिक लेने की व्यवस्था की! इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या होगी?" इन सब बातों को कहकर गोखले महोदय ने आगे कहा था "जब बजट में दिखलाया गया है कि अब से प्रति वर्ष खज़ाने में साढ़े सात करोड़ रुपयों की बचत हुआ करेगी तब ऊपर कहे हुए प्रदेशों के गरीब किसानों का लगान सैंकड़ा २०) रुपये के हिसाब से कम कर देने पर सरकारी लगान में वार्षिक तीन करोड़ रुपयों की ही कमी होगी। जब इस प्रकार खज़ाना भरा पूरा है तब भी यदि सरकार वार्षिक तीन करोड़ रुपये का बोझा गरीब किसानों का कम न करे तो फिर कब करेगी? सरकार के इस थोड़े से ही स्वार्थ-त्याग से किसानों की स्थिति बहुत अधिक अच्छी हो जायगी।" कहना नहीं होगा कि सरकार ने गोखले महोदय के इस उचित अनुरोध को मानना ठीक नहीं समझा।

सन् १६०५ तक भारत सरकार कृषकों के लिये १० लाख रु० वार्षिक खर्च किया करती थी परन्तु अब २० लाख प्रति वर्ष खर्च करती है जो कि किसानों की दरिद्र अवस्था और संख्या देखते हुए कुछ भी नहीं है। अन्य देश वाले किस प्रकार किसानों के लिये खर्च करते हैं सो देखियेः—

नामदेश	वार्षिक खर्च
रूस	६ करोड़ रुपया वार्षिक
अमेरिका	३ करोड़ बीस लाख
इटली	४० लाख
स्वीडन	४॥ लाख
डेनमार्क	३० लाख
भारत	२० लाख

भारतवर्ष की साम्पत्तिक अवस्था।

हमने इस ग्रन्थ के आरम्भ में प्राचीन भारत की साम्पत्तिक अवस्था का थोड़ासा दिग्दर्शन कराया है। उससे पाठकों को मालूम हुआ होगा कि प्राचीन काल में भारतवर्ष कितनी उच्च कोटि की समृद्ध अवस्था पर पहुँचा हुआ था। इसके बाद ही हमने उन कारणों को भी प्रकट करने की चेष्टा की है जिनसे भारतवर्ष आज दीन हीन दशा पर पहुँचा है।

सर विलियम हंटर महोदय, जो भारतीय इतिहास के अत्यन्त नामांकित ज्ञाता समझे जाते हैं, लिखते हैं:—

"Forty millions of the people of India were seldom or never able to satisfy their hunger." अर्थात् भारतवर्ष के चार करोड़ मनुष्य कभी अपनी भूख बुझाने में समर्थ नहीं होंगे। "Prosperous British India" नामक सुप्रख्यात् ग्रन्थ के लेखक मि० विलियम डिगबी लिखते हैं:—

"40 Millions of people are in a state of chronic starvation, not knowing from January to December, what it is to eat and be satisfied; their worm of hunger dieth out." अर्थात् चार करोड़ भारतवासियों को मुद्दतों से भूखों मरना पड़ता है। वे जनवरी से दिसम्बर तक यह नहीं जानते कि पेट भर भोजन किस चिड़िया का नाम है। उनकी क्षुधा की दाह नहीं बुझती। उनकी भूख का कीड़ा नहीं मरता। मि० ए० ओ० ह्यूम, जो सन् १८६० में कृषि विभाग के सेक्रेटरी थे, लिखते हैं:—

"Except in very good seasons, multitudes, for months every year, can not get sufficient food for themselves and family." अर्थात् बहुत अच्छी फ़सल के दिनों के सिवा लाखों मनुष्य महिनों तक अपने लिये या अपने कुटुम्ब के लिये पूरा भोजन नहीं पाते।" सर चार्ल्स ईलियट, जो कि आसाम के चीफ़ कमिशनर थे, लिखते हैं:—

"I do not hesitate to say that half the agricultural population do not know from one year end to another, what it is to have a full meal." अर्थात् मैं यह कहने में न हिचकूँगा कि आधे किसान साल भर में कभी यह नहीं जानते कि पूरा भोजन किस चिड़िया का नाम है? एक क्रिश्चियन समाचार पत्र ने लिखा था:—

"It is safe to assume that 100,000,000,of the population of India have an annual income of not more than 5 Dollar a head." अर्थात् यह मान लेने में कोई हानि नहीं कि हिन्दुस्थान के दस करोड़ मनुष्यों की आमदनी प्रति साल प्रति मनुष्य ५ डॉलर से ज्यादा नहीं है।" मि० मैकडॉनल्ड ने कहा था:—

"From thirty to fifty million families live in India on an income, which does not exceed 3½d per day. In July 1600 according to the Imperial gazzetier, famine relief was administered daily to 6,500,000 persons. The poverty of India is not an opinion, it is a fact. At the best of times the cultivator has a mill stone of debt around his

neck." अर्थात् भारत में तीन करोड़ से लेकर पांच करोड़ तक ऐसे कुटुम्ब हैं, जिनकी आमदनी ३॥ पेन्स प्रति दिन से ज्यादा नहीं है! सन् १६०० के जुलाई मास में इम्पीरियल गैज़ेटियर के अनुसार, कोई ६२०००७० मनुष्यों को फेमीन रिलीफ़ से सहायता दी गई! भारत केवल कहने के लिए ही नहीं बल्कि सचमुच बहुत दरिद्र है। इन्हीं महाशय ने अपने "The Awakening of India" नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

"India is the home of poverty stricken." अर्थात् भारतवर्ष भूखों मरते हुए मनुष्यों का घर है।" सर विलियम हंटर ने सन् १८८३ में श्रीमान् वाईसराय की कौंसिल में कहा था

"The Government assessment does not leave enough food to the cultivator to support himself and his family throughout the year" अर्थात् सरकार का लगान किसानों और उनके कुटुम्बों के लिये साल भर खाने के लिये पूरा अन्न भी नहीं छोड़ता। मि० हरबर्ट कॉम्पटन अपनी "Indian life" में कहते हैं:—

"There is no more pathetic figure in the British Empire than Indian peasant." अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य में हिन्दुस्थानी किसान के समान हृदय को द्रवित करने वाला और कोई मनुष्य नहीं है।

मि० विलियम डिग्बी महाशय ने अपने "Condition of India" नामक ग्रन्थ में एक अमेरिकन मिशनरी का मत उद्धृत किया है। उसका आशय यह है:—

"गत वर्ष (सन् १६०१) सितम्बर मास में दौरा करते हुए मुझे बड़ा ही दुःखपूर्ण अनुभव हुआ। मेरे डेरे के आस पास दिन रात

हज़ारों भूखों मरते हुए मनुष्यों का झुंड लगा रहता था। मेरे मकानों में सिवा इसके और कोई शब्द ही नहीं आता था "हाय! हम अन्न के बिना मर रहे हैं"! सचमुच लोगों को दो दो तीन तीन दिन में एक वक्त भी मुश्किल से भोजन मिलता था। मैंने तीन सौ आदमियों की आमदनी की जाँच की, जिससे मुझे मालूम हुआ कि प्रति मनुष्य की आमदनी औसतन तौर से प्रति दिन एक फार्दिंग (आना) से भी कम है। मैंने झोंपड़ियों में जाकर इन्हें देखा तो मुझे मालूम हुआ कि बहुत से लोग बिलकुल सड़े हुए अनाज से अपना निर्वाह करते हैं। यह भी उन्हें दो तीन दिन में कभी एकाध बार नसीब होता है! इस पर भी तारीफ़ यह कि यह साल (सरकार द्वारा) अकाल नहीं माना गया। अरे भाई! ईश्वर के नाम पर यह तो कहो कि यह अकाल नहीं तो और क्या है? हिन्दुस्थान के ग़रीब लोगों की अत्यन्त दरिद्रता असाधारण स्थिति उपस्थित करती है। इसमें जीवन जीतना दुःखी और संकीर्ण रहता है, वह अकल्पित है। कई कुटुम्बों के घर, सामान; बर्तन, बासन आदि सब मिला कर तीस रुपये मूल्य के भी नहीं होते। इनमें से बहुत से कुटुम्बों में प्रति मनुष्य पीछे औसत १॥) रुपये से ज्यादा आमदनी नहीं होती। किसी की तो औसत आमदनी इससे आधी होती है।"

उक्त पादरी साहब की बातें रत्ती रत्ती सच्च थीं। ऊपर हमारे बंधुओं की भीषण और परम करुणाजनक स्थिति का जो चित्र खींचा गया है, वह हमारी राय में फिर भी अपूर्ण है। जिन लोगों ने सम्वत् १९५६ का अकाल देखा है, वे जानते हैं कि उस समय जिधर देखिये उधर ही हज़ारों मनुष्य ऐसे दिखलाई पड़ते थे, जिनका पेट भूख के मारे बैठा जाता था, जिनकी आँखें बाहर निकल रहीं थीं, जो चलने में गिर पड़ते थे, जो अन्न के एक एक दाने के लिये कुत्तों की तरह लड़ते थे, जिनके बदन पर सिवा एक लंगोटी के और कुछ नज़र ही नहीं आता था, जिन्हें खाने को गेहूँ की रोटी तो दूर रही, ज्वार मक्का की रोटी तक नहीं मिलती थी। हाय!

यहाँ तक देखा है कि सड़ी हुई ज्वार से खपरिया नामक जो सफेद धूल निकलती है, उसके लिये भी लोग तरसते थे ! कई अभागे वृक्षों की छालें पका पका कर खाते थे, और कुछ दिन तक उनसे अपना जीवन निर्वाह करते थे। यहाँ तक देखा गया है कि भूखी माँ दो वर्ष के बच्चे के हाथ से रोटी छीन कर खा रही है !! देहातों और कस्बों में मुर्दों के ढेर के ढेर लगे हुए हैं, जिन्हें सरकार उठवा कर फिकवा रही है !! दो दो रुपयों में लोग अपने बच्चों को बेचते थे !! कहां तक कहें हमारी तो लेखनी काम नहीं करती ! इस प्रकार का करुणाजनक दृश्य शायद ही कभी सभ्य संसार के इतिहास में उपस्थित हुआ होगा । सम्वत् १९५६ (सन् १९००) के अकाल का नाम सुनकर आज भी बहुत से लोगों के कलेजे थर्राते हैं। इस प्रकार कई भीषण अकाल पड़े, जिनमें लाखों मनुष्यों की जानें गईं !

कुछ वर्ष पहले मैं अपने एक बन्धु के विवाह में बुँदेलखण्ड गया था । वहां मैंने ग़रीबी का जो हृदय—द्रावक दृश्य देखा, वह मैं कभी नहीं भूल सकता। मैंने प्रत्येक नगर में हज़ारों भूखों मरते हुए तिनके जैसे दुबले पतले तथा कृश मनुष्य देखे। अन्न के कणों के लिये या रोटी के टुकड़ों के लिये सैकड़ों भिखमंगे हमेशा द्वार पर आते थे। उनको देखने से मालूम होता था कि दो दो तीन तीन दिनों में भी इन्हें पूरा भोजन नहीं मिलता । मैंने एक बार एक दृश्य देखा, जो अबतक मेरे हृदय में अङ्कित है। मैंने देखा कि मेरे एक साथी ने ककड़ी के कुछ छिलके नाली में फेंके । उन्हें लेने को लोगों के झुँड के झुँड उमड़ पड़े और पेशाब तथा गंदी चीज़ों से भरी हुई नाली से उन छिलकों को उठाकर खा गये ! हाय कितना हृदय-द्रावक चित्र है ! ग़रीबी और भूखका इतना भयानक दृश्य शायद ही किसी सभ्य देश में उपस्थित होगा ।

इस प्रकार दरिद्रता के अनेक हृदय-द्रावक चित्र इस हतभाग्य देश में नित्य प्रति देखे जाते हैं। इस अभागे देश के करोड़ों मनुष्य किस प्रकार अपना गुज़र करते हैं; किस प्रकार वे अपनी स्त्री पुत्रों और कुटुम्बियों का पालन करते हैं; वे क्या पहनते और ओढ़ते हैं; बीमारी के समय खाने पीने की तथा वैद्यकीय सहायता की उनके लिये कैसी व्यवस्था रहती है, इन बातों की सूक्ष्म जाँच करोड़ों किसानों और मज़दूरों की झोंपड़ियों में जाकर की जावे और उसका फल प्रकट किया जावे तो हम समझते हैं एक ऐसा हृदय द्रावक और करुणाजनक चित्र सामने आवेगा जो इस युग की दरिद्रता के इतिहास में बेजोड़ होगा।

यह तो हुई निम्न श्रेणी के लोगों की बात। अब मध्यम श्रेणी के लोगों को लीजिये। इनकी भी स्थिति बुरी है। मैंने देखा है कि यद्यपि इस श्रेणी के कई लोग ऊपर से बने ठने हुए दीखते हैं पर इनके घरों की स्थिति का आप दिग्दर्शन करेंगे तो वहां भी आपको चूहे तक एकादशी करते हुए मिलेंगे। इस श्रेणी के बहुत से घरों में देखा गया है कि एक कमाता है और सारा घर खाता है। क्योंकि इस श्रेणी के लोगों की औरतें अपनी शान के लिहाज़ से कोई उत्पादक काम नहीं करतीं। शिक्षा के अभाव कारण उनका सारा जीवन चूल्हे चक्की ही की फ़िक्र में जाता है। यह बात इस श्रेणी के लोगों के लिये आर्थिक दृष्टि से हानिकर है। इसके सिवा इन लोगों में नौकरी पेशा लोग अधिक होते हैं जिन्हें शान से रहना पड़ता है और इस वक्त चीज़ों की दर बहुत ज्यादा बढ़ जाने से इसमें तिगुना या चौगुना खर्च पड़ता है और आमदनी में दूनी तरक्की भी नहीं हुई है। इससे इनकी स्थिति भी बिल्कुल अच्छी नहीं है। कई दृष्टियों से विचार करने पर इनकी स्थिति को भी अगर निम्न श्रेणी के लोगों की स्थिति के समान दरिद्रतायुक्त कहें तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी।

इन सब बातों से भारत की दरिद्रता का पता लगता है। इसके सिवा जब हम उसकी आमदनी के औसत पर विचार करते हैं तो इस

अभागे और कम नसीब देश की भीषण स्थिति का डरावना चित्र आँखों के सामने आ जाता है। सरकारी गणना के अनुसार प्रत्येक हिन्दुस्थानी की औसत आमदनी उस समय अधिक से अधिक प्रतिसाल ३०) थी। लॉर्ड क्रोमर ने जो कि भारत के अर्थ सचिव थे, सन् १८८२ में हर एक आदमी की औसत आमदनी २०) प्रति साल अंदाज़ की थी। भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड कर्ज़न ने इसे ३०) प्रति वर्ष माना है। लॉर्ड जार्ज मिल्टन ने जो कि भारत के स्टेट सेक्रेटरी थे, सन् १६०१ के अपने बजट सम्बन्धी व्याख्यान में हर एक हिन्दुस्थानी की आमदनी की औसत दो पाउन्ड अर्थात् लगभग ३०) कहा है। मि० विलियम डिग्बी ने अपनी गहरी जाँच के बाद इसका परिमाण केवल २७) ही स्वीकार किया है। कहने का मतलब यह कि हिन्दुस्थानियों की आर्थिक दशा कितनी हीन थी यह बात उपर्युक्त पाश्चात्य अर्थशास्त्र वेत्ताओं के मतों से स्पष्ट होती है। उस पर भी यहाँ एक बात ध्यान में रखना आवश्यक है। वह यह कि यह औसत निकालने में करोड़पतियों और लखपतियों की आमदनी को भी हिसाब में लिया गया है। अगर इनकी आमदनी को एक तरफ़ रख कर केवल ग़रीब लोगों की आमदनी की औसत देखी जावे तो यह औसत बहुत ही कम निकलेगी।

हिन्दुस्थान की आर्थिक स्थिति कितनी शोचनीय है। गरीबी के कारण उसपर प्लेग आदि कैसी आफ़तें पड़ रही हैं। इसका चित्र खींचते हुए अमेरिका के सुप्रसिद्ध डॉक्टर सन्डरलैण्ड लिखते हैं—

"The truth is, the poverty of India is something we can have little conception of, unless we have actually seen it, as alas, I have........ Is it any wonder that the Indian peasant can lay up nothing for time of need. The extreme destitution of the people is principally responsible for

the devastations of plague. The loss of life from this terrible scourge is startling. It reached 272,000 in 1901; 500,000 in 1902, 8,000,000 in 1903; and over 1,000,000 in 1904. It still continues unchecked. The vitality of the people has been reduced by long semi-starvation. So long as the present destitution of India continues there is small ground for hope that the Plague can be over come...... The real cause of famines in India is not lack of rain; it is not over-population, it is the extreme, the abject, the aweful poverty of the people."

अर्थात् सच बात तो यह है कि हिन्दुस्थान की दरिद्रता की हमें बहुत थोड़ी कल्पना है। इसकी कल्पना हमें तब ही हो सकती है, जब हम इसे अपनी आँखों से देखें। हाय! मैंने इस दरिद्रता के चित्र को अपनी आँखों से देखा है......क्या यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि हिन्दुस्थानी किसान ज़रूरत के समय के लिये कुछ भी नहीं बचा सकता? प्लेग से जो सर्वनाश होता है, इसके लिये ख़ास तौर से जिम्मेदार लोगों की दरिद्रता है। प्लेग से जो जीव हानि होती है, वह भयानक है। सन् १९०१ में २७२,०००, सन् १९०२ में ५००,०००., सन् १९०३ में ८००,०००, और सन् १९०४ में १,०००,००० मनुष्य इस रोग से मरे। बहुत दिनों तक भूखे रहने की वजह से हिन्दुस्थानी लोगों की जीवनशक्ति (vitality) बहुत ही कम हो गई है, और जबतक यह दरिद्रता बनी रहेगी, तब तक यह आशा करने का बहुत कम अवसर है कि प्लेग का नाश हो सकेगा। हिन्दुस्थान में अकाल पड़ने का कारण वर्षा की कमी नहीं, बढ़ी हुई जनसंख्या नहीं, पर वह लोगों की घोर (abject)

और भयानक दरिद्रता है।" इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध साम्यवादी मि० हिण्डमैन लिखते हैं—

"The agricultural population of India is the most poverty-stricken mass of human beings in the whole world. It constitutes four-fifths of the whole of the inhabitants of Hindustan." अर्थात् हिन्दुस्थान के किसान सारी दुनियाँ के मानव प्राणियों में सबसे अधिक दरिद्रता-ग्रस्त हैं।" इन्हीं हिण्डमैन महोदय ने अपनी "Bankruptcy of India" नामक ग्रन्थ में इस आशय के वचन लिखे हैं:—

"हिन्दुस्थान के लोग दिन प्रति दिन ज्यादा ग़रीब होते जा रहे हैं। उनके ऊपर कर का जो बोझा है वह केवल भारी ही नहीं पर दुःसह भी है। वहाँ अकाल बहुत पड़ते हैं। यहाँ का सुसङ्गठित विदेशी शासन इस ग़रीब देश से सम्पत्ति का विशाल प्रवाह खींच ले जाता है।"

सन् १८८८ में लार्ड डफ़रिन ने हिन्दुस्थानियों की सम्पत्ति की जाँच (Confidentional enquiry) की थी। इस जाँच के परिणाम कभी प्रकाशित नहीं किये गये, पर डिग्बी महोदय ने अपने सुप्रख्यात् ग्रन्थ "Prosperous British India" में इसकी गुप्त रिपोर्ट के कुछ अंश प्रकाशित किये हैं। उसमें कमिश्नर मि० हैरिंगटन ने अपनी रिपोर्ट में अवध गेज़ेटियर के कर्ता मि० बेनेट का हवाला देते हुए लिखा है:—

The lowest depths of misery and degradation are reached by the koris and Chamars whom he describes always on the verge of starvation." अर्थात् कोरी और चमार लोगों की ग़रीबी और अधोगति सबसे अधिक गहरी है। मि० बेनेट कहते हैं कि ये बेचारे हमेशा भूखों मरते हैं। मि० हैरिंगटन ने सन् १८७६ में "पायोनियर" में लिखा था:—

"It has been calculated that about 60 percent of the entire native population......are sunk in such abject poverty that unless the small earnings of child labor are added to the scanty stock by which the family kept alive, some members would starve." अर्थात् इस बात का अंदाज़ किया गया है कि लगभग ६० प्रतिसैकड़ा हिन्दुस्थानी इतनी घोर दरिद्रता में फंसे हुए हैं कि अगर उनकी छोटी आमदनी में बच्चों की मज़दूरी के पैसे न मिलाये जाएँ, तो उनके कुटुम्ब के कई लोग भूखों मर जायँ। मि० ए० जे० लॉरेन्स जो कि प्रयाग के कमिश्नर थे, लिखते हैं कि हिन्दुस्थान के ग़रीब लोग हमेशा आधे पेट रहते हैं।

भारतीय जागृति की प्रथम ज्योति

गत अध्यायों में हमने भारत की पराधीनता के कारणों पर और और उसके कारण होने वाले विनाश पर कुछ प्रकाश डाला है। संसार परिवर्तनशील है और अन्धकार के बाद प्रकाश और प्रकाश के बाद अन्धकार, यह विश्व का अटल नियम है। इसी नियमानुसार घोर अन्धकार में गुज़रते हुए भारतवर्ष में कुछ प्रकाश-मय ज्योतियां प्रकट हुईं, जिन्होंने भारतवर्ष में नवीन जीवन के स्फुलिंग उत्पन्न किये। इन ज्योतियों में सर्व प्रथम राजा राममोहनराय थे, जिन्होंने उस अन्धकार-मय युग में अलौकिक प्रकाश फैलाया था। उन्होंने विश्वप्रेम और सकल मानवजाति की एकता का संदेश दिया था। भारतीय संस्कृति और भारतीय धर्म की आत्मा को उन्होंने पहचाना था। पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का समन्वय कर एक नवीन संस्कृति को जन्म देना उनके जीवन का प्रधान ध्येय था। वे भारतीय समाज में एक सर्वाङ्गीण क्रान्ति करना चाहते थे और इस महान् उद्देश की सिद्धि के लिये भारतवासियों के धार्मिक आचार विचार में क्रान्ति करना वे आवश्यक समझते थे। धर्म समाज का हृदय है और यदि समाज के सब व्यवहारों में सुधार, परिवर्तन अथवा क्रान्ति करना है तो पहले उसके हृदय में परिवर्तन होना चाहिये–अथवा डॉक्टर भाण्डारकर के शब्दों में "पहले आत्मा की उन्नति होना चाहिये। विशेष कर उस समाज के सर्वाङ्गीण सुधार पर तो यह न्याय और भी अधिक लागू पड़ता है जिसके सब व्यवहारों पर धर्म का नियन्त्रण रहता है।" यह विचारधारा राममोहनराय की प्रवृत्तियों के अन्तर्गत काम करती थी।

इसी विचार धारा से प्रभावित होकर उन्होंने ब्रह्म-समाज नामक एक नये समाज को जन्म दिया। ब्रह्म-समाज के सिद्धान्त उपनिषदों पर निर्भर थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपनिषद् ग्रन्थ भारतीय संस्कृति और सभ्यता के समुज्ज्वल रत्न हैं और उन्होंने अपने अध्यात्म-दर्शन के अलौकिक प्रकाश से मनावजाति के ज्ञान पथ को आलोकित किया था। इतना ही नहीं, उन्होंने अन्य धर्मों से भी प्रकाश ग्रहण कर अपने सिद्धान्तों की दिव्यता को और भी अधिक समुज्ज्वल किया था। राजा राममोहनराय ने, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, उपनिषदों को ही अपना पथ प्रदर्शक बनाया था। उन्होंने मानवीय समानता के लिये जोरदार आवाज उठा कर भारतवर्ष में प्रचलित अछूत, अस्पर्श्यता का प्रबल विरोध किया था। आपका कथन था कि अस्पर्श्यता भारतीय समाज का एक ऐसा रोग है जो उसे रात दिन खाये जा रहा है और उसे क्षय ग्रस्त कर रहा है। इसके अतिरिक्त भारत के महान् आदर्श विश्व-बन्धुत्व के रास्ते में भी यह एक बड़ा कण्टक है। उन्होंने भारतीय समाज को छिन्नभिन्न और खोखला करने वाले जाति भेद पर भी कठोर कुठारा-घात करने का प्रयत्न किया। उन्होंने स्त्री जति के उत्थान के लिये भी आवाज़ उठाई और विधवा विवाह, नारी समानता के आन्दोलनों का समर्थन किया।

कहने का सरांश यह है कि उन्नीसवीं सदी में उन्होंने एक ऐसे आन्दोलन को जन्म दिया, जिसके पीछे महान् नैतिक और आध्यात्मिक बल था। जिन कारणों से भारतीय समाज अधोगति को पहुँचा था उन कारणों पर, राजा राममोहनराय ने ज़ोर का आघात किया और उसके सामने एक नया आदर्श रखा।

राजा राममोहनराय और उनके राजनीतिक विचार

जिस युग में राजा राममोहनराय ने जन्म लिया था, वह युग भारतवर्ष के लिये बड़ा अन्धकारमय था। मुगल साम्राज्य के अन्तिम

समय में देश में जो अराजकता फैल गई थी उससे देश जर्जरित हो गया था। घरेलू लड़ाइयां और पारस्परिक राग द्वेष की भावना ने भारतीय-समाज-शरीर को अधिक रोगग्रस्त कर दिया था।

इस कारण लोगों की राजनैतिक भावनायें नष्ट प्रायः हो गईं थीं। पर ऐसे समय में भी राजा राममोहनराय ने जनताके अधिकारों के लिये आवाज़ उठाई। राजा राममोहनराय पर ब्रिटिश विधान और उसके अन्तर्गत रही हुई नागरिक स्वाधीनता का बड़ा प्रबल प्रभाव पड़ा। उन्होंने वैयेक्तिक नागरिक स्वाधीनता के लिये आवाज बुलन्द की।

राजा राममोहनराय और स्वतंत्रता प्रेम

राजा राममोहनराय मानवीय स्वाधीनता के कट्टर पक्षपाती थे। विचार-स्वातन्त्र्य, मुद्रण-स्वातन्त्र्य और धर्म स्वातन्त्र्य के वे कट्टर पक्षपाती थे। उनकी राजनीति बड़ी विशाल थी। जिस प्रकार उनके धर्म में विश्व-कल्याण की भावनायें थीं वैसी ही उनके राजनीति में भी विश्व-कल्याण की भावनाएं थीं। वे भारत का कल्याण चाहते थे पर इसके साथ ही साथ सकल मानव जाति के कल्याण की भावना भी उनके हृदय को ओतप्रोत किए हुए थीं। वे संसार में सच्ची स्वाधीनता को प्रस्थापित करना चाहते थे और एक ऐसे समाज को जन्म देना चाहते थे जिससे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को शोषण करने के बजाय एक दूसरे के साथ प्रेम पूर्वक सहयोग रखे और अखिल मानवजाति का कल्याण साधन करे। महात्मा गांधी, श्री अरविन्द घोष, कविवर रवीन्द्रनाथ टैगौर आदि के विचार और राजा राममोहनराय के विचारों में इस सिद्धान्त में समानता थी कि राजनीति का सिद्धान्त सकल मानव जाति की कल्याण कामना को ध्यान में रखते हुए प्रस्थापित होना चाहिये।

राजा राममोहनराय और मुद्रण स्वातंत्र्य

राजा राममोहनराम ने माननीय भावों के स्वतंत्र प्रकाशन पर बड़ा जोर दिया था। इसके लिये उन्होंने मुद्रण स्वातन्त्र्य का होना आवश्यक

समझा था। उन्होंने सुप्रीम कोर्ट और तत्कालीन सम्राट् को इस सम्बन्ध में जो मेमोरियल भेजा था, उससे उनकी मुद्रण-स्वातन्त्र्य सम्बन्धी गहरी लगन का पता लगता है। इस Memorial में उन्होंने दिखलाया था कि राजनीति के उदार सिद्धान्त मुद्रण स्वातन्त्र्य का जोर से समर्थन करते हैं और यह तत्त्व शासक और शासितों दोनों के लिये महान् हित-कर है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज कवि मिल्टन (Milton) की तरह उन्होंने यह प्रकट किया था कि किसी भी सभ्य शासन के लिये जो सर्वोत्कृष्ट श्रेष्ठता हो सकती है, या समाज की जो सर्वोत्कृष्ट प्रकाश और गुण प्राप्त हो सकता है उसका सबसे प्रबल साधन मुद्रण-स्वातंत्र्य है। पर इस मुद्रण स्वातंत्र्य में कुछ मर्यादाएं होनी चाहिये। इसका पाया शुद्ध जन प्रेम और लोक कल्याण की भावना पर स्थिर होना चाहिये। पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि राजा राममोहनराय को इसमें सफलता न मिली। बल्कि इसके बाद सन् १८२३ ई० ईस्ट इन्डिया कम्पनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स (Court of Directors) ने मुद्रण-स्वातन्त्र्य पर और भी अधिक बन्धन लगाने का विचार किया और भारत के तत्का-लीन शासन को यह अधिकार दिया कि वह उचित समझने पर किसी भी छापेखाने का लायसेन्स वापस ले सकती है।

राजा राममोहनराय और कृषक

राजा राममोहनराय कृषकों के भी बड़े हितैषी थे। उन्होंने किसानों पर जमींदारों द्वारा होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध जोर की आवाज बुलन्द की। उन्होंने तत्कालीन सरकार को लिखा कि "यह सरकार का अधिकार और कर्तव्य है कि वह निस्सहाय किसानों की रक्षा करे। उनकी दशा अत्यन्त दयनीय है। सरकार किसानों को बहुत ही कम कानूनी संरक्षण देती है।" (Ram mohan Rai's works)

राजा राममोहनराय का हृदय किसानों की अत्यन्त दरिद्र, दयनीय दशा देख कर द्रवीभूत हो जाता था। वे लिखते हैं कि:-"किसानों की

दशा इतनी दुःखपूर्ण है कि उसे देखकर मेरे हृदय को सबसे अधिक दुःख होता है। इस स्थिति को सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि जमींदारों से यह अधिकार कतई छीन लिया जाय कि वे माल गुजारी में किसी भी प्रकार की वृद्धि कर सकें। इस सम्बन्ध में अगर परम्परा गत प्रथा को तोड़ना पड़े तो उसे बिना किसी हिचकिचाहट के कतई तोड़ देना चाहिये। किसी भी सभ्य सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह न्याय को दृष्टि में रख कर ऐसी अन्यायकारी प्रथा को नेस्त नाबूद कर दे। किसानों की मौजूदा मालगुजारी में भी बहुत कुछ कमी होना चाहिये।"

राजा साहब से यह भी सुझाव रखा कि किसानों के लगे हुऐ कर में कमी होने से सरकार को जो क्षति होगी उसकी पूर्ति विलायत से आने वाली विलास सामग्री पर कर लगाकर की जावे।

राजा राममोहनराय और अन्तर्राष्ट्रीय एकता

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, राजा राममोहनराय अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और एकता के कट्टर हिमायती थे। उन्होंने ईसाई लोगों को अपील करते हुए भगवान् से यह प्रार्थना की थी "सर्वशक्तिमान ईश्वर हमारे धर्म को ऐसा बनावे जिससे आपसी द्वेष भाव नष्ट हों और मनुष्य मनुष्य से घृणा करना बन्द कर दे। इतना ही नहीं, सारी मनुष्य जाति को एकता और शान्ति के पथ में ले जाने में यह धर्म सहायक हो।"

राजा राममोहन राय विश्वबन्धुत्व की उदार भावना के द्वारा संसार को प्रेम के एक सूत्र में बाँधना चाहते थे। वे भारत और ब्रिटेन के सम्बन्धों को भी प्रेम की नींव पर लगाना चाहते थे। उनका विचार था कि लोगों की साम्पत्तिक सुरक्षा, लोगों के लिए सब प्रकार के नागरिक अधिकारों का भोग, और जनमत का आदर आदि तत्वों के अवलम्बन से भारत और ब्रिटेन का सम्बन्ध अधिक मित्रतापूर्ण हो सकता है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने तमाम यूरोपियन राष्ट्रों से यह अपील की थी कि वे आसपास के एशियाई राष्ट्रों को सुसंस्कृत और सुसभ्य करने का

महान् कार्य (Great mission) करें ।

राजा राममोहनराय और नारी-स्वातन्त्र्य

राजा राममोहनराय पुरुषों के साथ-साथ नारी-जागृति के भी प्रबल समर्थक थे । उन्होंने उन प्रथाओं का जोरदार विरोध किया जिनसे नारी-जाति पर अत्याचार होते थे । उन्होंने सति-प्रथा को रोकने के लिये जोरदार प्रभाव डाला । उन्होंने विधवा-विवाह के लिये आवाज बुलन्द की और उसे समाज-सुधार का एक अत्यन्त आवश्यक अङ्ग बतलाया ।

कहने का सार यह है कि भारतीय समाज को एक शक्तिशाली और आदर्श समाज बनाने के लिये जिन तत्वों की आवश्यकता थी, उनका उन्होंने जोरदार समर्थन किया ।

भारत में विचार-क्रान्ति का प्रारम्भ

राजा राम मोहनराय, जैसा कि हम गत पृष्ठों में कह चुके हैं, पौर्वात्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के एकीकरण से एक नवीन संस्कृति को जन्म देना चाहते थे। इसके लिये उन्होंने शिक्षा प्रचार को सबसे अधिक उपयुक्त साधन समझा था। उन्होंने कलकत्ते में हिन्दू कॉलेज नामक संस्था खोलने में प्रमुख भाग लिया। इस कॉलेज ने कुछ ऐसे प्रतिभाशाली विद्यार्थी उत्पन्न किये, जिन्होंने भारतवर्ष की जागृतिकाल के आरंभ में, राजकीय क्रान्तिकारी विचारों को जन्म दिया। इन विद्यार्थियों में ताराचन्द चक्रवर्ती, दक्षिण निरंजन मुखोपाध्याय, रसिक कृष्ण मल्लिक, रामगोपाल घोष, प्यारी चन्द्र मित्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सब युवक यूरोप के क्रान्तीकारक विचारों से बड़े प्रभावित हुए थे। सन् १८३६ ई० के मई मास में इङ्गलिशमैन नामक पत्र के संवाददाता ने हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों के राजनैतिक मत के लिये लिखा था:—

"राजनीति में ये सब युवक उग्र और क्रान्तिकारक विचार रखते हैं। ये बेन्थम (Bentham) के राजनैतिक सिद्धान्तों के अनुयायी हैं। टोरी (दकियानूसी) शब्द उनके लिये एक घृणा का शब्द है। उनके विचारानुसार हर एक सरकार को सहनशीलता का तत्त्व अपनाना चाहिये और लोगों में ज्ञान के प्रचार के द्वारा सुधार करना चाहिये। अर्थशास्त्र में ये ऐडम स्मिथ (Adam Smith) के अनुयायी हैं। उनका यह स्पष्ट मत है कि एकाधिकार की पद्धति (System of Monopoly), व्यवसायों पर लगाई जानेवाली रोक (Restraints upon Trade) और बहुतसे राष्ट्रों के अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून उद्योग-धन्धों को पंगु करते हैं, कृषि की उन्नति में बाधा पहुँचाते हैं और व्यापार के स्वाभाविक प्रवाह में

रोक लगाते हैं।" इसके अतिरिक्त इन नवयुवकों ने बंगाल की जनता में राजनैतिक भावनाओं का प्रचार करने में बड़ा काम किया। हिन्दू कॉलेज के इन युवकों पर अध्यापक हेनरी विवियन डेरोझियो (Henry Vivian Derozio 1809–1831) के व्यक्तित्व और शिक्षा का बड़ा प्रभाव पड़ा था। सन् १८२८ ई० में डेरोझियो हिन्दू कॉलेज का चतुर्थ अध्यापक नियुक्त हुआ और सन् १८३० ई० तक उसने उक्त कॉलेज में अध्यापक का कार्य किया। थामस एडवर्ड (Thomas Edwards) ने सन् १८८४ ई० में हेनरी वि० डेरोझियो की जीवनी लिखी थी उसमें उन्होंने लिखा था—"वह एक आदर्श अध्यापक, प्रतिभाशाली सङ्गठनकर्ता, उत्साही पत्रकार; दिव्य कवि और उच्च श्रेणी का तत्त्वज्ञानी था। वह इण्डियन गेझेट (Indian Gazette) का सहकारी सम्पादक था। यह पत्र अत्यन्त उग्र राजनैतिक विचारों का था। इसके अतिरिक्त डेरोझियो कलकत्ता लिटरेरी गझट (Calcutta Magazine) इण्डियन मेगझिन (Indian Magazine), बङ्गाल एन्यूअल (Bengal Annual) में भी लेख दिया करता था। उसके विद्यार्थी उसे बड़ी श्रद्धा की नज़र से देखते थे और वे उसे बंगाल के सर्वोच्च निर्माणकर्ताओं में से एक मानते थे।"

सन् १८४२ ई० में उसकी मृत्यु पर उसके प्रतिभाशाली विद्यार्थियों ने बङ्गाल स्पेक्टेटर नामक पत्र में जो लेख लिखा था, उसमें निम्न-लिखित शब्दों में उसे स्मरण किया गया था।

"डेरोझिओ ने भारतीय युवकों के मन पर अपना जीवन दायक सुसंस्कृत (Enlightening) और आनन्ददायक (Cheerful) प्रभाव डाला और उनके अन्तःकरण में उसने एक क्रान्ति उत्पन्न की जो कि आज तक अपना प्रभाव बनाये हुये हैं। उसका नाम आज भी विद्यार्थीगण आदर से स्मरण करते हैं।

इसके आगे चलकर लिखा है कि "डैरोझियो जीवन के हर पहलू में स्वाधीनता का बड़ा पुजारी था। उसने अपने विद्यार्थियों के अन्तःकरणों को देश भक्ति की भावनाओं से ओत प्रोत कर दिया था।"

प्यारीचन्द्र मित्र ने अपने ग्रंथ Life of David Hare में डेरोझियो के सम्बन्ध में कहा है:—

"डेरोझियो अपने विद्यार्थियों को स्वतः विचार करने की शिक्षा देता था। वह उन्हें सत्य के लिये जीने और मरने की शिक्षा देता था। वह उनसे सब प्रकार के सद्‌गुणों का विकास करने और बुराइयों और पापों से दूर रहने की जोरदार अपील करता था। प्राचीन इतिहास ग्रंथों से न्याय-प्रेम, स्वदेश-भक्ति, परोपकार और आत्म-त्याग के उदाहरण देकर उन्हें इन गुणों को अपनाने का आग्रह करता था। उसकी शिक्षाओं से विद्यार्थियों के दिल हिल उठते थे और उन पर गहरा प्रभाव पड़ता था।"

डेरोझियो ने अपने विद्यार्थियों को बेकन, ह्यूम और टॉमस पेन आदि पाश्चात्य राजनीतिज्ञों के सिद्धान्तों का परिचय करवाया। राजनीति के इन महान् आचार्यों के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का इन युवक-हृदयों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। फ्रांस की राज्य-क्रांति के इतिहास ने भी उनके हृदयों में घोर आन्दोलन उत्पन्न किया। हिन्दू-कॉलेज के कुछ विद्यार्थी भारतवर्ष में भी फ्रांस जैसी राज्य-क्रांति कर विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने का स्वप्न देखने लगे। सन् १८४३ में "बंगाल हरकारू" नामक पत्र में उनमें से कुछ विद्यार्थियों ने अपने क्रांतिकारी विचारों का प्रदर्शन किया। हम उक्त पत्र से कुछ उद्धरण देते हैं जिनसे पाठकों को उनके विचारों का कुछ दिग्दर्शन होगा।

"अगर भारतवर्ष के निवासी फ्रांस की राज्य-क्रांति का अनुकरण कर स्वाधीनता के फलों को उपभोग करने का सौभाग्य प्राप्त करें तो संसार की दृष्टि में वे स्वतंत्र मनुष्यों की तरह आदर की निगाह से देखे जावेंगे और पृथ्वी के राष्ट्रों में वे अपना योग्य स्थान प्राप्त कर सकेंगे।"

हिंदू कॉलेज के इन उत्साही विद्यार्थियों ने अपने विचारों का प्रदर्शन करने के लिए कई पत्रों का भी प्रकाशन शुरू किया जिनमें "हिन्दू पॉयोनियर" (Hindu Pioneer), "बंगाल स्पेक्टेटर" (The Bengal Spectator), "ज्ञानान्वेषण" और "पार्थेनन" (Parthenon) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये घटनाएँ इसवी सन् १८२८ और १८४३ के बीच की हैं। कहने का मतलब यह है कि इसवी सन् १८५७ के गदर के पहिले भी भारत में स्वाधीनता के भावों का और विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने का बीजरूप से उपक्रम होने लगा था। इसके अतिरिक्त हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों ने राजनैतिक और सामाजिक सुधार करने के लिए भी कुछ संस्थाएँ स्थापित की थीं जिनमें सब से पहली और मुख्य संस्था का नाम एकेडेमिक एसोसिएशन और इन्स्टीट्यूशन (Academic Association or Institution) था। इस संस्था का उद्देश्य विचार-स्वातंत्र्य, लेखन-स्वातंत्र्य, स्वदेश-भक्ति, शुद्ध ईश्वर-भक्ति, मूर्ति-पूजा और पुरोहितवाद का विरोध आदि तत्वों का प्रचार कर लोक-जागृति उत्पन्न करना था। इसवी सन् १८३८ में तारिणीचरण बन्द्योपाध्याय, रामगोपाल घोष, रामतनु लाहिरी, ताराचन्द चक्रवर्ती और राजकृष्ण दे ने मिलकर "साधारण ज्ञानार्जन समिति" (Society for the acquisition of General knowledge) नामक संस्था कायम की जिसका उद्देश्य लोगों को देश की वास्तविक स्थिति का परिचय करवाना, उपयोगी ज्ञान को फैलाना और लोगों में एकता और मातृभाव का प्रचार करना आदि था। रामगोपाल घोष इसके उपाध्यक्ष थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने, जिनकी अवस्था इस समय केवल २१ वर्ष की थी, इसकी सदस्यता स्वीकार की थी।

ईसवी सन् १८४२ और १८४३ में उक्त कालेज के विद्यार्थी ताराचन्द चक्रवर्ती ने "क्वील" (The quil) नामक एक अंग्रेजी समाचार-पत्र का सम्पादन और प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र में राजनीति के

अत्यन्त उग्र विचारों का प्रकाशन होता था।

हिन्दू कालेज के विद्यार्थियों द्वारा प्रकाशित "हिन्दू पायोनियर" (Hindu Pioneer) नामक अंग्रेजी पत्र का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। इस पत्र का उद्देश्य हिन्दुओं को शासन-विज्ञान (Science of Government) की शिक्षा देना था⊛ और उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान करवाना था।

इन नवयुवकों की प्रवृत्तियां यहीं तक सीमित नहीं थीं। उन्होंने मानवी समानता के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का प्रचार किया और उच्च पदों पर केवल अंग्रेजों के एकाधिकार का जोरदार विरोध किया। उनका यह विश्वास था कि अगर शासन-सत्ता अयोग्य हुई और न्याय-शासन में भ्रष्टाचार घुस गया तो लोगों के नैतिक गुणों का भी ह्रास होने लगेगा, इसलिए इनका शुद्ध और निर्लेप होना आवश्यक है।×

हिन्दू कालेज के विद्यार्थियों में रसिककृष्ण नामक सज्जन ने भी अपने राजनैतिक विचारों को निर्भीकता के साथ प्रकट किये थे। इन्होंने "ज्ञानान्वेषण" नामक मासिक पत्र में इसवी सन् १८३३ के १२ अप्रेल के अंक में लिखा था:— "सरकार का प्राथमिक कर्त्तव्य निरपेक्ष और शुद्ध न्याय का शासन करना है, पर यह कार्य उसी सरकार द्वारा हो सकता है जिसका उद्देश्य शासितों के हित और कल्याण की रक्षा करना है। पर भारतवर्ष में यह स्थिति नहीं है। हमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए जोरदार प्रयत्न करने चाहिए।" इसके आगे चलकर उन्होंने लिखा था कि "ब्रिटिश भारत में जैसा शासन चल रहा है वह न्यायपूर्ण सिद्धान्तों के खिलाफ़ है क्योंकि ब्रिटिश भारत के शासकगण ऐसे लोग हैं जो अपने स्वार्थ को दृष्टि में रखकर काम करते हैं। वे केवल द्रव्य प्राप्ति की हीन

⊛Calcutta Quarterly Magazine and Review 1833
×India Gazette 12th April 1833

भावना के वशीभूत होकर काम करते हैं। उनका प्रत्येक कार्य स्वार्थ से परिपूर्ण रहता है। जब तक वर्तमान शासन-पद्धति रहेगी तब तक हमें सुधारों की कोई आशा नहीं है।" इस प्रकार रसिककृष्ण मल्लिक ने अपने विचार प्रदर्शित करते हुए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को खत्म कर देने के लिए अपनी आवाज़ बुलन्द की थी।

समाचार पत्रों का प्रकाशन

मानव अधिकारों का आन्दोलन

जनता की जागृति में समाचार पत्रों ने कितना हाथ बटाया है, यह बात संसार के समाचार पत्रों के इतिहास के अवलोकन से स्पष्टतया प्रतीत होती है। हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों ने जनता में सामाजिक और राजनैतिक भावनाओं का प्रचार करने के लिये अनेक पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया। इनमें The Parthenon, (२) ज्ञानान्वेषण, Hindu, Pioneer, 'The Bengal Spectator आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

पार्थेनन (The Parthenon) नामक पत्र का प्रकाशन ईसवी सन् १८३० की १५ फरवरी को आरम्भ किया गया। यह साप्ताहिक पत्र था। प्रगतिशील राष्ट्रीय और सामाजिक भावनाओं का प्रचार कर जनता को जागृत करना उसका उद्देश था। इसने स्त्री-शिक्षा पर भी काफ़ी जोर दिया। हिन्दुओं में फैले हुए अन्ध विश्वासों को दूर करने के लिये इसने प्रबल आन्दोलन किया। यह शीघ्र ही बन्द होगया।

हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों ने "ज्ञानान्वेषण" नामक पत्र का प्रकाशन ईसवी सन् १८३१ में आरम्भ किया। यह पत्र ईसवी सन् १८४४ तक बराबर चलता रहा। रामकृष्ण मल्लिक, रामतनु लाहिडी, तारकचन्द्र बोस, रामगोपाल घोष, दक्षिण रंजन मुकर्जी आदि उक्त कॉलेज के विद्यार्थी नवयुवक इसके सञ्चालक थे। हिन्दुओं को शासन-विज्ञान (Science of government) और न्याय-विज्ञान (Jurisprudance) का ज्ञान करवाना और उनमें राजनैतिक भावनाओं का विकास करना इसका प्रधान उद्देश था (Calcutta quar-

terly Magazine & Review 1833 P. 417)

तीसरा पत्र जो हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों ने प्रकाशित किया था, उसका नाम 'Hindu Pioneer' था। वह 'स्वतन्त्रता' और 'विदेशियों के अधीनस्थ भारत' आदि विषयों पर लेख प्रकाशित किया करता था। उसने अपने एक लेख में लिखा थाः–"ब्रिटिश के अधीनस्थ भारत सरकार विशुद्ध रूप से अभिजात तन्त्रीय (Aristocratic) है। लोगों की शासन-तन्त्र में कोई आवाज़ नहीं है। देश के लिये क़ानून बनाने में उनका कोई हाथ नहीं रहता। देश के बड़े बड़े पदों पर केवल गोरों का एकाधिकार (Monopoly) है। शासन का खर्च बहुत ही भारी है। यह स्थिति इतनी असहनीय है कि इसके खिलाफ़ जोरदार आन्दोलन करना प्रत्येक राष्ट्र-भक्त का धर्म है।"

"जिन हिंसात्मक साधनों से (violent means) से विदेशियों ने इस देश पर अपना आधिपत्य जमाया और यहां की जनता को शासन में हिस्सा लेने से च्युत किया, वह एक ऐसी स्थिति है जिसे कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्रभक्त बर्दाश्त नहीं कर सकता। यहां की जनता न केवल शासन में हिस्सा लेने से ही अलग कर दी गई है, पर महत्व के पदों से भी उसे च्युत कर गोरों को आसीन कर दिया गया है।" (Hindu Pioneer" quoted in the Asiatic Journal of May-August 1838)

उपरोक्त पत्रों के सिवा हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों ने बङ्गाल स्पेक्टेटर नामक एक चौथा पत्र निकाला। ईसवी सन् १८४२ में इसका प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह राजनैतिक विचारों में ताराचन्द चक्रवर्ती का अनुयायी था।

कहने का सारांश यह कि ईसवी सन् १८५७ के भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध के पहले भी जन-जागृति के लिये समाचार पत्रों को जोरदार साधन समझा गया था। अब कुछ तत्कालीन विचार-क्रान्ति कारक सज्जनों का

वृतान्त भी सुनिये।

रसिक कृष्ण मल्लिक

रसिककृष्ण मल्लिक हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों में बड़े योग्य और प्रतिभाशाली थे। पण्डित शिवनाथ शास्त्री ने लिखा है कि रामतनु लाहिड़ी सरीखे उच्च कुलोत्पन्न ब्राह्मण सज्जन रसिक को अपना गुरु मानते थे।

ईसवी सन् १८३४ के पहले रसिक कृष्ण 'ज्ञानान्वेषण' नामक बंगला पत्र के सम्पादक थे। निर्भयता के साथ अपने राजनैतिक विचारों को प्रकट किया करते थे। उनके विचारानुसार उस प्रजा का नैतिक पतन अवश्यम्भावी है जो ऐसे शासन के अन्तर्गत रहती है, जो अयोग्य और अक्षम है तथा जो भ्रष्टाचार पूर्ण है। आपने अपने पत्र में लिखा था;—"जहां न्याय का मूल स्रोत भ्रष्ट हो, वहां समाज न तो नैतिक दृष्टि से पनप सकता है और न भौतिक दृष्टि से। इस प्रकार की भ्रष्ट न्याय-प्रणाली का परिणाम यह होता है कि धनिक लोग अपने अन्याय पूर्ण कृत्यों में भी सफलता पा जाते हैं और गरीब अन्याय की चक्की में पिसे जाते हैं।"

"सरकार का प्राथमिक कर्त्तव्य जनता के लिये निष्पक्ष और विशुद्ध न्याय-प्रणाली की व्यवस्था करना है, पर यह व्यवस्था वही सरकार कर सकती है, जिसने लोक-कल्याण की भावनाओं में अपने आपको तन्मय कर दिया है। दुर्भाग्य से भारतवर्ष में यह स्थिति नहीं है।"

"ब्रिटिश भारत का न्याय-शासन जिस तरह चल रहा है, वह हर दृष्टि से शासन विज्ञान के न्याययुक्त सिद्धान्तों के विरुद्ध है। व्यापारियों की एक जमात शासक के रूप में हम पर थोपी गई है। वह अपनी व्यापारिक और स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण ऐसे क़ानून और नियम कैसे बना सकती है, जिनसे हमारे अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा हो सके। वह तो अपने स्वार्थों की रक्षा करेगी और कम से कम खर्च में अपना शासन शकट

चलायगी। सारांश यह है कि ऐसी सरकार द्रव्य प्राप्ति के क्षुद्र सिद्धान्त पर अपने शासन का पाया रखती है।"

"न्याय-प्रदान की हरएक व्यवस्था, जो इस समय प्रचलित है, सर्वांश रूप से स्वार्थ-भावना से प्रेरित है। इस बुराई को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि ईस्ट इण्डिया कं० के राजनैतिक अधिकार तोड़ दिये जावें। जब तक आधुनिक पद्धति का अमल दरामद रहेगा तब तक ये खराबियां बनी रहेंगी।" ("Gyananveshun quoted in the India Gazette of 8th Apl. 1833)

राजा राममोहन राय की भांति रसिक कृष्ण ने भी सरकारी नौकरियों का भारतीयकरण करने की आवाज़ उठाई थी। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि शासन-प्रबन्ध में भारतियों का पूर्ण सहयोग होना चाहिये और छोटे तथा बड़े पदों पर ज्यादातर भारतियो की ही नियुक्ति होनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त रसिक कृष्ण ने जन-शिक्षा के प्रचार के लिये भी ज़ोर की आवाज़ बुलन्द की थी। उन्होंने यह दिखलाया था कि सरकार का कोई शासन-तन्त्र तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि जनता शिक्षित न हो। अतएव यह आवश्यक है कि सरकार अपनी भरसक कोशिस लोगों में शिक्षा प्रचार के लिये करे और अपनी आय का बहुत बड़ा हिस्सा लोगों के बौद्धिक विकास पर खर्च करे। इस कार्य की सिद्धि के लिये सरकार को चाहिये कि वह ज्ञान प्रचार के लिये अच्छी पुस्तकों का मुफ्त या कम से कम मूल्य में प्रकाशन करे। ज्ञान-प्रचार ही लोगों के चरित्र सुधार का सबसे अच्छा साधन है।

रसिक कृष्ण मल्लिक ने राजा राममोहनराय के समान किसानों के अधिकारों के लिये भी आवाज़ उठाई थी। बंगाल के क़ायमी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) के विषय में उन्होंने लिखा था:—

"बंगाल का क़ायमी बन्दोबस्त, चाहे कितने ही अच्छे उद्देशों से किया गया हो, कई दोषों से युक्त है। इसका परिणाम यह होता है कि गरीब वर्ग के अधिकारों की इसमें पूर्ण उपेक्षा होती है।"

रसिक कृष्ण मल्लिक ने जमींदारों के अत्याचारों पर भी काफ़ी प्रकाश डाला था और उन्होंने हमेशा किसानों के हितों के लिये आवाज़ उठाई थी। सारांश यह है कि १८५७ के गदर के बहुत पूर्व जिन युवकों ने मानव अधिकारों के लिये आवाज़ उठाई थी उनमें रसिक कृष्ण मल्लिक का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

ताराचंद चक्रवर्त्ती

ताराचंद चक्रवर्त्ती तत्कालीन बंगाल के नवयुवकों के सर्वमान्य नेता थे। इंगलिश मेन (English man) आदि पत्रों ने भी आपकी इस स्थिति को स्वीकार किया था। शिवनाथ शास्त्री ने अपने रामतनु लाहिड़ी के जीवन-चरित्र में इन्हें स्वतंत्रता व समानता का पुजारी कहा है। ब्रिटिश इन्डिया सोसायटी (British India society) के अध्यक्ष जार्ज थामसन (George thomson) ने अपने २० अप्रेल १८४३ के अपने अध्यक्षता के भाषण में इनके स्फूर्ति दायक उत्साह, परोपकार भावना, प्रामाणिकता और विशुद्ध चरित्र की प्रशंसा करते हुए कहा था कि ताराचंद उन सब लोगों द्वारा पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं, जिनसे उनका परिचय था।

ताराचंद चक्रवर्त्ती बड़े राजनैतिक आन्दोलनकर्ता थे। इसके साथ ही साथ वे एक महान् विद्वान् भी थे। उन्होंने मनुस्मृति का अंग्रेज़ी अनुवाद किया था और अंग्रेज़ी-बंगाली कोष का निर्माण किया था। वे इतिहास शोधक भी थे और ऐतिहासिक खोज में उस समय उन्होंने बड़ा काम किया था। बंगाल स्पेक्टेटर (Bengal spectator) नामक पत्र में वे सम्पादकीय लेख लिखा करते थे।

ताराचंद के राजनैतिक विचार

ताराचंद प्रगतिशील राजनैतिक विचारों के थे। सन् १८४२ के सितम्बर मास में बङ्गाल स्पेक्टेटर (Bengal Spectator) नामक पत्र में उन्होंने लिखा था:—

"सरकार का कार्यक्षेत्र केवल शान्ति व व्यवस्था की रक्षा ही नहीं है वरन् नागरिकों के जीवन को समुन्नत कर उन्हें श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाना है। जिन अधिकारियों के हाथ में लाखों मनुष्यों के शासन का भार है, वे यदि मालगुजारी वसूल करने और साधारण शान्ति-रक्षा तक ही को अपनी इतिकर्त्तव्यता समझते हैं तो वे अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते। सुसभ्य सरकार का यह प्रधान धर्म है कि वह अपनी प्रजा के उठते हुए युवकों में गम्भीर और उपयोगी शिक्षा का प्रचार करे। लोगों में ज्ञान का प्रचार करना और उन्हें सुशिक्षित बनाना यही अच्छी सरकार का सर्वोत्कृष्ट आदर्श है। इसके अतिरिक्त व्यापार व उद्योग-धन्धों का विकास कर सरकार अपने साधनों को भी विकसित कर सकती है।"

"लोग अपने अधिकारों की रक्षा के लिये और सुख के विकास के लिये, सरकार को सत्ता देती है। इसलिये सरकार का यह कर्त्तव्य है कि जिन लोगों पर वह शासन करती है, उनकी शिक्षा का समुचित प्रबंध करे। यह शिक्षा केवल सैद्धान्तिक ही नहीं होनी चाहिये पर फ्रान्स की तरह औद्योगिक भी होनी चाहिये।"

हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थी ही सबसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सरकारी पदों (Government Services) के भारतीयकरण के लिये आवाज़ उठाई थी। उनका कथन था कि शासन के छोटे और मोटे पदों पर भारतियों ही का अधिकार है और उन्हीं की उन पर नियुक्ति होना चाहिये। ईसवी सन् १८४३ की १८ अप्रेल को उन्होंने कलकत्ते के नगर-भवन (TownHall) में नागरिकों की एक सभा की और ईस्ट इण्डिया

कंपनी के सञ्चालक-मण्डल (Court of proprietors) के पास एक मेमोरियल भेजा, जिसमें इस बात का आग्रह किया गया कि भारतीय शासन के पदों पर अधिकांश रूप से भारतवासी ही रखे जावें। ताराचंद ने इस में प्रमुखता से भाग लिया और कहा कि उक्त मेमोरियल मि० जॉन सुलिवान के मार्फत भेजा जाय, जिन्होंने कि उनके हितों का समर्थन किया था। ताराचंद ने इस बात पर भी जोर दिया कि अगर ईस्ट इण्डिया कम्पनी हमारी बात न सुने तो सम्राट् (Crown) और सुप्रीम कोर्ट के सामने हमें अपना मामला ले जाना चाहिये।

दक्षिण रंजन मुखोपाध्याय

(१८१४-१८७८)

दक्षिण रंजन मुखोपाध्याय ने ईसवी सन् १८३० से १८५७ तक बंगाल के सार्वजनिक जीवन में और ईसवी सन् १८६० से १८७४ तक अवध के सार्वजनिक जीवन में जिस प्रकार प्रमुखता से भाग लिया, उसका वर्णन उनके जीवनी-लेखक श्रीयुत मन्मथनाथ घोष ने बड़ी उत्तमता से किया है। पर दुःख इस बात का है कि उक्त जीवनी-लेखक ने दक्षिण रंजन के राजनैतिक विचारों पर प्रकाश डालने की चेष्टा नहीं की, अतएव 'बंगाल हरकारु' (Bengal Harukaru) नामक पत्र में उनके जो व्याख्यान छपे थे, उन्हीं के आधार पर उनके ये विचार यहां लिखे जाते हैं।

दक्षिण रंजन मानव-स्वाधीनता के सिद्धान्त के पूजारी थे। उन्होंने ईसवी सन् १८४३ के २ मार्च के अङ्क में जो लेख प्रकाशित किया था, उसमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि न्यायकारी परमात्मा ने सब मनुष्यों को उनके जन्माधिकार (Birth rights) की दृष्टि से समान उत्पन्न किया है। भारतवर्ष और अन्य देशों में मूलतः (Originally) लोगों में नैसर्गिक समानता (Natural equality) और पूर्ण स्वतंत्रता थी। इसी समानता के भाव में जब विकृति आने लगी तब ही से भारत-

वर्ष का पतन शुरू हुआ। दक्षिण रंजन इस पतन का उत्तरदायित्व ब्राह्मण गुरुओं पर डालते हैं। उनका कथन है कि ब्राह्मणों ही ने भारतीय समाज में फूट और विभाजन (division) के बीज बोये और अखण्ड-समाज में धार्मिक साम्प्रदायिकता (religious sectrianism) उत्पन्न की, जिसका शिकार हमारा राष्ट्र होता रहा और आज वह उस दुर्दशा को प्राप्त हुआ। हमारे देशवासियों को चाहिये कि वह साहस पूर्वक राष्ट्र और समाज के जीवन से उन सब बुराइयों को निकाल दें, जो समाज के जीवन में घुन का काम करती हुई उसे क्षयग्रस्त कर रही हैं।

दक्षिण रंजन ने ईसवी सन् १८४३ में अपने एक लिखित भाषण में 'भारतीय समानता का नाश और उसके कारण होने वाला देश के पतन' पर जो विचार प्रदर्शित किये थे। उनसे उस समय बड़ी हलचल मची। दूरदूर तक उसका प्रभाव फैला। इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार और विचारक हेनरी थॉमस बकले (Henary Thomas Buckle) ने अपने सभ्यता के इतिहास (History of Civilization) में उन विचारों को स्वीकार किया। बंकिमचन्द्र ने अपने लेखों में इस विचारधारा को ग्रहण किया। (A History of Political Thought Vol. I)

दक्षिणरंजन और पराधीनता का श्राप

दक्षिण रंजन राष्ट्रीय पराधीनता को एक महान श्राप समझते थे, उन्होंने अपने उक्त निबन्ध में इस बात को प्रकट किया कि यदि किसी राष्ट्र पर विदेशी राज्य करते हैं तो वे ऐसा किसी परोपकारी भावना से नहीं करते। स्वर्ण के लालच (Lust for gold) से प्रेरित होकर वे अन्यराष्ट्र को दासत्व की शृंखला में जकड़ते हैं। भारतवर्ष की गरीबी का कारण विदेशियों की अधीनता है। हमारे देश की साधन-सम्पति (resources) इतनी विशाल है कि उससे देश की आवश्यकताओं की भली प्रकार पूर्ति हो सकती है। पर इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि शासन स्वतन्त्र और उदार होना चाहिये।

दक्षिणारंजन ने न्यायालयों में उस समय फैली हुई रिश्वत खोरी का भी बड़ा विरोध किया था। उन्होंने लिखा था; -"इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि चपरासी से लगाकर सरिश्तेदार तक सब का अपना मूल्य होता है अर्थात् हरएक अपनी अपनी हैसियत के अनुसार रिश्वत लेता है।

बुराइयों के उपाय

दक्षिण रजन ने उक्त बुराइयों के उपाय भी सूचित किये हैं। वे इस प्रकार हैं;—(१) सरकारी नौकरियों का भारतीयकरण अर्थात् सरकारी पदों पर भारतवासियों का नियुक्त होना, (२) जनमत को सङ्गठित करना; (३) ज्ञान प्रचार द्वारा लोगों के अज्ञान का नाश करना।

ईसवी सन् १८४३ की ३ फरवरी को दक्षिणरंजन ने श्री कृष्णसिंह के बगीचे में जो व्याख्यान दिया था, उसमें उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में कहा था:—

"क्या यह उचित और न्यायसंगत नहीं है कि जो लोग इस देश में जन्म लेने के कारण, इस देश में परवरिश होने के कारण और इस देशमें शिक्षा पाने के कारण इस देश को भली प्रकार जानते हैं उन्हें वे विश्वास और उच्च वेतन के पद दिये जावें, जिनपर आज विदेशी एकाधिकार कर बैठे हैं।" ('Bengal Haru Karu' February 9. 1843)

राजा राममोहनराय की तरह दक्षिणारंजन इस बात को आवश्यक समझते थे कि भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी को रोकने का सबसे अच्छा उपाय, उसके खिलाफ, जनमत को तैयार करना है। यह बात तब तक सम्भव नहीं हो सकती, जब तक लोग इस बुराई का भण्डाफोड़ या सुधार करने को तैयार न हो जावें। इसके आगे चल कर आपने यह भी दिखलाया कि इङ्गलैंड की न्याय प्रणाली की विशुद्धता का कारण वहां का लोकमत है। यह बुराई जितनी जनमत के तैयार होने से दूर हो

सकती है, उतनी सरकार के प्रयत्न से नहीं। अगर लोग सत्य, प्रामाणिकता और न्याय का अनुकरण करने लगें तो इन बुराइयों का टिका रहना असम्भव ही जायगा। अच्छा से अच्छा शासन भी बिना लोकमत की सहायता के इन बुराइयों को दूर करने में असफल रहता है।

दक्षिणरंजन और लोकप्रतिनिधि सभायें

सन् १८७० ई० में दक्षिणरंजन ने लोक प्रतिनिधि-व्यवस्थापिका सभा का विधान बनाया। उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि हर एक प्रान्त में एक प्रान्तीय लोक प्रतिनिधि कौंसिल हो, जिसमें सरकार द्वारा मनोनीत और प्रजा द्वारा निर्वाचित सदस्य हों। ये प्रतिनिधि हर एक जिले के निर्वाचकों द्वारा चुने जावें। दक्षिणरंजन ने एक सुप्रिम कौंसिल की स्थापना की भी आवश्यकता बतलाई।

सारांश यह है कि सन् १८५७ के भारतीय विद्रोह के पहले दक्षिणरंजन ने राजनीति के ऐसे तत्वों का प्रकाशन किया जो आज भी कई अंशों में अनुकरणीय हैं।

अक्षयकुमार दत्त
(१८२०-१८८६)

अक्षयकुमार दत्त का नाम हमारे बहुत से पाठक जानते होंगे। इनके कुछ ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में भी हुआ है। ये बड़े दार्शनिक, विचारक और उग्र राजनैतिक नेता थे। इनके विचारों पर राजा राममोहनराय का काफ़ी प्रभाव पड़ा था, यद्यपि इन्हें राजा साहब के सम्पर्क में आने का अवसर नहीं मिला था। जब ये दस वर्ष की बाल्यावस्था में कलकत्ते आये थे, तब राजा राममोहनराय इंग्लैंड के लिए प्रस्थान कर चुके थे। सन् १८३६ ई० में ये महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर के सम्पर्क में आये और तत्वबोधिनी सभा के सक्रिय सदस्य हो गये। इस समय इन्हें राजासाहब के दार्शनिक सिद्धान्तों के गम्भीर सागर में गोता लगाने

का अवसर मिला। आपने भारतवर्षीय 'उपासक सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ के दूसरे भाग में राजा साहब की महान सेवाओं की बड़ी प्रशंसा की है और कहा है कि वे न केवल राजा थे पर देश के हृदय-सम्राट् थे। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि शास्त्रों के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रेम उन्हें राजासाहब से प्राप्त हुआ।

अक्षयकुमार दत्त ने सन १८४३ ई० से सन १८५५ई० तक तत्त्वबोधिनी पत्रिका का बड़ी योग्यता से सम्पादन और संचालन किया। उक्त पत्रिका में उन्होंने भारतीय राष्ट्र के उत्थान के लिये और गरीब किसानों के लिये बड़ी जोरदार आवाज़ उठाई। हिन्दू समाज की नव रचना पर भी उन्होंने कई लेख लिखे। पाश्चात्य और पौर्वात्य संस्कृति के सम्मेलन पर भी उन्होंने ज़ोर दिया। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने 'भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ की दूसरी जिल्द की भूमिका में लिखा है:—"अक्षयकुमार दत्त पहले लेखक थे जिन्होंने बंगाली युवकों को पाश्चात्य दृष्टिबिन्दु और मनोवृत्ति का परिचय कराया। वे नव बंगाल के प्रथम नैतिक आचार्य थे।

अक्षयकुमार दत्त ने एरिस्टॉटल (Aristotle), बेकन (Bacon), लाक (Locke), काम्ट (Comte), लाप्लेस (Laplace) और माल-थस (Malthus) के ग्रन्थों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया। दत्त महोदय के ग्रन्थों में उक्त पाश्चात्य विचारकों की छाप स्पष्टतया दृष्टि-गोचर होती है। शिक्षा और शासन के सम्बन्ध में दत्त महोदय के विचार ग्रीक दार्शनिकों से प्रभावित मालूम होते हैं।

शासन-सत्ता और सरकार के सम्बन्ध में अक्षय कुमार दत्त के विचार प्रगतिशील थे। आपने धर्मनीति नामक ग्रन्थ में लिखा है कि सरकार लोगों की प्रतिनिधि है। उसे लोगों पर कर लगाने का कोई पुश्तैनी अधिकार नहीं है। लोगों का अपने जायदाद और जीवन पर स्वाभाविक अधिकार है। सरकार केवल जान, माल, और प्रतिष्ठा की

रक्षा करने की दृष्टि ही से कर लगा सकती है। बृटिश सरकार अपनी प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करती। मुफ़स्सील में प्रजा की जो दीन हीन दशा है वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। [तत्वबोधिनी पत्रिका संख्या १२२]

अक्षयकुमार के मतानुसार सरकार का कार्यक्षेत्र बहुत विशाल और विस्तृत है। वह न केवल जन समाज के जान माल की रक्षा करने और भौतिक प्रगति की ही जिम्मेदार है, पर लोगों की शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति का उत्तरदायित्व भी उसके कर्तव्य क्षेत्र में आता है। सरकार का आदर्श लोगों को आरोग्यशाली, सुखी, समृद्धिशाली और शिक्षित बनाना है। सरकार को चाहिये कि वह लोगों को भौतिक और मानसिक विज्ञान के ज्ञान से अलंकृत करे। इन सबका उपाय लोगों में योग्य और गम्भीर शिक्षा का प्रचार करना है।

अक्षयकुमार और ब्रिटिश शासन

अक्षयकुमार के मतानुसार ब्रिटिश शासन में भारतवासियों की शारीरिक और मानसिक स्थिति का बहुत पतन हुआ। ग्रामों की निर्धन जनता जिस प्रकार का जीवन बिता रही थी वह ब्रिटिश शासन के लिये बड़ी कलंक की बात थी। उन्होंने तत्त्वबोधिनी पत्रिका में कई जोरदार लेखों के द्वारा, ग्राम जनता की गरीबी और उनके दुःखों का चित्र बड़ी मर्मस्पर्शी भाषा में चित्रित किया था और भारत की ब्रिटिश सरकार को इसके लिये बड़ा दोषी ठहराया था।

अक्षयकुमार का आदर्श

अक्षयकुमार के मतानुसार लोगों की नैतिक, बौद्धिक और भौतिक उन्नति का सर्वोत्कृष्ट साधन उनकी दरिद्रता दूर करना था। उनका कथन था कि अपराध, अज्ञान, बिमारियां और पाप आदि सब बुराईयों की जड़ दरिद्रता है। एक ही समाज के विभिन्न सदस्यों में आर्थिक असमानता

देख कर उन्हें महान् दुःख होता था। उन्होंने अपने लेखों में दिखलाया था कि प्रत्येक देश के पूँजीवादी यह चाहते हैं कि संसार की सर्वोत्कृष्ट वस्तुओं का वे ही उपयोग करें और दूसरे लोग उनकी दासता करते हुए रूखे सूखे भोजन से निर्वाह करें। जिस समाज में बहुजन समाज थोड़े से धनिकों के आराम के लिये दिन रात जी तोड़ परिश्रम करने के लिये बाध्य होते हैं, वहां न तो सामाजिक प्रगति ही सम्भव है और न सामाजिक शान्ति ही। ईश्वर की दृष्टि में सब मनुष्य बराबर हैं। मानव समाज की अत्याचार पूर्ण पद्धति ही बहुजन समाज को दरिद्रता और दुःखों में ढकेलने की ज़िम्मेदार है। इसलिये धनिकों को चाहिये कि वे मज़दूरों और गरीबों को उन्नति करने का मौका दें और उनमें ज्ञान प्रचार का प्रयत्न करें। सरकार का भी यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसे कानून बनावे जिनसे श्रमजीवी और कृषक समाज अधिक से अधिक सुखी एवं समृद्धिशाली हो सके।"

अक्षयकुमार के मतानुसार मन की निर्बलता, बालविवाह, मिथ्या विश्वास, नशा, जमींदारों और धनवानों के अत्याचार, अवर्षा, नदी की बाढ़ें आदि भारतियों की गरीबी के कारण हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने बढ़ती हुई जन संख्या को भी इसका एक कारण माना है और माल्थस (Malthus) के सिद्धान्तानुसार सन्तानोत्पत्ति के नियन्त्रण पर भी जोर दिया है।

अक्षयकुमार दत्त ने गरीबी दूर करने के कई उपाय सुझाये थे। वे इस बात के विरोधी थे कि धनिक वर्ग से बलपूर्वक सम्पत्ति छीन कर उसे गरीब कर दिया जाय। इसके विपरीत वे चाहते थे कि गरीबों को धनवान बनाया जाय। इसके लिये उन्होंने निम्नलिखित उपाय सूचित किये थे:-

(१) ऐसी शिक्षा का प्रचार जिससे गरीबों की नैतिक और सांसारिक उन्नति हो। यह शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य होना चाहिये।

(२) इस प्रकार के नियम (Laws) और प्रथाओं (Customs)

का निर्माण जिनके कारण गरीबवर्गों की सुख समृद्धि बढ़े।

(३) श्रम बचानेवाले यन्त्रों का प्रचार जिससे देश में अन्न, वस्त्र और अन्य वस्तुओं का बाहुल्य हो सके।

अक्षयकुमार ने इस प्रकार एक ऐसे राज्य की योजना की थी जिसमें मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की आप पूर्ति कर सके और सम्पति का योग्य विभाजन हो सके।

अक्षयकुमार के अतिरिक्त प्रसन्नकुमार टेगोर, द्वारकानाथ टेगोर, देवेन्द्रनाथ टेगोर, रामगोपाल घोष, प्यारीचन्द्र मित्र, किशोरीचन्द्र मित्र, गोविन्दचन्द्र दत्त, गिरीशचन्द्र घोष और हरिशचन्द्र मुकर्जी आदि महानुभावों ने भी भारतवासियों के राजनैतिक अधिकारों के लिये आवाज़ उठाई थी। इन सब का परिचय देना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं है। केवल १—२ एक दो महापुरुषों का परिचय देकर यह अध्याय समाप्त किया जायेगा।

द्वारकानाथ टेगोर

(१७६४ से १८८६)

भारतवर्ष के सार्वजनिक जीवन में सन १८३० ई० से सन् १८४६ ई० के काल में द्वारकानाथ टेगोर ने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। आप राजा राममोहन राय के दाहिने हाथ थे। द्वारकानाथ टेगोर के संस्मरण ग्रन्थ (Memoirs of Dwarkanath Tagore) में उसके लेखक भोलानाथचन्द्र ने लिखा है कि राममोहनराय के उदाहरण ने द्वारकानाथ के अन्तर्हित विचारों को अग्नि रूप में प्रस्फुटित किया और उन्हें एक बहुत जोशीला सार्वजनिक सेवक बना दिया। द्वारकानाथ टेगोर अपने समय के अत्यन्त नामाङ्कित सरदार (Most Illustrious Chieftain) कहे जाते थे। (The Bengal Haru Karu Feb. 7, 1883). उन्होंने सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में प्रशंसनीय

कार्य किया और लोगों में राजनैतिक-भावनाओं की जागृति की। ब्रिटिश शासन में लोगों के राजनैतिक अधिकारों पर जैसा कुठाराघात किया गया था उसका आपने विरोध किया था। सन् १८३६ ई० की १८ जून को कलकत्ते में जो सभा हुई थी, उसमें आपने निर्भीकता के साथ कहा था—"अंग्रेजों ने भारतवासियों का सर्वस्व ले लिया है। आज यह स्थिति है कि भारतवासियों का जीवन, उनकी स्वाधीनता व उनकी सम्पत्ति और उनका सब कुछ सरकार की दया पर निर्भर है।"

इसके अतिरिक्त द्वारकानाथ ने मुद्रण-स्वातन्त्र्य या समाचारपत्र स्वातन्त्र्य पर भी बहुत ज़ोर दिया था। सर चार्ल्स मेटकॉफ के समय में आपके प्रयत्नों को कुछ सफलता भी मिली थी। आपने उस समय लिखा था:—" मुद्रण स्वातन्त्र्य (Freedom of the Press) इस विशाल देश के शासन करने में जिस प्रकार सरकार का सहायक होता है, वैसे ही यह लोगों को भी इस बात का विश्वास दिलाता है कि उनके शासकों की इच्छा न्यायपूर्वक राज्य करने की है और वे अपने कामों की आलोचना से नहीं डरते ।"

द्वारकानाथ ने न्यायालयों और पुलिस में फैली हुई घूसखोरी का भी जोरदार विरोध किया था। उन्होंने पुलिस-सुधार समिति "Committee of Police Reform" के सामने गवाही देते हुए कहा था।

"मेरा ख़याल है कि दरोगा से लेकर छोटे से छोटे चपरासी तक सब के सब लोग घूसखोर हैं। कोई भी काम ऐसा नहीं होता जो बिना घूँस दिये कराया जा सके। अमीर आदमी पैसे के जोर पर चाहे जो करवा लेते हैं और गरीब अत्याचार की चक्की में पिसे जाते हैं। जो सबसे अधिक धन देता है वह जीतता है। अगर किसी गांव के आसपास डकैती पड़ती है तो दरोगा और उसके आदमी अन्धाधुन्ध तौर से चाहे जिस आदमी को पकड़ लेते हैं और उन पर कई प्रकार के अपराधों का आरो-

पण कर देते हैं। इनमें कई निर्दोष आदमी फँस जाते हैं और दोषी छूट जाते हैं। घूस खोरी के कारण अन्याय की बोलबाला होती है।

महर्षि देवेन्द्रनाथ टेगोर

(१८१७–१६०५)

महर्षि देवेन्द्रनाथ टेगोर, द्वारकानाथ टेगोर के पुत्र और हमारे संसार मान्य कवि रवीन्द्रनाथ टेगोर के पिता थे। महर्षि ने देश के राजनैतिक जीवन के विकास के बजाय अध्यात्म जीवन के विकास पर अधिक जोर दिया था। अपने समय में बंगाल के आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये उन्होंने महान् प्रयत्न किये। वे वर्तमान बङ्गाल के निर्मांताओं में से एक थे।

इसी प्रकार रामगोपाल घोष (१८१५ से १८६८), प्यारीचन्द्र मित्र (१८१४ से १८८३), किशोरचन्द्र मित्र (१८२२–१८७३), गोविन्दचन्द्र दत्त आदि कई महानुभावों ने भारत में राजनैतिक सुधारों के लिये अपनी आवाज़ बुलन्द की थी।

शिवनाथ शास्त्री और अंग्रेजी शासन को उलटने का षड़यन्त्र

सन् १८५७ ई० के कई साल पहले अंग्रेजी शासन को उलटने के लिये एक षड़यन्त्रकारी दल का संगठन हुआ था जिसके प्रधान संचालक शिवनाथ शास्त्री थे। अंग्रेजी राज्य से भारत को स्वतंत्र करना ही इस दल का प्रधान उद्देश था। यह दल अल्पजीवी रहा और इस को कोई ख़ास सफलता नहीं मिली।

दक्षिण भारत में प्रथम सुधार आन्दोलन

गत अध्याय में बंगाल में प्रारम्भिक राजनैतिक विचार-क्रान्ती पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। इस अध्याय में महाराष्ट्र की विचार-क्रान्ति पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

महाराष्ट्र में राजनैतिक सार्वजनिक जीवन का आरम्भ सन् १८३२ ई० के लगभग प्रारम्भ हुआ। इस समय श्री बालशास्त्री जाम्बेकर नामक एक सज्जन ने मराठी भाषा में 'दर्पण' नामक एक साप्ताहिक पत्र और "दिग्दर्शन" नामक एक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। मराठी भाषा में ये सबसे पहले नियत-कालिक समाचार पत्र थे। सन् १८४६ ई० में इन्हीं शास्त्री महोदय ने गंगाधर शास्त्री फड़के से विधवा-विवाह के आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने श्रीमान् शेषाद्रि नामक एक गृहस्थ को इसाई धर्म से शुद्ध कर हिन्दू धर्म में दीक्षित किया और इस प्रकार उन्होंने शुद्धि-आन्दोलन का उपक्रम किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी दिखलाया कि बिना पाश्चात्य विद्या का प्रचार हुए हिन्दुओं का उद्धार होना दुःसाध्य है। शास्त्री महोदय ने सन् १८४२ ई० में एल्फिन्स्टन कॉलेज में प्रोफेसर का पद स्वीकार किया। सन् १८४६ ई० में ये परलोकवासी हुए। ३६ वर्ष की अल्प आयु में इन्होंने पाश्चात्य विद्या का प्रचार, समाचार पत्रों का प्रकाशन, विधवा विवाह का प्रोत्साहन और पतित परावर्तन का समर्थन आदि अनेक कार्य किये।

श्री बाल शास्त्री की तरह श्री दादोबा पाण्डुरंग नामक एक सज्जन ने सन् १८४० ई० में "परमहँस मण्डली" नामक एक गुप्त संस्था की

स्थापना की। इस संस्था का उद्देश भारतवर्ष से जातिभेद को नष्ट कर देश में सार्वत्रिक एकता को स्थापन करना था। दादोबा का ख़याल था कि जातिभेद से भारतवर्ष के टुकड़े होकर वह दीन-हीन हो गया है और उसे एक सबल राष्ट्र बनाने के लिये यह आवश्यक है कि जातिभेद बिलकुल नष्ट कर दिया जाय व सारे भारत को एकता के एक सूत्र में बांधदिया जाय। बाबा पदम जी ने अपने मराठी भाषा के आत्मचरित्र में इस संस्था के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

"इस मण्डली के उद्देश ये थेः—

१) जाति भेद न मानना।

२) विधवाओं के पुनर्विवाह को उत्तेजन देना।

३) मूर्तिपूजा न करना।

इनके अतिरिक्त अन्य धार्मिक विषयों पर इस मण्डली ने कोई विशिष्ट नीति स्वीकार नहीं की थी।

इस मण्डली के सदस्यों की संख्या जब तक बहुत बड़ी न हो जाय तब तक इसकी कार्रवाइयों को गुप्त रखने का निश्चय किया गया था। हर सदस्य का यह कर्त्तव्य था कि वह इस मण्डली के सदस्यों की संख्या बढ़ाने का भरसक प्रयत्न करे। इस मण्डली की बैठकें गुप्त हुआ करती थीं। मण्डली में प्रवेश करने वालों को उसके नियम पढ़ कर सुनाये जाते थे, और जब वे उन नियमों को स्वीकृत कर लेते थे, तब उनकी अंजली में जल डालते थे। इसके बाद एक दूध का प्याला अध्यक्ष के मुँह को लगा कर उन्हें पिलाया जाता था। सभा के आरम्भ और अन्त में दादोबा पाण्डुरंग की रची हुई मराठी की प्रार्थना पढ़ी जाती थी।

हमारे पाठकों ने राजनैतिक गुप्त संस्थाओं का हाल तो अवश्य पढ़ा होगा पर सामाजिक सुधार के लिये स्थापित की जाने वाली अपने ढंग

की यह पहली ही संस्था थी। यद्यपि इसका उद्देश समाज सुधार था, पर यह अधिक प्रगति न कर सकी।

इसके बाद सन् १८४० ई० में बाल शास्त्री जाम्बेकर, दादोबा पांडुरंग, डॉक्टर भाऊदाजी आदि महाराष्ट्र विद्वानों ने समाज सुधार का कार्य किया। इसी समय सरदार गोपालराव हरि ने अपने "लोक-हितवादी" पत्र द्वारा समाज सुधार के आन्दोलन को बड़े जोर से चलाया। इस पत्र का जन्म सन् १८३४ ई० में हुआ था। लोकहितवादी ने सुझाया थः—

"हम सब गरीब-अमीरों को मिलकर रानी के पास एक अर्जी भेजनी चाहिए कि वर्तमान शासन पद्धति से हमें लाभ नहीं है और हमारे राज्य सम्बन्धी हक मारे जाते हैं। अंग्रेज भी वैसे ही मनुष्य हैं जैसे कि हिन्दू। इनका वर्तमान भेद मिटाकर इन्हें एक समान बनाने के लिये हिन्दुस्तान में पार्लमेंट स्थापित की जाय और इसकी बैठक बम्बई में हो। उसमें सब जातियों और स्थानों के समान प्रतिनिधि हों। तभी लोगों की दरिद्रता दूर होगी और अंग्रेजों का यह भ्रम भी दूर होगा कि भारतवासी मूर्ख हैं। इससे राज्य में उत्तम सुधार होंगे और लोगों को यह सहज दिखाई पड़ेगा कि राजा के शासन में क्या सुख था और लोकसत्तात्मक राज्य में क्या सुख है।"

इस अवतरण से लोकहितवादी की बुद्धिमता, प्रतिभा, और देश सुधार की भावना का पता लगता है।

लोकहितवादी के समय में ही विष्णुबुवा ब्रह्मचारी ने "सुखदायक राज प्रकरण" नामक निबन्ध में समाजवाद का प्रतिपादन किया है। यह देख कर सब को आश्चर्य होगा। वे कट्टर ब्राह्मण थे और हमारी प्राचीन संस्कृति में से ही हमें अपने भावी अभ्युदय का मार्ग मिलेगा, ऐसा उनका ख़याल था। वे कहते हैं:—

"सब लोग मिलकर सारी जमीन जोतें और बोवें और हर गांव में अनाज के कोठार रखे जायें और उनमें से ग्रामवासी पेट भर अन्न और

पशुओं के लिये आवश्यक घास दाना लेलिया करें। यह सब पैदावार एक के ही कब्ज़े में रहे और सब उससे आवश्यक सामग्री ले जावें। राजा को चाहिये कि वह सूत, ऊन, रेशम के कपड़े तैयार करावें और जिसको जिस कपड़े की आवश्यकता हो वह ले जाय। गहने भी घड़वा कर हर गांव में रखे जायं और सब स्त्री पुरुष उनका इस्तेमाल करें। हर प्रकार के शस्त्र, यन्त्र, और खेल प्रत्येक गांव में रहें। रेल और तार भी रहें। राजा, कारखाने के मालिक और किसान सब एक सा अहिंसक भोजन करें और वह सबको एक ही कोठार से मिले। सबकी शादियां राजा विवाह विभाग के द्वारा वर वधू की इच्छा और रज़ामन्दी से करे और जिसको कोई स्त्री पसंद न हो या जिसे कोई पति पसंद न हो तो उसके लिये दूसरी स्त्री या पति का प्रबंध कर दिया जावे। अर्थात् स्वयंवर की प्रथा डाली जाय। ५ वर्ष का बालक होते ही उसे राजा के तावे कर दिया जाय। उसको शिक्षा-दीक्षा और काम धन्धों का प्रबन्ध राजा करे। वृद्ध स्त्री पुरुषों को पेंशन मिले और इन भिन्न भिन्न विभागों के लोग पार्लामेंट के सदस्य हों।

कार्लमार्क्स से अपरिचित विष्णुबुवा को ये कम्युनिज़्म के ढंग के विचार सूझे कैसे? इसका जवाब यह है कि एक बाह्य परिस्थिति को देखकर सात्विक व राजस अथवा परार्थी व स्वार्थी मन पर भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं। इन्द्रियों के द्वारा मन पर और बुद्धि पर होने वाले संस्कार एक से होते हैं परन्तु जिसकी बुद्धि स्वार्थ से मलिन हो गई हो उसे उनमें स्वार्थ का मार्ग सूझता है और जिसकी बुद्धि परार्थी बनी हुई है उसको उस स्थिति में परार्थ का मार्ग दिखाई देता है। ऐसी दशा में सन्यस्थ-वृत्ति और लोक कल्याण में ही आनन्द माननेवाले सात्विक शुद्ध मन में पूर्वोक्त सर्व-सुख और समान-सुख की कल्पना क्यों न आनी चाहिये। (आचार्य जावडेकर महोदय के आधुनिक भारत से सङ्कलित)

मार्क्स और भारतवर्ष

सन् १८५३ ई० के लगभग समाजवाद (Socialism) के जनक महामति मार्क्स ने विदेशी राज्य द्वारा होने वाले भारत के विनाश पर अपने बहुमूल्य विचार प्रगट किये थे।

सन् १८५३ ई० की १४ वीं जून को मार्क्स ने एंगल्स (Engels) को जो पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने निम्न लिखित भाव प्रगट किये थे:-

"England it is true, in causing a social revolution in Hindusthan, was actuated only by the vilest interests, and was stupid in her manner of enforcing them. But that is not the question. The question is, can mankind fulfile its destiny without a fundamental revolution in the social state of Asia? If not, whatever may have been the crimes of England, she was the unconscious tool of history in bringing about that revolution."

अर्थात् "यह सच है कि हिन्दुस्तान में इंगलैण्ड के द्वारा जो सामाजिक क्रान्ति हुई है, उसमें उसकी घोर स्वार्थपरता छिपी हुई थी और उसे करने में उसने अपार मूर्खता का परिचय दिया था। लेकिन प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न यह है कि एशिया की सामाजिक दशा में बिना मौलिक परिवर्तन हुए क्या मनुष्य-जाति अपना विकास कर सकती है? अगर नहीं, तो इंगलैण्ड ने चाहे जो भी पाप किये हों, वह इस परिवर्तन के लिये अनजाने में इतिहास का अस्त्र बना।"

अमेरिका के न्यूयार्क हेरल्ड (New york Herald) और ट्रिब्यून (Tribune) ता° ८ अगस्त १८५३ ई० में आपने लिखा था:—

"The British were the first conquerors, superior, and therefore inaccessible, to Hindoo civilisation. They destroyed it by breaking up the native communities, by uprooting the native industry, and by levelling all that was great and elevated in the native society. The historic pages of their rule in India report hardly any thing beyond that destruction. The work of regeneration hardly transpires through a help of ruins never the less it has begun."

अर्थात् "अंग्रेज पहले विजेता थे जो विजितों से बढ़े थे और जिन तक हिन्दुस्तानी सभ्यता की पहुँच न थी उन्होंने ग्राम-समाज की जड़ें हिला कर भारतीय उद्योग धन्धों को चौपट करके इस सभ्यता का नाश किया। भारतीय समाज में जो कुछ भी महान् और गौरव पूर्ण था, उन्होंने उसे धूल में मिला दिया। हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज्य के इतिहास में इस ध्वंस के सिवा और बहुत कम बातें देखने को मिलती हैं। खंडहरों के ढेर में नई नींवें नहीं दिखाई देतीं फिर भी नींवें डाली जा चुकी हैं।

इसी प्रकार मार्क्स ने न्यूयार्क के दैनिक ट्रिब्यून (Daily Tribune) पत्र के २५ जून १८५३ई० के अंक में हिन्दुस्तान पर एक लेख लिखते हुए अपने निम्न लिखित विचार प्रगट किये थे :—

"There cannot remain any doubt but that the misery inflicted by the British on Hindustan is of an essentially different and infinitely more intensive kind than all Hindustan had to suffer before. I do not allude to European despotism, planted upon Asiatic despotism, by the British

East India company, forming a more monostrous combination than any of the divine monsters startling us in the temple os Salsette......

"All the civil wars, invasions, revolutions, conquests, famines, strangely complex, rapid and destructive as their successive action in Hindusthan may appear, did not go deeper than its surface. England has broken down the whole frame work of Indian society without any symptoms of reconstruction yet appearing. This loss of his old world with no gain of a new one, imparts a particular kind of melancholy to the present misery of the Hindoos, and separate Hindusthan ruled by Britain, from all its ancient traditions and from the whole of its past history."

अर्थात् "इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान पर जो मुसीबत ढाई है, वह पहले की मुसीबतों से बिलकुल भिन्न और कहीं ज्यादा कठोर है। मेरा संकेत यूरोप की निरंकुश तानाशाही की तरफ़ नहीं है जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान पर लाद दिया है, और जो एशिया की अपनी तानाशाही से गठ-बन्धन करके हिन्दुस्तान के राक्षसों से भी ज्यादा भयानक बन गई है।"

"हिन्दुस्तान में बहुत सी घरेलू लड़ाईयां हुईं, बाहर से हमले हुए, अकाल पड़े और उनसे बहुत बड़ा नुकसान हुआ, लेकिन उनका असर सतह से नीचे नहीं गया। आर्थिक व्यवस्था में उनसे कोई बड़ा परिवर्तन न हुआ अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानी समाज का तमाम ढाँचा तोड़ दिया है, लेकिन वे कुछ बना भी रहे हैं, इसका एक भी चिन्ह कहीं नहीं दिखाई देता।

हिन्दुस्तानियों की पुरानी दुनियां खो गई है और नई का कहीं पता नहीं है, और इसीलिये उनकी मुसीबत इतनी दर्दनाक है। अंग्रेज़ों की हुकूमत में हिन्दुस्तान का अपनी प्राचीन परम्परा और तमाम इतिहास से नाता टूट चुका है।"

सन् १८५७ ई० से पूर्व के सशस्त्र विद्रोह

सन् १८५७ ई० के पूर्व होने वाली विचार-क्रान्ति पर हम गत पृष्ठों में प्रकाश डाल चुके हैं। इस विचार-क्रान्ति के साथ ही उस समय भारत में कई स्थानों पर सशस्त्र विद्रोह हुए।

इस प्रकार का एक विद्रोह सहारनपुर जिले में हुआ, जिसमें खासी जन हानि हुई। दिल्ली डिविजन में और मुरादाबाद के मिराट (Mirath) में भी कई छोटे मोटे विद्रोह हुए। सन् १८२४ ई० में भारतवर्ष में कई जगह विद्रोह की आग सुलगी। कई स्थानों से भारत से अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने के नारे सुनाई देने लगे। सन् १८२६–२७ ई० में उमाजी नायक के नेतृत्व में पूना में भयंकर विद्रोह हुआ, जिससे पूना घोर अशान्ति में पड़ गया। सन् १८३१–३२ ई० में बिहार में कोल लोगों ने विद्रोह का झन्डा उठाया, जिसके प्रभाव से २००० वर्गमील का सारा देश विरान हो गया।

सन् १८४४ ई० में महाराष्ट्र के सावन्तवाड़ी राज्य में इस ज़ोर से विद्रोह उठा कि अंग्रेजी सेनापति आउटरेम (Outram) को उसे दबाने के लिये १०,००० सैनिकों की फौज भेजनी पड़ी। सन् १८४८ ई० में कांगा, जसवार और दातारपुर के राजाओं ने नूरपुर के वज़ीर के सहयोग से ब्रिटिश सरकार के खिलाफ बड़ी ज़ोर की बग़ावत की और यह घोषित किया कि ब्रिटिश राज्य का खात्मा हो चुका है।

कहने का अर्थ यह है कि १८५७ ई० के पहले देश में अशान्ति और असन्तोष का दौर दौरा हो रहा था और भयंकर क्रान्ति के लिये भूमि तैयार हो रही थी।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक सर जॉन मालकम Sir John Malcolm. ने लिखा है :—

"देशभर में ऐसे गश्ती पत्रों (Circular letters) और घोषणाओं (Proclamations) का प्रचार हो रहा था, जिनमें यह कहा जाता था कि अंग्रेजों ने धोखेबाज़ी से इस देश पर कब्जा किया है और वे ऐसे अन्याचारी हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तान की सम्पत्ति का शोषण किया, धर्म और रीति रिवाजों का नाश किया और हिन्दुस्तान को हर तरह से बरबाद किया। देशी सैनिकों को अंग्रेजों की हत्या करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता था। इस प्रकार के गश्ती पत्र बड़े उत्साह के साथ पढ़े जाते थे।"

इसके अतिरिक्त किसानों में भी अशान्ति के बादल मंडरा रहे थे। कर्नल मालेसन ने लिखा है–'किसानों में अंग्रेजी राज्य के प्रति बुरी भावनाएं बढ़ रहीं थीं और इसीके परिणाम स्वरूप कई कृषक-विद्रोह हुए (Decissive battles of India) इस समय कई प्रान्तों में उस असंतोष की अग्नि प्रकट या अप्रकट रूप से सुलग रही थी और उसीने जाकर फिर भयङ्कर विद्रोह का रूप धारण किया जो १८५७ के विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध है।

ईसवी सन् १८५७ का स्वातन्त्र्य-युद्ध

श्रीमान् विनायक दामोदर सावरकर ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "भारत का स्वातन्त्र्य युद्ध" (War of Indian Independance) में प्रबल युक्तियां और सुदृढ़ प्रमाणों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सन् १८५७ का विद्रोह वास्तव में कोई आकस्मिक विद्रोह न था बल्कि वह भारतियों का स्वातन्त्र्य-युद्ध था, जिसे उन्होंने विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिये सङ्गठित किया था।

१८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध की पृष्ठभूमि

ईसवीसन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध के विषय में लिखने के पूर्व उसकी पृष्ठ भूमि पर भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। हम गत पृष्ठों में यह दिखला चुके हैं कि ईसवी सन् १८५७ के पूर्व भारतवर्ष में अशान्ति और विद्रोह के बादल मंडराने लगे थे। कई स्थानों में उनका प्रत्यक्ष प्रकटीकरण भी होने लगा था।

भारतीय सैनिकों और अंग्रेज सैनिकों में बड़ा भेदभाव रखा जाता था। दोनों के वेतनों में जमीन आसमान का अन्तर था। भारतीय सैनिक अधिक से अधिक सुबेदार के पद तक पहुँच सकता था, जिसका वेतन १७४) रु० मासिक होता था। यह वेतन एक हल्के दर्जे के अंग्रेज़ रंगरूट को मिलने वाले वेतन से भी कम था। वजीरखां नामक एक भारतीय रिसालदार ने सर जॉर्ज केम्बेल से बड़े दुःख और विषाद के साथ कहा था "मैंने रिसालदारी से फ़ौज़ी नौकरी शुरू की, अब भी रिसालदार हूँ और आगे भी रिसालदार ही रहूँगा। हिन्दुस्थान में काले आदमी के लिये पद

वृद्धि (Promotion) की कोई गुंजाइश नहीं है" (G. Cambell memoirs of my Indian career). इसके अतिरिक्त जो सबसे बुरी बात थी, वह यह थी कि हिन्दुस्थानी सैनिक की इज़्ज़त पैरों तले रौंधी जाती थी। उसे बार बार अपमानित होना पड़ता था।

इसके अतिरिक्त भारतीय सैनिकों को हिन्दुस्थान के बाहर भी साम्राज्यवादी युद्धों में लड़ने के लिये भेजा जाने लगा। ईसवी सन् १८२४ में बराकपुर के सैनिकों ने बर्मा जाने से इन्कार किया। इसका परिणाम क्या हुआ ? वे बेचारे गोलियों से उड़ा दिये गये !! साम्राज्य विस्तार के युद्ध में भाग न लेने के अपराध में उन्हें गोलियों का शिकार होना पड़ा !! इसके बाद गवर्नर जनरल ने फ़ौजी भर्ती का एक्ट (Enlistment Act) पास किया, जिसके अनुसार उक्त एक्ट के अनुसार सेना में दाख़िल हुए। सिपाही हिन्दुस्थान से बाहर जाने से इन्कार नहीं कर सकता था। अगर कोई इन्कार करते तो उनके सामने बारकपुर के सैनिकों के गोली से उड़ाये जाने का उदाहरण मौजूद था।

सैनिकों के असन्तोष के बढ़ने के और भी कारण उपस्थित हुए। अवध प्रान्त को जिस निर्दयता और छल कपट से अंग्रेजी राज्य में मिलाया गया, उसने सैनिकों की अशान्ति की ज्वाला को और भी भड़का दिया। अवध यू० पी० में सैनिकों का केन्द्रस्थल था। अवध के अंग्रेजी राज्य में चले जाने से ६०००० सैनिक बेकार हो गये। उनमें अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ द्वेषाग्नि भड़क उठी। वे भारत से अंग्रेजी राज्य को नेस्तनाबूद कर देने के लिये कटिबद्ध हो गये। यहां यह कहना आवश्यक है कि बंगाल सेना (Bengal Army) में ३/५ सैनिक अवध के थे।

इससे सिपाहियों की राष्ट्रीय भावना को भी बड़ा धक्का पहुँचा। वे अंग्रेज़ों से बदला लेने के लिये कृत-निश्चय हो गये।

अवध की तरह लॉर्ड डलहौज़ी ने अपनी कुटिल नीति से सतारा नागपुर, तंजौर, झाँसी आदि अनेक देशी रियासतों को हड़प कर ब्रिटिश

राज्य में मिला लिया था इससे ब्रिटिश के विरुद्ध और भी ज़ोर से अशान्ति और असन्तोष फैला।

इसी प्रकार ब्रिटिश सरकार ने बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब को मिलनेवाली आठ लाख की पेंशन बन्द कर दी। बाजीराव की मृत्यु के बाद इस पेंशन पर नानासाहब का अधिकार था। भारत सरकार की इस कार्यवाही से असन्तुष्ट होकर नानासाहब ने लन्दन के कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स की सेवा में इस अन्याय के ख़िलाफ़ एक प्रार्थनापत्र भेजा पर उसका कोई फल न हुआ। तब निराश होकर नानासाहब ने अंग्रेजों के विरुद्ध तलवार उठाने का निश्चय किया।

अवध की तरह मैनपुरी के राजा के १२८ गांव में से ११६ गाँव छीन लिये। यू० पी० के एक दूसरे ताल्लुकदार के भी २१६ गाँव में से १३८ गांव छीन लिये गये। इसी प्रकार कई अन्य राजा भी अपनी जमींदारियों से विहीन कर दिये गये। सर हेनरी लॉरेन्स ने लॉर्ड कैनिंग को लिखा था:—"यू० पी० के ताल्लुकदारों ने अपने आधे गांव खो दिये। कुछ ताल्लुकदारों की तो सारी जमींदारी अँग्रेज़ों द्वारा हड़प ली गई। इतना होने पर भी किसानों को कोई राहत न मिली। भूमि कर अनाप-शनाप बढ़ा दिया गया। अन्य करों का दुःसह्य बोझ भी उनपर डाल दिया गया। इससे उनमें भी विद्रोह की भयानक अग्नि प्रज्वलित होने लगी। भारतवर्ष के प्रायः सारे प्रान्तों में अंग्रेजी राज्य के प्रति घृणा और द्वेष के भाव जाग्रत होने लगे। मुसलमानों में यह विद्रोहाग्नि और भी अधिक प्रबलता से प्रज्वलित होने लगी। ई० सन् १८५२ में पटना के मजिस्ट्रेट ने भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट में लिखा था:—"इस नगर में विद्रोहियों की संख्या बढ़ रही है। लोग खुले तौर से राजविद्रोह का प्रचार कर रहे हैं। पुलिस भी इन विद्रोहियों से मिली हुई है। मौलवी अहमदउल्ला इन विद्रोहियों का नेता है। उसने ७०० आदमियों को अपने घर में इकट्ठा कर उन्हें मुकाबले के लिये तैय्यार रहने का आदेश दिया है।" (W. W. Hunter; Indian Mussalmans pp. 22-3.)

मुसलमानों का एक दूसरा नेता फ़ैज़ाबाद निवासी मौलवी अहमद शाह ने अवध रुहेलखंड और भारत के उत्तर पश्चिम प्रांत में तूफ़ानी दौरा कर लोगों में विद्रोह की भयंकर भावनाएँ भरीं और उन्हें अंग्रेज़ों के खिलाफ़ तलवार उठाने के लिये प्रोत्साहित किया। कहने का मतलब यह है कि क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या ज़मींदार, क्या किसान सबमें बड़ी प्रबल विद्रोह की भावना जागृत हो उठी थी लोग विदेशी सत्ता से देश को मुक्त कर स्वदेशी सत्ता को फिर से प्रस्थापित करने के लिये बड़े लाला-यित हो रहे थे। फ़ौजों में भी यह विद्रोहाग्नि बड़े ज़ोरों से भड़क रही थी। लोग ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब वे सब मिल कर विद्रोह का झंडा उठावें।

विद्रोह का आरम्भ और विस्तार

भारतीय सैनिकों में असन्तोष की भावना का जागृत होना ही विद्रोह का मूल कारण था। यद्यपि कहीं २ पर सैनिक अंग्रेज़ों के प्रति स्वामि-भक्त भी रहे थे, किन्तु विद्रोह की ज्वाला को रोकने के लिये उनकी शक्ति पर्याप्त न थी। वैसे तो हिन्दू सैनिकों को छोड़कर मद्रास और बम्बई की समस्त सेना अंग्रेज़ों के साथ थी और दक्षिण के छोटे-मोटे विद्रोहों से भी मामूली परेशानी के अतिरिक्त उन्हें कोई बड़ी हानि नहीं उठानी पड़ी थी। परन्तु बंगाल की सेना ने बड़ी वीरता और सफलता के साथ विद्रोह की अग्नि को भड़काया और धीरे-धीरे चारों ओर बग़ावत की भयंकर ज्वालाएँ धधकने लगीं।

विद्रोह का ऐसा भयंकर रूप देखकर अंग्रेज़ी सरकार ने देहली, मेरठ रुहेलखंड, आगरा, बनारस, इलाहाबाद, पटना, छोटा नागपुर, दक्षिणी बंगाल, नीमच और अजमेर के कुछ ज़िलों में एवं उत्तर पश्चिमीय प्रांतों के कुछ क्षेत्रों में मार्शल लॉ की घोषणा कर दी। इतने विस्तृत क्षेत्र में मार्शल लॉ की घोषणा से ही विद्रोह के विस्तार का अन्दाज़ लगाया जा सकता है। ई० सन् १८५७ जून तक अवध में शिक्षित सैनिकों की

संख्या २५००० और देहली और देहली के आसपास ३०,००० तक पहुँच चुकी थी। देहली, रुहेलखंड, अवध और बुन्देलखंड ने विदेशी सत्ता को उखाड़ कर अपने आपको मुक्त कर लिया। सर रिचर्ड टैम्पल ने जब विद्रोह के समाचार सुने तो वह शीघ्रता के साथ इटली से लौटकर आए। परन्तु उन्होंने पंजाब के समस्त रास्तों को पूर्ण रूप से बन्द पाया। जनरल हैवेन्लौक ने भी पेरिस से लौटते समय देखा कि देहली जाने के समस्त थल मार्ग अवरुद्ध हैं और उन्हें विवश होकर जल मार्ग की शरण लेनी पड़ी।

कहीं कहीं तो विद्रोह ने विशाल जन-विद्रोह का रूप धारण कर लिया। भारत के चार बड़े प्रान्तों में—अवध, रुहेलखंड, बुन्देलखंड, सागर और नर्मदा के राज्यों में—समस्त जनता ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध बग़ावत का झंडा उठाया पश्चिमीय बिहार, पटना, आगरा और मेरठ के कुछ भागों में जनता और सेना ने एक साथ विद्रोह किया।

रुहेलखंड में एक दिन के अन्दर २ विद्रोह की अग्नि ने भयंकर रूप धारण कर लिया। बरेली, शाहजहांपुर, मुरादाबाद, बुदौन और अन्य कई स्थानों पर सेना, पुलिस और जनता ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। जमना के पश्चिमीय किनारे के कुछ राज्यों में राजाओं ने अपनी जनता को अँग्रेजों के आधीन ही रक्खा, किन्तु दोआब के ग्रामीणों ने विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंका। न केवल गंगा के किनारे के जिलों में ही, किन्तु गंगा और यमुना के बीच के समस्त ज़िलों में जनता विद्रोही हो उठी। अवध में विद्रोह का नेतृत्व सेना ने किया था। जिस ज़िले की सेना में विद्रोह की आग भड़कती वह ज़िला फिर अँग्रेजों के आधीन न रह पाता था। केवल दस दिन के अन्दर २ इन स्थानों से अंग्रेजी राज्य सत्ता का पूर्ण रूप से लोप हो गया, यहां तक उसके कुछ चिन्ह भी अवशेष न रहे। सेना बग़ावत करती थी और जनता अँग्रेजी राज्य सत्ता के आधिपत्य को अस्वीकार कर बग़ावत में सम्मिलित हो जाती थी। स्वतन्त्रता की लहर

समस्त अवध में बहने लगी और उसका बच्चा-बच्चा देश का सैनिक बन बैठा। कुछ ही समय में अवध के अन्दर सुसज्जित सैनिक ही सैनिक दृष्टिगोचर होने लगे। सिपाहियों और सैनिकों के अतिरिक्त जनता में से १००,००० लोगों ने सैनिकों का रूप धारण कर लिया था।

मध्यभारत के विषय में लॉर्ड कैनिंग ने लिखा था, "मध्यभारत हमारे हाथों से जा चुका है और हमें उसे पुनः जीतना है।"

अँग्रेजी सत्ता को उखाड़ने में विद्रोहियों को कहां तक सफलता मिली इसका अन्दाज़ हम इसी बात से लगा सकते हैं कि कलकत्ते की सरकार दूसरे प्रांतों से समाचार पाने में पूर्ण असमर्थ हो चुकी थी। देहली की विजय विद्रोहियों की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं शानदार विजय थी। इससे विद्रोहियों को कई प्रकार के शस्त्र प्राप्त हुए किन्तु इन सबसे बढ़कर इस विजय का मनोवैज्ञानिक प्रभाव था।

अँग्रेजों को देहली जीतते समय विद्रोहियों का बड़ा ज़बरदस्त मुक़ाबला करना पड़ा। जब अँग्रेज कितने ही असफल प्रयासों के पश्चात देहली में घुस गये तो उन्होंने देखा कि विद्रोही एक एक इञ्च भूमि के लिये युद्ध करने को तुले बैठे हैं। जब अँग्रेजों ने पूर्ण रूप से देहली पर अधिकार कर लिया तब भी आसपास के छोटे छोटे ग्रामों में युद्ध जारी रहा। ग्रामीण लोग अपने ललाटों पर लाल रङ्ग का घृणा सूचक चिन्ह लगाए रहते थे। बिहार में लोग अंग्रेज़ों को लगातार बड़ी तरक़ीब के साथ झूठी सूचनाएँ देकर धोखा दिया करते थे। अवध के विद्रोही बिना खाद्य सामग्री के ही घूमा करते थे क्योंकि वहां की जनता उनके खाने का पूर्ण प्रबन्ध कर दिया करती थी। वह अपना सामान भी निर्भयता के साथ छोड़ दिया करते थे क्योंकि उसे कोई छूता तक न था। ज़रा-ज़रासी देर में सूचनाएँ मिलने के कारण वे अपनी और अंग्रेज़ों की स्थिति से पूर्ण रूप से परिचित रहते थे। उनके विरुद्ध किसी प्रकार के षड्यन्त्र की भी सम्भावना न रहती थी, क्योंकि इनके गुप्तचर अंग्रेज़ों के प्रत्येक

पड़ाव पर उपस्थित रहते थे। न केवल सैनिकों ने किन्तु पुलिस और अन्य सरकारी कर्मचारियों ने भी विद्रोह में भाग लिया था। धनिकवर्ग का विश्वास भी अंग्रेजी सरकार पर से उड़ गया था। इससे सरकार की आर्थिक स्थिति को बड़ा धक्का लगा। उसे करीब १,५०,००,००० पौण्ड का घाटा उठाना पड़ा। व्यापार को भी काफी धक्का पहुँचा, क्योंकि इङ्गलैण्ड से माल आना बिल्कुल ही बन्द हो गया था। फलस्वरूप वस्तुओं के दाम अत्यधिक रूप से बढ़ गये, किन्तु यह सब विद्रोह के भयंकर आवेग के सामने आश्चर्य जनक नहीं लगता था।

अंग्रेज लेखकों ने इस देश व्यापी विद्रोह को 'सैनिकों का बलवा' नाम देकर इसके महत्व को घटाने के प्रयत्न तो बहुत किये किंतु भारतवर्ष के इतिहास में यह महत्व इस प्रकार घटाया नहीं जा सकता। सैनिकों के अतिरिक्त भी सभी वर्ग के लोगों ने इस में भाग लिया था। इसीलिये इस जन-विद्रोह को केवल सैनिकों का बलवा कहना उचित नहीं। अंग्रेजी-शासन के प्रति असन्तोष की भावना से प्रेरित होकर ही जनता ने अंग्रेजी राज्य को आमूल रूप से नष्ट कर भारत को स्वतन्त्र करने का निश्चय किया था।

जिस शीघ्रता और सफलता के साथ यह विद्रोह फैला उसने यह सिद्ध कर दिया कि विद्रोहियों को जनता की कितनी सहानुभूति एवं सहायता प्राप्त थी। जो लोग खुलकर विद्रोहियों का साथ न दे सकते थे उन्होंने भी अंग्रेजों के प्रति असहयोग की नीति का अवलम्बन तो किया ही था। यहां तक कि जनरल हैवेलॉक अपनी सेना को पार करने के लिये कोई नाव और नाविक भी न पा सके थे। कानपुर में भी जब विद्रोही मजदूरों को विद्रोहियों का साथ न देने दिया तो वे रात को चुपचाप भाग निकले।

सन् १८५७ का गदर किसी जाति विशेष अथवा किसी वर्ग विशेष द्वारा संचालित किया हुआ न था, किन्तु यह तो देश-व्यापी विद्रोह था, जिसमें हिन्दू मुसलमानों ने साम्प्रदायिकता के बन्धनों को तोड़कर अंग्रेजी

सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिये जान लड़ा दी थी। अंग्रेजों ने हिन्दू मुसलमानों को आपस में लड़ा कर इस विद्रोह को असफल करने की बहुत चेष्टा की किन्तु उनकी यह नीति सफल न हो सकी और उन्हें उल्टे मुँह की खानी पड़ी। इचिसन ने तो अपनी असफलता को स्वीकार करते हुए लिखा था,—"इस विद्रोह में हमारी हिन्दू मुसलमानों को आपस में लड़ाने की नीति सफल न हो सकी।" अंग्रेजी सरकार इस पर जल्दी काबू न पा सकी इसका मुख्य कारण यही था कि इसमें आदि से अन्त तक हिन्दू मुसलमानों ने एक दूसरे का साथ दिया था।

बरेली के नवाब खान बहादुर खाँ ने घोषणा की थी:—"समस्त मुसलमानों ने निश्चय किया है कि यदि हिन्दू अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने में मुसलमानों की पूरी सहायता करेंगे तो मुसलमान गौ–हत्या बन्द कर देंगे और गौ–मांस को उतनी ही घृणा की दृष्टि से देखेंगे जैसे की हिन्दू देखते हैं।" नवाब ने हिन्दुओं के उत्तर की प्रतीक्षा भी न की और गौ–हत्या बन्द कर दी।

दिल्ली के मुसलमान बादशाह ने राज्य छोड़ने का जो प्रस्ताव पेश किया वह तो गौ–हत्या-निषेध से भी अधिक महत्त्व पूर्ण था। बादशाह ने अपने हाथ से एक पत्र जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, अलवर आदि के राजाओं को लिखा;—"फिरङ्गी लोग भारतवर्ष से खदेड़ दिये जांय यह मेरी आन्तरिक इच्छा है। मैं सारे भारतवर्ष को स्वतंत्र देखना चाहता हूँ। किन्तु यह बगावत तब तक पूरी तरह से सफल न होगी जब एक योग्य व शक्तिशाली व्यक्ति इसके संचालन का भार अपने ऊपर लेने को तैय्यार न हो जायें और अपनी पूरी शक्ति के साथ इसका संचालन कर समस्त भारतवासियों को एकता की डोर में न बांध दें। यदि अंग्रेज भारतवर्ष से चले जांय तो उसके पश्चात् मैं ही भारतवर्ष का राज्य करूं, यह मेरी कतई इच्छा नहीं है। यदि समस्त राजा लोग मिलकर यह भार लेने को तैयार हों तो मैं सहर्ष अपने राज्य के सारे अधिकार सौंपनेको तैयार हूँ।"

हिन्दू लोग भी मुसलमानों के साथ एकता स्थापित करने के लिये इतने ही उत्सुक थे। नानासाहब का निजी सलाहकार भी एक मुसलमान व्यक्ति था। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों ने साम्प्रदायिकता के समस्त बन्धनों को तोड़ दिया था और एक होकर विद्रोह का झन्डा उठाया था। उस समय समस्त देश के सामने एक ही उद्देश्य था—'भारत की मुक्ति' और एक ही कार्य था—'स्वतंत्रता प्राप्ति।' हिन्दू और मुसलमानों ने विद्वेष की सम्पूर्ण भावनाओं को त्याग कर केवल एक उद्देश्य से प्रेरित होकर देश की स्वतंत्रता के लिये रक्त बहाया था।

सिक्खों ने भी अंग्रेजों का साथ उसी समय दिया था जब कि विद्रोहियों के भाग्य का पासा पलट चुका था। किन्तु ऐसे सिक्खों की संख्या ही बहुत कम थी। चन्द सिक्खों को छोड़कर सारे भारतवासी विद्रोही हो उठे थे और यही अंग्रेजों की चिन्ता का मुख्य कारण था। यदि यह विद्रोह जन-विद्रोह न होकर सैनिक विद्रोह ही होता तो शायद इसका महत्त्व इतना अधिक न होता एवं अंग्रेजों द्वारा आसानी से दबा दिया गया होता। किन्तु उस समय तो जनता ही बागी हो उठी थी और अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य था जनता के जोश को कुचलना। इसीलिये सिपाहियों की अपेक्षा जनता के साथ अधिक क्रूरता एवं नृशंसता का व्यवहार किया गया था।

विद्रोह केवल स्वराज्य प्राप्ति के लिये ही न हुआ था किन्तु धर्म की रक्षा भी उसका एक कारण था। विद्रोहियों की प्रत्येक टुकड़ी के साथ मौलवी और पंडित उपस्थित रहते थे। फकीरों ने तो गुप्तचरों का काम बड़ी ही कुशलता पूर्वक किया था। आश्चर्य की बात तो यह है कि विद्रोह का एक पक्ष धार्मिक होते हुए भी हिन्दू मुसलमानों में किसी प्रकार का वैमनस्य उत्पन्न न हुआ। धार्मिक भावनाओं ने जनता की विद्रोही प्रवृत्तियों को उकसा तो अवश्य दिया किन्तु फिर भी विद्रोह का मुख्य उद्देश्य धार्मिक न होकर राजनैतिक ही था। जहां कहीं भी विद्रोही विजयी होते थे वहां पर पुराने शासक फिर से नियुक्त कर दिये जाते थे।

ई० सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में जिन वीरों ने भारत-व्यापी विद्रोह का संगठन किया और विदेशी सत्ता को नष्ट कर भारत में स्वराज्य स्थापना का आयोजन किया उनका परिचय देना यहां आवश्यक प्रतीत होता है ।

महारानी लक्ष्मी बाई

भारतीय विद्रोह के इतिहास में महारानी लक्ष्मीबाई का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है । इस युद्ध में हिन्दुस्तान की जिस स्त्री-रत्न ने अपनी अलौकिक प्रतिभा और तेज से सारे देश को आश्चर्य चकित कर दिया था, उसके लिये अपना शुद्ध अभिमान दिखाकर उसे इतिहास में गौरवशाली पद देना इतिहास-वेत्ताओं का प्रधान कर्त्तव्य है । हम ही क्या महारानी के अनुपम गुणों के विषय में बहुत से अंग्रेजों ने जो कुछ कहा है उससे प्रत्येक देशभक्त का मस्तक ऊँचा होना चाहिये । मार्टिन नामक इतिहासकार ने राजपूत वीरों की तुलना करते हुये महारानी की तेजस्वीता के विषय में कहा था—"In the prime of life, exceedingly beautiful, vigorous in mind and body Laxmibai had all the pride of the famous Rajput prince the Rana Umer (the opponent of emperor Janhagir) who 'rather than be less, cared not to be at all"

रानी लक्ष्मी बाई अपनी युवावस्था में अत्याधिक सुन्दर थी; उनका मन उत्साह पूर्ण और शरीर सुदृढ़ था और सुप्रसिद्ध राजपूत वीर महाराना अमर सिंह (महाराना प्रतापसिंह के पुत्र और जहांगीर के प्रतिपक्षी) की तरह उनका भी प्रण था कि प्राण भले ही चले जांय पर अपनी मान हानि कभी नहीं होने दूंगी ।

सर एडविन आर्नोल्ड ने बड़े अचरज और आनन्द के साथ महारानी के पराक्रम का वर्णन करते हुए कहा था:—"जिस स्त्री के विषय में यह मालूम

हुआ था कि वह राज-काज न चला सकेगी—वही स्त्री प्रचंड सेनाका आधिपत्य स्वीकार करने के लिये पूर्ण समर्थ हुई !" इतना ही नहीं किन्तु उसने महारानी की प्रशंसा कर उनकी तुलना इंग्लैंडकी बोडिशिया नामक वीर रानी से की है। रानी बोडिशिया प्राचीन काल में रोमन लोगों से लड़ी थी‡। डवल्यू० सी० टॉरंस नामक पार्लियामेंट के एक सभासद्ने महारानी का वर्णन करते हुए फ्रांस देशकी जॉन आफ आर्क नामक स्त्री-रत्नसे उनकी तुलना की है। यह वीर स्त्री १५वीं सदीमें हुई

---

‡ We found that the woman from whom we had taken, as incapable of government, the regency of a state, could at least command an army. Her name was the centre of the revolt in the North-west. She was the swarthy Bodicca of the Hindu and Mussalmen levies; by her adroit intrigues Gwalior was nearlly lost, and central India with it. For weeks and months after Delhi fell, her wonderful power of generalship kept the British columns under Sri Hugh Rose at the strain of effort and endurance, till at last she led her troops in open battle against us at Kalpee. Defeated there, she made another masterly effort against us at Gwalior, and it was not the fault of this able and passionate woman that her army broke that day, and fled in utter confusion. Armed and dressed as a cavalry officer, she led, her ranks to repeated and fierce attacks, and when the camel corps, pushed at by Sri Hugh in person, broke her last line, she was among those who stood when hope was gone.

Dalhousie's Administration of British India.
Vol. II, P. 152.

और बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थकार ने बड़े अचरजके साथ कहा है कि 'तुमुल और भयंकर युद्धमें कई घन्टों तक घनघोर युद्ध परिश्रम करने पर भी महारानी किसी प्रकार रण से पीछे न हटती थीं!"† जस्टिन मेकार्थीने अपनी सत्य प्रिय मधुर वाणीसे प्रतापशाली वीर-मन्डलमें महारानी की गणना की है और उनका अभिनन्दन करते हुए कहा है❀

---

† At the first note of insurrection in 1857, she took to horse, and for months in male attiire headed bands, squadrons and at length formidable corps of the Mahrattaas, until she became in her way another Joan of Arc to her frenzied and fierce followers. No insurgent leader gave more trouble to the columns of Sir Hugh Rose; but not even in desperate and deadly fight, lasting for many hours, could she be persuaded to quit the field.

Empire in Asia P. 376.

❀ One of those who fought to the last on the rebel side was the Ranee or Princess of Jhansi whose territory, as we have already seen, had been one of our annexatiions. She had plunged all her energies into the rebellion, regarding it clearly as a rebellion, and not a mere mutiny. She took the field with Nanasahib and Tantia Topee. For months after the fall of Delhi she contrived to battle Sri Hugh Rose and the English. She led squadrons in the field. She fought with her own hands. She was engaged against us in the battle for the possession of Gwalior. In the uniform of the cavalry officer she led charge after charge and was killed among those who resisted to the last. Her body was found upon the field scarred

कि ह्यू रोजने उदार और विजयी योद्धाकी तरह, बड़े आनन्द से, सम्मान-पूर्वक, महारानी की जो स्तुति की है वह 'गुणी गुण वति' के न्यायसे बिल्कुल ठीक है। उन्होंने कहा है :—

"शत्रु-दल की ओरका सबसे उत्तम मनुष्य यदि कोई है तो वे झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई हैं।"

इस प्रकार जिनके विमल गुणों की सुन्दर सुगन्ध से पश्चिमी लोगों के अंतःकरण सन्तुष्ट होकर आनन्द से उल्लसित हों, उन अतुल पराक्रमी, वीर्यशालिनी महारानी लक्ष्मीबाई के समान दिव्य स्त्री-रत्न यदि हमारे आर्यावर्त्त को सुशोभित करें और उनके अति उत्तम गुणों के प्रकाश से प्रत्येक देशनिष्ठ और स्वदेशाभीमानी पुरुष के अन्तःकरण में उनके विषयमें यदि अभिमान और पूज्य बुद्धि उत्पन्न हो तो बड़े सौभाग्यकी बात होगी

महारानी लक्ष्मीबाई का नाम न केवल भारतवर्ष के इतिहास के पृष्ठों को, वरन संसार के विश्व के इतिहास को गौरवान्वित करता रहेगा। जाने हुए इतिहास के पृष्ठों में हमें एक भी महिला के शौर्य और विक्रम का ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिसने लक्ष्मी बाई की तरह

---

with wounds enough in the front to have done credit to any hero. Sri Hugh Rose paid her the well-deserved tribute which a generous conqueror is always glad to be able to offer. He said in his general orders, that *the best man upon the side of the enemy was the woman found dead, the Ranee of Jhansi.*

History of our own times by Justin Mc Carthy M. P. III.

सर ह्यूरोज़ सरीखे कुशल सेनापतियों और आधुनिक अस्त्रशस्त्रों से सुज्जित विशाल सेनाओं का अतुल वीरता के साथ मुकाबला कर प्रारम्भ में उनके छक्के छुड़ाये हों और उन्हें संक्षिप्त-परिचय आश्चर्यचकित कर दिया हो।

इस वीराङ्गना के पतिदेव झांसी के महाराजा गंगाधरराव का स्वर्गवास अल्पायु में हो गया था। मृत्यु के पहले उन्होंने दामोदरराव नामक एक निकटस्थ कुटुम्बी को दत्तक लिया था और उन्होंने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का अपना कृतनिश्चय भारत सरकार पर प्रगट कर दिया था। उस समय लॉर्ड डलहौज़ी की रियासतों को अँग्रेजी राज्य में मिलाने की नीति का दौरदौरा था। इससे गंगाधर राव की प्रार्थना स्वीकृत न हुई और अंग्रेज सरकार ने झांसी को ब्रिटिश राज्य में मिलाने का निश्चय कर लिया।

गंगाधरराव की मृत्यु के समय लक्ष्मीबाई की उम्र केवल १८ वर्ष की थी। अपने जीवनसर्वस्व पति की अकाल मृत्यु से उसका हृदय जर्जरित हो गया था। पर वह एक 'महान्' वीराङ्गना थी। अंग्रेज़ों के इस अन्याय से उसके शरीर में क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने प्राण रहते झांसी की रक्षा करने का संकल्प किया। उसने ब्रिटिश रेसिडेन्ट से साफ़ शब्दों में कहा कि "मैं प्राण रहते झांसी न दूंगी"।

बढ़ते बढ़ते बात बढ़ गई। अंग्रेज़ों ने सैनिक विद्या के पारंगत और अनुभवी सेनानायकों के नेतृत्व में एक विशाल सेना झांसी पर भेजी। लक्ष्मीबाई ने भी युद्ध की तैयारी की। उसने अतुल पराक्रमी और अद्भुत वीरत्व से एक महान बलशाली शत्रुओं का ऐसा डट कर मुकाबला किया कि वे दाँतों तले अंगुली दे गये। अंग्रेजी सेना के सैकड़ों सैनिकों को उसने धराशायी कर दिया। पर अंग्रेज़ों की विशाल सेना, उनके जनसंहारक आधुनिक अस्त्रशस्त्र और उनकी सैनिक चतुराई के कारण आखिर में झांसी का पतन हो गया।

इस समय झांसी पर मानों विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। अंग्रेजी सेना

ने नगर में तहलका मचा दिया। किला शहर और राजमहल लूटने के बाद अंग्रेजी सेना ने झांसी के प्रसिद्ध महालक्ष्मी के मन्दिर पर धावा किया और वहां के सब आभूषण आदि लूट लिये ! तीन दिन तक गोरों ने शहर को खूब मनमाना लूटा !! सात दिन तक यह लूट अव्याहत रूप से चलती रही !! इस समय नगरवासियों पर भीषण अत्याचार हुए। इस बात को ले महोदय ने अपने Central India नामक ग्रन्थ में स्वीकार की है।

महारानी लक्ष्मीबाई झांसी के किले से निकल कर दूसरे दिन—पांचवीं अप्रेल को —भांडेर नामक एक गाँव में पहुँची। वहां स्नानादि से निवृत होकर उन्होंने अपने पुत्र दामोदरराव को कुछ खिलाया पिलाया। इसके बाद वे कालपी की ओर जाने की तैयारी कर रही थीं कि इतने में लेफ्टिनेन्ट बोकर महारानी को पकड़ने के लिये अपनी सेना के साथ गांव के समीप आ पहुँचे। उस समय महारानी के पास न तो सेना थी और न अपनी रक्षा का—एक तलवार के सिवाय—अन्य कोई साधन था। अतएव तुरंत बालक को अपनी पीठ पर बांध, हाथ में तलवार ले घोड़े पर सवार हो वे शत्रु से लड़ने को तैयार हो गई। अँग्रेजी सवारों ने उन पर बड़े ज़ोर से धावा किया। यथार्थ में यही समय महारानी के युद्ध-कौशल के परीक्षण का था। एक ओर बोकर साहब सरीखे अनुभवी अंग्रेज वीर अपने चुने हुए सवारों को साथ लेकर वायु-वेग से दौड़ते चले आ रहे थे और दूसरी ओर उनका सामना करके वहां से सुरक्षित रूप से भाग जाने का यत्न एक ब्राह्मण अबला कर रहीं थीं ! यह बड़ा ही आश्चर्य-जनक दृश्य था। यद्यपि ऐसे कठिन समय में जय-लाभ की आशा करना महारानी के लिये एक असंभव प्रयत्न के समान था; तथापि उन्होंने अपने अलौकिक साहस, दृढ़ निश्चय, अद्भुत् शूरता और अद्वितीय रण-कौशल से एक रण-शूर अँग्रेज़ योद्धा के भी दांत खट्टे कर दिये। ज्योंहीं बोकर साहब अपने घोड़े को दौड़ाते हुये लक्ष्मीबाई को पकड़ने के लिये आगे बढ़े, त्योंही लक्ष्मीबाई ने कुछ दूर हटकर पहले उनके वेग को रोका

और अपनी तलवार का एक हाथ ऐसी फुर्ती से चलाया की बौकर साहब घायल होकर छटपटाते हुए नीचे गिर पड़े। बस फिर क्या था, रानी ने उसी समय अपने घोड़े को वायु-गति से आगे दौड़ाया और सीधा कालपी का रास्ता पकड़ा। बोकर साहब भी हताश होकर झांसी लौट गये।

महारानी लक्ष्मीबाई दिन भर घोड़ा दौड़ाती हुई रात के बारह बजे कालपी पहुँचीं। धन्य है! जो स्त्री सदा राजकीय सुख, विलास और वैभव में रहती थी उसीने आज बिना कुछ खाये पीये पीठ पर लड़के को बाँधे, २४ घंटे में १०२ मील का घोड़े पर प्रवास किया और मार्ग में अनेक आपत्तियों के आ जाने पर भी अपनी प्रतिज्ञा का दृढ़ता से पालन किया! इससे महारानी के साहस, मनोनिग्रह और घोड़े पर बैठने की शक्ति का वास्तविक परिचय मिलता है।

कालपी एक छोटासा शहर है। वह यमुना नदीके किनारे बसा हुआ है। यमुना के पश्चिमी किनारे पर एक मज़बूत किला बना हुआ है। वह तीन ओर से मज़बूत कोट से घिरा हुआ है। किले के पश्चिम की ओर एक मैदान है। उसके बाद शहर की आबादी है। यह शहर बहुत प्राचीन है।

कालपी में उस समय रावसाहिब पेशवा अपनी सेना सहित मुकाम किये हुए थे। उन्होंने वहां महारानी के रहने आदि का योग्य प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने महारानी के सामने इस बात पर खेद प्रकट किया कि वे झांसी के युद्ध में महारानी की कोई सहायता न कर सके। पर साथ ही में उन्होंने महारानी के अलौकिक वीरत्व के लिये उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि आप जैसी वीराङ्गना को धन्य है कि जिसने अपनी प्राचीन कीर्ति के अनुसार प्रबल अंग्रेजी सेना के साथ अतुल वीरत्व और पराक्रम से युद्ध किया।

रावसाहब पेशवा ने तांत्याटोपी और महारानी लक्ष्मीबाई को अपनी सेना का मुख्य अधिकारी बनाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि

काल्पी में घनघोर युद्ध की तैयारी होने लगी।

उधर अंग्रेज सर ह्यू रोजने झांसी का सुदृढ़ प्रबन्ध कर काल्पी पर हमला करने के लिये अपनी फौज़ सहित कूच किया। रास्ते में उन्होंने कोंच गांव पर हमला किया, जहां २०० विद्रोही जमा हो रहे थे। अंग्रेजी सेना और विद्रोहियों में घमासान लड़ाई हुई, पर आखिर विद्रोही टिक न सके और वहां का किला अंग्रेजों के हाथ पड़ गया।

इस पराजय का समाचार जब काल्पी पहुँचा, तब सब के कान खड़े हो गये। अधिक तैयारी और स्फूर्ति से अंग्रेजों का मुकाबला करने का विचार होने लगा। सैनिकों ने शपथ खाकर यह प्रतिज्ञा की कि या तो हम विजय प्राप्त करेंगे या युद्ध में प्राण दे देंगे।

उधर ब्रिगेडियर स्टुअर्ट और लेफ्टिनेंट कर्नल रॉबर्टसन की अधीनता में अंग्रेजी सेना काल्पी विजय के लिये आगे बढ़ रही थी। उधर विद्रोही सेना ने एक गलती की। उसने अपने किलेबंदी में न रह कर आगे बढ़ कर शत्रु का मुकाबला किया। इससे उनकी फ़ौज़ की रक्षा का स्थान छूट गया। अंग्रेजी सेना को यह अच्छा मौका मिल गया। वह अपने मौके पर आ डटी और तोपों की मार शुरू हो गई।

काल्पी की फौज़ ने अपनी जगह छोड़ दी, इस कारण इस तरफ की गोलियाँ अंग्रेजी-सेना पर कुछ काम नहीं कर सकतीं थीं और अंगरेजी-सेना की तोपें धड़ाधड़ गोले बरसा कर विद्रोहियों को स्वाहा कर रहीं थीं। काल्पी की फ़ौज़ ने अपनी रक्षा के लिये बहुत प्रयत्न किया, और बड़े ज़ोर शोर से अंग्रेजी फौज़ पर धावा किया। पर अपनी भूल के कारण उसे कुछ सफलता न हुई। उल्टी इन्हीं लोगों की अधिक हानि हुई। इस बीच में काल्पी की फ़ौज़ का अधिक ज़ोर देखकर हैदराबाद की पलटन भी अंग्रेजी फौज़ से आ मिली थी।

इस प्रकार काल्पी की सेना के अगले भाग का पराभव सुनकर सारी सेना बड़ी भयभीत हुई। सब लोगों में निराशा छा गई। राव-

साहब पेशवा, बाँदा के नवाब आदि मुख्य-मुख्य योद्धा डर कर भागने का विचार करने लगे। इस समय महारानी लक्ष्मीबाई ने उन्हें धीरज देकर कहा कि आप लोगों के लिये घबराने की कोई बात नहीं। अब ज़रा आप मेरा भी कौशल देखिये। इतना कह कर उन्होंने अपना घोड़ा बुलवाया और उस पर सवार होकर अपने लालवर्दी के सवारों को साथ लिये वे आगे बढ़ीं। अंग्रेजों के दाहिनी ओर जाकर उन्होंने बड़े वेग से उन पर धावा किया! उनके इस अचानक प्रचण्ड आक्रमण से अंग्रेजों की फ़ौज एक दम पीछे हट गई। बड़े बड़े अंग्रेज़ शूरवीर कट कट कर धराशायी होने लगे! इस बार महारानी ने इतनी बुद्धिमानी और सुव्यवस्थित रीति से युद्ध किया कि उनके शौर्य के कारण "लाइट फील्ड" तोपों के गोले कुछ देर के लिये बिलकुल बन्द हो गये और उनके गोलन्दाज स्तब्ध होकर जैसे के तैसे खड़े रह गये! इतना ही नहीं, किन्तु महारानी उन तोपों से २० फीट के अन्तर तक मारती-काटती चली गईं। महारानी की इस विलक्षण वीरता को देखकर कालपी की दूसरी सेनाओं का भी साहस बढ़ा और उन्होंने फिर बड़े वेगसे अँग्रेजी सेना पर चढ़ाई की। दोनों ओर से घमासान युद्ध मचा। जिस समय महारानी लक्ष्मीबाई अपने चपल घोड़े को बढ़ाती हुई और अपनी तल-वार के हाथ बड़ी चलाकी से चलाती हुई अँग्रेजी तोपखानों पर चढ़ीं उस समय उनकी वह वीर-श्री, वह आवेश, वह मर्दुमी और बहादुरी देखकर पेशवाके दूसरे सेनानायक भी फड़क उठे! वे भी अँग्रेजी सेना पर इस प्रकार टूट पड़े जैसे जौके खेत पर टिड्डी दल टूट पड़ता है! उस समय जो घनघोर युद्ध हुआ उससे जान पड़ता था कि अब बलवाइयों की जीत होने में विलम्ब नहीं है। महारानी दाँतों से घोड़े की लगाम पकड़े, दोनों हाथों से सड़ासड़ तलवार चला रही थीं। उनका तेज और शौर्य मानो इस समय फूटा निकलता था। वे प्रत्यक्ष चण्डिका का अवतार जान पड़ती थीं! पेशवा की सेना भी बड़ी बहादुरी से लड़ रही थी। इस लड़ाई में अंग्रेज वीरों के छक्के छूट गये! तोपखानों के बचे बचाये गोल-

न्दाज़ हतवीर्य होकर भागने लगे। घोड़ों के ऊपर का तोपखाना फिसल गया; तोपखानों की व्यवस्था बिलकुल बिगड़ने लगी। इतने ही में ब्रिगेडियर स्टुअर्ट अपना घोड़ा बढ़ाते हुए तोपखाने के पास आये और गोलन्दाज़ों को उन्होंने खूब उत्साहित किया। वे लोग फिर से तोपें दागने लगे। जब सर ह्यू-रोज़ को यह समाचार ज्ञात पड़ा कि महारानी लक्ष्मीबाई ने पेशवा की सेना साथ लेकर बड़े वेग से धावा किया है और अँग्रेजी तोपें बन्द कर दी हैं तब वे अपने साथ ऊँट सवारों की सेना लेकर बहुत जल्दी युद्ध-स्थल की ओर दौड़े और स्वयं सेनानायक बनकर उन्होंने कालपी की फ़ौज़ पर बड़े जोर से हमला किया। बलवाइयों की सेना बहुत देर तक मस्त होकर अँग्रेज़ी-सेना से लड़ती रहीं; पर जब उस पर ८६ वीं और २५ वीं पलटन के शूर-वीर सिपाही टूट पड़े तब उसके होश-हवास जाते रहे। सर ह्यू रोज़ के ऊँट-सवारों ने बड़े ज़ोर से विद्रोहियों पर गोलों की वर्षा की। कालपी फ़ौज़ भागकर तितर-बितर होने लगी महारानी ने अपने सिपाहियों के साथ बढ़कर अँग्रेजी सेना की मार बन्द करके उन्हें पीछे हटाने का बहुत यत्न किया। पर पेशवा की फ़ौज का साहस टूट जाने के कारण उन्हें और आगे बढ़ने की सहायता न मिली और निराश होकर पीछे लौटना पड़ा। इस प्रकार पेशवा की फ़ौज के हताश हो जाने पर महारानी भी राव साहब पेशवा की छावनी में लौट आईं। कालपी पर अंग्रेजी सेना का अधिकार हो गया। इस युद्ध में अंग्रेजी सेना को प्रचुर परिमाण में युद्ध सामग्री मिली।

रावसाहब पेशवा, महारानी लक्ष्मीबाई, बांदा के नवाब आदि प्रमुख नेता बड़ी युक्ति से कालपी से निकल कर गवालियर से ४६ मील की दूरी पर गोपालपुर नामक गांव में चले आये। पेशवा के सेनापति तांत्या टोपी भी गोपालपुर में आकर इन लोगों से मिल गये। जब राव साहब पेशवा अपनी पराजय से खिन्न हो उठे, तब वीराङ्गना महारानी लक्ष्मीबाई उनके डेरे पर गईं और उनसे कहने लगीः—

"आज तक जिन-जिन वीरों ने बहादुरी दिखलाई है उन सब को सुदृढ़ किलों का आश्रय लेना पड़ा है। छत्रपति श्री शिवाजी महाराज ने मुसलमानों को नीचा दिखाकर जो हिन्दू-राष्ट्र स्थापित किया था, वह भी सिंहगढ़, रायगढ़, तोरण आदि किलों के ज़ोर पर किया था। पहले पहल अपनी रक्षा के लिए उन्होंने प्रचंड और लड़ाई के योग्य किले ले लिये। इसके बाद अपना पराक्रम और शूरता दिखलाकर राजसत्ता स्थापित की। इसलिए प्राचीन अनुभव से भी यही सिद्ध होता है कि बिना किलों के लड़ाई करना वृथा है। झाँसी और कालपी के समान जंगी किले हमारे आधीन थे, इसलिए इतने दिनों तक अंग्रेज़ी फ़ौज़ के सामने हम लोग लड़ सके। परन्तु दुर्दैवके कारण अब ये किले हम लोगों के हाथ में नहीं रहे। इसलिए फिर एक प्रचंड किला हस्तगत करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस समय जी बचाकर जहाँ हम लोग भागकर जायेंगे, अंग्रेज़ी-सेना वहीं हमारे पीछे-पीछे पहुँचेगी और हमारा नाश किये बिना न रहेगी। जो कुछ होना होगा सो तो होगा ही; उस पर कुछ ध्यान न देकर इस समय हमें कोई किला लेना चाहिए, और उसकी मदद से अंग्रेज़ों से लड़ाई करके विजय प्राप्त करना चाहिए, यही इस समय कर्तव्य है"। महारानी लक्ष्मीबाई की यह सलाह सबको पसंद आई। रावसाहब पेशवाने पूछा कि कौनसा किला हस्तगत करना चाहिए? महारानी ने कहा। इस समय झाँसी अथवा कालपीका किला लेने की आशा करना जान-बूझ कर शत्रुओं के मुखमें पड़ना है। इसलिए ग्वालियर पर चढ़ाई करके सेंधिया सरकार और उनकी फ़ौज़ से सहायता लेनी चाहिए। वहां पहाड़ी किले का आश्रय मिलने पर फिर कुछ दिनों तक युद्ध चलेगा और विजय पाने की अभिलाषा पूर्ण होने की आशा बँधेगी"।

महारानी ने इस संकट के समय में जो यह युक्ति सुझाई उसके लिये कर्नल मैलेसन के समान अंग्रेज़ ग्रन्थकारों ने भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मैलेसन ने रावसाहब पेशवा, बाँदा के नवाब, तांत्याटोपी और

लक्ष्मीबाई, इन चारों मुखियों की बुद्धि-चतुरता की तुलना करके उन सब में महारानी को बड़ी बुद्धिमती और श्रेष्ठ बतलाया है। वे लिखते हैं:—

"बलवाइयों के अगुओं के लिए यह समय बड़े संकट और मार्के का था। पर जब कोई कठिन समय आ पड़ता है तब कैसे ही उपाय भी सूझ जाते हैं। वह उपाय बुद्धिमती महारानी के मस्तिष्क में आया। इस बात में सन्देह ही था कि यदि यह उपाय महारानी न ढूँढ़ निकालती तो और किसी को सूझता या नहीं? इन चारों की पूर्व कृति को देखकर कहा जा सकता है कि रावसाहब पेशवा और बाँदा के नवाब को यह उपाय कभी नहीं सूझ सकता था, इसलिए इन दोनों के सम्बन्ध में विचार करने की कोई ज़रूरत नहीं। उन दोनों में से किसी के बर्ताव और बुद्धि से ऐसा नहीं जान पड़ता था कि वे इस भयंकर प्रसंग को दूर कर सकते। अब बाकी दो में से हम थोड़ी देर के लिये तॉत्याटोपी को भी छोड़ देते हैं। हम यह नहीं कहते कि तॉत्याटोपी भी यह उपाय न ढूंढ़ पाते और हम यह भी नहीं कह सकते कि उनमें इस उपाय के ढूंढ़ निकालने की बुद्धि न थी; पर तॉत्याटोपी का स्वलिखित चरित्र पढ़ने से मालूम होता है कि उन्होंने यह बात स्वयं कबूल की है कि यदि महारानी उस समय न होती तो शायद यह उपाय और किसी को न सूझता। इस उपाय के ढूंढ निकालने का सारा श्रेय महारानी को ही प्राप्त है। अब रही महारानी की बात सो इसमें सन्देह नहीं कि बड़े कामों के करने में जिस प्रकार के साहस और बुद्धिमानी की ज़रूरत पड़ती है वह सब उनमें थी। उन्हें अपने शत्रुओं के प्रति द्वेष-बुद्धि, बदला लेने की तीव्र इच्छा, हृदय के सदा जलते रहने और प्राणान्त हो जाने तक युद्ध करने की इच्छा आदि के कारण इस मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा था। उनके मार्ग में जो आपत्तियाँ थीं उनको वे अच्छी तरह जानती थीं। वे यह भी जानती थीं कि पहली बार चाहे उनकी जीत हो भी जाय, पर अन्त में उनका पराभव निश्चित है। उनके साथियों में रावसाहब पेशवा

पर उनका वज़न अधिक था। उपर्युक्त बातों से हम यह निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि साहसी महारानी ने जो उपाय सुझाया उसका अवलम्बन उनके साथियों को गोपालपुर में करना ही पड़ा।"

महारानी को युक्ति रावसाहब पेशवा को बहुत पसंद आई। इसके लिये उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई की बड़ी प्रशंसा की। उस समय ताँत्याटोपी भी वहीं मौजूद थे। महारानी के कथन का उन्होंने पूर्ण-रूप से अनुमोदन किया। ताँत्याटोपी अनेक बार गुप्त रीति से ग्वालियर गये थे, इस कारण उनको वहां के दरबार और सेना का हाल अच्छी तरह मालूम था। उनको यह मालूम हो गया था कि इस धावे में पेशवा को किस क़दर यश प्राप्त होगा। महारानी का प्रस्ताव सबकी अनुमति से पास हो गया और ग्वालियर पर चढ़ाई करने की तैयारी हुई। महारानी की यह युक्ति बड़ी चतुरता और महत्त्व की थी! जब पेशवा की फ़ौज के सरदारों को यह बात मालूम हुई तब उन्हें भी कुछ विजय पाने की आशा और उत्साह हुआ। उन्होंने भी महारानी की बहुत तारीफ़ की और ग्वालियर पर चढ़ाई करके वहां का क़िला जीतने की इच्छा प्रदर्शित की।

महारानी लक्ष्मीबाई की सलाह के अनुसार सब लोगों ने ग्वालियर की ओर कूच किया। यहां पर पाठकों के जानने के लिये पहले सेंधिया-सरकार के दरबार की दशा का कुछ हाल लिखना आवश्यक जान पड़ता है।

उस समय जयाजीराव सेंधिया ग्वालियर के महाराज थे। उनकी अवस्था उस समय २३ वर्ष की थी। सन् १८४५ ई० में जब अंग्रेजों और ग्वालियर की लड़ाई हुई थी तब उसमें अंग्रेजों की विजय हुई थी। सेंधिया-सरकार ने तब उनसे सुलह कर ली थी। उसी समय से ग्वालियर राज्य में अंगरेजी सरकार का अच्छी तरह प्रवेश हो गया; वहां के दरबार में उसका खूब दबाव हो गया। इस सुलह से ग्वालियर का क़िला भी अंगरेजों के हाथ में चला गया था और सेंधिया सरकार का लड़ाई का

सामान और सेना भी तितर-बितर हो गई थी। सन् १८५३ से यद्यपि महाराज जयाजीराव को रियासत का पूरा अधिकार मिल गया था तो भी उसका कुछ इन्तज़ाम रेज़िडेंट के विचार से चलता था। महाराज की ओर से श्रीयुत दिनकरराव राजवाड़े राज-काज करते थे। वे राज-काज बड़े में बड़े निपुण और व्यवहार-दक्ष थे। उन्होंने रेज़िडेंट से मिलकर राज्य का अच्छा सुधार किया था।

इतना होने पर भी ग्वालियर में अन्दर ही अन्दर विद्रोह की अग्नि भड़क रही थी। इसका कारण यह था कि उस समय विभिन्न प्रान्तों से विद्रोह के समाचार आ रहे थे। मेरठ, दिल्ली आदि कई स्थानों में अंग्रेज़ों की बुरी तरह हार हुई थी। लोग अंगरेज़ी राज्य के नाश के स्वप्न देखने लगे थे। पर महाराज जयाजीराव अंगरेज़ों के पक्ष में थे। वे राव साहिब और लक्ष्मीबाई की किसी प्रकार सहायता न करना चाहते थे। इतना ही नहीं उन्होंने अंगरेज़ों का पक्ष लेकर अपने ही देशवासियों के खिलाफ़ तलवार उठाने का निश्चय किया। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों पक्षों में युद्ध ठन गया। इसमें महाराज सिंधिया की हार हुई और इन्हें अपने दीवान सर दिनकर राव राजवाड़े के साथ आगरा भाग जाना पड़ा।

इधर विद्रोही लोगों ने बड़े आनन्द के साथ शहर में प्रवेश किया। ग्वालियर के जो सरदार पेशवा के पक्ष में थे वे विद्रोहियों से आ मिले। ग्वालियर की फ़ौज ने रावसाहब पेशवा को अपना स्वामी समझ कर उनके स्वागत के लिये तोपों की सलामी दी। पेशवा बड़े ठाट बाट और लवाज़मा के साथ सिन्धिया के राज महल में पधारे और वहीं अपना डेरा डाला। महारानी लक्ष्मीबाई लश्कर के पास नवलखा नामक बाग में उतरी पेशवा के साथ के और दूसरे सरदार शहर के भिन्न भिन्न महलों में उतरे। कहने का मतलब यह है कि ग्वालियर के किले पर पेशवा की विजय पताका फहराने लगी।

शहर पर अधिकार होते ही ताँत्याटोपी ने ग्वालियर के किले की तरफ कुछ सेना भेजी। किले के अधिकारी ताँत्या साहब से पहले ही से मिले हुये थे। इसलिए किले पर अधिकार करने में उन्हें कुछ प्रयास नहीं पड़ा। तांत्याटोपी की सेना के पहुँचते ही किले वालों ने दरवाज़े खोलकर सारा किला उनके स्वाधीन कर दिया। ग्वालियर के समान जंगी और पहाड़ी क़िला तथा अपरिमित युद्ध सामग्री पाकर ताँत्या को अत्यन्त हर्ष हुआ। उनको इस बात का गर्व हुआ कि ऐसे अजेय किले के अप्रतिम सामर्थ्य के आगे अब हमारी बराबरी कौन कर सकता है?

किला और शहर ले लेने पर विद्रोहियों ने ग्वालियर में बड़ा उपद्रव मचाया। पहले तो रेज़िडेंसी पर धावा करके उसे जला दिया और वहां का सारा माल असबाब लूट लिया। इसके बाद सेंधिया-सरकार के पुराने राजमहल और उनके अँगरेज़-हितैषी सरदारों के महलों पर उन्होंने धावा किया और उन्हें नष्ट करना आरम्भ किया। उन्होंने राज-का विध्वन्स करके दीवान दिनकरराव, सरदार बलवन्तराव और माहुरकर आदि प्रधान दरबारी लोगों की हवेलियां मिट्टी में मिला दीं। इतना ही नहीं, किन्तु उन्होंने शहर लूटना भी आरम्भ कर दिया। परन्तु सौभाग्य से जब रावसाहब पेशवा ने इस बात का सख्त हुक्म दिया कि शहर वालों को कोई न लूटे और न कोई उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ़ दे, तब कहीं जाकर यह लूट-मार बन्द हुई।

ग्वालियर जीतने पर रावसाहब चैन की बन्सी बजाने लगे। उन्हें शायद यह ख्याल न रहा कि उनके प्रबल शत्रु अंगरेज उन पर चढ़ाई करने वाले हैं वे तो नित्य नये नये उत्सवों और ब्राह्मण भोजनों में लीन हो गये। वे अपने कर्त्तव्य को बिलकुल भूल गये।

यह दशा देख कर महारानी लक्ष्मीबाई को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने रावसाहब से बारम्बार यही कहा कि आप इस समय तो यह सुख साज़ बन्द कीजिये। यह समय उत्सव और आनन्द मनाने का नहीं

है। युद्ध के लिये तैयार होने का है। परन्तु रावसाहब पेशवा ने महारानी की बातों पर ध्यान न दिया। इस पर महारानी ने ज़रा ज़ोर देकर कहा—"आप इस विजय के आनन्द में मग्न हैं, पर यह बात अच्छी नहीं है। सेंधिया का सब ख़ज़ाना और सेना आपके आधीन है। इसका यदि अच्छा उपयोग नहीं किया जायगा तो आपकी सब आशाएं धूल में मिल जायंगी। अँगरेज लोग बड़े चालाक और उद्योगी है। इस बात का कुछ ठीक नहीं है कि वे कब हम लोगों पर चढ़ाई कर दें। यदि आप ऐसे ही अचेत पड़े रहे तो हमारा नाश होने में तनिक भी देर न लगेगी। इससे आप अब यह ऐश आराम छोड़िये और सेना की तैयारी में लगिये। फ़ौजी लोगों की तनख्वाह बढ़ाकर उन्हें उत्साहित करना चाहिये। यह समय व्यर्थ नष्ट करने का नहीं है। बड़ी कठिनता से कार्य-साधन के लिये अनुकूल समय मिला है; अतएव अब आपको सावधानी के साथ युद्ध की तैयारी में लग जाना चाहिये।" परन्तु ना समझी के कारण पेशवा के मन पर महारानी के इस उपदेश का कुछ असर न हुआ। वे बराबर उसी आनन्द में मग्न रहे। ब्राह्मण-भोजन भी वैसा ही चलता रहा। ताँत्याटोपी भी अपनी बलवान् सेना के घमंड में मस्त रहे। उन्होंने तो यहाँ तक समझ लिया कि अब हमारी सेना का मुक़ाबला अंग्रेज़ लोग कर ही नहीं सकते!

उधर सर ह्यू रोज और ब्रिगेडियर जनरल नैपियर ग्वालियर पर चढ़ाई करने की ज़ोर शोर से तैयारी करने लगे। तत्कालिन गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग ने उन्हें इसके लिये स्वीकृति भी देदी। ६ जून १८५७ को सर ह्यू रोज ने कालपी से ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया।

इस समय इनके साथ मध्य भारत के पोलिटिकल एजेन्ट सर रॉबर्ट हेमिल्टन और ग्वालियर के रेजीडेन्ट मेकफरसन भी थे। इनसे सर ह्यू रोज को बड़े मौके की सलाह मिला करती थी। ११ जून १८५७ को इन्दौर के गांव में स्टुअर्ट की अधीनता में इन्हें एक और सेना मिल

गई। उन्होंने ग्वालियर के पास मुरार की छावनी पर हमला करने का निश्चय किया। अंगरेजों की इन सब गति विधियों से रावसाहब पेशवा बेखबर से रहे। अपने विजयोत्सव के आनन्द में बाहरी परिस्थिति को भूल गये। जब अँगरेजी सेना निकट आ पहुँची तब इनकी नींद खुली और उन्होंने तात्याटोपी को लड़ाई की तैयारी करने का हुक्म दिया। फिर क्या था। राव साहब की फौज़ अंगरेजों का मुक़ाबला करने के लिये आगे बढ़ी। सर ह्यू रोज ने पहले से ही बड़ी फ़ौज़ी तैयारी कर रखी थी। उन्होंने रावसाहब की फ़ौज़ पर बड़े जोरों से आक्रमण किया। राव साहब की फ़ौज़ घबरा गई। हाँ यहाँ यह कहना आवश्यक है कि मुरार में महाराज सिंधिया की फौज पड़ी हुई थी। वह अंगरेजों से खार खाई हुई थी। उसने अंगरेजी सेना पर भयंकर गोला वृष्टि की। पर सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों पर सर ह्यू रोज ने पहले से ही अधिकार कर रखा था। इससे उक्त सेना को कामयाबी नहीं मिली और मुरार पर अंगरेजों का अधिकार आ गया।

ग्वालियर की लड़ाई और महारानी की अद्भुत वीरता

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं अँग्रेज सेनापति चारों ओर से ग्वालियर पर चढ़ाई कर उसे जीतने का प्रयत्न करने लगे। इधर राव साहब पेशवा भी फ़ौज़ी तैयारी में मग्न हो गये। ताँत्याटोपी पहले ही से अपनी सेना का प्रबन्ध कर रहे थे। उन्होंने जगह जगह तोपों के मोर्चे लगा दिये। महारानी लक्ष्मीबाई भी फ़ौज़ी पौशाक से सजकर तैयार हो गईं। वे अपनी सदैव की फ़ौज़ी पोशाक धारण कर अपने उम्दा और चतुर घोड़े पर सवार हुईं और अपनी प्राण प्रिय रत्न जटित तलवार म्यान से निकाल कर एक युद्ध-पटु योद्धा के समान अपनी फ़ौज़ की क़वायद लेने लगीं। उनका उस समय वह भव्य स्वरूप, वह गम्भीर स्वर और कट्टर स्वाभिमान देखकर उनके सैनिकों के अन्तःकरण वीर श्री से भर गए और शत्रुओं पर एक दफ़ा धावा करके उन्हें नष्ट कर देने के

लिये उन्हें आवेश चढ़ आया। इस समय महारानी लक्ष्मीबाई का महालक्ष्मी के समान प्रखर जाज्वल्यमान स्वरूप और संग्राम में प्रतापाग्नि की धूमधारा के समान झलकनेवाली उनकी तलवार की दिव्य चमक को देखकर किसका हृदय न थर्रा उठा होगा ?

कहने कि आवश्यकता नहीं कि इस युद्ध में महारानी लक्ष्मीबाई ने जिस अलौकिक पराक्रम का प्रदर्शन किया, वह वीरत्व के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों से लिखने योग्य है। उन्होंने और उनकी वीर सेना ने शत्रु दल के सैकड़ों सैनिकों को धराशायी कर दिया। उन्होंने अपनी वीर सेना के हृदय में वीरत्व का अद्भुत संचार किया और उनकी नस-नस में चेतना और नवजीवन का संचार किया। कई बड़े-बड़े युद्धों में विजय पाये हुए अंग्रेज़ सैनिक भी महारानी के अपूर्व शौर्य और तेज़ को देख कर आश्चर्यचकित हो गये। महारानी ने युद्ध शौर्य की पराकाष्ठा दिखा दी। महारानी के वीर सवारों ने आवेश में आकर बड़ा भयंकर युद्ध किया। वे अपनी अपनी तलवारें म्यान से खींच कर, प्राणों का भय छोड़ कर, विजय श्री पाने की लालसा से, अंग्रेज़ शत्रुओं पर एकदम टूट पड़े। झनाझन तलवारें बजने लगीं। अँग्रेज़ वीर अपने प्राणों से निराश हो बैठे थे कि इतने में कर्नल रेन्स और कर्नल पेलीने ६५ वीं पलटन के बे-थके शूर और बम्बई की १० वीं नेटिव इन्फेंट्री को आगे कर एकदम झोंका देते हुए विरोधियों के पार्श्व भाग पर धावा बोल दिया। इधर के वीरों पर चारों ओर से मार पड़ने लगी। इसलिए उनको पीछे हटना पड़ा। अँग्रेज़ों की विलक्षण युक्ति, दावेबाज़ी और अगणित सेना के आगे थोड़े से सवारों का पराक्रम कहाँ तक कामयाब हो सकता है ?

उधर सर ह्यू रोज ने मुरार की ओर से राव साहिब पेशवा की सेना पर चढ़ाई कर उनके दो मोर्चे छीन लिये। जब यह समाचार महारानी की सेना में पहुँचा, तब वहां कुछ घबराहट फैल गई। ताहम् भी महारानी और उसके सवार बड़े साहस से युद्ध करते रहे। यद्यपि अंग्रेज़ों की असह्य

मार के कारण इस ओर के बहुत से योद्धा घायल होकर गिरपड़े थे, तो भी पीछे की पैदल सेना और तोपखाने पर महारानी को अन्तिम आशा थी। परन्तु अन्त में वह भी आशा-तन्तु टूट गया और इस निर्वाण के अवसर पर उन्हे केवल अपनी पानीदार तलवार को छोड़ कर दूसरा कोई आश्रय न रहा।

महारानी का अन्तिम युद्ध

महारानी लक्ष्मीबाई ने विभिन्न क्षेत्रों में अंग्रेजों के साथ जिस अपूर्व वीरता और शौर्य के साथ युद्ध किया, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। महारानी का अन्तिम युद्ध ग्वालियर में हुआ। अँग्रेजों की रण कुशल सेना ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। उनकी फ़ौज तितर बितर हो गई। उनके साथ केवल उनके विश्वास पात्र कुछ नौकर और नौकरानियां थीं। वे अकेली अंग्रेज़ो की विशाल सुसज्जित सेना से तुमुल युद्ध कर रहीं थीं। उस समय महारानी ने जिस अद्‌भुत पराक्रम से युद्ध किया, उसकी मिसाल स्त्री-संसार के इतिहास में मिलना असम्भव है। अंग्रेज़ी सेना के पास भयंकर नरसंहारक अस्त्र-शस्त्र थे, विलक्षण रण कौशल्य था, और कई बड़े-बड़े युद्धों में विजय पाये हुए सेनापति थे। इन साधनों से युक्त अंग्रेज़ी सेना चारों ओर से आक्रमण कर रही थी। यद्यपि महारानी ने अपनी अद्‌भुत वीरता और शौर्य से युद्ध किया और कई अंगरेज सैनिकों को धराशायी कर दिया, पर अन्त में इस विशाल सेना के सन्मुख वह कब तक टिक सकती थीं। उन्होंने उस सैनिक व्यूह से निकलने की चेष्टा की, पर कई बार असफल रहीं। परन्तु आखिर में अपने प्राणों की परवाह न कर तलवार हिलाती हुई वे अपने थोड़े से अनुचरों के साथ उस व्यूह से बाहर निकल ही तो गईं। पर दुर्भाग्य ने वहां भी उनका पीछा न छोड़ा। ब्रिगेडियर स्मिथ ने कुछ चुने हुए सवारों को चीते की तरह उनके पीछे दौड़ा दिया। वे सवार गोलियां चलाते हुए महारानी के पीछे दौड़े। महारानी के पीछे से गोली लगी, जिससे वे कुछ

शिथिल हो गईं। इतने ही में वे सवार महारानी के पास पहुँच गये। फिर दोनों दलों में तुमुल युद्ध होने लगा। यहां यह कहना आवश्यक है कि यहां महारानी की दासियों ने, जो पुरुष वेष में थीं, और उनके अनुचरों ने भी अपने प्राणों का मोह छोड़ कर अद्‌भुत वीरत्व प्रदर्शित किया था।

महारानी पर जो सवार वार कर रहे थे, उन्हें महारानी ने अपनी तलवार का मज़ा चखाया और अपना घोड़ा तेज़ी से आगे बढ़ा दिया। इतने में महारानी ने "बाई साहब मरी! मरी!! मरी!!!" आदि चित्कार सुनी। यह आवाज़ उनकी एक दासी-सुन्दर-की थी। इन शब्दों के कानों में पड़ते ही महारानी को इतना दुःख हुआ मानों उनके हृदय में किसी ने शस्त्र प्रहार कर दिया हो। वे एक दम झोंके के साथ पीछे लौट पड़ीं और अपनी प्रिय दासी को स्वर्ग पहुँचाने वाले इस अंगरेज को उन्होंने उसी दम यमपुरी का मार्ग दिखा दिया और वे एकदम लौट कर आगे की ओर बढ़ने लगीं। देखते ही देखते उनका घोड़ा पीछे की सवारों की मार से साफ़ निकल जाता, मगर आगे एक छोटा सा नाला पड़ जाने के कारण वह अड़ियल घोड़ा वहीं अड़ गया। उन्होंने घोड़े को आगे बढ़ाने का बड़ा प्रयत्न किया पर सफल न हुईं। इतने में अंगरेजी सेना के वे कट्टर सवार वहां आ पहुँचे और बिजली की तरह वे महारानी पर टूट पड़े। महारनी ने अटल शौर्य और अपूर्व वीरत्व के साथ उन सवारों के साथ युद्ध किया और उनका पहला हमला बेकार कर दिया। महारानी ने कई योद्धाओं को घायल किया, पर अन्त में गोलियों और तलवारों के घावों से जर्जरित होकर वे भी नीचे गिर पड़ीं। उनके विश्वसनीय अनुचर उन्हें उठाकर पास की एक कुटिया में ले गये। वहीं इस वीर रमणी ने अपने नश्वर शरीर का त्याग किया और अमरत्व प्राप्त किया।

कर्नल मालेसन ने अपने ग्रन्थ "History of the Indian Mutiny" में महारानी के अपूर्व शौर्य व अद्‌भुत वीरत्व के लिये लिखा है:—

"Among the fugitives in the rebel ranks was the resolute woman, who alike in council and in the field, was the soul of the conspirators Clad in the attire of a man and mounted on horse-black, the Ranee of Jhansi might have been seen animating her troops throughout the day. When inch by inch the British troops pressed through the defile, and when reaching its summits, Smith ordered the Hussars to charge, the Ranee of Jhansi boldly fronted the horsemen. When her comrades failed her, her horse, in spite of her efforts, carried her along with the others. With them she might have escaped, but that her horse, crossing the canal near the cantonment stumbled and fell. A hussar close upon her track, ignorant of her sex and her rank, cut her down. She fell to rise no more. That night her devoted followers determined that the English should not boast that they had captured her even dead, burned the body"

अर्थात् "बलवाइयों की सेना से जो लोग भाग गये थे उनमें एक अत्यन्त धैर्यशीला स्त्री थी। वह युद्ध करने और सलाह देने में बलवाइयों की मुख्य आत्मा थी। मर्दानी पोशाक पहने घोड़े पर सवार हुई झाँसी की रानी अपनी सेना को उत्साहित करती हुई देख पड़ती थी।

जब अंगरेजी सेना जोर से एक एक इन्च आगे बढ़ रही थीं और जब स्मिथ साहब ने अपने हुजर्स सवारों को फायर करने की आज्ञा दी तब झाँसी की रानी ने बड़ी बहादुरी और हिम्मत के साथ उनका सामना

किया। जब रानी के साथी साथ छोड़कर भाग गये, तब उनका घोड़ा उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें ले गया। उन लोगों के साथ भाग कर रानी भी बच सकती थीं, परन्तु उनका घोड़ा कन्टून्मेन्ट के पास नाला पार करते हुए ठोकर खाकर गिर पड़ा। ठीक उसी समय एक हुसार घुड़सवार ने, जो रानी का पीछा करते हुए चला आ रहा था, उस को मार डाला। साथियों ने उनका शरीर उसी रात को अग्नि में भस्म कर दिया, जिससे अंगरेज लोग इस बात का घमंड न करने पावें कि उन्होंने झाँसी की रानी के मृत शरीर को छू लिया।"

पेशवा नाना साहिब

पेशवा नाना साहिब द्वितीय बाजीराव पेशवा के सब से बड़े दत्तक पुत्र थे। पेशवा की गद्दी तथा पेन्शन प्राप्त करने के अपने वैधानिक प्रयत्नों (Constitutional attempts) में असफल होकर आपने भारतवर्ष से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिये सशस्त्र क्रांन्ति का देशव्यापी संगठन किया। इस गुरुत्तर कार्य में आपको अपने छोटे भाई बालाराव, भतीजे राव साहिब तथा प्रधान सेनापति तांतिया टोपी, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और अन्य कई राजाओं का सहयोग प्राप्त हुआ। ई० सन् १८५७ के क्रांतिकारक युद्ध के आप ही प्रधान संचालक थे। जब क्रांतिकारी सेनाओं ने ब्रिटिश सेना को छिन्न भिन्न कर तथा उन्हें परास्त कर कानपुर पर अधिकार किया तब आपको पेशवा घोषित किया गया।

अन्त में जब दुर्भाग्य से युद्ध का पासा पलट गया और अंग्रेजों की सेनाओं से आपकी सेनाएँ परास्त हुईं, तब आपने पीछे हटने का निश्चय किया और आखिर में सेना के एक दल और अपने कुछ साथियों सहित आपने नेपाल राज्य की सीमा में प्रवेश किया। आगे जाकर आपकी क्या स्थिति हुई इसके लिये इतिहास अभी अन्धकार में ही है। हां, कुछ वर्षों

के पहले पूना से निकलने वाले इतिहास संशोधक मंडल से प्रकाशित एक ग्रन्थ में आपके किसी सम्बन्धी का एक पत्र प्रकाशित हुआ था जिसमें यह प्रकट किया गया था कि नाना साहिब पेशवा नेपाल में अपने परिवर्तित रूप में वास करते थे।

वीर सावरकर ने अपने 'War of Indian Indepedence' नामक अपने सुप्रसिद्धि ग्रन्थ में इनके विषय में जो कुछ लिखा है उसका संक्षिप्त सारांश नीचे दिया जाता है:—

"नानासाहब पेशवा ई० सन् १८५७ की क्रांति के मस्तिष्क थे। वे इस क्रांति के विचार को बहुत दिनों से परिपक्व कर रहे थे। अपने उच्च श्रेणी के फ़ौलाद की तलवारें, दूर से मार करने वाली आधुनिक रायफलें, विभिन्न आकार की बड़ी बड़ी तोपें जमा कर रक्खी थीं।"

"इसके अतिरिक्त आपने देहली से लगाकर मैसूर के बीच में अनेक राजाओं के पास स्वतन्त्रता के इस युद्ध में सहयोग प्राप्त करने के लिये राजदूत भेजे थे। आप स्वयं अपने अक्षवत राजमहल से बाहर निकल कर विभिन्न कड़ियों को मिलाने में लग गये थे। अपने भाई बाला साहिब और सलाहकार अजिमुल्लाह के साथ इस क्रांति के संगठन के लिये यात्रा की और सब से पहले आप दिल्ली गये। वहां आप तत्कालीन मुगल बादशाह बहादुरशाह से मिले। वहां की तमाम व्यवस्थाओं का निरीक्षण करने के बाद आप अम्बाला गये। अम्बाला से आपने लखनऊ के लिये प्रयाण किया। वहां आपने नगरवासियों में अटूट उत्साह और उत्तेजना का संचार किया। लखनऊ की उत्सुक जनता ने आपका एक अति विशाल जुलूस निकाला जिसमें क्रांतिकारक नारे लगाये गए। लखनऊ के बाद आपने कालपी की यात्रा की और वहां आपने जगदीशपुर के प्रसिद्ध क्रांतिकारी कुमारसिंह से भेंट की, जिनके साथ आपका घनिष्ट पत्र-व्यवहार था। इसी प्रवास में नानासाहब ने ट्रन्क रोड पर पड़ने वाली तमाम सैनिक छावनियों का निरीक्षण किया; कई महत्त्व पूर्ण स्थानों की यात्रा की

और देश के प्रधान प्रधान नेताओं से अपना सम्बन्ध स्थापित कर आपने अपने भावी युद्ध योजना का प्रोग्राम निश्चित किया। इसके बाद आप ई० सन् १८५७ की अप्रेल के अन्त में ब्रह्मवर्त में पहुँच गये।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं यद्यपि आपको आरम्भ में सफलता हुई पर दुर्भाग्य से वह सफलता अधिक स्थिर न रह सकी।

ताँतिया टोपी

ताँतिया टोपी नाना साहिब की क्रांतिकारक सेना के प्रधान सेनापति थे। यह एक सर्वोत्कृष्ट श्रेणी के सेना संचालक समझे जाते थे। छापामार युद्ध (Guerilla warfare) में तो यह बड़े सिद्धहस्त थे। एक अंग्रेज ने लिखा है—"अगर ई० सन् १८५७ की क्रांति को आधे दर्जन ताँतिया टोपी मिल जाते तो उक्त क्रांति का इतिहास ही बदल जाता और वह जुदे प्रकार से लिखा जाता।"

ताँतिया में एक महान् सैनिक प्रतिभा थी। तत्कालीन भारतीय सेनापतियों में सेना के संचालन में ये बेजोड़ थे। युद्ध करने की मराठा पद्धति के वह समर्थक थे। श्री सावरकर ने लिखा है:—

"अंग्रेजों से कम कट्टर शत्रु से इनका मुक़ाबला होता तो ये एक बड़े राज्य की नींव लगाते और मराठा शक्ति का पुनर्निर्माण करते।" प्रारम्भ में ताँतिया टोपी ने ब्रिटिश सेनाओं को करारी हार दी और उनके छक्के छुड़ा दिये। इस बात को कई अंग्रेज़ लेखकों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। परन्तु पीछे जाकर कानपुर की लड़ाई में इन्हें परास्त होना पड़ा। इसके बाद ताँतिया टोपी ने अंग्रेजी सेना के फन्दे से बच निकलने के लिये स्थान स्थान पर जिस चतुराई के साथ प्रयाण किये वह सैनिक इतिहास की एक अद्‌भुत घटना थी। उन्हें चारों दिशाओं से अंग्रेज़ी सेना घेरने का प्रयत्न कर रही थी। अंगरेजीके कई कुशल और नाम पाये हुए सेनापति ताँतिया टोपी की सेना को

नष्ट कर उन्हें गिरफ्तार करने में प्रयत्नशील थे। किन्तु तांतिया टोपी ने कई मास तक बड़ी कुशलता के साथ अपना बचाव किया। अन्त में निरुपाय होकर और बच निकलने की कोई सूरत न देखकर इन्होंने अपने एक विश्वासनीय मित्र राजा मानसिंह के पास आश्रय ग्रहण किया जिसने इन्हें धोखे से अंग्रेजों के हाथ समर्पित कर दिया !!

अँग्रेजों की फ़ौजी अदालत में इनके विरुद्ध ब्रिटिश सम्राट् के खिलाफ़ युद्ध करने के अपराध का अभियोग चलाया गया और इन्हें उक्त अदालत से फांसी की सजा मिली। बड़ी निर्भयता के साथ यह वीर सेनानी फाँसी पर लटक गया !! फाँसी के समय इन्होंने केवल यह इच्छा प्रदर्शित की कि इनके पिता को, जो कानपुर में रहते थे, सताया न जाय क्योंकि उनका इस विद्रोह में कोई हाथ न था।

कुमारसिंह

कुमारसिंह शाहबाद जिले के जगदीशपुर नामक ग्राम के जमींदार थे इन्हें जनरल आयर ने इनकी जमींदारी से च्युत कर दिया था। बेचारे कुमारसिंह एक लम्बे अर्से तक निराश्रय होकर जंगलों में घूमते रहे। कुमारसिंह एक बड़े वीर पुरुष थे और वृद्ध होते हुए भी जवानी का खून उनकी रगों में बहता था। वे अपने शत्रु से बदला लेने की ताक में थे। आपके भाई अमरसिंह और दो अन्य जमींदारों ने आपका साथ दिया। जंगलों में कुमारसिंह के स्त्री बच्चे भी आपके साथ थे। भूख और प्यास का भी आपको सामना करना पड़ता था। इनकी कठिनाईयों का पार नहीं था। परन्तु इन सब कठिनाइयों ने उनके मुल्क को आज़ाद करने के निश्चय की ओर भी अधिक दृढ़ किया। श्री सावरकर ने इन्हें अपने ग्रन्थ में 'जंगल का राजा' कहा है।

कुमारसिंह और उनके छोटे भाई अमरसिंह ने एक सेना का संगठन कर जगदीशपुर को शत्रुओं के पंजे से मुक्त करने का प्रयत्न किया।

ये पश्चिमी बिहार के जंगलों में सोन नदी के किनारों पर घूमते-घूमते शत्रु की निर्बल बाजू को देखते रहते थे। इसी बीच में उन्हें यह खबर मिली कि अँग्रेज़ी और नेपाली सेनाएँ लखनऊ को नष्ट करने के लिये आज़मगढ़ से अवध भेजी जा रही हैं। कुमारसिंह ने आसपास के गांवों में बिखरे हुए क्रांतिकारियों का संगठन कर उन्हें सैनिक रूप में सुसज्जित कर आज़मगढ़ पर हमला करने का निश्चय किया। ई० सन् १८५७ की १७वीं मार्च को बीवा गांव के क्रांतिकारी भी उनमें मिल गये और इस संयुक्त सेना ने अट्रोलिया के किले पर पड़ाव डाला। अट्रोलिया से अजीमगढ़ लगभग २५ मील है। जब अंग्रेज़ों को यह खबर मिली तब मीलमैन (Milman) नामक उनके एक सेना नायक ने ३०० पैदल और घुड़सवार सेना और दो तोपों के साथ अट्रोलिया की ओर कूच किया। आरम्भ में ऐसा मालूम होने लगा कि कुमारसिंह हार गये और अँग्रेज सेनापति अपनी भ्रामक विजय से मदोन्मत्त होकर बेपरवाह से हो गये। इसी बीच में कुमारसिंह और उनकी फ़ौज़ ने किले से निकल कर एक मदोन्मत्त सिंह की भांति अंग्रेज़ी सेना पर धावा बोल दिया और चारों ओर से अंग्रेज़ी सेना पर गोलियों की वर्षा की। ब्रिटिश सेना चारों ओर से घेर ली गई। वह बड़ी मुश्किल से पीछे हटने में समर्थ हुई। इसी बीच उन्होंने छापामार युद्ध में ब्रिटिश सेना को बहुत तंग किया। कुमारसिंह की वीर सेना ने ब्रिटिश सेना को कौंसिल तक खदेड़ दिया। कौंसिल में भी ब्रिटिश सेना को आराम न लेने दिया गया। कुमारसिंह की सेना भूखे शेर की तरह यहां भी ब्रिटिश सेना पर आक्रमण कर बैठी। अँग्रेज़ सेनापति मिलमैन यहां से भी पीछे हटने को बाध्य हुआ। इस बीच में अँग्रेज़ी सेना के बहुत से सैनिक मारे गये और अभागा मिलमैन बड़ी कठिनाई से आज़मगढ़ पहुँचा। आज़मगढ़ में मिलमैन को कुछ ढाढ़स बँधा क्योंकि यहां उसकी सहायता के लिये बनारस से २५० सैनिकों की एक फ़ौज़ पहुँच गई। अब दोनों सेनाओं ने मिलकर

कुमारसिंह से बदला लेने का निश्चय किया। किन्तु कुमारसिंह ने इस नई सेना को भी इतने ज़ोर की मार दी कि वह और उसका सेनानायक कर्नल डेम्स आज़मगढ़ के किले में जाकर छिप गये। कुमारसिंह की सेना की एक टुकड़ी ने उक्त किले को घेर लिया और वह स्वयं अपनी दुन्दुभी बजाते हुए रवाना हुए।

अज़िमुल्ला खाँ

ई० सन् १८५७ के क्रांतिकारक युद्ध के प्रधान संचालकों में से एक यह थे। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। श्री सावरकर के मतानुसार स्वातन्त्र्य युद्ध की पहली योजना जिन महान् मस्तिष्कों में आई थी उनमें इनका आसन बहुत ऊँचा था। क्रांति की योजना को जिन नेताओं ने विकसित किया था उनमें अज़िमुल्ला खाँ की योजना अपना विशेष महत्त्व रखती थी।

अजिमुल्ला खाँ एक गरीब परिवार में उत्पन्न हुए थे। ये अपनी योग्यता और शक्ति से बढ़ते-बढ़ते नानासाहब के एक अत्यन्त विश्वसनीय सलाहकार के पद तक पहुँच गये। प्रारम्भ में आपने एक अंग्रेज़ के खानसामा का काम किया। इस हीन स्थिति में रहते हुए भी आपके हृदय में महत्वाकांचा की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। बबर्ची और खान-सामा का काम करते हुये भी आपने अँग्रेज़ी और फ्रेन्च सरीखी विदेशी भाषाएँ थोड़े से समय में सीख लीं और आप इन भाषाओं में धारा प्रवाहिक रूप से बोलने भी लगे। इन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने के बाद आप कानपुर के एक स्कूल में भर्ती हो गये। आप अपनी असाधारण बुद्धि के कारण कुछ ही समय के बाद उस स्कूल के अध्यापक हो गये। इस समय आपकी विद्वता की ख्याति का समाचार नानासाहब के कानों तक पहुँचा और ब्रह्मवर्त दरबार के साथ आपका परिचय करवाया गया। नानसाहब को आपकी सलाहें बड़ी बुद्धिमतापूर्ण और कीमती मालूम हुईं। नानासाहब के दरबार में आपका प्रभाव बहुत बढ़ गया

और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य में आपकी सलाह ली जाने लगी। ऐसा कोई महत्त्वपूर्ण कार्य न होता था जिसमें आपकी सलाह न ली जाती हो। ई० सन् १८५७ में आप नानासाहब के प्रधान प्रतिनिधी के रूप में इंगलैण्ड भेजे गये, जहां आपने ब्रिटिश सराकर के सामने यह दावा पेश किया कि नानासाहब बाजीराव के दत्तक पुत्र हैं और उन्हें बाजीराव के मृत्यु पत्र के मुताबिक़ वह पूरी पेन्शन मिलनी चाहिए जो बाजीराव को मिलती थी। वहां उन्होंने यह दावा पेश करने में बड़ी योग्यता का परिचय दिया, परन्तु उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। वहां उन्होंने बड़ा प्रभाव पैदा किया और कई महिलाओं के हृदय पर विशेष छाप डाली। यह बात उन पत्रों से मालूम होती थी जो ब्रिटिश महिलाओं ने अज़िमुल्ला खाँ को लिखे थे। इंगलैण्ड से लौटने के बाद उन्होंने ब्रिटिश राज्य को उखाड़ने के लिये एक महान् क्रांति के संगठन में अपना मस्तिष्क लगाया और प्रारम्भ में उन्हें सफलता भी मिली।

मौलवी अहमदशाह

ई० सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में फ़ैज़ाबाद के मौलवी अहमदशाह का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। आप बड़े प्रतिभाशाली वक्ता और कुशल सेना-नायक थे। आप ही की प्रतिभाशाली वक्तृता के कारण अवध में पहले पहल विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित हुई थी और लोगों में नया खून दौड़ने लगा था। ब्रिटिश सरकार ने आपको गिरफ्तार कर फांसी की सज़ा दी थी परन्तु विद्रोही सैनिकों ने उस समय आपको फांसी के तख्ते से हटा कर आपकी रक्षा की। इसके बाद कई अवसरों पर आपने अपनी वीरता और कुशलता का परिचय दिया। आप में नेतृत्व की बड़ी क्षमता थी और इसका परिचय उक्त क्रांति में समय-समय पर मिलता रहा।

——×——

आतङ्क का राज्य

जैसा कि हम गत अध्यायों में कह चुके हैं सन् १८५७ ई० की विद्रोहाग्नि प्रायः सारे भारतवर्ष में फैल रही थी। प्रारम्भ में विद्रोहियों की बड़ी विजय हुई। उन्होंने मेरठ, दिल्ली, कानपुर ग्वालियर, आदि कई नगरों पर अपनी विजय पताका उड़ाई थी। कानपुर में तो नाना साहब को भारतवर्ष का पेशवा भी घोषित कर दिया था। ऐसा मालूम होने लगा था कि अब सारे भारतवर्ष पर स्वराज्य की विजय पताका फहराने लगेगी।

हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस प्रारम्भिक विजय के बाद अंगरेजों से खार खाये हुए भारतीय विद्रोहियों ने कुछ ऐसे कार्य किये जिनका मानवता की दृष्टि से किसी प्रकार भी समर्थन नहीं किया जा सकता। उन्होंने न केवल अंग्रेज़ सैनिकों को, पर, अंगरेजों के कई स्त्री, बच्चों तक को क़त्ल कर दिया और भी उनके हाथों कुछ ऐसे अत्याचार हुए जिनका समर्थन किसी भी प्रामाणिक इतिहासवेत्ता द्वारा नहीं हो सकता।

अपने देश को विदेशी-गुलामी से स्वतंत्र करने के लिये विद्रोह करने का प्रत्येक राष्ट्र प्रेमी को जन्मसिद्ध अधिकार है, चाहे वह कार्य अहिंसात्मक विद्रोह के द्वारा किया जावे, चाहे हिंसात्मक विद्रोह द्वारा सम्पन्न किया जावे, पर मानवता के साधारण नियमों का परिपालन करना, प्रत्येक राष्ट्रवादी का प्रथम कर्त्तव्य है। हमारी प्राचीन संस्कृति ने, युद्ध में मानवता के तत्व को, प्रधानता दी थी। आधुनिक काल मे महात्मा गांधी ने भी इस मानवता के तत्व को सर्वोपरि स्थान दिया था और इसी बात ने

उन्हें संसार का सबसे महान् पुरुष बनाया। मानवता के इसी तत्व के कारण महात्माजी मनुष्य जाति के सामने मानव संस्कृति का एक दिव्य दृष्टिकोण रखने में समर्थ हुए। हमारे कहने का आशय यह है कि सन् १८५७ ई० के विद्रोहियों ने भारतीय स्वतंत्रता के लिये जो विद्रोह किया वह तो उनका जन्मसिद्ध अधिकार था और इसके लिये उन्हें इतिहास का समर्थन प्राप्त होना चाहिये। पर इस पवित्र उद्देश की सिद्ध के लिये अंगरेज स्त्री बच्चों पर हाथ उठाकर उन्होंने जो मानवीय तत्व का अतिक्रमण किया वह किसी प्रकार भी समर्थनीय नहीं हो सकता।

हमने उपरोक्त पंक्तियों में यह दिखलाया है कि आरम्भ में देश की स्वतंत्रता के लिये विद्रोह का झंडा उठानेवाले वीरों को सफलताएँ हुईं। पर पीछे, कई कारणों से, अंगरेजी सशस्त्र सेना के मुकाबले में उन्हें परास्त होना पड़ा। इस पराजय के कारणों पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे। यहां हम उन राक्षसी अत्याचारों पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं जो अंगरेजों और उनके सैनिकों ने बदले की भावना से प्रेरित होकर भारतवासियों पर किये थे। सु-संगठित अंग्रेज सरकार द्वारा ऐसा किया जाना किसी भी तरह समर्थनीय नहीं हो सकता। ब्रिटिश सरकार ने भी अत्याचारों की हद करदी। मानवता के महान् तत्त्वों को, अपने आपको बहुत सभ्य समझने वाली एक सरकार द्वारा, कितनी बुरी तरह कुचला जा सकता है, यह उस समय की घटनाओं से प्रत्यक्ष होता है। झांसी में विद्रोहियों के द्वारा ७५ अंग्रेज मारे गये थे। इसके बदले में ५००० भारतवासियों को बड़ी निर्दयता से गोली से उड़ा दिया गया! इतना ही नहीं इस हत्याकाण्ड के बाद उक्त शहर बड़ी बेरहमी के साथ लूटा गया। झांसी के इस हत्याकाण्ड व लूट का आँखों देखा वर्णन श्री विष्णु वार्सेकर ने "माझा प्रवास" नामक अपने प्रवास वर्णन में किया है, जिसे पढ़कर शरीर में विषादपूर्ण रोमाञ्च हो जाता है।

दिल्ली में जब अंग्रेजों ने फिर से विजय प्राप्त की और दिल्ली पर

अपना अधिकार किया तब उन्होंने जैसा राक्षसी हत्याकाण्ड किया वह इतिहास के काले पृष्ठों में लिखा जाकर मानवता के इतिहास में सदा कलंक स्वरूप माना जायगा। इसमें शक नहीं कि जब दिल्ली में विद्रोहियों ने अधिकार किया, तब उन्होंने कुछ अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया। उसका बदला बड़ी क्रूरता के साथ लिया गया। लगभग २६००० भारतवासी या तो गोली से उड़ा दिये गये, या कत्ल कर दिये गये, या फांसी पर लटका दिये गये, या तोप के मुँह उड़ा दिये गये ! साधारण नागरिक तक भी इस राक्षसी हत्याकाण्ड के बलि पड़े ! चारों ओर अंग्रेज सैनिकों ने मारो ! मारो ! मारो ! की ध्वनि से सारे वातावरण को व्याप्त करदिया। दिल्ली के तत्कालीन बादशाह बहादुरशाह के -२४- लड़कों को सरे आम फांसी पर लटकाया गया और उनकी मुण्डकियों को शहर के बीच, प्रदर्शन के लिये रखा गया !!

लाहौर में विद्रोही फौजों द्वारा २ अंग्रेज मारे गये। इसका बदला भी बड़ी बेरहमी के साथ लिया गया। सैंकड़ों आदमियों को मौत के घाट उतार दिया गया !

इसी प्रकार कानपुर, लखनऊ आदि स्थानों में भी हत्याकाण्ड संगठित हुए, जिसमें कई निर्दोष भारतवासी न केवल कत्ल ही किये गये पर उनके घर बार भी लूट लिये गये।

छोटे छोटे बच्चे जिन्होंने केवल मात्र अपने हाथों से विद्रोह के झण्डे उठाये थे, गोली से उड़ा दिये गये ! कहीं कहीं तो लोग केवल इस बहाने फांसी पर लटकाये गये कि उन्होंने ब्रिटिश सैनिक अफसरों से सलाम न की।

अंग्रेज सेनापति नैल (Neill) के सैनिकों ने उन सब विद्रोहियों को कत्ल कर दिया जो उनके हाथ पड़े। उन्होंने केवल इलाहाबाद में ही ६००० भारतवासियों को मौत के घाट उतार दिया !

उत्तर–पश्चिम प्रान्तों में अंग्रेज सैनिकों ने क्रूरता का ताण्डव नाच रचा। सैंकड़ों भारतवासियों की निर्मम हत्या की गई। इसके फल-स्वरूप गांव के गांव वीरान हो गये।

इसके अतिरिक्त हिन्दु और मुसलमानों को भ्रष्ट करने की भी कोशिसें की गईं। फांसी लगाने के पूर्व मुसलमानों को सूअर का मांस खिलाया गया और हिन्दुओं के मुख में बलात् गौ-मांस घुसेड़ा गया। कहने का भाव यह है कि भारतवासियों पर विविध प्रकार के अमानुषिक अत्याचार किये गये। कहीं कहीं तो गांव के गांव जला दिये गये। अंग्रेजों का यह कोप विद्रोह में भाग लेनेवाले राजा और नवाबों पर भी पड़ा। फ़र्रुखाबाद के नवाब को सरे आम फांसी पर लटकाया गया। जनरल नैल (Neill) ने मेजर रिनाड (Renaud) को जो आदेश–पत्र भेजा उसमें कहा था—"फतेहपुर शहर पर आक्रमण कर वहाँ के तमाम पठानी मोहल्लों को उनके निवासियों सहित नष्ट करदो।"

मुस्लिम नेता गोली से उड़ाये गये

दिल्ली में वहां के प्रसिद्ध नेता व हकीम राजउद्दिन को गोली से उड़ा दिया गया। उनके छोटे भाई अहमदहुसेन खाँ भी उसी दिन गोली के शिकार हुए। टोंक के तलियार खाँ और उनके दो लड़के सरे आम फांसी पर लटकाये गये !!

विद्रोह की असफलता के कारण

भारतवर्ष का इतिहास अनेक दुःखान्त घटनाओं से परिपूर्ण है। राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय चेतना के अभाव इस देश के पतन के प्रधान कारण रहे हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत स्वार्थ में राष्ट्रीय स्वार्थ को विलीन कर देना इस राष्ट्र की मुख्य निर्बलता रही है। युद्ध-कला में अन्य राष्ट्रों से पीछे रहना और इस सम्बन्ध में प्रगतिशील राष्ट्रों की घुड़दौड़ में आगे बढ़ने में असमर्थ रहना यह भी इस देश की एक विशेष कमजोरी रही है। सन् १८५७ ई० के विद्रोह के इतिहास का सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इन्हीं कमजोरियों के कारण उक्त विद्रोह असफल रहा। जब विद्रोह की चिनगारियाँ सारे भारतवर्ष में प्रज्वलित हो रहीं थीं तब कुछ राजाओं ने तथा कुछ जातियों ने अपने देशवासियों के खिलाफ़—अपने राष्ट्र के खिलाफ़-एक विदेशी सत्ता को सहायता करने में गौरव अनुभव किया था। इन्हीं की राष्ट्र विद्रोही प्रवृत्तियाँ उक्त विद्रोह को असफल करने में प्रधान रूप से कारणीभूत हुई थीं। रसेल (Russell) ने अपनी डायरी (My Diary in India) में लिखा है:—

"Yet it must be admitted that, with all their courage, they (the British) would have been quite exterminated if the natives had been all and altogether hostile to them The desperate defences made by the garrisons were, no doubt, heroic, but the natives shared their glory, and they by their

aid and presence rendered the defence possible. Our siege of Delhi would have been quite impossible, if the Rajas of Patiala and Jhind had not been our friends and if the Sikhs had not recruited in our battalions and remained quiet in Punjab. The Sikhs at Lucknow did good service and in all cases our garrisons were helped, fed and served by the natives, as our armies were attended and strenghthened by them in the field. Look at us all, here in camp, at this moment! Our outposts are native troops, natives are cutting grass for our horses and grooming them, feeding the elephants, managing the transports, supplying the commissariat which feeds us, cooking our soldiers' food, clearing their camp, pitching and carrying their tents, waiting on our officers, and even lending us their money. The soldier who acts as my amanuensis declares that his regiment could not have lived a week but for the regimental servants, Doli bearers hospitalmen, and other dependants. Gurkha guides did good service at Delhi and the Bengal artillerymen were as much exposed as the Europeans"

अर्थात् "यह बात स्वीकार करना पड़ेगी कि अगर देशी लोग सर्वांश में हमारे विरोधी होते तो ब्रिटिश का पूर्णरूप से सर्वनाश हो गया होता। हमारी रक्षक सेनाओं ने जान की बाज़ी लगा कर जिस प्रकार अपनी

रक्षा की वह निःसन्देह वीरतापूर्ण थी। पर इस वीरत्व के गौरव में देशी लोगों का हाथ था और उन्हीं लोगों की सहायता और उपस्थिति ने ही इस रक्षा-कार्य को सम्भव बनाया। हमारा दिल्ली का घेरा नितान्त ही असफल होता अगर पटियाला और भिन्द के राजा लोग हमारे मित्र नहीं होते, सिक्ख हमारी फौज़ों में भर्ती न हुए होते और पंजाब शान्त न रहा होता। लखनऊ में सिक्खों ने हमारी अच्छी सेवा की और वहां के देशी लोगों ने हमारे दुर्गरक्षक सेनाओं की सहायता की, उन्हें खिलाया-पिलाया और उनकी सेवाएं कीं। इस वक्त भी हमारे शिविर (camp) की ओर देखिये! हमारी बाहरी चौकियों की रक्षा करनेवाली तो देशी सेना ही थी। इसके अतिरिक्त देशी लोग ही हमारे घोड़ों के लिये घास काटते थे, उन्हें अवेरते थे (Grooming), हमारे साथियों को खिलाते-पिलाते थे, हमारी बहिनों की व्यवस्था करते थे और हमारे खाने-पीने की सामग्री का प्रबंध करते थे, हमारे सिपाहियों का खाना पकाते थे, डेरों को साफ़ करते थे, तम्बू लगाते थे, हमारे अफसरों की सेवाओं में लगे रहते थे और हमें रुपया पैसा उधार तक देते थे। एक सिपाही ने, जो मेरे एक मुहर्रिर का काम करता था, कहा है कि "अगर फौज़ के देशी नौकर, डोली उठानेवाले अस्पताल के आदमी और दूसरे नौकरों का सहयोग न होता तो, हमारी फ़ौज़ एक सप्ताह भी टिक नहीं सकती थी। गुर्खा मार्ग-दर्शकों ने दिल्ली में बड़ी अच्छी सेवाएं कीं और बंगाल के तोपची यूरोपियनों की तरह विरोधी गोलाबारी के अभिमुख रहे।"

तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग (Lord Canning) ने अपने एक तार में लिखा था।

"If the Scindhia joines the mutiny. I shall have to pack off tomorrow." अर्थात् "यदि सिंधिया सरकार बलवे में शामिल हो जायेंगे तो फिर मुझको कल ही अपना डेरा-डंडा उठाना पड़ेगा।"

एक अंग्रेज़ ग्रन्थकार ने लिखा है:—

"Gwalior, while it thus continued in his hands, might have been regarded, as in one sense, the key of India, or rather, perhaps, as one link of a chain, which could not have given way in any part without ruining our power in India. If the ruler of Gwalior had either played us false,or succumbed to the strong adverse elements with which he had to contend, the revolt would almost centainly have been national and general instead of being local and mainly military, and instead of its fate being decided by those operations in the easily traversable Gangetic valley upon which public attention was concentrated, we should have had to face the war like races of Upper India combined against us, in a most difficult country and, in all probability those of the south also......had Scindia then struck against us–nay, had he even done his best in our behalf, but failed-the character of the rebelion might have been changed almost beyond the scope of speculation."

Memorials of Service in India"

"ग्वालियर को एक प्रकार से हिन्दुस्तान की कुँजी समझना चाहिये अथवा यह कहना चाहिये की वह एक एसी श्रृंखला थी, जिसका यदि कोई भी भाग टूट जाता तो वह हिन्दुस्तान में हमारी युक्ति का नाश किये बिना नहीं रहता। ग्वालियर के महाराज यदि हमें धोखा देते या

बलवाइयों के वश हो जाते तो यह बलवा केवल स्थानीय और फ़ौजी सिपाहियों का न होकर सार्वत्रिक और राष्ट्रीय हो जाता। उस समय हमें गंगा नदी के उन प्रदेशों में ही जो आसानी से पार हो सकते हैं, लड़ना नहीं पड़ता, किन्तु उत्तरीय हिन्दुस्तान के कठिन प्रदेश में और युद्ध कुशल जातियों से करना पड़ता। यह भी सम्भव है कि दक्षिणी जातियों से भी युद्ध करना पड़ता, यदि उस समय महाराज सिंधिया हमारे विरुद्ध खड़े हो जाते। इतना ही नहीं, यदि वे अपनी पूरी शक्ति से हमारी ही ओर से शत्रुओं के विरुद्ध लड़ कर हार जाते तो भी इस बलवे का रूप इतना बदल जाता कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।"

अत्याचारों पर लॉर्ड केनिंग

ईसवी सन् १८५७ के सितम्बर मास में तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड केनिंग ने सम्राज्ञी विक्टोरिया को लिखा था:—"There is a rabid of indis-criminating vindictiveness." अर्थात विद्रोहियों से अन्धाधुन्ध और उन्मत्तता से बदला चुकाया जा रहा है।" जब लॉर्डमहोदय से ब्रिटिश सैनिकों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को प्रकाशित करने की बात कही गई, तब आपने कहा कि "ऐसा करके संसार के सामने मैं अपने देश को भयङ्कर रूप से बदनाम करना नहीं चाहता।

सन् १८५७ ई० के विद्रोह के बाद

यद्यपि सन् १८५७ ई० का विद्रोह दबा दिया गया, पर उसके कारण भारतियों के हृदयों में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ द्वेष की आग बराबर भड़कती रही। उक्त विद्रोह के समाप्त होने के कुछ ही समय बाद लन्दन के सुप्रसिद्ध पत्र टाईम्स को, उसके संवाददाता जी० डबल्यू० रसेल ने, उक्त पत्र को रिपोर्ट की थी, उसमें लिखा था "हिन्दुस्तानियों और अंग्रेज़ों के बीच प्रबल द्वेष और दुर्भावना पैदा हो गई है और इन दोनों में विश्वास पैदा होने की सम्भावना नहीं है।"

उक्त विद्रोह के बाद छोटे मोटे कई विद्रोह हुए। सन् १८५८ ई० में सन्ताल लोगों ने (Santhals) विद्रोह किया जिसको दबाने में ब्रिटिश सरकार को पूरा १ वर्ष लगा। इन्हीं लोगों ने सन् १८७१ ई० में फिर विद्रोह किया। इस विद्रोह का नेता भगीरथ था। इन्होंने सरकार को को कर देना भी बन्द कर दिया। सन् १८५६ ई० से लगाकर सन् १८६१ ई० तक निम्नस्थ बंगाल (Lower Bengal) एक प्रकार से विद्रोह का केन्द्र रहा। यह विद्रोह नील के विद्रोह (Indigo disturbances.) के नाम से प्रसिद्ध है। कलकत्ता रिव्यू (Calcutta Review) नामक एक एंग्लो-इण्डियन पत्र में सन् १८६० ई० में लिखा था।" वह रैयत, जिन्हें हम रूसी दासों की तरह समझते रहे हैं, और जिनके लिये हम यह मानते रहे हैं कि ये जमींदारों के औज़ार हैं, वे आज आख़िर में विद्रोह कर बैठे हैं। आज सारे निम्नस्थ बंगाल में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो रही है।"

सन् १८२७ ई० में दक्षिण में कई जगह कृषक विद्रोह हुए। इनके परिणाम स्वरूप सरकार की ओर से कमीशन बैठाया गया जिसने इस विद्रोह के मूलभूत कारणों का पता लगाने की चेष्टा की। इस कमीशन की सिफ़ारिश के अनुसार सन् १८७१ ई० में किसानों को राहत देने वाला एक क़ानून बना जिसके अनुसार भूमिकर घटाया गया और किसानों के लिये दीवानी कैद उठा दी गई। (Sentence for debt)

इसी बीच में मज़दूर वर्ग में भी जागृति की ज्योति दिखाई देने लगी। उसने मालिकों के अत्याचारों के ख़िलाफ़ संगठित रूप से आवाज़ उठाने का प्रयत्न किया। सन् १८७७ ई० में नागपुर में मज़दूरों की प्रथम हड़ताल हुई। इसके बाद सन् १८८२ ई० से सन् १८६० ई० तक लगभग २५ हड़तालें हुईं। सन् १८८४ ई० में श्री एन० एम० लोखण्डे (N. M. Lokhande) ने मील मज़दूरों का सबसे प्रथम एक संघ बनाया जिसका नाम मिल मज़दूर समिति (Mill hands Association) रखा गया। इसी संघ ने आगे जाकर विशाल और संगठित रूप धारण किया।

दक्षिण में जागृति

दक्षिण भारत में भी जागृति की ज्योति चमकने लगी। सन् १८७० ई० के बाद महाराष्ट्र के इतिहास को एक नई दिशा मिली और इसका प्रभाव सारे भारतवर्ष पर पड़ा। सन् १८७१ ई० में पूना में सार्वजनिक सभा स्थापित हुई। सन् १८७४ ई० में चिपलूणकर की निबंधमाला शुरू हुई सन् १८८० ई० में न्यू इंगलिश स्कूल, केसरी, व मराठा का जन्म हुआ। सन् १८८९ ई० में "सुधारक" निकला। सन् १८६५ ई० में लोकमान्य तिलक ने सार्वजनिक सभा हस्तगत की, आगरकर का शरीरान्त हुआ और पूना के उद्धारक बनाम सुधारकवाद को गरम-नरम राजनैतिक वाद का रूप मिलने लगा। इस वर्ष महाराष्ट्र में जो दो नरम

नरम राजनैतिक दल बने, उन्होंने सारे भारत खण्ड में प्रचण्ड आन्दोलन खड़े किये और सन् १९२० ई० तक के उसके इतिहास पर अपनी छाप डाली। सन् १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना होने के पहले ही दादाभाई और रानडे ने भारतीय राजनीति और अर्थनीति की नींव डाल दी थी।

यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जहाँ एक ओर रानडे अपने वैध-मार्गों से लोगों के अन्दर अखिल भारतीय संयुक्त राज्य, उत्तर-दायित्व के अधिकार, ब्रिटिश राष्ट्र के बराबर का दर्जा और भारतीय पार्लमेंट इत्यादि भावनाओं के बीज बोते रहे, वहां दूसरी ओर १८७६ में वासुदेव बलवंत फड़के ने नगर, नासिक, खानदेश के रामोशी और भीलों की सहायता से लोक-सत्ता की स्थापना करने का एक क्रान्तिकारी प्रयत्न किया।

इसी बीच भारतवर्ष में कुछ राष्ट्रीय विभूतियों का उदय हुआ जिन्होंने भारत के राजनैतिक और सामाजिक गगन मण्डल में अलौकिक प्रकाश फैलाया। इनका उल्लेख आगे चल कर यथावसर किया जावेगा।

कांग्रेस की उत्पत्ति

यह बात सर्व विदित है कि भारत में राष्ट्रीय भावों का जन्म कांग्रेस के द्वारा हुआ। भारत को स्वाधीनता प्राप्त करवाने में यह महान् संस्था सबसे अधिक कारणभूत समझी जाती है। यद्यपि उसके पहिले भी ऐसी कुछ संस्थाओं का जन्म हुआ था, जिनका उद्देश भारत में सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ती करना था। ई० सन् १८५२ में दादाभाई ने बम्बई में 'बॉम्बे असोसियेशन' की स्थापना की, उधर १८५१ में बंगाल में श्री० प्रसन्न कुमार टागोर, डा० राजेन्द्र लाल मित्र आदि ब्रिटिश इंडिया असोसियेशन नामक राजनैतिक संस्था स्थापित कर रहे थे। ऐसी ही एक संस्था–मद्रास नेटिव असोसियेशन-मद्रास में उदय हुई थी। पूना में एक डेक्कन असोसियेशन बनी। इस तरह १८५१–५२ में तीन बड़े इलाकों की राजधानियों में लोकसत्तात्मक राजनीति का जन्म हुआ।

पर उपरोक्त संस्थायें अधिक समय तक जीवित न रह सकीं। आगे चलकर कांग्रेस ही को भारतवर्ष की प्रधान राजनैतिक संस्था होने का गौरव प्राप्त हुआ।

कांग्रेस की उत्पत्ति कौतूहल जनक है। इसकी उत्पत्ति एक विचित्र रूप से हुई। भारत के तात्कालिक वाइसराय लार्ड डफ़रिन ने मि० ह्यूम नामक एक अत्यन्त उदार और सहृदय अँग्रेज सज्जन से कहा कि भारत में एक ऐसी संस्था की ज़रूरत है जिससे भारत सरकार भारत की असली राय को जान सके और भारत में मंडराये हुए अशान्ति के बादलों को

मिटा सके। इस कार्य में लॉर्ड डफरिन की दूरदर्शितापूर्ण कूटनीति भरी हुई थी। अंगरेजों के विरुद्ध फैली हुई जनता की विद्रोही भावना के प्रवाह को वैध आन्दोलन में बदल कर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की की नींव मज़बूत करना उनका उद्देश्य था। मि० ह्यूम एक सहृदय अँग्रेज थे। लोकमान्य तिलक तक ने उनकी प्रशंसा की है। पर यहां यह ध्यान में रखना चाहिये कि मि० ह्यूम भारत में सुराज्य (Good Government) स्थापित करना चाहते थे। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के वे पक्ष में थे। अंगरेज और भारतियों में सद्भावना पैदाकर अप्रत्यक्ष नीति से ब्रिटिश साम्राज्य की नींव दृढ़ करने की उनकी इच्छा थी। तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन करने से हमारी उक्त धारणा की पुष्टि होती है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, इस समय भारत में अन्दर ही अन्दर अशान्ति के बादल मंडरा रहे थे। बहुत सम्भव था कि यह अशान्ति आगे चलकर सङ्गठित रूप धारण कर, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के लिये बड़ा खतरा उपस्थित कर सकती। अंगरेजों की दूरदर्शितापूर्ण राजनीतिज्ञता ने इस खतरे का अनुभव किया और उन्होंने इस खतरे को टालने के लिये मि० ह्यूम जैसे एक लोकप्रिय सज्जन को साधन बनाया। मि० ह्यूम को भी वातावरण में विद्रोह की चिनगारियां दिखने लगीं। उन्होंने उस समय तैयार किये गये अपने एक स्मारपत्र (Memorandum) में लिखा था।

"मुझे सात बड़ी २ जिल्दें दिखाई गईं, जिनमें बहुत सी सामग्री इकट्ठा की गई थी। बर्मा, आसाम, और कुछ छोटे मोटे इलाकों को छोड़कर, बाकी देश के टुकड़ों के हिसाब से ये जिल्दें बनाई गयीं थीं। इनमें तरह-तरह के संवादों और रिपोर्टों का अंग्रेज़ी अनुवाद या सारांश जिलेवार, तहसीलवार परगनेवार, शहरवार और गांववार दिया हुआ था। कितनी बातें दर्ज़ की गयीं थीं, इसकी गिनती न थी। उस समय

कहा गया था कि ३० हजार से ऊपर संवाददाताओं की सूचनाएँ वहाँ एकत्र की गयी हैं। बहुत सी रिपोर्टें ऐसी थीं, जिनमें सबसे नीचे दर्जों के लोगों की बातचीत लिखी हुई थी। इनसे मालूम होता था कि कि ये गरीब आदमी अपनी मौजूदा हालत से निराश हो चुके हैं। उन्हें विश्वास हो गया कि वे भूखों मर जायेंगे। इसलिये वे कुछ कर डालना चाहते थे। वे सब एक दूसरे का साथ देकर कुछ कर डालने पर तुल गये थे और इस कुछ का मतलब था, हिंसा। बहुत सी रिपोर्टों में पुरानी तलवारें, भाले और बंदूकें जमा करने की बातें थीं। मौका पड़ने पर इनसे काम लिया जाता। लोगों ने यह न सोचा था कि शुरू में ही हमारी सरकार के ख़िलाफ़ बगावत होगी या सही माने में बगावत होगी भी। ख़्याल सिर्फ़ यह था कि छिटपुट अपराध किये जायेंगे, दुश्मनों की हत्या की जायगी, साहूकारों के यहाँ डकैतियाँ डाली जायेंगी और बाजार लूटे जायेंगे। 'सबसे नीचे दर्जे के लोग भूखों मर रहे थे। इसलिये डर यह था कि छिटपुट अपराधों को देखते हुए और भी हत्याएँ होने लगेंगी और एक ऐसी अशान्ति फैल जायगी कि सरकार और उच्च वर्ग से कुछ भी करते-धरते न बनेगा। यह भी ख़्याल था कि पत्ते पर जमा होने वाली पानी की बूँदों की तरह छोटे-छोटे गुट मिल कर बड़े-बड़े गुट बना लेंगे। देश के सभी छूँटे हुए बदमाश उनमें शामिल हो जायेंगे और कुछ पढ़े लिखे लोग उनके नेता बन जायेंगे। ये पढ़े लिखे लोग सरकार से बहुत ही नाराज़ थे, भले ही इसका कोई कारण न रहा हो। खतरा यह था कि बगावत शुरू होने पर ये लोग उसे एक सूत्र में बांध देंगे और राष्ट्रीय विद्रोह के रूप में उसका संचालन करेंगे।"

मि० एन्ड्रुज और मुकर्जी ने "हिन्दुस्तान में कांग्रेस का जन्म और बढ़ती" में लिखा है:—

"१८५७ के बाद इतना ख़तरनाक़ वक्त पहले कभी न आया था, जितना कि कांग्रेस के जन्म लेने के पहले आया था। अंग्रेज़ी हाकिमों

में, ह्यूम ने, भावी संकट को देखा और उसे रोकने की कोशिश की। उन्होंने शिमला जाकर सरकार को समझाया कि हालत कितनी ख़राब हो गयी है। यह सम्भव है कि तेज़ दिमाग़ के वायसरॉय ने फ़ौरन ही यह समझ लिया हो कि परिस्थिति कितनी गम्भीर है। इस तरह के अखिल भारतीय आन्दोलन के लिये यह समय बिलकुल उपयुक्त था। किसान विद्रोह होता तो मध्यमवर्ग के लोग हमदर्दी करके उसका समर्थन करते। उसके बदले नये भारत का निर्माण करने के लिये नये उदीयमान वर्गों को अपने लिये एक मंच मिल गया। कुल मिलाकर यह अच्छा ही हुआ कि हिंसात्मक क्रान्ती रोक दी गई।"

उपरोक्त उद्धरण से पाठकों को इस अशान्त परिस्थिति का ज्ञान हुआ होगा, जो उस समय देश की थी। इसी परिस्थिति को शान्त करने के लिये तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। उन्होंने मिस्टर ह्यूम जैसे एक लोकप्रिय और सहृदय अंग्रेज़ अधिकारी को बीच में डालकर स्थानीय नेताओं के द्वारा एक ऐसे राजनैतिक संगठन का आयोजन किया जिससे उक्त लोग-क्षोभ वैध आन्दोलन में परिणत हो जाय। सन् १८८३ ई० के मार्च मास में मि० ह्यूम ने कलकत्ता विश्व-विद्यालय के स्नातकों (Graduates) के नाम एक गश्ती-पत्र (Circular letter) जारी कर यह अपील की कि वे एक ऐसे राजनैतिक संगठन बनाने में सहयोग दें जिसके द्वारा भारतवासियों की मानसिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति हो सके। मि० ह्यूम ने उनसे यह अनुरोध किया कि केवल ऐसे ५० स्नातक मिलकर यह कार्य शुरू कर दें, जिससे आगे इसकी प्रगति सरल हो जाय। इसके बाद मि० ह्यूम ने अन्त में बड़े जोरदार शब्दों में उक्त विद्यार्थियों से निम्नलिखित अपील की:—

"आप इस भूमि के जीवन भूत (नमक) हो। अगर आप में से ५० ऐसे युवक मिल जावें जीनमें स्वार्थत्याग की भावना हो, जिनमें

वास्तविक निःस्वार्थ और हार्दिक देशभक्ति हो, जो अपनी जीवन की शेष आयु को अपने देश की पवित्र सेवा में व्यतीत कर सकें, तो देश के लिये एक महान् भविष्य की आशा की जा सकती है। अगर ऐसा नहीं होगा तो इस राष्ट्र के पुत्रों को विदेशी शासकों की अधीनता में निस्सहायों की भांति पड़ा रहना पड़ेगा।"

"अगर देश के विचारक नेता इतने दीन हीन होंगे, इतने स्वार्थी और आप मतलबी होंगे कि ऐसे समय में भी वे जाग्रत न होंगे और अपने देश के लिये कुछ न कर सकेंगे तो कहना होगा कि वे हमेशा कुचले जाने के योग्य ही अपने आप को साबित करेंगे। हर एक राष्ट्र अपनी योग्यता के अनुसार ही अच्छा शासन पाता है।"

मिस्टर ह्यूम के प्रभावशाली शब्दों का अच्छा प्रभाव पड़ा और इण्डियन नेशनल यूनियन (The Indian National Union) नामक एक राजनैतिक संस्था का ईसवी सन् १८८५ में जन्म हुआ, जिसके प्रधान मंत्री मि० ह्यूम हुए। इसका पहला अधिवेशन पूना में होने वाला था। परन्तु पूना में हैज़े का प्रकोप हो जाने के कारण कांग्रेस का पहला अधिवेशन बंबई नगर के गोकुलदास तेजपाल हाई स्कूल में २८ दिसम्बर १८८५ में हुआ। यह थोड़े से चुने हुये लोगों की सभा थी। सभापति थे, मि० उमेशचन्द्र बनर्जी और जिन लोगों ने कार्यवाही में भाग लिया उनमें से कुछ उल्लेखनीय व्यक्तियों के नाम इस प्रकार हैं। बम्बई से दादाभाई नौरोजी, फ़ीरोज़शाह मेहता, काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग, भवेरीलाल याज्ञिक, दीनशा ईदलजी वाच्छा, रहीमतउल्ला सैयानी, गोपाल गणेश आगरकर, और सर नारायण गणेश चंदावरकर, मद्रास से सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर, दीवान बहादुर रघुनाथराव, पी० आनंद चार्लू, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर, रंगैया नायडू और वीर राघवाचार्य, और कलकत्ता से बाबू नरेन्द्रनाथ सेन, यू० पी० से बाबू गंगाप्रसाद वर्मा, आंध्र देश से मि० नरसिंह लू नायडू, बिलारी के राव बहादुर

मुदलयार, गूटी के दीवान बहादुर केशव पिल्लई और मछलीपट्टम के राव साहब सिंहराज वेंकट सुब्बा रायडू पंतलू आदि उपस्थित थे। मि० ह्यूम छः वर्ष तक कांग्रेस के प्राण तथा सर्वस्व बने रहे और वे कांग्रेस के पिता कहलाने लगे। उन्होंने कांग्रेस को लोकप्रिय बनाने के लिये सारे देश का भ्रमण किया और इसके लिये अपने पास से व्यय किया।

इस अधिवेशन के सभापति के पद से भाषण करते हुए श्री उमेश-चन्द्र बेनर्जी ने कांग्रेस का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया:—

(अ) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश हित के लिये लगन से काम करनेवालों की आपस में घनिष्ठता और मित्रता बढ़ाना।

(आ) समस्त देशवासियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री व्यवहार के द्वारा वंश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी तमाम पूर्व-दूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की उन तमाम भावनाओं का, जो लार्ड रिपन के शासन काल में उद्भूत हुईं, पोषण और परिवर्द्धन करना।

(इ) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों, उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(ई) उन तारीखों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश-हित के कार्य करें

इस कांग्रेस के अधिवेशनमें पहला प्रस्ताव इस आशय का था कि शासन व्यवस्था की जांच के लिये एक रॉयल कमीशन मुकर्रर किया जाय। एक प्रस्ताव था धारा सभाओं में बड़ी तादाद में लोक नियुक्त-प्रतिनिधि लिये जाँय, बजट धारा सभाओं में पेश किये जाँय, आदि। एक प्रस्ताव के द्वारा इण्डिया कौंसिल रद्द करने की मांग की गयी थी। एक प्रकार से ये प्रस्ताव अनियंत्रित पद्धति को मिटाकर लोक प्रतिनिधियों

का प्रवेश शासन-कार्य में हो, इस दृष्टि से किये गये थे।

उक्त-प्रस्तावों को तैयार करने के लिये बम्बई में एलफिन्स्टन कॉलेज के प्रिंसिपल मि० वर्ड्सवर्थ के निवास-स्थान पर एक प्राइवेट सभा हुई थी, जिसमें सर विलियम वैडरबर्न, मि० रानडे और राय बहादुर लाला बैजनाथ सरीखे सरकारी अधिकारी भी उपस्थित थे।

कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन कलकत्ते में ऋषि कल्प दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में, तीसरा मद्रास में, बदरुद्दीन तैयबजी की अध्यक्षता में हुआ। पहले अध्यक्ष ईसाई, दूसरे पारसी और तीसरे मुसलमान— यह देखकर नौकरशाही के मन में कांग्रेस के लिये द्वेष और डर पैदा होने लगा। मद्रास अधिवेशन के बाद कांग्रेस की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर ह्यूम साहब ने तय किया कि उसे इंग्लैंड की 'एंटी कार्न ला० लीग' की तरह लोगों में आन्दोलन करने वाली संस्था का रूप दिया जाय। उन्होंने अपने भाषणों में भारतमाता की पवित्र भूमि में रहने वाले प्रत्येक भारतीय से सहकारी, भाई और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक बनने की आशा प्रकट की। कांग्रेस के द्वारा आंदोलन और लोक जागृति करने की इस नीति से सरकार में और उसमें विरोध पैदा होने लगा। १८८६ में तो कलकत्ते में दूसरे अधिवेशन के बाद खुद लॉर्ड डफरिन ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों को एक 'वन भोज' दिया था और मद्रास अधिवेशन में तो वहां के गवर्नर भी थे। परन्तु चौथे अधिवेशन के समय इलाहाबाद में मंडप के लिये जगह तक न मिल सके, ऐसी कार्रवाई सरकारी अधिकारियों ने शुरू कर दी। अधिवेशन में आने वाले प्रतिनिधियों पर रुकावटें लगाने और कार्य्य-कर्त्ताओं से जमानतें लेने की कर्रवाई शुरू की गई। पंजाब में ५—६ हजार लोगों से जमानती-मुचलके मांगे गये। इस विरोध से कांग्रेस की लोक-प्रियता बढ़ने लगी। इस अधिवेशन में १२४८ प्रतिनिधि आये थे।

इस अधिवेशन के सभापति ने अपने भाषण में प्रतिनिधिक राज पद्धति का समर्थन किया था।

अब अंग्रेज सरकारी अधिकारियों की आंखें खुलने लगीं। जहां उन्होंने कांग्रेस को अपनी रक्षा की ढाल बनाना चाहा था, वहां वह उल्टी विरोधी संस्था बनने लगी। इससे अधिकारियों के रुख में बड़ा परिवर्तन हो गया। कलकत्ते वाले अधिवेशन के समय यह हुक्म निकाला गया कि सरकारी अधिकारी कांग्रेस में दर्शक के रूप में भी न जावें। इसके बाद कांग्रेस नर्म दल के हाथों में पड़ गई। कुछ वर्षों तक वह आन्दोलनकारी संस्था न रही। उसमें साधारण सुधारों के प्रस्ताव होते रहे और वह सरकार से निवेदन करने वाली संस्था मात्र रह गई। इसके बाद कांग्रेस में कैसे २ परिवर्तन हुए और वह किस प्रकार उग्र संस्था बनी तथा उसने किस प्रकार शान्तिपूर्वक लड़ाई लड़कर देश के लिये स्वाधीनता प्राप्त की, इसका उल्लेख यथावसर किया जायगा।

महान् आत्माओं का उदय

राष्ट्र—जागृति

ऋषि कल्प दादा भाई नौरोजी।

कांग्रेस के प्रथम बीस वर्ष वाले काल के प्रमुख राजनैतिक नेताओं में दादाभाई नौरोजी का सर्वोच्च आसन है। इन्हें भारतीय स्वराज्य का प्रपितामह कहा जाता है। कांग्रेस से भी पहले के चालीस वर्षों में उन्होंने अपने अथक परिश्रम से भारत में सुसंगठित सार्वजनिक जीवन का निर्माण किया, और कांग्रेस की स्थापना के बाद इक्कीस वर्ष तक वे राष्ट्रीय भारत के सर्वोपरि नेता रहे। इकसठ वर्ष तक इंग्लैंड में और भारत में, दिन और रात, अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में, समान रूप से, बड़ी बड़ी निराशाओं का सामना करना और दिल न टूटने देना इन्हीं का काम था। दादाभाई नौरोजी ने ऐसे अविचल उद्देश्य के साथ, ऐसी पूर्ण निःस्वार्थता के साथ, और ऐसे दृढ़ विश्वास के साथ मातृ-भूमि की सेवा की कि उसे देखकर अधिकांश युवकों को भी लज्जित हो जाना पड़ेगा। वर्षों तक वे इस देश के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में सब से अधिक संयत वक्ता थे, परन्तु पिछले वर्षों में बार बार की निराशाओं के फल-स्वरूप उनके भाषणों में बरबस काफ़ी कटुता आ गई थी। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि उनकी आत्मा बड़ी ही कोमल और उदार थी। किसी के बाबत वह बुरा विचार रखना नहीं चाहते थे और उनके जीवन भर में उनसे व्यक्तिगत शत्रुता मानने वाला तो कोई नहीं हुआ। दादाभाई नौरोजी ने देश को सबसे पहले स्वराज्य का मंत्र दिया, और और अस्सी वर्ष की अवस्था तक वे राष्ट्र सेवा में तन्मय रहे। पराधीनता

के मोहान्धकार में पड़े हुए और उसी में आनन्द माननेवाले अपने अज्ञानी देश बान्धवों के अन्तःकरण का ज्ञान-प्रदीप उन्होंने प्रज्वलित किया। ब्रिटिश की आर्थिक लूट के कारण होने वाली भारत की दरिद्रता पर उन्होंने सबसे पहले प्रकाश डाला। दादाभाई का नाम भारत के इतिहास में अमर रहेगा और वह राष्ट्र को दिव्य प्रेरणा देता रहेगा।

महादेव गोविंद रानडे

सी० वाई० चिंतामणि के शब्दों में महादेव गोविन्द रानडे का स्थान दादा भाई नौरोजी से उतर कर था। रान्डे एक महान् समाज सुधारक और राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने महाराष्ट्र में एक नवीन चेतना फैलाई और वैध राजनैतिक आन्दोलन को जन्म दिया। लोकमान्य तिलक ने इनके विषय में कहा था:—"उस समय पूने की शिथिलता दूर करके उसमें नव-जीवन लाने का, दिन रात विचार करने और अनेक उपायों से उसे पुनः सजीव करने का विकट काम सबसे पहले रानडे ने ही किया। उनके कारण पूना बम्बई प्रान्त की "बौद्धिक और राजनैतिक राजधानी" बन गया था।

रानाडे अत्यन्त मेधावी, घोर परिश्रमी और बहुमुखी विद्वत्ता के व्यक्ति थे। वे गंभीर विचारक और उत्साही देशभक्त थे। यद्यपि जीवन भर इन्हें सरकारी नौकरी की बाधा रही, फिर भी वे सदा राजनीतिक, धार्मिक और उससे भी अधिक समाज-सुधार के कार्य में उत्साह पूर्वक लगे रहे। वे भारतीय अर्थशास्त्र के अधिकारपूर्ण ज्ञाता थे। वे महान् शिक्षाविद् थे, और अपने पास काफ़ी बड़ी संख्या में आते रहने वाले युवकों के गुरु तथा उत्साह दाता थे। इन सब महान् गुणों के होते हुए भी रानाडे बड़े ही संकोची, सीधे सादे, शिष्ट और निरभिमान थे और उनमें वह धार्मिकता और विनम्रता भरी हुई थी जो सच्ची महानता के साथ सदा पाई जाती हैं। भारत के सार्वजनिक प्रश्नों में दिलचस्पी रखनेवाले विद्यार्थियों को रानडे का भारतीय अर्थ-शास्त्र, धार्मिक तथा समाजिक सुधार और मराठों के उदय सम्बन्धी लेखमालाओं को अवश्य पढ़ना चाहिये।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

बंगभंग के पूर्व ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की ख्याति चारों ओर फैल गई थी। ई० सन् १८८६ में कलकत्ते में होनेवाले कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में वे सम्मिलित हुए और थोड़े ही अर्से में उनकी गणना देश के मान्य नेताओं में होने लगी। सर हैनरी कांटन ने अपनी 'नवीन भारत' (New India) में लिखा था:—"मुल्तान से लेकर चटगाँव तक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी अपनी वाग्शक्ति से विद्रोह खड़ा कर सकते तथा उसे दबा सकते थे। दो बार वे कांग्रेस के अध्यक्ष हुए और दोनों बार उन्होंने अपनी स्मरणशक्ति का अद्भुत् चमत्कार दिखाया। दोनों बार उनका भाषण काफ़ी लम्बा था। भाषण करते समय उन्होंने उसकी छपी हुई प्रति हाथ में नहीं ली, परन्तु फिर भी उनके मौखिक भाषण तथा छपे हुए भाषण में एक शब्द का भी अन्तर नहीं पड़ा। भारत के कामों से वे चार बार इंगलैंड गये और प्रत्येक बार उनके भाषणों की बड़ी प्रशंसा हुई।

बंग भंग आन्दोलन के विरुद्ध उन्होंने जोर की आवाज़ उठाई। उनके भाषणों ने सारे बंगाल को जागृत कर दिया। वे बंगाल के शेर कहे जाने लगे। अगर यह कहा जाय तो अत्युक्ति-न होगी कि बंगभंग के समय वे बंगाल के हृदय-सम्राट् थे। दुःख है कि पीछे जाकर वे नर्म दल के अनुयायी बन गये और नवयुवक बंगाल का नेतृत्व उनके हाथ से निकल गया।

बाल गंगाधर तिलक

गाँधीजी के पहिले राष्ट्र-जीवन में तिलक का सर्वोच्च स्थान था। वे राष्ट्र के हृदय-सम्राट् थे। उनका सारा जीवन अपने प्रिय राष्ट्र को स्वतंत्र करने के प्रयास में बीता। महामना मालवीय जी ने इस ग्रन्थकार द्वारा लिखे हुए "तिलक-दर्शन" नामक ग्रन्थ की भूमिका में लोकमान्य तिलक

का परिचय देते हुए लिखा है:—"पिछले सत्तर वर्षों में हमारे देश में अनेक सुयोग्य देशभक्त नेता हुए हैं, जिनका नाम भारतवासी श्रद्धा और सन्मान के साथ स्मरण करते हैं और करते रहेंगे। इनमें सबसे अधिक आदर के योग्य दादाभाई नौरोजी हैं जिन्होंने साठ वर्ष से ऊपर तक अपने भारतीय भाईयों के मान और कल्याण के लिये लगातार आन्दोलन किया और जिनहोंने आधी सदी के अनुभव के उपरान्त सन् १६०६ की कांग्रेस में देश को यह मंत्र दिया कि स्वराज्य ही हमारे सब राजनैतिक अनादर और हानियों का मारक और सब सुख और सन्मान का एक निश्चित साधन है; और दूसरे अति सन्मानित पुरुष गोपाल कृष्ण गोखले हैं, जिन्होंने देश की पवित्र सेवा में अपने को आहुत कर दिया। किन्तु विना किसी और देशभक्त का कुछ भी अपमान किये यह कहा जा सकता है कि पिछले बीस वर्षों में भारत की सर्व साधारण जनता में जो मान और महत्व बालगंगाधर तिलक को प्राप्त था वह किसी दूसरी व्यक्ति को नहीं प्राप्त था। पिछले दो वर्षों में जबसे रौलेट ऐक्ट के विरोध में हमारे सन्मानित भाई मोहनदास कर्मचंद गांधीजी ने देश को सत्याग्रह का उपदेश किया और विशेष कर जबसे उन्होंने पंजाब और ख़िलाफ़त के संबंध के आन्दोलन में नई जान डाली तब से सर्व साधारण में उनका सबसे अधिक मान और महत्त्व है। किन्तु उसके पूर्व प्रायः बीस वर्ष तक देश में सबसे अधिक सन्मानित पुरुष बाल गंगाधर तिलक ही थे, और गांधीजी का महत्त्व बढ़ने पर भी तिलकजी का मान अत्यन्त विशाल बना रहा। उनके परलोक गमन का समाचार सुन कर जिस प्रकार समस्त भारतवर्ष ने शोक प्रकाश किया उससे यह बात निर्विवाद सिद्ध है।

इस असाधारण मान का क्या कारण था? वह अनेक कारणों का समवाय था। प्रधान इनमें उनकी गम्भीर, स्वार्थ रहित, भय रहित, धैर्य्य और उत्साह युक्त अविचल देशभक्ति थी।

"एक धर्म एक व्रत नेमा। मन वच काय देश में प्रेमा॥"

इसी भक्ति से उन्होंने चालीस वर्ष तक देश की अविच्छिन्न सेवा की। बाल गंगाधर तिलक एक ऊँची श्रेणी के विद्वान् थे। उनकी बुद्धि विचक्षण थी। उनकी वाक् शक्ति वैसी ही प्रबल थी, जैसी उनकी लेखनशक्ति प्रौढ़ थी। बी० ए० एल-एल० बी० की परीक्षाओं को पास कर, वकालात करने के अधिकारी होकर एक ऐसे विद्वान, बुद्धिमान, स्वतंत्रता प्रिय नवयुवक का वकालात के प्रलोभनों से मुँह मोड़कर, निर्धनता से स्वयंवर करना, उनके मन के महत्व का प्रमाण है"।

"साधारण लोगों में ज्ञान का प्रचार करने के लिये तिलकजी और उनके साथियों ने "केसरी" और "मराठा" नामक दो पत्र निकाले। "मराठा" और "केसरी" के लेख बड़े प्रौढ़ और निडर होते थे। उनके द्वारा दिन दिन महाराष्ट्र में अधिक जागृति होती गई। प्रजा के हित की बातों को प्रबल रीति से प्रकाश करने के कारण और अनेक उपायों से प्रजा में एक नये जीवन का संचार करने के कारण तिलकजी दिन दिन अधिकारियों की दृष्टि में खटकने लगे। १८६७ में जब प्लेग के कुप्रबन्ध के कारण पूना में एक अंग्रेज मारा गया, तब उनके ऊपर एक राजद्रोह का मुक़दमा क़ायम हुआ। उसमें तिलकजी को अठारह महीने की सज़ा हुई। सात अंग्रेजी ज्यूरर्स ने उनको दोषी बतलाया और दो हिन्दुस्थानी ज्यूरर्स ने निर्दोष ठहराया। उनको सज़ा हुई। इससे सारे भारतवर्ष में उनके साथ सहानुभूति हुई, उनका मान महत्व अधिक बढ़ा। दूसरी बार तिलकजी पर अधिकारियों के प्रोत्साहन से ताई महाराज का मुक़दमा हुआ, जिसमें उनकी अन्त में विजय हुई। तीसरी बार फिर एक राजद्रोह का मुक़दमा उन पर सन् १६०८ में दायर हुआ जिसमें उनको छः वर्ष की अति कठोर सज़ा हुई। चौथी बार सतारा के मैजिस्ट्रेट ने उनसे बीस बीस हज़ार की दो जमानतें माँगी, जिसमें भी "हाईकोर्ट" में उनकी विजय हुई। इन सब संकटों में तिलकजी का धैर्य अविचल रहा। विरोधी के

सामने अथवा विपत्ति के सामने वे कभी नहीं झुके। सर्व साधारण को विश्वास था कि इन सब मामलों में तिलक महाराज निर्दोष थे और अधिकारियों ने उनकी स्वतंत्रता के दबाने के लिये उन पर ये मुक़दमे क़ायम किये और उनको कठिन सज़ा दी गई।"

"विपत्ति में उन्होंने गीता के "दुखेष्वनु द्विग्नमनः सुखेषु विगत स्पृहः" स्थितधी मुनि का वर्णन चरितार्थ कर दिखाया। जितनी ही धीरता उन्होंने संकट में दिखाई उतना ही सर्वसाधारण का प्रेम और भक्ति भाव उनमें बढ़ता गया। तिलकजी का सनातन धर्म में प्रेम और अपने देश के प्राचीन गौरव का सदभिमान, उनके रहन सहन की सादगी, उनका स्वार्थ त्याग, उनका पवित्र चरित्र और उनका सुख में भी और संकट में भी अपने जीवन का प्रति क्षण देश की उन्नति के कार्य और विचार में अर्पित करना—इन गुणों ने लाखों प्राणियों के हृदय में उनका बड़ा ऊंचा आसन बना दिया। गवर्नमेंट के प्रतिनिधि उनके शत्रु सर वेलंटाइन चिरोल ने उनका प्रभाव तोड़ने के लिये जो एक भारी पुस्तक लिखी यह बात भी उनके महत्व बढ़ाने वाली हुई। तिलकजी का पांडित्य गंभीर था। 'ओरायन' और 'वेदों में आर्यों का आर्कटिक होम' आदि ग्रन्थों से उनकी बड़ी ख्याति हुई थी। किन्तु अन्त की छः वर्ष की सज़ा में, जो उन्होंने 'भगवद् गीता रहस्य' लिख कर अपना असामान्य पांडित्य प्रकट किया और उसमें अपने देशवासियों को और समस्त जगत को सदा के लिये गीता के लोक परलोक हितकारी उपदेशों से अभ्युदय और निःश्रेयस् साधन करने का उत्कृष्ट मार्ग दिखाया। वह उनका सब से भारी कार्य उनके यश को अनन्त समय तक जगत में जीवित रक्खेगा। ऐसे बहुगुण सम्पन्न महान् पुरुष संसार में कभी कभी जन्म लेते हैं।"

महामना मालवीयजी महाराज ने संक्षिप्त में लोकमान्य तिलक के जीवन के विविध पहलुओं पर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला है। वास्तव

में लोकमान्य तिलक भारतीय राष्ट्र के जीवन थे। उन्होंने देश में नव चेतना का संचार कर राष्ट्र की आत्मा को जागृत किया था। राष्ट्र में नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव किया था। भारतीय स्वतन्त्रता का दिव्य संदेश दिया था। हम नीचे लोकमान्य तिलक के कुछ वचन उद्धृत करते हैं, जिनसे पाठकों को पता लगेगा कि भारत की स्वतन्त्रता के लिये उनके हृदय में कैसी अग्नि प्रज्वलित हो रही थी।

"स्वराज्य प्राप्त करना मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसे मैं प्राप्त करके रहूँगा। जब तक यह भावना मेरे हृदय में जागृत है, तब तक मैं वृद्ध नहीं हूँ। इस इच्छा को शस्त्र छेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और हवा उड़ा नहीं सकती। अपने ही घर का प्रबन्ध करना तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई दूसरा उसका अधिकारी तब तक नहीं हो सकता जब तक कि हम ना बालिग या पागल न हों। स्वराज्य प्राप्ति के लिये उद्योग करना ईश्वर के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना है। परमात्मा इस समय मेहरबान है और उसने हमें बड़ा अच्छा मौका दिया है। इस समय ज़रूरत है कि हम आपस के जाति और विचार भेदों को भुला कर आगे बढ़ें और कर्तव्य के मैदान में निर्भय होकर आ डटें। चाहे मेरी निन्दा हो या प्रशंसा, आज मर जाऊँ अथवा नौकरशाही द्वारा कल मारा जाऊँ, मुझे उसकी परवाह नहीं। किन्तु मेरा यह सच्चा उद्देश्य कि:—"भारतीय स्वतन्त्र हों, नष्ट नहीं हो सकता। हे जननि भारत! तू ही सब सुखों का भंडार है। संसार में तुमसे बढ़कर कोई दूसरा देश नहीं है। मैं मर कर भी यही चाहता हूँ कि तेरी गोद में फिर आऊँ, जब तक मेरे दुःख दूर न हों, तु स्वतन्त्र न हो, तब तक यहीं यह जीवात्मा जन्म ले।"

"अगर स्वराज्य के अधिकार मुसलमानों को, राजपूतों को या छोटी से छोटी या अन्त्यज जाति को दे दिये जावें तो मुझे कुछ परवाह नहीं। क्योंकि उस समय यह हमारा आपस का मामला रहेगा। इस समय तो

सिर्फ एक ही फिक्र रहनी चाहिये वह यह कि नौकरशाही के हाथों से अपने हाथों में किस प्रकार सत्ता आ सकती है।"

"आपत्ति से डरना मनुष्यता को खो बैठना है। आपत्तियाँ हमें बड़ा लाभ पहुँचाती हैं। कठिनाइयाँ हमारे हृदय में साहस तथा निर्भीकता उत्पन्न करती हैं, जिनसे सुरक्षित होकर हम भारी से भारी कष्टों का सामना आनन्दपूर्वक कर सकते हैं। वह जाति, वह राष्ट्र, जिसके मार्ग में कष्ट नहीं है, उन्नति नहीं कर सकता। इस लिये हमें कष्टों का स्वागत करना चाहिये।"

"देश के लिये जिसने अपने जीवन को बलिदान कर दिया है, मेरे हृदय मन्दिर में उसी के लिये स्थान है। जिसके हृदय में माता की सेवा का भाव जाग्रत है; वही माता का सच्चा सपूत है। इस नश्वर शरीर का अब अंत होना ही चाहता है। हे भारत माता के नेताओं और सपुतों! मैं अन्त में आप लोगों से यही चाहता हूँ कि मेरे इस कार्य को उत्तरोत्तर बढ़ाना।"

"राष्ट्र के प्रति अपना कर्त्तव्य जो इस समय हमारे सामने है, इतना महान् और विस्तृत एवं इतना जरूरी है कि मेरी अपेक्षा कहीं अधिक उत्साह और साहस से भारत माता के सब पुत्रों को एक होकर उसका पालन करना चाहिये। यह एक ऐसा कार्य है कि जिसे हम आगे के लिये टाल नहीं सकते। भारत माता हममें से प्रत्येक को पुकार पुकार कर कह रही है "उठो, कमर कसो, और काम में लगजाओ। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आपको प्रार्थना करूं कि माता की इस पुकार पर आपस का समस्त मतभेद भूल जाओ और राष्ट्रीय आदर्शों की प्रत्यक्ष मूर्ति बन जाने का उद्योग करो। माता के इस कार्य में न स्पर्धा है, न द्वेष है, और न भय है। ईश्वर हमें हमारे उद्योगों का फल प्रदान करेगा, और यदि उस सफलता को हम न भी प्राप्त कर सकें तो यह निश्चय है कि भारत की भावी सन्तान उसे अवश्यमेव प्राप्त कर लेगी।"

उपरोक्त उद्धरणों से पाठकों को लोकमान्य तिलक की स्वराज्य सम्बन्धी तीव्र भावनाओं का ज्ञान हुआ होगा । उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा और अपूर्व त्याग भावना से भारत में स्वराज्य की भावनाओं का जोरदार प्रवाह बहा दिया था । लोकमान्य के कट्टर विरोधी सर व्हेलेंन टाइन चिरोल ने अपनी 'भारतीय अशांति' (Indian Unrest) नामक पुस्तक में लोकमान्य के विषय में लिखा है "If anyone can claim to be truely the father of Indian unrest, It is Bal gangadhar Tilak" अर्थात् यदि भारतीय अशान्ति का कोई वास्तविक जनक होने का दावा कर सकता है तो वह बाल गंगाधर तिलक है ।"

महात्मा गान्धी ने लोकमान्य की प्रशंसा करते हुए लिखा था । "भारत का प्रेम लोक मान्य तिलक के जीवन का श्वासोच्छ्वास था । उनका धैर्य्य कभी कम न हुआ और निराशा उनको छू तक नहीं गई । उनके अलौकिक गुणों को धारण करना ही उनका स्मारक है ।" श्री अरविंद घोष ने लोकमान्य तिलक को श्रद्धांजली देते हुए कहा था:—"उन्होंने विन्दु का सिन्धु बनाया और टूटी फूटी अपूर्ण सामग्री से स्वराज्य का एक विशाल भवन तैयार किया ।"

वास्तव में लोक मान्य तिलक की तरह अलौकिक और सर्वंगामिनी बुद्धिमत्ता रखने वाला महापुरुष सदियों में कहीं एकाध बार जन्म लेता है । वे अनुपम गणितज्ञ थे, क़ानून के पारदर्शी पंडित थे, राज नीति शास्त्र में तो वे पारङ्गत ही थे । Orion और arctic Home in the vedas आदि ग्रन्थों ने प्राच्य संशोधक के नाम से उनकी कीर्ति फैला दी । परन्तु उनके गीता रहस्य से इस बात का निश्चय हो जाता है कि उनका पूर्वी और पश्चिमी दर्शन शास्त्रों का अध्ययन कितना गम्भीर था और उनकी प्रतिभा कितनी व्यापक और सूक्ष्म थी । इस ग्रन्थ ने संसार के साहित्य कोष की अपूर्व वृद्धि की है और लोकमान्य को आधुनिक काल

का आचार्यत्व प्राप्त करा दिया है।

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री सर सी० वाई० चिंतामणी ने अपने "भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष" नामक ग्रन्थ में लोकमान्य तिलक के विषय में विवेचन करते हुए लिखा है:—"लेकिन हर हालत में वे भारत की स्वतंत्रता के झंडे को निर्भीकता से ऊँचा उठाए रहे। जिस ध्येय को उन्होंने अपना जीवन अर्पित कर दिया था उसी की पूर्ति में उन्होंने अपना जीवन पूरी तरह खपा दिया। उनके समय का कोई अन्य व्यक्ति उनसे अधिक वाद-विवादों का केन्द्र नहीं बना। परन्तु इतिहासज्ञ को यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि वे उन मनुष्यों में से एक थे जिन्होंने अपने अदम्य साहस तथा आजीवन सेवा-कार्य से भावी भारत की नींव रक्खी थी। किसी का उनसे कितना ही मतभेद क्यों न हो, कोई भी जो भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का विचार करेगा, बालगंगाधर तिलक को अवश्य स्मरण करेगा और उन्हें नवीन भारत के राष्ट्र-निर्माताओं में निस्संदेह बहुत ऊंचा स्थान देगा।"

इस महान् देशभक्त का ईस्वी सन् १९२० में बम्बई में देहावसान हो गया। उस समय सारे भारत में शोक छा गया! सैकड़ों नगरों में हड़तालें और शोक प्रदर्शन हुए! बम्बई में लोकमान्य की अर्थी के साथ जो जुलुस था वह कई मील लम्बा था। महात्मा गांधी ने उस जुलुस में प्रमुखता से भाग लिया था।

गोपाल गणेश आगरकर

महाराष्ट्र में जिन महापुरुषों ने राजनैतिक और सामाजिक अभ्युदय में सबसे अधिक प्रमुखता से भाग लिया, उनमें श्री गोपाल गणेश आगरकर का आसन बहुत ऊँचा है। प्रारम्भ में वे लोकमान्य तिलक के सहयोगी थे, पर पीछे जाकर कुछ विषयों में दोनों में मत भेद हो गया। वे दोनों महापुरुष देश में स्वराज्य प्रस्थापित करने के विषय में एक मत थे।

विदेशी सत्ता से होनेवाले राष्ट्रीय पतन से दोनों ही सम दुःखी थे। पर कुछ विषयों में दोनों में मतभेद था। लोकमान्य तिलक विशुद्ध भारतीय संस्कृति के पक्ष में थे, और वे उसी के आधार पर स्वराज्य का भवन निर्माण करना चाहते थे। श्री आगरकर भारतीय संस्कृति के समर्थक होते हुए भी वे पाश्चात्य संस्कृति के विरोधी नहीं थे। उनका विचार था कि पाश्चात्य संस्कृति में रहे हुए सुन्दर तत्त्वों को भारतीय संस्कृति में मिला कर उसे समृद्धिशाली बनाया जाय। श्री आगरकर के मतानुसार जीवित संस्कृतियों के सम्पर्क से भारतीय संस्कृति को अछूता न रक्खा जाय। जो कुछ अन्य संस्कृतियों में उत्कृष्ट तत्व हैं उन्हें ग्रहण कर आत्मसात् करने में कतई संकोच न किया जाय। विचार-स्वातन्त्र्य को प्रधानता दी जाय और जहाँ परम्परागत भावनाओं और युक्ति-वाद में संघर्ष हो वहां युक्ति-वाद को स्वीकार किया जाय।

श्री आगरकर समाज-सुधारक के भी कट्टर पक्षपाती थे। ईस्वी सन् १८८८ के पहले वे केसरी के सम्पादक थे और उस समय उन्होंने प्रगतिशील राष्ट्रीयता (Progressive nationalism) और समाज सुधार के लिये जोरदार-आवाज उठाई थी। ईस्वी सन् १८८८ में उन्होंने सुधारक नाम का दूसरा पत्र प्रकाशित किया। उसमें भारतीय समाज-सुधार पर गम्भीर और जोरदार लेख प्रकाशित होते थे। जिन कारणों से-जिन सामाजिक बुराइयों से-हिन्दू समाज निर्बल और जर्जरित हो गया है, उनके खिलाफ़ उन्होंने अपने पत्र में बड़ा जोरदार आन्दोलन उठाया था। उनके लेखों में प्रगाढ़ विद्वता, भारतीय समाज की स्थिति का गम्भीर विश्लेषण, समाज निर्माण के उपयुक्त सुझाव रहते थे। वे बड़ी निडरता से सामाजिक बुराइयों पर प्रकाश डालते थे। स्त्री-पुरुषों की समानता, स्त्रियों की उच्च शिक्षा, प्रेम-विवाह, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार आदि विषयों के पक्ष में उन्होंने अपनी जोरदार लेखनी उठाई, और प्रबल सामाजिक आन्दोलन आरम्भ किया। श्री आगरकर की प्रबल

अभिलाषा थी कि हमारा राष्ट्र एक महान राष्ट्र हो और अन्य संसार उसे आदर के साथ देखे। श्री आगरकर ने अपने एक लेख में जो महान् विचार प्रकट किये थे उनका सारांश हम नीचे देते हैं।

"हमारे प्राचीन ऋषियों की तरह हमें भी नई प्रथाओं और रिवाजों को जन्म देने का अधिकार है। हमारे प्राचीन आचार्यों की तरह, ईश्वर की कृपा से, हम भी इसके अधिकारी हैं। हमें भी सत्य और असत्य जानने की परमात्मा ने बुद्धि दी है। हमारे हृदय अछूत भाईयों की दयनीय दशा को देखकर पसीजते हैं। विश्व संबंधी हमारा ज्ञान हमारे पूर्वजों से अधिक है। इसलिये हम उन्हीं प्रथाओं और उन्ही आज्ञाओं को स्वीकार करेंगे जो हमारे समाज के लिये हितकारक होगी और हानिकारक प्रथाओं की जगह पर समाज-कल्याण कारी प्रथाओं को प्रस्थापित करेंगे। इसी विचारधारा को लेकर हम सुधार के पथ पर आगे बढ़ेंगे।" उपरोक्त वाक्यों में श्री आगर कर की प्रगतिशील भावना का दिग्दर्शन होता है। श्रीयुत आर० जी० प्रधान महोदय ने अपने 'Indian Struggle for Swaraj' नामक ग्रन्थ में लिखा है; "दूसरे प्रान्त की अपेक्षा सामाजिक सुधार में अगर महाराष्ट्र ने अधिक प्रगति की थी उसका कारण आगरकर के लेख थे। श्री आगरकर भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन में बुद्धिवादी और प्रगतिशील तत्वों का प्रतिनिधित्व करते थे।"

गोपाल कृष्ण गोखले

श्री गोखले महोदय की राजनैतिक विचार धारा यद्यपि लोकमान्य तिलक से भिन्न थी, पर इसमें सन्देह नहीं कि वे भी भारतीय राष्ट्र के एक महान् सेवक थे। आचार्य जावडेकर महोदय ने अपने "आधुनिक भारत" नामक ग्रन्थ में लिखा है:—"ईस्वी सन् १८९७ से अगले बीस वर्ष का आधुनिक भारत का इतिहास गोखले और तिलक इन दो महाराष्ट्रीय नेताओं के नेतृत्व में काम करने वाले दो अखिल

भारतीय राजनैतिक पक्षों का इतिहास है, ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।" महात्मा गाँधी माननीय श्री गोखले को अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में गोखले की महान् देश सेवाओं की बड़ी प्रशंसा की है। महात्माजी उन्हें बड़ी श्रद्धा की निगाह से देखते थे।

गोखले महोदय का जन्म ईस्वी सन् १८६६ में रत्नागिरी जिले में हुआ। इनके माता पिता अत्यन्त गरीब थे। आपके बड़े भाई ने आपकी शिक्षा का प्रबन्ध किया। १८ वर्ष की उम्र में आपने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। उनकी छात्रावस्था निर्धनता और कठिनाई में बीती। उनकी अलौकिक प्रतिभा ने शीघ्र ही अपना प्रकाश फैलाना शुरू किया।

यद्यपि गोखले में इतनी योग्यता थी कि वे जीवन में बड़े से बड़ा पद प्राप्त कर सकते थे, परन्तु बीस वर्ष की अवस्था पूरी होने के पूर्व ही उन्होंने गरीबी और त्याग का जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने अपने जीवन के बीस वर्ष पूना के फर्ग्युसन कॉलेज की सेवा में दिये। इस महान् सेवा के लिये वे केवल नाम मात्र के लिये ७५) रु० मासिक लेते थे। गोखले महोदय के कारण इस कॉलेज की बड़ी प्रगति हुई। आपने इस कॉलेज के लिए बड़े परिश्रम से चन्दा इकट्ठा किया और उसकी नींव दृढ़ की।

गोखले महोदय ने महान् देश भक्त रानडे महोदय की शिष्यता स्वीकार की। श्रीमान् श्री निवास शास्त्री अपने अंग्रेजी ग्रन्थ "Life of Gopal Krishna Gokhale" में लिखते हैं:—"Ranade was great in every sense of the word and for fourteen years, Gokhale had the unique privilege of sitting at his feet, learning the great things of the world and profiting by the example of his experience, knowledge and industry" "हर दृष्टि से रानडे महान् थे।

चौदह वर्ष तक गोखले को रानडे के पैरों में बैठ कर संसार की महान् वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने का और उनके अनुभव, ज्ञान और उद्योग के उदाहरण से लाभान्वित होने का असाधारण अवसर प्राप्त हुआ।"

रानडे की प्रेरणा से गोखले ने पूना की सार्वजनिक सभा का मन्त्रित्व स्वीकार किया और वे उक्त सभा से निकलनेवाले त्रैमासिक पत्र का सम्पादन करने लगे। इसी अर्से में आपने आगरकर के सुधारक पत्र में भी समाज-सेवा पर लेख लिखना शुरू किया। इसके दो वर्ष बाद ही गोखले भारतीय राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) के सेक्रेटरी हो गये। दिन ब दिन श्री गोखले की प्रतिभा चमकने लगी। ईस्वी सन् १८९६ में लॉर्ड वेल्बी की अध्यक्षता में लन्दन में एक कमीशन मुकर्रर हुआ। उसका उद्देश्य भारत की आर्थिक अवस्था की जाँच करना था। भारत से होम चार्जेज़ आदि के रूप में इङ्गलैंड करोड़ों रुपया शोषण करता था। इस कमीशन के सामने गवाही देने के लिये बंगाल से मि० सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बम्बई से मि० वाछा और मद्रास से मि० सुब्रह्मण्य अय्यर गये थे। श्री रानडे और श्री जोशी ने पूना की ओर से नवयुवक गोखले को गवाही देने के लिये लन्दन भेजा। उन्होंने भारत के आर्थिक हित को ध्यान में रखते हुए जिस अपूर्व योग्यता से गवाही दी, उसका प्रभाव लन्दन के राजनैतिक क्षेत्रों में बहुत अधिक पड़ा। सर विलियम वेडरबर्न महोदय ने श्री गोखले के मुकाम पर आकर कहा "You have done most splendidly. Your evidence will be much the best on our side. Let me congratulate you on the signal service which you have rendered to your country. Our minority report will be based practically on your evidence" अर्थात् आपने अपना काम सर्वोत्कृष्ट रूप से किया। आपकी गवाही हमारे पक्ष में सबसे अच्छी रही। आपने अपने देश की

जो महान् सेवा की है। उसके उपलक्ष्य में मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। हमारी अल्पमत की रिपोर्ट (Minority Report) आपकी गवाही पर निर्भर रहेगी।" आगे चलकर मि० वेडरबर्न ने यह भी कहा कि कमीशन के अध्यक्ष लॉर्ड वेल्बी और वयोवृद्ध दादा भाई नौरोजी आपकी गवाही से अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं।

मि० केन (Caine) नाम के एक अंग्रेज सज्जन ने मि० गोखले को अपने एक पत्र में लिखा था।

"I have spent about seven hours in a careful study of your evidence. Permit me to say that I have never seen a cleverer or more masterly exposition of the views of an educated Indian reformer on all the subjects dealt with. And though I do not agree necessarily with all your views, it must of necessity have very great weight with the Commission. You and Wacha have rendered splendid and unique service to your country, for which your country men ought to be ever grateful"

"अर्थात् मैंने आपकी गवाही के ध्यानपूर्वक अध्ययन में लगभग सात घंटे व्यतीत किये और उससे मैं यह कहता हूँ कि सब सम्बन्धित विषयों पर एक शिक्षित भारतीय सुधारक ने जिस योग्यता और दक्षता से प्रकाश डाला वह अपूर्व और अद्वितीय था। यद्यपि मैं आपके सब विचारों से सहमत नहीं हूँ, पर मैं यह कह सकता हूँ कि आपकी गवाही का कमीशन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा। आपने और वाछा ने अपने देश की अपूर्व सेवा की है जिसके लिये आपके देश वासी आपके सदा कृतज्ञ रहेंगे।"

भारत की व्यवस्थापिका सभा में (Indian Legislative

Assembly) उनकी योग्यता की बड़ी धाक थी। अपनी मेम्बरी के प्रारम्भिक चार वर्ष तक तो वे लॉर्ड कर्जन जैसे योग्य व्यक्ति से प्रायः अकेले ही युद्ध करते रहे। स्वभावतः एक हठी साम्राज्यवादी तथा एक निर्भीक देशभक्त के पारस्परिक संबंध सदा स्नेहपूर्ण नहीं रह सकते थे, फिर भी लार्ड कर्जन के हृदय में उनके प्रति परम प्रशंसा तथा सम्मान का भाव था। एक बार उन्होंने मि० गोखले को पत्र में लिखा था कि:—"परमात्मा ने आपको असाधारण योग्यता प्रदान की है और आपने उसे समग्र रूप से देश की सेवा में अर्पित कर दिया है।" आज भी ऐसा कोई सार्वजनिक प्रश्न कठिनता से ही मिलेगा जिसके समझने में हमें मि० गोखले के किसी न किसी भाषण से कुछ प्रकाश न मिल सकता हो। वे देश के कार्य से कई बार इङ्गलैंड गये थे और वहां के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं पर उनका ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक बार 'नेशन' के महान् संपादक मि० मैसिंघम ने कहा था कि गोखले की समकक्षता का बुद्धिमान राजनीतिज्ञ कोई इङ्गलैंड में भी न था और निस्सन्देह वे मि० एस्क्विथ से भी महान् थे। देश-सेवा के अन्य अनेक कार्यों के अतिरिक्त मि० गोखले का एक कार्य भारत सेवक समिति की स्थापना थी, जिसके आदर्श से और ऊँचा आदर्श हो नहीं सकता। उसका ध्येय था:–'मातृभूमि के प्रति ऐसी गंभीर तथा हार्दिक भक्ति कि जिसका विचार ही मनुष्य को उत्साह से भरदे।" ये शब्द मि० गोखले ने भारत सेवक-समिति की स्थापना के छः मास पश्चात कांग्रेस के काशीवाले अधिवेशन में सभापति के आसन से कहे थे। कांग्रेस के अध्यक्ष बनाये जाने के समय उनकी अवस्था केवल ३९ वर्ष की थी। इतनी कम अवस्था में कोई अन्य व्यक्ति कांग्रेस का अध्यक्ष नहीं हुआ था। फिर भी कांग्रेस के सबसे अधिक बुद्धिमान तथा सबसे महान् अध्यक्षों में उनका स्थान है। गोखले महोदय के राजनैतिक विचारों से कोई सहमत हो या न हो, पर यह निर्विवाद है कि वे महान् देशभक्त थे। देश की भावना उनके रोम रोम में थी,

वे हरवक्त और हर स्थिति में देश की बात सोचते और देश के लिये परिश्रम करते थे। उनका हृदय विशाल था और वे अपने विरोधी के गुणों की भी प्रशंसा करते थे। उन्होंने प्रयाग में भारत सेवक समिति नामक एक महान संस्था स्थापित की जिसमें माननीय श्री श्रीनिवास शास्त्री तथा पं० हृदयनाथ कुँजरू जैसे महान् देशभक्त व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। इस समिति की प्रस्तावना में माननीय गोखले महोदय ने जो वचन लिखे हैं वे प्रत्येक देशभक्त और देश के लिये कार्य करनेवाले सज्जनों को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिये।

"अब समय आ गया है कि हमारे देशवासी यथेष्ट संख्या में देश के कार्य में उसी भावना से लग जायँ जिस भावना से धर्म का कार्य किया जाता है। देशप्रेम से हमारा हृदय इस प्रकार भर जाना चाहिये कि उसकी तुलना में और कोई भी वस्तु तुच्छ जचने लगे। ऐसा उत्साह पूर्ण देशप्रेम जो मातृभूमि की सेवामें त्याग का अवसर प्राप्त होने पर आनन्द का अनुभव करे, ऐसा निर्भीक हृदय जो कठिनाई अथवा संकट से भयभीत होकर अपने ध्येय से हटना न जानता हो, ईश्वरेच्छा में ऐसा दृढ़ विश्वास जिसे कोई भी वस्तु न हिला सके, इन साधनों से सुसज्जित होकर कार्यकर्त्ता को अग्रसर होना चाहिये और श्रद्धा पूर्वक उस आनन्द की खोज करनी चाहिये जो मातृभूमि की सेवा में अपने को खपा देने से प्राप्त होता है।"

महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतवासियों की अधिकार-रक्षा के लिये जो महान् आन्दोलन उठाया था उसमें गोखले ने हार्दिक सहयोग दिया था। उन्होंने भारतवर्ष के इस छोर से लगा कर उस छोर तक दौरा कर प्रभावशाली व्याख्यानों द्वारा महात्मा गांधी और उनके आन्दोलन के पक्ष में लोकमत तैयार किया था। ईस्वी सन् १९१४ में इस महान् देशभक्त का स्वर्गवास होगया। श्मशान भूमि में स्वर्गीय आत्मा के प्रति श्रद्धांजली अर्पण करते हुये लोकमान्य तिलक ने

इस महान् देशभक्त के जीवन का अनुकरण करने के लिये लोगों से अपील की थी।

मदन मोहन मालवीय जी

जिन महान आत्माओं ने अपना सारा जीवन अपने प्रिय देश की सेवा में अर्पण किया, उनमें महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी का आसन बहुत ऊँचा है। महात्मा गाँधी तक उन्हें अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उन्हें अपना बड़ा भाई मानते थे। यद्यपि महात्मा गाँधी और मालवीयजी में राजनैतिक मतभेद था, पर मालवीयजी की महान् सेवाओं की, उनके साधु जीवन की, उनके अलौकिक त्याग की महात्माजी बड़ी प्रशंसा किया करते थे। पं० जवाँहरलाल जी नेहरू ने अपनी "आत्मकथा" में लिखा है कि मालवीयजी से मतभेद रखनेवाले लोग भी मालवीयजी के साधु चरित्र के कारण उन्हें बड़ी श्रद्धा (Reverence) की दृष्टि से देखते थे।

मालवीयजी महाराज का जीवन त्याग, तपश्चर्या और देश सेवा का एक लम्बा इतिहास है। दया, सौजन्य, कोमलभाव और मधुरता आदि महान् गुण तो उनके जीवन के अंग बन गये थे। गरीब से गरीब आदमी की उन तक पहुँच थी और वे उसकी सेवा के लिये तत्पर रहते थे। मालवीयजी देश के लिये जीये और देश के लिये मरे।

अपनी युवक अवस्था से मालवीयजी ने देश सेवा का व्रत ग्रहण किया और आजन्म तक वे अपने प्यारे देश की सेवा करते रहे। दो बार वे कांग्रेस के अध्यक्ष हुए और दिल्ली कांग्रेस के अन्तिम भाषण में उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये जो मर्मस्पर्शी अपील की उससे पंडाल में उपस्थित जनता के हृदय द्रवीभूत हो गये थे और हजारों की आंखों में आँसुओं की धाराएँ बह रहीं थीं।

मालवीयजी हिन्दी के अनन्य प्रेमी थे। उन्होंने दो वक्त हिन्दी साहित्य

सम्मेलन के पद को सुशोभित किया। उनका स्पष्ट मत था कि हिन्दी ही राष्ट्र भाषा होने के योग्य है।

मालवीयजी एक सच्चे ब्राह्मण थे। उनका जीवन ऋषि तुल्य था। भारतीय संस्कृति के वे अनन्य उपासक थे। हिन्दू धर्म की आत्मा को उन्होंने भली प्रकार समझा था। संस्कृत के वे अच्छे विद्वान थे। भारत के उच्च श्रेणी के वक्ताओं में उनकी गणना थी। द्वेष और अभिमान उनके पास फटकने तक न पाते थे। शत्रुओं से भी प्रेम करने की उनकी भावना थी। मालवीयजी महाराज ने देश को अनेक संस्थाएं प्रदान की हैं, जिनमें काशी का हिन्दू विश्वविद्यालय सबसे महान् है। यह मालवीयजी के जीवन की महानता का अमर स्मारक है।

भारत हितैषी अंग्रेज

अंग्रेजों ने भारत को जिस प्रकार दासता की शृंखला में फँसाया था, उसका उल्लेख हम गत पृष्ठों में कर चुके हैं। इतने पर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कुछ विशाल हृदय अंग्रेज भारत के हितैषी थे। उन्होंने भारत के साथ सदा सहानुभूति का व्यवहार रक्खा और भारत की आकांक्षाओं के लिये आवाज़ भी उठाई। इनमें मि० ह्यूम, रस विलियम वेडरबर्न, सर हेनरी कॉटन और मि० डिग्बी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आधुनिक युग में महामना एन्ड्रूज की भारत-सेवाओं से तो आधुनिक भारतीय समाज भली प्रकार परिचित है। महात्मा गांधी और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ का तो आपके साथ आत्मीय संबंध था। एन्ड्रूज को महात्माजी बड़े प्रेम से चार्ली कहते थे। प्रवासी भारतियों के लिये एन्ड्रूज महोदय ने जो कुछ किया उसे भारतवासी सदा कृतज्ञता के साथ स्मरण करेंगे।

सर विलियम वेडरबर्न अपने को भारत का सेवक मानते थे। भारत वासी भी उन्हें अपना हितैषी मानते थे। उन्होंने बम्बई प्रान्त में एक

सिविलियन की हैसियत से सरकारी नौकरी की। इस अर्से में भारत वासियों के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण रहा। पेंशन लेने के बाद ये २६ वर्ष तक जीवित रहे और यह सारा समय उन्होंने भारत की सेवा में बिताया। कहा जाता है कि उन्हें एक हजार पौंड सालाना की जो पेंशन मिलती थी, उसका अधिकांश भाग वे भारत के काम में खर्च करते थे। भारतवासियों ने भी इस उपकार का बदला उन्हें ईसवी सन् १८८६ में बम्बई वाली कांग्रेस का अध्यक्ष पद प्रदान कर चुकाया। श्री रानडे महोदय ने मि० गोखले से कहा था कि जितने अंग्रेज़ों से उनका परिचय हुआ था, उनमें कोई ऐसा नहीं था जिस की वैडरबर्न से तुलना की जा सकती हो। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि अंग्रेज़ कर्मचारी के वेष में वे सचमुच एक भारतीय देशभक्त हैं। मि० गोखले सर विलियम वैडरबर्न को अपने पिता की तरह मानते थे। सर वैडरबर्न को श्रद्धाञ्जली अर्पण करते हुए श्री गोखले ने कहा था:—"आधुनिक युग के इस महान् और आदरणीय ऋषि का चित्र इतना पवित्र, इतना सुन्दर और इतना उत्साह-प्रद है कि उसका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। वह ऐसा चित्र है जिस पर प्रेम और श्रद्धापूर्वक विचार किया जाय और मौन-पूर्वक मनन किया जाय।"

सर वैडरबर्न के अतिरिक्त और भी कई भारत हितैषी अंग्रेज हुए हैं, जिनमें कांग्रेस के जनक मि० ह्यूम, सर हेनरी कॉटन, (आपको भारतीय कांग्रेस के सभापति होने का गौरव प्राप्त हुआ था), मि० सैमुअल स्मिथ मि० हरबर्ट राबर्ट्स, मि० विलियम डिग्बी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आगे चल कर और भी कुछ ऐसे अंग्रेज महानुभाव हुए हैं जिन्होंने भारत की सेवाएं की हैं और जिनका उल्लेख यथावसर होगा।

भारतवर्ष में धार्मिक
और
सामाजिक जागृति

आर्य समाज

स्वामी दयानन्द

राजनैतिक जागृति के साथ उस समय धार्मिक और सामाजिक जागृति की भी एक ज़बरदस्त लहर आई। राजा राममोहनराय और उनके ब्रह्म समाज के सम्बन्ध में हम गत पृष्ठों में प्रकाश डाल चुके हैं। यहां हम एक ऐसी धार्मिक जागृति पर कुछ पंक्तियां लिखना चाहते है जिसने भारतवर्ष के धार्मिक और सामाजिक जीवन में क्रान्ति कारक परिवर्तन करने की चेष्टा की। इस महान् धार्मिक और सामाजिक जागृति के जनक स्वामी दयानन्द थे।

स्वामी दयानन्द का जन्म कठियावाड़ के मोरवी राज्य के एक गांव में, ब्राह्मण कुल में, हुआ था। शिवरात्री के दिन शिवजी की मूर्ति पर चूहे की हरकत को देखकर बालक दयानन्द के हृदय में मूर्तिपूजा के विरुद्ध जोरदार विद्रोह की भावना उत्पन्न होने लगी। स्वामी दयानन्द का पूर्व नाम मूलशंकर था। इनके पिता शिवजी के परम भक्त थे। बालक मूलशंकर ने मूर्तिपूजा के विषय में तत्कालीन घटना को लेकर प्रश्न करना शुरू किया। पिता ने पुत्र के समाधान करने की बड़ी चेष्टा की, पर वे असफल रहे। मूलशंकर कुछ दिनों के बाद सत्य की खोज में

बाहर निकल पड़े और वे आबू, अरवली, गढ़वाल इत्यादि पर्वतों में घूम कर ऐसे गुरू की खोज करने लगे जो उन्हें सत्य तत्त्व का ज्ञान दे सके। उन्होंने इस खोज में सहस्त्रों कोसों की पैदल यात्रा की। इस समय उन्होंने ऐसे ऐसे कष्ट भोगे जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके पैर छालों से छलनी हो गये। उनका नंगा शरीर कांटों से लहू-लुहान हो गया। गढ़वाल के पर्वतों में अलखनन्दा नदी में एक बार वह हिम की अत्यधिक असह्य ठंडक के कारण बेसुध होकर गिर पड़े! पहाड़ी लोग आपको वहां से उठाकर लाये और किसी प्रकार आपकी प्राण रक्षा के हेतु बने। वे खुले मैदानों में सोये। हिंसक पशुओं से भरे हुए गहन और भयानक बनों में वृक्षों की शाखाओं पर बैठ कर रातें बिताईं। बन के फल-फूल और कन्द मूल खाकर पेट की ज्वाला बुझाई। इतना होने पर भी उन्हें कोई सच्चा गुरु व पथ प्रदर्शक न मिला।

अखिर छत्तीस वर्ष की उम्र में आपको पता चला कि मथुरा में स्वामी विरजानन्द नाम के अस्सी वर्ष के एक वृद्ध और प्रज्ञाचक्षु सन्यासी रहते हैं, जो संस्कृत व्याकरण के प्रकांड विद्वान् होने के साथ साथ वेदों के भी अद्वितीय ज्ञाता हैं। दयानन्द वहां पहुँचे और उन्होंने उक्त-सन्यासी जी के सामने अपने हृदय की अभिलाषा प्रकट की। स्वामी विरजानन्द उन्हें पढ़ाने लगे। स्वामी विरजानन्द से नवयुवक दयानन्द ने वेदों का अध्ययन किया और योग की क्रियाएं भी सीखीं। जब आपका विद्याध्ययन समाप्त होगया तब आपने अपने पूज्य गुरुसे निवेदन किया कि "गुरु वर्य! मेरे पास अपने आपको छोड़कर और कुछ भी नहीं है, जो मैं आपके चरणों में अर्पण कर सकूं। आप मुझे क्या आज्ञा देते हैं?" इस पर स्वामी विरजानन्द ने कहा:—"तब तुम अपने आपको ही गुरु दक्षिणा रूप में मेरी भेट चढ़ा दो। मैंने जो विद्या तुम्हें प्रदान की है उसको सफल करो। संसार वेदों की शिक्षा को भूल बैठा है, तुम फिर उसी शिक्षा का नये सिरे से प्रचार करो। एक बार फिर उन्हीं वेदों का डंका बजाओ।

अज्ञान के अंधकार को नष्ट करके ज्ञान की ज्योति का प्रकाश करो। आर्य जाति की बिगड़ी हुई दशा को सुधारो। निन्द्य रीतियां और हानिकर कुप्रथाएं दूर करो। घरबार से मुख मोड़ लो। खुले मैदान तुम्हारे घर हों। भूमि को पलंग बनाओ और पत्थरों को तकिया जानो। अपना तन मन प्राण होम कर आर्य जाति का उद्धार करो। भारत देश का कल्याण करो। बस, मुझे यही गुरु दक्षिणा चाहिये। सांसारिक सुख-ऐश्वर्य अथवा धन रत्न की मुझको कामना नहीं है।" इस पर स्वामी दयानन्द का दिल भर आया और वे हाथ जोड़ कर अपने गुरु से निवेदन करने लगे।

"मेरे परम पूज्य, श्रद्धास्पद गुरुदेव! दयानन्द अपने तन, मन, प्राण की दक्षिणा आपके चरणों पर चढ़ाता है। आशीर्वाद दीजिये कि मैं सफल मनोरथ होऊं!" गुरु विरजानन्दजी ने आपको आशीर्वाद दिया और स्वामी दयानन्द वैदिक संस्कृति का संदेश लेकर बाहर निकल पड़े। उन्होंने धूआंधार प्रचार करना शुरू किया। भारतवर्ष में फैले हुये मिथ्या विश्वासों और रूढ़ियों के ख़िलाफ़ उन्होंने बड़े ज़ोर से आवाज़ उठाना शुरू की। उन्होंने भारतवासियों को वेदों का संदेश दिया और उन्हें मानव ज्ञान का आदि स्रोत घोषित किया। भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता ही मानव जाति का कल्याण कर सकती है, इस बात का उपदेश वे अपने व्याख्यानों में देने लगे। मूर्ति तथा अन्य प्रकार की जड़ पूजाओं के ख़िलाफ़ उन्होंने विद्रोह की उठाई। भारत में फैले हुये असंख्य जातिभेदों के ख़िलाफ़ उन्होंने युद्ध-घोषणा की। विधवा विवाह के पक्ष में ज़ोरदार आवाज़ उठाकर उन्होंने एक महान् सामाजिक सुधार की नींव रक्खी। स्त्रियों और अछूतों पर होनेवाले अत्याचारों के ख़िलाफ़ उन्होंने ज़बरदस्त लोक-भावना उत्पन्न की। उन्होंने अनेक देवी देवताओं के बदले सिर्फ़ एक निरंजन निराकार ईश्वर की पूजा करने का आदेश दिया। उन्होंने भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भाव भरे और स्वराज्य का मंत्र दिया। उन्होंने यह दिखलाया कि भारतवासी केवल सुराज्य नहीं चाहते, पर वे

स्वराज्य चाहते हैं। स्वराज्य ही वैदिक संस्कृति का आदेश है और हरेक देश के निवासियों का यह अधिकार है कि वे अपने देश का शासन आप संचालित करें। इसके अतिरिक्त स्वामी दयानन्द ने पुरुष और स्त्रियों के समान अधिकारों की घोषणा की।

भारतवर्ष में ज्ञान की ज्योति चमकाने के लिये - वैदिक संस्कृति का प्रकाश फैलाने के लिये - और एक सुसंस्कृत समाज स्थापित करने के लिये स्वामीजी ने देश के सामने एक बड़ी योजना रक्खी। ईस्वी सन् १८७५ में बम्बई में स्वामीजी ने आर्य्य-समाज की स्थापना की, जिसके उद्देश्य वैदिक संस्कृति का प्रचार, जातिभेदों का नाश कर कर्मानुसार वर्णाश्रम पद्धति की स्थापना, अछूतोंद्धार, और राष्ट्र में स्वराज्य की स्थापना आदि थे।

जिन सामाजिक और धार्मिक कारणों से भारतवर्ष का पतन हुआ, उनको नाश करने में स्वामी दयानन्द ने बड़े जोर का प्रहार किया और उन्होंने भारतवर्ष में जो धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति की उसने उस भूमिका को तैयार किया जिस पर आज स्वराज्य की इमारत खड़ी की जा रही है। भारतवर्ष के राष्ट्र निर्माताओं में स्वामी दयानन्द का नाम अपना विशेष स्थान रखता है।

भारतवर्ष के सड़े गले समाज को स्वामी दयानन्द ने एक नवीन शक्ति और नवीन संदेश से सजीव किया। चाहे कोई स्वामीजी के धार्मिक और सामाजिक विचारों से सहमत हों या न हों पर राष्ट्र और समाज उत्थान के लिये उन्होंने जो महान् कार्य्य किया, उसे इतिहास गौरवशाली शब्दों में स्मरण करेगा।

॥ स्वामी रामकृष्ण परमहंस ॥

जिस समय स्वामी दयानन्द अपनी मिशन का प्रचार कर रहे थे उन्हीं दिनों बङ्गाल में एक महान् आत्मा का उदय हो रहा था, जिसका नाम

श्री रामकृष्ण परमहंस था। श्री रामकृष्ण परम हंस बड़े सीधे साधे साधु थे। नाम मात्र की शिक्षा उन्होंने प्राप्त की थी, पर उनकी आत्मा में एक ऐसी ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित हो रही थी जिसने कई बड़े २ हृदयों में प्रकाश डाला। स्वामी रामकृष्ण साम्प्रदायिक मतभेदों से बहुत ऊपर उठे हुए थे। आत्मसाक्षात्कार द्वारा अध्यात्मशक्ति का विकास कर मानवी एकता का संदेश देना, यह उनकी मिशन का प्रधान उद्देश्य था। पंडित जवाहर लालजी नेहरू ने इनकी असाधारण व्यक्तित्व, चरित्र और आकर्षण शक्ति की बड़ी प्रशंसा की है और यह भी लिखा है कि पाश्चात्य ज्ञान से शिक्षित मनुष्य भी उनसे बहुत प्रभावित होते थे। ❀

स्वामी रामकृष्ण सकल धर्मों की एकता के समर्थक थे। उनके विचारानुसार सकल धर्मों का अन्तिम उद्देश्य एक ही है, और यह वह परम तत्व है जो सारे विश्व में व्याप्त है और जिसका दिव्य प्रकाश तथा जिसकी दिव्य सत्ता विश्व का आदि कारण है।

स्वामी विवेकानन्द आपकी आध्यात्मिक शक्ति से इतने प्रभावित हुए कि वे उनके शिष्य हो गये। स्वामी विवेकानन्द ने "मेरे स्वामी (My Master)" नामक ग्रन्थ में स्वामी रामकृष्ण के दिव्य जीवन पर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला है।

॥ स्वामी विवेकानन्द ॥

स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामकृष्ण के प्रधान शिष्य थे। आपने अपने गुरु भाईयों की सहायता से रामकृष्ण मिशन नामक एक महान् संस्था की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य धार्मिक एकता द्वारा सकल जन कल्याण था। भारत के आध्यात्मिक भूतकाल में विवेकानन्द का बड़ा विश्वास था। वे भूतकालिक भारतवर्ष को वर्तमान काल के भारतवर्ष से जोड़ना चाहते थे। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति का

❀ The Dis-covery of India Page 280

अधिक से अधिक अभ्युदय कर पाश्चात्य संस्कृति के सुन्दर तत्वों के मिश्रण से उसे अधिक ऐश्वर्यशाली और प्रबल बनाने की उनकी अभिलाषा थी। पूर्व और पश्चिम का मधुर संयोग वे मानव जाति के विकास के लिये समझते थे। इस विचार धारा में स्वामी विवेकानन्द और कविवर रवीन्द्र नाथ एकमत थे।

स्वामी विवेकानन्द बंगाली और अंग्रेजी भाषा के बड़े प्रभावशाली वक्ता और लेखक थे। उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। इसके अतिरिक्त पं० जवाहरलालजी के शब्दों में उनमें वैद्युतिक और प्रज्वलित शक्ति भरी हुई थी। भारतवर्ष को आगे बढ़ाने के लिये उनकी बड़ी लालसा थी। उन्होंने जर्जरित हिन्दू समाज को नवजीवन का संदेश दिया और उसे अपने पैरों पर खड़े रहने का आदेश दिया।

ईस्वी सन् १८९३ में अमेरिका के चिकागो नगर में होनेवाले सर्व धर्म सम्मेलन (Parliament of Religions) में सम्मिलित होने के लिये स्वामीजी अमेरिका गये। पहले ही व्याख्यान में स्वामीजी के व्याख्यान का श्रोताओं पर अद्भुत् प्रभाव पड़ा। स्वामीजी की कीर्ति दूर दूर तक फैल गई और अन्य नगरों से भी स्वामीजी के व्याख्यान सुनने के लिये झुंड के झुंड लोग आने लगे। जहां देखिये वहां स्वामीजी की चर्चा होने लगी। अनेकों सभा सोसाइटियों की ओर से स्वामीजी के पास निमंत्रण आने लगे। अमेरिका के समाचार पत्रों में स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा होने लगी। बोस्टन नगर के "इवनिंग न्यूज" नामक पत्र ने अपने ५ अप्रेल सन् १८९४ ई० के अंक में लिखा था;—"स्वामी विवेकानन्द सचमुच एक बड़े विद्वान् हैं। धर्म सम्मेलन में जितने व्याख्याता आये थे, उनमें उनकी टक्कर का कोई न था।" न्यूयार्क हेराल्ड ने लिखा था:-"स्वामी विवेकानन्द वास्तव में एक महान् पुरुष हैं। उनके व्याख्यान सुनने के बाद हमारी यह धारणा हो गई है कि भारत जैसे शिक्षित देश में पादरियों को भेजना कितनी नादानी का काम है।

धर्म सम्मेलन के सभापति महोदय ने, जो हिन्दुस्तानियों को बिल॰ कुल असभ्य समझते थे और जिन्होंने बड़ी कोशिश के बाद स्वामी विवेकानन्द का धर्म सम्मेलन का प्रतिनिधि होना स्वीकार किया था, लिखा थाः—"सचमुच भारत धर्मों का जन्म देने वाला है। उस धर्म के प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ने अपने व्याख्यानों से जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव डाला है।"

स्वामीजी दो वर्ष तक अमेरिका में रहे और उन्होंने भारतीय संस्कृति का महत्व अमेरिका वासियों को समझाया।

ईस्वी सन् १८६५ में स्वामीजी ने इङ्गलैंड की यात्रा की। वहां भी आपके व्याख्यानों की धूम मच गई। लंदन नगर के प्रिंसेन्ज़ हाल में स्वामीजी का आत्मज्ञान पर इतना सुन्दर और प्रभावशाली व्याख्यान हुआ कि हजारों श्रोतागण स्तब्ध रह गये। भाषण समाप्त होने पर सब दूर स्वामी की वाह-वाह होने लगी। दूसरे दिन लंदन के पत्रों में स्वामीजी की प्रशंसा में बड़े बड़े कालम रंगे गये।

लंडन के स्टैंडर्ड पत्र ने लिखा थाः—"राजा राममोहनराय और केशवचन्द्र सेन के बाद स्वामी विवेकानन्द पहले ही हिन्दू हैं जिन्होंने प्रिन्सेज हाल में अपने व्याख्यान के द्वारा लोगों पर इतना प्रभाव डाला। उनका भाषण बड़ा गम्भीर और मार्मिक था। एक दूसरे पत्र ने लिखा थाः— "लंडन में अनेक जातियों के, अनेक व्यवसायों के मनुष्य मिलते हैं, पर इस समय इङ्गलैंड में उस तत्ववेत्ता से बढ़कर और कोई मनुष्य नहीं है जो हाल ही में शिकागो के धर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म की ओर से प्रतिनिधि था।"

स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत विचार धारा का प्रचार किया। इस विचारधारा के अनुसार ईश्वर एक है और विश्व के सकल चराचर प्राणी उसी विराट् स्वरूप के परमाणु भूत हैं। इसे दूसरे शब्दों में यों कह

लीजियेगा कि अद्वैत धर्म और विश्व बन्धुत्व पर्यायवाची शब्द हैं। स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार अद्वैत धर्म ही मानवजाति का भावी धर्म होगा और उसी में सकल मानव जाति के कल्याण की भावना निहित है। मानव जाति के सामूहिक कल्याण की भावना को लेकर स्वामी विवेकानन्द ने संसार को एक संदेश दिया और यह दिखलाया कि केवल मात्र जड़वाद को लेकर मनुष्य जाति मानवता के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकती। विश्व-कल्याण के लिये आध्यात्मिक मार्गों को ग्रहण करना पड़ेगा। स्वामीजी, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, आत्मवाद और अनात्मवाद की विचार-धाराओं के मधुर सम्मेलन से एक नवीन संस्कृति का निर्माण कर मनुष्य जाति के सामने एक नवीन आदर्श रखना चाहते थे।

स्वामी विवेकानन्द के उपदेश

स्वामी विवेकानन्द ने अपने लेखों तथा व्याख्यानों में मानव जीवन के विविध पहलुओं पर, तथा कई ऐहिक तथा पारलौकिक विषयों पर काफ़ी प्रकाश डाला है। पर उनका सबसे बड़ा मन्त्र जो उन्होंने सिखाया है वह है:—"निर्भय होओ" "बलवान होओ"। उनके मतानुसार मनुष्य कोई अभागा पापी नहीं है, वह ईश्वरत्व का एक अंश है। संसार में अगर कोई पाप है तो वह निर्बलता और कमज़ोरी है। इसलिये निर्बलता को दूर कर बलवान और तेजस्वी होने के लिये स्वामी विवेकानन्द हमेशा उपदेश किया करते थे, क्योंकि वे निर्बलता को पाप और अपराध समझते थे। इतना ही नहीं वे निर्बलता को मृत्यु समझते थे। वे कहा करते थे कि अगर हमारे देश को किसी बात की ज़रूरत है तो लोहे के रगों (Muscles) को और फ़ौलादी नाड़ियों की (Nerves) और ऐसी प्रबल इच्छा शक्ति की, जिसका कोई मुक़ाबला न कर सके, और जो विश्व के रहस्यों में प्रवेश कर अपने उद्देश्य की सिद्धि कर सके। स्वामी विवेकानन्द ने जादू टोना जंत्र मंत्र का विरोध किया है और कहा है कि चाहे इनमें सत्य हो, पर इन्होंने हमारा नाश कर दिया है।

विवेकानन्द ने राष्ट्र को डंके की चोट यह आदेश दिया है:—"तुम उन सारी बातों को विष की तरह बाहर निकाल फेंको, जो तुम्हें शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से निर्बल और कमजोर बनाती हैं। ऐसी बातें, ऐसे तत्व जीवन हीन होते हैं। सत्य बलवान है, सत्य जीवन है, सत्य पवित्रता है और सत्य ही सकल ज्ञान है।

उपनिषदों की ओर आइये। उनमें प्रकाश है, उनमें शक्ति है और उनमें प्रकाशमान तत्वज्ञान है। मिथ्या विश्वासों से दूर रहिये। मिथ्या विश्वासी मूर्खों की अपेक्षा मैं नास्तिकों को बहुत ज्यादा पसन्द करूंगा, क्योंकि नास्तिक फिर भी जिन्दा दिल होते हैं, और वे कुछ कर सकने की शक्ति रखते हैं।"

"पर मिथ्या विश्वास जहां मस्तिष्क में घुसा कि वह बुद्धि को नाश कर देता है, और जीवन पतन की ओर गति करने लगता है।"

स्वामी विवेकानन्द के विचारों का मूलभूत तत्व उपरोक्त पंक्तियों में आगया है। उन्होंने सारे देश में घूमकर राष्ट्र को उक्त संदेश दिया था। स्वामी विवेकानन्द के संदेश में दिव्य ज्योति, दिव्य दर्शन और राष्ट्र की आत्मा को विकसित करने वाले तत्व हैं। इस महान् आत्मा का ईस्वी सन् १६०२ में ३६ वर्ष की अवस्था में शरीरान्त हो गया।

जागृति की लहर

गत अध्यायों में भारतवर्ष में उदय होने वाली राष्ट्रीय भावनाओं और उसके प्रधान नेताओं का विवरण हम दे चुके हैं। यह राष्ट्रीय भावनायें आगे चलकर एक ऐसी प्रबल राष्ट्रीय ज्योति और राष्ट्रीय शक्ति को जन्म देती है जिसका विकसित रूप आगे चलकर राष्ट्र की स्वतंत्रता में परिणित होता है।

कांग्रेस के जन्म के बाद दक्षिण भारत में एक जबरदस्त राष्ट्रीय लहर उठती है, जिसका प्रधान संचालन बाल गङ्गाधर तिलक और उनके कुछ साथी करते हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं तिलक भारतीय राष्ट्रीय शक्ति के आद्यजनक थे। अपने समय में उन्होंने स्वाराज्य संग्राम में सबसे अधिक प्रमुखता का भाग लिया। आपके साथियों में श्री चिपलुनकर का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री चिपलुनकर बड़े प्रभावशाली लेखक थे। उन्होंने अपनी ग्रन्थ माला द्वारा देश को राष्ट्रीयता का संदेश दिया, और उसे अपने प्राचीन गौरव का भान करवाया। उनकी राष्ट्रीयता पर-राष्ट्र द्वेषी न थी। वे दूसरे देशों के गुणों को लेकर अपनी संस्कृति में उन्हें आत्मसात करने के पक्ष में थे, पर वे इस बात के विरोधी थे कि इस राष्ट्र को पश्चिमी सभ्यता के रंग से सांगोपांग रंग दिया जाय। अपनी भारतीय संस्कृति का भी उन्हें बड़ा अभिमान था और उनका विचार था कि यह संस्कृति मनुष्य जाति को विकास का एक नया संदेश दे सकती है। इतने पर भी अन्य देशों की संस्कृति के पुष्टिकारक तत्वों को लेकर अपनी संस्कृति को संपुष्ट बनाने के पक्ष का उन्होंने हमेशा समर्थन किया था। मि० चिपलुनकर ईस्वी सन् १८८२ में केवल बत्तीस वर्ष की अवस्था

में स्वर्गवासी हो गये। आपकी ग्रन्थमाला मराठी साहित्य में आज भी एक अनमोल निधि समझी जाती है।

श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ने राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाया और थोड़े ही समय में वे तरुण राष्ट्र के एक अग्रगामी नेता समझे जाने लगे। हां! सामाजिक विषयों में लोकमान्य तिलक का दृष्टिकोण पौराणिक दृष्टिकोण के अनुकूल था वे सामाजिक सुधार में शासन के हस्तक्षेप को अनुचित समझते थे। इस विषय में तत्कालीन समाज सुधारकों से उनका बड़ा मतभेद था।

लोकमान्य तिलक ने भारतवासियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति को भली प्रकार समझा था। उन्होंने भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिये गणपति उत्सव आदि धार्मिक पर्वों का आश्रय लिया। एशियाई राष्ट्रों की मनोवृत्ति में धार्मिक तत्व प्रबलता से बैठा हुआ है और इसके सहारे से राजनैतिक आन्दोलन को जीवन शक्ति मिल सकती है। इस भावना से प्रेरित होकर भारतीय पर्वों द्वारा राष्ट्रीय ज्योति को जागृत करने का उन्होंने उपक्रम किया। ईस्वी सन् १८८८ में आप पूना के सुप्रसिद्ध पत्र "केसरी" के संपादक हुए। इस पत्र का उस समय वही महत्त्व था जैसा कि लंदन में लंडन टाइम्स का है। लोकमान्य तिलक के हाथों में यह पत्र राष्ट्रीयता का एक बड़ा जबरदस्त साधन बन गया। राजनीति में इसकी जड़ें राष्ट्रीयता की दृढ़ भूमि पर स्थित थी। इस पत्र ने विदेशी सत्ता का जोरदार विरोध करना शुरू किया और लोगों में स्वदेश भक्ति, राष्ट्रीय सन्मान, राष्ट्रीय एकता, आत्म त्याग और अन्याय के विरुद्ध खड़े रहने की शक्ति आदि आदि तत्वों को बड़े जोर शोर के साथ प्रचार किया। इसके अतिरिक्त इस पत्र ने आन्दोलन करने की पाश्चात्य पद्धतियों की शिक्षा देना भी शुरू किया।

ईस्वी सन् १८९५ में लोकमान्य तिलक ने शिवाजी उत्सव मनाने का भी उपक्रम किया। इस उत्सव ने महाराष्ट्र में राष्ट्रीयता की ज्योति

को प्रज्वलित करने में सबसे बड़ा भाग लिया। इसके अतिरिक्त इन उत्सवों के द्वारा लोगों की धर्म-भावना और ऐतिहासिक विभूतियों के प्रति पूज्य भावना बढ़ाने का प्रयत्न किया। यह उत्सव सारे महाराष्ट्र में मनाये जाने लगे।

एशिया के राजनैतिक मंच पर कुछ ऐसी घटनायें हुईं जिन्होंने भारतवासियों के आत्म-विश्वास को बढ़ाने में बड़ी सहायता दी। ईस्वी सन् १८९६ में हिन्दुस्तान पर दो महान् संकट आये। एक अकाल का और दूसरा प्लेग का। अकाल निवारण के लिये लोकमान्य तिलक ने निश्चय किया कि सार्वजनिक सभा द्वारा किसानों का लगान माफ़ अथवा स्थगित कराया जाय और इसके लिये उनमें जागृति की जाय। इसके द्वारा उन्होंने किसानों में अपने हकों का ज्ञान उत्पन्न करने और विधि-विहित रीति से उन्हें सरकार से किस प्रकार लड़ना चाहिये यह सिखाना शुरू किया। सार्वजनिक सभा के द्वारा हर गांव में जाकर यह प्रचार किया गया कि पैदावार नहीं हुई है तो लगान मत जमा कराओ। इधर 'केसरी' के द्वारा भी इस संबंध में खूब हलचल शुरू की जिससे लोगों में हिम्मत आने लगी और किसान हजारों की तादाद में सभाओं में आने लगे। इस पर सरकारी अधिकारी तिलक महाराज को 'हिन्दुस्तान का पारनेल' कहकर उनकी निन्दा करने लगे। पर लोगों में इस आन्दोलन का अच्छा प्रभाव पड़ा और लोकमान्य तिलक का लोक सम्मान दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा। उनके अनुयायों की संख्या महाराष्ट्र में बढ़ने लगी। जिस तरुण, तेजस्वी और स्वात्याभिमानी राष्ट्रीय पक्ष का जन्म हाल ही में हुआ था, उसके वे अध्वर्यु माने जाने लगे। यह पक्ष सरकार से बड़ी शानबान के साथ बरतता था और सरकार जो काम लोक-हित के प्रतिकूल करती उनका सच्चा स्वरूप प्रकट करके उसकी वह कड़ी आलोचना करता था। हिन्दुत्व का इस पक्ष को बड़ा ही अभिमान था, और देश के लिये हर तरह का स्वार्थ त्याग करने के लिये

वह तैयार रहता था। अतएव यह पत्र सरकार की आँखों में खटकने लगा। पर सरकार भी अन्दर ही अन्दर तिलक के महत्त्व को मानने लगी। तिलक के कट्टर विरोधी और तत्कालीन सरकारी पक्ष के समर्थक सर शिरोल ने तिलक को नई राष्ट्रीयता के अवतार के रूप में स्वीकार किया था*।

ईस्वी सन् १८९७ में पूना में भयंकर रूप में प्लेग की बीमारी फैली। इसके एक ही वर्ष पहले, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, दक्षिण में अकाल पड़ चुका था। लोग पहले ही से परेशान थे और प्लेग की इस भयंकर बला के कारण लोगों के कष्ट बहुत ही अधिक बढ़ गये। उनके दुःखों का पारावार न रहा। सरकार ने प्लेग की रोक के लिए क्वारंटाइन आदि का जो प्रबन्ध किया वह इतना कष्टकर था कि इन यंत्रणाओं की अपेक्षा तो लोग रोग से मर जाना अच्छा समझने लगे। कहा जाता है कि गोरे सोल्जरों ने नगर के मकानों को धुलाते समय स्त्रियों तक पर अत्याचार और बलात्कार किये। माननीय मि० गोखले ने विलायत में इन अत्याचारों का जोरदार विरोध किया। कहने का सारांश यह है कि लोगों में त्राहि त्राहि मचगई। युवकों में विशेष उत्तेजना फैली आखिर चाफेकर नाम के एक महाराष्ट्र युवक ने ता० २७ जून १८९७ में उक्त प्लेग कमेटी के प्रेसीडेन्ट मि० रैंड का खून कर डाला! इस खून ने सारे हिन्दुस्तान में सनसनी फैलादी! सरकार के होश भी मुकाम पर न रहे। सरकार के दिल में यह बात जंच गई कि 'केसरी' के लेखों से ही लोगों को इस खून करने की उत्तेजना मिली। तिलक पर पहले से सरकार का रोष था ही, तिस पर भी अकाल के दिनों में उन्होंने प्रजा को यह स्पष्ट उपदेश दिया था कि यदि गुञ्जायश न हो तो लगान न दो। शिवाजी उत्सव के बदौलत जो चैतन्य लोगों में उत्पन्न हो रहा था उसे भी सरकार सहन नहीं कर सकी। उसने सोचा कि इन सारी

* Indian unrest.

आफतों की जड़ 'तिलक' है। अतएव उसने 'केसरी' के उन लेखों के सम्बन्ध में, जो खून के कुछ समय पहले प्रकाशित हुए थे, तिलक को ईस्वी सन् १८९७ की २७ जुलाई को गिरफ्तार कर लिया और बम्बई हाईकोर्ट में उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। जस्टिस स्ट्राची के इजलास में मुकदमा चला और उसमें छः यूरोपियन तथा तीन हिन्दुस्तानी मिलकर ९ पुरुषों की ज्यूरी थी। तिलक के बचाव में अन्यान्य कारणों के अलावा एक कारण यह भी पेश किया था कि मूल लेख मराठी में हैं। उनके अंग्रेजी अनुवाद में मूल लेख का असली रूप कायम नहीं रहता। इस दशा में यह निर्णय करने के लिये कि उनका पाठकों पर क्या प्रभाव होगा मराठी जानने वालों की ज्यूरी होनी चाहिए। परन्तु उनकी वह आपत्ति नहीं मानी गई। ज्यूरी में छः पुरुष मराठी न जानने वाले यूरोपियन थे, और उन्हीं का मताधिक्य था। यह बात याद रखने योग्य है कि शेष ३ ज्यूररों ने जो मराठी जानने वाले थे, तिलक को निर्दोष करार दिया और छहों यूरोपियनों ने उन्हें अपराधी ठहराया और जज स्ट्राची ने उन्हें १८ महीने की सजा ठोक दी।

भारतवर्ष के राजनैतिक विकास में यह घटना बड़ी महत्वपूर्ण समझी जाने लगी। नवयुवकों के तो तिलक मानों हृदय-सम्राट् हो गये। जिस अविचल धैर्य और शान्ति के साथ तिलक ने इस विपत्ति का सामना किया, उससे उनका प्रभाव और भी ज्यादा बढ़ गया।

इस समय लोकमान्य तिलक के कई मित्रों ने उन्हें यह सलाह दी कि वे माफ़ी मांग कर छूट जावें, पर तिलक ने इस राय को न माना।

लोकमान्य ने अमृत बाजार पत्रिका के तत्कालिन सम्पादक बाबू मोतीलाल घोष को जो पत्र लिखा था, उसका कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं:—"मित्र लोग माफ़ी मांगने का अनुरोध कर रहे हैं। परन्तु मुझे तो निश्चय है कि मैं निर्दोष हूँ। इस दशा में माफ़ी मांगकर अपमान पूर्वक अपने देश भाईयों में रहने की अपेक्षा कालेपानी को चला जाना

मुझे मंजूर है।"

लोकमान्य तिलक का हिमालय पर्वत की चट्टानों की तरह अविचल और दृढ़ निश्चय, उनकी अनुपम त्याग-भावना, उनकी देश के लिये कष्ट उठाने की अलौकिक शक्ति ने उन्हें राष्ट्र के देवता के रूप में पुजवाया और उनके इन महान् गुणों ने देश में नव चैतन्य और नवजीवन का संचार करने में बड़ा काम किया। तिलक राष्ट्र के एक महान् शक्ति के रूप में माने जाने लगे। उन्होंने अपने देशवासियों को मानव स्वाधीनता और मानव अधिकारों के लिये लड़ने की शिक्षा दी।

इसी बीच में कुछ ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ हुईं जिसने अन्य एशियाई राष्ट्रों की तरह भारतीय राष्ट्र पर भी आरोग्यशाली प्रभाव डाला। इस घटना में रूस जापान के युद्ध का समावेश होता है।

ईस्वी सन् १६०३ का रूस आजकल का रूप नहीं था। उस समय रूस की जनता जार के अत्याचारों से पीड़ित थी। लोगों में घोर असन्तोष छाया हुआ था। इसके विपरीत जापान बड़ी तरक्की कर रहा था। औद्योगिक और वैज्ञानिक उन्नति में वह यूरोप के प्रगतिशील राष्ट्रों की बराबरी करने लगा था। ऐसे समय में रूस जापान का युद्ध हुआ और एक छोटे से एशियाई राष्ट्र जापान ने विशालकाय यूरोपियन राष्ट्र रूस को बुरी तरह पछाड़ा। इससे यूरोपियन राष्ट्रों का एशियाई राष्ट्रों पर जो दबदबा था वह काफूर हो गया, और एशियाई राष्ट्र भी पूर्ण स्वाधीन होने का स्वप्न देखने लगे। भारतवर्ष के राष्ट्रीय जीवन पर भी इसका काफी असर हुआ और यहां के नवयुकों में न केवल स्वाधीनता की भावना ही प्रबल हुई, पर वे इस राष्ट्र को अन्य प्रगति शील और शक्ति-शाली राष्ट्रों की श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्त करवाने में सचेष्ट हुए।

——— —

लॉर्ड कर्जन का आगमन

जैसा कि हम गत अध्यायों में दिखला चुके हैं भारतवर्ष प्लेग, अकाल और राजनैतिक दमन से दुःखी हो रहा था। ऐसे समय में भारतवर्ष में लॉर्ड एलगिन की जगह पर लॉर्ड कर्ज़न वाइसराय बनकर आये। उम्र में अब तक के आये हुए वाइसरायों से ये सबसे छोटे थे। ये बड़े प्रतिभाशाली और साम्राज्य-मनोवृत्ति के वाइसराय थे। इसके पहले विलायत में वे भारत के उपसचिव भी रह चुके थे। ये बड़े प्रभावशाली वक्ता थे। वे शासन सुधार करना चाहते थे और भारतवर्ष के कृषक समुदाय की प्रगति भी उनका लक्ष्य था। पर वे भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं के कट्टर शत्रु थे। वे भारत की राजनैतिक स्वाधीनता की कल्पना तक न कर सकते थे। उन्होंने अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के अनुकूल जो मार्ग स्वीकार किया उससे देश में असन्तोष की जैसी ज्वाला भड़क उठी, उसका वर्णन अगले अध्यायों में किया जायगा।

बंगभंग

जैसा कि ऊपर कहा गया है, ईसवी सन् १८९९ में लार्ड कर्जन भारत के वाइसराय बनकर आये। उनका शासन काल भारतीय इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात करता है। इस समय तक का सारा राष्ट्रीय आन्दोलन शिक्षित हिन्दू युवकों तक ही सम्बद्ध था। बंगाल और महाराष्ट्र के हिन्दू इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ़े हुए थे। बंगाल में दिन दिन राष्ट्रीय भावना फैलती जा रही थी। लॉर्ड कर्ज़न ने इस प्रगति को रोकने और उस पर अंकुश रखने के लिए दो उपाय किये। सबसे पहले उन्होंने, १९०४ में, विश्व विद्यालयों के लिये एक क़ानून बनाकर शिक्षा की बागडोर सरकार के हाथ में दे दी। इससे भारत के शिक्षित युवकों में असन्तोष फैल गया। इधर यह किया गया, उधर बंगाल में बढ़ती हुई जागृति का बल तोड़ने के लिये भेद डालकर शासन करने की नीति का व्यवहार किया गया। मुसलमानों के प्रभाव को बढ़ाकर जागृति एवं राष्ट्रवादी हिन्दुओं के मुक़ाबले में "बैलेन्स" (सन्तुलन) बनाये रखने के ख़याल से १९०५ ईसवी में बङ्गाल को दो टुकड़ों में बाँट दिया गया। यद्यपि कहा यह गया कि शासन की सुविधा के लिये ऐसा किया जा रहा है।

लॉर्ड कर्जन के इस कुत्सित कार्य से सारे बंगाल में आग सी लग गई। बंगाल के छोटे छोटे गांवों तक में विरोध सभायें होकर बंगभंग के कुत्सित कार्य्य के प्रति घोर घृणा प्रकट की गई। सारे बंगाल के बंगाली मिल गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि लॉर्ड कर्ज़न बंगाल के दो टुकड़े कर सकते हैं, पर वे हमारे हृदय के दो टुकड़े नहीं कर सकते। इसी

दिव्य भावना को लिये हुए उस वक्त सारा बंगाल एक हृदय सा हो गया। अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये सब बंगाली सपूत मिल गये। क्या अमीर, क्या गरीब, सब लोग एक हृदय से बंगभंग का विरोध करने लगे। सारे बंगाल प्रान्त में या यों कहिए कि सारे भारतवर्ष में लॉर्ड कर्ज़न के इस कार्य्य से सनसनी फैल गई। सन् १६०३ के दिसम्बर मास से सन् १६०५ के अक्टूबर मास तक बंगाल में लगभग २००० सभाएं हुईं। पाठक यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि उस समय भी कुछ कुछ सभाओं में ५०००० आदमी तक इकट्ठा होते थे। हिन्दू और मुसलमान समान रूप से उत्साह प्रदर्शित करते थे। ढाके के स्वर्गीय नवाब सर सलीमुल्ला ने लॉर्ड कर्ज़न के इस कार्य्य को पाशविक व्यवस्था (Beastly arrangement) कहा था। सन् १६०५ की ११ वीं मार्च को डाक्टर रासबिहारी घोष के सभापतित्व में जो सभा हुई थी और जिसमें बंगाल के हज़ारों सपूत जमा हुए थे, उसमें लॉर्ड कर्ज़न के इस कुत्सित कार्य्य के प्रति तीव्र घृणा प्रकट की गई थी। ७ अगस्त को कलकत्ते में माननीय महाराजा सर मनीन्द्रचन्द्र नन्दी कासिमबाज़ार के सभापतित्व में जो सभा हुई, उसमें मानों सारे कलकत्ते का जन समाज उलट गया था। उसमें बंगभंग का घोर विरोध किया गया और इसके प्रतिकार के लिये स्वदेशी आन्दोलन का आरम्भ और विदेशी माल के बहिष्कार का प्रस्ताव पास किया गया। कविवर रवीन्द्रनाथ टेगौर के सुझाव पर १६ अक्टूबर का दिन राखी बन्धन के पर्व के उपलक्ष में सारे बंगाल में मनाया गया। इस दिन बंगाल भर में बंगालियों ने उपवास किये और शोक मनाया। उन्होंने एक स्वर से यह निश्चय किया कि चाहे लॉर्ड कर्ज़न बंगाल के टुकड़े करदें, पर हम लोग न केवल बंगाल के बाह्य शरीर ही को मिला देंगे पर उसकी आत्मा को भी एक कर देंगे। संसार की कोई शक्ति हमें विभक्त नहीं कर सकती। बंगाल में इतना जोश फैला कि बिस्तरों पर पड़े हुए रोगी भी नवजीवन अनुभव करने लगे। कांग्रेस

के भूतपूर्व सभापति आनन्द मोहन बोस अपनी रोग शय्या से उठकर आराम कुर्सी पर लेटकर इन विरोध सभाओं में जाकर लोगों का उत्साह बढ़ाते थे। कहने का मतलब यह है कि इसके पहले भारत के ब्रिटिश शासन के इतिहास में ऐसा मौका कभी न आया कि किसी वाइसराय के कार्य्य पर इस तरह घृणा प्रकट की गई हो। लॉर्ड कर्ज़न को इससे बहुत बुरा मालूम हुआ। वे आग बबूला हो गये! अब वे यह प्रयत्न करने लगे कि किसी तरह हिन्दू और मुसलमानों में फूट पड़ जाय। इसके लिये कर्ज़न पूर्वीय बंगाल को तशरीफ़ ले गये और मुसलमानों की बड़ी सभायें कर उन्होंने यह संदेशा सुनाया कि बंगभंग केवल शासन के सुविधा के लिये ही नहीं किया गया है, पर इसका एक उद्देश्य यह भी है कि नया मुसलमानी प्रान्त कायम हो जाय और उसमें मुसलमानों की प्रधानता रहे। इससे मुसलमानों के चित्त पर कुछ असर हो गया। जिन नवाब सर सलीमुल्ला खां ने पहले लॉर्ड कर्ज़न के बंगभंग कार्य को "पाशविक व्यवस्था" कहा था, वे भी दूसरी ओर झुक गये। हां, कुछ दूरदर्शी और सुशिक्षित मुसलमान अटल बने रहे और वे बंगभंग का बराबर विरोध करते रहे।

बंगभंग का आन्दोलन जोर शोर से चलता रहा। पहले सरकार के पास सैंकड़ों आवेदन पत्र (Memorial) भेजे गये। एक आवेदन पत्र पर, जो स्टेट सेक्रेटरी को भेजा गया था, कोई ७०००० बंग निवासियों के हस्ताक्षर थे। पर सरकार ने बहुत दिनों तक चुप्पी साधी।

किसी का कुछ जवाब नहीं दिया। बंगालियों ने आन्दोलन बराबर शुरू रखा। आखिर में सन् १९०५ में अकस्मात् यह सूचना प्रकट हुई कि स्टेट सेक्रेटरी ने बङ्गभङ्ग को मंजूर कर लिया है, और भङ्ग किये हुए नये प्रान्त में उत्तरीय बङ्गाल के छः ज़िले मिलाये जायँगे। सारे देश के मत का निरादर कर सरकार ने बङ्गभङ्ग का प्रस्ताव मंजूर कर लिया। इससे बड़ी भारी आग भभक उठी। लोगों को मालूम होने लगा कि निर्बलों की आवाज़ की कहीं पर्वाह नहीं की जाती। प्रार्थनाओं से कुछ

लाभ नहीं होता। जब तक मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा रहना नहीं सीखता, तब तक उसकी कोई कद्र नही होती। सरकार के इस कार्य से बङ्गाल निवासी निराश न हुए। उनकी जीवन-शक्ति दूनी हो गई। उनमें अपूर्व उत्साह और अद्वितीय देशभक्ति की लहर बह चली। बाबू कृष्णकुमार मित्र ने बङ्गाल के सुप्रसिद्ध पत्र, 'संजीवन' में ज़ोरदार लेख लिख कर बङ्गालियों से ब्रिटिश माल का बहिष्कार करने के लिये अपील की। "इण्डियन असोसिएशन" में बङ्गाल के दस बारह नेताओं ने मिल-कर बङ्गभङ्ग के विरोध में विदेशी माल का बहिष्कार करने का निश्चय किया। इसी साल की ७ अगस्त को कलकत्ते में एक बृहत् सभा हुई जिसमें स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात किया गया। इसके बाद बङ्गालियों का उत्साह अत्यन्त तीव्रता धारण करता गया। १६ अक्टूबर सन् १९०५ को बंगाल में जो अपूर्व दृश्य देखा गया, वह भारत के इतिहास में अनोखा है। कहा जाता है कि जब महाराजा नन्दकुमार को वारेन हेस्टिंग्ज़ ने अन्याय से फाँसी पर चढ़ाया था, उस वक्त को छोड़ कर ऐसा दृश्य कभी उपस्थित नहीं हुआ था। महाराजा नन्दकुमार को फाँसी हो जाने के बाद बङ्गाल के लाखों नर-नारी नंगे पैर और नंगे सिर इस लिये गङ्गा-स्नान करने गये थे कि उन्होंने एक निर्दोष ब्राह्मण को फाँसी पर लटकते हुए देखने का महापाप किया था। इसी प्रकार १६ अक्टूबर को हज़ारों-लाखों बङ्गाली राष्ट्रीय गीत गाते हुए नंगे पैर और खुले बदन बन्धुत्व की राखी बाँधते हुए तथा वन्देमातरम् की जय घोषणा करते हुए गङ्गा-स्नान के लिये जा रहे थे। बड़ा ही अपूर्व और हृदयस्पर्शी दृश्य था। जहाँ लॉर्ड कर्ज़न ने भाई-भाई को आपस में विभक्त कर देना चाहा था वहाँ उस दिन बङ्गाल के लाखों-करोड़ों सपूत एक हृदय और एक मन हो रहे थे। आँखों में प्रेमाश्रु लाकर एक दूसरे के गले लग कर मिल रहे थे। वे ईश्वर और भारत माता के सामने हाथ कर के यह प्रतिज्ञा कर रहे थे कि हम सदा के लिये एक हो रहे हैं। संसार का कोई प्रलोभन अब हमें जुदा न कर

सकेगा। आज हज़ारों-लाखों बङ्गाली विदेशी माल का बहिष्कार कर रहे थे और स्वदेशी माल का व्रत ले रहे थे। इस अपूर्व सम्मेलन में स्त्री-पुरुष बच्चे सब शामिल थे। देश के नवयुवकगण भारतमाता के उद्धार के लिये चिंतवन कर रहे थे। इतना अधिक उत्साह बढ़ा हुआ था कि बङ्गाल के कई प्रान्तों में अधिकारियों ने शान्ति भङ्ग होने के डर से असाधारण उपायों का (Extraordinary) अवलम्बन किया। बङ्गाली भाई भी इससे न डरे। उन्होंने निश्चय किया था कि अगर अधिकारी दमन-नीति का अवलम्बन करेंगे तो हम सत्याग्रह करेंगे। पर इस समय सब काम सकुशल और वैध रीति से हो गया। बङ्गाली बन्धुओं ने विभक्त बंगाल का नाम संयुक्त बङ्गाल रखा। कई वर्षों तक यह आन्दोलन बड़े ज़ोरों के साथ चलता रहा।

लॉर्ड कर्ज़न ने जो मन में विचारा था, कर डाला। लोकमत को उन्होंने बुरी तरह ठुकराया। एंग्लो इण्डियन पत्र, जो हमेशा भारतीय आकांक्षाओं का विरोध करते रहते हैं, उन्होंने भी लॉर्ड कर्ज़न के इस कार्य्य को पसन्द नहीं किया।

बङ्ग-विच्छेद के सम्बन्ध में स्टेट्समेन पत्र के सम्पादक ने एक बड़ा ही अच्छा लेख प्रकाशित किया था। उसने भी इस कार्य्य की घोर निन्दा की थी। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने ये भाव प्रकाशित किये थे:—

"One might well wish that Lord Curzon had not returned to India for the second time, for he could not have chosen a more effective way of wrecking his reputation than he has done."

इसका भाव यह है कि अच्छा होता अगर लॉर्ड कर्ज़न दूसरी मर्तबा हिन्दुस्थान को लौट कर न आते। क्योंकि इससे वे अपनी इज़्ज़त बरबाद करनेवाले मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते। इसी प्रकार 'इङ्गलिशमैन', 'स्टेट्समैन', 'डेली न्यूज़' आदि कई एङ्गलो इण्डियन पत्रों ने लॉर्ड कर्ज़न

के इस अदूरदर्शी और स्वेच्छाचारी कार्य्य की तीव्र निन्दा की थी।

लॉर्ड कर्ज़न के इस कुत्सित कार्य्य से केवल बङ्गाल में नहीं, सारे भारतवर्ष में आग लग गई। राष्ट्रीय दल की तो बात जाने दीजिये। मि० सुब्बाराव, माननीय मि० गोखले, माननीय मि मुधोलकर जैसे नर्म नेताओं ने भी एक स्वर से लॉर्ड कर्ज़न के इस कार्य्य का तीव्र विरोध किया। माननीय मि० गोखले ने बङ्गभङ्ग का विरोध करते हुए कहा था:-

"A cruel wrong has been inflicted on our Bengalee brethren, and the whole country has been stirred to its deepest depths in sorrow, and in resentment, as has never been the case before. The scheme of partition, concocted in the dark and carried out in the face of the fiercest opposition that any Government measure has encountered during the last half-a-century, will always stand as a complete illustration of the worst features of bureaucratic rule, its utter contempt for public opinion, itsarrognant pretensions to superior wisdom, its reckless disregard of the most cherished feelings of the people, the mockery of an appeal to its sense of justice, its cool preference of service interests to those of the governed."

अर्थात् "हमारे बङ्गाली भाइयों पर दुष्टतापूर्ण अन्याय किया गया है और सारा देश इतने गहरे दुःख और क्रोध से विकम्पित हो गया है जैसा कि वह कभी नहीं हुआ था। बङ्गभङ्ग की योजना अंधेरे में बनाई गई और जनता के अत्यन्त भयङ्कर विरोध के होते हुए भी अमल में लाई गई। गत अर्द्ध शताब्दी में सरकार का इतना भयङ्कर विरोध न

हुआ, जैसा कि इस समय हुआ। यह घटना नौकरशाही के निकृष्टतम स्वरूप का, उसके द्वारा किये गये लोकमत की अवहेलना का, उसके उच्च बुद्धिमत्ता के घमण्ड का, और उसके द्वारा लोगों के भावों को निर्दयता-पूर्वक कुचलने की मनोवृत्ति का और शासित लोगों के बजाय सरकारी नौकरों के हितों को अधिक महत्व देने का स्पष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार देश के गर्म और नर्म सब नेताओं ने एक स्वर से बङ्गभङ्ग का विरोध किया। सारे देश में राष्ट्रीय भावनाओं का मानो जबरदस्त प्रभाव आ गया। विलायत के भी कुछ उदार-हृदय सज्जनों ने इसका विरोध किया। लॉर्ड मेकडानल्ड ने तो बङ्गभङ्ग के कार्य्य के लिये यहाँ तक कह डाला था:—

"The hugest blunder committed since the battle of Plassy."

अर्थात् "प्लासी के युद्ध के बाद की भूलों में यह सब से भारी भूल थी।"

पार्लियामेंट के हाउस ऑफ लॉर्डस् में भारत के भूतपूर्व वाइसराय मारक्किस ऑफ रिपन ने अपने बुढ़ापे में लॉर्ड कर्ज़न के इस अदूरदर्शिता के कार्य्य के खिलाफ ज़ोर की आवाज़ उठाई थी। पर उस समय ब्रिटिश सरकार पर इसका कोई खास असर न हुआ। तत्कालीन भारत-सेक्रेटरी लॉर्ड मार्ले ने बङ्ग भङ्ग को एक निश्चित घटना (Settled fact) कह कर लोक-मत की बड़ी अवहेलना की।

वन्दे मातरम् पर रोक

बङ्गाल के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय उपन्यास-कार श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी का वन्दे मातरम् नामक राष्ट्रीय गीत भी बहुत लोक-प्रिय हो गया। इस गीत ने उस समय लोगों की राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने के लिये बड़ा काम किया। न केवल बङ्गाल ही में वरन् सारे भारतवर्ष में यह गीत गाया जाने लगा। इससे लोग राष्ट्रीय जीवन

की दिव्य प्रेरणा पाने लगे। यह बात भी तत्कालीन नौकरशाही को सहन न हुई और ईस्वी सन् १६०५ के नवम्बर मास में ले० गवर्नर फुलर के सेक्रेटरी ने हुक्म जारी किया कि "वन्दे मातरम्" का नारा न लगाया जाय। इसके सिवा स्वदेशी और बहिष्कार-आन्दोलन को दबाने के लिये गुरखों को बुला कर फौजी-शासन का दौर-दौरा शुरू किया।

इसका विरोध करने के लिये ईसवी सन् १६०६ में बरीसाल में प्रांतीय परिषद् के अधिवेशन की आयोजना की गई। जब इसकी खबर अधिकारियों को लगी तो उन्होंने तुरन्त यह आज्ञा निकाली कि इसमें विद्यार्थी भाग न लें। जिन विद्यालयों के विद्यार्थी इसमें आयंगे उनको दी जानेवाली सरकारी सहायता बन्द कर दी जायगी। लोगों ने इस अन्यायमूलक आज्ञा को न मानने का निश्चय किया। परिषद् के सभापति के जुलूस में हजारों लोगों ने 'वन्दे मातरम्' का जयघोष किया और उसमें हजारों विद्यार्थियों ने भाग लिया। 'वन्दे मातरम्' का जयघोष होते ही सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी गिरफ्तार कर लिये गये। पुलिस की लाठियों से जुलूसवालों के सिर फोड़े गये। इस पर लोकमान्य ने "केसरी" में लिखा था:-
"जिस प्रकार बाक़ायदा जुल्म लोगों पर किया जाता है उसी प्रकार शान्ति से, स्थिर भाव से और संकट के सामने हिम्मत न हार कर लोगों को दृढ़ निश्चय से जुल्मी हुक्मों का प्रतिकार करना चाहिये। जुल्म आखिर जुल्म ही है, फिर वह बाक़ायदा हो या बेक़ायदा। जुल्म यदि बाक़ायदा है तो शान्ति और कष्ट-सहन के द्वारा दृढ़ निश्चय से उसका प्रतिकार करना चाहिये। बङ्गाल के लोगों ने इस को हुक्म न मान कर कष्ट सहन करने की अपनी इच्छा व स्वार्थ-त्याग के द्वारा यह दिखा दिया है कि यह आज्ञा अन्यायपूर्ण है।

"इधर लोकमान्य तिलक ने लोगों में अन्याय का प्रतिकार करने की शक्ति का संचार किया, उधर बङ्गाल के तत्कालीन सुप्रसिद्ध नेता बाबू विपिनचन्द्र पाल ने 'वन्दे मातरम्' में यह जाहिर किया कि पूर्ण स्वत-

न्त्रता ही हमारा ध्येय है और सत्याग्रह अथवा निःशस्त्र प्रतिकार हमारा साधन। (१८ सितम्बर १६०६)। उसमें उन्होंने कहा है कि स्वतन्त्रता के ध्येय का अर्थ यह है कि विदेशी नियन्त्रण बिलकुल न रहे। यह बिलकुल विधि विहित ध्येय है। निष्क्रिय प्रतिरोध हमारा साधन है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम सरकार को स्वेच्छापूर्वक किसी प्रकार की सहायता न दें। कौन कह सकता है कि ये साधन पूरी तरह विधि-विहित नहीं हैं ?"

कलकत्ते से निकलनेवाले 'वन्देमातरम्' नामक दैनिक पत्र ने यह स्पष्ट घोषणा की कि अगर ब्रिटिश शासन लोक-मत की उपेक्षा करता है और वह हमारे राष्ट्रीय आत्म-विकास के मार्ग में बाधक रूप होता है तो हमें ऐसे शासन से बिलकुल असहयोग करना चाहिए और पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नवान होना चाहिए। बङ्गाल के एक दूसरे क्रान्तिकारक पत्र 'सन्ध्या' ने निर्भीकता के साथ लिखा था,—"हम पूर्ण स्वाधीनता चाहते हैं। जब तक ब्रिटिश शासन का एक अंश भी बचा रहेगा तब तक हम उन्नति नहीं कर सकते। स्वदेशी और बहिष्कार बिलकुल व्यर्थ और अर्थहीन है, अगर वे हमें पूर्ण स्वाधीनता तक पहुँचाने में सबल साधन न बन सकें।"

कहने का मतलब यह है कि ब्रिटिश-शासन के प्रति घोर असन्तोष के बादल मँडराने लगे थे और ब्रिटिश शासन को उलटने के लिये क्रान्तिकारक षड्यन्त्रों की सृष्टि होने लगी थी। कलकत्ता हाईकोर्ट के भूतपूर्व प्रधान न्यायपति सर लॉरेन्स जेकिन्स ने उस समय के क्रान्तिकारक वातावरण का जिक्र करते हुए लिखा था:—

"The leaders of the revolutionary movement seem to have advised a well-considerd plan for the mental training of their recruits. Not only did the Bhagavat Gita, the writings of Vivekanand,

the lives of Mazzinie and Garibaldi supply them with mental pabulam, but they prepared special text books containing distinctly revolutionary and inflammatory ideas. The most important of them, the "Mukti Kon Pathe" which means "what is the path of salvation , was a systematic treatise describing the measures which the revolutionaries should adopt in order to gain their ends. It condemned the low ideals of the National Congress, and while urging upon the young revolutionaries the desirability of joining the current agitations, exhorted them to do so with the ideal of freedom firmly implanted in their minds, as otherwise, real strength and training would never be acquired from them. It pointed out that it was not difficult to murder officials, that arms could be obtained by grim determination, that weapons could be prepared silently in secret places, and that young Indians could be sent to foreign countries to learn the art of making weopons. It advocated and justified the collection of money from society by thefts, robberies and other forcible methods. Above all it appealed to the revolutionaries to seek the assistance of Indian army. Although these soldiers, for the sake of their stomach, accept service in the Government of the ruling powers, still they are nothing but men made of

flesh and blood. They too know how to think; when, therefore, the revolutionaries explain to them the woes and miseries of the country, they in proper time, will swell the ranks of the revolutionaries with arms and weapons given them by the ruling power............Aid in the shape of arms may be secretly obtained by securing the help of the foreign ruling powers.

अर्थात् क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेताओं ने अपने रंगरूटों की मानसिक शिक्षा के लिये सु विचार पूर्ण योजना बनाई थी। न केवल भगवद् गीता ही पर स्वामी विवेकानन्द के लेख और इटाली के देश भक्त माज़िनी और गैरिबाल्डी की जीवनियां भी उन्हें मानसिक भोजन देती थीं। इसके अतिरिक्त उक्त क्रान्तिकारक नेताओं ने इस प्रकार की विशिष्ट पाठ्य पुस्तकें तैयार की थीं, जिनमें क्रान्तिकारी और उत्तेजनात्मक भाव भरे हुए थे। इनमें सबसे अधिक महत्व पूर्ण "मुक्ति कौन पंथे" नामक ग्रन्थ था, जिसमें उन सब उपायों का क्रमबद्ध विवेचन था जिन्हें अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये क्रान्तिकारियों को अपनाना चाहिए। इस ग्रन्थ में राष्ट्रीय कांग्रेस के निम्न आदर्शों के प्रति घृणा प्रकट की गई थी, और नवयुवक क्रान्तिकारियों को चालू आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिये आह्वान किया गया था। उसमें यह भी दिखलाया गया था कि अधिकारियों की हत्या करना मुश्किल नहीं है। दृढ़ निश्चय और प्रयत्न से हथियार प्राप्त हो सकते हैं, गुप्त स्थानों में अस्त्र-शस्त्र बनाये जा सकते हैं और हिन्दुस्थानी नवयुवक अस्त्र-शस्त्र बनाने की शिक्षा पाने के लिए विदेशों को भेजे जा सकते हैं। उक्त पुस्तक में चोरियों डकैतियों, और अन्य हिंसात्मक उपायों द्वारा पैसा इकट्ठा करना भी न्यायोचित बतलाया गया था। इसके अतिरिक्त इसमें क्रान्तिकारियों से यह भी अपील की गई थी कि वे भारतीय सेना

से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करें। यद्यपि यह सिपाही अपनी पेट के खातिर सरकार की सेवा स्वीकार करते हैं पर आखिर वे भी मांस और खून ही के बने हुए मनुष्य हैं। वे भी विचार करना जानते हैं। इसलिए यदि क्रान्तिकारी दल के लोग उन्हें देश के दुःख दर्दों को समझावेंगे तो वे योग्य समय पर क्रान्तिकारियों के दल में शासनशक्ति द्वारा दिये गये अस्त्र शस्त्रों सहित क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो जायेंगे।"

"इन सब बातों के अतिरिक्त इस पुस्तक में विदेशी राष्ट्रों से गुप्त रूप से शस्त्रादि प्राप्त करने का आदेश भी दिया गया था।"

कहने का मतलब यह है कि उस समय देश के नवयुवकों का खून जोश खा रहा था। राष्ट्र में और विशेषकर बङ्गाल में शस्त्र क्रान्ति और गुप्त षड्यन्त्रों का जोरों से दौर-दौरा हो रहा था। विलायत में बसे हुए सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपने इण्डियन सोश्यालाजिस्ट पत्र द्वारा जोर शोर से यह प्रचार करना शुरू कर दिया था कि हिन्दुस्थान में अब गुप्त रूप से तथा रूसी क्रान्तिकारियों के ढङ्ग पर आन्दोलन चलना चाहिए। इसी समय क्रान्तिकारी विचारों से ओत प्रोत भरे हुये श्री विनायक राव सावरकर श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा से विलायत में जा मिले और उन्होंने वहां भारतवर्ष में सशस्त्र क्रान्ति करने के लिये कुछ क्रान्तिकारक संस्थाओं की स्थापना की। उधर बङ्गाल में 'युगान्तर,' 'सन्ध्या' पत्रों के द्वारा गुप्त षड्यन्त्रों और सशस्त्र क्रान्ति का आन्दोलन फैलाया जा रहा था। बारीन्द्र कुमार घोष बङ्गाली युवकों का गुप्त रूप से संगठन कर रहे थे।। अप्रेल १९०८ में बङ्गाल का पहला धड़ाका हुआ, जिस पर लेख लिखने के कारण लोकमान्य को सजा दी गई। सन् १९०८ से दो-तीन साल तक इस तरह एक ओर से गुप्त षड्यन्त्रकारियों तथा दूसरी तरफ से सरकारी आंतकवाद के दो दो हाथ हो रहे थे। इसका जिक्र हम एक स्वतंत्र अध्याय में करेंगे।

१९०७ की काँग्रेस

ईसवी सन् १९०७ का कांग्रेस अधिवेशन भारतवर्ष में जिस प्रकार राष्ट्रीय जागृति का सूत्रपात हो रहा था, उसका विवेचन हम गत अध्यायों में कर चुके हैं। इस जागृतिका की लहर का प्रभाव कांग्रेस पर पड़ना भी अनिवार्य था। देश के नवयुवकों में नवीन खून का संचार हो रहा था। पिछले अनुभवों से लोगों में यह धारणा बलवती होती जा रही थी कि बिना पूर्ण स्वतन्त्रता के राष्ट्र की आत्मा का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, श्री अरविन्द घोष, श्री विपीनचन्द्र पाल आदि महान् नेत्ता राष्ट्र की इस जागृत भावना का नेतृत्व कर रहे थे। वे कांग्रेस की प्रार्थना करने की नीति से ऊब उठे थे। वे उसे आगे बढ़ाना चाहते थे। वे चाहते थे कि कांग्रेस के पुराने नेताओं ने देखा कि सन् १९०७ की कांग्रेस में राष्ट्रीय दल आगे बढ़ना चाहता है, तब उन्होंने अनेक प्रकार की चाल बाजियाँ खेलना शुरू कीं।

काँग्रेस नागपुर में होने वाली थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय नागपुर में राष्ट्रीय दल के लोगों की ही विशेषता थी। चालें चली गईं और कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में तबदील किया गया। नर्म नेताओं की अधिकता थी। कई भाड़े के डेलीगेट बना लिये गये थे। "येन केन प्रकारेण" राष्ट्रीय दलवालों को गिराने की पूर्व से ही तैयारी कर ली गई थी। राष्ट्र की बढ़ती हुई आकाँक्षाओं को कुचलने का घृणित और नीच प्रयत्न पहले ही से कर रखा था। लोकमान्य तिलक. महात्मा अरविन्द घोष, बाबू विपिन चन्द्र पाल आदि राष्ट्रीय दल के नेताओं ने खूब प्रयत्न किया जिससे काँग्रेस में विघ्न न हो और देश की सच्ची

आकांक्षाएँ काँग्रेस के सामने रखी जा सकें। पर उनकी एक न सुनी गई। उनके साथ सज्जनता का व्यवहार तक न किया गया। बेचारे लोकमान्य तिलक नर्म नेताओं से मिलने के लिये इधर उधर घूमते रहे। उन्होंने मेल करने का प्रयत्न किया पर किसी प्रकार सफल न हुए। काँग्रेस के पुराने लोगों ने सब मनमानी कार्रवाई कर ली। राष्ट्रीय दल की पूरी उपेक्षा की गई। आख़िर को सबजेक्ट कमेटी में विशेष रूप से सर फ़िरोज़शाह मेहता के अनुयायी भर दिये गये। इस कमेटी ने मनमाने रूप से डॉक्टर रास बिहारी घोष को सभापति चुन लिया। राष्ट्रीय दल की इच्छा थी कि लाला लाजपत राय, जो देश निकाले का दुःख भुगत कर आये हुए थे, सभापति बनाये जायँ, पर काँग्रेस के इन ठेकेदारों ने उनके इच्छा की तनिक भी पर्वाह न की। मतलब यह कि इन पुराने लोगों ने स्वेच्छाचारिता का पूरा परिचय दिया।

एक बात और ध्यान देने लायक है। राष्ट्रीय दल के नेताओं को काँग्रेस में प्लेटफॉर्म तक पर जगह न दी गई। राष्ट्रीय दल के नेता प्लेटफॉर्म के नीचे बैठाये गये। यहां तक कि भारतीय राष्ट्र के प्रधान सूत्रधार लोकमान्य तिलक, जिन्हें सारा राष्ट्र अपना उद्धार कर्ता समझता था और और अब भी समझता है, प्लेटफॉर्म पर न बैठाये गये। लोकमान्य तिलक जब अपना प्रस्ताव रखने के लिये प्लेटफॉर्म पर चढ़ने लगे तब एक गुँडे ने आकर उन्हें धक्का देना चाहा। स्वर्गीय मि० गोखले के मना करने पर वह गुँडा एक तर्फ़ हुआ। लोकमान्य तिलक बड़ी मुश्किल से प्लेटफॉर्म पर चढ़ सके। प्रेसीडेन्ट ने उन्हें अपना प्रस्ताव उपस्थित करने की आज्ञा न दी। इस पर लोकमान्य ने प्रेसीडेन्ट से कह दिया कि आप वैध रीति से नहीं चुने गये हैं। इतने ही अर्से में चारों तरफ़ शोर गुल मचने लगा। जूते, पैज़ार तक का मौक़ा आया। सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने कांग्रेस में कई गुँडों की भर्ती कर रखी थी। वे लोग लोकमान्य पर झपटे। लोकमान्य के अनुयायियों ने उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। इस गड़बड़ का

या यों कहिये कि नर्म नेताओं की स्वेच्छाचारिता का यह परिणाम हुआ कि उस दिन अधिवेशन न हो सका। दूसरे और तीसरे दिन भी ज्यों त्यों कार्रवाई कर ली गई। इस प्रकार नर्म दल के नेताओं की स्वेच्छाचार पूर्ण कार्रवाई से दस वर्ष तक कांग्रेस मृत्युशय्या पर पड़ी रही। दूसरे साल नागपुर में कांग्रेस होने वाली थी। पर स्वेच्छाचारी नौकरशाही ने नहीं होने दी।

इसके बाद सन् १६१६ तक कांग्रेस के जो अधिवेशन हुए उनमें कुछ नर्म नेताओं और उनके चन्द अनुयायियों के सिवाय कोई नहीं जाता था। वह नाम मात्र की कांग्रेस रह गई थी। उसमें जीवन नहीं था। वह मृत प्रायः थी। देश की सच्ची आकाँक्षायें उसमें प्रकट नहीं की जा सकती थीं। जो लोग नेताओं की हाँ में हाँ मिलाने को राज़ी होते थे उन्हीं की कांग्रेस में गुज़र होती थी। स्वतन्त्र विचार के लोग उसमें नहीं जा सकते थे। कांग्रेस डेलीगेट के रूप में जाने के पहले उनसे इस प्रकार के प्रतिज्ञा पत्र पर दस्तख़त करवा लिये जाते थे कि हम कांग्रेस के अमुक अमुक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कार्रवाई करेंगे। ये उद्देश्य राष्ट्र के नहीं थे, नर्म नेताओं के थे। उस समय कांग्रेस मानसिक गुलामी के लिये अच्छा साधन बनी हुई थी। खैर, हम इतना ही कहना चाहते हैं कि सन् १६०६ की कांग्रेस को छोड़ कर सन् १६१६ तक की कांग्रेस नाटक का एक झूंठा दृश्य था। उसमें वास्तविक राष्ट्रीय-भावना नहीं थी। वास्तविक राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म सन् १६१७ में लखनऊ में हुआ। इसके आगे कांग्रेस का कैसा कैसा विकास होता गया, इसका वर्णन किसी अगले अध्याय में यथावसर करेंगे।

वङ्गभङ्ग के बाद।

वङ्गभङ्ग ने भारतवर्ष को जगा दिया। इससे भारत को अपनी निःसहाय अवस्था का ज्ञान हुआ। उसमें नया जीवन और नयी स्फूर्ति का सञ्चार हुआ। उसके वायुमंडल में राष्ट्रीय भावों के भाव मंडराने लगे। उसे मालूम होने लगा कि अपने देश का सूत्र अपने हाथ आये बिना कभी कल्याण नहीं हो सकता। देश की स्वतन्त्रता के भाव उठते हुए नवयुवकों के हृदय को फड़काने लगे। मतलब यह कि देश ने एक नये युग में प्रवेश किया। उसमें एक प्रकार की मानसिक क्रान्ति होने लगी। सारे देश में जीवनशक्ति की विद्युत् लहर चलने लगी। देश का नवयुवक समाज अपने प्यारे देश की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नवान होने लगा। पहले पहल उन्होंने स्वदेशी का शस्त्र धारण कर विदेशी माल का बहिष्कार करना शुरू किया। इसमें आंशिक सफलता भी हुई। पर देश के नवयुवक समाज को यह उपाय भी अपूर्ण जँचा। देश के स्वाधीन करने की अग्नि उसमें बड़ी ज़ोर से प्रज्वलित हो रही थी। इस कार्य की सफलता के लिये उन्होंने उस वक्त कुछ ऐसे मार्गों का अवलम्बन किया, जो पाश्चात्य थे, जो भारत के उच्च आदर्श के अनुकूल नहीं थे। यद्यपि भारत की नौकरशाही इनके इन कार्यों की ज़िम्मेदार थी, पर तो भी ये उपाय भारत के उच्चतम ध्येय के प्रतिकूल थे। ये उपाय प्रायः वही थे जो रूस के विप्लवकारियों ने, ज़ार के भयङ्कर अत्याचारों से तङ्ग आकर, अङ्गीकार किये थे। हम यहां संक्षेप से यह दिखलाना चाहते हैं कि भारत की नौकरशाही से तङ्ग आकर देश की स्वाधीनता के लिये हमारे कई नवयुवकों ने कैसे कैसे प्रयत्न किये। यहां हम यह संकेत कर देना उचित समझते हैं कि उनके वे उपाय असामयिक थे, क्योंकि भारत का आदर्श हमेशा से गुप्त षड्यन्त्रों से खिलाफ़ रहा है।

वंगाल में क्रान्तिकारक उपाय।

जब से बङ्गभङ्ग हुआ, तभी से बङ्गाल में एक क्रान्तिकारक दल उत्पन्न हुआ। यद्यपि इस दल का अन्तिम आदर्श स्वराज्य-प्रशंसनीय तथा पवित्र था पर उसकी प्राप्ति के मार्ग, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, ठीक नहीं थे। बङ्गभङ्ग के बाद ही से इस दल की ओर से कुछ कार्य्य होने लगे, पर सन् १६०८ के दिन ३० अप्रेल को जो बमकाण्ड हुआ उससे यह दल विशेष रूप से प्रकाश में आया। बमकाण्ड (Bomb-outrage) की घटना इस प्रकार है। ३० अप्रेल को एक गाड़ी पर मुज़फ्फ़रपुर में बम फेंका गया। इस गाड़ी में दो निर्दोष युरोपियन महिलाएँ बैठी हुई थीं। ये दोनों बम की शिकार बनी। जाँच करने से मालूम हुआ कि बम फेंकने वालों का इरादा इन्हें मारने का नहीं था। वे मि० किंग्ज़फोर्ड की, जो कि कलकत्ते के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट रह चुके थे, हत्या करना चाहते थे। किंग्ज़फोर्ड के बदले दो निर्दोष महिलाओं की जानें गईं। इस भीषण हत्या के दो दिन बाद, इसी के सम्बन्ध में, दो नवयुवक पकड़े गये। एक ने अपना अपराध स्वीकार किया और उसको फाँसी की सज़ा हो गई!! दूसरे नवयुवक ने गिरफ़्तारी के समय आत्महत्या कर ली!!

इस घटना ने कोहराम मचा दिया! अब बड़ी ज़ोर शोर से धर पकड़ होने लगी। २ मई को इसी हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में, पुलिस ने माणिक टोला बाग़ की तलाशी लेकर, बम्ब, डिनामाईट आदि कुछ आपत्तिजनक चीज़ें प्राप्त कीं। ३४ मनुष्यों को भी उसने, इस सम्बन्ध में, गिरफ्तार किया। कहने की आवश्यकता नहीं की इनमें कई निर्दोष थे।

पीछे जाकर छूट भी गये। स्वनाम धन्य अरविन्द घोष जैसे महान् और दिव्य पुरुष को भी पुलिस ने इस भद्दे अपराध में गिरफ्तार कर लिया था। पीछे जाकर इनकी निर्दोषिता सिद्ध हुई और ये दोषमुक्त कर दिये गये। ३४ आदमियों में हाईकोर्ट के द्वारा केवल १५ अपराधी सिद्ध हुए। शेष छोड़ दिये गये। यह अभियोग अलिपुर अभियोग के नाम से मशहूर है और इसमें हमारे वर्तमान नेता देशबन्धु चितरंजनदास बैरिस्टर ने अभियुक्तों की ओर से जिस अद्भुत योग्यता और निःस्वार्थ भाव से पैरवी की, वह परम प्रशंसनीय है।

इस अभियोग में नरेन्द्रनाथ गोस्वामी नामक नवयुवक सरकारी गवाह बन गया था। उसको जेल ही में अभियुक्त बा० कन्हैयालाल दत्त और सत्येन्द्रनाथ ने मार डाला। जेल में अभियुक्तों के हाथ पिस्तोल आदि कहाँ से लगे, इस बात का पता पुलिस नहीं लगा सकी। कन्हैयालाल बड़ी निर्भीकतासे फाँसी पर चढ़गया। सुप्रसिद्ध एङ्गलोइण्डियन पत्र पॉयोनीयर ने उसकी तारीफ़ में एक लेख लिखा था। कन्हैयालाल का शव बड़ी धूमधाम से स्मशान पर पहुँचा। हजारों मनुष्य और बङ्गाली महिलाएँ शव के साथ थीं। कन्हैयालाल की राख लेने के लिये हजारों मनुष्य आतुर होने लगे। कन्हैयालाल के शव का यह अपूर्व सन्मान देख कर दूसरे अभियुक्त सत्येन्द्र का शव उसके कुटुम्बियों को नहीं दिया गया।

१५ मई सन् १६०८ को कलकत्ते के ग्रे स्ट्रीट में बमकाण्ड हुआ। इसमें ५ आदमी ज़ख्मी हुए। इसके अतिरिक्त इस साल इस प्रकार की और भी कुछ छोटी मोटी घटनाएँ हुईं। रेल्वे पर भी कहीं कहीं बम फेंके गये। कुछ खुफ़िया पुलिस के अफ़सर भी षड्यन्त्रकारियों के शिकार बने।

सन् १६०८ से सन् १६१४ या १६१५ तक बङ्गाल में कुछ ऐसे डाके गिरे जिन्हें पुलिस राजनैतिक डाके कहती थी। सन् १६०८ में ढाका

जिले के बरेह ग्राम में एक भीषण डाका गिरा। कहा जाता है कि पचास आदमियों का एक झुण्ड रिवालवर्स और अन्य शस्त्र लेकर नांव में बैठकर उक्त ग्राम में आया और वहां एक धनिक के घर पर हमला किया। वे २५०००) या ३००००) का माल लेकर चंपत हुए। गांव के चौकीदार ने उन्हें रोकने की चेष्टा की। इस पर कहा जाता है कि वह मार डाला गया। गांव वालों ने उनका बहुत लम्बे दूर तक पीछा किया। उन्होंने इन गांव वालों पर भी गोलियां चलाईं। तीन आदमी ज़ख्मी हुए।

इसी साल के अर्थात् सन् १६०८ के ३० अक्टूबर को फ़रीदपुर डिस्ट्रिक्ट के नरिया ज़िले में एक और भीषण डाका पड़ा। इस गांव के पास ही नदी आ गई है। बड़ी दूर से कोई ४० या ५० सशस्त्र लोग नांव के द्वारा उक्त गांव पर पहुँचे। उन्होंने इस गांव में स्टीमर ऑफ़िस और तीन घरों को लूटा। इनका पता चलाने के लिये सरकार की ओर से १०००) का इनाम निकला। पर इसका कुछ फल नहीं हुआ। रौलेट रिपोर्ट के लेखक इन दोनों डाकों का सम्बन्ध डाका समिति से बतलाते हैं ❀

इसी प्रकार इसी साल में बजितपुर, मैमनसिंह ज़िले आदि में भी कुछ इसी प्रकार के डाके गिरे। इनके सम्बन्ध में कुछ आदमी पकड़े गये और उनमें से कुछ को सज़ा हुई।

सन् १६०६ में भी यह अशान्ति बराबर बनी रही। १० फ़रवरी को सरकारी वकील मि० आशुतोष विश्वास मार डाले गये। ये नारायण गोस्वामी की हत्या के मामले में सरकार की ओर से पैरवी करते थे। हत्यारा पकड़ा गया और उसे फांसी की सज़ा हुई। ३ जून सन् १६०६ को, षड्यन्त्री दल के द्वारा प्रियनाथ चैटर्जी का खून हुआ। कहा जाता है

❀ रौलेट रिपोर्ट के लेखकों के मतानुसार यह समिति षड्यन्त्र कारियों की थी।

कि यह आदमी अपने भाई के बदले में ग़लती से मारा गया। इसके भाई ने एक मामले में सरकार की ओर से गवाही दी थी।

इसी साल की १६ अगस्त को खुलना ज़िले के नेगखा ग्राम में डाका पड़ा। ८ या ६ मुँह ढके हुए सशस्त्र डकैत एक धनिक के घर में घुस पड़े और उसका बहुत सा माल लेकर चम्पत हुए। इस सम्बन्ध में कई संदेहास्पद लोगों की खाना तलाशी हुई जिनमें कुछ आपत्ति जनक साहित्य और विस्फोटक पदार्थ मिले। कुछ लोग गिरफ्‌तार किये गये और उन्हें सज़ा हुई।

इसी साल के दिसम्बर मास में नासिक के कलेक्टर मि० जेकसन की हत्या हुई। इस सम्बन्ध में ७ आदमी गिरफ्‌तार किये गये, जिनमें से तीन को बहुत कड़ी सज़ा हुई। इसी सिलसिले में नासिक षड्यन्त्र का पता लगा जिसमें ३८ आदमी गिरफ्तार किये गये और २७ को सज़ाहुई।

इधर तो भारत में, इस वक्त, यह कायड हो रहे थे और उधर विलायत में एक भारतीय विद्यार्थी के द्वारा सर कर्ज़न वाइली की हत्या हुई।

ग्वालियर राज्य में भी एक षड्यन्त्र का पता लगा। इसमें कोई २२ ब्राह्मण गिरफ्‌तार किये गये। कहा जाता हैकि ये नव भारत समिति नामक एक क्रान्तिकारक संस्था के सदस्य थे। इनकी जाँच के लिये एक ख़ास अदालत बैठाई गई। अदालत द्वारा बहुत से नवयुवक दोषी पाये गये और उन्हें अज़हद कड़ी सज़ाएँ हुईं। बङ्गालमें वहांके छोटे लाट सर एण्ड्रू फ़्रेज़र की हत्या करने की एक नवयुवक विद्यार्थी ने असफल चेष्टा की। नवयुवक का निशाना चूक गया और लाट महोदय बाल बाल बच गये! युवक पकड़ा गया और उसे दस वर्ष के कालेपानी की सज़ा हुई!

बंगाल में साहित्यिक जागरण

बङ्गाल में राजनैतिक जागृति के साथ साथ देश भक्ति पूर्ण साहित्यिक जागरण भी होने लगा। सुविख्यात उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी का 'आनन्द मठ' इस समय अत्यन्त लोकप्रिय हो गया, और देश भक्त बङ्गाली बन्धु-गण इससे प्रेरणा पाने लगे। इस ग्रन्थ का अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। वन्देमातरम् गीत घर घर में गाया जाने लगा और वह राष्ट्र की आत्मा को देश भक्ति का दिव्य संदेश देने लगा। द्विजेन्द्रलाल रॉय के नाटक राष्ट्रीय भावना को फैलाने में बड़े सफल हुए और बङ्गाल का कोई ग्राम ऐसा न रहा जहाँ इस राष्ट्र गीत से देशभक्ति और राष्ट्रीयता का वातावरण न फैला हो। इन नाटकों ने लोगों में इतनी उत्तेजना और जागृति फैलाई कि तत्कालीन सरकार ने इन नाटकों ज़ब्त करने का विचार किया। द्विजेन्द्रलाल रॉय के अतिरिक्त कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्रीमती सरला देवी चौधरानी, मिस्टर ए० एफ० सेन और रजनीकान्त सेन आदि महान् साहित्यकारोंके ग्रन्थों और लेखोंने राष्ट्रीय ज्योति और राष्ट्रीय भावना फैलाने में विद्युत् सा काम किया। हिन्दू और मुसलमानों के वीरत्व को प्रकाशित करने वाले कई ग्रन्थ और काव्य प्रकाशित हुए और उन्होंने राष्ट्रकी आत्माको जागृत करनेमें और उसे नव-चेतन युक्त करने में अद्भुत काम किया। ऐसे राष्ट्रीय काव्य भी प्रकाशित किये गये जो भारतीय महानता और देश भक्ति के भावों से परिपूर्ण थे, और जिसमें राष्ट्र की आत्मा जागृत हो सकती थी। इस कार्य में बंगीय साहित्य परिषद् और राय बहादुर दिनेशचन्द्र सेन ने बड़ा काम किया। कलकत्ता युनिवर्सिटी पर इस बात के लिये बड़ा जोर डाला गया कि वह अपने पाठ्य क्रम में देशी भाषा को रक्खें। देशी भाषाओं के पत्र इस समय खूब चमके और उनका प्रचार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने

लगा। राष्ट्रीय भावनाओं को फैलाने में और राष्ट्रीय ज्योति को अधिक उग्रता के साथ प्रज्वलित करने में इन्होंने बड़ा काम किया। यह एक बड़ी जबरदस्त शक्ति हो गई।

राष्ट्रीय जागृति के साथ २ साहित्य और कला का विकास भी बहुत जोरों से होने लगा। डॉ० अवनीन्द्र नाथ टैगोर और उनके भाई गजेन्द्र नाथ टैगोर, नन्दलाल बोस आदि कलाकारों ने भारतीय चित्रकला में नवीन जीवन डाला और उनकी कला न केवल भारतवर्ष में, पर संसार में, आदर की वस्तु हो गयी। संसार के कलाकारों को उन्होंने एक आदर्श पथ बतलाया। इन कलाकारों की चित्र-कला आदर्शवाद पर स्थित थी। मानव के आन्तरिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रकट कर, सौंदर्य और ललितकला का वातावरण उत्पन्न करने में इसने बड़ी सहायता दी। राष्ट्रीय साहित्य के उत्पादन में श्री अरविंद घोष की दिव्य लेखनी ने भी बड़ा काम किया। अरविंद की मनोरचना आध्यात्मिक थी। उन्होंने अपने 'वन्देमातरम्' पत्र में तथा अन्य ग्रन्थों में यह दिखलाया कि भारतीय राजनीति की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है और भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम का अन्तिम उद्देश्य मानव जाति का अखिल कल्याण है। वह अपने साथ सारी मनुष्य जाति को उठाकर उनकी आत्मा तक को स्वतन्त्र करने की अभिलाषा रखता है। वैज्ञानिक क्षेत्र में भी उस समय बङ्गाल ने बड़ी प्रगति की। सर जगदीश चन्द्र बोस ने वनस्पति में जीव होने के सिद्धांत को वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध करके भारत की प्राचीन मान्यता की सच्चाई को प्रकट किया। इसी प्रकार सर पी० सी० रॉय ने रसायन-संसार में कई मार्के के अन्वेषण कर वैज्ञानिक संसार को नई देन दी।

कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बङ्गला भाषा में साहित्य और काव्य की कई मूल्यवान रचनाएँ कर राष्ट्र के सामने मानवता और देश भक्ति के उच्च आदर्शों को रक्खा।

कहने का मतलब यह है कि राजनैतिक जागृति के साथ २ उस समय साहित्यिक जागरण भी बड़ी शीघ्र गति से हो रहा था। —:0:—

वङ्गभङ्ग के समय के भारतीय नेता।

लाला लाजपतराय—लाला लाजपत राय 'पंजाब केसरी' के नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी गणना लोकमान्य तिलकके समकक्ष नेताओं में होती थी। उन दिनों 'लाल बाल पाल' की कहावत मशहूर थी। लाल से लाला लाजपतराय, बाल से बाल गङ्गाधर तिलक और पाल से विपिन-चन्द्र पाल का मतलब था।

लाला लाजपत राय अपने समय के महान् राष्ट्रीय नेता थे। पंजाब के सार्वजनिक जीवन पर तो उनका एकाधिकार था। आर्यसमाज के तो वे एक महान् नेता थे। लाहौर के सुप्रसिद्ध दयानन्द एंग्लोवैदिक कॉलिजके लिये उन्होंने बड़ा त्याग किया था। वे बड़े प्रभाव शाली लेखक, कट्टर समाज सुधारक और प्रभावशाली वक्ता थे। सुप्रसिद्ध पत्रकार सर सी० वाई० चिन्तामणी ने अपने 'भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष' नामक पुस्तक में लालाजी के सम्बन्ध में लिखा है:—

"वक्ता के स्वरूप में उनका स्मरण करते ही मुझे लॉयड जॉर्ज का स्मरण हो आता है। जनता में क्रोध की भावना उत्पन्न कर देने में दोनों की शक्ति एक ही जैसी थी। लाजपतराय के उर्दू भाषण जनता पर जैसा जोश करने वाला प्रभाव डालते थे, वैसा प्रभाव डाल सकने वाले भाषण मैंने बहुत कम सुने हैं। उनके कुछ उर्दू भाषणों की तुलना मि० लॉयड जॉर्ज के लन्दन की सभाओं में दिये गये भाषणों से ही की जा सकती है। सन् १९१२ में पटना की कांग्रेस में एक ही विषय पर उनके लगातार तीन भाषण हुए थे, जिनमें से प्रत्येक की अपनी कुछ विशेषता थी। मि०

गोखले उस समय प्रवासी भारतीयों की परिस्थिति का अध्ययन करने के लिये दक्षिण अफ्रीका गये थे। उन्होंने उनके विषय में प्रस्ताव पेश करते हुए ४५ मिनिट तक अंग्रेज़ी में भाषण दिया। मैंने उन्हें किसी अन्य अवसर पर इतने धारा प्रवाह, इतनी भावुकता, इतने जोश और इतने रोष के साथ बोलते हुए नहीं सुना। वैसे तो उनका प्रत्येक भाषण ही 'बुद्धि-विलास' का चमत्कार होता था, परन्तु यह विशेप रूप से उग्र था। मैंने उन्हें इतना उत्तेजित और कभी नहीं देखा था। उनके बाद पंडित मदनमोहन मालवीय ने हिन्दी में भाषण किया। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों पर होने वाले अत्याचारों का ऐसा कारुणिक वर्णन किया कि प्रायः सभी श्रोताओं की आँखें भीग गईं। उनके इस भाषण का जिसके हृदय पर प्रभाव न पड़ा होगा उसका हृदय मानव का हृदय न रहा होगा। उनके बाद लाला लाजपतराय का उर्दू में भाषण हुआ जो सबसे अधिक पुरुषत्व पूर्ण था। उसने लोगों की उत्तेजना को इतना जागृत कर दिया था कि मुझे उस समय यह विचार हुआ थां कि अगर इस समय यहाँ कोई दक्षिणी अफ्रीका का गोरा होता, तो उसकी जान की खैर न रहती। लाजपत राय पर सरकार की अकृपा काफ़ी रही। महायुद्ध के वर्षों में तथा उसके बाद कोई डेढ़ साल तक वे एक प्रकार से अपने देश से निर्वासित ही रहे। जब उन्हें लौट आने की आज्ञा मिल गई, तो उन्होंने आते ही अपना सदा का काम शुरू कर दिया। असहयोग तथा पार्लियामेंटरी कार्य-पद्धति के बीच वे बार-बार कभी इधर कभी उधर झुकते रहे। एक बात में उनका अपने कतिपय कांग्रेसी सहकारियों से सदा मत भेद रहा। उन्होंने हिन्दू हितों की कभी भेंट नहीं चढ़ाई। वे हिन्दू-मुसलिम ऐक्य के लिये किसी से कम उत्सुक नहीं थे, परन्तु उनका यह विश्वास कभी न रहा कि हिन्दू हानि का भारी मूल्य चुका कर एकता को खरीदा जाय। उनकी मृत्यु बड़ी दुःख जनक परिस्थिति में हुई। लाहौर में साईमन कमीशन के बहिष्कार सम्बन्धी प्रदर्शन में भाग लेते समय उन पर आक्रमण किया गया

जिससे उन्हें चोट आई और उसके बाद वे एक पखवारे से अधिक जीवित न रहे। मैं उन लोगों में हूँ, जिनका विश्वास है कि यह घटना उनकी मृत्यु को लाने का कारण बनी।"

लाला लाजपत राय ने अपनी प्रभावशाली वक्तृता शक्ति और अपूर्व स्वार्थत्याग से भारतीय राष्ट्र के हृदय में अपना विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था। भारतीय स्वतन्त्रता के लिये उनके दिल में बड़ी आग थी और वह आग समय समय पर उनके भाषणों द्वारा प्रकट होती थी। ई० सन् १६०७ में पंजाब में नहर आन्दोलन के सम्बन्ध में तत्कालीन भारत सरकार ने उन्हें भारत से देश निकाला देकर मंडाले की जेल में रक्खा था। इससे देशभर में सरकार के खिलाफ़ गुस्से की एक जबरदस्त लहर चली। सारे देश ने लालाजी को निर्दोष समझ कर उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की। देश में उनका मान सन्मान अधिक बढ़ गया। नर्म नेता माननीय श्री गोखले तक ने लालाजी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए सरकार के इस कार्य की निन्दा की। उन्होंने सरकार की नीति को भारी भूल बतलाया। इतना ही नहीं गोखले महोदय लालाजी के छुटकारे के लिये तन मन से प्रयत्न करने लगे। गोखले महोदय ने २४ मई १६०७ को जो अंग्रेज़ी पत्र लिखा था उसका सारांश हम नीचे देते हैं:—

"मेरे विचार में हमें तब तक चैन नहीं लेना चाहिये जब तक कि हम लाजपत राय को मुक्त न करवा दें। मैं कल खास इसी उद्देश्य को लेकर माथेरान में सर फिरोजशाह मेहता से मिलने गया था। मेरी तीन घन्टे तक उनके साथ बातचीत हुई और इस सम्बन्ध में जो कदम उठाने चाहिये उसमें हम एकमत रहे। हाँ, यह बात ज़रूरी है कि जब तक पार्लियामेन्ट में भारत के सम्बन्ध में वादविवाद न हो तब तक हमें ठहरना चाहिये। सम्भव है लॉर्ड मार्ले अपना कुछ वक्तव्य दें और वे

लाला लाजपतराय के मामले पर प्रकाश डालें। यह वादानुवाद हो जाने पर हम वॉयसराय की सेवा में एक मेमोरियल पेश करेंगे जिसमें धारा सभा के वर्त्तमान और भूतपूर्व सदस्यों के, कांग्रेस के भूतपूर्व सभापतियों के और प्रान्तीय कन्फ्रेन्सों के भूतपूर्व अध्यक्षों के हस्ताक्षर होंगे। मैं खुद विभिन्न प्रान्तों में जाकर इस मेमोरियल के लिये हस्ताक्षर प्राप्त करूंगा और फिर इसे पेश करने के लिये शिमला जाऊँगा। मैं सरकार के विभिन्न सदस्यों से मिलकर लालाजी की रिहाई के लिये प्रयत्न करूँगा। अगर हम इतने पर भी इसमें असफल हो गये तो तीन आदमियों का एक डेप्युटेशन इङ्गलैण्ड जावेगा और वह ब्रिटिश लोकमत को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करेगा। इस डेप्युटेशन में मि० आर० सी० दत्त, मि० सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और मैं रहूँगा। अगर मद्रास से नवाब सैय्यद हमारे साथ जाने के लिये तैय्यार हुए तो हम उन्हें भी अपने साथ लेलेंगे।"

"लाला लाजपतराय के देश-निर्वासन से देश इस ओर से लगाकर उस ओर तक काँप गया है। मि० मॉर्ले के लिये लोग बहुत कड़वी और कठोर बातें कहने लग गये हैं। लाजपतराय का निर्वासन दुःख कारक-अत्यन्त दुःख कारक-घटना है। पर इस समय हम मज़बूर हैं।"

श्री गोखले के प्रयत्नों से लाला लाजपतराय का छुटकारा हो गया। जब लाला लाजपतराय लौटकर आये तब भारत ने उनका हार्दिक स्वागत किया और सारे देश ने बड़े सन्तोष का अनुभव किया। वह फिर उसी जोश के साथ देशसेवा के पवित्र कार्य में लग गये। उन्होंने देश के राजनैतिक और सामाजिक विकास में जो महान् कार्य किया है वह भारत के इतिहास में अमर रहेगा।

विपिनचन्द्र पाल

बंगभंग के समय विपिनचन्द्र पाल भारत के अग्रगण्य नेताओं में

थे। उस समय देश में नवचेतना और नवजागरण उत्पन्न करने में उनके प्रभावशाली भाषणों ने बड़ा काम किया। वे अपने समय में कांग्रेस के पहले दर्जे के वक्ताओं में माने जाते थे। विपिन बाबू का कांग्रेस से बहुत पहले सम्बन्ध शुरू हुआ था। बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के नये सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने सारे देश में अपनी वक्तृता शक्ति का सिक्का जमा दिया था। कलकत्ता के अधिवेशन में उन्होंने बहिष्कार का जो उग्र और व्यापक अर्थ किया था, उसका पिछले सभी वक्ताओं ने विरोध किया। उन्होंने मद्रास में १६०७ में जो भाषण दिये थे, एडवोकेट जनरल सर पी० भाष्यम आयंगर ने उन्हें भड़काने वाले, राजद्रोह पूर्ण समझा था और वे मदरास अहाते से निकाल दिये गये। लॉर्ड मिन्टो के समय उन्हें एक बार देश निकाला भी मिला था। एक दूसरे वक्त, जब 'वन्दे मातरम' के सम्पादक की हैसियत से श्री अरविन्द घोष पर मुकदमा चल रहा था, उन्होंने यह जानकर गवाही देने से इन्कार कर दिया था कि उनकी गवाही अरविन्द के बहुत ख़िलाफ़ पड़ेगी। इस कारण ६ मास की सजा उन्होंने खुशी से भुगत ली। भारत लौटने के बाद उन पर मुक़दमा चलाया गया पर उन्होंने माफ़ी मांगली। उनका आखिरी इतिहास राष्ट्रीय राजनीति में उनके उत्साह के निरन्तर पतन का इतिहास था। सबसे आखिरी बार सार्वजनिक कार्य में लोगों ने उन्हें सन् १६२८ के सर्वदल सम्मेलन में देखा। यह हमें अवश्य स्वीकार करना होगा कि वह उन थोड़े से लोगों में थे जिन्होंने अपने भाषणों और 'न्यू इण्डिया' तथा 'वन्देमातरम्' के लेखों द्वारा उस समय के नवयुवकों पर जादू कर दिया था।

अरविन्द घोष

बंगभंग के समय जिन महान् नेताओं ने देश में जागृति की ज्योति को प्रकाशित किया था उनमें श्री अरविन्द घोष का आसन बहुत ऊँचा है। श्री अरविन्द घोष का जन्म लन्दन में हुआ था और वहीं उन्होंने

शिक्षा प्राप्त की थी। ये आई० सी० एस० की परीक्षा में घोड़े की सवारी ठीक न करने के कारण असफल रहे। इसके बाद वे बड़ौदा कॉलेज के वाईस प्रिन्सिपल हो गये। पर ज्योंही उन्हें यह आत्मप्रेरणा हुई कि देश को उनकी सेवाओं की ज़रूरत है तो वे क्षेत्र में उतर पड़े। वे नौकरी छोड़कर कलकत्ता चले गये और राष्ट्रीय आन्दोलन को संचालित करने लगे। उनका प्रभाव दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा। जनता के वे हृदय सम्राट् हो गये। उन्होंने वन्दे-मातरम् नामक अंग्रेजी पत्र का सम्पादन किया और उसके द्वारा वे भारतीय स्वाधीनता का संदेश देने लगे। उनका अंग्रेजी भाषा पर अद्भुत् अधिकार है और उनके लेखों को, जो अर्द्ध-आध्यात्मिक शैली में होते थे तथा साहित्यिक छटा की दृष्टि से बड़े सुन्दर होते थे और राजनीतिक उत्तेजना से ओत प्रोत रहते थे, पाठक बड़े प्रशंसात्मक भाव से पढ़ते थे। लेखों में लोकमत को उत्तेजित कर सकने की शक्ति थी। श्री अरविंद घोष पर जो भयानक आरोप लगाया गया था, उससे वे सौभाग्यवश मुक्त हो गये। उन्हीं के मुकदमे के संबंध में उनके वकील को, जो आगे चल कर स्वयं एक प्रमुख राजनीतिज्ञ हुए, सारा देश जान गया। कहना न होगा कि हमारा अभिप्राय देशबंधु सी० आर० दास से है। श्री अरविंद घोषने कुछ ही समय के उपरांत राजनीति से अवकाश ग्रहण कर लिया और वे ब्रिटिश भारत से भी चले गए। धार्मिक तथा तत्वज्ञान संबंधी निगूढ़ विषयों की गहन व्याख्या में उन्हें अपने उपयुक्त कार्य मिल गया। उन्होंने इन विषयों की अपनी रचनाओं से भारतीय साहित्य की श्री वृद्धि की है और हमारा विचार है कि ये रचनाएं संसार की स्थायी साहित्य की विभूतियां हैं।

सरकारी दमन

नेताओं का निर्वासन

लोक नेताओं का निर्वासन-ज्यों ज्यों बंगाल का आन्दोलन बढ़ता गया त्यों त्यों सरकार का दमन चक्र भी उग्र होता गया। ईस्वी सन् १९०८ में बंगाल के कई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, जिनमें बाबू अश्विनी-कुमार दत्त तथा बाबू कृष्णाकुमार मित्र भी थे, निर्वासित कर दिए गए। यह कार्यवाही सन् १८१८ के रेग्युलेशन के अनुसार की गई थी, जिसे सर रासबिहारी घोष ने गैर कानूनी कानून कहा था। उसी महीने में क्रिमिनल ला एमेंडमेंट ऐक्ट पास हुआ जिसके दूसरे भाग का संस्थाओं को गैर-कानूनी घोषित करने में व्यापक उपयोग हुआ है। सारांश यह कि सरकार ने शिकायतों को दूर करके नहीं बल्कि दमन के द्वारा आंदोलन का अंत करने की भारी कोशिश की।

दमन नीति का दारदौरा

बंगभंग के बाद यहां राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ता गया। ब्रिटिश सरकार ने भी निर्दयता पूर्ण दमन नीति से काम लेना शुरू किया। लोकमान्य तिलक को, जैसा कि हम गत अध्याय में लिख चुके हैं, अपना पत्र "केसरी" में प्रकाशित दो लेखों के कारण ६ वर्ष की कठोर कारावास की सजा दी गई। अनेक क्रान्तिकारी फांसी पर लटकाये गये। अनेकों को कालेपानी की सजा हुई। अनेक समाचार पत्रों के सम्पादक स्वराज्य और स्वतंत्रता की आवाज़ उठाने तथा राष्ट्र भक्तों पर होने वाले अत्याचारों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के कारण जेलों में ठूँस दिये गये और उनके साथ खूनी अपराधियों से भी अधिक कठोर व्यवहार किया

गया, इसका एक ज्वलन्त उदाहरण हम श्रीमती एनी बेसेन्ट के "न्यू इण्डिया" नामक पत्र से यहां देते हैं:—

"स्वराज्य के भूतपूर्व सम्पादक मि० रामचरणलाल की दुःखी अवस्था ज्यों की त्यों बनी हुई है। नागपुर के सिटी मैजिस्ट्रेट ने आपकी सज़ा की मियाद ख़त्म हो जाने पर भी और छः मास के कठोर कारावास का दण्ड दिया है। आपका अपराध केवल यही था कि आपने काम करने से इन्कार किया था। हमारे पाठकों को इस मामले का हाल मालूम होगा। इस हतभाग्य राजनैतिक कैदी के इतनी क्रूरता के साथ कोड़े मारे जाते हैं कि वह बेहोश तक हो जाता है। जेल के डॉक्टर को यह कहना पड़ा है कि कोड़ों की मार के कारण कैदी चार दिन तक काम करने में असमर्थ होगा। छः दिन तक इस बेचारे के मार के निशान नहीं मिटे! इसे फिर छः मास की कड़ी सज़ा हुई। यह देखिये एक राजनैतिक कैदी के साथ किस प्रकार का व्यवहार हो रहा है? क्या 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' में ऐसा कोई भी सदस्य नहीं है जो इस मामले के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे और इस बात की जाँच करने के लिये ज़ोर दे कि ब्रिटिश भारत राजनैतिक कैदियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है।"

भारत के तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट फॉर इण्डिया लॉर्ड मॉर्ले ने हालही में "My Recollections" नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें आपने अपना वह पत्र-व्यवहार भी प्रकाशित किया है, जो उनके और लॉर्ड मिन्टो के बीच हुआ था। इस पत्र व्यवहार से मालूम होता है कि खुद लॉर्ड मॉर्ले भारत सरकार की उस भयङ्कर दमननीति के ख़िलाफ़ थे जो उस समय यहां काम में लाई जा रही थी। हम यहाँ केवल एक दो उदाहरण देकर यह दिखलाना चाहते हैं कि उस समय की दमननीति को खुद लॉर्ड मॉर्ले किस दृष्टि से देखते थे। आपने अपने एक पत्र में लॉर्ड मिण्टो को लिखा था:—

I must confess that I am watching with the

deepest concern and dismay the thundering sentences that are now being passed for sedition etc. I read today that stone throwers in Bombay are getting twelve month's. This is really outrageous. The sentences on the two Tinneveli men are wholly indefensible; one gets transportation for life, the other for ten years. I am to have the judgment by tne next mail, and meanwhile think he has said enough when he tells me that "the learned judge was in no doubt as to the criminality of the two men." This may have been all right, but such sentences !! They can not stand. I can not onany terms consent to defend such monstrous things. I do therefore urgently solicit your attention to these wrongs & follies. We must keep order, but excess of severity is not the path of order. On the contrary it is the path to the bomb."

अर्थात् राजविद्रोह के लिये आज कल जो भयानक सज़ाएँ दी जा रही हैं, उन्हें मैं अत्यन्त चिन्ता और भय के साथ देख रहा हूँ। मैंने आज पढ़ा है कि बम्बई में पत्थर फेंकने के अपराध में लोगों को बारह बारह मास की सज़ाएँ हुई हैं। दर असल यह बहुत सख़्त है। तिनवेली के दो मनुष्यों को यथाक्रम जो आजन्म काले पानी और दस वर्ष की कड़ी सज़ाएँ हुई हैं, पूर्ण रूप से असमर्थनीय हैं। दूसरी डाक से मेरे पास इसका फ़ैसला पहुँच जायगा। यह बात सत्य हो सकती है कि जज को इनके अपराधों के विषय में सन्देह न होगा। इस पर ऐसी सज़ाएँ! इन सज़ाओं का समर्थन हो ही नहीं सकता! मैं इस प्रकार की भयानक बातों का पक्ष नहीं ले सकता। अतएव मैं आपका ध्यान इन भूलों और

बेहूदगियों की ओर आकर्षित करता हूँ। हमें व्यवस्था रखना चाहिये, पर अधिक सख़्ती व्यवस्था का मार्ग नहीं है। इसके विपरीत वह तो बम का मार्ग है। (अर्थात् लॉर्ड मॉर्ले के कथनानुसार ज़रूरत से ज़्यादा सख़्ती ही बम कायद का कारण होती है।)

इस प्रकार लॉर्ड मार्ले ने और भी अनेक अत्याचारों का वर्णन किया है। ये बातें ऐसे वैसे आदमी की नहीं, ख़ास स्टेट सेक्रेटरी की हैं। पाठक सोच सकते हैं कि भारत सरकार की दमन नीति को जब खुद स्टेट सेक्रेटरी इस बुरी दृष्टि से देखते थे, तब साधारण भारतीय जनता किस दृष्टि से देखती होगी। अगर वह अपने नवयुवकों को ज़रा ज़रा से अपराधों पर इतनी भयानक सज़ाएँ भुगतते हुए देखती होगी तो क्या उसका खून नहीं उबल पड़ता होगा। यह मनुष्य स्वभाव है। इस क्रोध के जोश में हमारे कुछ कच्चे दिमाग़ नौजवानों ने कुछ बेसमझी और और नादानी के काम किये तो इसके ज़िम्मेदार जितने वे नवयुवक हैं, उससे भी अधिक ज़िम्मेदार दमन का आश्रय लेनेवाली नौकरशाही थी। संसार का इतिहास हमें यह दिखलाता है कि दमननीति ही क्रान्ति और राजविद्रोह के बीज बोती है। अतएव एक प्रख्यात् अमेरिकन मि० थॉरो का कथन है कि:—"जो सरकार जितना अधिक दमन नीति का आश्रय लेती है, वह उतनी ही अयोग्य है। सबसे अच्छी सरकार वही है, जिसे सबसे कम शासन करना पड़े"।

मॉंएटेगु-चेम्सफ़ोर्ड योजना

बङ्गभङ्ग के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन कुछ वर्षों तक जोर शोर से चलता रहा। सरकार ने एक ओर तो भयङ्कर दमन नीति का आश्रय लिया और दूसरी ओर भारतवर्ष को कुछ नाम मात्र के सुधार देकर जनमत को सन्तुष्ट करना चाहा।

सन् १६०८ ई० के २७ नवम्बर को भारत के तत्कालीन सेक्रेटरी लॉर्ड मार्ले ने अपनी सुधार योजना प्रकाशित की। पार्लियामेण्ट ने यह योजना स्वीकृत करली। सन् १६०६ ई० के १५ नवम्बर को इस योजना के सम्बन्ध में भारत सरकार का प्रस्ताव प्रकाशित किया गया जिसमें यह कहा गया कि उक्त तिथी से उक्त सुधर क़ानून अमल में आजायगा और आते वर्ष से संशोधित धारा सभाऐं संगठित होकर अपना काम शुरू कर देंगी। इस प्रकार सन् १६१० ई० के १५ जनवरी को तत्कालीन वायसराय लॉर्ड मिण्टो की अध्यक्षता में इस सुधार योजना के अनुसार बनी हुई धारा सभा का उद्घाटन हुआ।

यद्यपि इन सुधारों से राष्ट्रवादियों को कतई संतोष नहीं हुआ, पर उन्होंने यह समझ कर इन्हें स्वीकार कर लिया कि जितना प्राप्त हो उन्हें अंगीकार कर अधिक के लिये आन्दोलन करना चाहिये। इस सुधारों में कोई नया सिद्धांत स्वीकार नहीं किया गया था और न इनमें उत्तरदायी सरकार देने की ही योजना थी। हां, इनमें धारा सभा को अधिक व्यापक निर्वाचन के तत्व पर स्थापित करने की योजना थी। इसके अतिरिक्त यह योजना पार्लियामेन्टरी पद्धति का उपक्रम भी नहीं था। भारत सेक्रेटरी

का यह भी उद्देश्य नहीं था कि ब्रिटिश पार्लियामेंट से वास्तविक सत्ता भारतीय जनता को हस्तान्तरित की जावे। हां, इसमें चुनाव के तत्व को अवश्य स्वीकार किया गया था। कौंसिलों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। उन का प्रश्न पूछ सकने का अधिकार पहले से अधिक विस्तृत कर दिया गया और उन्हें बजट के सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश कर सकने का अधिकार भी दे दिया गया। प्रांतीय कौंसिलों में गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत भी कर दिया गया। दो वर्ष पूर्व दो भारतीयों की भारत-मंत्री की कौंसिल में प्रथम बार नियुक्ति हो चुकी थी और कौंसिलों के सुधार के साथ वायसराॅय तथा बम्बई और मद्रास के गवर्नरों की कार्यकारिणी कौंसिलों में भी एक-एक भारतीय की नियुक्ति कर दी गई। बङ्गाल में भी कार्यकारिणी कौंसिल की स्थापना हो गई और उसमें भी एक भारतीय को स्थान दिया, पर यह तो सब केवल नाम मात्र के सुधार थे जिनमें भारत को कोई वास्तविक सत्ता नहीं दी गई थी।

सांप्रदायिक निर्वाचन का सूत्रपात

जिस साम्प्रदायिक निर्वाचन की नींव इन सुधारों में डाली गई, उनके जहरीले फल आज स्वतंत्र भारत बुरी तरह भोग रहा है। आज देश में जो हाहाकार मच रहा है उसका बहुत सा दोष सांप्रदायिक निर्वाचन की विषैली पद्धति पर है।

इन सांप्रदायिक निर्वाचनों का सूत्रपात लार्ड मिन्टो ने किया। सन् १९०९ का एक्ट अपने साथ एक ऐसी बुराई लाया जो तब से अब और भी बढ़ गई है। हमारा मतलब है सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली से। इसका श्रेय लाॅर्ड मिन्टो को है। १ अक्टूबर, १९०६ को उनसे शिमला में भारत भर के मुसलमानों का एक प्रभावशाली डेप्युटेशन मिला जिस के नेता थे हिज़ हाईनेस आग़ा खां। डेप्युटेशन ने आश्चर्यजनक दावे पेश किये और स्पष्टतः पृथक्करण के सिद्धांत का राग अलापा। लाॅर्ड मिन्टो

ने इन अत्यन्त अदूरदर्शितापूर्ण तथा ग़ैर-वाज़िबी मांगों का अपनी तथा सरकार की ओर से ऐसी शीघ्रता से समर्थन कर दिया कि संदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक था। अब तो यह बात सभी को मालूम है कि डेप्युटेशन वालों की सूझ बिलकुल मौलिक नहीं थी,। उन्हें शिमला से इशारा मिला था। होम डिपार्टमेंट के चतुर कर्मचारियों ने जब देखा कि सुधारों का होना तो अनिवार्य है, उन्हें तो हम रोक नहीं सकते, तो उन्होंने सोचा कि चलो देश के दो प्रमुख संप्रदायों के बीच भेद डाल दो। उनके दिल में यह विचार रहा होगा, और ग़ैर सरकारी अंग्रेज तो यह बात खुले तौर पर कहने में भी संकोच नहीं करते थे कि अगर हिन्दू और मुसलमान मिलकर एक हो गए तो फिर हम कहां रहेंगे? इस बुराई को भी यथाशक्ति कम करने की लॉर्ड मॉर्ले ने कोशिश की। आपने १९०८ के ख़रीते में उन्होंने प्रस्ताव किया कि निर्वाचन तो संयुक्त रूप से ही हो, परन्तु मुसलमानों के लिये कौंसिलों में स्थान सुरक्षित कर दिये जाँय। लेकिन इस प्रस्ताव के विरुद्ध फ़ौरन हिन्दुस्तान में आन्दोलन खड़ा करा दिया गया। भारत-सरकार लॉर्ड मार्ले के प्रस्ताव के विरुद्ध थी और इस मामले में अपनी बात रखने पर तुली हुई थी। होम डिपार्टमेंट में उस समय एक अधिकारी थे जो जितने ही प्रतिक्रियावादी थे उतने ही कुशल थे। वे थे सर हर्बर्ट रिज़ले और मुसलमानों में भी ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें,अपनी जाति के कल्पित लाभ के लिए सांप्रदायिक आंदोलन का संगठन करने में संकोच नहीं था। लॉर्ड मॉर्ले के प्रस्ताव के सरकारी विरोधियों के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी? आंदोलन विलायत तक भी जा पहुँचा, जहां उसके नेता आग़ाख़ां और स्वर्गीय मि० अमीर अली थे। हाउस ऑफ़ कॉमन्स में भी उनके समर्थक निकल आए जिनमें लॉर्ड रोनाल्डशे (जो बाद में बङ्गाल के गवर्नर हुए और अब लॉर्ड जेटलैंड के नाम से प्रसिद्ध हैं) और सर विलियम जानसन-हिक्स (बाद को लॉर्ड ब्रेंटफ़ोर्ड) मुख्य थे। आन्दोलन सफल हुआ और लॉर्ड मॉर्ले को

झुकना पड़ा । भारतीय राजनीति के क्षेत्र में साम्प्रदायिक विषवृक्ष लगा दिया गया ।

उक्त सुधारों के द्वार उन लोगों के लिये बंद कर दिये गये थे जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिये आवाज़ उठाई थी, जिन्होंने भारत में नवजागृति का सन्देश फैलाने में हिस्सा लिया था । लोकमान्य तिलक के प्रधान सहकारी श्रीयुत नृसिंह चिन्तामणि केलकर बम्बई कौन्सिल के लिये उम्मीदवार हुए । तत्कालीन बम्बई सरकार ने उनकी उम्मीदवारी यह कह कर अस्वीकृत करदी कि उनके पूर्व जीवन की घटनायें और कीर्ति सार्वजनिक हित में बाधक है । म्युनिसिपैलिटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में भी उक्त सुधारएक्ट की धारा का सहारा लेकर ऐसी व्यवस्था की गई जिससे उग्र राजनैतिक मतानुयायी उनमें प्रवेश न कर सकें ।

प्रेस एक्ट

मिंटोमॉर्ले सुधारों के अनुसार बनी हुई केन्द्रीय धारासभा में जो सबसे पहले कानून बना वह भारतीय प्रजा के एक मौलिक अधिकार का घातक था । आधुनिक राजनीति के आचार्यों ने एक स्वर से मुद्रण-स्वातन्त्र्य को प्रजा का एक मूलभूत अधिकार माना है, पर यहां की नवनिर्मित केन्द्रीय कौन्सिल में मुद्रण-स्वातन्त्र्य का घातक बिल रखा गया । यह बड़ी ही तेज़ी से पास किया गया । श्रीयुत चिन्तामणि अपने "भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—"मुझे विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ कि बिल जिस रूप में तैय्यार हुआ था वह और भी अधिक भयानक था । परन्तु कानून सदस्य ने उसे उस रूप में पेश करने से इन्कार कर दिया और जब उन्होंने वायसराय की कार्यकारिणी कौंसिल में बहुमत अपने विरुद्ध पाया तो अपने पद से त्याग पत्र दे दिया ।

परन्तु न तो लॉर्ड मॉर्ले और न लॉर्ड मिन्टो ही मिस्टर सत्येन्द्रप्रसन्न सिन्हा का सहयोग खो देने के लिये राजी थे और परिणाम स्वरूप समझौता हो गया। भारत सरकार के कुछ आई० सी० एस सदस्यों ने मि० सिन्हा को इस बात के लिये कभी क्षमा नहीं किया। परन्तु मि० सिन्हा संशोधित बिल से अब भी असन्तुष्ट थे और उन्होंने कहा कि वे कौंसिल में बिल पर वोट लेने के समय तटस्थ हो जावेंगे। परन्तु उन्हें समझाया गया कि उनका ऐसा करना उचित न होगा, ख़ास कर इस बात का लिहाज़ रखते हुए कि भारत-मन्त्री तथा वाइसराय ने बिल में उनकी ख़ातिर कुछ कुछ सुधार कर दिया था। प्रेस एक्ट के कारण लॉर्ड सिन्हा के सम्बन्ध में देश में इतनी ग़लतफ़हमी फैली और उन पर वर्षों तक इतने आरोप लगाए कि जब सन् १९१६ में मि० अर्डले मार्टन का आक्षेपात्मक लेख प्रकाशित हुआ तो विलायत के एक पत्र में ठीक ठीक बातें बतादीं जो कि मुझे श्री गोखले से उसी वर्ष (१९१६ में) मालूम हो चुकी थीं और बाद को मैं जिन्हें स्वयं लॉर्ड सिन्हा से भी सुन चुका था। फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि एक्ट बड़ा कठोर था और उसके बारह वर्ष के जीवन में उससे बड़ा उत्पात हुआ। स्वतन्त्र तथा स्वस्थ समाचार पत्रों के विकास के लिये वह घातक ही था।"

प्रथम महायुद्ध का आरम्भ

सन् १९१४ ई० में यूरोप में मित्र राष्ट्रों और जर्मनी के बीच युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में भारत ने, यह समझ कर कि निकट भविष्य में उसकी राजनैतिक आकांक्षाएँ पूरी हो जावेंगी, ब्रिटिश सरकार की अर्थबल व जनबल से पूरी पूरी सहायता की।

सन् १९१५ ई० में बम्बई में राष्ट्रीय कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ; उसके अध्यक्ष लॉर्ड सिन्हा ने इस बात पर जोर दिया कि ब्रिटिश सरकार भारत के सम्बन्ध में अपनी नीति की स्पष्ट घोषणा करदे। लोकमान्य तिलक ने भी यह स्पष्ट रूप से कहा कि अगर ब्रिटिश सरकार भारत की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूर्ण करने का वचन दे तो भारत युद्ध में पूरी मदद दे सकता है। इतना ही नहीं, ब्रिटिश सरकार की नेक नीयती पर विश्वास कर भारत ने उसे तन, मन, धन, से हार्दिक सहायता दी। इस सहायता को ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। पर इसका नतीजा क्या हुआ? युद्ध समाप्त होने पर भारत को स्वराज्य के बदले रोलेट एक्ट, पंजाब का मार्शलला और उसके राक्षसी कृत्य प्राप्त हुए। देश में बड़ी निराशा छा गई और कई ऐसे महानुभाव जो सरकार के समर्थक थे, वे भी इस बात को मानने लगे कि बिना स्वराज्य के भारत का निस्तार नहीं। रॉलेट एक्ट के बाद भारत में जो आन्दोलन हुआ उसका वर्णन आगे होगा।

लोकमान्य तिलक का छुटकारा

सन् १९१४ ई० के जून मास में लोकमान्य तिलक मण्डाले की

जेल से मुक्त कर दिये गये। आपको पूरी छः वर्ष की सजा काटनी पड़ी। लोकमान्य की मुक्ति से भारत के राष्ट्रीय दल में नवजीवन और नव चेतना आगई। जेल से मुक्त होते ही लोकमान्य ने अपनी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को ज़ोर शोर से शुरू कर दिया। उन्होंने देश में घूम फिर कर लाखों मनुष्यों को स्वराज्य का सन्देश दिया और लोगों से अपील की कि वे इस महापवित्र उद्देश्य के लिये हर प्रकार का आत्मबलिदान करने के लिये तैयार रहें। राष्ट्र में फिर से नवजागृति का सूत्रपात हुआ और देश का वातावरण स्वराज्य की आवाज़ से गुञ्जायमान हो गया। उन्होंने, जैसा कि पूर्व कहा गया है, सरकार को यह विश्वास दिलाया कि अगर सरकार भारतीय लोकमत का आदर कर स्वराज्य प्रदान करने की स्पष्ट घोषणा करती है तो वह उसे हर प्रकार की सहायता करने को तैयार है। पर इसके लिये भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन बन्द नहीं किया जावेगा। सन् १९१५ ई० के मई मास में तिलक महोदय ने अपनी पार्टी की एक कॉन्फ्रेन्स बुलाई और उसमें स्वराज्य के लिये आन्दोलन करने का प्रस्ताव हुआ।

श्रीमती बिसेन्ट और उनका स्वराज्य आन्दोलन

श्रीमती एनी बिसेन्ट ने समय समय पर भारतवर्ष की जो बहुमूल्य सेवाएँ की हैं उसे भारतवर्ष का इतिहास कृतज्ञता के साथ स्मरण करेगा। महात्मा गांधी ने श्रीमती बिसेन्ट की मृत्यु के बाद उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए कहा था कि मिसेज़ बिसेन्ट तब तक जीवित रहेंगी, जब तक भारतवर्ष ज़िन्दा है। "Mrs Besant will live, as long as India lives" कहने का मतलब यह है कि श्रीमती बिसेन्ट ने भारत की विविध क्षेत्रों में महान् सेवाएं की थीं। उनकी भारतीय आकांक्षाओं के साथ पूर्ण सहानुभूति थी। सन् १९१६ ई० में उन्होंने "होमरूल लीग" नाम की संस्था खोली और उसके द्वारा ज़ोर शोर से स्वराज्य-आन्दोलन शुरू किया। सारे देश का ध्यान इस आन्दो-

लन की ओर आकर्षित हुआ और देश में श्रीमती एनी बिसेन्ट का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया। इससे तत्कालीन मद्रास गवर्नर लॉर्ड पेन्टलैण्ड बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने श्रीमती एनी बिसेन्ट और उनके कुछ साथियों को नज़रबन्द कर दिया। इससे देश में आग और भी अधिक भड़की और स्वराज्य-आन्दोलन ने अधिक ज़ोर पकड़ लिया। देश भर में सार्वजनिक सभाएँ हुईं और लॉर्ड पेन्टलैण्ड के इस कृत्य के प्रति घृणा प्रगट की गई। इसी समय लोकमान्य तिलक पर उग्र भाषण देने के उपलक्ष्य में पूना के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट द्वारा ज़मानतें मांगी गईं। पर पीछे जाकर हाइकोर्ट ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का उक्त आर्डर रद्द कर दिया गया।

सन् १९१६ ई० की संयुक्त काँग्रेस

सन् १९०७ ई० में कांग्रेस में जो फूट पड़ी उसना उल्लेख हम गत पृष्ठों में कर चुके हैं। इसके बाद सन् १९१५ तक कांग्रेस के जो अधिवेशन हुए, उसमें इने गिने नर्म दलीय नेताओं की प्रधानता थी। कांग्रेस एक प्रकार से जीवन हीन हो गई थी। सन् १९१६ ई० में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसमें सब दल के नेता एकत्रित हुए। इस अधिवेशन में बड़ा जोश रहा और लोग नवजीवन का अनुभव करने लगे। इस अधिवेशन में सर्व सम्मति से भारत को शीघ्र से शीघ्र स्वराज्य प्राप्त करने का प्रस्ताव पास हुआ। इसके अतिरिक्त हिन्दू मुसलमानों के बीच समझौता भी हुआ। दुःख की बात है कि इस समझौते में पृथक् निर्वाचन का तत्त्व स्वीकार किया गया जिसका जहरीला प्रभाव देश आज बुरी तरह भोग रहा है।

सन् १९१८ ई० कांग्रेस

सन् १९१८ ई० में महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी के सभापतित्व में दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन बड़ी धूमधाम से हुआ। अध्यक्ष के जुलूस में हजारों लोगों ने भाग लिया। इस कांग्रेस ने स्वराज्य की आवाज़ को और भी अधिक बुलन्द किया गया और इस महान् उद्देश की प्राप्ति के लिये देश को एक सूत्र में बन्धजाने का आदेश दिया गया। अधिवेशन के अन्तिम दिन हिन्दू-मुस्लिम एकता पर पंडित मालवीयजी ने जो मर्म और हृदयस्पर्शी अपील की उससे उपस्थित जनता के हृदय द्रवीभूत होगये और लोगों के दिल में यह भावना जोरों से काम करने

लगी कि स्वराज्य प्राप्ति के लिये हिन्दू मुस्लिम एकता की बड़ी आवश्यकता है। इन्हीं दिनों देशीय-राज्यों के प्रतिनिधियों ने मिलकर राजपूताना मध्यभारत नाम की एक संस्था कायम की। इसमें स्वर्गीय श्री गणेश शंकरजी विद्यार्थी, श्री चांदकरणजी शारदा, श्री गणेश नारायणजी सोमानी, श्री इन्द्रजी विद्यावाचस्पति, नवरत्न पंडित गिरधर शर्मा और इस ग्रन्थ का लेखक उपस्थित था। इसका उद्देश देशी राज्यों में उत्तर दायित्व शासन प्राप्त करना था।

क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों का इतिहास

बम्बई में क्रान्तिकारी दल

पश्चिमी भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलनों का सूत्रपात हिन्दुओं के पर्वों से यथा गणपति और शिवजी की पूजा और स्मृति दिवसों से हुआ। ऐसा कहा जाता है कि सन् १८९३ में बम्बई में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो दंगा हुआ उसके पश्चात् से सार्वजनिक रूप से गणपति पूजा होने लगी। इन उत्सवों पर लोगों को लाठी चलाने आदि की शिक्षा दी जाती थी। नवयुवक लड़कों पर सरकार विरोधी गीत गाते हुए इधर उधर घूमते थे। कुछ ऐसे पर्चे भी इस समय बंटते थे जिनमें लोगों को धर्म के नाम पर विदेशी शासन को दूर फेंकने के लिये कहा जाता था। इसीलिये गणपति उत्सव के पश्चात् कहीं न कहीं संघर्ष होने शुरू हुए।

रेन्ड की हत्या

सन् १८९७ में, जब कि पूना में प्लेग जोरों पर था, लोकमान्य पं० बाल गंगाधर तिलक ने अपने पत्र 'केसरी' में, जो पश्चिमी भारत का प्रमुख प्रभावशाली पत्र था, न केवल आधीनस्थ अधिकारियों पर प्रत्युत तात्कालिक सरकार पर भी लोगों को आतंकित करने का आरोप लगाया। उन्होंने प्लेग कमीश्नर श्री रैन्ड को निरंकुश और स्वेच्छाचारी कहा।

२२ जनवरी को महारानी विक्टोरिया की ६० वीं० वर्ष गांठ मनाई गई और उसी रात्री को साफ़ेकर भाइयों द्वारा प्लेग कमिश्नर श्री रैन्ड और लेफ्टिनेन्ट ऐयेरेस्ट की, जब कि वह सरकारी भवन से उत्सव में भाग लेकर लौट रहे थे, हत्या कर दी गई। इसमें कोई भी शक नहीं कि आप-

हाथियों का जथा मि० रैन्ड थे। लेफ्टिनेन्ट ऐमेरेस्ट की मृत्यु तो आकस्मिक हुई थी। श्री दामोदर चाफेकर पर मुकदमा चला और उन्हें राजद्रोह के अपराध में मृत्युदण्ड दिया गया। जेल में उन्होंने जो आत्मकथा लिखी थी उससे यह पता चलता है कि बम्बई में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति पर तारकोल इन्हीं ने पोता था।

फरवरी १८९९ में चाफेकर दल ने पूना के चीफ कांस्टेबिलके मारने का असफल प्रयत्न किया। बाद में उन्होंने दामोदर चाफेकर के पकड़वाने में मदद देनेवाले दो भाइयों को मार दिया। इन सब के अपराध में चापेकर दल के चार व्यक्तियों को प्राणदंड और एक को दस वर्ष का कठिन कारावास दिया गया।

लोकमान्य तिलक पर भी १२ जून १८९७ के 'केसरी' के अंक में राजद्रोहात्मक लेख लिखने के अपराध में मुकदमा चला और उन्हें १८ मास की सजा हुई।

१८९७ में पूना के पत्र

तिलक की गिरफ्तारी ने पूना स्थित पत्रों में ब्रिटिश विरोधी प्रचार को कम नहीं किया। सन् १८९८ में श्री शिवराम महादेव परांजपे ने मराठी में एक साप्ताहिक पत्र निकाला। उनकी साम्राज्य विरोधी नीति के कारण उन्हें सन् १८९९ में चेतावनी दी गई और कई बार उन पर मुकदमा चलाने का सोचा गया। अंत में जून १९०८ में उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें १९ माह की सज़ा दी गई। दूसरा पत्र बिहारी था, जिसके विरुद्ध भी तीन बार राजद्रोहात्मक लेख छापने के कारण मुकदमा चला। सन् १८९८ से १९०६ तक 'केसरी' का महत्व बढ़ता गया। सन् १९०७ में इसका प्रचार २०,००० प्रति तक पहुँच गया। उक्त पत्र में उस समय रूसी क्रान्ति के आधार पर अनेक लेख निकले।

लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा के कार्य

इसी समय श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने जो काठियावाड़ के निवासी थे, लंदन में जाकर वहां पर भारतीय होम रूल समाज की स्थापना की और उसके द्वारा 'इण्डियन सोशालाजिस्ट' नाम का पत्र निकालना प्रारम्भ किया। सन् १६०५ में उन्होंने एक एक हजार की छः छात्रवृत्तियां भारतीय लेखकों एवं पत्रकारों के लिये, जो कि विदेशों में जाकर स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता के लिये प्रयत्न करें, उद्घोषित कीं। इन्होंने श्री विनायक सावरकर का ध्यान इस ओर आकर्षित किया।

श्री विनायक सावरकर

श्री विनायक सावरकर का जन्म २८ मई सन् १८८३ को नासिक जिले में हुआ। बचपन में इनकी रुचि साहित्य और काव्य की ओर अधिक थी। जब ये छोटे थे तब बम्बई और पूना आदि में हिन्दू मुसलमानों के झगड़े होते थे। उस समय इनकी विचारधारा में हिन्दुत्त्व की प्रबल भावना थी। जब ये केवल १५—१६ वर्ष के ही थे, तभी इन्होंने घर की देवी के आगे अपना सारा जीवन देश की स्वतंत्रता के लिये अर्पण करने की प्रतिज्ञा की। मैट्रिक करते-करते सावरकर का नाम चारों ओर फैल गया। मैट्रिक करने के बाद ये फर्ग्युसन कॉलेज पूना में भरती हुए। वहां जाते ही वहां भी इन्होंने अपनी लहर फैला दी। सावरकर और उनके साथियों को कॉलेज के अन्य विद्यार्थी सावरकर संघ के नाम से पुकारने लगे। उसी समय वीर सावरकर लोकमान्य तिलक की ओर आकर्षित हुए और उन्होंने उन्हें अपना 'राजनीतिक गुरु' माना। तिलक का कहना था कि स्वराज्य भीख मांगने से नहीं मिला करता। वह अपने पैरों पर खड़े होकर देश व्यापी क्रान्ति द्वारा प्राप्त होगा। इसी समय विदेशी कपड़ों की होली करने के कारण श्री सावरकार कालेज से निकाले गये। बी० ए० करने के बाद इन्होंने बम्बई और महाराष्ट्र में

प्रचार कार्य किया श्री शिवराम पंत परांजपे की सिफारिश पर श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इन्हें छात्रवृत्ति दी और वे लंदन पहुंचे।

इण्डिया हाउस की हलचलें

श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा का इन्डियन हाउस सन् १९०६ तक साम्राज्य विरोधी शक्तियों का केन्द्र बन गया था। ब्रिटिश सरकार उनके विपरीत कोई कार्यवाही न करे, इस लिये वे तो लंदन से पेरिस चले गये थे। परन्तु उनका पत्र 'इन्डियन सोशिलाजिस्ट' लंदन से ही निकलता था। ब्रिटिश सरकार ने जुलाई १९०६ में उसके मुद्रक पर मुकदमा चलाकर उसे दंडित किया। फिर भी पत्र का मुद्रण बन्द न हुआ। वह दूसरे प्रेस में छपने लगा। सरकार ने उसके विपरीत भी कायवाही की और मुद्रक को एक वर्ष का कारावास दिया। इसके पश्चात इण्डियन सोशियालाजिस्ट का कार्यालय लंदन से पेरिस चला गया। वहीं पर उसमें एक लेख निकला जिसमें रूसी ढंग पर राज्यक्रांति करने का आदेश दिया गया।

इसी समय बंगाल में मुजफ्फरपुर में श्री खुदीराम बोस ने श्रीमती और कुमारी कैनेडी पर बम फैंका। वह समझ रहा था कि इस गाड़ी में किंग्सफोर्ड नाम का एक अप्रिय मजिस्ट्रेट है।

दूसरी ओर लंदन में मई १९०८ में इण्डिया हाउस में भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध की स्मृति मनाई गई। करीबन १०० छात्रों ने इसमें भाग लिया। वहां से प्रकाशित 'ओ शहीदों' नाम की एक पुस्तक थोड़े ही दिनों बाद भारतवर्ष में आई। उन दिनों इण्डिया हाउस में, जो भाषण दिये गये उनमें लोगों को बम बनाने और उन्हें प्रयोग में लाने की शिक्षा दी गई। सन् १९०९ में श्री विनायक सावरकर के हाथों में इंडिया हाउस का नेतृत्व आगया और वहां पर उनके द्वारा लिखी हुई पुस्तक 'भारतीय स्वतंत्रता का युद्ध' का पाठ होने लगा। १ जुलाई १९०९ को श्री मदनलाल धींगरा नाम के युवक ने कर्नल सर विलियम कर्जन

विल्ली को लन्दन के इम्पीरियल इस्टीट्यूट में गोली का निशाना बनाया। इन्हीं दिनों उत्तेजना पूर्ण एवं साम्राज्य विरोधी रचनायें लिखने के कारण श्री विनायक सावरकर के भाई श्री गणेश सावरकर को आजन्म कारावास की सज़ा दी गई। इसकी सूचना केबिल द्वारा श्री विनायक सावरकर को लन्दन में मिली। इससे वह बहुत ही उत्तेजित हुए पर यह कहना कठिन है कि एक ही साथ होने वाली सर विलियम कर्जन विली की हत्या और श्री गणेश सावरकर के आजन्म कारावास की घटनाओं में कुछ सम्बन्ध है अथवा नहीं। श्री मदनलाल धींगरा की जेब में गिरफ्तारी के समय जो कागज़ात मिले उनमें साफ़ लिखा हुआ था कि 'मैंने अंग्रेजों के खून करने का स्वेच्छा से निर्णय किया है। यह कार्य हिन्दुस्तानियों के साथ किये गये उनके बर्बता पूर्ण कार्य यथा देश निष्कासन एवं मृत्यु दंड आदि के विरोध में है। इन्हीं दिनों हिन्दुस्तान में भी लंदन से भेजी हुई पिस्तौल से नासिक के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट जैकसन की—जिसने श्री गणेश सावरकर का फैसला किया था—हत्या कर दी गई। इस हत्या के सम्बन्ध में सात व्यक्ति गिरफ्तार हुए, जिनमें तीन को फांसी देदी गई। इसी सम्बन्ध में और छानबीन करने पर जगह २ हथियार और पर्चे मिले जिनमें हिन्दुस्तान में अधिकारियों की हत्या का सुझाव रखा गया था। उनमें से एक पर्चे में यह स्पष्ट लिखा था कि इस प्रकार अलग अलग हत्या करने से ही जहां नौकरशाही का दिल कांपता है, वहां जनता राज्य-क्रान्ति के लिये खड़ी होती है। इस छानबीन से यह भी पता चला कि इस क्रांतिकारी दल की देश के अन्य हिस्सों में भी शाखायें हैं, जिनमें 'ग्वालियर षड्यन्त्र' काफ़ी प्रसिद्ध है।

ग्वालियर में षड्यंत्र

इस षड्यंत्र का पता श्री गणेश सावरकर और नासिक स्थित जोशी नाम के एक व्यक्ति के पत्र-व्यवहार से चला। इस पत्र-व्यवहार

से ग्वालियर में एक षड्यन्त्रकारी दल का पता चला। वहां नवभारत समाज के २२ सदस्य और अभिनव भारत समाज के १६ ब्राह्मण सदस्य गिरफ्तार हुए। ये अभियुक्त अपराधी प्रमाणित हुए और उन्हें सज़ायें दी गईं। ग्वालियर नव भारत समाज के चौथे नियम में स्वतंत्रता प्राप्ति के दो उपाय बताये गये थे। पहला शिक्षा द्वारा और दूसरा संघर्ष द्वारा। शिक्षा में स्वदेशी आन्दोलन, विदेशी चीजों का बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा, भाषण आदि आते हैं तथा संघर्ष में अस्त्र शस्त्र की शिक्षा और प्रयोग आता है। यदि भारतवर्ष के ३० करोड़ व्यक्ति लड़ने को कटिबद्ध हो जायें तो कोई भी शक्ति उन्हें गुलाम नहीं बना सकती।

अन्यत्र

अहमदाबाद में जब लॉर्ड मिन्टो और लेडी मिन्टो जा रहे थे तब उन पर नवम्बर १६०६ में किसी ने बम फेंका। सन् १६०७ में सतारा में भी एक विद्रोही दल का पता चला। तीन ब्राह्मण युवक गिरफ्तार हुए जिनमें से एक बम बनाते हुए पकड़ा गया। सन् १६१४ मे पूना में एक मराठा और एक ब्राह्मण के पास एक प्रेस पकड़ा गया जिससे साम्राज्य विरोधी विज्ञप्तियां प्रकाशित हुई थीं। उनमें से एक पत्र तो दिल्ली में लॉर्ड हार्डिंज पर जो बम फेंका गया था उसी के ठीक बाद १ जनवरी १६१३ का था।

बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन

बङ्गाल में राज्यक्रान्ति का आन्दोलन कैसे प्रारम्भ हुआ इसे जानने के लिए हमें उन प्रभावों की चर्चा करनी पड़ेगी जिससे इस आन्दोलन को बल व प्रेरणा मिली।

वारीन्द्रकुमार घोष

सन् १६०२ में डॉ० के० डी० घोष के सुपुत्र श्री वारीन्द्रकुमार घोष, जिनका ज म सन् १८८० में इङ्गलैण्ड में हुआ था, कलकत्ता आये। उनका उद्देश्य बङ्गाल में भारत से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को हटाने के लिये राज्य क्रान्ति करने का था। वह अपने उद्देश्य में सफल न हुए। निराश होकर सन् १६०३ में उन्हें बड़ौदा लौट जाना पड़ा। इसके बाद सन् १६०४ में वे कलकत्ता आये और उन्हें बदली हुई परिस्थितियों में कुछ सफलता मिली।

पृष्ठ भूमि

बंगाल में उस समय तक श्री रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द की विचार धारा की भी छाप पड़ चुकी थी। परमहंस ने शक्ति पूजा पर जोर दिया और स्वामीजी ने कर्मयोग द्वारा जीवन की साधना पर। दोनों के विचारों का सम्मिलित भाव यह था कि अपने पैरों पर आप खड़े होना तथा जीवन में शक्ति प्राप्त करो। यद्यपि इन महान् पुरुषों का संदेश सारी मानवता के लिये था, पर बंगाल के घर घर में इनकी विचार धारा ने क्रांति के बीज बो दिये। ऐसे ही समय में जापान की रूस पर विजय हुई। इस विजय का सारे एशिया पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा। 'कुछ करो या मरो' की भावना सर्वत्र फैल

गई। बंगाल के जीवन और साहित्य पर वैष्णव भावना की छाप तो पहले से ही थी। गीता उनकी प्रिय पुस्तक थी। गीता में आत्मा की अमरता और अधिकारों के लिये युद्ध करने का संदेश है। फिर राष्ट्रीयता स्वाधीनता के संग्राम में बंगाल कैसे पीछे हटता। कितने शब्दों में स्वामी विवेकानन्द ने काली से शक्ति की भीख मांगी है।

"Oh India wouldst thou with these provisions only scale the highest pinnacle of civilization and greatness? Wouldst thou attain by means of the disgraceful cawardice, that freedom deserved only by the brave & heroic......Oh thou Mother of strength, take away my weakness, take away my unmanliness, and make me a man" ओ भारत क्या हम इसी प्रकार उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ सकेंगे? क्या हम इस अपमानजनक क्लीवता से उस स्वतन्त्रता को पासकेंगे जिसे उपभोग करने का अधिकार केवल वीरों और बहादुरों को है। ओ मां काली! हमें शक्ति दो और हमारी कमजोरियां दूर करो। हमसे कापुरुषता छीनलो और हमें मनुष्य बनाओ।

ऐसे ही उत्तेजित वातावरण में लॉर्ड कर्जन ने यूनीवर्सिटी बिल बनाया। जब बंगाल के शिक्षित वर्ग में इसके पक्ष विपक्ष में चर्चा हो ही रही थी उसी समय बंगाल के बंटवारे का प्रश्न छिड़ा। उस समय बंगाल, बिहार और उड़ीसा एक ही लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्रांत के अन्तर्गत थे। लॉर्ड कर्जन व अन्य अधिकारी बंगाल के बंटवारे के लिये कटिबद्ध थे। कलकत्ते के राजनीतिक दल इसके घोर विरोधी थे। उनका पक्ष भी ठीक ही था। इस बंटवारे से एक बंगाली भाषाभाषी प्रान्त के दो टुकड़े कर दिये गये। समाचार पत्रों एवं लोक नेताओं के विरोध के विपरीत भी जुलाई १६०५ में यह बंटवारा हो गया। इसके परिणामभूत

बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन को काफ़ी बल मिला।

बंग आन्दोलन

पत्रों, विज्ञप्तियों और भाषण द्वारा बंगाल और बिहार के बंटवारे का आन्दोलन काफ़ी जोरों से चला। कार्यकर्ताओं द्वारा जनता को स्पष्ट शब्दों में बताया गया कि किस प्रकार उनका शोषण हुआ है और उनसे कहा गया कि उस शोषण से बचने का उपाय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ संगठित मोर्चा या सशस्त्र विद्रोह ही है। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार व स्वदेशी का आन्दोलन खूब जोरों से चला। इसी समय मां काली की उपासना के साथ साथ घर घर में बन्देमातरम् का प्रचार हुआ। ऐसे ही समय में श्री बारीन्द्र कलकत्ता वापिस आये। उन्होंने श्री अविनाश महाचारजी और भूपेन्द्रनाथ दत्त के सहयोग से युगान्तर पत्र निकाला। करीबन १॥ वर्ष चलने के पश्चात् यह पत्र उसके आधुनिक प्रबन्धकों के हाथ में आगया। बरीन्द्र ने हथियारों को और लड़कों को इकट्ठा करना प्रारम्भ किया। सर्व श्री उल्लासकर दत्त और हेमचन्द्रदास के यहां बम बनने लगे। इन सबों ने मिलकर अनुशीलन समिति नाम की एक संस्था बनाई, जिसकी एक शाखा कलकत्ता और दूसरी ढ़ाका में थी। इस संस्था का नारा था 'Unrest must be created: Welcome therefore unrest whose historical name is revolt' अर्थात् असंतोष की उत्पत्ति अवश्य होनी चाहिये अतएव इसका स्वागत करो: इसका दूसरा नाम विद्रोह है।

इसी समय (योगीराज) अरविन्द घोस भी बड़ौदा से आकर इस संस्था में मिल गये। इसकी कार्यवाही का मुख्य पत्र युगान्तर था। इसकी बिक्री दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। अन्त में सन १९०८ में सरकार को इसे जब्त कर लिया। इस महायज्ञ में 'सन्ध्या' पत्र ने भी अपनी आहुतियां दीं। लाखों की संख्या में विज्ञप्तियां जनता में बांटी गईं। जिससे विद्रोह की आग चारों ओर फैल गई।

लोगों को सशस्त्र क्रान्ति के लिये संगठित करने के लिये जिन पुस्तकों ने सहायता दी उनमें श्रीमद्‌भगवद्‌गीता,, विवेकानन्दजी के लेख व मैजिनी व गैरीबाल्डी का जीवन जीवन चरित्र मुख्य हैं। भवानीमन्दिर में काली की पूजा से बंगालियो को मानसिक, शारीरिक शक्ति की उन्नति करने का संदेश मिला। दो अन्य पुस्तकें भी इस दशा में उल्लेखनीय हैं। उनमें से 'वर्तमान रणनीति' और 'मुक्ति कौन पथे ?' मुख्य थीं। पहली पुस्तक में कर्म करने और शक्ति की पूजा करने का आदेश दिया गया है। दूसरी पुस्तक में छुक छिप कर हथियार एकत्र करने तथा उनके प्रयोग करने की शिक्षा दी गई है। शक्ति व दबाव के द्वारा धन संग्रहित करने की प्रेरणा भी उक्त पुस्तक में दी गई। सैनिकों से दोस्ती करने व विदेशी सहायता से क्रान्ति का संदेश इन्हीं पुस्तकों द्वारा फैलाया गया।

क्रान्तिकारियों के कार्य्य

बंगाल में क्रान्तिकारी कार्यवाहियां सन् १६०६ में प्रारम्भ हुईं। प्रारम्भिक २ वर्षों में उनकी योजनायें सुसंगठित न थीं। हां, दिसम्बर १६०७ तक उनमें काफ़ी संगठन शक्ति आ गई। ६ दिसम्बर १६०७ को मिदनापुर के निकट बंगाल के गवर्नर की गाड़ी के ऊपर बम फेंका गया। अक्टूबर १६०७ में ढाका जिले में एक आदमी के छुरा भोंक कर उसे लूटा गया। २३ दिसम्बर को ढाका के भूतपूर्व मजिस्ट्रेट श्री ऐलन के गोली मारी गई। ११ अप्रेल १६०८ को चन्द्रनगर के मेयर के मकान पर बम फेंका गया। ३० अप्रेल को मुजफ्फरपुर में एक बम से, जो मि० किंग्सफोर्ड के मकान पर फेंका जाने वाला था, श्रीमती और मिस कैनेडी, जो पास से ही जा रहीं थीं, घायल हुईं। पुलिस को पहले से ही पता चल गया था कि मि० किंग्जफोर्ड की हत्या होने वाली है। उन्हें एक किताब, जिसमें बम रखा हुआ था, भेजी भी गई थी। परन्तु उन्होंने उसे खोली नहीं। अन्यथा उन्हें पहले ही प्राणों से हाथ धोना पड़ता। इस सम्बन्ध में

दो नवयुवक गिरफ्तार हुए जिनमें से एक को फांसी दी गई तथा दूसरे ने गिरफ्तार होने पर आत्मघात कर लिया। जिस पुलिस सब इन्स्पेक्टर ने उसे पकड़ा था वह ६ नवम्बर को गोली से क्रान्तिकारियों द्वारा मार दिया गया।

अलीपुर षड्यन्त्र व अन्य हत्यायें

२ मई को पहले किये गये अपराधों के सिलसिले में कलकत्ते में जगह जगह पर तलाशियां हुईं और करीबन ३४ व्यक्ति इस सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए। इनमें से एक नरेन्द्र गोसांई मुखबिर बन गया। १५ व्यक्तियों पर राजद्रोह का अपराध प्रमाणित हुआ जिनमें श्री वारीन्द्रकुमार घोष भी थे। इस मुकदमे को अलीपुर षड्यन्त्र केस कहते हैं। जब मुकदमा चल ही रहा था तभी मुखबिर नरेन्द्र गोसांई को गोली मार दी गई। १० फरवरी १९०९ को पब्लिक प्रासीक्यूटर तथा २४ जनवरी १९१० को डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को गोली से मार दिया गया। इस प्रकार से राजनीतिक अपराधों की संख्या बढ़ती गई।

१५ मई १९०८ को ग्रेस्ट्रीट कलकत्ता में एक बम फटा जिससे चार व्यक्ति घायल हुए। उसी वर्ष दिसम्बर तक कलकत्ते के पास रेलगाड़ियों में बम फेंकने की चार घटनायें हुईं। २ जून १९०८ को ढाका जिले में करीबन ५० व्यक्तियों ने मिलकर एक सेठ के यहां से २५००।) नगद व ८३७) का जेवर का माल लूटा। उन्होंने देहात के चौकीदार को गोली से मार दिया। तीन व्यक्ति इस सम्बन्ध में गिरफ्तार भी हुए, पर उनका अपराध प्रमाणित न हो सका। ऐसी ही दूसरी डकैती ३० अक्टूबर को फरीदपुर जिले में नदिया में हुई जिसमें सशस्त्र तीस या चालीस व्यक्तियों ने टिकिट घर व तीन मकानों को लूटा। १०००) के इनाम की भी घोषणा की गई, पर अपराधियों का कोई पता न चला। इसके बाद तो १५ अगस्त १९०८ से १६ सितम्बर १९०८ तक मैमनसिंह जिले में वजीतपुर और

हुगली जिले में विधारी जिले में डकैतियां हुईं। इन दोनों स्थानों में नौजवानों ने पुलिस के आदमी बन कर घरों की तलाशियां लीं और फिर लूटना प्रारम्भ किया। इसी के कुछ दिनों बाद क्रान्तिकारी दल के सर्व श्री सुकुमार, केशवदे और आनन्द प्रसाद घोष की हत्यायें की गईं। ऐसा सोचा जाता था कि ये लोग अनुशीलन समिति के बाबत कोई सूचना अधिकारियों को दे देंगे। ७ नवम्बर १६०८ बंगाल के गवर्नर सर ऐन्ड्रयूफ्रेजर को गोली मारने का प्रयत्न किया गया। अभियुक्त पकड़ा गया और उसे १० वर्ष की सज़ा हुई।

१९०९ के बाद

३ जून १६०६ को उसके भाई गणेश के धोखे में श्री प्रियनाथ चटर्जी की हत्या की गई। १६ अगस्त को खुलना जिले के नालंगा गांव में राजनीतिक डाका डाला गया। करीबन् १०७०) नक्द और जेवरात आक्रमणकारियों के हाथ लगे। ११ अक्टूबर १०६६ को ढाके के पास रेलगाड़ी पर हमला करके करीबन २३ हजार रुपये प्राप्त किये गये। १० नवम्बर १६०६ को ढाका जिले के राजनगर गांव में क्रान्तिकारियों ने एक मकान से २८ हजार रुपये लूटकर प्राप्त किये। ११ नवम्बर को उन्होंने त्रिपुरा के मोहनपुर शहर से करीबन् १६ हजार रुपये प्राप्त किये। इन महत्वपूर्ण डकैतियों के अतिरिक्त १६१० की मुख्य घटना सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस सम्सुल आलम की हत्या है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। ऊपर लिखी हुई डकैतियों की जांच के लिये मार्च १६१० से हावड़ा षड्यन्त्र केस चला जो अप्रेल १९११ में समाप्त हुआ। इसमें करीबन ५० व्यक्तियों के ऊपर आरोप था।

सन् १६१० के पूर्वार्द्ध में खुलना और जैसूर जिले में २ डाके ६ हजार के, १ डाका २ हजार का तथा एक डाका २००) का पड़ा। सभी में नवयुवक क्रान्तिकारी थे। इसी वर्ष उन पर षड्यंत्र केस चला,

जिसमें चवालिस व्यक्तियों पर आरोप था, जिसमें से १५ व्यक्तियों को ७ से २ वर्ष तक की सख्त सज़ा दी गई। उन व्यक्तियों में से श्री प्रलिन बिहारी दास भी थे। इन सब मुकदमों का अपराधियों पर कोई भी प्रभाव न पड़ा और अपराधों की संख्या बढ़ती गई। १६१० के उत्तरार्ध में पांच डाके पड़े जिसमें मैमनसिंह और ढाके के डाकों में शस्त्रों की चोरी की गई। ढाका, फरीदपुर और बाकरगंज के डाकों में आक्रमणकारियों के हाथ क्रमशः १५००) ; १२६६०) और ४६३६८) लगे। इसी वर्ष प्रेस एक्ट बना जिसके अंतर्गत किये गये दमन के प्रतिरूप पत्रों द्वारा साम्राज्य-विरोधी प्रचार कम हो गया।

सन् १६११ में क्रान्तिकारियों द्वारा १८ घटनायें की गईं, जिनमें से १६ घटनायें पूर्वी बंगाल की थीं। इनमें डाक कर्मचारी पर आक्रमण, डकैतियां, मैमनसिंह के राजकुमार की हत्या आदि घटनायें मुख्य हैं। सब से बड़ी डकैती बाकरगंज जिले की थी, जहां १०,२००) प्राप्त हुये। इनमें से जो डाक कर्मचारी पर हमला किया गया था वह सोनमर्ग राष्ट्रीय स्कूल के विद्यार्थियों और अध्यापकों द्वारा था। इस सम्बन्ध में १४ अध्यापक और लड़के गिरफ्तार हुए थे, जिनमें से सात को सज़ा हुई। इस स्कूल ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में काफ़ी हाथ बटाया। शेष दो घटनायें कलकत्ता की थीं। २१ फरवरी को कलकत्ता के शिरीषचन्द्र चक्रवर्ती नामक कांस्टेबिल को क्रान्तिकारियों ने गोली से उड़ा दिया। दूसरी घटना एक यूरोपियन की कार में एक २६ वर्ष के लड़के द्वारा बम फेंकने की थी। इस वर्ष के अंत में ही दिल्ली दरबार द्वारा पूर्वी और पश्चिमी बंगाल मिला दिये गये और इस प्रकार बंग के अंगभंग को लेकर जो आन्दोलन चला था, वह एक तरह से समाप्त हो गया।

सन् १६१२ की सब से मुख्य घटना बरिसाल षड्यन्त्र केस है। ढाका अनुशीलन समिति द्वारा बाकरगंज जिले में कुशनगल, काकुरिया और बीसगल आदि में डाके गये। नवम्बर १६१२ कोमिल्ला में डाके

डालते हुए १२ नवयुवक गिरफ्तार हुये जिनमें से दस को सजा मिली। नवम्बर २८ को श्री गिरीन्द्र मोहनदास को सन्दूक से गोलियां व कुछ ऐसे कागज़ात पुलिस को मिले जिससे ढाका अनुशीलन समिति के विधान और कार्यवाहियों का पुलिस को पता चला। इसी समय शारदा चक्रवर्त्ती तथा हैडकॉस्टेबिल रतिलाल की हत्या भी की गई। इसी वर्ष ढाका जिले के पानम गांव में डाकों द्वारा बागियों को २० हज़ार रुपये व नानगल बांड से १६ हज़ार रुपये प्राप्त हुये। इसके अतिरिक्त और भी छोटे छोटे डाके डाले गये। अंतिम घटना १३ दिसम्बर को मिदनापुर में अब्दुल रहमान की हत्या के लिए बम फेंकना था। लॉर्ड हार्डिन्ज पर दिल्ली में भी इसी समय बम फेंका गया।

१९१३

१९१३ में क्रांतिकारियों ने अपने कार्य को जोर शोर से प्रारम्भ किया। दो पुलिस के अधिकारियों की हत्या की गई। २८ सितम्बर की शाम को हैडकॉस्टेबिल हरिपद देव को गोलि से मार दिया गया। उसके दूसरे दिन मैमनसिंह शहर में इन्सपेक्टर बंकिमचन्द्र चौधरी के मकान पर बम डाला गया जिससे उनकी हत्या हुई। सिलहट में मि० गार्डन की हत्या का प्रयत्न किया गया, पर आक्रमणकारी क्रांतिकारी बम के फट जाने से स्वतः घायल हो गया। पैसे के लिये इस वर्ष दस डकैतियां डाली गईं। इनसे करीबन ६१,००० रुपये आक्रमणकारियों को प्राप्त हुए। इस वर्ष वरिसाल षड्यन्त्र केस का फैसला सुनाया गया जिसमें २६ में से १४ अभियुक्तों को दो से १२ साल तक की सजा दी गई।

१९१४

इस वर्ष की क्रांतिकारी घटनायें तीन भागों में बांटी जा सकती हैं। पूर्वी बंगाल की, हुगली की और कलकत्ते के आस पास के २४ परगनों तथा कलकत्ते की पूर्वी बंगाल में जो घटनायें हुईं थी उनमें से मैमनसिंह

जिले में १७,७००) और २३,००० हजार रुपये के दो बड़े बड़े डाके पड़े। चिटगांव और ढाका जिले में सत्येन्द्र सेन और रामदास की क्रमशः हत्या की गई। कलकत्ता के आस पास डकैती की पांच घटनायें हुईं। उनमें से सबसे मुख्य रोडा एण्ड कम्पनी के यहां से पिस्तौलों की चोरी थी। उक्त कम्पनी में हथियारों की २०२ पेटियां आईं थीं। उसके एक कर्मचारी ने कस्टम्स से १९२ पेटियां तो कम्पनी में पहुँचा दीं। शेष दस पेटियां लेकर वह कभी नहीं लौटा। इन पेटियों के हथियार बंगाल के क्रांतिकारियों के बीच में बांटे गये और उनकी सहायता से बंगाल के सशस्त्र क्रांतिकारी आन्दोलन को बल मिला। कलकत्ते की हत्या की सबसे बड़ी घटना इन्सपेक्टर नृपेन्द्र घोष की हत्या थी। आक्रमणकारी व्यक्ति पकड़ा गया। पर दो बार जूरी लोगों ने उसे 'अपराध रहित' घोषित किया। इसी साल डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बसन्त चटर्जी की हत्या के दो बार असफल प्रयत्न किये गये।

१९१५

यह वर्ष कलकत्ते में क्रान्तिकारियों द्वारा किये गये अनेक कार्यों के उल्लेख आवश्यक है। कलकत्ते में चार डकैतियां ओटोमोबाइल टैक्सी की सहायता से डालीं गईं। उनमें से गार्डन रीच की डकैती १८ हजार की, बेलीघाट की २२ हजार की व कोरपोरेशन स्ट्रीट की २५ हजार की मुख्य थी। गार्डन रीच की डकैती श्री जतिन मुखर्जी और विपिन गंगुली के नेतृत्व में हुई जिन्होंने बर्ड एण्ड कम्पनी के एक कर्मचारी से, जो २० हजार रुपये लेकर जा रहा था, १८ हजार रुपये छीन लिये। उसी के एक सप्ताह बाद बालीघाट में श्री जतीन मुखर्जी के नेतृत्व में एक चावल के दूकानदार के खजांची से २० हजार रुपये नगद छीन लिये गये। बाद में टैक्सी ड्राइवर की, संभवतः आज्ञा उल्लंघन करने के अपराध में, हत्या कर दी गई। इन डकैतियों के एक सप्ताह के ही अन्दर निरोद हवलदार और इन्सपेक्टर सुरेशचन्द्र मुखर्जी की हत्या की गई।

इन सबके पीछे श्री जतीन मुखर्जी का हाथ था। मार्च के अन्त में पुलिस को पता चला कि श्री जतीन बलासोर की तरफ गया है। वहीं पर पुलिस व क्रांतिकारियों की मुठभेड़ हुई जिसमें प्रसिद्ध क्रांतिकारी चित्रप्रिय मारे गये और श्री जतीन मुखर्जी घायल हुए। जतीनजी की मृत्यु कुछ ही समय बाद हो गई।

२१ अक्टूबर के बाद कलकत्ते में ऐसा कोई भी पंखवारा न गुजरा जब कोई न कोई कार्य क्रांतिकारियों ने न किया हो। कलकत्ते के क्रांतिकारियों ने कलकत्ते के आस पास के इलाकों में भी डांके डाले जिसमें नादिया जिले का डाका मुख्य है। इसमें उनके हाथ करीबन २१ हजार रुपये लगे और कांस्टेबिल और तीन दूसरे व्यक्ति जान से मारे गये और ११ घायल हुए। इस काल की पूर्वी बंगाल की सबसे बड़ी घटना हरिपुर के जमींदार के यहां का डांका था, जहां डाकुओं ने जमींदार के दरबान को मारकर व तीन देहातियों को बुरी तरह घायल करके १८ हजार रुपये की रकम प्राप्त की। इसी के बाद ७ सितम्बर को मैमनसिंह जिले में चड़कोना का बाज़ार लूटा गया। क्रान्तिदल ने पांच दूकानें लूटीं और २१ हजार रुपये का माल ले गये। ऐसी ही एक डकैती २६ दिसम्बर को करटोला में (त्रिपुरा जिले में) डाली गई जहां युवकों ने १५०००) वसूल किये। इन प्रमुख डकैतियों के अतिरिक्त और भी छोटी मोटी डकैतियां वा हत्यायें की गईं। उनमें से मैमनसिंह जिले में डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस श्री जतीन्द्र मोहन घोष की हत्या मुख्य थी।

इस वर्ष उत्तरी बंगाल में, जो अब क शान्त रहा था, हिंसात्मक कार्यवाहियां हुईं। २३ जनवरी को २० और २५ नवयुवकों ने रंगपुर जिले के कुरोल गांव में डाका डालकर ५० हजार रुपये प्राप्त किये। ऐसी ही एक डकैती राजशाही जिले में डाली गई, जिसमें डाकुओं के हाथ २५ हजार रुपये लगे। इसी समय रंगपुर के एडिशनल सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस राय साहब नन्दकुमार बसु की हत्या का असफल प्रयत्न किया गया।

१९१६

१९१६ के प्रारम्भ में श्री पुलिन मुखर्जी, अतुल घोष और उनके अन्य साथियों द्वारा कलकत्ते में तीन डकैतियां डाली गई जिनमें दो में वह असफल रहे तथा एक डकैती में उन्हें करीबन् ६००० प्राप्त हुये। इस साल की सब से प्रसिद्ध डकैती गोपीराय गली की थी, जहां से क्रान्तिकारियों को करीबन ११,५०० रुपये मिले। १९ जनवरी को कलकत्ते के कालेज स्क्वेयर में सब इन्सपेक्टर मधुसूदन भट्टाचारजी की हत्या की गई।

पूर्वी बंगाल में हत्याओं के अतिरिक्त त्रिपुरा में १४६८० व १७५०० की दो मुख्य डकैतियां, फरीदपुर में ४३,००० की, व मैमनसिंह में ८० हजार की डकैतियां डाली गई। इसके अतिरिक्त अनेक हत्यायें भी की गई।

१९१७

इस वर्ष की मुख्य घटनाओं में से रंगपुर जिले में २० जून १९१७ को २६४००), २७ अक्टूबर १९१७ को ढाका जिले के अब्दुल्लापुर शहर में २७,८९०) तथा त्रिपुरा जिले में ३ नवम्बर को ३३ हजार की डकैतियां डाली गईं। इसी साल आरमीनियन स्ट्रीट में बड़ाबाजार में एक सुनार की दूकान पर डाका डाला गया और करीबन ५,४,९१ रुपये का माल क्रांतिकारियों ने लूटा। यहां यह देखने का है कि इस वर्ष बड़े आदमियों के यहां ही डाके डाले गये और डाकों में काफ़ी बर्बरता से रकम वसूल की गई।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि सन् १९०६ से १९१७ तक बंगाल में जो घटनायें घटीं वह काफ़ी आतंक पूर्ण थीं। यदि इन क्रांतिकारियों के पास अस्त्रों-शस्त्रों की व्यवस्था पूरी होती तो यह अपने उद्देश्य में कहीं अधिक सफल हुए होते। शस्त्रों के अभाव में इन्होंने सुसंगठित मोर्चे न लड़कर अलग अलग जो आंतकवादी कार्य्यवाहियां की उससे

वह अधिक सफल न हो सके। फिर भी इन्होंने विदेशियों के हृदय पर भारतीयों के स्वातंत्र्य प्रेम एवं उग्र राष्ट्रीयता की छाप लगादी। इन क्रान्तिकारियों का संगठन कैसा था, इस की चर्चा अगले अध्याय में की जायगी।

बङ्गाल में क्रान्तिकारी सङ्गठन

गत पृष्ठों में हमने बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा की है अब हम इस आन्दोलन के पीछे क्रान्तिकारियों का जैसा संगठन था, इसकी चर्चा करेंगे। यद्यपि विभिन्न क्रान्तिकारी दलों में तथा उनकी क्रिया-प्रणाली में अन्तर था, फिर भी उनमें काफ़ी समानता भी थी।

संगठन

नवम्बर १९०८ की ढाका अनुशीलन समिति के कार्यालय की जो तलाशी ली गई उससे पता चला कि क्रान्ति की दृष्टि से बंगाल प्रान्त के कई भाग कर दिये गये थे, जिनके अंतर्गत कई उपकेन्द्र थे और उन में कार्य की दृष्टि से योग्य व्यक्ति रखे गये थे। समिति में कार्य करने वालों को निम्न लिखित चार प्रतिज्ञायें करनी पड़ती थीं—

(१) आदि प्रतिज्ञा (२) अन्तिम प्रतिज्ञा (३) प्रथम विशेष प्रतिज्ञा (४) द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा।

आदि प्रतिज्ञा:—इस के अनुसार 'मैं समिति से कभी अलग न हूँगा। मैं समिति के क़ानून मानूँगा। मैं बिना प्रतिवाद के अधिकारियों की आज्ञा मानूँगा। मैं दल के नेता से कुछ भी न छिपाऊँगा व सत्य के अतिरिक्त और कुछ न बोलूँगा' आदि प्रतिज्ञायें मुख्य थीं।

अन्तिम प्रतिज्ञा:—इसमें नीचे लिखि प्रतिज्ञायें थीं—

(१) 'मैं समिति की आंतरिक स्थिति के सम्बन्ध में किस से कुछ न कहूँगा।'

(२) "मैं बिना दल के नेता को सूचना दिये इधर से उधर न जाऊँगा। मुझे जैसे ही समिति के ख़िलाफ़ किसी षड्यन्त्र की सूचना मिलेगी, मैं वैसे ही उसकी सूचना परिचालक या नेता को दूंगा।"

(३) मैं कहीं भी हूँ परिचालक की आज्ञा पर तत्क्षण उपस्थित होऊँगा।

(४) मैंने जो कुछ इस समिति में पढ़ा है उसकी जानकारी मैं तब तक किसी को न दूंगा जब तक वह समिति का प्रतिज्ञाबद्ध सदस्य न हो जाय।

प्रथम विशेष प्रतिज्ञा:—(i) जब तक समिति का उद्देश्य न सिद्ध हो जाय, मैं समिति को छोड़ कर कहीं भी न जाऊँगा। मैं पिता माता, भाई बहिन किसी के स्नेह की चिन्ता न करूँगा और परिचालक की इच्छानुसार ही कार्य करूँगा। मैं स्थान और अस्थिरिता को छोड़ कर सारा कार्य दत्तचित्त और गम्भीरता से करूँगा।

(ii) अगर मैं यह प्रतिज्ञा पूरी न कर सकूँ तो ब्राह्मण, पिता-माता और महान् देश भक्तों का अभिशाप जला कर मुझे खाक करदे।

द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा:—(i) ईश्वर, अग्नि, मां और नेता के सम्मुख (उन्हें साक्षी बनाते हुए) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सारा कार्य समिति के विकास के लिये करूँगा और इसके लिये अपने जीवन व सब कुछ को अर्पित कर दूंगा। मैं नेता की सारी आज्ञायें मानूँगा और जो नेता के विरोध में काम करेंगे, मैं उनके विरोध में काम करूँगा और उन्हें अधिक से अधिक जितनी चोट पहुँचा सकूँगा, पहुँचाऊँगा।

(ii) मैं समिति के आंतरिक रहस्य के सम्बन्ध में किसी से बातचीत न करूँगा और न समिति के सदस्यों से ही इस सम्बन्ध में कोई अनावश्यक बातचीत करूँगा।

ये प्रतिज्ञायें अधिकांश अवस्था में माँ काली के सम्मुख देव-पूजा के बाद की जाती थी। सदस्यों के कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने

के लिये नियमावली होती थी, जिसमें उनकी शिक्षा, लाठी, खर्च और रहन सहन के सम्बन्ध में चर्चा रहती थी। २ सितम्बर १६०६ को नागला डकैती के सम्बन्ध में कलकत्ते में चोरबा गान स्ट्रीट में जो तलाशी ली गई उससे पता चला कि क्रान्तिकारी रूसी तरीकों से परिचित थे। उन्हें छिप कर कार्य करने के तरीकों का भली प्रकार अनुभव था। उनका क्रान्तिकारी संगठन साधारण और विशेष विभागों में बँटा हुआ था। साधारण के अंतर्गत, दल का संगठन, प्रचार और आन्दोलन था। विशेष दल के अन्तर्गत क्रान्तिकारी कार्य आता था—यथा बम बनाना, पैसा एकत्रित करना तथा सशस्त्र कार्यवाही करना—आदि आदि। अनुशासन भंग करने पर मृत्यु दंड देने का नियम था। ये दल प्रान्त जिला, नगर, देहात आदि के सदस्यों में बंटे हुये थे।

२७ फर्वरी १६१३ को श्री रमेश आचारजी की तलाशी से जो कागज़ात मिले उनसे पता चला कि जिले में बँटे हुये क्रान्तिकारियों के केन्द्र के अधिकारियों को तीन माह के अन्तर्गत की गई अपनी सारी कार्यवाहियों की रिपोर्ट भेजनी पड़ती थी। अन्य क्रान्तिकारियों के पास से भी जो कागज़ात प्राप्त हुए, उनसे उक्तमत का ही समर्थन मिलता है। अधिकांश अवस्था में नवयुवकों व विद्यार्थियों को लेकर ही यह आन्दोलन चला और जोर पकड़ता गया।

शक्ति पूजा

अपने उद्देश्यों की सफलता के लिये क्रान्तिकारी शक्ति-पूजा में विश्वास करते थे। सन् १६०५ में भवानी मन्दिर नाम की एक विज्ञप्ति निकली जिसमें क्रान्तिकारियों के उद्देश्यों की घोषणा की गई। भवानी मन्दिर, शहर के कोलाहल से दूर, किसी एकान्त स्थान में होते थे, जहां क्रान्ति के पुजारी ब्रह्मचारी और संन्यासी के रूप में शक्ति की आराधना करते थे। इन विचारों की उत्पत्ति बंकिम बाबू के सुप्रसिद्ध आनन्द मठ उपन्यास से हुई। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसकी पृष्ठ

भूमि सन् १७७४ का सन्यासी विद्रोह है। इसमें सशस्त्र सन्यासियों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों से खुल कर मुठभेड़ की। इसी समय अस्त्र शस्त्र व उनकी शिक्षा सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें जगह-जगह क्रान्तिकारियों के पास से पकड़ी गई।

निष्कर्ष

यद्यपि प्रांत में यत्रतत्र कई विभिन्न घटनायें घटीं, परन्तु ऐसा मानना कि उनमें कोई तारतम्य न था या वह असम्बद्ध या अलग अलग ही थीं, सोचने की गलत दिशा है। उन सब घटनाओं के पीछे एक महान् क्रान्तिकारी ज्वाला सुलग रही थी जिसका उद्देश्य अपने देश को विदेशियों के पंजे से छुड़ाना था। इन क्रान्तिकारियों के जीवन में असीम साहस व आत्म-बलिदान की भावनायें थीं। मां शक्ति की पूजा और ब्रह्मचर्य की शपथ ने इन्हें इनके कार्य के लिये काफ़ी सबल और उपयोगी बनाया था। ढाका अनुशीलन समिति और उत्तरी तथा दक्षिणी बंगाल की क्रान्तिकारी समितियां काफ़ी बड़े क्षेत्र में फैली हुई थीं। उनकी अनुशासन व संगठन व्यवस्था भी अच्छी थी। ढाका अनुशीलन समिति के संस्थापक श्री पुलिन बिहारीदास थे। १९०८ में यह संस्था गैर कानूनी घोषित करदी गई थी, पर फिर इसका दफ़्तर कलकत्ते में खुला। वहां पर श्री मक्खन सेन के नेतृत्व में यह संस्था काफ़ी फूली फली। देश के अन्य भागों में क्रान्तिकारियों से संपर्क रखने में भी इस संस्था का हाथ था।

प्रचार-साहित्य

क्रान्तिकारियों का प्रचार-साहित्य बहुत अधिक था। जब मि० मॉन्टेगू भारतवर्ष में आये तब इन्होंने उनके विरुद्ध लोगों को उभारने के लिये एक विज्ञप्ति में कहा:—"अब हमें क्या करना चाहिये। हमारा कर्त्तव्य साफ़ है। हमें मि० मॅन्टेगू के आने जाने से कुछ मतलब नहीं। वह शान्ति से से आ रहे हैं वह शान्ति से चले जायें। हमें इससे क्या? लेकिन सब से

पहले और आतंक की स्थिति उत्पन्न होनी चाहिये। इस अपवित्र सरकार का अस्तित्व ही ख़तरे में डाल दो। मृत्यु की छाया से अन्धकार में छिपे रहो और विदेशी सत्ता पर टूट पड़ो। जेल में मरने वाले अपने भाइयों को याद करो। जो दलदल में पड़े हुए हैं, उन्हें याद करो, जो मर चुके हैं पागल हो गये हैं, उन्हें याद करो। आँखें खोलो और काम करो।"

"हम तुम सबों को राष्ट्र और ईश्वर के नाम पर बुलाते हैं। सभी नवयुवक और वृद्ध, अमीर व ग़रीब, हिन्दू या मुसलमान, आओ। भारत की की इस स्वाधीनता की लड़ाई में सम्मिलित होओ। अपना रक्त बहा दो। देखो! माता बुला रही है।"

क्रान्तिकारियों के पत्रों पर जो मुहर लगी रहती थी उस पर 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अंकित रहता था जिसका अर्थ है कि 'माँ और राष्ट्र स्वर्ग से अधिक महत्वपूर्ण हैं।'

शिक्षालयों में भर्ती

बंगाल के क्रान्तिकारी दलों में स्कूल और कॉलेजों के नवयुवक सम्मिलित होते थे। इन दिनों इनके खुलने की भी मांग बहुत अधिक रही। तात्कालिक सरकार भी इन्हें विद्रोह का अड्डा समझती थी और इनसे सशङ्क रहती थी। यह विद्रोह की अग्नि समाचार पत्रों और विज्ञप्तियों के माध्यम से विद्यार्थियों में फैलाई गई। बहुधा क्रान्तिकारी या तो बाहर से किसी व्यक्ति को चुन कर शिक्षा के लिये स्कूल या कॉलेजों में भेज देते थे या फिर किसी स्कूल के अध्यापक के माध्यम से उसके अन्दर पढ़ने वाले विद्यार्थियों में क्रान्ति की भावनायें फैलाते थे। इन भावनाओं के फैलाने में वे गीता, स्वामी विवेकानन्द व श्रीरामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं से काफ़ी लाभ उठाते थे। काली की उपासना की भी सर्वत्र धूम थी। क्रान्तिकारी दल में जो विद्यार्थी चुने जाते थे उनमें से सबसे अच्छे वे समझे जाते थे जो नाबालिग़ होते थे, उसके बाद वे जो अविवाहित होते

होते थे, उसके बाद वे जो विवाहित नवयुवक होते थे। सब से अन्त में वे जो बड़े और संसारी थे। इसके बाद उनका नम्बर आता था जो देश के लिये सब कुछ कुर्बान कर सकते थे। आखिर में वे लोग आते थे जो केवल आर्थिक सहायता कर सकते थे।

विदेशों में क्रान्ति की योजनायें

इस देश में जो क्रान्तिकारी दल अपना कार्य कर रहा था, उसका एक भाग विदेशों में भी हिन्दुस्थान की क्रान्ति के लिये सुसंगठित धरातल तैयार करने में व्यस्त था। उन दिनों इङ्गलैंड और जर्मनी के सम्बन्ध बिगड़ते जा रहे थे। इसलिये 'शत्रु के शत्रु मित्र होते हैं' इस सिद्धान्त पर यह दल जर्मनी और भारत के सम्बन्ध अच्छे करने में और जर्मनी से समानता और स्वाधीनता के सिद्धान्त पर सहायता लेने को प्रस्तुत था। उन दिनों अमेरिका में यह कार्य प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल कर रहे थे जो बाद में जर्मनी में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री चैम्पेकर पिलई के साथ मिल गये थे। इन लोगों का कार्य अधिकतर ब्रिटेन विरोधी प्रचार था। ये क्रान्तिकारी सैन्फ्रासिस्कों, बटैविया, शंघाई आदि में जर्मनी के राजदूतों के अंतर्गत काम करते थे। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप ने भी विदेशों में भारतीय क्रान्ति के लिये बड़ा काम किया। वे जर्मनी के केसर आदि से मिलकर इस क्रान्ति को संपुष्ट करना चाहते थे।

१९१५ के प्रारम्भ में बङ्गाल के कुछ क्रान्तिकारियों ने मिल कर जर्मनी की सहायता से सारे भारत में क्रान्ति करने व श्याम तथा अन्य स्थानों से बङ्गाल के क्रान्तिकारियों का सम्बन्ध जोड़ने का निश्चय किया। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि डकैतियों द्वारा धन का संग्रह किया जाय। इसके पश्चात् कुछ डकैतियां डाली गईं जिनमें आक्रमणकारियों को ४० हजार रुपया मिला। भोलानाथ चटर्जी को विद्रोहियों से सम्पर्क साधने के लिये बैङ्कांग भेजा गया। श्री जतीन्द्रनाथ लहरी, जो यूरोप से आकर बम्बई में उतरे, अपने साथ बङ्गाल के क्रान्तिकारियों

के नाम जर्मनी की सहायता का आश्वासन लाये। उन्होंने दल की ओर से एक आदमी को बटेविया भेजने को कहा। इस पर श्री नरेन्द्र महाचारजी वहां भेजे गये। उन्होंने अपना जाली नाम सी० मारटिन रखा। इसी वर्ष जतीन मुखरजी क्रान्तिकारियों की ओर से कलकत्ते गये। चूंकि गार्डन रीच और बैलीघाट की डकैतियों के कारण पुलिस की जाँच बड़ी सरगर्मी के साथ हो रही थी इसलिये श्री जतीन मुखर्जी छिप गये।

जर्मनी की सहायता

बटाविया में श्री नरेन महाचारजी 'मारटिन' जर्मन दूतावास में गये। वहां उन्हें पता चला कि भारतीय क्रान्तिकारियों की सहायता के लिये शस्त्रों से लदा हुआ एक जहाज करांची पहुँच रहा है। उन्होंने उस जहाज को कलकत्ते भिजवाने के लिये कहा। फिर वह कलकत्ते के पास सुन्दर बन में उस जहाज का सामान लेने के लिये आये। उस जहाज में, कहा जाता है, ३० हजार रायफलें, ४०० राउन्डस कारतूस व २ लाख रुपये थे। फिर 'मारटिन' ने कलकत्ते की एक दूकान हैरी एण्ड सन्स को तार दिया कि 'व्यापार अच्छा चल रहा है।' यह फर्म व्यापार की न होकर क्रान्तिकारियों का प्रमुख अड्डा था। उसके बाद तो बटेविया से करीबन ४३ हजार रुपया इस फर्म के नाम आया। इन प्रवृत्तियों का पता पुलिस को किसी तरह चल गया।

वह अन्दर ही अन्दर जाँच करने में व्यस्त हो गई। हथियारों के आ जाने के पूर्व ही क्रान्तिकारियों के सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि उनका उपयोग कैसे किया जाय। इस विचार-विमर्श में जतीन मुकर्जी, जदु गोपाल मुकर्जी, नरेन्द्र महाचार्जी, भोलानाथ और अतुल घोष ने प्रधानता से भाग लिया था। उन्होंने बङ्गाल को पूर्वी बङ्गाल, कलकत्ता और बालासोर नामक तीन भागों में बाँट दिया। इसके बाद बङ्गाल को बाहरी प्रान्तों से अलग करने के लिये उन्होंने आने वाली रेलगाड़ियों के तीन प्रमुख पुल तोड़ने का निश्चय किया। श्री जतीन्द्र को मद्रास की पुल

तोड़ने का भार सौंपा गया। बङ्गाल नागपुर रेल का चक्रधापुर वाला पुल तोड़ने का काम भोलानाथ चटर्जी के सुपुर्द किया गया। ईस्ट इंडिया रेलवे का पुल तोड़ने का भार सतीश चक्रवर्ती को दिया गया। इसके अतिरिक्त नरेन्द्र चौधरी और फणीन्द्र चक्रवर्ती के जिम्मे पूर्वी बङ्गाल में विद्रोह करने का नेतृत्व दिया गया। नरेन्द्र भट्टाचारजी और विपिन गांगूली को कलकत्ते और फोर्ट विलियम पर अधिकार करने का काम सौंपा गया। इसी समय क्रान्ति को सफल करने के लिये जहाज द्वारा जो जर्मन अफसर आये थे उन्हें नवयुवकों को फौजी शिक्षा देने का काम सौंपा गया। श्री जदुगोपाल मुकर्जी ने मावरिक नामक जर्मन जहाज द्वारा हथियार लाने का काम अपने जिम्मे लिया। ऐसी आशा थी कि मावरिक नामक जहाज जून के अन्तिम सप्ताह में आ जायगा, पर वह जहाज न आ सका। इससे क्रान्तिकारियों में बड़ी निराशा हुई। उन्होंने अपना संदेशा बंकांग भेजा और वहां के क्रान्तिकारियों से यह अनुरोध किया कि वे योजना के अनुसार अवश्य हथियार भेजें।

इसी बीच में पुलिस को षड्यन्त्र का पता चल गया और कलकत्ते तथा उसके आस पास धर पकड़ चालू हो गई। मार्टिन ने अपना नाम बदल कर हरीसिंह रख लिया और वह बटेविया होता हुआ अमेरिका चला गया, जहां वह गिरफ्तार होगया। इसके बाद जर्मनी ने दो एक बार हिन्दुस्थान को हथियार भेजने की योजनाएं भी बनाईं पर वे कार्यान्वित न हो सकीं। इन सब झगड़ों को लेकर सैन फ्रांसिस्को में विदेशों में हिन्दुस्थान की आज़ादी के लिये काम करने वाले लोगों पर मुक़दमा चला। इन्हीं दिनों संघाई म्युनिसिपल पुलिस ने दो चीनी व्यक्तियों को भारतीय क्रांतिकारियों के लिये हथियार ले जाते हुए पकड़ा। इन में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री रासबिहारी बोस का भी हाथ था।

क्रान्तिकारियों की और जर्मनों की योजनाएं सफल न हुईं। इसका कारण यह था कि जहां जर्मनीवालोंको हिन्दुस्थानके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान

न था, वहां क्रान्तिकारियों की बनाई हुई योजनायें भी पूर्ण न थीं। इन सब षड्यन्त्रों को पकड़ने में पुलिस ने जो सामयिक चतुराई बतलाई उससे उनकी संगठन शक्ति का पता भली प्रकार लगता है। फिर भी क्रान्तिकारी चुप बैठनेवाले न थे। उन्होंने किस प्रकार आगे भी विदेशी सहायता का देश की स्वाधीनता के लिये उपयोग किया। इसका परिचय आगे के परिच्छेदों में मिलेगा।

अन्य प्रान्तों में क्रान्तिकारी षड्यन्त्र

बिहार

बङ्गाल और बिहार एक तरह से मिले हुए हैं। यद्यपि दोनों प्रान्तों की भाषाएँ अलग अलग हैं, परन्तु बङ्गभङ्ग आन्दोलन ने दोनों ही में एक साथ क्रान्ति की लहर फैलादी थी। सबसे पहले क्रान्तिकारियों का काम मुजफ्फरपुर की हत्याएँ थीं, जिसमें कलकत्ते से बदले हुये एक मजिस्ट्रेट का वध किया गया था। इसके बाद निमेज में एक महन्त के घर डाका डाला गया और उसे मार डाला गया। इस अपराध में मोतीचन्द और माणकचन्द नामके दो जैन युवक गिरफ्तार हुए और जोरावरसिंह नामक युवक फरार हो गया, जिसका पता सरकार अब तक न लगा सकी। उक्त दोनों नवयुवकों पर मुक़दमा चला और इनमें एक को फांसी की सज़ा हुई और दूसरा सरकारी गवाह बन कर छूट गया।

इन युवकों ने राजस्थान के प्रसिद्ध देशभक्त श्री अर्जुनलालजी सेठी की शिक्षा-समिति में शिक्षा पाई थी। इन्होंने इटाली के उद्धारकर्ता मैजनी का जीवन चरित्र पढ़ा था और उन सब उपायों का अध्ययन किया था, जिसके द्वारा उक्त देशभक्त ने इटाली को स्वतन्त्र किया था।

इसी सिलसिले में श्री अर्जुनलालजी सेठी की इन्दौर में गिरफ्तारी हुई। आप उस समय राय बहादुर सेठ कल्याणमलजी

की हाई स्कूल के हैड मास्टर होकर गये थे। यद्यपि आपके ख़िलाफ़ कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला जिसकी वजह से आप पर मुक़दमा चलाया जा सके, तहाँ भी आपको पाँच वर्ष की लम्बी अवधि तक नज़रबन्द रक्खा। आखिर श्रीमती एनिबिसेंट की सिफ़ारिश पर आप जेल से छोड़े गये।

इसके अतिरिक्त श्री सचीन्द्रनाथ सन्याल ने बांकीपुर (बिहार) में बनारस क्रान्तिकारी दल की एक शाखा खोली। इस शाखा के प्रधान संचालक श्री बंकिमचन्द्र मित्र थे जिन्होंने रघुवीरसिंह नाम के एक बिहारी युवक के हृदय में क्रान्ति और विद्रोह की भावनायें भरीं। बाद में रघुवीर की नौकरी प्रयाग में लग गई। वहाँ स्वतन्त्रता सम्बन्धी परचे बांटने पर उसे दो वर्ष की सज़ा दी गई। इसके बाद बिहार में कुछ क्रान्तिकारी उथल पुथल, भागलपुर में ढाका अनुशीलन समिति के सदस्यों के आने से हुई। यह कार्यवाही केवल प्रचारात्मक ही थी। २० सितम्बर १६१४ को उड़ीसा के कटक जिले में कलकत्ते के क्रान्तिकारियों द्वारा एक उड़िया विद्यार्थी की सहायता से एक डाका डाला गया। इसी के पास बालासोर जिले में पुलिस और प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री जतीन्द्रनाथ मुखर्जी की मुठभेड़ हुई, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि इस प्रान्त में क्रान्तिकारी कार्यवाहियां अपेक्षा कृत बहुत ही कम हुई थीं। परन्तु इन घटनाओंने बीज रूप का काम किया। आगे चलकर हम देखेंगे कि सशस्त्र क्रान्ति में इस प्रान्त का हिस्सा किसी अन्य प्रान्त से कम न रहा।

युक्तप्रान्त

युक्तप्रान्त उत्तरी भारत का मध्यवर्ती प्रान्त है और वह सदैव अनेकों उलटपुलट का केन्द्र रहा है। हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान बनारस, इलाबाद प्रयाग यहीं हैं। आगरा, लखनऊ, रामपुर मुगल संस्कृति व राजघराने के केन्द्र रहे हैं। १८५७ का प्रसिद्ध स्वतन्त्रता संग्राम—सच पूछा जाय तो—प्रधानतः इसी प्रान्त द्वारा लड़ा गया था।

इस प्रान्त में स्वतंत्रता का बीजारोपण प्रयाग के 'स्वराज्य' पत्र से हुआ। इसका संचालन व संपादन श्री शान्तिनारायण के हाथ में था जिन्हें राजद्रोहात्मक लेख लिखने के कारण जेल में बन्द कर दिया गया था। पर इससे 'स्वराज्य' की प्रगति में अन्तर न पड़ा। उनके बाद आठ संपादकों ने इस पत्र का संपादन किया जिनमें से तीन संपादकों को राजद्रोह के अपराध में जेल की यातनायें भोगनी पड़ीं। इसके बाद कर्मयोगी निकला। इन दोनों पत्रों को १९१० के पूर्व ही सरकारी रोष का शिकार होना पड़ा। इससे दो वर्ष पूर्व अलीगढ़ में श्रीयुत होतीलाल वर्मा को आपत्तिजनक साहित्य रखने के अपराध में दस वर्ष का देश निकाला हुआ। युक्त प्रान्त के क्रान्तिकारी इतिहास की सब से बड़ी घटना बनारस षड्यन्त्र केस था।

बनारस में बंगालियों की काफ़ी संख्या है, इसलिये यह स्वाभाविक ही था कि क्रान्तिकारी कार्यवाहियों का प्रारम्भ यहीं से होता। सन् १९०८ में श्री सचीन्द्रनाथ सन्याल ने यहां अनुशीलन समिति नाम की एक संस्था खोली, लेकिन जब ढाका अनुशीलन समिति सरकारी रोष का शिकार हुई तो बनारस समिति ने अपना नाम बदल कर 'यंगमेन्स एसोसियेशन' रखा। गीता व काली पूजा के माध्यम से इस संस्था में क्रांति की भावनायें फैलाई जाती थीं। सन १९१४ के प्रारम्भ में श्री रासबिहारी बोस ने इस संस्था का संचालन अपने हाथ में लिया। वे वहीं बंगाली टोला में रहते थे। एक बार बमों को देखते हुए उनके तथा शचीन्द्र के चोट आई। यद्यपि उनके विरुद्ध वारन्ट था, पर उत्तरी भारत की पुलिस बनारस में उनका पता न लगा सकी। वहीं पर श्री रासबिहारी ने पंजाब, मध्यप्रान्त और बंगाल के क्रान्तिकारियों को लेकर देशव्यापी सशस्त्र क्रान्ति की एक योजना बनाई। महीने की २१ ता० विद्रोह के लिये निश्चित हुई, परन्तु एक आदमी के पुलिस से मिल जाने से कई गिरफ्तारियां हो गईं। श्री रास बिहारी ने कलकत्ते के क्रान्तिकारियों से अन्तिम

विदाई की और दो वर्ष तक वापिस न आने को कहा। इसी समय श्री शचीन्द्र नाथ सन्याल की भी गिरफ्तारी हुई और उन्हें दस वर्ष की सज़ा दी गई।

इसी समय अवध (फ़ैज़ाबाद) में हवलदार हरनामसिंह की क्रान्तिकारियों से मिल कर काम करने के सम्बन्ध में गिरफ्तारी हुई। उसे राजद्रोह के अपराध में दस वर्ष की सज़ा दी गई।

उक्त बड़ी घटनाओं के अतिरिक्त क्रान्तिकारी विज्ञप्तियां बाँटने, युगान्तर के पर्चे चिपकाने, नाजायज़ हथियार आदि रखने के सम्बन्ध में युक्तप्रान्त में अनेक गिरफ्तारियां हुईं। सब मिलकर क्रान्तिकारी आन्दोलन की दृष्टि से युक्तप्रान्त के लिये यह काल प्रारम्भ युग था।

मध्यप्रान्त

सन् १९०६ में कलकत्ता में जो राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उसमें गरम व नरम दल का संघर्ष कुछ धीमा पड़ गया। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा बॉयकाट आन्दोलन का समर्थन किया तथा दूसरे में औपनिवेशिक स्वराज्य की याचना की। अगला अधिवेशन नागपुर में होने का था। इस लिये राष्ट्रीय हलचलों और उथल-पुथल का केन्द्र नागपुर बना। इसी समय तिलक विचार-धारा के समर्थक पत्रों का प्रान्त में प्रचार बढ़ा। इनमें 'हिन्दी केसरी' और 'देश सेवक' मुख्य थे। गरम दल का प्रभाव नागपुर में इतना बढ़ा कि कांग्रेस के नरम दल के समर्थकों ने कांग्रेस का क्षेत्र नागपुर से सूरत बदल दिया। फिर भी नागपुर और इसके आसपास में नवयुक आन्दोलन जोर पकड़ता गया। सूरत जाते और वहां से लौटते हुए श्री अरविन्द घोष ने नागपुर में स्वदेशी और बॉयकॉट के पक्ष में व्याख्यान दिये। इसी समय मुजफ्फरपुर की बम की घटना घटी। नागपुर के पत्रों ने उसका समर्थन किया। इस पर उसके संपादकों को दंड दिया गया। बाद में सन् १९१६ में मध्यप्रान्त में

बनारस षड्यन्त्रकेस के श्री नलिनीमोहन मुखरजी जी ने श्री रासबिहारी बोस की इच्छानुसार जबलपुर में फौजों से विद्रोह करवाना चाहा। पर वह भेद खुल गया और उन्हें बनारस षडयंत्र केस में दंड दिया गया। इसके पश्चात् ढाका अनुशीलन समिति के श्री नलिनी कांत घोष तथा श्री विनायक राव कपिल ने प्रांत में क्रांति के बीज बोने चाहे, पर वे अपने प्रयत्न में असफल रहे। वह पकड़े गये तथा उन्हें सज़ादी गई।

मद्रास

सन् १६०७ में मद्रास प्रान्त के लोगों में उत्तेजना की भावनायें श्री विपिन चन्द्र पाल नामक बङ्गाली पत्रकार और नेता के भाषणों से फैली। पाल के भाषण 'स्वराज्य स्वदेशी और बायकाट' विषयों पर थे। लाला लाजपतराय के पंजाब से निकाले जाने के दुःखद संवाद ने पाल को दक्षिण मद्रास का दौरा स्थगित करने पर विवश किया। पाल ने वापिस कलकत्ते लौट कर २५ मई को लोगों को गाँव गाँव में 'काली पूजा' करने के लिये जोर दिया। पाल के मद्रास प्रान्त से चले जाने के बाद वहां संघर्षों का तांता बन्धा! कई जगह पर्चे पकड़े गये और क्रान्तिकारी भाषण दिये गये। इस सम्बंध में सर्व श्री सुब्रामातिया शिव और चिदंबरम पिलई गिरफ्तार हुए। उनकी गिरफ्तारी के साथ ही साथ तिनावेली में भयंकर संघर्ष हुआ जिसके कारण वहां पर सरकारी दफ्तर जला दिये गये। २७ व्यक्तियों को इन अपराधों पर सज़ा मिली। कई तामिल पत्रों के सम्पादकों एवं प्रकाशकों को राजद्रोहात्मक लेख लिखने के अपराध में सजायें दी गई। ऐसे ही समय में मद्रास प्रांत में श्री नील-कंठ ब्रह्मचारी और उनके अनुयायी श्री शंकरकृष्ण अय्यर द्वारा ब्रिटिश सरकार के विपरीत षड्यन्त्र की एक योजना बन रही थी। जून १६१० में शंकर ने नीलकण्ठ को अपने साले वांची ऐयर से मिलाया। बाद में वीर सावरकर के एक अनुयायी श्री बी० बी० एस ऐय्यर ने लोगों को लुक छिपकर हथियार बनाने और चलाने की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। वांची

बी० बी० एस ऐयर से पाण्डीचेरी में मिला और वहां से शस्त्र-शिक्षा पाकर उसने तिनावल्ली के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० ऐश की हत्या करने की ठानी। १७ जून १६११ को मि० ऐश की हत्या कर दी गई। यह हत्या तथा मैमनसिंह जिले में सुबेदार राजकुमार की हत्या सम्राट् के राज्यारोहण दिवस पर ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध प्रदर्शन के लिये की गई थी। इस सम्बन्ध में ६ व्यक्तियों को सज़ायें दी गईं।

प्रथम महायुद्ध और मुसलमान

जहां तक उक्त क्रान्तिकारी आन्दोलनों का सम्बन्ध है, मुसलमानों का उनमें बहुत कम हाथ रहा था। गत प्रथम महायुद्ध ने परिस्थिति बदल दी। इस युद्ध में टर्की सम्मिलित हो गया था, इस लिये धर्मान्ध मुसलमानों को टर्की का साथ देना चाहिये था। इस दृष्टिबिन्दु ने कई मुसलमान परिवारों को सशस्त्र क्रान्ति में सहयोग देने के लिये विवश किया। इनमें से उत्तरी पश्चिमी प्रान्त में मुजाहिरिन लोगों का आतंक प्रसिद्ध है। ये लोग भारत को दारु-उल-हर्ब यानी 'दुश्मन का देश' कहते थे; क्योंकि वहां के शासक अंग्रेज थे। इसलिये ये उनके खिलाफ़ लड़ना अपना धर्म समझते थे। सन् १६१५ में पंजाब के १५ लड़कों ने अपना कॉलेज छोड़ दिया और मुजाहिरीन दल में मिल कर काबुल पहुँचे। उनमें से दो तो भारतवर्ष लौट आये तथा दो को रूसी अधिकारियों ने पकड़ कर अंग्रेजों के सुपुर्द कर दिया। इनके बयानों से पता चलता है कि इन्हें अंग्रेजों से बड़ी घृणा थी। वे सोचते थे कि टर्की और इङ्गलैंड में जो युद्ध हो रहा है उसमें उन्हें धर्म के नाम पर टर्की का साथ देना चाहिये। इस घटना के साथ-साथ ऐसे अनेक व्यक्ति देश में गिरफ्तार हुए, जिनका उद्देश्य उत्तरी पश्चिमी प्रान्त के लोगों को सहायता देना था।

अगस्त १६१६ में ही एक नये प्रयत्न का पता चला। हिन्दुस्तान

से बाहर जो मुसलमान लोग गये हुए थे, वे चाहते थे कि कोई बाहरी मुस्लिम राष्ट्र इस देश पर चढ़ाई करदे और यहां के मुसलमान बगावत करदें। इन लोगों में से मौलवी अब्दुल्ला का प्रयत्न विशेष उल्लेखनीय है। वे सहारनपुर जिले में देवबन्द स्कूल में मौलवी थे, परन्तु वहां पर उनका स्कूल के अधिकारियों से संघर्ष होगया। हिन्दुस्तान से बाहर जाकर मौलवी अब्दुल्ला ने टर्की और जर्मनी की सहायता से काबुल में भारतवर्ष से ब्रिटिश शक्ति को बाहर फेंकने के लिये एक योजना बनाई, जिसके अन्तर्गत राजा महेन्द्र प्रताप को भारतवर्ष का प्रधान बनाना निश्चित हुआ तथा अब्दुल्ला को प्रधान मन्त्री बनाना तय हुआ। जर्मनी के लोग तो उक्त योजना मे असफल होकर १६१६ में ही काबुल से चले गये। इन भारतीयों ने रूस के ज़ार को पत्र लिख कर भारतवर्ष पर चढ़ाई करने को कहा। ये पत्र तात्कालिक ब्रिटिश अधिकारियो के हाथ लग गये। सन् १६१६ में मौलाना महमूद हसन और अब्दुल्ला के चार साथी पकड़े गये। इनकी योजनाओं में संगठन का अभाव था और बहुत कुछ इन योजनाओं की असफलता का कारण मौलवी अब्दुल्ला का चरित्र था, जो योजनायें तो जल्दी जल्दी बना लेता था परन्तु उनके पूर्ण करने की शक्ति उसमें अपेक्षाकृत बहुत कम थी।

बर्मा में विद्रोह

बर्मा में जो संघर्ष हुए उनका भारतीय क्रान्ति से सीधा सम्बन्ध न था। इतना अवश्य सत्य है कि बर्मा वालों की लड़ाई अपने अधिकारों की लड़ाई थी; फिर भी अमेरिका की गदर पार्टी व पंजाब में राज्य विप्लव से बर्मा वालों का संपर्क था। इन संपर्कों का पता सन् १६१६ में माण्डले की अदालत में चले हुए दो मुकदमों से चला। बर्मा में जब सैन्सर लगा तो अमेरिका से प्रकाशित गदर पत्र की गुजराती, हिन्दी और उर्दू संस्करण की तमाम कॉपियां पकड़ी गईं। गदर के सभी अंकों में हिन्दू मुसलमान तथा सिक्खों से मिलकर अंग्रेज सरकार के उलटने

का संदेश था। इसी के साथ साथ टर्की के पत्र 'जाने-इ-इस्लाम' की भी कॉपियां पकड़ी गईं। इस पत्र की कॉपियां रंगून स्थित बलूची रेजीमेंट में भी बांटी गईं। इसके पूर्व कि पल्टने बगावत करें २०० के करीब षड्यन्त्रकारी पकड़े गये और उन्हें विभिन्न सजायें दी गईं। इसी समय सिंगापुर में Mujtaba हुसैन उर्फ मूलचन्द के प्रयत्नों से सिंगापुर में फ़ौजी बगावत हुई।

इसी समय अलीमुहम्मद और कायमअली बर्मा से अंग्रेजों को बाहर निकालने के प्रयत्नों में लगे हुये थे। उन्होंने करीबन् १५ हजार रुपये एकत्रित किये और कुछ बन्दूकें भी एकत्रित कीं। इसी समय बंगकाक से गदर पार्टी के कुछ लोग बर्मा में आये और उन्होंने डफरिन स्ट्रीट में १६ नं० का मकान लिया। पुलिस को इसका पता चल गया। ऐसे ही समय सैन्फ्रान्सिस्को से आये हुते गदर पार्टी के श्री सोहनलाल पाठक फ़ौजी सिपाहियों को उभाड़ते हुये पकड़े गये। मुसलमानों का विचार बकरीद के अवसर पर कुछ उपद्रव करने का था, परन्तु अधिकारियों की कड़ाई से वह ऐसा न कर सके।

पंजाब में क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ

पंजाब भारत की वीरभूमि रही है। यद्यपि यहां की आबादी में मुसलमानों की अधिकता है, फिर भी यहां की सिक्ख जाति अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध है। जहां सिक्खों की अंग्रेजों के प्रति भक्ति प्रसिद्ध है, वहां पंजाब का भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में कोई कम हिस्सा नहीं है। पंजाब में सन् १६०७ के आस पास से ही आग सुलग रही थी। यह आग सर डेनजिल इबेट्सन के अनुसार लाहौर, अमृतसर, फिरोजपुर, रावलपिंडी, सियालकोट, लायलपुर आदि बड़े बड़े शहरों में विद्यार्थियों क्लर्कों और पढ़े लिखे लोगों में थी। इस आतंकमय वायुमण्डल के कारण लाला लाजपतराय और अजीतसिंह गिरफ्तार कर लिये गये और वे पंजाब से मण्डाले भेज दियेगये। यद्यपि इनके बाहर निर्वासन से आग कुछ समय

के लिये ठंडी पड़ी, परन्तु सन् १६०६ में फिर यह ज़ोर से भभक उठी। लाहौर से काफ़ी क्रान्तिकारी विज्ञप्तियां निकल रहीं थीं। श्री अजीतसिंह के प्रान्त निर्वासन की आज्ञा ६ माह बाद समाप्त होगई। उसके पश्चात् उनके भाई और लालचंद फलक और भाई परमानन्द पर राजद्रोह के सिलसिले में मुकदमे चले। भाई परमानन्दजी के पास लाला लाजपतराय जी के दो पत्र पकड़े गये जो उन्होंने भाई परमानन्दजी को, जब वे लन्दन में थे, लिखे थे। इन पत्रों में लाला लाजपतराय ने भाई परमानंद जी से कुछ पुस्तकें भेजने व लंदन में श्रीकृष्ण वर्मा से १०,०००) राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिये सुरक्षित रखने के लिये लिखा था।

दिल्ली षड्यन्त्र केस

दिसम्बर सन् १६१२ में दिल्ली में लॉर्ड हार्डिंज पर बम फेंका गया, जिससे उनका एक अंगरक्षक जान से मर गया। इसके कुछ दिनों बाद लाहौर में बम से एक सिपाही मारा गया। इस पर जो जांच हुई उससे कई नई बातों का पता चला। उनमें से श्री हरदयाल की क्रान्तिकारी कार्यवाहियां मुख्य थीं।

श्री हरदयाल दिल्ली शहर के रहने वाले व पंजाब यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे। वे सन् १६०५ में सरकारी छात्रवृत्ति पर ऑक्सफोर्ड पढ़ने गये, लेकिन उन्होंने वहां पर पढ़ना छोड़ दिया। वे वापस भारतवर्ष आये और 'विदेशी माल के बहिष्कार' आन्दोलन में शामिल हो गये। इसके बाद वह हिन्दुस्तान से बाहर अमेरिका चले गये और वहां के प्रसिद्ध 'गदर' दल का नेतृत्व उन्होंने अपने हाथ में लिया। हिन्दुस्तान में उनके अनुयाइयों व साथियों में से लाहौर के श्री दीनानाथ, दिल्ली के श्री अमीरचन्द, बंगाल के श्री चटर्जी तथा देहरादून के श्री रासबिहारी बोस थे। दिल्ली षड्यन्त्र केस में श्री दीनानाथ मुखबिर बन गये तथा उनके रहस्योद्घाटन के फलस्वरूप सर्व श्री अमीरचन्द,

अवधबिहारी, बालमुकुन्द तथा बसन्तकुमार को फांसी दी गई। श्री रासबिहारी बोस फरार होगये और उन्हें पुलिस न पकड़ सकी। इस अवसर पर श्री हरिदयाल की कार्यवाहियों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

श्री हरदयाल सन् १६११ में सैनफ्रांसिस्को पहुँचे। वहां उन्होंने 'गदर' नाम का पत्र निकाला और उसे हिन्दुस्तान में अपने साथियों द्वारा मुफ्त बँटवाना चालू किया। वहां उन्होंने युगान्तर आश्रम नाम से एक प्रेस भी खोला। 'गदर' पत्र कई भाषाओं में एक साथ छपता था। इसकी पंक्ति पंक्ति में आग भरी रहती थी। जब जर्मनी ने इङ्गलैण्ड के विरुद्ध युद्ध-घोष किया तब गदर पार्टी ने इस उद्देश से आन्दोलन चलाना प्रारम्भ किया कि आज़ादी लेने का यह सबसे उपयुक्त अवसर है। उन्हें इस काम में सर्व श्री रामचन्द्र और मियां बरकतउल्ला से काफी सहायता मिली। बाद में अमेरिका की सरकार ने लाला हरदयाल को 'अवांछनीय विदेशी' समझ कर अमेरिका से बाहर निकाल दिया। वे स्विट्जरलैण्ड चले गये। उनके जाने के बाद 'युगांतर' आश्रम और 'गदर' पत्र श्रीयुत रामचन्द्रजी निकालते रहे।

बजबज का झगड़ा

उन्हीं दिनों पंजाबी सिक्खों को अधिक वेतन पाने की दृष्टि से मलाया और अमेरिका जाने की लगी हुई थी। अमृतसर जिले के सिक्ख गुरुदत्तसिंह एक जहाज भर कर यात्रियों को अमेरिका ले गये। वहां अधिकारियों ने इन यात्रियों को नियम के अनुसार तट पर न उतरने दिया। इससे जहाज के यात्रियों में काफ़ी रोष फैला। इसी बीच युद्ध छिड़ गया। यात्रियों को हांगकांग और सिंगापुर में भी न उतरने दिया। वे सब रोष में भरे हुये हुगली के पास २६ सितम्बर १६१४ को बज बज किनारे पर पहुँचे। बङ्गाल सरकार ने सिक्खों को रेल गाड़ी की

सफ़र से पञ्जाब जाने को कहा, परन्तु इन्होंने कलकत्ते शहर में प्रदर्शन करते हुये चलने को कहा। इस पर अधिकारियों व सिक्खों में झगड़ा हो गया। दोनों ओर के काफ़ी लोग हताहत हुए। १८ सिक्ख घायल हुये। गुरुदत्त के साथ २६ सिक्ख गायब हो गये। ३१ सिक्खों को जेल हुई। इस घटना के बाद कैनाडा, अमेरिका, हांगकांग, चीन आदि से तमाम सिक्ख भाग २ कर अपने देश आने लगे।

तत्कालीन भारत सरकार इससे सशंकित हो उठी, लेकिन सिक्खों का आना न रुका। उसने कुछ प्रतिबन्ध लगाये पर वह असफल रही। १६ अक्टूबर १६१४ की रात को फिरोज़पुर, लुधियाना लाइन पर चौकी मान रेलवे स्टेशन पर तीन या चार सशस्त्र व्यक्तियों ने आक्रमण किया। वे स्टेशन मास्टर को मार कर तथा सामान लूट कर भग गये। २६ अक्टूबर को कलकत्ते में कोमागाटामारू जहाज से जो प्रवासी सिक्ख उतरे सभी के सभी आतंकवादी थे। उनमें से एक सौ आदमी तो उसी समय गिरफ़्तार कर लिये गये। शेष का सम्बन्ध क्रान्तिकारी कार्य्यवाहियों से रहा। कई बार सरकारी ख़ज़ाने के लूटने में उसकी पुलिस वालों से मुठभेड़ होती रही। पञ्जाब सरकार ने उसी समय केन्द्रीय सरकार से इन आतंकवादी कार्य्यवाहियों को रोकने के लिये एक आर्डिनन्स बनाने को कहा। यह सन्देशा ज्यों ही भेजा गया कि प्रान्त की स्थिति और भी बिगड़ने लगी। जगह जगह राजनीतिक डाके, हत्यायें आदि होने लगीं। ऐसे ही समय में बङ्गाल की ओर से श्री विष्णु गणेश पिंगले नाम के एक महाराष्ट्र ब्राह्मण ने लोगों को बम बनाना सिखाने तथा सहायता का आश्वासन दिया। श्री रासबिहारी बोस भी बनारस से अमृतसर आ गये। २१ फरवरी को देश व्यापी क्रान्ति की योजना बनी। अर्थ की प्राप्ति के लिये कुछ राजनैतिक डकैतियां भी डाली गईं। एक भेदिये के द्वारा पता लगने से १६ फरवरी को ही श्री रास बिहारी बोस के मकान की तलाशी ली गई। सात प्रवासी भारतीय रिवाल्वर, बम, और क्रान्तिकारी

फन्दों के साथ पकड़े गये। श्री रास बिहारी बोस पकड़े न जा सके। २० फरवरी की सन्ध्या को एक हेड कांस्टिबिल और एक पुलिस का थानेदार मारा गया। १४ और २० फरवरी को फरीदपुर और लायलपुर जिले में डाके डाले गये। इन सब का सम्बन्ध लाहौर षड्यन्त्र केस से है।

इस बीच पञ्जाब सरकार पत्र पर पत्र लिखकर केन्द्रीय सरकार से आर्डिनेन्स बनाने के लिये जोर देती रही। अतः बङ्गाल और पञ्जाब में उत्पन्न असाधारण स्थिति को सम्भालने के लिये विदेशी सरकार ने 'भारत सुरक्षा क़ानून' बनाया। इस क़ानून ने पुलिस और नौकरशाही को असाधारण अधिकार दे दिये जिससे सारे देश में दमन का दौर दौरा चला और अनेकों देश भक्तों के साथ-साथ निरपराध निरीह नागरिकों को भी कठिनाइयां उठानी पड़ीं। इस क़ानून के अन्तर्गत बनाए हुए विशेष अदालतों में क्रान्तिकारियों के नौ गिरोहों का फैसला हुआ। इसके परिणामभूत २८ व्यक्तियों को फांसी दी गई और बहुतों को देश-निकाला हुआ। दो विद्रोही फ़ौज़ों को फ़ौजी अदालत के सुपुर्द किया गया। इस उल्लेख में बेचारे वे नागरिक नहीं आते जिन्हें स्वदेश-प्रेम के अपराध में साधारण अदालतों द्वारा दण्डित किया गया था। यहां पर उनकी चर्चा नहीं की है जिन्हें भारत सुरक्षा क़ानून के अन्तर्गत नज़रबन्द या नगरबन्द किया गया था।

इसी समय समाचार पत्रों पर भी जर्मनी के पक्ष के और उभाड़ने वाले समाचार छापने पर रोक लगाई गई। लोकमान्य तिलक व श्री विपिन चन्द्र पाल को पञ्जाब में आने से मना किया गया। सरकार को भय था कि कहीं क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण उनकी फौज़ों में भरती की संख्या कम न हो जाये। अगर सरकार ने दमन को इतने जोरशोर से न चलाया होता तो सम्भव था कि श्री रास बिहारी बोस द्वारा आयोजित स्वतंत्रता का यह महान् आन्दोलन सफल हो गया होता।

क्रान्तिकारियों के चरित्र पर एक दृष्टि

हमने गत अध्याय में गांधी युग के पहले होने वाली अनेक क्रान्तिकारक प्रवृत्तियों का संक्षिप्त इतिहास देने की चेष्टा की है। हम यह स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियां भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं थी। भारत सशस्त्र क्रान्ति के विरुद्ध नहीं है, पर गुप्त हत्याएँ, छुपे आक्रमण और डाके आदि कृत्यों को उसकी आत्मा स्वीकार नहीं कर सकती। देश की स्वाधीनता के लिये, देश को विदेशी सत्ता से मुक्त करने के लिये, अहिंसात्मक या सशस्त्र क्रान्ती करना उसके आदर्श के विरुद्ध नहीं, पर वह खुले रूप से होना चाहिये।

बङ्गाल क्रान्तिकारियों के देवता स्वरूप देश बन्धु सी० आर० दास महोदय (Mr. C. R. Dass) ने भी स्पष्ट रूप से कहा था कि:—

I have made it clear, and I do it once again that I am opposed on principle to political assassinations and violance in any shape or form. It is absolutely abhorrent to me and to my party. I consider it an obstacle to our political progress. It is also opposed to our religious teaching.

As a question of practical politics I feel certain that if a violence is to take root in the political life of our country, it will be the end of our dream of Swaraj for all time to come. I am, therefore, eager that this evil should not grow any further, and that this method should cease altogether as a political weapon in my country."

"अर्थात् मैंने यह स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया है और फिर भी यह प्रकट

करता हूँ कि मैं सिद्धान्त की दृष्टि से किसी भी तरह की राजनैतिक हत्याएँ और हिंसा के विरुद्ध हूँ। यह मेरे लिये और मेरे दल के लिये नितान्त अरुचिकर है। मैं इसे देश की प्रगति में बाधक समझता हूँ। यह हमारी धार्मिक शिक्षा के भी विरुद्ध है।

व्यावहारिक राजनीति के प्रश्न की दृष्टि से भी मेरा यह विश्वास है कि अगर हमारे देश के राजनैतिक जीवन में हिंसा ने जड़ जमा ली तो हमारे स्वराज्य के स्वप्न का सदा के लिये अंत हो जायगा। इस लिये मैं इस बात के लिये उत्सुक हूँ कि यह बुराई आगे न बढ़ने पावे और ऐसी कार्यवाही हमारे देश में राजनैतिक हथियार के रूप में काम में न ली जावे।"

महात्मा गांधी तो एक तरह से अहिंसा के अवतार ही थे। उन्होंने भी देश हित की दृष्टि से हिंसात्मक कार्यवाहियों को बन्द कर अहिंसात्मक युद्ध करने का आदेश दिया था। इतना होने पर भी हमें यह मुक्तकण्ठ से कहना पड़ेगा कि असामयिक साधनों के स्वीकार करने के बावजूद भी इन क्रान्तिकारियों के शरीर के परमाणु-परमाणु में देश सेवा और विदेशी सत्ता से अपने देश को मुक्त करने की तीव्र भावना भरी हुई थी। देश की स्वाधीनता उनके जीवन का मूल मन्त्र था और इसके लिये वे मृत्यु तक का आलिंगन करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। देश की पराधीनता से उनकी आत्मा घोर अशान्ति का अनुभव कर रही थी और भारत माता को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कर उसे संसार के प्रगतिशील और स्वाधीन राष्ट्रों की बराबरी में बिठाने की उनकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी। स्वार्थ और निजी अभिलाषा उनके पास फटकने भी न पाती थी। उनका केवल एक लक्ष्य था और वह था भारत की मुक्ति और भारत की स्वाधीनता। चाहे उन्होंने भूल भरे और असामयिक साधनों को स्वीकार किया हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष का भावी इतिहास उनके उद्देशों की महानता को, देश को स्वाधीन करने की उनकी महान्

अभिलाषा को, और उनके अनुपम त्याग को गौरवमय शब्दों में लिखेगा।

भारत की सेवा का फल

प्रथम महायुद्ध में भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य की तन, मन, धन से जैसी बहुमूल्य सहायता की, उसको खुद मित्र-राष्ट्रों के सेनापतियों और राजनीतिज्ञों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। भारतीय सेना ने फ्रान्स के रण स्थल में पहुँच कर जर्मनी की बढ़ती हुई गति को अपने अपूर्व शौर्य से रोका। भारतीय सेना इतनी बहादुरी से मैदान में लड़ी कि इङ्गलैंड और फ्रान्स के सेनापतियों और मुत्सद्दियों ने उसकी बड़ी तारीफ़ की। जनरल फ्रेन्च ने लिखा था:—

The Indian troops have fought with utmost steadfastness and gallantry, wherever they have been called upon." अर्थात् जब जब हिन्दुस्तानी सेनाओं का आव्हान किया गया, तब तब वह बड़ी मर्दुमी और बहादुरी से लड़ी। लॉर्ड हाल्डेन (Lord Haldane) ने कहा था:—

"Indian soldiers are fighting for the liberties of humanity as much as we ourselves. India has freely given her lives and treasure in humanities' great cause. We have been thrown together in this mighty struggle and have been made to realize our oneness, so producing relations between India and England which did not exist before. Our victory will be a victory for the Empire as a whole and could not fail to raise it."

अर्थात् हिन्दुस्तानी सिपाही मनुष्य जाति की स्वाधीनता के लिये

उसी प्रकार लड़ रहे हैं, जैसे कि हम। हिन्दुस्थान ने मुक्तहस्त से मनुष्य के इस महान् हित में अपना प्राण और धन दिया। हम इस महायुद्ध में एक साथ कन्धे से कन्धा मिलाये हुए हैं और इससे हमें एकता का बोध होने लगा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हिन्दुस्थान और इङ्गलैंड के बीच का सम्बन्ध इतना दृढ़ हो गया है जितना कि पहिले कभी नहीं हुआ था। हमारी विजय सारे साम्राज्य की विजय होगी। भारत के तत्कालिक नायब स्टेट सेक्रेटरी मि० चार्ल्स राबर्ट ने हाउस ऑफ कामन्स में व्याख्यान देते हुए हिन्दुस्तान की बहादुर सेना की बड़ी तारीफ़ की थी और हिन्दुस्थान को न्यायोचित आकांक्षाओं की पूर्ति का अभिवचन दिया था। युद्ध के समय इङ्गलैंड के प्रायः सब मुत्सद्दियों ने हिन्दुस्तान द्वारा की गई युद्ध की सेवाओं की बड़ी प्रशंसा की थी और इस आशय के आश्वासन दिये गये थे कि विजय होने पर हिन्दुस्तान में नवयुग का प्रारम्भ किया जायगा। हिन्दुस्थान की न्यायोचित आकाँक्षाओं को सफल करने की चेष्टाएँ की जायँगी। जिन उदार तत्वों के लिये ब्रिटिश राष्ट्र ने युद्ध में पैर रखा है, उन तत्वों का व्यवहार हिन्दुस्तान के लिये भी किया जायगा। हमारे पास स्थान नहीं है कि उन सबके वचनों को हम यहां दुहरावें। इङ्गलैंड के प्रायः सब समाचार पत्रों ने हिन्दुस्थान की युद्ध में की गई अमूल्य सेवाओं की तारीफ़ करते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य देने का ऐलान किया था। पर वे सब मीठी-मीठी बातें तब तक होती रहीं जब तक की हिन्दुस्तान की सहायता की आवश्यकता रही, जब तक कि युद्ध में विजय नहीं मिलगई। ज्योंही युद्ध में विजय मिली कि ब्रिटिश मुत्सद्दियों के दृष्टिबिन्दु में बड़ा अन्तर पड़ गया। मनुष्य जाति को स्वाधीन बनाने के बजाय मनुष्य जाति को गुलाम बनाने के विचार सोचे जाने लगे। कमज़ोर दिल प्रेसिडेन्ट विल-सन के चौदह तत्व ताक़ में रख दिये गये। पराधीन मनुष्य जाति ने यूरोप के इन कूट नीतिज्ञों (Diplomats) से बड़ा धोखा खाया। कई

स्वाधीन जातियों की स्वाधीनता नाश करने के प्रयत्न किये जाने लगे। स्वभाग्य-निर्णय तत्व केवल उन्हीं राष्ट्रों पर लगाया गया जो प्रबल थे या जिन पर यह तत्व लगाने से विजयी मित्रराष्ट्रों का स्वार्थ साधन होता था। शेष सब राष्ट्रों के भाग्य का फैसला इन विजयी गोरे राष्ट्रों ने अपने हाथ में रखा। दूसरों का "स्वभाग्य निर्णय" ये खुद करने लगे। संसार को इन से बड़ा धोखा हुआ। संसार की स्वाधीनता को ये पैरों-तले कुचलने लगे। तुर्की के टुकड़े टुकड़े कर डाले गये! मेसोपोटेमियां और अन्य कई देशों के ये, अपने आप बिना उन राष्ट्रों की सम्मति के, रक्षक बन बैठे। मिश्र और भी ज्यादा पराधीनता की बेड़ी में कस दिया गया। जर्मनी और आस्ट्रिया की जो दशा की गई वह सब पर प्रकट है। अब हिन्दुस्तान को लीजिये। युद्ध के समय हिन्दुस्थान को जो बड़े बड़े आश्वासन दिये गये, वे पानी के बुलबुले की तरह सिद्ध हुए। हिन्दुस्तान को रिफॉर्म का ज़रासा टुकड़ा देकर संतुष्ट करना चाहा पर हिन्दुस्थान पर इस का कुछ असर नहीं हुआ। क्योंकि हिन्दुस्थान ने देखा इस ऐक्ट में कुछ गुंजायश नहीं है। हाँ, इसमें थोड़े से अधिकार हिन्दुस्तानियों को दिये गये हैं पर वे नाकुछ के बराबर हैं। भारत सरकार के अधिकार और भी अधिक स्वतन्त्र हो गये इससे भारतवासियों को वे अधिकार नहीं मिले जिससे वे देश को कुछ व्यावहारिक लाभ पहुँचा सकें। इस ऐक्ट से भारत की आशाओं पर पानी फिर गया। उसे घोर रूप से निराश होना पड़ा। इस के लिये उसने विविध प्रकार की दमन नीतियों का अवलम्बन किया, जिसने भारत-वासियों के उठते हुए भावों को दबाने के लिये अमानुषिक उपायों का अवलम्बन किया। इससे कुछ नौजवानों का खून उबल पड़ा और कुछ विक्षिप्त मस्तिष्क नवयुवक उपद्रवी साधनों का अवलम्बन करने लगे। नौकरशाही जैसे जैसे अधिक कड़े उपायों का अवलम्बन करने लगी, वैसे वैसे ये भाव ज़ोर पकड़ने लगे। भारत की नौकरशाही ने इन उपद्रवों के मूल कारण पर विचार न कर दमननीति से इन्हें दबाना चाहा। पर उसे

इसमें यथेष्ट सफलता प्राप्त न हुई। भारत सरकार ने सैंकड़ों नवयुवकों को 'डिफेन्स ऑफ् इण्डिया ऐक्ट' का सहारा लेकर नज़रबंद किये। इतनाही नहीं उसने जस्टिस रॉलेट की अध्यक्षता में एक कमीशन इसलिये बैठाया कि वह भारत के इन उपद्रवों की जाँच करे और उन्हें मिटाने के जोरदार उपायों की योजना प्रस्तुत करे। रौलेट कमीशन ने खुलेतौर से जाँच करने के बजाय सब जाँच गुप्त रूप से की। उसने अपनी रिपोर्ट और सुझाव पेश किये। ये सुझाव नागरिक स्वाधीनता की जड़ काटने वाले थे। इस पर भारत में बड़ा आन्दोलन उठा। भारत समझ गया कि रॉलेट कमीशन की इन सूचनाओं के अनुसार यदि ऐक्ट बन जायगा तो वह भारत की नागरिक स्वाधीनता का बड़ा घातक होगा। देश में आग भड़क उठी। दिल्ली कांग्रेस में माननीय पं० मदनमोहन मालवीयजी ने अपने भाषण में सरकार को सावधान किया कि वह रॉलेट कमीशन की सूचना के अनुसार एक्ट बनाने के खतरे से बचे। कई समाजों में प्रस्ताव पास किये गये और समाचार पत्रों में बड़े ज़ोर से लिखा गया कि रॉलेट कमिटी की रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के आधार पर लोगों की बची खुची स्वतन्त्रता छीनने के लिये क़ानून बनाना ठीक न होगा। स्वर्गीय मिस्टर दादा साहिब खापर्डे ने सन् १९१८ के सितम्बर में व्यवस्थापिका सभा में प्रस्ताव किया कि अभी रौलेट कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार काम न किया जाय और उसमें जो बातें दी हुई हैं उनकी तथा खुफ़िया पुलिस की कार्रवाइयों की जाँच के लिये सरकारी और गैर सरकारी मेम्बरों की एक कमेटी बनाई जावे। पर खापर्डे महोदय का यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। इसके पहिले भी खापर्डे महोदय ने कौंसिल में यह प्रश्न किया था कि रौलेट कमेटी के सामने गवाही देने वालों के नाम बतलाये जावें और उसकी रिपोर्ट का जो परिशिष्ट प्रकाशित नहीं किया गया है, वह कौंसिल के मेम्बरों को दिखाया जाय, पर सरकार की ओर से इसका साफ़ इन्कारी जवाब मिला। खुशी की बात है कि कौंसिल के कई मॉडरेट मेम्बरों ने

भी इस प्रस्ताव को असामयिक बतलाया था। सारे देश में रोलेट कमिटी की सूचनाओं का एक स्वर से विरोध हुआ। चारों ओर से इसके विरोध की आवाज़ सुनाई देती थी। पर भारत की स्वेच्छाचारी नौकरशाही ने लोकमत की रत्तीभर पर्वाह न कर रोलेट कमिटी की सिफ़ारिशों के आधार पर क़ानून बनाने का निश्चय कर लिया और उसी के फलस्वरूप सरकार ने दो बिल तैयार कर प्रकाशित किये। सन् १६१६ की ७ फ़रवरी को ये दोनों बिल कौंसिल में पेश किये गये।

कौंसिल में सब के सब निर्वाचित भारतीय सदस्यों ने एक स्वर से इनका विरोध किया। बाबू सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, सर गंगाधर चिटनवीस, डॉक्टर तेज़ बहादुर सप्रू, मि० शफ़ी जैसे सरकार के हिमायती और नर्म-दल के नेताओं ने भी इस बिल का घोर विरोध किया। माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय और माननीय मि० श्री निवास शास्त्री ने तो इस बिल की इतनी धज्जियाँ उड़ाई कि पूछिये मत। उन्होंने बड़ी योग्यता और दृढ़ता के साथ इसके विनाशक रूप को दर्शाकर इसकी अनुपयोगिता सिद्ध की। उन्होंने दिखलाया कि भारत की नागरिक स्वाधीनता किस प्रकार इन बिलों द्वारा नष्ट की गई है और किस प्रकार इन बिलों के क़ानून के रूप में परिणित हो जाने से भले और निर्दोष आदमियों तक को आफ़त में गिरने का अंदेशा रहेगा। उन्होंने यह दिखलाया कि इस वक्त बिल के पास करने की कोई आवश्यकता नहीं। उन्होंने साफ़ सङ्केत कर दिया था कि इन बिलों के पास हो जाने से हिन्दुस्तान मे भीषण अग्निज्वाला चेत उठेगी, जिसे बुझाना मुश्किल हो जायगा। पर नौकरशाही ने चुने हुए प्रजा प्रतिनिधियों की राय की अवहेलना कर सरकारी सदस्यों की अधिक सम्मतियाँ प्राप्त कर उन बिलों को क़ानून का रूप दे दिया। इस पर देश में सनसनी छा गई। देश को मालूम हो गया कि उसी के राज्य कारोबार में उसके पुत्रों की राय की कोई क़दर नहीं है। इस सनसनी में महान् तेजस्वी नेता महात्मा गाँधी ने प्रकट किया कि

रॉलेट बिल अन्यायपूर्ण है, न्याय और स्वाधीनता का हरण करने वाला है; लोगों के प्रारम्भिक स्वत्वों का, जिन पर कि जाति की रक्षा अवलम्बित है, घातक है। इसलिये अगर इन बिलों ने क़ानून का रूप धारण कर लिया तो हम इन क़ानूनों को मानने से इन्कार करेंगे और इनके अतिरिक्त आगे मुक़र्रर की जाने वाली कमेटी के बतलाये हुए अन्य क़ानूनों की भी शान्ति के साथ अवज्ञा करेंगे। हम विश्वास से कहते हैं कि इस युद्ध में हम सत्य का अनुकरण करेंगे और किसी मनुष्य के जान माल और जिस्म पर इज़ा पहुँचाने से बरी रहेंगे।

गाँधी-युग का आरम्भ

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गाँधी का प्रवेश एक नवीन युग का प्रारम्भ था। महात्मा गाँधी का जीवन सत्य और अहिंसा के महान् तत्वों पर स्थित था। उन्होंने सकल मानवजाति के कल्याण को दृष्टि में रखकर संसार की राजनीति और समाजनीति के सामने एक ऐसा दृष्टिकोण रखा था, जिससे मनुष्य जाति अखण्ड सुख और विश्वबन्धुत्व के दिव्य फलों का आस्वादन कर सके। सत्य और अहिंसा के दिव्य तत्वों पर हमारे प्राचीन ऋषियों ने समाज नीति का पाया रक्खा था। महात्मा गाँधी ने भौतिकवाद में डूबे हुए इस आधुनिक संसार के सामने एक ऐसा अलौकिक प्रकाश रखा जो मानव जाति को उन महान् उद्देश्यों की ओर पहुँचा सके जिसके लिये वह सदियों से तड़फ रही है।

आधुनिक संसार के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में इस समय घोर संघर्ष चल रहे हैं और इससे मानवीय आत्मा में जितनी घोर अशान्ति व निराशा छाई हुई है उसके कारणों को महात्मा गाँधी ने अपने अन्तर-दृष्टि से समझ कर, संसार के सामने सत्य और अहिंसा का ऐसा व्यापक दृष्टिकोण रखा जिससे वह शान्ति का अनुभव कर सके और संसार में विश्वबन्धुत्व का सुखद साम्राज्य छा जावे। अहिंसा महात्मा गाँधी के शब्दों में, विश्व को सर्वोत्कृष्ट बल है। वह एक आत्मिक शक्ति है,

या यों कहिये, कि मानवीय आत्मा में जो ईश्वरीय तत्व है उसका वह प्रकाश है। जिस आत्मा में अहिंसा का प्रकाश रहता है वहाँ से काम क्रोध लोभ आदि दुर्गुण दूर भाग जाते हैं। अहिंसा में वह विद्युत् शक्ति है जो शत्रुओं को मित्र बना देती है। यह उनका दक्षिण अफ्रिका का अनुभव था। जनरल स्मिथ उनके सब से कड़े विरोधी और समालोचक थे, बाद में वे उनके परम मित्र हो गये।

अन्यत्र महात्मा गाँधी लिखते हैं:—

"जैसा मैं समझता हूँ, अहिंसा संसार में सब से शक्तिशाली बल है। वह संसार का सर्वोत्कृष्ट नियम (Law) है। मेरे आधी सदी के अनुभव में, मुझे कभी ऐसी परिस्थिति का सामना न करना पड़ा जब मैंने अपने आपको निस्सहाय अनुभव किया हो या किसी भी परिस्थिति को सुलझाने में मैंने अपने आपको असमर्थ पाया हो।"

"मैं गत पचास वर्षों से बिलकुल वैज्ञानिक नाप तोल से अहिंसा और उसकी सम्भावनाओं का व्यवहार कर रहा हूँ। मैंने जीवन के हरएक पहलू में, चाहे वह घर सम्बन्धी हो, संस्था सम्बन्धी हो, या राजनैतिक या आर्थिक हो, इसका प्रयोग किया है। मुझे एक भी उदाहरण ऐसा मालूम नहीं है जिसमें यह फेल हुई हो। अगर इसमें कहीं असफलता हुई होगी तो उसका कारण मेरी अपूर्णताएं हैं। मैं अपने लिये पूर्णता का दावा नहीं करता, पर यह दावा अवश्य करता हूँ कि मैं सत्य का एक उत्सुक शोधक हूँ और यह सत्य ही ईश्वर का दूसरा नाम है। इस सत्य शोधन में मुझे अहिंसा का आविष्कार मिला। अब मेरे जीवन का ध्येय इस महान् तत्व का प्रचार करना है। इस ध्येय को चालू रखने के सिवाय मेरे जीवन में और कोई रस नहीं है।"

"मैं केवल स्वप्नवादी (Visionary) नहीं हूँ। मैं यह दावा करता हूँ कि मैं एक व्यावहारिक आदर्शवादी हूँ। अहिंसा धर्म केवल

ऋषि-मुनियों के लिये ही नहीं है। यह साधारण लोगों के लिये भी है। अहिंसा हमारी आत्मा का नियम है जैसा कि हिंसा हमारी पाशविक वृत्ति का नियम है। मनुष्य की प्रतिष्ठा इस बात में है कि वह उच्च नियम का और आत्मिक शक्ति का आज्ञानुवर्ती रहे।"

"इसी उद्देश्य से मैंने भारत के सामने आत्म-त्याग का प्राचीन नियम रखा है। सत्याग्रह और उसकी असहयोग और भद्र अवज्ञा (Civil Resistance) नाम की शाखाएँ आत्म-त्याग के नये नाम हैं। हमारे ऋषियों ने, जिन्होंने हिंसा के मध्य से अहिंसा के नियम का आविष्कार किया, न्यूटन से अधिक प्रतिभाशाली थे। वे वेलिंगटन से अधिक महान् योद्धा थे। शस्त्रों का उपयोग जानते हुए भी उन्होंने उनके निकम्मेपन को जान लिया था और जर्जरित संसार को उन्होंने यह सिखलाया था कि उसकी मुक्ति हिंसा में नहीं, पर अहिंसा के महान् तत्व में है।"

"मैं चाहता हूँ कि भारतवर्ष इस बात को पहचाने कि उसमें आत्मा है, जिसका नाश नहीं हो सकता और जो प्रत्येक भौतिक निर्बलता पर विजय प्राप्त करेगी और सारे संसार के भौतिक संगठन का सफलता-पूर्वक मुकाबला कर सकेगी।"

"अगर भारतवर्ष ने तलवार के सिद्धान्त (Doctrine of Sword) को अपनाया तो उसे क्षणिक सफलता हो सकती है। पर उस हालत में भारतवर्ष मेरे हृदय का अभिमान न रहेगा। मैं भारतवर्ष से प्रणयबद्ध हूँ क्योंकि मेरा सर्वस्व ही वह है। मेरा यह परम विश्वास है कि भारतवर्ष के पास संसार के लिये मिशन (Mission) है। उसे यूरोप का अन्धानुकरण न करना चाहिये। अगर भारतवर्ष ने तलवार के सिद्धान्त को स्वीकार किया तो मेरे लिये वह परीक्षा की घड़ी होगी। मुझे आशा है मैं इस परीक्षा में खरा उतरूंगा। मेरे धर्म की भौगोलिक सीमा नहीं है।"

"मेरे सार्वजनिक जीवन में कई ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि बदला लेने का सामर्थ्य रखते हुए भी मैंने बदला लेने से अपने आपको दूर रखा और अपने दूसरे मित्रों को भी ऐसा ही करने की सलाह दी। मेरा जीवन इसी सिद्धान्त के प्रचार करने के लिये है। मैं इसी महान् सिद्धान्त को जोरेस्टर, महावीर, डेनियल, जेसस, महम्मद, नानक जैसे संसार के सबसे महान् गुरुओं में पाता हूँ।"

"अहिंसा मेरे विश्वास की प्रथम धारा है और वह मेरे धर्म की अन्तिम धारा रहेगी। मैं जान बूझ कर किसी भी जीवित प्राणी को हानि नहीं पहुँचा सकता। अपने मानवी बन्धुओं को हानि पहुँचाने का तो मुझे ख़याल भी नहीं आ सकता, चाहे वे मुझे बड़ी से बड़ी हानि पहुँचावे।"

"मेरा यह अटल विश्वास है कि भारतवर्ष मानव जाति को अहिंसा का सन्देश देगा, चाहे इसकी सफलता में सदियां लग जावें। पर जहां तक मैं समझ पाया हूँ, इस महान् उद्देश की पूर्ति में वह संसार के अन्य सब देशों से प्रथम ही रहेगा।"

"अहिंसा में तब तक जीवित विश्वास नहीं हो सकता जब तक कि ईश्वर पर जीवित विश्वास (Living Faith) न हो। अहिंसक मनुष्य बिना ईश्वर कृपा व शक्ति के कुछ नहीं कर सकता। इसके बिना वह क्रोध, भय और बदले की भावनाओं से मुक्त होकर मरने का साहस नहीं कर सकता।"

"इस प्रकार का साहस मनुष्य को इस विश्वास से प्राप्त होता है कि ईश्वर सबके अन्तः करण में बैठा है और ईश्वर की उपस्थिति में भय ठहर नहीं सकता। ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता और सर्व व्यापकता का ज्ञान हमें अपने कथित विरोधियों के जीवन के प्राणों का आदर करने की सूचना देता है।"

"मेरी महत्वाकांक्षायें नियमित हैं। ईश्वर ने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है कि मैं संसार को अहिंसा के मार्ग पर चला सकूं। पर मेरा यह विश्वास है कि उस परमात्मा ने मुझे भारतवर्ष के सामने अहिंसा का सिद्धान्त रखने के लिये साधन बनाया है। अब तक इस सम्बन्ध में जितनी प्रगति हुई है वह महान् है। पर अब भी बहुत कुछ करने को बाकी है।"

भीरुता और अहिंसा

महात्मा गांधी के अहिंसा सम्बन्धी विचारों का हमने संक्षिप्त में ऊपर दिग्दर्शन कराया है। उनकी राजनीति की नींव अहिंसा के महान् तत्त्व पर लगी हुई है। पर महात्माजी की अहिंसा वीरों की अहिंसा है। वह कायरों की अहिंसा नहीं। कायरों की अहिंसा भीरुता का पर्यायवाची शब्द है। भीरुता के स्थान पर, अपने अधिकारों की रक्षा के लिये, हिंसा का आश्रय लेना महात्माजी कहीं अच्छा समझते थे। हम इस सम्बन्ध में महात्माजी के विचार उद्धृत करते हैं।

"सारी जाति को नपुंसक बनाने के बजाय, मैं हिंसा (Violence) की जोखिम लेना हजार दर्जे अधिक अच्छा समझता हूँ। मेरा यह विश्वास है कि जहां मुझे भीरुता और हिंसा के बीच में चुनाव करना पड़ेगा तो मैं हिंसा के लिये सलाह दूँगा। भारतवर्ष निस्सहाय की भाँति अगर अपने अपमान को कायरता से देखता रहे तो इसके बजाय मैं उसे अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये शस्त्र प्रयोग अच्छा समझूँगा। पर, हां, मैं अहिंसा को हिंसा के मुकाबले में अनन्त गुना उच्च मानता हूँ।"

मेरी अहिंसा यह नहीं कहती कि लोग अपने प्रिय जनों को अरक्षित छोड़ कर भय के सामने कायर की तरह भग जावें। मैं कायर मनुष्य को अहिंसा का उसी प्रकार उपदेश नहीं दे सकता जिस प्रकार अन्धे पुरुष को आरोग्यशाली दृश्य देखने का दृश्य नहीं दे सकता। अहिंसा वीरत्व

का सबसे ऊँचा शिखर है। जिन लोगों ने हिंसा की पाठशाला में शिक्षा पाई है, उनके सामने अहिंसा की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने में मुझे कतई कठिनता नहीं होती। कई वर्षों तक मैं कायर रहा और तब मैंने हिंसा को अपने हृदय में आश्रय दिया। जबसे मैंने कायरता का त्याग किया है तभी से मैं अहिंसा की कीमत करने लगा हूँ।"

"अहिंसा अधिक से अधिक आत्मशुद्धि चाहती है।"

"अहिंसा बिना किसी अपवाद के हिंसा से उत्कृष्ट है। अहिंसक मनुष्य के पास जितनी शक्ति रहती है, वह हिंसक मनुष्य से हमेशा महान् रहती है।"

"अहिंसा में पराजय नाम की कोई वस्तु नहीं रहती। इसके विपरीत हिंसा का अन्तिम फल पराजय होती है।"

"अहिंसा का अन्तिम परिणाम निश्चयात्मक विजय है।"

महात्मा गांधी और सत्याग्रह

महात्मा गांधी ने अन्याय और अत्याचार के खिलाफ़ लड़ने के लिये अमोघ अहिंसात्मक युद्ध-कला का आविष्कार किया। उसका नाम सत्याग्रह है। सत्याग्रह का अर्थ सत्य के लिये आग्रह करना है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि सत्य पथ को लेकर अहिंसात्मक साधनों के द्वारा अन्याय और अत्याचार का विरोध करना ही सत्याग्रह है। महात्मा गांधी ने इस अहिंसात्मक अमोघ शस्त्र को मानव जाति के सामने रक्खा, और उससे यह अपील की कि वह पशुबल के बजाय इस महान् शस्त्र को अपनावे, और उसके द्वारा वह अन्याय का विरोध कर संसार में सत्य और प्रेम का साम्राज्य स्थापित करे। अब हम सत्याग्रह के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के विचार प्रस्तुत करना चाहते हैं।

"सत्याग्रह एक बहुधारी बाढ़ी तलवार है, जो इसका उपयोग

करता है उसका भी कल्याण होता है और जिसके खिलाफ़ इसका उपयोग किया जाता है वह भी कल्याण का भागी होता है। बिना खून की एक बून्द बहाये यह दूरवर्ती परिणामों को पैदा करती है। इस तलवार को ज़ङ्ग नहीं लगता और न इसे कोई चुरा सकता है।"

"जब सत्य के साथ अहिंसा का संयोग हो जाय तो आप संसार को अपने पैरों तले झुका सकते हैं। असल में सत्याग्रह और कुछ नहीं है, यह केवल अपने राजनैतिक और राष्ट्रीय जीवन में सत्य और विनयशीलता का प्रवेश है।"

"सत्याग्रही की तब तक विजय नहीं हो सकती जब तक हृदय में दुर्भावना का वास है, जो अपने आपको निर्बल अनुभव करते हैं वे प्रेम के लिये अयोग्य हैं। हम हर प्रातः काल यह निश्चय करें:—"मैं इस पृथ्वी पर किसी से भय न खाऊँगा। मैं सिर्फ ईश्वर से डरूँगा, मैं किसी के प्रति दुर्भावना न रखूँगा। मैं किसी के अन्याय के प्रति सिर न झुकाऊँगा। मैं सत्य के द्वारा असत्य पर विजय प्राप्त करूँगा। असत्य का विरोध करने में मैं सब प्रकार के कष्ट सहन करने को प्रस्तुत रहूँगा।"

"सत्याग्रह पूर्ण आत्म शोधन, सर्वोपरि विनय—शीलता, सर्वाधिक सहनशीलता और अत्युज्वल विश्वास का पर्य्यायवाची शब्द है।"

"सत्याग्रह सत्य की खोज और सत्य पर पहुँचने का निश्चय है।"

"यह एक ऐसा बल है जो नीरवता और दिखने में धीमी गति से काम करता है। पर वास्तव में संसार में ऐसा कोई बल नहीं है जो इतना प्रत्यक्ष और त्वरित काम करने वाला हो।"

"सत्याग्रह सीधी कार्य्यवाही का शक्ति—शाली साधन है। जब सत्याग्रही सब साधनों को अजमा चुके, तब उसे सत्याग्रह का अवलम्बन करना चाहिये।"

"सत्याग्रही को चाहिये कि वह जिस प्रकार लड़ाई के लिये तैयार

रहे उसी प्रकार वह सुलह और शान्ति लिये भी उतना ही उत्सुक रहे। सुलह के किसी भी सम्मान पूर्ण अवसर का उसे आह्वान करना चाहिये।"

"सत्याग्रही की संहिता में पशुबल के सामने सिर झुकाने का कोई आदेश नहीं है।"

"सत्याग्रह सौम्य है। वह किसी को चोट नहीं पहुँचाता। उसे क्रोध और द्वेष से दूर रहना चाहिये।"

"सत्याग्रही को सत्य और अहिंसा धर्म पर विश्वास होना चाहिये। उसे मानवी प्रकृति की श्रेष्ठता में भरोसा होना चाहिये।"

"सत्याग्रह में मक्कारी, धोकेबाजी और असत्य को स्थान न होना चाहिये। आज संसार में मक्कारी और असत्य की बोलबाला है। अगर मैं इनकी उपेक्षा कर चुप चाप बैठा रहूँ तो ईश्वर मुझे इसके लिये जवाब तलब करेगा।"

"सत्याग्रह के लिये पहली आवश्यक शर्त यह है कि सत्याग्रह करने वालों को इस बात का पूरा २ विश्वास हो जाना चाहिये कि क्या सत्याग्रहों के द्वारा या सर्वसाधारण जनता के द्वारा किसी भी रूप में हिंसा का प्रदर्शन न हो।"

"सत्याग्रह हिंसामय वातावरण में नहीं पनप सकता। यह कहना कोई अर्थ नहीं रखता कि हिंसात्मक कार्यवाही की उत्तेजना राज्य या किसी दूसरे एजन्सियों के द्वारा हुई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सत्याग्रही के साधन समाप्त हो गये हैं। उसे सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा के अतिरिक्त दूसरे साधनों को खोजना चाहिये।"

"सत्याग्रह एक पद्धति है जिससे कष्ट सहन द्वारा अपने अधिकार प्राप्त किये जाते हैं। सशस्त्र विरोध के यह प्रतिकूल है। अगर मैं कोई ऐसा काम करने से इन्कार करता हूं, जो मेरी अन्तरात्मा के खिलाफ है

तो मैं इसमें अपने आत्म बल का उपयोग करता हूं। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि सरकार ने कोई ऐसा क़ानून पास किया है, जो मुझ पर लागू है पर जिसे मैं पसन्द नहीं करता। अगर ऐसे क़ानून को रद्द कराने के लिये हिंसा का उपयोग कर मैं सरकार पर दबाव डालता हूं, तो कहना होगा कि मैं ऐसे बल का उपयोग करता हूं जिसे शरीर-बल कहते हैं। इसके विपरीत अगर मैं उस क़ानून को न मानता हूं, और क़ानून भङ्ग के लिये हर प्रकार की सज़ा भुगतने के लिये तैयार रहता हूं, तो कहना होगा कि मैं अपने आत्मबल का उपयोग करता हूं। इस प्रकार का कार्य्य आत्म-त्याग कहलाता है।"

"यह बात हर एक को स्वीकार करनी पड़ेगी कि, आत्म-बलिदान दूसरों के बलिदान की अपेक्षा अनन्त गुना महान् है। इसके अतिरिक्त इस बल का ऐसे कार्य्य में उपयोग किया जाय जो अन्याय पूर्ण है, तो इसमें वही आदमी कष्ट भोगेगा जो इसका उपयोग करता है। वह अपनी भूलों द्वारा दूसरों को कष्ट न पहुँचायेगा।"

"मैं अहिंसा को प्रेम की भावात्मक स्थिति समझता हूं, जिसमें अप-कार का बदला भलाई से दिया जाता है।"

"मैं अहिंसा से तरबतर होना चाहता हूं। अहिंसा और सत्य मेरे शरीर के दो फेंफड़े हैं। इनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। मैं हर क्षण अधिक स्पष्टता के साथ अहिंसा की महान् शक्ति को देखता हूं।"

"मैं गत तीस वर्षों से सत्याग्रह का उपदेश और व्यवहार कर रहा हूं। सत्याग्रह के सिद्धान्त, जैसा कि अब मैं जानता हूं, क्रमशः विकाश कर रहे हैं। सत्याग्रह शब्द को दक्षिण अफ्रिका में मैंने गढ़ा था, उसका मूल अर्थ सत्य के लिये आग्रह करना है। इसे दूसरे शब्दों में सत्य-बल कह सकते हैं। मैंने इसे प्रेम-बल या आत्म-बल ही कहा है। सत्याग्रह के प्रयोग में मुझे यह मालूम हुआ है कि सत्य के अनुकरण करने में हिंसा का कोई स्थान ही नहीं है। इस सिद्धान्त का अर्थ सत्य का समर्थन करना

है, पर यह कार्य्य अपने विरोधी को कष्ट पहुँचा कर नहीं पर अपने आपको कष्ट पहुँचा कर करना चाहिये। सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध में ज़मीन आसमान का अन्तर है। जहां निष्क्रिय प्रतिरोध निर्बल का हथियार हैं, वहां सत्याग्रह सबसे अधिक बलवान का हथियार है। सत्याग्रह में हिंसा का, चाहे व किसी रूप में हो, स्थान नहीं है।"

"डेनियल ने मेडेज और पर्शियन के क़ानूनों को न माना, क्योंकि यह कानून उसकी अन्तरात्मा के ख़िलाफ़ थे और इस अवज्ञा के लिए उसने शान्तिपूर्वक दण्ड सहन किया। इसके लिये यह कहा जायगा कि उसने सर्वाधिक शुद्ध रूप में सत्याग्रह किया। सॉक्रेटिस ने ग्रीक युवकों को सत्य का उपदेश देने में मुँह न मोड़ा, और इसके लिये उसने बड़ी वीरता पूर्वक मृत्यु दण्ड सहन किया। इसलिये वह इस विषय में सत्याग्रही था; प्रहलाद ने अपने पिता की आज्ञा की उपेक्षा की क्योंकि वह उसे अपनी अन्तरात्मा के खिलाफ़ समझता था। उसने बिना चूँ चाँ किये प्रसन्नता पूर्वक उन सब यातनाओं को सहन किया जो उसके पिता ने दीं। इस अर्थ में वह सत्याग्रही था। मीराँबाई ने अपनी अन्तरात्मा की आज्ञा के अनुसार काम कर अपने पति को नाराज़ किया इसके लिये उसे बड़े २ अपमान और कष्ट सहने पड़े, पर वह अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न रही। अतएव मीराँबाई एक आदर्श सत्याग्रही कही जायगी। यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि न तो डेनियल न सॉक्रेटिस न प्रहलाद न मीराँ बाई उन लोगों के प्रति कोई दुर्भावना रखती थीं, जिन्होंने उन्हें कष्ट पहुँचाया। डेनियल और सॉक्रेटिस अपने राज्य के आदर्श नागरिक माने जाते हैं और प्रहलाद एक आदर्श पुत्र और मीराँ बाई एक आदर्श पत्नी मानी जाती हैं।"

प्रेम-तत्व

प्रेम का नियम-और कुछ नहीं है वह सत्य का नियम है। जहां सत्य नहीं है वहां प्रेम का अस्तित्व नहीं हो सकता। सत्य रहित प्रेम मोह

होता है। दूसरे देशों को हानि पहुंचा कर अपने देश पर प्रेम करना, किसी युवक का युवती पर प्रेम करना या अपने अज्ञान पिताओं का अपने पुत्रों पर अंध प्रेम करना आदि बातें मोह में गिनी जाती हैं। प्रेम सब प्रकार की पशु प्रवृत्तियों से परे है, उसमें पक्षपात नहीं। वह एक ऐसा सिक्का है जिसके एक तरफ तुम्हें प्रेम दिखाई देगा और दूसरी तरफ सत्य। यह एक ऐसा सिक्का है जो हर जगह चलता है और जिसका मूल्य बताना नहीं जा सकता।

गांधीजी और स्वराज्य

"स्वराज्य से मेरा मतलब उस राज्य से है जिसमें जनमत द्वारा सर्व जनहित के लिये शासन संचालित किया जाय।"

"बसन्त ऋतु की शोभा हर एक वृक्ष पर दिखलाई देती है। उक्त ऋतु के आने पर सारी पृथ्वी यौवन की ताज़गी से भर जाती है। इसी प्रकार जब स्वराज्य का भाव समाज में वास्तविक रूप से ओत प्रोत हो जाता है, तो जीवन के हर विभाग में नवजीवन और शक्ति-आ जाती है। चारों ओर जीवन का प्रवाह बहने लगता है। राष्ट्र सेवक अपनी अपनी योग्यता के अनुसार विभिन्न प्रकार की सार्वजनिक सेवाओं में जुटे हुये दिखलाई देते हैं।"

"स्वराज्य एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र को, किसी भी हालत में, दान द्वारा नहीं मिल सकता। यह राष्ट्र के सर्वोत्कृष्ट रक्त के द्वारा प्राप्त किया जाता है। स्वराज्य अपरिमित कष्ट सहन और सतत परिश्रमका फल है। मैं स्वराज्य का अर्थ यह समझता हूं कि हमारे देश के क्षुद्र से क्षुद्र मनुष्य स्वातंत्र्य प्राप्त करें। मैं केवल मात्र अंग्रेजों के बन्धन से भारतवर्ष को मुक्त करने ही में दिलचस्पी नहीं रखता, मैं हर प्रकार के बन्धन से भारतवर्ष को मुक्त करना चाहता हूं।"

"मेरा स्वराज्य हमारी सभ्यता की प्रतिभा को अक्षुण्ण बनाये रखेगा,

में बहुत सी नई चीज़ों को अपनाना चाहता हूं, पर उन सबकी स्थिति भारतीय धरातल पर होना चाहिये। मैं पश्चिम से उस हालत में उधार लेने के लिये तैयार हूं, जब कि मेरा यह विश्वास हो जाय कि मैं उनकी रकम को ब्याज समेत लौटा दूंगा।"

'स्वराज्य की यात्रा बड़ा कष्ट कर चढ़ाव (Painful Climb) है। इसमें प्रत्येक विगत पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसमें विशाल संगठन शक्ति की जरूरत है। इसमें ग्रामीणों की सेवा के लिये ग्रामों में घुसने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि स्वराज्य में राष्ट्रीय शिक्षा अर्थात् जन समूह की शिक्षा और जनता में राष्ट्रीय भावना की जागृति की परम आवश्यकता है। यह कार्य्य जादू की छड़ी से शीघ्र सम्पन्न नहीं हो सकता। इसका धीरे २ विकास होता है। खूँनी क्रान्ति इस कार्य्य को नहीं कर सकती।"

"आत्म-शासन (Self Government) का अर्थ है शासन तंत्र (Government Control) से स्वतंत्र होने का निरंतर प्रयास, फिर चाहे यह शासन तन्त्र विदेशी हो या राष्ट्रीय हो।"

"मेरा स्वराज्य दूसरों की हत्या का परिणाम न होगा, वरन् वह आत्मत्याग का स्वेच्छापूर्वक कृत्य होगा। मेरा स्वराज्य अधिकारों का खून खराबी द्वारा अपहरण न होगा, पर उसमें अधिकार प्राप्ति कर्त्तव्य की सुन्दर और स्वाभाविक कृत्यों द्वारा होगी। इसमें चैतन्य प्रभु के ढङ्ग की चेतना होगी। मैं जानता हूं कि इस कार्य्य की सिद्धि के लिये हमें नवयुवकों और नवयुवतियों के ऐसे वर्ग की आवश्यकता है जिनका ध्येय और कुछ नहीं, केवल कार्य्य और राष्ट्र के लिये सतत् कार्य्य है।"

जब तक आत्मत्यागी और दृढ़ प्रतिज्ञ कार्य्य कर्त्ताओं की बहुत बड़ी फ़ौज़ तैय्यार न होगी तब तक मेरी राय में जन समूह की वास्तविक प्रगति होना असम्भव है। इस प्रगति के बिना स्वराज्य नाम की कोई

वस्तु सम्पन्न नहीं हो सकती। स्वराज्य की ओर हमारी उतनी ही अधिक प्रगति होगी जितने अधिक हमें ऐसे कार्य्यकर्त्ता प्राप्त होंगे जो ग़रीबों के हित के लिये अपना सारा का सारा सर्वस्व बलिदान कर देने के लिये प्रस्तुत होंगे।"

"अगर स्वराज्य हमें सभ्य नहीं बना सकता है, वह हमारी सभ्यता को शुद्ध और सुदृढ़ नहीं कर सकता है तो वह किसी काम का नहीं। हमारी सभ्यता का मूल तत्व यह है कि हम अपने तमाम कामों में, चाहे फिर वे सार्वजनिक हों या निजी हों, नैतिकता को सर्व प्रधान आसन दें।"

"मेरे स्वप्न का स्वराज्य जाति पाँति और धर्म–विभेद को नहीं मानता। न वह पढ़े लिखे या धनिक लोगों का ही एकाधिकार (Monopoly) है। स्वराज्य सबके लिये होना चाहिये, जिसमें पूर्व कथित मनुष्यों के अतिरिक्त लाखों करोड़ों भूखों मरते हुये निःसहाय दीन हीन और अन्धे लूलों के हितों का भी समावेश होना चाहिये।"

"राम राज्य से मेरा मतलब हिन्दू राज्य नहीं है। उससे मेरा मतलब ईश्वरीय राज्य से है। मेरे लिये राम और रहीम एक ही ईश्वर के नाम हैं। मैं और किसी ईश्वर को नहीं मानता। मैं केवल सत्य और धर्म के ईश्वर को मानता हूँ। मेरी कल्पना के राम, चाहे पृथ्वी पर रहे हों या न रहे हों पर राम राज्य का प्राचीन आदर्श निश्चय ही सच्चे जनतंत्र का आदर्श है जिसमें क्षुद्र से क्षुद्र नागरिक शीघ्र से शीघ्र बिना किसी खर्चीली कार्य्यवाही के न्याय प्राप्त कर सकता था। रामायण के कवि ने लिखा है कि कुत्ते तक राम राज्य में न्याय पाते थे।"

महात्मा गान्धी और जनतंत्र

अनुशासित और संस्कृत जनतंत्र संसार में सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। पक्षपात पूर्ण, अज्ञानता युक्त और भ्रम पूर्ण जन तंत्र देश को अव्यवस्था

और अन्धकार में डाल देता है।"

"मेरी कल्पना का जनतंत्र अपनी इच्छा को दूसरों पर भौतिक बल से लादने का पूर्णतया विरोधी है।"

"आतंकवाद (Terrorism) में जनतंत्र की भावना नहीं पनप सकती। कुछ दृष्टियों से जनता का आतंकवाद सरकार के आतंकवाद की अपेक्षा जनतंत्र की भावना का विशेष विरोधी है, क्योंकि सरकार का आतंकवाद जहां प्रजातंत्र की भावना को दृढ़ करता है, वहां जन समूह का आतंकवाद जनतंत्र को मार डालता है। सच्चा जनतंत्र वादी है जो विशुद्ध अहिंसात्मक साधनों के द्वारा अपनी, अपने देश की और अंत में सारी मनुष्य जाति की स्वतंत्रता की रक्षा करता है।"

"जब लोगों के हाथ में राजनैतिक सत्ता आ जाती है तब लोगों की स्वतंत्रता में होनेवाली बाधा न्यूनतम हो जाती है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि जो राष्ट्र राज्य की बाधा बिना अपना काम सुचारु रूप से भली प्रकार चलाता है वही सच्चे अर्थ में जनतांत्रिक राष्ट्र है। जहां ऐसी परिस्थितियों का अभाव है, वहां का शासन नाम मात्र के लिये जन तंत्रात्मक कहा जा सकता है। मैं उसी हालत में जनतंत्री होने का दावा कर सकता हूँ, जब मैं मनुष्य जाति के गरीब से गरीब मनुष्यों के साथ एकात्मा की भावना का अनुभव करने लगूँगा।"

महात्मा गांधी और भारत का महान् उद्देश्य

"मैं यह अनुभव करता हूँ कि भारतवर्ष का मिशन दूसरे देशों की अपेक्षा भिन्न है। भारतवर्ष संसार की धार्मिक प्रभुता के लिये योग्य है। आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया में संसार में इसकी सानी का दूसरा उदाहरण नहीं है। भारत को फ़ौलाद के शस्त्रों की आवश्यकता नही। वह दिव्य शस्त्रों (Divine Weapons) से लड़ा है। वह अब भी ऐसा कर सकता है। दूसरे राष्ट्र पशुबल के हिमायती है। यूरोप में चलने वाला

भयङ्कर युद्ध इसका ज्वलंत उदाहरण है। भारत आत्मबल के द्वारा सब पर विजय पा सकता है। इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा हुआ है जिससे यह प्रकट होता है कि आत्मबल के सामने पशुबल कुछ नहीं है। कवियों ने आत्मबल के गुण गाये हैं और ऋषियों ने इसके सम्बन्ध में अपने अनुभव प्रगट किये हैं।"

"मैं भारतवर्ष को स्वतंत्र और शक्तिशाली देखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह महान् राष्ट्र संसार की भलाई के लिये स्वेच्छापूर्वक विशुद्ध आत्मत्याग करने के लिये हमेशा तैयार रहे।"

'मेरी महत्वाकांक्षा भारतीय स्वतंत्रता से बहुत ऊँची है। मैं भारत की मुक्ति के द्वारा पाश्चात्य शोषण से कुचली हुई पृथ्वी की निर्बल जातियों को मुक्त करना चाहता हूँ।"

"मैं भारत के लिये ऐसे विधान के निर्माण की कोशिस करूँगा जिससे भारतवर्ष सब प्रकार की दासता और संरक्षण से मुक्त हो। ऐसे भारत के निर्माण के लिये प्रयत्नशील होऊँगा जिससे गरीब से गरीब मनुष्य यह अनुभव करे कि यह देश मेरा है और इसमें मेरे आभास की पूरी कद्र है, तथा जिसमें छोटे और बड़े वर्गों का कोई भेद भाव नहीं है, जिसमें सब जातियां पूर्ण एकता और प्रेम के साथ रहती हैं। ऐसे भारतवर्ष में अछूतपन के लिए तथा मादक पेय और औषधियों के लिये कोई स्थान न रहेगा। स्त्रियां वे ही अधिकार भोगेंगी जो पुरुष भोगते हैं। चूंकि हम सारे शेष संसार के साथ शान्ति और अमन से रहेंगे, न हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी से शोषित होंगे, अतएव हमें छोटी से छोटी फ़ौज़ की ज़रूरत होगी। सब ऐसे हितों की, जो लाखों करोड़ों मूक जनता के हितों के विरोधी नहीं हैं, पूरी तरह से रक्षा की जायगी, चाहे फिर ये हित देशी हों चाहे विदेशी। निजी रूप से मैं देशी और विदेशी के बीच के अंतर के भेद को अरुचि की दृष्टि से देखता हूँ। यह मेरे स्वप्नों का भारतवर्ष है।

हमने ऊपर महात्माजी के विभिन्न विचारों पर, उन्हीं के शब्दों में, प्रकाश डालने की चेष्टा की है। उनके समग्र विचारों को लिखने के लिये स्वतंत्र ग्रन्थ की आवश्यकता है। अब हम अगले अध्यायों में महात्माजी द्वारा चलाये गये विभिन्न आन्दोलनों पर कुछ प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

गांधीजी और उनके सत्याग्रह संग्राम

महात्मा गांधी के राजनैतिक विचार-धाराओं पर हमने कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया है, जिससे हमारे पाठकों को गांधीजी द्वारा संचालित आन्दोलन की पृष्ठभूमि का कुछ ज्ञान हो सके। महात्मा गांधी के सिद्धान्त यद्यपि भारतवर्ष के लिये नवीन न थे, पर उन्होंने उन्हें राजनीति में प्रयुक्तकर राजनैतिक आन्दोलन को एक नवीन रूप दिया था। अहिंसा का दिव्य सिद्धान्त भारत के ऋषियों ने कई हजार वर्ष पूर्व आविष्कृत किया था। पर जहाँ तक हमारा ज्ञान है महात्माजी ही प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने राजनैतिक ध्येय की प्राप्ति के लिये इस सिद्धान्त का सफलता पूर्वक प्रयोग किया और संसार के सामने एक नवीन आदर्श रक्खा। अब हम उन सत्याग्रह आन्दोलनों पर भी कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं, जो महात्मा गांधी ने भारतवर्ष में व्यापक सत्याग्रह आन्दोलन को आरम्भ करने से पहले संचालित किये थे।

महात्मा गांधी ने भारतवर्ष में आने के पूर्व दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आन्दोलन का सफलता पूर्वक नेतृत्व किया था।

वहां प्रवासी भारतवासियों के प्रति गोरों के द्वारा जैसा अपमान और हीनता जनक व्यवहार किया जाता था वह मानवता का घोर अपमान था। नेटाल की क़ानूनी समिति (Law Society) ने गांधीजी को वक़ालत की सनद देने से इसलिये इन्कारी किया कि वे गोरी जाति के न थे। वहां भारतवासी रेल्वे स्टेशनों पर खास दरवाजे से न जा सकते थे। इसके अतिरिक्त-भारतवासियों को रेल्वे के उच्च क्लास के टिकिट प्राप्त

करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। अगर वे किसी तरह टिकिट प्राप्त कर लेते थे तो उनका रेल्वे के उच्च श्रेणी के डिब्बों में बैठना मुश्किल हो जाता था, क्योंकि गोरे मुसाफ़िर उन्हें हल्के दर्जे के समझते थे और वे उनके साथ सफ़र करना अपना अपमान मानते थे। अगर कोई भारतीय मुसाफ़िर उच्च श्रेणी के डिब्बों में बैठ जाता तो या तो वह गोरों द्वारा बाहर फैंक दिया जाता, या वह निम्न श्रेणी के डिब्बे में मुसाफ़िरी करने के लिये मज़बूर किया जाता। ट्रॉम गाड़ियों में भी यही हालत थी। काले आदमियों के साथ गोरे लोग सफ़र करना अपमान जनक समझते थे; दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भारतवासियों को गोरों द्वारा पद पद पर अपमानित होना पड़ता था। वहां के गोरों को अपनी जातीय श्रेष्ठता का इतना अभिमान था कि वे काली जाती के लोगों को तुच्छ और घृणा की दृष्टि से देखते थे।

इसके अतिरिक्त भारतवासी और अन्य एशियाई देशों के लोगों के ख़िलाफ़ वहां ऐसे काले क़ानून बनाये गये जिन्हें आत्मसम्मान रखने वाली कोई जाति सहन नहीं कर सकती। अगर कोई भूतपूर्व शर्तबद्ध (Exindentured Indian) भारतवासी वहां दक्षिण अफ्रीका में बसना चाहता था तो उसे तीन पौंड का पोल टेक्स (Poll Tax) देना पड़ता था। इतना ही टेक्स उसे अपनी पत्नी और सोलह वर्ष की उम्र के ऊपर के पुत्र व पुत्रियों के लिये देना पड़ता था। वहां बिना लाइसेन्स के कोई व्यापार नहीं कर सकता था, पर जहां यूरोपियनों को झटपट लाइसेंस मिल जाते थे वहां भारतवासियों को इन्हें प्राप्त करने में बड़ी कठिनाईयों का समना करना पड़ता था। इसके सिवाय दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भारतवासियों के लिये यूरोपियन भाषाओं में से एक भाषा की परीक्षा देना भी लाज़मी था। जिस ऐक्ट के मातहत ये परीक्षायें ली जातीं थीं, उसका नाम शिक्षा संबन्धी परीक्षा का क़ानून (Education Tax Act) था। ईस्वी सन् १९०६ में एशियावासियों के रजिस्ट्रेशन

के खिलाफ़ आन्दोलन चल ही रहा था कि ईस्वी सन् १९०७ में वहां एक क़ानून और बना, जिससे नवीन भारतीय प्रवासियों के लिये एक तरह से दक्षिण अफ्रीका के प्रवेश द्वार बन्द कर दिये गये। इस क़ानून का नाम ट्रान्सवाल प्रवासियों का रजिष्टरी क़ानून (Transval Immigrants Registration Act 1907) था।

प्रवासी भारतवासियों की स्वाधीनता और मानवोचित अधिकारों का घात करनेवाले इन क़ानूनों के ख़िलाफ़ घोर असन्तोष की ज्वाला भभक उठी। एशियाटिक लॉ अमेन्डमेन्ट एक्ट (Asiatic Law Amendment Act) के अनुसार वहां प्रवासी भारतवासियों के साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता था, जैसा ब्रिटिश भारत में अपराधी जातियों के साथ होता था। प्रवासी भारतवासियों को पुलिस में अपने नाम की रजिस्ट्री करवानी पड़ती थी और उन्हें अपने अंगूठे का निशान (Finger Print) भी देना पड़ता था। प्रवासी भारतवासियों के राष्ट्रीय आत्मसम्मान को यह क़ानून धक्का पहुँचाने वाला था। महात्मा गांधी ने लिखा है।

" I have never known legislation of this nature being directed against free men in any part of the world.........There are some drastic laws directed against (so called) Criminal tribes in India with which this Ordinance can be easily compared. Finger prints are required by law from criminals. I was, therefore, shocked by this compulsory reqnirement regarding Finger Prints".

अर्थात् संसार के किसी भी भाग में स्वतंत्र लोगों के ख़िलाफ़ मैंने ऐसा क़ानून नहीं देखा। भारतवर्ष में कथित अपराधी जातियों के ख़िलाफ़ ऐसे कुछ क़ानून हैं, जिनसे इस क़ानून की तुलना सहजतया की जा

सकती है। अपराधियों ही से क़ानून के द्वारा इस प्रकार अंगूठे की छाप (Finger print) ली जाती है। अतएव, भारतवासियों से अंगूठे की छाप जबरदस्ती लेने की इस आवश्यकता से मेरे हृदय को धक्का पहुँचा है।"

महात्मा गांधी ने, इस अपमानजनक क़ानून के खिलाफ़, विद्रोह का झन्डा उठाने का निश्चय किया। सन् १९०६ ई० २१ सितम्बर को एक भारी सभा में, जिसमें लगभग ३००० भारतीय प्रतिनिधि थे, इस क़ानून का शान्तिपूर्वक जबर्दस्त विरोध करने का प्रस्ताव पास हुआ। प्रत्येक भारतीय प्रतिनिधि ने यह सौगन्ध खाई की वह अपना सब कुछ न्योछावर कर क़ानून का विरोध करेगा। शान्तिमय प्रतिरोध करने के पहले प्रार्थनापत्रों, डेप्यूटेशनों और मुलाकातों द्वारा इस बात के प्रयत्न किये गये कि किसी तरह यह मामला शान्तिपूर्वक निपट जाय। पर ऐसा नहीं हो सका। तत्कालीन औपनिवेशिक सेक्रेटरी मिस्टर डन्कन ने यह टका सा जवाब दिया कि अफ्रीका में यूरोपियनों की अस्तित्व की रक्षा के लिये इस क़ानून की अनिवार्य आवश्यकता है।

अखीर लाचार होकर महात्मा गांधी को सत्याग्रह शस्त्र का अवलम्बन करना पड़ा। प्रवासी भारतवासी अंगूठे की छाप देने से साफ़ साफ़ इन्कार करने लगे और इसके लिये मिलनेवाली सजाओं का वे सहर्ष आव्हान करने लगे। सन् १९०७ ई० के जुलाई मास में इस नये आर्डिनेन्स के मुताबिक अफ्रीका की सरकार ने अनुमति पत्र कार्यालय (Perm offices) खोले। महात्मा गांधीजी ने इन कार्यालयों पर शान्ति पूर्वक धरना देने का निश्चय किया। १२-१२ वर्ष के लड़कों ने भी इस काम के लिये अपना नाम लिखवाया। सरकार ने इन सत्याग्रहियों और उनके नेताओं को गिरफ्तार करने का निश्चय किया।

ईस्वी सन् १९०७ के दिसम्बर मास में भारतीय समाज के प्रमुख व्यक्तियों को नोटिस दिये गये कि वे कोर्ट के सामने उपस्थित होकर इस बात

का कारण बतलावें कि उन्होंने अपने नाम की रजिष्ट्री क्यों न करवाई। गांधी जी और अन्य कई प्रमुख सत्याग्रहियों को अपने नाम की रजिष्ट्री न करवाने की वजह से सज़ायें हुईं। पर ईस्वी सन् १६०८ की ३० जनवरी को जनरल स्मट और भारतीय नेताओं के बीच एक समझौता हुआ, जिसके फलस्वरूप गांधी जी और अन्य कुछ प्रमुख सत्याग्रही जेल से मुक्त किये गये। जनरल स्मट ने यह आश्वासन दिया कि अगर प्रवासी भारतवासी अपनी खुशी से अपने नाम की रजिष्ट्री कराना स्वीकृत कर लेते हैं तो यह क़ानून रद्द कर दिया जायगा। प्रवासी भारतवसियों ने अपना पार्ट अदा किया, सत्याग्रहीं नेताओं ने अपने अनुयायियों के नाराज होने को जोखिम उठाकर भी यह शर्त मंजूर कर ली, पर जनरल स्मट ने अपने समझौते का पालन न किया और अपने दिये हुये वचन को भंग कर दिया। उन्होंने ऑर्डिनेन्स रद्द नहीं किया। इतना ही नहीं उन्होंने गांधीजी के पत्रों का संतोष जनक उत्तर देना भी उचित न समझा। जनरल स्मट यहीं तक न रुके। उन्होंने एक दूसरा बिल पेश किया, जिसमें आगे के लिये भारतवासियों के अफ्रीका प्रवेश पर रोक लगा दी गई। इस बिल ने आगे चलकर क़ानून का रूप धारण कर लिया।

अब तो इन क़ानूनों के खिलाफ़ शान्तिमय संघर्ष करना आवश्यक हो गया। ईस्वी सन् १६०८ के १६ सितम्बर को जौहंसवर्ग में एक बड़ी होली का आयोजन किया गया और उसमें जनरल स्मट के साथ किये हुये समझौते के मातहत स्वेच्छा पूर्वक की गई, रजिष्ट्रीयों के दो हजार प्रमाण पत्र (Certificates) जला दिये गये।

जोर शोर के साथ सत्यग्रह संग्राम शुरू हो गया। इसमें सत्याग्रहियों पर बड़े २ जुल्म और अत्याचर किये गये। सत्याग्रहियों की कठोर कारावास की सजायें दी जाने लगीं, कईयों को बेतों की सजा भी दी गईं, और भी अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक यंत्रणायें सत्याग्रहियों को भुगतनी पड़ीं। ई० सन् १६१३ को हाईकोर्ट ने एक फैसले द्वारा

प्रवासी भारतवासियों के वैवाहिक संबंधों को नाजायज़ करार दे दिया, क्योंकि ये वैवाहिक संबंध वहां के क़ानून के अनुसार न थे। यह एक ऐसी घटना थी जिसने भारतीय महिलाओं के अन्तःकरण को भारी चोट पहुँचाई। उन्होंने इसे भारतीय नारी के महान् आदर्श का घोर अपमान समझा : कहना न होगा कि इससे भारतीय महिलायें भी सत्याग्रह संग्राम में कूद पड़ीं। फोनिक्स पार्क (Phoneix Park) की सब भारतीय महिलायें सोलह सोलह की बेच में कानून तोड़कर ट्रांसवाल में प्रवेश कर गईं। उन्हें गिरफ्तार कर कठोर कारावास का दंड दिया गया। कुछ तामिल महिलाओं ने, जो गिरफ्तार न हुईं थीं, मज़दूरों में, तीन पाउंड का टैक्स न देने का धुआंधार प्रचार किया गया। यह आन्दोलन अत्यन्त उग्र रूप धारण करता गया। अख़ीर ईस्वी सन् १६१३ की ६ नवम्बर को दो हज़ार सैंतीस मनुष्य, एक सौ सत्ताईस महिलायें और सत्तावन बालकों ने क़ानून तोड़कर ट्रांसवाल की सीमा में प्रवेश किया। इसके बाद सत्याग्रहियों के नेता गांधीजी, पोलक और अन्य कुछ सज्जन पकड़े गये। ट्रांसवाल में सत्याग्रह द्वारा प्रवेश करनेवाले स्त्री पुरुष और बालक गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें सजायें हुईं। वे खानों में मज़दूरी करने के लिये मज़बूर किये गये। इस बीच में दक्षिण अफ्रीका की खानों में काम करने वाले भारतवासियों ने आम तौर से हड़ताल करना शुरू कर दिया। हड़ताल की बीमारी खूब फैली। सत्याग्रहियों को इस समय जो महान् कष्ट और यातनायें दी गईं वे वर्णनातीत थीं।

पर प्रवासी भारतवासियों के इस घोर कष्ट का परिणाम वही हुआ जो होना चाहिये था। इस शस्त्रहीन सत्याग्रह संग्राम से उनकी अद्भुत विजय हुई। अफ्रीका की यूनीयन सरकार ने तङ्ग आकर अख़ीर इस आशय से एक कमीशन मुकर्रर किया जिससे प्रवासी भारतवासियों के कष्टों का निराकरण हो। गांधीजी और पोलक १८ दिसम्बर सन् १६१३ को छोड़ दिये गये। इसके कुछ दिनों बाद सारे के सारे सत्याग्रही मुक्त कर

दिये गये । सरकार ने तीन पौंड वाला प्रवेश-कर भी माफ़ कर दिया । हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक विवाह भी क़ानूनी करार दे दिये गये और अधिवास के प्रमाण-पत्र को (Domicile Certificate) नागरीकता का अखीरी प्रमाण मान लिया गया ।

इस तरह महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाला सत्याग्रह-संग्राम बड़ी सफलता के साथ समाप्त हुआ । यह संग्राम बराबर आठ वर्ष तक चला और इसने सामाजिक न्याय के लिये लड़ने की क्रान्तिकारक प्रणाली का एक नया आविष्कार मनुष्य जाति के सामने रक्खा । मानवी इतिहास में इसने नया अध्याय आरम्भ किया ।

चम्पारन का सत्याग्रह

भारतवर्ष में, महात्मा गांधी ने, चम्पारन में पहले पहल अपने सत्याग्रह का प्रयोग किया । गांधीजी ने चम्पारन के न्यायालय के सामने इस सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया, वह बड़ा ही प्रेरणादायक (Inspiring) था । गांधीजी का कथन था:—

That day was an unforgettable event in my life and a red-letter day for the peasants of Champaran and for me"

अर्थात् वह दिन मेरे जीवन में ऐसी घटना थी जो भूली नहीं जा सकती और यही दिन चम्पारन के किसानों के लिये और मेरे लिये एक स्मरणीय दिन भी था ।

सन् १९१६ ई० की लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन के समय गांधीजी को चम्पारन के किसानों के कष्टों का समाचार मिला । बिहार के एक कांग्रेस कार्य-कर्त्ता-किशोर बाबू-ने गांधीजी को किसानों के इन कष्टों और चम्पारन की परिस्थिति का ज्ञान करवाया और उन्हें चम्पारन में आने

के लिये निमन्त्रित किया। सन् १९१७ ई० के अप्रेल मास में महात्मा गांधी चम्पारन गये।

चम्पारन, हिन्दू शास्त्रों के अनुसार, महाराज जनक की राजधानी रहा था। यह जिला बिहार का उत्तर-पश्चिमीय भाग है। निरन्तर एक सदी से, वहां के यूरोपियन खेतीहर नील की खेती से बड़ा अर्थ लाभ कर रहे थे, और वे वहां के किसानों का शोषण कर रहे थे। वहाँ उन्होंने अपने लाभ में बने हुए क़ानून के अनुसार नग्नबल के द्वारा बड़ा अधिपत्य और दबदबा जमा रखा था। सरकारी कर्मचारी भी इनके प्रति सहानुभूति रखते थे। स्थानीय नेताओं ने, किसानों के कष्ट-निवारण के लिये, जब कभी आवाज़ उठाई, वह सब व्यर्थ गई। क़ानूनी कार्यवाही भी नाक़ारगर साबित हुई। गोरे खेतीहर बंगाल टिनेन्सी एक्ट और इस प्रकार के अन्य प्रतिक्रियावादी क़ानूनों का सहारा लेकर ग़रीब किसानों का बेधड़क शोषण करते रहे। किसानों का मुख्य कष्ट "तीन कठिया" नामक एक इकरारनामा था। इस इकरार के अनुसार किसानों को अपनी ३/२० या ४/२० भूमि पर नील बोना पड़ता था, चाहे इसमें उन्हें लाभ हो या न हो। इस प्रकार के शोषण को, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, बंगाल टिनेन्सी एक्ट के अनुसार क़ानूनी रूप दे दिया गया था। पीछे जाकर जर्मनी आदि देशों में जब रासायनिक रंगों का आविष्कार हो गया और जब नील की खेती और व्यवसाय हानिकारक होने लगा तब इन गोरे खेतीहरों ने किसानों से यह आग्रह किया कि वे चाहें तो नील की खेती न करें। पर इसके बदले में उन्हें परिवर्द्धित भूमिकर देना पड़ेगा। यूरोपियन खेतीहरों ने इस नवीन मांग का टिनेन्सी एक्ट की धारा के अनुसार समर्थन किया। कहीं कहीं इन गोरे खेतीहरों ने किसानों से भारी रकम लेकर उन्हें नील बोने की शर्त से बरी कर दिया। किसानों से यह अन्यायपूर्ण द्रव्य वसूल करने में गोरे खेतीहरों ने ऐसे ऐसे जुल्म और अत्याचार किये जिनका उल्लेख इतिहास के काले पृष्ठों में किया जायगा।

किसानों पर बुरी तरह मार पड़ने लगी। उन्हें जेलखानों में बन्द किया जाने लगा। उनके ढोर कांजी हाउस में बन्द किये जाने लगे। उनके घर लूटे जाने लगे। यहां तक जोर जबरदस्ती द्वारा प्रबन्ध किया गया जिससे नाई किसानों की हजामत न बना सकें, धोबी किसानों के कपड़े न धो सकें और चमार किसानों का कोई काम न कर सकें। किसानों के लिये घर से निकलने में भी रोक होने लगी। इस प्रकार इन गोरे खेती-हरों ने बेचारे भोले भाले किसानों को तरह तरह के कष्ट देना शुरू किया। बहुत से गैर क़ानूनी टैक्स उनसे वसूल किये जाने लगे। विवाह शादी तक पर टैक्स बिठाया गया। प्रत्येक घर और तेल के कारखाने पर टैक्स लादा गया। और मजा देखिये, अगर कोई साहब हवा खाने के लिये हिल स्टेशन पर जाता तो किसानों को इसका किराया भुगतना पड़ता था और हर एक किसान को इसके लिये 'पहाड़ही' "(Paharhi)" टैक्स देना पड़ता था। यदि साहब बीमार है और उसे पहाड़ पर जाने की आवश्यकता है तो वहां के किसानों को इसके लिये उक्त पहाड़ही नामक लाग देना पड़ती थी। यदि साहब को सवारी के लिये घोड़ा या हाथी मोटर की ज़रूरत होती तो किसानों को उसके मूल्य के लिये "घोड़ाही" "हथियाही" या "हवाई" नामक विशेष लाग देना पड़ती थी। इन लागों के अतिरिक्त किसानों से भारी भारी जुर्माने भी वसूल किये जाते थे। एक तरह से वे उक्त ज़िले की अदालत और हाक़िम ही बन बैठे थे।

सार्वजनिक सेवकों के इन किसानों की मुसीबतें दूर करने के सारे प्रयत्न बेकार हो गये थे। सरकार किसानों की इन मुसीबतों को जानती थी, उन्हें मानती थी और किसानों के साथ सहानुभूति भी प्रकट करती थी, लेकिन उनके कष्ट दूर करने में या तो वह अपने को शक्तिहीन समझती थी। या कुछ करना नहीं चाहती थी।

गांधीजी सन् १६१७ में मोतीहारी पहुँचे। यह ज़िले का मुख्य

स्थान था। गाँवों को देखने के लिये वह रवाना होने ही वाले थे कि उन्हें दफ़ा १४४ का नोटिस मिला कि तुरन्त ही जिले से बाहर चले जाओ। गांधीजी भला इस हुक्म को कब मानने वाले थे! उन्होंने अपना कैसरेहिन्द का स्वर्णपदक, जो कि सरकार ने उन्हें लोकोपयोगी कार्य के पुरस्कार में दिया था, सरकार को लौटा दिया। मजिस्ट्रेट की अदालत में आप पर दफ़ा १४४ भंग करने का मुक़दमा चला। आपने अपने को अपराधी स्वीकार करते हुए एक विलक्षण बयान अदालत के सम्मुख दिया, जो उस समय अद्भुत और नई स्फूर्ति को लिये हुए था, हालांकि आज हम उससे भलीभाँति परिचित हो चुके हैं। सरकार ने अन्त में मुक़दमा वापस ले लिया और उन्हें अपनी जाँच करने दी। इस जाँच में उन्होंने अपने मित्रों की सहायता से कोई २० हज़ार किसानों के बयान कलमबन्द किये। उन्हीं बयानों के आधार पर गांधीजी ने उनकी माँगें पेश कीं। अखिरकार सरकार को एक कमीशन नियुक्त करना पड़ा जिसमें जमींदार, सरकार और निलहे गोरों प्रतिनिधि थे। महात्मा गांधी को किसानों की ओर से प्रतिनिधि रक्खा गया था। इस कमीशन ने जाँच के बाद एकमत होकर अपनी रिपोर्ट लिखी, जिसमें किसानों की लगभग सभी शिकायतों को जायज़ माना गया। उस रिपोर्ट में एक समझौता लिखा गया था जिसमें किसनों पर बढ़ाये गये लगान को कम कर दिया गया था और जो रुपया गोरों ने नक़द वसूल किया था उसका एक भाग लौटा देना तय हुआ था। उसकी सिफ़ारिशों को बाद में क़ानून का रूप दे दिया गया था, जिसके अनुसार नील को पैदा करना या "तीन-कठिया" लेना मना कर दिया गया था। इसके कुछ वर्ष बाद ही अधिकांश निलहे गोरों ने अपने कारखाने बेच दिये, ज़मीन बेच दी और वे जिला छोड़कर चले गये। आज उन स्थानों के, जो कभी निलहे गोरों के महल थे, खंडहर ही शेष हैं। वे लोग, जो अभी तक वहां मौजूद हैं, नील का काम क़तई नहीं कर रहे हैं। बल्कि दूसरे किसानों

की तरह खेती-बाड़ी करके वे अपना गुज़र बसर करते हैं। अब न तो उनकी वह गैर क़ानूनी आमदनी ही रह गई है और न प्रतिष्ठा ही, जो उनकी आमदनी का एक कारण थी।

यहां यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि चंपारन में सत्याग्रह का आन्दोलन संचालित करते हुए भी महात्मा गांधी अपने रचनात्मक कार्य्य को न भूले। उन्होंने चम्पारन ज़िले के गाँव में छः प्राइमरी स्कूल खुलवाये और उनमें ग्रामीणों के लिये वैद्यकीय सहायता (Medical relief) का भी प्रबंध किया। उन्होंने गांव वालों को स्वच्छता पूर्वक रहकर आरोग्यशाली जीवन बिताने का उपदेश दिया। जहां शिक्षक और डॉक्टर उपलब्ध न थे, वहां उन्होंने उन्हें बाहर से बुलाकर शिक्षा और चिकित्सा का प्रबंध किया। मतलब यह है कि गांधी जी ने आन्दोलन के साथ साथ ग्रामीण जीवन के सुधार का भी पाया रक्खा।

खेड़ा-सत्याग्रह

खेड़ा का ज़िला गुज़रात प्रान्त में है। ईस्वी सन् १९१८ में उक्त ज़िले में फ़सल नष्ट हो गई और इस कारण वहां अकाल की स्थिति उपस्थित हो गई। किसान लोग फ़सल नष्ट हो जाने के कारण भूमिकर देने में असमर्थ थे।

गांधी जी के भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले, भारतीय किसान यह नहीं जानते थे कि घोर से घोर अकाल के दिनों में भी वे सरकार के लगान लेने के अधिकार के संबंध में कुछ एतराज कर सकते हैं। उनके प्रतिनिधि सरकार के पास आवेदन एवं प्रार्थना पत्र भेजते थे, स्थानीय कौंसिलों में प्रस्ताव करते थे। बस, यहीं तक उनका विरोध समाप्त हो जाता था। १९१८ गांधी जी ने एक नये युग का श्री गणेश किया। गुज़रात के खेड़ा ज़िले में इस वर्ष ऐसा बुरा समय आया कि ज़िले भर की सारी फ़सल खराब हो गई। अवस्था अकाल के समान

हो गई थी। किसान लोग महसूस करने लगे थे कि अवस्था को देखते हुए लगान स्थगित होना चाहिये। आम तौर पर ऐसे मौक़ों पर जो उपाय काम में लाये जाते थे, उन सबको अज़माया जा चुका था। सारे उपाय बेअसर हो चुके थे। किसानों का कहना था कि फ़सल रुपये में चार आने भी नहीं हुई। दूसरी ओर सरकारी अफ़सरों का कहना था कि चार आने से ज्यादा हुई है और इसलिये किसानों को, क़ानून के अनुसार, लगान मुल्तवी कराने का कोई अधिकार नहीं है। किसानों की सारी प्रार्थनायें निरर्थक साबित हो चुकी थीं, अतः गांधी जी के पास किसानों को सत्याग्रह की सलाह देनेके अलावा और कोई चारा ही नहीं था। उन्होंने लोगों से स्वयं-सेवक और कार्य्यकर्त्ता बनने की भी अपील की और कहा कि वे किसानों में जाकर उन्हें अपने अधिकारों आदि का ज्ञान करावें। गांधी जी की अपील का असर तुरन्त ही हुआ। सबसे पहले स्वयं-सेवक बनने को आगे बढ़ने वाले सरदार वल्लभ भाई पटेल थे। आपने अपनी खासी और बढ़ती हुई वकालत पर लात मार दी और सब कुछ छोड़कर गांधी जी के साथ फकीरी ले ली। खेड़ा का सत्याग्रह ही इन दो महान् पुरुषों को मिलाने का कारण बना। सरदार वल्लभभाई के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने का यही श्री गणेश था। उन्होंने अन्तिम निश्चय करके अपने आप को गांधी जी के अर्पण कर दिया। जैसे जैसे समय गया इनका सहयोग बढ़ता ही गया। किसानों ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये कि वे अपने को झूंठा कहलाने की अपेक्षा और अपने स्वाभिमान को नष्ट करके जबरदस्ती बढ़ाया हुआ कर देने की अपेक्षा अपनी ज़मीनों को जब्त कराने के लिये तैयार हैं। उनका यह भी कहना था कि हममें से जो लोग खुशहाल हैं, वे यदि ग़रीबों का लगान मुल्तवी कर दिया जाय तो अपना लगान चुका देंगे।

अब किसानों को इस विषय में एक अपूर्व रूप से शिक्षित किया जाने लगा। उन सिद्धान्तों की शिक्षा उन्हें दी गई जो उन्होंने पहले

कभी सुनी तक न थीं। उन्हें यह बताया जाता कि आपका यह हक़ है कि आप सरकार के लगान लगाने के अधिकार पर ऐतराज़ करें। यह भी कि सरकारी अफ़सर आपके मालिक नहीं, नौकर हैं। इसलिये आपको अफ़सरों का सारा भय अपने दिल से निकाल कर डराये धमकाये जाने की, दमन और दबाव की और उससे भी बदतर जो आ पड़े उन सब की परवाह न करते हुए अपने हक़ों पर डटे रहना चाहिये। उन्हें नागरिकता के प्रारम्भिक नियमों को भी सीखाना था, जिनके जाने बिना बड़े से बड़ा साहस-कार्य भी आगे चलकर दूषित और भ्रष्ट हो सकता है। गांधीजी, सरदार पटेल तथा उनके अन्य साथियों का रोज यही काम था कि वे नित्यप्रति एक गांव से दूसरे और वहां से तीसरे में जाकर किसानों को यही उपदेश और शिक्षा दें और कहें कि मवेशियों तथा अन्य वस्तुओं के कुर्क किये जाने, जुर्माने और ज़मीन ज़ब्त होने की धमकी के मुक़ाबले में वे दृढ़तापूर्वक डटे रहें। इस युद्ध के लिये धन की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, फिर भी बम्बई के व्यापारियों ने चन्दा करके आवश्यकता से अधिक धन भेज दिया। इस सत्याग्रह से गुजरात को सविनय-आज्ञाभंग का पहला सबक सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। किसानों के हृदय को मज़बूत बनाने के ख्याल से गांधीजी ने लोगों को सलाह दी कि जो खेत बेजा कुर्क कर लिया गया है उनकी फसल काटकर वे ले आवें और स्वर्गीय श्री मोहनलाल पांड्या इस कार्य में किसानों के अगुआ बने। लोगों को अपने ऊपर जुर्माने कराने और जेल की सज़ा को आमंत्रित करने की शिक्षा ग्रहण करने का यह अच्छा अवसर था, जो कि सत्याग्रह का आवश्यक परिणाम हो सकता है। मोहनलाल पांड्या एक खेत की प्याज़ की फ़सल काटकर ले आये। उन्हें इस कार्य में कुछ किसानों ने भी मदद दी। उन सब लोगों की गिरफ़्तारियां हुईं, मुकदमे चले और थोड़े थोड़े दिन की सज़ायें हुईं। लोगों के लिये यह एक अद्भुत प्रयोग था। इन सब बातों को वे आनन्द

के साथ करते थे। वे अपने नेताओं की जय-जयकार करते थे और जेल से छूटने पर उनके जुलूस निकालते थे।

इस झगड़े का यकायक ही अन्त हो गया। अधिकारियों ने ग़रीब किसानों के लगान को मुल्तवी कर दिया। लेकिन उन्होंने यह कार्य किया-बिना किसी प्रकार की सार्वजनिक घोषणा किये हुये। उन्होंने किसानों को यह भी अनुभव न होने दिया कि यह उनके साथ किसी प्रकार का समझौता करके हुआ है। चूंकि यह रिआयत एक तो देर से दी गई, दूसरे यह जाहिर नहीं होने दिया कि यह लोगों के आन्दोलन के फलस्वरूप है, तीसरे वह भी बिना मन के। इसलिये इससे बहुत कम किसानों को लाभ पहुँचा। यद्यपि सिद्धान्ततः सत्याग्रह की विजय हुई, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूर्ण विजय थी। क्योंकि वह विजय के मुख्य लाभों से वंचित रही। लेकिन उसके अप्रत्यक्ष फल बहुत बड़े निकले। उस लड़ाई से गुजरात के किसानों में एक महान् जागृति की नींव पड़ी और वास्तविक राजनैतिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। गांधीजी अपनी 'आत्म-कथा' में लिखते हैं :—

'The lesson was indelibly imprinted on the public mind that the salvation of the people depends upon themselves, upon their capacity for suffering and sacrifice. Through the Kheda campaign, Satyagrah took firm root in the soil of Gujerat'.

अर्थात् (सत्याग्रह के) इस सबक से लोगों के मन पर यह अमिट छाप पड़ी कि उनकी मुक्ति उनके कष्ट-सहन और आत्मत्याग की योग्यता पर निर्भर है। खेड़ा के आन्दोलन से गुज़रात की भूमि पर सत्याग्रह की नींव मज़बूती से जमी।

यह पहला अवसर था जिसमें गांधीजी ने लोगों को कठिनाइयों और कष्ट सहने के लिये आह्वान किया था, और उन्हें सत्याग्रह की

शिक्षा दी गई थी। इस सत्याग्रह के सफल होने के बाद गांधीजी ने रैयत को सत्याग्रह तत्व की शिक्षा देने की आवश्यकता समझी, और उन्होंने यह महसूस किया कि सत्याग्रह के विधायक रूप की ओर अभी लोगों का ध्यान, जैसा चाहिये वैसा, आकर्षित नहीं हो रहा है। इस कार्य में उस समय उन्हें पर्याप्त मनुष्य न मिल सके। इसलिये यह कार्य इस समय अधिक आगे न बढ़ सका।

अहमदाबाद का सत्याग्रह

भारतवर्ष में सबसे पहले महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा के बल पर मिल मालिक और मज़दूरों के झगड़ों को निपटाने का उपक्रम अहमदाबाद में किया। कहा जाता है कि इतिहास में यह पहला मौका था कि मानवीय जीवन के इन महान् तत्वों को औद्योगिक झगड़ों को निपटाने के लिये काम में लाया गया। इसके बड़े दूरवर्ती परिणाम निकले। अहमदाबाद का मज़दूर संघ उसी वक्त स्थापित किया गया, जिसने बड़े बड़े औद्योगिक तूफ़ानों का सामना कर मिल मालिक और मिल मज़दूरों के झगड़ों का फ़ैसला करने में प्रशंसनीय कार्य किया और संसार के सामने मज़दूर संघ का एक आदर्श रखा।

अब हम अहमदाबाद सत्याग्रह का कुछ विवरण देना चाहते हैं, जिसका संचालन महात्मा गांधी ने सफलता पूर्वक किया था। मिल मालिक और मज़दूरों के बीच में मँहगाई और बोनस के संबंध में विवाद उपस्थित हुआ। दोनों पक्षों ने गांधीजी की सेवा में उपस्थित होकर यह प्रार्थना की कि वे मध्यस्थ होकर इस विवाद का फैसला करदें। महात्मा गांधीजीने गम्भीरता पूर्वक सारे मामले का अनुसंधान किया और उन्होंने उभय पक्ष को यह राय दी कि वे पंचों के द्वारा इस मामले का फ़ैसला करवालें। दोनों पक्षों ने महात्माजी की राय को मान देकर ऐसा कर लिया। पर दुर्भाग्यवश कुछ दिनों के बाद मिल मज़दूरों ने गलतफ़हमी के कारण हड़ताल कर दी। इससे मिल मालिक बड़े क्रोधित हुए और

उन्हें उक्त समझौता तोड़ने का बहाना मिल गया। ईस्वी सन् १९१८ में फरवरी को उन्होंने मिलों में तालाबन्दी (Lock out) करदी। गांधीजी ने दोनों को समझाने का प्रयत्न किया, पर इसका कोई फल न हुआ। जाँच करने पर गांधीजी को मालूम हुआ कि इसमें मजदूरों का पक्ष सत्य है। उन्होंने मज़दूरों को सलाह दी कि वे अपने भत्ते में पैंतीस फी सदी की वृद्धि के लिये माँग करें। मिल मालिकों ने बीस फ़ी सदी से अधिक न देने का निश्चय कर लिया। इससे २६ फरवरी से मज़दूरों ने हड़ताल करदी और उसमें हजारों मज़दूर शामिल हो गये।

मज़दूरों से यह शपथ लिखवाई गई कि जब तक उन्हें अपने अला-उंस में पैंतीस प्रति सैंकड़ा की वृद्धि न मिलेगी तब तक वे काम पर न जावेंगे। मिलों के तालाबन्दी के समय वे किसी प्रकार का उपद्रव न करेंगे और पूर्णरूप से अहिंसा का पालन करेंगे। वे किसी पर हमला न करेंगे और लूटमार से दूर रहेंगे। वे मिल मालिकों की ज़ायदाद को किसी प्रकार की हानि न पहुंचावेंगे। वे किसी प्रकार के अपशब्द अपने मुंह से न निकालेंगे। वे पूर्ण रूप से शांति की रक्षा करेंगे।

मिलों की तालाबन्दी के समय गांधीजी और उनके सहयोगी तरह तरह से मिल मजदूरों की सेवा करते रहे। उन्होंने मज़दूरों के निवास स्थानों पर जाजाकर उन्हें सफ़ाई और आरोग्यता की शिक्षा दी, और उनको चिकित्सा संबंधी तथा अन्य सहायता दी। वे हर रोज ब्यूलेटिन प्रकाशित कर मज़दूरों को अनुशासन की शिक्षा देते रहते थे। वे मज़दूरों को रोजमर्रा सभाएँ करते और उनमें उनकी दिन प्रतिदिन की समस्याओं पर विचार करते थे। वे मज़दूरों को इस बात का आदेश देते थे कि मिलों की तालाबन्दी के समय वे कुछ अन्य कार्य करें, और अपने पैरों पर खड़ा रहना सीखें। बहुत से मज़दूरों को गांधीजीने अपने आश्रम पर मज़दूरी पर लगा लिये जो उस समय बन रहा था। गांधीजीने मज़दूरों को यह आश्वासन दिया कि अगर दुर्भाग्यवश उन्हें भूखों मरने का अवसर

आया तो उनके साथ अन्त समय तक वे भी भूखे रहेंगे और अंततक उनका साथ देंगे।

लगभग पन्द्रह दिन तक मज़दूर बड़े साहस और हिम्मत के साथ बिना किसी हिचकिचाहट के अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहे। इस बीच में मिल मज़दूरों ने चालबाज़ियों से काम लेना शुरू किया। उन्होंने इस प्रकार की अफ़वाहें ज़ोर शोर से उड़ाना शुरू की कि मज़दूर पस्त हिम्मत हो रहे हैं और उनका साहस नौ दो ग्यारह हो रहा है। इस पर महात्मा गांधी ने तुरन्त ही एक ऐसा निर्णय किया जो लोगों को बड़ा मौलिक और आश्चर्यकारक लगा। महात्मा गांधीजी ने यह प्रकट किया कि जब तक इस मामले का सफलता पूर्वक फैसला न हो जायगा तब तक वे अन्न का त्याग कर देंगे। वे गाड़ी में भी सवारी न करेंगे। गांधीजी ने खुद लिखा है:—'मैं उन आदमियों में से हूँ जो इस बात का विश्वास करते हैं कि मनुष्य को किसी भी परिस्थिति में अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिये। मैं एक क्षण के लिये भी इस बात को सहन नहीं कर सकता कि जो पवित्र प्रतिज्ञा तुमने (मज़दूरों) ली है उसका तुम भंग करो। जब तक तुम सबों को पैंतीस प्रति सैंकड़ा की वृद्धि न मिलेगी तब तक न तो मैं अन्न का स्पर्श करूंगा और न मैं गाड़ी में चढ़ूँगा।

इससे बड़ी हलचल मच गई। मज़दूरों की हिम्मत एक दम बढ़ गई। गांधीजी के इस उपवास से मिल मालिकों पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा और वे आपसी समझौते के लिये अधिक उत्सुकता प्रकट करने लगे।

आख़ीर यह तय हुआ कि प्रोफेसर ध्रुव दोनों पक्षों की ओर से पंच बनाये जावें और उनके फैसले को दोनों पक्ष मंजूर करें। तीन मास के के बाद ध्रुव महोदय ने मिल मज़दूरों को उनके जुलाई मास के वेतन में पैंतीस फ़ी सदी वृद्धि देने का फैसला दिया। दोनों पक्षों ने यह पंच-फैसला स्वीकार कर लिया। इसी के फल स्वरूप मज़दूरों का 'मज़ूर-महाजन' नामक एक ऐसा स्थायी संगठन हो गया जो आज ३१ वर्ष से

श्रीमती अनसूया बहन और श्री शंकरलाल बैंकर की देखरेख में प्रगति के साथ काम करता हुआ चला आ रहा है। ये दोनों कांग्रेस के प्रमुख व्यक्ति रहे हैं। इस संस्था के बदौलत मज़दूर अब तक कितने ही कठिन तूफ़ानों को पार कर गये हैं और इसने अहमदाबाद नगर को बड़े बड़े औद्योगिक संकटों से बचाया है। वहां के मज़दूर बड़े ही सुसंगठित हैं। 'मजूर महाजन' के भूतपूर्व प्रधानमंत्री लाला गुलजारीलाल की देखरेख में उसके कार्य्यकर्त्ताओं द्वारा उन्हें जो सुन्दर शिक्षा दी जा रही थी, वह ऐसी थी कि जिसके द्वारा मज़दूरों ने समय पड़ने पर ठोस और व्यापक सार्वजनिक सेवायें की थीं। गांधीजी के परामर्श से मजूर-महाजन ने १९२७ के बाद पीड़ितों की अच्छी सहायता की थी। १९३० के सत्याग्रह युद्ध के ज़माने में इन मज़दूरों ने बड़े ज़ोरों से नशा निषेध का कार्य्य किया। कांग्रेस के आदेशानुसार कोई २०० स्वयंसेवक इन लोगों में से पिकेटिंग के लिये आगे आये और उनमें से १६२ जेल गये। उसके बाद उनमें और मिल मालिकों में बड़ा सा झगड़ा खड़ा हो गया था। लेकिन उनके भारी अनुशासन की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। उन्होंने १६ महीनों तक, जब तक गांधीजी पंच-फैसले की बातचीत करते रहे, बराबर शांति रक्खी। संसार भर में अहमदाबाद का ही एक ऐसा मज़दूर-संघ है जिसने सत्य और अहिंसा की प्रतिज्ञा ली हुई है और जिसका उद्देश्य है कपड़े के उद्योग का राष्ट्रीयकरण। इसके लगभग ३० हजार चन्दा देनेवाले सदस्य हैं। इसके पास १९३५ में लगभग चार हज़ार शिकायतें आईं, जिनमें इसे ८० फी सदी सफलताएं प्राप्त हुईं। इसने ३६हड़तालें कराईं, जिनमें २३ मज़दूरों के पक्ष में तय हुईं। 'मजूर-महाजन' ने ११८५ स्त्रियों के लिये जापे का प्रबन्ध किया, जिसका खर्च२६ हज़ार रुपये के करीब था। इसने१८,०७४) दुर्घटना के हर्जाने और १६४मज़दूरों को ६८२६) 'विक्टिमाइज़ेशन बेनिफिट' दिलवाया। इसके सेवा के मुख्य कार्य्यों में डॉक्टरी सहायता, शिक्षा, व्यायाम और खेलकूद व मनोरंजन का प्रबंध, म्युनि-

सिपैलिटी से सुविधाएँ प्राप्त करना, नशे से बचाना तथा सामाजिक सुधार करना आदि हैं।

गांधीजी का विशाल राजनैतिक क्षेत्र में उतरना

हमने गांधीजी के विचारों पर और उनके द्वारा किये गये कुछ स्थानीय सत्याग्रह-संग्रामों पर गत पृष्ठों में प्रकाश डालने की चेष्टा की है। रौलेट बिलों के संबंध में भी पिछले पृष्ठों में कुछ लिखा जा चुका है। यह बिल मानवी स्वाधीनता के बड़े घातक थे। गांधीजी ने अपनी रोगशय्या से तत्कालीन वाइसरॉय को एक पत्र लिखकर यह अनुरोध किया था कि वे रौलेट रिपोर्ट को क़ानून का रूप न दें। अगर इन्हें क़ानून का रूप दिया गया तो वे इसके विरोध में सत्याग्रह करेंगे, पर वाइसरॉय ने गांधीजी की राय को स्वीकार नहीं किया। यह बिल धारा सभा में, जैसा कि हम गत पृष्ठों में दिखला चुके हैं, सरकारी मेम्बरों के बहुमत से पास कर दिये गये, और उन्हें क़ानून का रूप दे दिया गया। फिर क्या था! गांधीजी ने डट कर इन बिलों का विरोध करने का दृढ़ निश्चय किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये गांधीजी ने देश में सर्वत्र दौरा किया। आपका सब जगह धूमधाम से स्वागत हुआ। गांधीजी तो देश के लिये, अन्य नेताओं की अपेक्षा, अपरिचित व्यक्ति के समान ही थे। लेकिन फिर भी देश ने उनका और उनके वैसे ही विलक्षण कार्यक्रम का इतना स्वागत क्यों किया। भारत सरकार ने उस समय अपनी एक रिपोर्ट में गांधीजी के तत्कालीन अद्भुत प्रभाव के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा था:—

"मि० गांधी अपनी निःस्वार्थता और ऊँचे आदर्शों के कारण आम तौर पर टॉलस्टाय के अनुयायी समझे जाते हैं भारतीयों के लिये दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो लड़ाई लड़ी, उसके कारण उन्हें वह सब मान-गौरव प्राप्त है जो कि पूर्वीय देशों में एक धार्मिक और त्यागी नेता को प्राप्त होता है। इनके संबंध में एक खास बात यह है कि इनके अनुयायी

किसी सम्प्रदाय-विशेष के नहीं हैं। जब से वे अहमदाबाद में रहने लगे हैं, बराबर विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवा में लगे हुए हैं।"

"किसी भी व्यक्ति या जाति की रक्षा के लिये, जिन्हें कि वह यह समझते हों कि उस पर अत्याचार हो रहा है, सदैव अपने हाथ में गदा लिये तैयार रहने के कारण, वह अपने देशवासियों को और भी प्रिय हो गये हैं। बम्बई अहाते भर में तो, क्या देहात और क्या नगर, अधिकांश जगह उनका अत्यधिक प्रभाव है और उनकी सब पर धाक है। उन्हें लोग जिस आदर भाव से देखते हैं, उसके लिये "पूजा" शब्द का प्रयोग करना किसी बड़े शब्द का प्रयोग करना नहीं कहा जा सकता। भौतिक बल से उनका विश्वास आत्मबल में अधिक है। इसलिये गांधी का यह विश्वास हो गया है कि उन्हें इस शक्ति का प्रयोग सत्याग्रह के रूप में रौलेट-एक्ट के ख़िलाफ़ करना चाहिए, जिसे कि उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका में सफलता पूर्वक अज़माया था। २४ फरवरी को उन्होंने इसकी घोषणा कर दी कि यदि बिल पास किये गये तो वह सत्याग्रह प्रारम्भ कर देंगे। सरकार तथा बहुत से भारतीय राजनीतिज्ञों ने, इस घोषणा को, बहुत चिन्ताभरी दृष्टि से देखा। बड़ी कौंसिल के कुछ नरम दल वाले सदस्यों ने तो सार्वजनिक रूप से कार्य्य के भयावह परिणामों को बतलाया था। श्रीमती बेसेन्ट ने तो, जिन्हें भारतीय मनोवृत्ति का अच्छा ज्ञान था, गांधी जी को अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक चेतावनी दी कि यदि उन्होंने कोई भी ऐसा आन्दोलन चलाया तो उससे ऐसी शक्तियां उभड़ उठेंगी जिनसे न जाने क्या क्या भयंकर बुराइयां हो सकती हैं। यहां यह बात स्पष्ट रूप से बता देना चाहिये कि गांधी जी के रुख या घोषणा में कोई भी एसी बात नहीं थी, जिससे कि उनके आन्दोलन का श्री गणेश होने से पहले सरकार उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई कर सकती। सत्याग्रह तो आक्रमणकारी नहीं बल्कि रक्षात्मक पद्धति है। गांधी जी ने खुले तौर पर पशुबल की निन्दा की। उन्हें यह विश्वास था कि वह सवि-

नय-भंग के रूप में सत्याग्रह करके सरकार को इस बात के लिये मजबूर कर देंगे कि वह रौलेट-एक्ट का परित्याग करदें। १८ मार्च को उन्होंने रौलट-बिल के संबंध में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित कराया, वह इस प्रकार है:—

"सच्चे हृदय से मेरा यह मत है कि इण्डियन क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट बिल नं० १ और क्रिमिनल ला इमरजेन्सी पावर बिल नं० २ अन्याय पूर्ण हैं और न्याय और स्वाधीनता के सिद्धान्तों के घातक हैं। उनसे व्यक्ति के उन मौलिक अधिकारों का हनन होता है जिन पर कि भारत की और स्वयं राज्य की रक्षा निर्भर है। अतः हम शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि इन बिलों को क़ानून का रूप दिया गया, तो जब तक इन्हें वापस न लिया जाय, तब तक हम इन तथा अन्य क़ानूनों को भी, जिन्हें कि इसके बाद नियुक्त की जाने वाली कमेटी उचित समझेगी, मानने से नम्रता पूर्वक इन्कार कर देंगे। हम इस बात की भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस युद्ध में हम ईमानदारी के साथ सत्य का अनुसरण करेंगे और किसी के जान-माल को किसी तरह नुकसान न पहुँचावेंगें।"

कहने का मतलब यह है कि गांधी जी ने अहिंसा के दिव्य सिद्धान्त को जनता के सामने रखकर सत्याग्रह संग्राम की घोषणा की। उन्होंने मद्रास से ३० मार्च सन् १९१९ को सत्याग्रह आरम्भ करने का आदेश जारी किया। पीछे जाकर यह तारीख बदल दी गई और ६ अप्रेल सत्याग्रह करने की तारीख नियत की गई। २३ मार्च को गांधीजी ने सारे भारतवर्ष के लिये सत्याग्रह करने का कार्य्यक्रम प्रकाशित करते हुये लिखा था।

"Satyagraha is essentially a religious movement. It is a process of purification and penance. It seeks to secure reforms or redress of grievances by self-suffering. The 6th of April (by which time Viceroy would have given his assent to the Act)

should be observed as a day of humiliation and prayer. The details of the programme were as follows. असल में सत्याग्रह एक धार्मिक आन्दोलन है। यह आत्म-शुद्धि और प्रायश्चित्त की प्रक्रिया है। इसमें सुधार और कष्ट निवारण के कार्य्य आत्म-कष्ट के द्वारा संपन्न किये जाते हैं।" गांधी जी ने निम्न लिखित कार्य्य क्रमप्रकाशित किया थाः—

२४ घंटे का उपवास रक्खा जाय। यह उपवास भूख हड़ताल के रूपमें न हो। सविनय अवज्ञा (civil Disobedience) के लिये सत्यग्रहियों को योग्य बनाने को यह एक आवश्यक अनुशासन है। उस दिन सारा काम-काज बन्द रक्खा जावे।

उपरोक्त आदेश सर्वसाधारण के लिये थे, प्रतिज्ञाबद्ध सत्याग्रहियों के लिये सत्याग्रही कमेटी ने निम्नलिखित आदेश जारी किये थे।

(१) निषिद्ध साहित्य (Prohibited literature) का प्रचार गुप्त रीति से नहीं, पर खुले तौर से करना चाहिये। वह ऐसे साधारण ढंग से किया जाना चाहिये जिससे बेचनेवाले का सहज ही में पता लग सके।

(२) अगर निषिद्ध साहित्य की पर्याप्त संख्या में प्रतियां उपलब्ध न हों तो उनके अंश सर्वसाधारण को पढ़कर सुनाये जावें, या हाथ से उनकी नकलें कर उन्हें सर्व साधारण में बांटी जावें।

गांधी जी ने स्वयं सत्याग्रही नामका गैर रजिष्ट्री शुदा समाचार पत्र निकालना शुरु किया, जिसमें सत्याग्रहियों के लिये इस बात के सुझाव रहते थे कि उन्हें कैद और अपनी जायदाद की जब्ती का बिना टालम-टूल और बिना बचाव (Defence) किये किस प्रकार मुक़ाबला करना चाहिये।

दिल्ली का सत्याग्रह

जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रारम्भ में सत्याग्रह की तारीख ३०

मार्च मुक़र्रिर की गई थी। इस तारीख़ के बदलने की सूचना दिल्ली के नेताओं को न मिली। अतएव उन्होंने गांधी जी के पूर्व आदेशानुसार उसी दिन स्वामी श्रद्धानन्दजी के नेतृत्व में सत्याग्रह का प्रारम्भ कर दिया। स्वामी श्रद्धानन्दजी के त्यागमय जीवन का जनता पर बड़ा प्रभाव था। ३० मार्च को एक भारी जुलूस निकाला गया और दिल्ली में पूर्ण हड़ताल की गई। जुलूस पर गोली चलाई गई। स्वामीश्रद्धानन्दजी को कुछ गोरे सिपाहियों ने गोली मारने की धमकी दी। इस पर वे बड़ी निडरता के साथ छाती खोल कर आगे हो गये और कहने लगे 'लो, मारो गोली!' बस, गोरों की धमकी हवा में उड़ गई। स्वामी जी के वीरतापूर्ण प्रदर्शन ने लोगों के हृदयों में नव जीवन फूंक दिया। उनके हृदयों में नवीन स्फूर्ति और बल का संचार हो गया। पर पीछे जाकर दिल्ली के रेल्वे स्टेशन पर कुछ झगड़ा हो गया जिसमें ५ मनुष्य मारे गये और अनेक घायल हुए।

देश व्यापी सत्याग्रह

जैसाकि ऊपर कहा गया है गांधी जी ने ३० मार्च को बदल कर ६ अप्रेल को देशव्यापी सत्याग्रह करने का आदेश दिया था। गांधी जी के इस आदेश का सारे देश ने हार्दिक स्वागत किया। सारे देश में अपूर्व उत्साह और जीवन शक्ति का संचार हो गया। सैंकड़ों स्थानों पर विराट् सभायें हुई। लाखों मनुष्यों ने इस कार्य्यक्रम से भाग लिया, देश के कोने कोने में लाखों मनुष्यों के द्वारा महान् प्रदर्शन हुए।

गांधी जी की गिरफ्तारी

यद्यपि महात्मा गांधी ने जनता से अपील की थी कि उनके आन्दोलन की सफलता उनके पूर्ण रूप से अहिंसक रहने पर निर्भर है और इस महान् सत्याग्रह आन्दोलन की जड़ सत्य और अहिंसा के दिव्य तत्व पर टिकी

हुई है, पर फिर भी उन दिनों देश के विभिन्न भागों में कुछ उपद्रव और हिंसा-कांड हुये। लाहौर में भी लूटमार हुई और गोली चली। कलकत्ते जैसे सुदूर स्थान से भी बुरे समाचार प्राप्त हुए। पंजाब की दुर्घटनाओं की बात सुनकर तथा स्वामी श्रद्धानन्द और डॉ० सत्यपाल के बुलाने पर गांधीजी ८ अप्रैल को दिल्ली के लिये चल पड़े। रास्ते में ही उन्हें हुक्म मिला कि पंजाब और दिल्ली के भीतर प्रवेश न करो। उन्होंने इस हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। इस पर इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली से कुछ दूर पलवल नामक स्टेशन से एक स्पेशल ट्रेन में बिठाकर उन्हें १० अप्रैल को बम्बई भेज दिया।

गांधीजी की गिरफ्तारी के समाचार से अहमदाबाद में कई उपद्रव हो गये, जिनमें कुछ अंग्रेज़ और कुछ हिन्दुस्तानी अफसर जान से मारे गये। १२ अप्रेल को वीरमगाँव और नड़ियाद में भी कुछ उत्पात हुए। कलकत्ते में भी उपद्रव हुए थे। वहां गोली चली थी, जिससे ५ या ६ आदमी जान से मारे गये थे और बारह बुरी तरह घायल हुये थे। बम्बई पहुँच कर गांधीजी ने स्थिति को शान्त करने में बहुत काम किया। इन उपद्रवों के कारण उन्होंने सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और उसके संबंध में एक वक्तव्य निकाला।

पंजाब में अमानुषिक अत्याचार
जलियानवाला बाग का भयंकर हत्याकांड

महात्मा गांधी के आदेशानुसार ६ अप्रैल को पंजाब के प्रायः सभी नगरों में संपूर्ण हड़ताल की गई थी। हड़तालों के साथ साथ जो बड़े बड़े प्रदर्शन भी हुए उनमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि सब जातियों ने बड़े उत्साह से भाग लिया था। हजारों लाखों नर-नारियों ने इस दिन मातम मनाया था। इस दिन किसी प्रकार का झगड़ा बखेड़ा नहीं हुआ। जनता ने बड़ी शान्ति से काम लिया।

इसके बाद क्या हुआ? ६ अप्रेल के दिन रामनवमीं का त्यौहार था। यह कहने की आवश्यकता नहीं की रामनवमीं हिन्दुओं का धार्मिक त्यौहार है, पर इस वक्त इस त्यौहार का उपयोग हिन्दू-मुसलमानों की एकता के अपूर्व प्रदर्शन में किया गया। मुसलमानों ने भी हार्दिक भाव से अपने हिन्दू भाइयों के साथ इस त्यौहार को मनाया। अमृतसर के सुप्रसिद्ध नेता डॉक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपाल ने हिन्दू मुसलमानों का भ्रातृभाव बढ़ाने में बहुत काम किया। इस दिन भी ये दोनों देश-नेता हिन्दू-मुसलमानों की एकता के संगठन का कार्य कर रहे थे। अमृतसर में इन दोनों महानुभावों ने नयी जान फूँक दी। आप दोनों महाशयों ने रोलेट एक्ट के खिलाफ आन्दोलन में बड़ा भाग लिया। आप दोनों ने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ली थी। इन बातों से आप दोनों बड़े लोकप्रिय हो गये। जनता आपको बड़े भक्ति भाव से देखने लगी। आप लोगों के व्याख्यान सुनने के लिये अमृतसर की जनता का विशाल समूह उमड़

पड़ता था। २६ मार्च सन् १९१९ को पंजाब सरकार ने आज्ञा निकाल कर डॉक्टर सत्यपाल को सार्वजनिक व्याख्यान देने की मनाई कर दी। ये अमृतसर में नज़रबन्द (Interned) कर दिये गये। जैसा कि हम ऊपर एक वक्त कह चुके हैं कि भारतवर्ष में कुछ प्रान्तों में ग़लती से ३० मार्च को भी हड़ताल की गई थी। इस दिन अमृतसर में भी हड़ताल थी। इस समय रोलेट एक्ट का विरोध करने के लिये जो सभा हुई थी उसमें सरकारी हिसाब के मुताबिक़ भी ३० या ३५ हजार मनुष्यों से ज्यादा की भीड़ थी। इस सभा की सब कार्यवाही बड़ी शान्ति से सम्पन्न हुई। इसमें जिन जिन वक्ताओं के व्याख्यान हुए, उन सबने इस आन्दोलन के शान्तिमय स्वरूप का उल्लेख किया। उदाहरण के लिये डाक्टर किचलू ने अपने व्याख्यान को समाप्त करते हुए कहा था:—

"आप लोगों को चाहिये कि आप राष्ट्रीय हित के लिये देश माता की वेदी पर अपने स्वार्थों की बलि दे दें। आपके सामने महात्मा गांधी का सन्देश पढ़ा गया है। सब देश वासियों को विरोध के लिये तैयार हो जाना चाहिये। इसका मतलब यह नहीं है कि इस पवित्र नगर में ख़ून की नदियां बहें। हमारा विरोध बिलकुल शान्तिमय होना चाहिये। आप अपनी विवेक की आज्ञा पालन करने के लिये तैयार हो जाइये। इसके लिये अगर आपको जेल जाना पड़े, या नज़रबन्द होना पड़े तो इसकी परवाह मत कीजिये। किसी को इज़ा और दुःख मत पहुँचाहिये। घर को शान्ति से जाइये। इस बाग में घूमिये। पुलिस के आदमी अथवा किसी विश्वासघातक के प्रति कटु वचन मत बोलिये, जिससे कि उसको दुःख हो और आगे चल कर शान्ति भङ्ग होने का अवसर आवे।"

उपरोक्त वाक्यों से पाठकों को उक्त नेता के मनोभावों का पता लग सकता है। आपको यह ज्ञात हो सकता है कि डाक्टर किचलू का उद्देश्य कितना पवित्र और अहिंसात्मक था। पर पंजाब के तत्कालिक लाट बहादुर ओडवायर साहब को तो भारत में उड़नेवाली हवा तक में राज-

विद्रोह और उत्पात के परमाणु दिखलाई पड़ते थे। हड़ताल की अपूर्व सफलता से उनका बचा खुचा खून भी सूख गया। वे इस शान्तिमय आन्दोलन में भयंकर उत्पात के बीज देखने लगे। आपने तत्काल डॉक्टर सत्यपाल की तरह डॉक्टर किचलू को भी सार्वजनिक व्याख्यान देने की तथा अमृतसर म्युनिसिपैलिटी की हद से बाहर जाने की तथा किसी समाचार पत्र में परोक्ष व अपरोक्ष रूप से लेख लिखने की मनाई कर दी। पण्डित कोटमल, स्वामी अभयानन्द और पण्डित दीनानाथ के लिये भी ओडवायर की तरफ़ से ऐसे ही हुक्म निकले। इन आज्ञाओं के कारण जनता के चित्त पर बुरा असर हुआ। पर इस वक्त भी जनता ने अविचल शान्ति से काम लिया। उसने अपनी ओर से शान्ति भङ्ग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। ६ अप्रेल को अमृतसर में महात्मा गांधीजी के आदेशानुसार सम्पूर्ण हड़ताल हुई। इस दिन जो सभा हुई उसमें तो जनता मानों समुद्र की तरह उमड़ पड़ी। अमृतसर के इतिहास में उसने ऐसा अपूर्व दृश्य और उत्साह कभी नहीं देखा होगा, जितना कि ६ अप्रेल को या उसके बाद में होने वाली सभाओं में देखा गया। इन सभाओं की मनोवृत्तियों को सूक्ष्म परीक्षण करने से मालूम होता था मानो राष्ट्र की आत्मा में अब जागृति के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं। ६ अप्रेल की सभा में सरकारी अन्दाज़ से ५०००० मनुष्य थे। मि० बदरुल खाँ ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। इस सभा में सरकार से प्रार्थना की गई थी कि वे डॉक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपाल के बारे में जो हुक्म निकले हैं उन्हें रद करदे। इस सभा में कितने नर्म भाषण हुए थे, यह बात नीचे लिखे हुए उद्धृत अंशों से मालूम होगी। अध्यक्ष ने अपने भाषण में कहा थाः—

"उनके (डाक्टर किचलू और सत्यपाल) खिलाफ़ केवल यही दोष है कि उन्होंने रोलेट एक्ट का सच्चा स्वरूप जनता को समझाया।"

"गत रविवार के दिन से भी आज की सभा अधिक सफलता और

अपूर्व समारोह के साथ हुई। अपने विचारों को प्रकट करने का आपका उद्देश्य सफल हुआ है। इस वक्त लोगों को अपने मनोविकारों को तेज़ नहीं करना चाहिये। शान्ति से काम लेना चाहिये। महात्मा गांधी का उपदेश है कि इस युद्ध में हम शान्ति से दुःख और कष्ट सहें, और अपने आपको उपद्रवमय साधनों का तथा कटुता का व्यवहार करने से रोकें। सत्य की अखिरकार विजय होगी। झूठ को हार मानना होगा। अगर आप मन की शान्ति को बनाये रखेंगे, धीरज और सहनशीलता से काम लेंगे तो इस सभा का विशाल प्रभाव होगा। पर अगर थोड़ा भी उत्पात हो गया; अगर दो आदमी भी शान्ति छोड़कर आपस में लड़पड़े तो बुरा परिणाम होगा। इस लिये आप महाशयों से प्रार्थना है कि आप बड़ी शान्ति के साथ बिना किसी जुलूस के इस सभा से लौटें।"

९ अप्रैल सन् १९१९ के दिन, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, रामनवमी का त्यौहार था। इस दिन नेतागण हिन्दू और मुसलमानों का भ्रातृभाव और भी दृढ़ रूप में देखना चाहते थे। यद्यपि रामनवमी धार्मिक त्यौहार था पर मुसलमानों के इसमें हिस्सा लेनेसे इसे राष्ट्रीय महत्व भी प्राप्त हो गया था। इस दिन बड़ा आलिशान जुलूस निकला। जुलूस के साथ हज़ारों हिन्दु और मुसलमान थे। डॉक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपाल ने भी जुदे जुदे स्थानों से इस दर्शनीय जुलूस को देखा था। अपने इन दोनों नेताओं का दर्शन कर जनता आनन्द से उछल पड़ती थी, और जयघोष से आकाश को गूंजा देती थी। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने भी इस विशाल जुलूस को देखा था। वह जुलूस शान्ति पूर्वक निकल गया। किसी प्रकार का उत्पात नहीं हुआ।

सर माइकेल ओडवायर जैसे प्रजा द्रोही शासक के बजाय अगर उस समय पंजाब में कोई सहृदय और उदार अन्तःकरण का शासक होता तो वह अपने प्रान्त में राष्ट्रीय आत्मा की इस जागृति को देखकर अवश्य प्रसन्न होता। पर ओडवायर इस समरोह को देखकर

आग बबूला हो गये। उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे सोचने लगे कि मेरे कड़े हुक्मों से लोगों का नर्म होना तो दूर रहा, वे अधिक साहसी होते जाते हैं। इसलिये, उसी समय, जब कि समारोह शान्ति पूर्वक हो रहा था, उन्होंने डॉक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपाल को निर्वासन (Deportation) की आज्ञा दी। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने इन दोनों देश भक्तों को बुलाकर यह हुक्म उन्हें दे दिया। इसके बाद वे मोटर में बैठा कर किसी अनिश्चित स्थान में भेज दिये गये। यह ख़बर बिजली की तरह सारे शहर में फैल गई। लोगों पर मानों वज्र गिर पड़ा। तत्काल लोगों का समूह इकट्ठा होने लगा। यह समूह शोक मग्न लोगों का था। इकट्ठे होनेवाले सब लोग प्रायः नंगे सिर और नंगे पैर थे। इनके हाथ में शस्त्रों की तो बात ही, क्या पर लकड़ियां भी न थीं। लोगों का यह समूह डिप्टी कमिश्नर के बङ्गले पर अपने प्रिय नेताओं को छोड़ने की प्रार्थना करने जा रहा था। यह झुंड अमृतसर की ख़ास ख़ास सड़कों पर से होता हुआ तथा नेशनल बैंक, टाउन हाल और क्रिश्चियन हाल की इमारतों के पास से गुज़रता हुआ डिप्टी कमिश्नर के बङ्गले पर पहुँचना चाहता था। इस वक्त तक इस झुंड ने बड़ी शान्ति से काम लिया पर आगे जाकर फ़ौजी (Picket) के द्वारा रेल्वे पुल के पास यह झुंड आगे बढ़ने से रोक दिया गया। झुन्ड में के लोगों ने कहा कि हम डिप्टी कमिश्नर के पास फ़र्याद करने जा रहे हैं। हमें जाने दीजिये। क्यों रोक रहे हैं? पर इनकी एक न सुनी गई। यह समूह ज़बरदस्ती आगे बढ़ने लगा। ज्योंही यह आगे बढ़ने लगा कि फ़ौजी सिपाहियों ने इस पर गोलियाँ चलादीं। इस समूह के कुछ आदमी मारे गये और कुछ ज़ख़मी हुए। अब तो यह समूह, जो बिलकुल शान्ति धारण किये हुए था, अशान्त हो गया। वह क्रोध से बावला सा हो गया। यहां यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि फ़ौज़ी सिपाहियों ने गोलियाँ चला कर एक शान्तिमय समूह को अशान्तिमय उपद्रवी समूह में परिणत कर दिया। मिलिटरी के इस दयाहीन बर्ताव से वह समूह आपे से बाहर हो

गया। ज्योंही यह खबर शहर में पहुँची कि फ़ौज ने लोगों के शान्तिमय झुन्ड पर गोलियाँ चलाईं और इससे कितने ही आदमी मरगये, त्योंही अन्य लोगों के समूह के समूह भी उस झुन्ड में आ मिले। गोलियों से मारे गये तथा घायल लोगों को देखकर शहर निवासियों की शान्ति भङ्ग हुई। वे बड़े क्रुद्ध हुए। थोड़ी ही देर में एक बड़ा भारी झुन्ड फिर रेल्वे पुल की ओर चला इस वक्त यह झुन्ड लकड़ियाँ आदि लिये हुए था। इस वक्त रेलवे की दो पुलों पर फौजी पहरा बैठा हुआ था। इसी बीच में वकील लोग यह हुल्लड़ सुनकर बाहर आये, और उन्होंने शान्ति स्थापित करने के कार्य में डिप्टी कमिश्नर को अपने आप हो कर सहायता देने का वचन दिया। उन्होंने डिप्टी कमिश्नर से कहा कि इस कार्य में हम आपकी सहायता करने के लिए तैयार हैं। डिप्टी कमिश्नर ने इन लोगों को शांति स्थापित करने के लिये बीच में गिरने की आज्ञा देदी। इन वकीलों से अमृतसर पुलिस के डेप्युटी पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट मि० पोमर ने कहा कि एक बड़ा भारी झुण्ड रेलवे यार्ड की तरफ गया है। इस पर कुछ वकील रेलवे यार्ड की तरफ गये और कुछ पुल के पास ही बने रहे। वकीलों ने जाकर रेलवे गॉर्ड के पास के झुन्ड को समझा बुझा कर बिखेर दिया। पर रेलवे पुल के पास स्थिति कुछ बेढ़ब हो गई। वहाँ के झुंड को मिस्टर सलेरिया और मि० मक़्बूल महम्मद शान्ति पूर्वक बिखर जाने के लिये समझा रहे थे और साथ ही में वे अधिकारियों से गोलियाँ न चलाने के लिये प्रार्थना कर रहे थे। सफलता के कुछ चिन्ह दिखाई देने लगे थे कि झुन्ड में से कुछ लोगों ने फ़ौज पर पत्थर फेंके। इस फ़ौज ने तुरन्त गोलिया चला दी। इससे झुन्ड में के बीस आदमी मर गये और बहुत से घायल हुए। झुन्ड को समझाने वाले उक्त दोनों सज्जन गोलियों क मार से करीब करीब बच गये। फ़ौज़ी अफ़सर ने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि उक्त दोनों सज्जनों के झुन्ड में होते हुए गोलियां चला दीं गईं। पर इस गोलीकांड से झुन्ड का क्रोध आग की तरह भभक उठा। उसने बदला लेने की ठानी। क्रोध से पागल हुये झुन्ड ने एलायन्स बैंक

पर हमला किया और जब उसके मैनेजर मिस्टर थॉमसन ने झुन्ड पर रिवॉल्वर से गोली चलाई तो वह और भी पागल हो गया और उसने मिस्टर थॉमसन को मार डाला। इतना ही नहीं, उनके शरीर को बाहर फेंक कर उसे बैंक के सामान से जला दिया। सर्जन्ट रोलेण्ड को जनता के क्रुद्ध हुए झुन्ड ने रिगोपुल के पास मार डाला। टाउन हॉल पोस्ट ऑफिस और मिशन हाल जला दिये गये। भगतनवाला स्टेशन का एक हिस्सा जला दिया गया। चारटर्ड बैंक पर भी हमला किया गया : पर उसे विशेष नुकसान नहीं पहुँचा। उक्त बैंक के हिन्दुस्थानी नौकरों ने स्थिति को बचा लिया। मिस शेरवुड नामक अँग्रेज़ महिला पर, जो सायकल पर चढ़ कर जा रही थी, क्रूरता पूर्वक हमला किया गया। पर एक विद्यार्थी के पिता ने उसकी इस आफ़त से रक्षा की। इस झुण्ड में निःसन्देह कुछ बदमाश थे जो मौक़ा देखकर लूट खसोट से अपना मतलब बनाना चाहते थे। यहां हम यह भी कह देना चाहते हैं कि बैंक का कुछ माल पुलिस के लोगों के पास से भी बरामद हुआ। १० अप्रेल के पाँच बजे के पहिले पहिले लूट खसोट आदि नाशक कार्यों का अन्त हो गया था।

यहां यह कहदेना आवश्यक है कि अमृतसर के प्रिय नेताओं का निर्वासन का समाचार सुन कर अमृतसर की जनता को क्रोध आ रहा था। क्योंकि यह निर्वासन बिलकुल अन्यायपूर्ण था। जनता का यह क्रोध फ़ौज़ के गोलियां चलाने से और भी अधिक बढ़ गया। जलती आग में घी डालने की कहावत चरितार्थ हुई। पर यहां यह तो कहना ही पड़ेगा कि अधिकारियों ने अपने सहानुभूति हीन बर्ताव से जनता को उत्तेजित होने का मौक़ा दिया। जनता शान्ति से कार्य कर रही थी कि उस पर गोलियां चलाई गईं। साथ ही मैं जनता की ज्यादतियों की भी निंदा किये बिना नहीं रह सकते। उसने कुछ निर्दोष अँग्रेज़ों को जान से मारने का तथा एक अबला स्त्री पर हमला करने का पाप किया। महात्मा गांधी ने अधिकारियों के भीषण अत्याचारों के साथ साथ अमृतसर की कांग्रेस में

जनता द्वारा की गई ज़्यादतियों की भी तीव्र निन्दा की और इस विषय का प्रस्ताव पास करवाया।

इन अपराधों के लिये अगर हमारे अधिकारीगण न्याय बुद्धि से काम लेते और अपराधियों को उचित दण्ड देते तो इसमें कोई एतराज़ नहीं था। पर दुःख की बात है कि अधिकारियों के मन में बदला लेने की कुत्सित भावना घुस गई। वे न केवल अपराधियों ही को, पर हज़ारों निरपराधियों को ऐसी क्रूर निर्लज्ज और अपमानजनक सज़ा देने में उतारू हो गये। उन्होंने भय का ऐसा भयानक साम्राज्य स्थापित करना चाहा जिससे कोई भी हिन्दुस्थानी किसी भी अँग्रेज़ के सामने आंख उठा कर भी न देख सके। एक जिम्मेदार फ़ौजी अफ़सर ने तो यहां तक कह डाला कि एक अँग्रेज़ के बराबर १००० हिन्दुस्थानियों की जानें हैं। इसका मतलब यह है कि प्रति अँग्रेज़ की जान के पीछे १००० हिन्दुस्थानियों को संसार से उठा दिया जाय तो कोई हानि नहीं है। कुछ अफ़सर सारे अमृतसर नगर को मशीनगन्स से उड़ा देने की स्कीमें सोचने लगे। पर पीछे जाकर यह प्रस्ताव रोकने पड़े। क्योंकि यह सोचा गया कि सिक्खों के सुनहरी मन्दिर को बिना चोट पहुँचाये नगर पर गोलाबारी नहीं की जा सकती और जहां सिक्खों के मन्दिर को चोट पहुँची कि धर्म के नाम पर मरनेवाले सिक्खों में बड़ी अशान्ति छा जायगी और ऐसा बलवा मच जायगा जिसे सम्भालना भी कठिन हो जायगा। यद्यपि कुछ बुद्धिमानों की राय मानकर स्थानीय अधिकारियों ने नगर पर गोला बारी करने के प्रस्ताव को गिरा दिया पर बदला लेने की आग उनमें ज्यों की त्यों सुलगती रही। ११ अप्रैल को बदला लेने की नीति का अवलम्बन कर नगर की बिजली और पानी का सम्बन्ध तोड़ दिया। बिजली के बिना तो काम चल सकता है पर जल के बिना जनता की कैसी दुर्दशा हुई होगी, इसे उसका भगवान ही जानता था। जब तक मार्शल लॉ आरम्भ नहीं हुआ तब तक नगर में जल और बिजली का सम्बन्ध तोड़

दिया गया। ११ तारीख़ के सुबह १० बजे फ़ौज़ की गोलियों से मरे हुए लोगों के शवों को अन्त्येष्टि क्रिया के लिये स्मशान में ले जाना था। ज्योंही अधिकारियों ने यह सुना कि शवों के साथ हज़ारों आदमी जाने वाले हैं त्योंही डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट ने यह हुक्म जारी किया:—

"The troops have orders to restore order in Amritsar and to use all force necessary. No gatherings of persons nor processions of any sort will be allowed. All gatherings should be fired on. Respectable persons should keep indoors untill order is restored. Dead may be carried out for burial or burning by parties of not more than eight." अर्थात् फ़ौजों को हुक्म है कि वे सब आवश्यक शक्ति लगाकर अमृतसर में शांति स्थापित करें। लोगों को झुन्ड बनाने की या किसी प्रकार के जुलूस निकालने की मुमानियत है। अगर लोग इकट्ठे होकर झुन्ड बनावेंगे तो उन पर गोलियां चलाई जावेंगी। जब तक शान्ति स्थापित न हो तब तक भले आदमी घर के अन्दर रहें। मृत मनुष्यों के शव के साथ स्मशान या कबरीस्तान में आठ आठ आदमियों से ज्यादा न जावें।"

बात यह है कि अधिकारियों में बदला लेने का भाव विष से भी अधिक तीव्र हो रहा था। उनकी मनोवृत्तियां बड़ी कलुषित हो रही थीं। वे मौका ही देख रहे थे कि ज़रासा कारण मिला कि गोलियां चलाई जाय। लोगों ने अधिकारियों की आज्ञा का पालन किया और उन्होंने अधिकारियों को ज़रासा भी मौक़ा न दिया जिससे उन्हें गोली चलाने का बहाना मिल जाय। जालंधर से अमृतसर को सैनिक सहायता आ पहुँची। शाम को जालंधर का कमांडिंग ऑफ़िसर जनरल डायर भी आ पहुँचा। डिप्टी कमिश्नर ने नगर का शासन उक्त जनरल डायर को सौंप दिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि डिप्टी कमिश्नर का यह काम क़ानून

के ख़िलाफ़ था। ग़ैरक़ानूनी जमाव (unlawful assembly) को भङ्ग करने के लिये ज़ाब्ता फ़ौजदारी (Criminal procedure) के अनुसार डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट को यह अधिकार है कि वह सैनिक सहायता ले। पर सैनिक अधिकार में नगर का शासन देने की बात कहीं नहीं है। अस्तु, हम इस विषय पर अधिक लिखने के लिये असमर्थ हैं। क़ानून के विशारदों का यह काम है और उन्होंने इस विषय पर अच्छा प्रकाश भी डाला है।

१२ अप्रेल सन् १९१८ को जनरल डायर अपनी फ़ौज के साथ शहर में घुमा और उसने कोई एक दर्ज़न आदमियों को इस शक़ में गिरफ़्तार किया कि उन्होंने दंगे में हिस्सा लिया है। इस पर भी लोगों ने किसी तरह का विरोध या क्रोध प्रकट नहीं किया। तारीख़ १२ तक इस प्रकार की कोई घोषणा शहर में नहीं की गई थी कि यह शहर मार्शल लॉ के अन्दर आ गया है और इस पर अब मुल्की अधिकारियों के बजाय फ़ौज़ी अधिकारियों का शासन रहेगा। १३ तारीख़ को सुबह के वक्त जनरल डायर, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, तहसीलदार और कुछ पुलिस अफ़सरों के साथ शहर के कुछ हिस्सों में घुमा और उसने कुछ स्थानों पर यह घोषणा करवाई:—

(१) आप लोगों को सूचित किया जाता है कि अमृतसर का कोई निवासी निज के या किराये के वाहन (conveyance) में निम्न लिखित अफसरों से पास प्राप्त किये सिवा शहर से बाहर न निकले।

(अ) अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर।

(ब) मि० जे० एफ़० रेहिल, पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट अमृतसर।

(स) मि० बेकेट, असिस्टेन्ट कमिश्नर अमृतसर।

इनके अतिरिक्त और ६ अफसरों की सही थी।

(२) शहर में रहने वाला कोई भी पुरुष रात के आठ बजे के बाद

घर छोड़ कर बाहर न निकले। अगर कोई आदमी आठ बजे के बाद सड़क पर मिलेगा तो वह गोली से मार दिया जायगा। कोई भी ऐसा जुलूस या जमाव, जिसमें चार आदमी होंगे, ग़ैरक़ानूनी समझा जायगा और वह आवश्यकता पड़ने पर शस्त्रों की शक्ति से बिखेर दिया जायगा।

इस घोषणा-पत्र की जानकारी नगर में बहुत कम लोगों को हुई। जनरल डायर ने भी हंटर कमेटी के सामने जो गवाही दी, उससे भी प्रकट होता है कि घोषणा-पत्र का ज्ञान अधिकांश लोगों को न होने पाया। ऐसी दशा में लोग अगर कोई सभा करते तो इसमें उन बेचारों का क्या दोष था। इसके अलावा त्यौहार की वजह से हज़ारों लोग बाहर से आये हुए थे, जिन्हें इस घोषणा का तनिक भी ज्ञान न था। इसके अलावा एक लड़का टिन का डिब्बा बजा कर जल्यांवाले बाग में सभा होने की घोषणा कर रहा था। इसे किसी ने न रोका; क्योंकि डायर और उसके साथी तो मौक़ा ही देख रहे थे कि उन्हें क़त्ले आम का थोड़ा सा भी बहाना मिल जाय। बेचारे लोगों को यह ख़याल भी न था कि हमारे साथ ऐसा सुलूक किया जायगा। जल्यानवाले बाग में लोग जमने लगे। उनमें अधिकांश लोग ऐसे थे जिन्हें जनरल डायर के फ़रमान का कुछ भी इल्म न था। छोटे छोटे बच्चे, जो कि उक्त बाग के पास खेल रहे थे, जल्यानवाले बाग की सभा में जा बैठे। कोई पचीस हजार आदमियों का जमाव इकट्ठा होगया। बाहर से आये हुए सैंकड़ों आदमी भी उसमें मौजूद थे। खुद पंजाब सरकार ने अपनी रिपोर्ट में प्रकाशित किया है:—

"There were a considerable number of peasants present at the Jalianwalla Bagh meeting of the 13th, but they were therefore other than the political reasons." अर्थात् जल्यानवाले बाग में की सभा में बहुत बड़ी तादाद में किसान लोग भी जमा हुए थे, पर उनके जमा

होने के कारण राजनैतिक न होकर कुछ और ही थे।

जलयानवाला बाग, जहां यह सभा हो रही थी, शहर के मध्य में एक खुला हुआ स्थान है। शहर के मकान ही इसकी चहार दीवारी बनाये हुए हैं। इसका दरवाजा बहुत ही सकड़ा है, इतना कि एक गाड़ी उसमें होकर नहीं निकल सकती। बाग में जब बीस हज़ार आदमी इकट्ठे हो गये, जिसमें पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे भी थे, जनरल डायर ने अपने सैनिकों सहित उसमें प्रवेश किया। जिस समय ये लोग घुसे उस समय हंसराज नाम का एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। बाग में घुसते ही जनरल डायर ने गोली चलाने का हुक्म दे दिया। जैसे कि हन्टर कमीशन के सामने अपनी गवाही में उसने कहा था—कि उसने लोगों को तितर-बितर होने की आज्ञा देकर तुरन्त गोली चलाने का हुक्म दे दिया। दूसरी बार उसने यह स्वीकार किया कि तितर-बितर हो जाने के हुक्म देने के तीन मिनट बाद ही उसने गोलियाँ चलवादी थी। यह बात तो स्पष्ट ही है कि २० हज़ार आदमी दो-तीन मिनट में तितर-बितर नहीं हो सकते थे। और वे भी विशेष कर एक बहुत तङ्ग दरवाजे में होकर। गोली तब तक चलती रही जब तक कि सारे कारतूस खत्म नहीं हो गये। कुल सोलह सौ फैर किये गये थे। सरकार के स्वयं अपने बयान के मुताबिक चार सौ मरे और घायलों की संख्या एक और दो हज़ार के बीच में थी। गोली हिन्दुस्थानी फ़ौज़ों से चलवाई गई थी, जिनके पीछे गोरे सिपाहियों को लगा दिया गया था। ये सबके सब बाग में एक ऊँचे स्थान पर खड़े हुए थे। सबसे बड़ी दुःखद बात वास्तव में यह थी कि गोली चलाने के बाद मृतक और उन लोगों को जो सख़्त घायल हो गये थे, सारी रात वहीं पड़ा रहने दिया गया। वहां उन्हें रातभर न तो पानी ही पीने को मिला और न कोई डॉक्टरी या कोई अन्य सहायता ही। डायर का कहना था, जैसा कि बाद को उसने प्रकट किया:—"चूँकि शहर फ़ौज़ के कब्ज़े में दे दिया गया था और इस बात की डौंडी पिटवा दी गई थी कि कोई भी

सभा करने की इजाज़त नहीं दी जायगी, तो भी लोगों ने उसकी अवहेलना की। इसलिये उन्हें एक सबक सिखा देना चाहा, ताकि वे उसकी खिल्ली न उड़ा सकें। आगे चलकर उसने कहा:—मैंने और भी गोली चलाई होती, अगर मेरे पास कारतूस होते। मैंने सोलह सौ बार ही गोली चलाई, क्योंकि मेरे पास कारतुस खत्म हो गये थे।" आगे चल कर फिर उसने कहा—"मैं तो एक फ़ौज़ी गाड़ी (आमर्डकार) ले गया था लेकिन वहां जाकर देखा कि वह बाग के भीतर घुस ही नहीं सकती थी। इसलिए उसे वहीं छोड़ दिया था।"

हंटर कमेटी के सामने डायर से जो सवाल जवाब हुए, उनका अनुवाद हम ज्यों का त्यों नीचे प्रकाशित करते हैं।

लॉर्ड हंटर:—मैं समझता हूँ तुम जल्यानवाले बाग़ में जाने वाले तङ्ग रास्ते से घुसे।

जनरल:—हां।

लॉर्ड हंटर:—शायद तुमने अपनी मोटर गाड़ियां पीछे छोड़ दी?

जनरल:—हां।

लॉर्ड हंटर:—kurkris से सुसज्जित गुरखा लोग तुम्हारे साथ थे या वे पीछे छोड़ दिये गये थे?

जनरल:—वे बाग़ में साथ आये थे।

लॉर्ड हंटर:—तब तुम्हारे साथ ४० तो गुरखा थे और पच्चीस पच्चीस आदमियों के सशस्त्र दो कॉलम थे?

जनरल:—हाँ।

लॉर्ड हंटर:—जब तुम बाग़ में घुसे तब तुमने क्या किया?

जनरल:—मैंने गोलियां चलाना शुरू कीं।

लॉर्ड हंटर:—क्या एकदम?

जनरल:—हां, एकदम मैंने ३० सेकण्ड (आध मिनट) में झटपट

विचार कर गोलियां चलाने का हुक्म दे दिया।

लार्ड हंटरः—बाग़ में जमा हुआ समूह क्या कर रहा था ?

जनरलः—वहां लोग सभा कर रहे थे। बीच में एक उठे हुए ऊँचे स्थान पर एक आदमी खड़ा था। वह अपने हाथ घुमाता हुआ दीख पड़ता था। वह व्याख्यान दे रहा था।

लॉर्ड हंटरः—क्या उस सभा में उस आदमी के व्याख्यान देने के अतिरिक्त और भी कुछ हो रहा था ?

जनरलः—नहीं, मैं इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख सका।

लॉर्ड हंटरः—जब तुम इस झुन्ड को बिखेरने लगे तो क्या उस वक्त वह झुन्ड कुछ करने को उतारू हुआ ?

जनरलः—नहीं साहब, लोग इधर उधर भागने लगे।

लॉर्ड हंटरः—उस समय तक मार्शल ला जारी नहीं हुआ था। अतएव क्या तुमने इस जोखिम भरे (Serious step) काम को करने के पहिले डिप्टी कमिश्नर से, जो कि मुल्की अधिकारी थे और जिन पर नगर की शान्ति का जिम्मा था, सलाह लेना ठीक नहीं समझा।

जनरलः—वहां उस समय डिप्टी कमिश्नर नहीं थे, जिनसे कि मैं सलाह लेता। मैंने इस सम्बन्ध में इसके आगे किसी से सलाह लेना मुनासिब भी नहीं समझा।

लॉर्ड हंटरः—गोलियां चलाने से क्या तुम्हारा यह अभिप्राय था कि तुम झुण्ड को बिखेर दो ?

जनरलः—नहीं साहब, मैं तब तक गोलियां चलाने वाला था जब तक कि झुण्ड बिखर न जाय।

लॉर्ड हंटरः—क्या तुम्हारे गोलियां चलाते ही झुण्ड बिखरने लग गया ?

जनरलः—जी हां, तुरन्त।

लॉर्ड हंटरः—क्या फिर भी तुम गोलियां चलाते ही रहे ?

जनरलः—हां ।

लॉर्ड हंटरः—जब तुमने झुण्ड के बिखरने के चिन्ह देख लिये, तब फिर तुमने गोलियां चलाना बंद क्यों नहीं किया ?

जनरलः—मैंने अपना यह कर्त्तव्य समझा कि जब तक झुण्ड पूरी तरह न बिखर जाय, तब तक गोलियां चलाता रहूँ। अगर मैं थोड़ी देर तक गोलियां चलाकर बंद रह जाता तो मेरा गोलियां चलाना न चलाना बराबर हो जाता।

लॉर्ड हंटरः—तुम कितनी देर तक गोलियां चलाते रहे ?

जनरलः—दस मिनिट तक ।

लॉर्ड हंटरः—क्या सभा में बैठे हुए लोगों के पास लकड़ियां थीं ।

जनरलः—मैं नहीं कह सकता कि उनके पास लकड़ियां थीं । मेरा अनुमान है कि थोड़े लोगों के पास लकड़ियां होंगी ।

लॉर्ड हंटरः—तुम ने यह ख़याल किस मुद्दे पर कर लिया कि अगर तुम लोगों को बाग़ छोड़ने का हुक्म देते, तो तुम्हारे गोली चलाये सिवा और भी लगातार कितनी ही देर तक चलाये सिवाय बाग नहीं छोड़ते

जनरलः—हां, मेरा ख़याल है कि यह बिलकुल सम्भव था कि बिना गोली चलाये सिवाय भी मैं झुण्ड को बिखेर देता ।

लॉर्ड हंटरः—तुमने इस उपाय का क्यों नहीं अवलम्बन किया ?

जनरलः—ये सब वापस लौट कर आते और मेरी तरफ़ हंसते, और इस तरह मैंने अपने आपको बेवक़ूफ़ बनाया होता ।

लॉर्ड हंटरः—क्या झुण्ड बहुत ही घना (Dense) था ।

जनरलः—हाँ बहुत ही घना (Dense) था,

लॉर्ड हंटरः—क्या तुमने घायलों की कुछ सहायता की ?

जनरलः—नहीं साहब, वहां मैंने कुछ सहायता न की। अगर लोग मुझसे बाद में कहते तो मैं कुछ करता। उस वक्त सहायता करने का मेरा काम न था। यह डाक्टरों का काम था।

यहां हमने लार्ड हंटर के साथ डायर के जो प्रश्नोत्तर हुए थे, उन्हीं को दिये हैं। हंटर कमेटी के और सदस्यों के प्रश्नों के उत्तर में डायर ने जो बातें कही हैं उनसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सर सेटलवाड के प्रश्नों का उत्तर देते हुए डायर ने कहा था, कि तंग रास्ता होने के कारण मैं अपनी आरमर कार को भीतर न ले जा सका। अगर रास्ता चौड़ा होता तो मैं उसे भीतर ले जाता और मशीन गन से लोगों पर गोले बरसाता। मैं लोगों को पूरी सज़ा देता। मैं उन्हें ऐसा सबक सिखाता कि वे देखते रह जाते। डायर की गवाही से उसकी राक्षसी करतूत यहीं तक पूरी नहीं होती। जहाँ लोगों का झुँड अधिक डट कर बैठा था वहीं लक्ष्यकर इस राक्षस ने गोलियां चलाईं। जब लोगों के झुँड के झुँड भगने लगे तो इस पिशाच ने लक्ष्य करके भगते हुए झुँडों पर गोलियां दागीं। वह दुष्ट तब तक गोलियां चलाता रहा जब तक कि इसके पास का गोला बारूद समाप्त न हो गया। अगर इसके पास अधिक गोला बारूद होता तो न मालूम यह पच्चीस हज़ार आदमियों में से एक भी आदमी को जिन्दा छोड़ता या नहीं। इस निर्दयी ने भगते हुए मनुष्यों और बच्चों पर, दिवाल पर चढ़कर भगने वाले भयभीत मनुष्यों पर, दनादन गोलियाँ चलाईं। मदन जैसे कई सुकुमार बच्चे इस हत्यारे के शिकार बने। १२०० निर्दोष और निःशस्त्र मनुष्यों की जिस प्रकार उसने हत्याकी, वह हृदय दहला देने वाली है। संसार में आज तक जो महा भयानक हत्या काण्ड हुए हैं उनमें जल्यानवाले बाग़ का हत्याकाण्ड बहुत ही निकृष्ट रहेगा। मि० सी० एफ़० एन्ड्रूज़ ने इस हत्याकाण्ड की तुलना ग्लेन्को के हत्याकान्ड से की है। आश्चर्य यह है कि पंजाब के तत्कालिक ले० गवर्नर सर माइकेल ओडवायर ने जनरल डायर के इस पाशविक हत्या

कायद को पसन्द किया और उसके पास तार भेजा कि लेफ्टिनेंट गवर्नर तुम्हारे इस कार्य को पसन्द करते हैं।

१५ अप्रेल को कोई दो बजे के अन्दाज़ पर स्थानीय प्रतिष्ठित सज्जनों की तथा म्युनिसिपल कमिश्नरों आदि की कोतवाली में एक सभा की गई और उनके सामने कमिश्नर ने निम्नलिखित आशय का व्याख्यान दिया:—

"तुम लोग युद्ध चाहते हो या शान्ति। हम हर तरह से तैयार हैं। सरकार सब तरह से शक्तिशाली है। सरकार ने जर्मनी पर विजय प्राप्त की है और वह हर तरह से मुस्तैद है। आज जनरल हुक्म देंगे। शहर उनके ताबे में है। मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम्हें उनका हुक्म मानना पड़ेगा।" इतना कह कर कमिश्नर साहब चले गये। इसके बाद जनरल डायर अपने साथियों के साथ आया। वह और उसके साथी क्रोध से आग बबूला हो गये थे। उसने उर्दू में एक छोटा सा भाषण दिया जिसका आशय यह है:—

"तुम लोग अच्छी तरह जानते हो कि मैं सिपाही हूँ। तुम युद्ध चाहते हो या शान्ति। अगर तुम युद्ध चाहते हो तो उसके लिये तुम तैयार हो जाओ। अगर तुम शान्ति चाहते हो तो मेरा हुक्म मानो और और दूकानें खोल दो। अगर ऐसा नहीं करोगे तो मैं गोली मार दूंगा। मेरे लिये फ्रान्स का रण मैदान और अमृतसर एकसा ही है। मैं फ़ौजी आदमी हूं और सीधे रास्ते जाने वाला हूं। अगर तुम युद्ध चाहते हो तो साफ़ साफ़ कह दो। अगर तुम शान्ति चाहते हो तो दूकानें खोल दो। तुम लोग सरकार के ख़िलाफ़ बोलते हो। जर्मनी और बंगाल में जिन लोगों ने शिक्षा पाई है वे राजद्रोह की बातें करते हैं। मैं इन सब की रिपोर्ट करूंगा। मेरा हुक्म मानो। मैं और कुछ नहीं चाहता। मैंने तीस वर्ष तक फ़ौज़ में नौकरी की है। मैं हिन्दुस्तानी और सिक्ख सिपाहियों को खूब समझता हूँ। तुम्हें शान्ति रखना होगा। अगर तुम दूकानें नहीं खोलोगे तो जबरदस्ती खुलवाई जायेंगी। रायफलों का उपयोग

किया जायगा। तुम मुझे बदमाशों का पता बताओ। मैं उन्हें गोली से मार दूंगा। मेरा हुक्म मानो और दुकानें खोल दो। अगर युद्ध चाहते हो तो वैसा कहो।"

इसके बाद डिप्टी कमिश्नर साहब बोले। "अँग्रेजों को मार कर तुमने बहुत बुरा किया है। इसका बदला तुमसे और तुम्हारे बच्चों से लिया जायगा।"

१५ अप्रेल को सब दूकानें खुल गईं। लोगों को आशा होने लगी कि अब मार्शललॉ उठा लिया जायगा और मुल्की शासन शुरू कर दिया जायगा। पर लोगों की यह आशा घोर निराशा में परिणित हुई। अधिकारियों की क्रोध-ज्वाला अब भी शान्त नहीं हुई थी। ६ जून तक मार्शललों का कठोर एवं निर्दय शासन बना रहा। अमृतसर के लोगों को हर प्रकार का पाशविक कष्ट दिया जाने लगा। इसके कुछ नमूने देखिये।

(१) जिस सड़क पर मिसज़ शेरवुड पर हमला किया गया था वह गली लोगों को कोड़े मारने के लिये तथा उन्हें पेट के बल रेंगने के लिये काम में लाई गई।

(२) हर एक आदमी न केवल अँगरेज अफसरों ही से पर हर एक अँग्रेज़ से सलाम करने पर बाध्य किया गया।

(३) छोटे छोटे अपराधों पर भी खुले आम कोड़ों की सज़ा दी जाने लगी।

(४) सब वकील बिना किसी कारण के स्पेशल कॉन्सटेबल बनाये गये और उनसे मामूली कुलियों सा काम लिया जाने लगा।

(५) बिना किसी अपराध के ही बहुत से लोग गिरफ़्तार किये जाने लगे और हवालात में रखे जाने लगे। उनके साथ अमानुषिक बर्ताव किया जाने लगा। उन्हें भयंकर यातनाएँ दी जाने लगीं।

(६) असाधारण अदालतें (Special Tribunels) नियुक्त की गईं। इनमें जैसा न्याय होता था, वह हमारे पाठकों पर प्रकट ही है।

अब हम इन बातों का कुछ खुलासा करना चाहते हैं। जनरल ने क्रालिंग ,आर्डर याने पेट के बल रेंगने का हुक्म दिया था। जिस गली में मिस शेरवुड पर हमला किया गया था, उस गली में आने जाने वाले हिन्दुस्थानियों को पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता था। दिखलाने में तो जनरल डायर का यह हुक्म था कि दोनों हाथ और घुटने टेक कर उस गली में से निकला जाय पर इसका अमल दूसरी तरह से होता था। उक्त गली में रहने वाले मनुष्यों को उस गली में से होकर आना जाना पड़ता था तो कीड़ों की तरह उनको पेट के बल रेंगना पड़ता था। इस गली की लम्बाई १५० गज़ थी। किसी किसी मनुष्य को इतने लम्बे फ़ासले तक पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता था। यह गली बड़ी घिनौनी (Dirty) थी। कहीं कहीं मैला भी पड़ा रहता था। ऐसी हालत में हमारे भाइयों को उसमें पेट रगड़ कर गुज़रना पड़ता था। क्या इस अपमान का कुछ ठिकाना है?

बड़े बड़े सुप्रतिष्ठित सज्जनों को इस प्रकार पेट के बल रेंग कर उस गली में से गुज़रना पड़ा। जिनके मकान उस गली में थे और आने जाने के लिये दूसरा रास्ता नहीं था, उनके वास्ते किसी ज़रूरी काम के अर्थ बाहर जाने के लिये पेट के बल रेंगने के सिवाय दूसरा चारा ही न था। यह मुसीबत यहीं तक पूरी नहीं होती थी। कई रेंगने वालों को सिपाहियों की बूटों की ठोकरें और घुस्से भी खाने पड़ते थे। कांग्रेस सब कमेटी के सामने अमृतसर के अफ़ीम ठेकेदार लाला रैलेराम ने जो गवाही दी, वह इस प्रकार है:—

"इस गली में एक जैन मन्दिर है, जिसमें उस समय कुछ जैन साधु रहते थे। लाला रैलेराम का मकान उक्त मन्दिर के पास था। जब वह

अपनी दुकान पर आता था तब उसे पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता था। वह कहता है मैं पेट के बल रेंग कर गली से जा रहा था कि उन्होंने बूटों से मुझे ठोकरें मारीं और संगीनों के ठोसे (Blows) दिये······ उस दिन भोजन करने तक के लिये मैं घर नहीं गया······ पर आठ दिन तक एक भी भंगी टट्टी साफ़ करने के लिये नहीं आया। पानी भरने के लिये भी इन दिनों कोई नहीं आता था।" लाला गणपतराय अपनी गवाही में कहते हैं कि उन लोगों को भी जो जैन मन्दिर में पूजा करने के लिए जाते थे पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता था। लाला देवीदास बेंकर अपनी गवाही में कहते हैं "मैंने इस गली से हाथ पैरों के बल जाना चाहा, पर मुझे संगीन दिखाया गया और मैं पेट के बल रेंगने को विवश किया गया।" कहानचन्द्र नामक एक मनुष्य, जो बीस वर्ष से अन्धा था, पेट के बल गिंडोले की तरह चलाया गया और ऊपर से ठोकरों से भी पीटा गया। इस प्रकार पचासों निर्दोष आदमियों की दुर्गति हुई और घोर अपमान किया गया। अब दूसरे राक्षसी और पाशविक अत्याचारों को देखिये।

इसी गली में आम रास्ते पर एक मंच बनाया गया था, जहां बेचारे कई अभागे हिन्दुस्थानी भाई नंगे कर कोड़ों से पीटे जाते थे। पाठक आप यह न सोचिये कि ये बेचारे किसी अपराध के कारण पीटे जाते थे। नहीं, अगर कोई फ़ौजी अफ़सर या अंग्रेज़ से सलाम करने में ग़लती करता तो कभी कभी उस अभागे को सरे-आम यह भीषण यन्त्रणा सहनी पड़ती थी। मियां फिरोजुद्दीन ऑनरेरी मजिस्ट्रेट ने कांग्रेस-जॉच-सब कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा थाः—

"मि॰ प्लोमर और जनरल को सलाम करते समय अगर कोई खड़े नहीं होते तो उन्हें कोड़ों की सज़ा मिलती। इससे लोग इतने भयभीत हो गये थे कि बहुत से तो सारे दिन खड़े रहते जिससे कि उनसे किसी प्रकार की ग़लती होने न पावे और उन्हें ऐसी सज़ा न भुगतना पड़े।"

कोड़ों की सज़ा (Flogging) केवल घोर अपमानजनकही नहीं थी किन्तु वह अत्यन्त निर्दयता और पाशविकता से भी भरी हुई थी। जिन लोगों को यह सज़ा दी जाती थी उनके हाथ ठिकटिकी से बांध दिये जाते और फिर उन्हें नंगे कर उनके जिस्म पर पूरी ताक़त कोड़े उड़ते। हर एक के तीस तीस कोड़े लगते। सुन्दरसिंह नामक एक आदमी चौथे कोड़े के बाद बेहोश हो गया। उसके मुँह में एक सिपाही ने जल छिड़का जिससे उसे फिर होश आ गया। फिर उसके कोड़े लगने लगे। वह बिलकुल बेहोश हो गया। उसकी बेहोशी की इन दुष्टों ने कुछ परवाह न की और जब तक तीस का नम्बर पूरा न हुआ उसके कोड़े पड़ते ही गये। उसके बुरी तरह ख़ून बहने लगा। जब वह मंच से उतारा गया तब वह बिलकुल बेहोश था। दूसरे लड़कों को भी इसी पाशविक निर्दयता से कोड़ों से पीटा गया। बेहोशहो जाने पर भी—ख़ूनके बहते रहने पर भी, इन अभागों को वे राक्षस कोड़ों से कूटते रहते थे। यह निर्दयता—यह पाशविक दुष्टता—यहीं तक पूरी न हुई। अगर कोड़ों की इस निर्दय मार से कोई इतना निर्बल और निःसत्व हो जाता कि वह चल नहीं सकता तो पुलिस उसे घसीट कर ले जाती। कहां तक इस राक्षसी निर्दयता की भयङ्कर कहानी कहें। हमारी तो लेखनी कांपने लगती है, और आँखों के सामने काले पीले आने लगते हैं। कई अभागे इस क्रूर निर्दयता से बचने के लिए सैनिक अफ़सरों से प्रार्थना करते, जुर्माना देने पर उतारू होते और जेल की सज़ा भुगतने के लिए तैयार हो जाते पर ये राक्षस इनकी एक न सुनते और इनके नंगे बदन पर सरे आम इतने कोड़े लगाते थे कि ये बेहोश हो जाते थे और उनके ख़ून बहने लगता था। ठंडे जल से इन्हें होश में लाकर फिर कोड़े लगाये जाते। कई दुबले पतले लड़कों को भी इसी राक्षसी क्रूरता से पीटा गया। जब जनरल डायर से पूछा गया कि सरे आम यह कोड़ों की सज़ा क्यों दी गई, तब वह दुष्ट क्या जवाब देता है कि "अराजकों पर अच्छा प्रभाव

जमाने के लिए।" दूसरा साहब कर्नल फ्रेन्क जानसन हंटर कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहता है कि कोड़ों की यह सज़ा तो सबसे अधिक दयालुता पूर्ण थी। इसने कहा कि जेल की सज़ा से तो कोड़ों की सज़ा अच्छी है; क्योंकि जेल तो बहुत आराम की जगह है।

कहाँ तक कहा जावे? भयंकर अत्याचार किये गये। कहीं कहीं तो लोगों के गुदा द्वार में फच्चर तक ठोंके गये। श्रीमती सरोजनी नायडू के "यंग इन्डिया" में प्रकाशित एक पत्र से मालूम होता है कि कई भारतीय स्त्रियों को वस्त्रहीन कर उनके साथ ऐसा लज्जा दायक व्यवहार किया गया कि जिससे शैतान भी सहम जाय। लोगों से झूठी गवाहियाँ दिलाने के लिये उनपर घोर अत्याचार किये गये। एक उदाहरण लीजिये। सेठ गुल मोहम्मद नामक एक काँच का व्यापारी २० तारीख को गिरफ्तार किया गया। उससे झूंठी गवाही देने के लिये कहा गया। इन्सपेक्टर जवाहिरलाल ने उसकी दाढ़ी पकड़ कर ऐसे ज़ोर से थप्पड़ मारी कि उसके होश उड़ गये। उससे कहा गया कि इस प्रकार की झूंठी गवाही दो। "डॉक्टर सत्यपाल और डॉक्टर किचलू ने ६ तारीख को हड़ताल करने के लिये मुझे उकसाया। उन्होंने मुझसे कहा कि अंग्रेजों को देश से निकालने के लिये वे बम का उपयोग करो"। सेठ गुल मोहम्मद ने इस प्रकार की भयंकर और झूंठी गवाही देने से इन्कार किया। इस पर कुछ कांस्टेबल उसे अफ़सर की टेबल से कुछ दूर ले गये और उन्होंने उसे जवाहिरलाल के कहे मुताबिक झूंठी गवाही देने के लिये बहुत कुछ समझाया, पर उसने फिर भी ऐसा करने से इन्कार किया। इस पर उन कांस्टेबलों ने खटिया के पाये के नीचे उसका हाथ रखा और उस खटिया पर आठ आदमी बैठ गये। जब उसके हाथ में बहुत दर्द होने लगा तब वह बुरी तरह चिल्लाने लगा, और कहने लगा मेरा हाथ छोड़ दो। जो कुछ आप कहोगे मैं करने के लिये तैयार हूँ। इसके बाद उक्त कांस्टेबल उसे जवाहिरलाल के पास ले गये। वहाँ उसने फिर वैसी झूंठी गवाही देने को

साफ़ इन्कार कर दिया। अतएव वह बंद कोठरी में रखा गया। दो दिन तक वह बेतों से, थप्पड़ों से ख़ूब पीटा गया। उसे यहाँ तक धमकी दी कि अगर वह ऐसी गवाही न देगा तो आरोपी बना कर फाँसी पर लटका दिया जायगा। आठ दिन तक लगातार उसपर मार पड़ती रही। आठवें दिन बहुत तंग आकर वह झूठी गवाही देने को मंजूर हुआ। फिर वह मेजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया गया, जहाँ उसने "असत्य गवाही" जैसा उसे कहा गयाथा, दी। पर पीछे जाकर तारीख़ १६ जून को जब वह फ़ौजी अदालत के सामने उपस्थित किया गया, तब उसने सब पोल खोल दी। लाला रैलेराम से जो कि पेन्शनर हैं कहा गया कि मिस शेर-वुड पर हमला करने वालों के नाम बताओ। उन्होंने जवाब दिया कि मैं कुछ नहीं जानता। क्योंकि उस मौके पर मैं उपस्थित नहीं था। इस पर वह बैतों से पीटे गये, और उनकी कुछ दाढ़ी उखाड़ ली गई। कहाँ तक कहें। झूठी गवाहियां दिलाने के लिये लोगों पर ऐसे ऐसे भयंकर अत्याचार किये गये, उन्हें ऐसी ऐसी महा भीषण यन्त्रणाएँ दी गईं कि जिन्हें लिखते हुए भी शरीर को कँपकँपी छूट जाती है!

लाहौर में अत्याचार

पंजाब की दुर्घटना अमृतसर तक ही सीमित न रही। बल्कि लाहौर, गुजरानवाला और कसूर आदि स्थानों को भी कर्नल जोनसन, बोसवर्थ स्मिथ और कर्नल ओब्रायन तथा अन्य अधिकारियों के अत्याचार, बर्बरतापूर्ण और अमानुषिक कृत्यों का शिकार होना पड़ा था, जिनकी कथा सुनकर खून खौलने लगता है।

पार्लियामेंट के लिये तैय्यार किये गये श्वेत-पत्र की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, अन्य स्थानों की अपेक्षा लाहौर में फ़ौज़ी क़ानून का बहुत जोर था। करफ्यू आर्डर तो तुरन्त ही जारी कर दिया गया था। यदि कोई व्यक्ति शाम के आठ बजे के बाद बाहर निकलता तो वह गोली से मार दिया जा सकता था। उसके बैंत लगाये जाते थे, उसपर जुर्माना होता था,

जेल होती थी, या और कोई दण्ड दिया जाता था। जिनकी जो दुकानें बन्द थी उन्हें खोलने की आज्ञा दे दी गई थी। जो न खोले उसे या तो गोली से उड़ाया जा सकता था और या उसकी दुकान खोलकर सारा सामान लोगों में मुफ़्त बाँट दिया जाता था।

लाहौर का फ़ौजी शासन ९ अप्रेल से लगाकर २१ मई तक कर्नल जॉनसन के हाथ में था। इसने इस वक्त जैसे जैसे अत्याचार किये उससे कलेजा काँप जाता है। इसने लाहौर की जनता पर यह आरोप लगाया था कि वह श्रीमान् सम्राट् के ख़िलाफ़ युद्ध करना चाहती थी। पर इस कर्नल ही ने हंटर कमेटी के सामने यह स्वीकार किया कि लोगों ने कभी शस्त्रों का उपयोग नहीं किया। जिनके पास शस्त्र थे उन्होंने न तो आपही उपयोग किया और न दूसरों ही से करवाया। फिर हम नहीं समझते कि लाहौर की जनता क्या घास के तिनकों को लेकर श्रीमान् सम्राट् की महा प्रबल शक्ति के सामने युद्ध करती। यह बात हम भारतवासियों की मोटी बुद्धि में तो नहीं आ सकती। कर्नल जॉनसन जैसे प्रतिभाशाली मस्तिष्क ही इसकी व्याख्या कर सकते हैं। हमें दुःख है कि इस पशु कर्नल ने बिचारे निरपराध लाहौर निवासियों पर ज़रा ज़रा सी बात पर राक्षसी अत्याचार किये। जिन लोगों ने बड़ी शान्ति के साथ इसके कठोर शासन की आलोचना की, जिन लोगों ने जान कर या बेजान कर उसका जारी किया हुआ Curfew Order तोड़ा उन्हें पब्लिक के सामने कोड़ों की सज़ा दी। उसने एक नोटिस जारी किया, जिसमें उसने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि अगर उसकी फ़ौज पर एक भी बम गिरा तो यह समझा जायगा कि उस स्थान के सौ गज़ की परिधि तक में रहने वाले सब लोगों ने इसे गिराया और वह इन सबों को हुक्म देगा कि वे अपने घरों को खाली कर दें। इसके बाद वह इस परिधि के सब मकानों को नष्ट भ्रष्ट (abolish) कर दिया जायगा।

कर्नल जॉनसन ने शहर के कोई ८०० तांगे अपने कब्ज़े में कर

लिये और २०० तांगों को तो उसने तबतक अपने ताबे में रखे जब तक कि फ़ौज़ी शासन जारी रहा। हिन्दुस्तानियों की जितनी मोटर गाड़ियां थीं, वे सब की सब उसने अपने कब्ज़े में लेलीं। उसने सब मुफ़्त भोजनालय (लंगरखाने) बंद करवा दिये। अनाज़ के भाव नियन्त्रित कर दिये। जिन लोगों के पास बन्दूक आदि शस्त्र रखने के लायसेन्स थे वे प्रायः सब रद् कर दिये और सब लोगों की बन्दूकें प्रभृति शस्त्र जमा करवा लिये। उसने डिप्टी कमिश्नर के हुक्म को प्रोत्साहन देकर बाद-शाही मसज़िद् बंद करवा दी और हुक्म दे दिया कि जब तक उसके ट्रस्टी यह मंज़ूर न करलें कि उसमें कोई हिन्दू पैर न रखने पायगा तब तक वह न खोली जा सकेगी।

उसने समरी कोर्ट्स (Summary Courts) खोलीं। उसने स्वयं २७७ आदमियों पर मुक़दमा चलाया जिनमें से २०१ आदमियों को सज़ाएं दीं। जेलखाने की सज़ा, बड़े बड़े जुर्माने की सज़ाओं के अतिरिक्त इन कोर्टों से ८०० कोड़ों का हुक्म हुआ। यह सज़ा ६६ आदमियों में विभक्त की गई। ज्यादा से ज्यादा तीस और कम से कम पांच कोड़े तक एक एक आदमी को लगाये गये। इन लोगों के तब तक सरे आम कोड़े लगते रहे जब तक कि सरे आम कोड़े न लगाने का ऊपर से हुक्म न आगया। बिलकुल खफ़ीफ़ कारणों पर कोड़ों की यह महा कठोर सज़ा दी जाती थी। इसके पहिले डॉक्टरों से यह परीक्षा तक नहीं करवाई जाती थी कि कौन मनुष्य कितने कोड़े बर्दाश्त कर सकता है। इतना ही नहीं जस्टिस रैंकिन के प्रश्न के उत्तर में कर्नल ने साफ़ शब्दों में यह कहा था कि कोड़ों की सज़ा सब सज़ाओं में दयालुता पूर्ण है।

इसने कई बड़े बड़े प्रतिष्ठित और गण्यमान्य लोगों को गिरफ़्तार कर उनकी ऐसी ऐसी दुर्दशा की कि जिससे इसकी पाशविक वृत्ति का और मार्शल लॉ की भयङ्कर स्थिति का पता लगता है। मि० मनोहरलाल एम० ए० ने कॉंग्रेस की जांच कमेटी के सामने जो बयान दिये हैं, वे पढ़ने

लायक हैं।

इसके सिवा इस कर्नल ने लोगों को दुःख देने का एक नया उपाय निकाला। जिन्हें यह कर्नल भले आदमी नहीं समझता था उनके घर के दरवाज़े पर नोटिस चिपकवा देता और घर वालों को वह सूचना कर देता है कि इस नोटिस की रक्षा के तुम ज़िम्मेदार हो। अगर नोटिस में किसी प्रकार की फूट टूट हुई तो इसके ज़िम्मेदार घर वाले समझे जाकर उन्हें कठोर दण्ड दिया जायगा। इसका मतलब यह हुआ कि चौबिस घण्टे घरवाले उस नोटिस की रखवाली किया करें। कुछ कॉलेजों के भवनों पर भी उसने ऐसे ही नोटिस चिपकवा दिये थे और उनके लिये विद्यार्थियों को और सारे के सारे स्टाफ़ को ज़िम्मेदार कर दिया था। सनातन धर्म कॉलेज पर भी इस प्रकार का एक नोटिस लगाया गया था। उसे बहुत करके किसी एक मनुष्य ने फाड़ डाला होगा, पर बहादुर कर्नल ने इसके लिये उस कॉलेज के ५०० विद्यार्थियों को और प्रायः सब प्रोफेसरों को गिरफ़्तार कर लिया। इतना ही नहीं, इन विद्यार्थियों और प्रोफेसरों को फ़ौज की निगरानी में फ़ोर्ट तक (जो कि उक्त कॉलेज से तीन मील के फ़ासले पर है) जाने पर मजबूर किया। इस वक्त गरमी की कड़ी मौसिम थी और सूर्य भगवान अत्यन्त प्रखरता के साथ तप रहे थे। ऐसी स्थिति में सिर पर बिस्तर लेकर इन ५०० विद्यार्थियों को और सब प्रोफ़ेसरों को फ़ोर्ट तक जाना पड़ा था और दो दिन तक वहां हिरासत में रहना पड़ा था। मज़ा यह कि हंटर कमेटी के सामने जब इस कर्नल से पूछा गया था कि क्या तुम्हारा यह कृत्य न्यायपूर्ण था, तब इसने बड़ी अकड़ के साथ कहा था "जी हाँ, बिलकुल न्याययुक्त था।" इतना ही नहीं इसने यहां तक कहा था कि अगर मौक़ा पड़ा तो मैं फिर भी इसी तरह करूंगा। यहां यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि कर्नल ने यह उत्तर तब दिया था जब इस बात को छः मास बीत चुके थे और पंजाब के भीषण अत्याचारों के लिये देश में हाहाकार मच चुका था।

इसने सनातन धर्म कॉलेज की तरह लाहौर के दयानन्द एङ्गलो वैदिक कॉलेज, दयालसिंह कॉलेज और मेडिकल कॉलेज के साथ भी बहुत बुरा सुलूक किया। इसने येनकेन प्रकारेण विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों को भीषण यन्त्रणाएँ देना शुरू कीं। इसने हुक्म जारी किया कि उक्त कॉलेजों के विद्यार्थी किसी निश्चित स्थान पर जाकर चार वक्त अपनी हाज़री लिखावें। बेचारे विद्यार्थियों को चारों वक्त मिला कर प्रति दिन १७ माइल का चक्कर काटना पड़ता था। इन अभागों को सूर्य की कड़ी से कड़ी धूप में जाना पड़ता था। इन पर इस समय कैसी बीतती होगी, इस बात को इनका भगवान ही जानता होगा।

कर्नल ने कई निर्दोष विद्यार्थियों को कॉलेज और स्कूल से निकलवा दिये। कइयों को परीक्षा के लिये जाने से रुकवा दिये। कॉलेज़ों के प्रोफ़ेसरों और प्रिन्सिपलों को बुरी तरह से तङ्ग किया। कई विद्यार्थियों को बुरी तरह पिटवाया। यहां कहां तक कहें, इस कर्नल ने लाहौर में भयङ्कर आतङ्क का साम्राज्य (Reign of terror) स्थापित कर रखा था।

इसने भयङ्कर अत्याचार किये। पाठक जानते हैं कि इस कर्नल का ऐसा हुक्म था कि चार आदमी से ज्यादा जमा होकर सड़क पर न घूमें। बेचारे लोगों को यह ख़याल न था कि यह हुक्म विवाह की बरात पर भी लागू है। लाहौर में नगर के किसी मोहल्ले से एक बरात निकल रही थी जिसमें दस से ज्यादा आदमी थे। सब बराती और दुलहा गिरफ्तार कर लिये गये और पुरोहित तथा बरातियों को कोड़ों की सज़ा मिली। इससे पाठक मार्शल लॉ में होने वाले राक्षसी अत्याचारों का पता लगा सकते हैं। लाहौर प्रभृति नगरों में जो फ़ौजी अदालत बैठी थी; उसमें कई निर्दोष आदमियों को कैसी कैसी भयङ्कर सजायें दी गई थी, उसका उल्लेख हम अगले किसी स्वतन्त्र अध्याय में करेंगे।

कसूर में अत्याचार ।

लाहौर जिले में कसूर महत्व पूर्ण कसबा है। यह व्यापार का केन्द्र है। यहां की जन संख्या ३४००० है। ६ अप्रेल को यहां हड़ताल नहीं हुई थी। दस तारीख तक यहा कोई दुर्घटना नहीं हुई। ११ तारीख को महात्मा गांधी को पकड़े जाने का और डॉक्टर सत्यपाल और किचलू के गिरफ़्तार होने का संवाद पहुँचा, इस लिये यहां कुछ घन्टों के लिये हड़ताल रही। शाम के वक़्त यहां सभा हुई। मामूली व्याख्यान हुए। उन में कोई बात ऐसी न थी जो राजद्रोहात्मक हो। सब डिविजनल आफिसर मिस्टर मार्सडन ने हंटर कमेटी के सामने यह कहा कि व्याख्याताओं ने ग़ैरज़िम्मेदार भाषण दिये और रॉलेट ऐक्ट के मतलब को उसके उचित रूप में नहीं समझाया, इससे जनता में जोश उमड़ आया।

१२ अप्रेल को इस नगर में पूरी हड़ताल रही। हां, इस दिन लोगों का मिज़ाज ठीक वैसा न था जैसा कि ११ तारीख को था। इस दिन वह कुछ बिगड़ा हुआ था। हंटर कमेटी के सामने दिये हुए कुछ गवाहों के बयानों से मालूम होता है कि यहाँ कुछ आदमी अमृतसर से आये और उन्होंने अमृतसर की दुर्घटनाओं का हाल खूब बढ़ाकर कहा। इससे लोग बहुत उत्तेजित हो उठे। कुछ हलके दर्जे के लोग जमा होने लगे। वे स्टेशन की ओर बढ़े और उन्होंने स्टेशन को आग लगाने का प्रयत्न किया। लेम्प रूम में आग लगादी गई। पर इसी बीच में कसूर के नेता मौके पर आ पहुँचे और उन्होंने आग बुझा दी। इसके बाद लोगों का झुण्ड Signal Station की ओर बढ़ा, जहाँ कि एक ट्रेन आकर खड़ी थी। झुण्ड ने वहां कुछ युरोपियनों पर धावा किया पर यहां भी मि० गुलाम मोहिउद्दीन

प्रभृति नेताओं के आ पहुँचने पर इस झुंड का प्रयत्न सफल न हो सका। इसके बाद नेताओं ने इन युरोपियन लोगों को सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दिया। ट्रेन वहां से आगे बढ़ी। दो युरोपियन सोलजर उसमें रह गये थे। इन सोलजरों ने समझा कि अब भगने में ही खैर है। वे ट्रेन से नीचे उतरे पर चारों ओर बावला झुण्ड मौजूद था। इन सोलजरों ने आत्मरक्षा के विशुद्ध भाव से गोलियाँ चलाईं। अब तो झुण्ड आग बबूला हो गया। अत्यन्त दुख और लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि इस बावले झुण्ड ने उन बेचारे निरपराध सोलजरों को बड़ी निर्दयता से मार डाला। हम जीवदया के उज्ज्वल आदेशों को सामने रखते हुए इस झुण्ड के घोर कृत्य को ज़ोर के साथ धिक्कारते हैं, और मानते हैं कि इसने इन निरपराधों की हत्याकर पाशविक कार्य किया। निरपराधों के ख़ून से मत्त होकर यह झुण्ड रेव्हेन्यू ऑफिसों की ओर बढ़ा और इन सब पर उसने आग लगा दी। अन्त में पुलिस ने गोलियां चला कर इस झुण्ड को बिखेर दिया।

थोड़े ही घण्टों के बाद यह उमड़ा हुआ जनता का जोश शान्त हो गया। इससे यह अनुमान करना गलत न होगा कि जनता का यह जोश किसी आकस्मिकता से इतना बढ़ गया था। उसके पीछे किसी प्रकार का सुसङ्गठित षड्यन्त्र न था। अधिकारियों ने बिना किसी तकलीफ़ के बहुत सी गिरफ्तारियाँ कर डाली। अब तक वहाँ के सब सिविलियन अफ़सर एक हिन्दुस्थानी थे। उनकी जगह पर मि० मार्सडन नामक एक अँग्रेज़ भेजे गये थे। १६ तारीख को वहां मार्शल लॉ जारी कर दिया गया था। मार्शल लॉ का शासन शुरू शुरू में कर्नल मकरे (Col. Macrae) के जिम्मे किया गया। १६ तारीख से कसूर में धर पकड़ शुरू हुई। सारे शहर में मार्शल लॉ की घोषणा की गई। सबसे पहिले कसूर के सुप्रसिद्ध वकील मि० धनपतराय गिरफ्तार किये गये। ४६ दिन तक ये बराबर जेल में रखे गये। बाद में वह छोड़ दिये गये। इन्हें यह

तक नहीं बतलाया गया कि ये जेल में क्यों रखे गये थे। इसी दिन १६ आदमी और गिरफ़्तार किये गये। इसके दूसरे दिन तीन और तीसरे दिन चार गिरफ़्तारियाँ हुईं। १६ अप्रेल को गिरफ़्तारियों का नम्बर बहुत बढ़ गया। इस दिन ४० गिरफ़्तारियाँ हुईं। सब मिलकर १७२ आदमी गिरफ़्तार किये गये। इनमें ६० छोड़ दिये गये। (Discharged), ५१ अपराधी ठहराये गये। आश्चर्य यह है कि गिरफ़्तार किये गये लोगों में मि० गुलाम मोहयुद्दीन और मौलवी अब्दुल कादिर प्रभृति वे सज्जन भी थे जिन्होंने स्टेशन पर मि० और मिसेस शेरबोर्न की (Mr. and-Mrs. Sherbourne) जानें बचायी थीं, और जिन्होंने जनता को अत्याचार करने से बहुत कुछ रोका था। बहुत से नेताओं के घर की बिना किसी प्रकार का कारण दिखलाये तलाशियाँ की गईं। १ मई सन् १९१९ को कसूर के सब लोग शनाख़्त (Indentification) के लिये रेलवे स्टेशन पर जाने के लिये बाध्य किये गये। ये अभागे नंगे सिर दिन के दो बजे तक सूरज की कड़ी धूप में बिना अन्न पानी के बैठाये गये। यह कार्रवाई केवल लोगों का अपमान करने के लिये की गई।

कसूर में ४० आदमियों को कोड़ों की सज़ाएं हुईं। सब मिला कर ७१० कोड़े लगाये गये। कोड़े लगाने का मंच स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर बनाया गया था। स्कूल के लड़कों को भी यह महा क्रूर कोड़ों की सज़ा दी गई थी। कहा जाता है कि एक स्कूल के हेडमास्टर ने यह रिपोर्ट की थी उक्त स्कूल के लड़के बेतहाशा होते जा रहे हैं और इसके लिये उसने सैनिक सहायता माँगी थी। इस पर कमाँडिंग ऑफ़िसर ने यह सूचना निकाली कि कुछ लड़कों को कोड़ों की सज़ा दी जावे। उक्त स्कूल के तथा अन्य स्कूलों के लड़के जमा किये गये। हेडमास्टर से कहा गया कि वे छः लड़कों को चुन दें। हेड मास्टर ने छः ऐसे लड़के चुने जो उच्च जाति के न होकर मज़बूत भी न थे। हेडमास्टर का यह चुनाव कमाँडिंग आफ़िसर को अच्छा नहीं लगा, और मि० मार्संडन से अन्य लड़के

चुनने के लिये कहा। मार्संडन ने छः ऐसे लड़के चुन दिये, जो उनकी समझ में कोड़े खाने के योग्य थे। इन्हें स्टेशन के दरवाजे के बाहर स्कूल के अन्य लड़कों के सामने कोड़े लगाये गये! हंटर कमेटी के सामने इस सम्बन्ध में जो प्रश्नोत्तर हुए, उन्हें हम यहां दोहराते हैं।

प्रश्न—स्कूल के लड़कों को कोड़े लगाने के विषय में तुम कहते हो कि तुमने ऐसे ही लड़कों को कोड़े लगाने का हुक्म दिया था जो सबसे मज़बूत थे?

उत्तर—हाँ।

प्रश्न—उनकी बदकिस्मती इसी में थी कि वे बड़े थे।

उत्तर—अवश्यमेव।

प्रश्न—क्या वे बड़े थे इसलिये इन्हें इन कोड़ों की मार सहनी पड़ी?

उत्तर—हाँ।

प्रश्न—क्या तुम सोचते हो कि यह बात मुनासिब थी?

उत्तर—हाँ, उस परिस्थिति में मैंने यही मुनासिब समझा। अब भी मैं उसे मुनासिब समझता हूँ।

पाठक! ज़रा इस भयङ्कर अत्याचार का विचार कीजिये। क्या यह कोई मनुष्यत्व है कि चाहे जिन छः लड़कों को चुन कर बिना किसी अपराध के उनको कोड़ों की भयङ्कर मार मारना।

अब आगे बढ़िये। आम रास्तों पर लोगों को फाँसी देने की टिकटिकिया (Gallows) बनाई गईं। इन लोगों ने पहिले ही से ये बना डाली थीं, क्योंकि इन फ़ौजी शासकों को विश्वास था कि इन मामलों में बहुतसों को फाँसी लगेगी। कितने अफ़सोस की बात है कि फाँसी देने तक की जगह सरे आम रखी गई। हिन्दुस्तानियों का जितना मान मर्दन किया जा सके, वह करने में इन फ़ौजी शासकों ने कुछ भी कसर

नहीं रखी। कहा जाता है कि सर माइकेल ओडवायर के हुक्म से ऐसा किया गया था। पीछे जाकर फाँसी देने की ये टिकटिकिया (Gallows) पब्लिक रास्ते से हटाली गईं। गुजरानवाला प्रान्त में अठारह आदमियों को फाँसी हुई! और भी अधिक आदमी फाँसी पर लटकाये जाते, पर धन्यवाद देना चाहिये माननीय श्री० मोतीलाल नेहरू को; जिन्होंने स्टेट सेक्रेटरी के पास तार पर तार भेज कर फाँसी की सज़ा रुकवाई। भारत के भूतपूर्व वायसरॉय लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने बार बार प्रार्थना करने पर भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। इससे बेचारे कई लोगों की जानें मुफ्त में गईं।

गुजरानवाला के अत्याचार

जब गुजरानवाला में डॉक्टर सत्यपाल और किचलू के देश निकाले का—अमृतसर के भीषण हत्याकांड का—लाहौर के निरापराधियों पर गोली चलाये जाने का—तथा महात्मा गांधी की गिरफ़्तारी का संवाद पहुँचा, तब वहां की जनता बहुत उत्तेजित हो उठी। उसने हड़ताल करने का विचार किया। और भी कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हुईं जिन्होंने घी में आहुति का काम किया। नेताओं ने जन-समूह को समझाने का बहुत प्रयत्न किया पर वे सफल मनोरथ न हुए। लोगों की भीड़ ने जब यह सुना कि क़ाशी पुल के पास लोगों के झुण्ड पर पुलिस ने गोलियाँ चलाईं तो वे क्रोध से पागल हो गये! फिर क्या था? भीड़ ने तहसील, डाक बंगला, डिस्ट्रिक्ट कोर्ट, चर्च और रेलवे स्टेशन को आग लगादी! इसके बाद कोई डेढ़ बजे के अन्दाज पर लोग बिखर गये और इसके बाद सरकार की मिल्कियत को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया गया। कर्नल ओब्रायन ने भी हंटर कमेटी के सामने यह स्वीकार किया कि २ बजे तक मैं गुज़रानवाला पहुँचा, तब झुण्ड अपना विनाशक कार्य कर चुका था और उस वक्त वह बिखर गया था।

पर गुजरानवाला के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने लाहोर टेलीफ़ोन देकर सहायता माँगी थी। कहा जाता है कि लाहौर में लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के पास ऐसी अफ़वाह भी पहुँची थी कि गुजरानवाला में उनके विश्वसनीय कर्नल ओब्रायन मार डाले गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि ले० गवर्नर ने तीन वायुयान लाहौर से भेजने का हुक्म दिया। ये वायुयान तीन बजे गुजरानवाला पहुँचे। उन्होंने गुजरानवाला पर बम बरसाना और मशीन गनों से फ़ायर करना शुरू किया। कहा जाता है कि इन वायुयानों ने गुजरानवाला पर ३ बम डाले और मशीनगनों के १८० round किये। इनमें से एक बम खालसा हाई स्कूल के हॉस्टेल पर गिरा, जिससे एक विद्यार्थी और कुछ अन्य मनुष्य घायल हुए! दो बम एक मसज़िद के पास गिरे। दूसरा वायुयान सवा तीन बजे पहुँचा। इसने मशीनगन से ७०० (round) किये। तीसरे वायुयान ने न केवल बम ही गिराये पर बन्दूक या मशीनगन के भी वार किये। इनसे सब मिलाकर ४० मनुष्य हताहत हुए, जिनमें १२ मर गये! मरे हुओं में एक स्त्री, एक बच्चा और कुछ लड़के भी थे!! अन्य आस पास के गावों पर भी बम बरसाये गये थे।

इसके अतिरिक्त कर्नल ओब्रायन ने हंटर कमेटी के सामने अपनी गवाही में कहा था कि भीड़ जहां कहीं पाई गई, वहीं उसपर गोली चलादी गई। यह बात उन्होंने हवाई जहाज़ों के सम्बन्ध में कही थी। एक बार एक हवाई जहाज ने, जो कि लेफ्टिनेएट डॉड्किन्स के चार्ज में था, एक खेत में २० किसानों को एकत्र देखा। लेफ्टि० डॉड्किन्स का कहना है कि उन्होंने उन पर मशीनगन से तब तक गोली चलाई तब तक कि वे भाग नहीं गये! उन्होंने एक मकान के सामने आदमियों के एक झुण्ड को देखा। वहां एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसलिए वहां उन्होंने उन पर एक बम गिरा दिया। क्योंकि उनके दिल में इस तरह का कोई शक नहीं था कि वे लोग किसी शादी या मुर्दनी के लिये एकत्र नहीं हुए

थे। मेजर कार्बो नामक एक फ़ौज़ी अफ़सर ने लोगों के एक दल पर इस लिये बम बरसाये कि उन्होंने सोचा कि लोग बलवाई हैं, जो शहर से आ जा रहे हैं। इन महाशय के चित्त की हालत और विचारों का पता इनके बयान के और नीचे उद्धरणों से भले प्रकार चल जायगा।

"लोगों की भीड़ दौड़ी आ रही थी और मैंने उनको तितर बितर करने के लिये गोली चलादी। ज्योंही भीड़ तितर बितर हो गई, मैंने गांव पर ही मशीनगन लगादी। मेरा ख़्याल है कि कुछ मकानों में गोलियाँ लगीं थीं। मैं निर्दोष और अपराधी में कोई पहचान नहीं कर सकता था। मैं दो सौ फीट की ऊँचाई पर था और यह भले प्रकार देख सकता था कि मैं क्या कर रहा हूँ। मेरे उद्देश्य की पूर्ति केवल बम बरसाने से नहीं हुई।"—

"गोलियां केवल नुकसान पहुँचाने के लिये ही नहीं चलाई गई थीं, वे स्वयं गाँव वालों के हित के लिये चलाई गई थीं। कुछ को मार कर, मैं समझा, मैं गांव वालों को फिर एकत्र होने से रोक दूंगा। मेरे इस कार्य का असर भी पड़ा था।"

"इसके बाद मैं शहर की तरफ मुँड़ा। वहां बम बरसाये और उन लोगों पर गोलियाँ चलाईं, जो भाग जाने की कोशिश कर रहे थे।"

कर्नल ओब्रायन ने एक यह हुक्म जारी किया था कि जब कोई हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेज़ अफसर को मिले तो वह उसको सलाम करे, अगर वह सवारी में जा रहा हो या घोड़े पर सवार हो तो उतर जाय, अगर छाता लगाये हो तो उसे नीचे झुका दे। कर्नल ओब्रायन ने कमेटी के के सामने कहा था कि "यह हुक्म इसलिये अच्छा था कि लोगों को यह मालूम हो जाय कि हम उनके नये मालिक कैसे हैं।" लोगों के कोड़े लगवाये गये, जुर्माना किया गया, और पूर्वोक्त राक्षसी हुक्म न मानने पर अन्य अनेक प्रकार की सजायें दी गईं। उन्होंने बहुत से आदमियों को गिरफ़्तार कराया था, जिन्हें बिना मुक़दमा चलाये ही ६ हफ़्ते

तक जेल में रक्खा। एक बार उन्होंने शहर के बहुत से प्रमुख नागरिकों को यकायक पकड़ कर मालगाड़ी के एक डिब्बे में भर दिया! उस डिब्बे में उन लोगों को एक के ऊपर एक करके लाद दिया! सो भी तब जब कि वे कड़ाके की धूप में कई मील पैदल चला कर लाये गये थे!! कुछ लोगों के बदन पर तो पूरे कपड़े भी न थे। मालगाड़ी के डिब्बे में भर कर उन्हें लाहौर भेज दिया था। उन्हें पाखाना पेशाब तक करने की आज्ञा नहीं दी गई! इसी अवस्था में वे मालगाड़ी के डिब्बों में ४४ घंटे तक रक्खे गये! उनकी जो भयानक दयनीय दशा हो गई थी उसका वर्णन करके बताने की विशेष आवश्यकता नहीं! वे जिस समय गलियों में होकर ले जाये जा रहे थे उस समय उनके साथ साथ रास्ते चलने वाले और लोग भी योंहीं पकड़ लिये जाते थे और इसलिये उनकी संख्या सदैव बढ़ती रहती थी। उनके हाथों में हथकड़ियाँ डालकर और जंजीरों से बाँध कर निकाला गया था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जंजीरों में बाँध कर ले जाये गये थे'

फ़ौज़ी अधिकारियों ने एक हुक्म जारी किया था, जिसके अनुसार स्कूल के लड़के बाध्य थे कि वे दिन में तीन बार परेड करें और झंडे को सलामी दें। यह हुक्म स्कूल की छोटी जमातों के बच्चों के लिये भी लागू था, जिनमें ५ और ६ बरस तक के बच्चे भी शामिल थे। और यह बात तो सचमुच हुई थी कि इस परेड और सलामी की वजह से कितने ही बच्चे लू लगकर मर गये थे! इस बात को तो उन्होंने ने भी स्वीकार किया है कि धूप के कारण बहुत से बच्चे बेहोश हो जाते थे! इस बात का भी आरोप किया गया था कि कुछ मौकों पर लड़कों से यह कहलाया जाता था, "मैंने कोई अपराध नहीं किया है। मैं कोई अपराध नहीं करूंगा,। मुझे अफ़सोस है, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है,।"

पंजाब के शेखुपुरा-लायलपुर आदि कई नगरों में मार्शल लॉ के समय में

बड़े बड़े अत्याचार किये गये, जिनका उल्लेख स्थानाभाव के कारण यहां करना सम्भव नहीं है।

मार्शला लॉ का लम्बे अर्से तक जारी रहना

यहां यह बात स्मरण रखने योग्य है कि पंजाब के प्रायः सब नगरों में मार्शल लॉ तब जारी किया गया, जब उपद्रव और अशांति प्रायः मिट चुकी थी। इसके अतिरिक्त-उपद्रवों के मिट जाने के बाद एक लम्बे अर्से तक मार्शल लॉ जारी रक्खा गया। वाइसरॉय की कार्य्यकारिणी कौंसिल के तत्कालीन एक सदस्य सर शंकरन् नायर ने इसके विरोध में उक्त-कौंसिल से इस्तीफ़ा दे दिया।

फ़ौजी अदालतें और नेताओं को अति कठोर सजाएँ

मार्शल लॉ के समय में फ़ौजी अदालतें बैठीं थीं। उन्होंने तो इन्साफ़ करने में गज़ब ढा दिया। जिन लोगों ने रौलेट एक्ट के खिलाफ़ व्याख्यान दिये, जिन लोगों ने नर्म भाषा में अपना विरोध प्रकट किया, उन लोगों पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उन्हें न केवल आजन्म काले पानी ही की सज़ा मिली, पर उनकी सब ज़ायदाद ज़ब्त करने का भी हुक्म हुआ।

लाला हरकिशनलाल, लाला दुनीचंद, पं० रामभजदत्त चौधरी आदि कई सुप्रतिष्ठित महाशयों पर राजविद्रोह के मुक़दमे चलाकर उन्हें आजन्म काले पानी की सज़ाएँ हुईं! इतना ही नहीं, इसके साथ साथ उनकी सारी जायदाद ज़ब्त करने की भी आज्ञा हुई। इन लोगों का अपराध क्या था? इससे अधिक कुछ नहीं कि उन्होंने रॉलेट एक्ट का विरोध करने के लिये सभाएँ की थीं और व्याख्यानों द्वारा लोगों को रॉलेट एक्ट की असलियत प्रकट की थी। इसी को फ़ौजी अदालतों के कमिश्नरों

ने राजद्रोह समझ कर इतनी भयङ्कर सज़ाएँ देदीं। बशीर मोहम्मद को तो फांसी की सज़ा का हुक्म हुआ! यद्यपि पीछे जाकर कई महानुभाव श्रीमान् सम्राट् के घोषणा-पत्र के अनुसार छोड़ दिये गये। पर इससे इन फ़ौजी अदालतों का और उसमें बैठने वाले कमिश्नरों के दिल (Mentality) का पता चलता है। इन मुक़द्दमों की प्रिव्ही कौंसिल में भी अपील हुई थी। पर उसका जैसा नतीजा निकला वह हमारे पाठकों पर प्रकट ही है।

बड़े ही दुःख की बात है कि इन अदालतों द्वारा दी गई सज़ाएँ कई लोगों पर अमल में भी आ गई! कई फांसी पर लटक चुके! अगर देशभक्त पं० मोतीलाल नेहरू स्टेट सेक्रेटरी के पास तार नहीं देते और स्टेट सेक्रेटरी मि० मॉंटेग्यू हस्तक्षेप न करते तो और भी कई अभागों को फांसी हो जाती!! और सैकड़ों लोग काले पानी भेजे जाते। पर पीछे जाकर कुछ लोग तो निर्दोष बतला कर छोड़े गये। इतने पर भी कई भाई इन फ़ौजी अदालतों के द्वारा दी गई सज़ाओं के कारण कई वर्ष तक जेलों में और काले पानी में सड़ते रहे।

॥ महात्माजी द्वारा सत्याग्रह का स्थगितकरण ॥

महात्मा गांधी एक उच्च आदर्श रखने वाले नेता थे। वे सत्य और अहिंसा के साक्षात् अवतार थे। वे किसी भी मूल्य पर अपने जीवन के इन महान् तत्वों का त्याग करने के लिये प्रस्तुत न थे। विरोधी द्वारा किये गये हिंसात्मक कार्य्यों का जवाब हिंसात्मक कार्य्यों के द्वारा देना, वे इसके सख़्त विरोधी थे। पञ्जाब में जनता की तरफ़ से जो कुछ हिंसात्मक कार्यवाहियाँ हुईं, इसका उनके हृदय पर गम्भीर प्रभाव पड़ा और इसके फल स्वरूप उन्होंने सत्याग्रह संग्राम को स्थगित कर दिया। इस समय उन्होंने जो वक्तव्य प्रकाशित किया वह इस प्रकार था:—

"I have greater faith in Satyagraha to day than before. It is my perception of the law of Satya graha which impels me to suggest the suspension. ......I understand the forces of evil.........Satyagraha had nothing to do with the violence of the mob at Ahmedabad and Viramgaon. Satyagraha was neither the cause nor the occasion of the upheaval. If anything, the presence of Satyagraha had acted as a check.........The events in the Punjab are unconnected with the Satyagraha movement ....Our Satyagraha must, therefore, now consist in ceaselessly helping the authorities in all the ways available to us; as Satyagrahis to restore order and curb lawlessness.........We must fearlessly spread the doctrine of Satya and Ahimsa and then and not till shall we be able to undertake mass Satyagraha........."अर्थात् पहले की अपेक्षा आज मेरा सत्याग्रह पर अधिक विश्वास है। सत्याग्रहतत्त्व की भावना मुझे प्रेरित करती है कि मैं फिलहाल सत्याग्रह को स्थगित कर दूं ...... मैं दुष्टता की शक्तियों को पहचानता हूं। अहमदाबाद और वीरमगाँव में जन समूह द्वारा जो हिंसात्मक कार्य हुये उनसे सत्याग्रह का कोई सम्बन्ध न था। इस उत्पात का न तो सत्याग्रह कारण ही था और न अवसर ही। सत्याग्रह की उपस्थिति ने तो इसकी रोक ही का काम किया। पंजाब की घटनाओं का सत्याग्रह के आन्दोलन के साथ कोई सम्बन्ध न था। हमारे सत्याग्रहियों को चाहिये कि वे अपनी शक्ति भर सब तरह से शान्ति स्थापित करने और अव्यवस्था को मिटाने के लिये अधिकारियों की शक्ति

भर सहायता करें। हमें निर्भयता के साथ सत्य और अहिंसा का प्रचार करना चाहिये तभी हम सामूहिक सत्याग्रह करने के लिये समर्थ हो सकेंगे।" महात्माजी ने सत्याग्रह बन्द कर विशुद्ध स्वदेशी का प्रचार और हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रचार पर अधिक जोर देने के लिये जनता से अपील की।

अत्याचारियों को पुरस्कार

जिन अधिकारियों का पंजाब के भीषण अत्याचारों में प्रधान हाथ था, उन्हें "प्रामाणिकता" का प्रमाण पत्र दिया गया और उन्हें यह आश्वासन दिया गया कि उनके ख़िलाफ़ कोई कार्यवाही न की जायगी। यहां तक कि भारतवर्ष के यूरोपियन समाज ने जल्यानवाले बाग के हत्यारे-जनरल डायर-को एक तलवार और बीस हजार पौंड का पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

पंजाब के अत्याचार और जाँच समितियाँ

ज्योंही पंजाब में मार्शल लॉ उठा लिया गया और बाहर के आदमियों के लिये पंजाब का प्रवेश द्वार खुल गया, त्योंही सुप्रख्यात काँग्रेसमैन और कुछ अन्य सज्जन पंजाब पहुंचे और उन्होंने अपने अत्याचार पीड़ित भाइयों की सेवा का काम शुरू किया। इसमें कष्ट निवारण (Relief) का कार्य्य स्वर्गीय पं० मदनमोहन मालवीय और स्वामी श्रद्धानन्दजी ने सँभाला। इसी समय कांग्रेस ने पंजाब अत्याचारों की जाँच करने के लिये एक जाँच समिति कायम की, जिसके प्रधान संचालक पं० मोतीलालजी नेहरू थे। इस जाँच समिति में महात्मा गांधी और देशबन्धु सी० आर० दास ने काफ़ी दिलचस्पी ली। देशबन्धु दास के ज़िम्मे अमृतसर का क्षेत्र सौंपा गया, और पं० जवाहरलाल नेहरू को उनकी सहायता के लिये भेजा गया। जैसा कि पं० जवाहरलालजी अपने "Mahatma Gandhi" नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में लिखते हैं:— "देश

बन्धु दास के साथ और उनके नीचे काम करने का मेरा यह पहला मौका था और इस समय मुझे जो अनुभव हुआ उसकी मैं बहुत कद्र करता हूँ और देशबन्धु दास के लिये इस समय मेरा आदर भाव बढ़ा। जल्यानवाले बाग के सम्बन्ध में और लोगों को पेट के बल रेंगने के सम्बन्ध में बहुत सी शहादतें हमारे सामने ली गईं। यह शहादतें कांग्रेस की जांच समिति की रिपोर्ट में दर्ज़ की गईं थीं। हम इस बाग में कई दफ़ा गये और मामले के हर एक तफ़सील की चिन्तापूर्वक जाँच की।" इसी समय पं० जवाहरलालजी का महात्माजी के साथ अधिक सम्पर्क हुआ और उनका महात्माजी की राजनैतिक अन्तर्दृष्टि में विश्वास बढ़ा।

हंटर कमेटी

भारत सरकार ने मार्शल लॉ के शासन के सम्बन्ध में जाँच करने के लिये एक कमेटी नियुक्त की थी, जिसके अध्यक्ष लॉर्ड हंटर थे। इसके भारतीय सदस्यों—सर चिम्मनलाल सीतलवाद, पंडित जगतनारायण और सर सुल्तान अहमद ने—कमेटी के अधिकांश सदस्यों से मत न मिलने के कारण अपनी अलग रिपोर्ट लिखी थी। कमेटी की रिपोर्ट पर जो कार्यवाही की गई, वह .नाकाफ़ी थी और उससे यद्यपि लोकमत को संतोष न हुआ, पर इसके सामने जल्यानवाले कांड के प्रधान प्रवर्त्तक डायर प्रभृति ने जो गवाहियाँ दीं उनसे उस हत्याकांड की और पंजाब में होने वाले अन्य अत्याचारों की भीषणता जनता के सामने आई। सारे भारतवर्ष में इस अत्याचार के ख़िलाफ़ बड़ी भीषण-क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी।

अमृतसर की कांग्रेस

पंजाब कांड के बाद अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। पंडित जवाहरलालजी ने अपने "Mahatma Gandhi" नामक अंग्रेज़ी ग्रन्थ में इसे प्रथम गांधी कांग्रेस (First Gandhi Congress) कहा है। लोकमान्य तिलक सरीखे देशमान्य नेता के उपस्थित होते हुए भी उस समय महात्मा गान्धी का विशाल प्रभाव देखा गया। देश का वातावरण महात्मा गांधी की जयध्वनि से गूंजने लगा। महात्मा गांधी का यह स्वभाव था कि वे मानव जीवन में रहे हुए श्रेष्ठ तत्वों ही पर अधिक ज़ोर देते थे। यही कारण था कि पंजाब के लोमहर्षण कांड के बाद भी अंग्रेज़ों की न्यायप्रियता में उन्होंने अपना विश्वास न खोया और वे मान्टेग्यू चैम्सफोर्ड योजना में सहयोग देने ही में देश की भलाई समझने लगे। अमृतसर कांग्रेस में देशबंधु दास सरीखे प्रभावशाली नेता के विरुद्ध होते हुए भी उन्होंने सहयोग नीति का समर्थन किया था। आचार्य जावडेकर अपने आधुनिक भारत नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"अमृतसर में महात्मा गांधी सहयोग नीति, देशबन्धु दास अड़ंगा नीति व लोकमान्य तिलक प्रतियोगी सहकारिता की नीति के पक्ष में थे। ये सब नेता इस बात पर सहमत थे कि नवीन क़ानून के अनुसार जो चुनाव हों उनमें भाग अवश्य लिया जाय। अतएव तीनों के लिए सन्तोषजनक शब्द-रचना उस प्रस्ताव में की गयी थी। वह इस प्रकार थी:—"

(क) यह कांग्रेस अपनी पिछले वर्ष की घोषणा को दुहराती है कि भारतवर्ष पूर्ण उत्तरदायी शासन के योग्य है और इसके ख़िलाफ़ जो बातें समझी या कही जाती हैं उनको यह कांग्रेस अस्वीकार करती है।

(ख) वैध सुधारों के सम्बन्ध में दिल्ली की कांग्रेस द्वारा पास किये गये प्रस्तावों पर ही कांग्रेस दृढ़ है और इसकी राय है कि सुधार-क़ानून अपूर्ण, असन्तोषजनक और निराशा पूर्ण है।

(ग) आगे यह कांग्रेस अनुरोध करती है कि आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारतवर्ष में पूर्ण उत्तरदायी सरकार क़ायम करने के लिए पार्लमेंट को शीघ्र कार्यवाही शुरू करनी चाहिये।

(घ) यह कांग्रेस विश्वास करती है कि जब तक इस प्रकार की कार्यवाही नहीं की जाती तब तक, जहां तक सम्भव हो, लोग सुधारों को इस प्रकार कार्य्य में लावेंगे जिससे भारतवर्ष में शीघ्र पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम हो सके। सुधारों के संबंध में माननीय मान्टेग्यू साहब ने जो मिहनत की है उसके लिये यह कांग्रेस उन्हें धन्यवाद देती है।

देशबन्धु दास, लो० तिलक व महात्मा गांधी तीनों ने इन प्रस्तावों का समर्थन किया।

कांग्रेस के इस अधिवेशन में जहां महात्मा गांधी ने पंजाब के अत्याचारों के लिये तत्कालीन भारत सरकार की निन्दा की, वहां उन्होंने जनता द्वारा की जानेवाली ज्यादतियों के प्रति भी अरुचि प्रकट की।

गाँधीजी और अहिंसात्मक असहयोग

इस ग्रन्थ के गत अध्यायों में हमने गांधीजी द्वारा किये जाने वाले कुछ स्थानीय सत्याग्रह संग्रामों तथा रौलट बिल के विरुद्ध किये जाने वाले देश व्यापी सत्याग्रह पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। अब सत्याग्रह के इतिहास में एक नये अध्याय का आरम्भ होता है और वह ऐसा व्यापक रूप धारण करता है कि उसका प्रभाव बड़े बड़े नगरों तक ही सीमित नहीं रहता, पर वह छोटे-छोटे देहातों तक में पहुँच जाता है।

महात्मा गांधी को लम्बे अर्से तक यह आशा बंधी रही कि बृटिश सरकार पंजाब और खिलाफ़त के मामले में न्याय करेगी, पर आखीर उनकी यह आशा निराशा में परिणित हुई। ब्रिटिश सरकार ने हंटर कमेटी की बहुमत वाली रिपोर्ट को (इसके लिखनेवालों में सब अंग्रेज़ थे) स्वीकार करली और इस कमेटी के भारतीय सदस्यों द्वारा लिखी गई रिपोर्ट को अस्वीकृत कर दी। यहां तक कि जनरल डायर द्वारा सैंकड़ों निर्दोष, निरपराध मनुष्यों की निर्दयता पूर्वक हत्या करने के पाशविक कार्य को केवल "निर्णय की भूल" (Error of judgment) कह कर मानवता का घोर अपमान किया गया।

उधर खिलाफ़त का अङ्ग भङ्ग कर मुस्लिम संसार को जो भारी आघात पहुंचाया गया था, उसका कोई निवारण नहीं किया गया। खिलाफ़त के मसले को लेकर मि० मुहम्मदअली की अध्यक्षता में जो शिष्टमंडल लंदन गया था वह निराश होकर कोरे हाथ वापस लौट आया। इससे भारतीय मुसलमानों में भी अशान्ति और असंतोष की आग भड़क

उठी। यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि अमृतसर कांग्रेस के पहले, नवम्बर १९१९ में, देहली में अ० भा० ख़िलाफ़त कमेटी की जो मीटिंग हुई थी। उसमें ख़िलाफ़त के मामले में न्याय न हुआ तो महात्माजी की सलाह से असहयोग करने का प्रस्ताव पास हो चुका था; अर्थात् महात्माजी पहले से ही असहयोग-संग्राम की तैयारी कर रहे थे। लेकिन जब तक पंजाब व ख़िलाफ़त के विषय में सरकार अपनी नीति की घोषणा साफ़ तौर पर न करदे तब तक लड़ाई का बिगुल बजाना उन्हें ठीक न जँचता था। अन्त में जब सरकार की ओर से उन्हें पूरी निराशा हुई तब उन्होंने स्पष्ट रूप से असहयोग की घोषणा करदी। इस असहयोग आन्दोलन में मुसलमानों ने धर्म के तौर पर नहीं किन्तु नीति के तौर पर गांधीजी के अहिंसा-सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। १० मार्च १९२० को असहयोग की जो पहली घोषणा प्रकाशित हुई उसमें गांधीजी ने कहा था:—"अगर हमारी मांगें मंज़ूर न की गयीं तो हमें क्या करना चाहिये, इसके बारे में दो शब्द लिखता हूँ। गुप्त या प्रकट रूप से सशस्त्र युद्ध करना एक जंगली तरीक़ा है। आज वह अव्यावहारिक भी है, इसलिए उसे छोड़ देना उचित है। यदि मैं सबको यह समझा सकूँ कि यह तरीक़ा हमेशा के लिये अनिष्ट है तो हमारी सब मांगें बहुत जल्दी पूरी हो जायँ। जो राष्ट्र हिंसा को छोड़ देता है उसमें इतना बल आ जाता है कि उसे कोई नहीं रोक सकता, परन्तु आज तो मैं अव्यवहार्यता व निष्फलता के आधार पर हिंसा का विरोध कर रहा हूं। हमारे सामने एक ही रास्ता है, असहयोग। वह सीधा व साफ़ मार्ग है। हिंसात्मक न होने से वह कारगर भी उतना ही होगा। सहयोग से जब अधःपात व अपमान होने लगता है या हमारी धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंचती है, तब असहयोग कर्त्तव्य हो जाता है। जिन हक़ों को मुसलमान अपनी जान से भी ज्यादा प्यारा समझते हैं उनके अपहरण को हम चुप चाप सहलेंगे, ऐसा ख्याल इङ्गलैंड न बना सकेगा और इसलिए हमें पूरा असहयोग अमल में ला

सकेंगे। जिन्हें पद, पदवियाँ, तगमें मिलें हों वे उन्हें छोड़ दें। छोटी छोटी सरकारी नौकरियाँ भी छोड़ दी जायँ। हां, ख़ानगी नौकरियों का समावेश असहयोग में नहीं होता। जो असहयोग न करें उनका सामाजिक बहिष्कार करना ठीक नहीं। स्वयं—प्रेरित असहयोग ही जनता की भावना व असन्तोष की कसौटी है। सैनिकों को फ़ौज़ी नौकरी छोड़ने के लिये कहना असामयिक है। वह पहली नहीं अख़िरी सीढ़ी है। जब वायसराय, भारत मंत्री, प्रधान मंत्री कोई भी हमें दाद न देंगे तभी हमें उस सीढ़ी पर पाँव रखने का अधिकार होगा। असहयोग का एक—एक क़दम हमें बहुत सोच–विचार कर उठाना होगा। अत्यन्त प्रखर वातावरण में भी हमें आत्म–सँयम रखना होगा। इसलिए हमें आहिस्ते क़दम ही चलना होगा।"

इस घोषणा पत्र में असहयोग–संग्राम का सारा कार्यक्रम बीज रूप में आ जाता है। कोई भी सरकार मुल्की व फ़ौज़ी व्यवस्था में प्रजा के सहयोग बिना एक क़दम नहीं चल सकती और प्रजा द्वारा घोषित असहयोग में यदि मुल्की व फ़ौज़ी अफ़सर व नौकर शामिल हो गये तो फिर जनता जिस राज्य को नही चाहती वह नहीं टिक सकता और उसकी जगह नवीन राज्य स्थापना हो जाता है। निःशस्त्र राज्य क्रान्ति की यह तात्विक उपपत्ति है। वह इस उद्धरण में दी गई है। जब तक देश की जनता में यह आत्म–विश्वास नहीं पैदा होता कि हम अपने सङ्गठन के बल पर अपना राज्य चला लेंगे और देश में अन्धाधुन्धी न होने देते हुए शान्ति स्थापित कर सकेंगे तब तक प्रस्थापित राजसत्ता के पुलिस व फ़ौज़ी महक़में के लोगों को असहयोग के लिये न पुकारना चाहिये; क्योंकि उसके अभाव में यादवी, गृहकलह व अराजकता फैलने की व जनतंत्र की शान्ति के बजाय सैनिकवाद व तानाशाही की मनमानी चल निकलती है, जिससे विदेशी सत्ता को लाभ मिलेगा व शान्तिमय क्रान्ति सफल न होगी। इसीलिए गांधीजी ने इस घोषणापत्र में कहा है कि

'सैनिक असहयोग बिलकुल आखिरी सीढ़ी है।'

गांधीजी ने ईस्वी सन् १९२० की पहली अगस्त को सत्याग्रह संग्राम की घोषणा करदी। इस देश व्यापी सत्याग्रह के सम्बन्ध में गांधीजी ने २८ जुलाई १९२० के "Young India" के अङ्क में लिखा था:—

"The first of August will be as Important an event in the history of India as was the 6 th of April last year. The 6th of April marked the beginning of the end of the Rowlatta Act......... the power that wrests justice from an unwilling Government.........is the power of Satyagraha, whether it is known by the name of civil disobedience or non-co-operation.........As in the past, the commencement is to be marked by faistng and prayer... .... suspension of business and by meetings to pass resolutions-praying for the revision of peace terms and justice for the Punjab, and for inculcation of non-co-operation until justice has been done. The giving up of titles is to organize and evolve order and discipline., He again stressed the necessity of absolute non-violence.

अर्थात् भारतवर्ष के इतिहास में गतवर्ष की ६ अप्रेल की तरह इस वर्ष की पहली अगस्त भी एक महत्त्वपूर्ण घटना होगी। ६ ठी अप्रेल को रौलट-एक्ट के अन्त का आरम्भ हुआ। जो शक्ति अनिच्छुक सरकार के हाथ से न्याय को हथियाती है वही सत्याग्रह की शक्ति है, चाहे फिर इस शक्ति को सविनय अवज्ञा कहा जाय चाहे असहयोग।

भूतकाल की तरह इसको प्रारम्भ करते समय उपवास और प्रार्थना की जाय, कारोबार बंद रक्खे जांय, और सभायें कर उनमें ऐसे प्रस्ताव पास किए जाँय जिनमें (तुर्कों की) सुलह की शर्तों में संशोधन करने की तथा पंजाब के लिये न्याय प्राप्त करने की माँग हो और जिसमें तबतक सरकार से असहयोग करने का आदेश हो जब तक कि न्याय प्राप्त न हो जाय। उपाधियों का त्याग उसी दिन से शुरू हो जाना चाहिये.........इसमें सबसे बड़ी बात अनुशासन और सुव्यवस्था की स्थापना करना है।" आगे चलकर महात्माजी ने इस लेख में पूर्ण अहिंसा की आवश्यकता पर बड़ा जोर दिया था।

इसके बाद ई० सन् १९२० के सितम्बर मास में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। इसके अध्यक्ष भारत के सुप्रसिद्ध नेता लाला लाजपतराय थे। महात्मा गांधी के असहयोग के प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में कई प्रभावशाली नेता थे। स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू असहयोग के प्रस्ताव के समर्थकों में थे। देशबन्धु चित्तरंजनदास, पंडित मदनमोहन मालवीय, मिसेज बेसेंट इस प्रस्ताव के विरोधियों में थे। कलकत्ता कांग्रेस के कुछ ही पहले महात्मा गांधी के समकक्ष नेता लो० तिलक का स्वर्गवास हो चुका था। इसलिये यह केवल कल्पना जगत का विषय रह जाता है कि अगर लोकमान्य जीवित रहते तो वे महात्मा गांधी के असहयोग वाले प्रस्ताव का समर्थन करते या नहीं। देशबन्धु चित्तरंजनदास और मालवीयजी का विरोध तात्विक दृष्टि से था। अन्तिम राजनैतिक ध्येय में वे महात्मा गांधी के पूर्ण रूप से साथ थे। मुसलमानों ने ख़िलाफ़त के प्रश्न के कारण महात्मा गांधी के प्रस्ताव का समर्थन करने का निश्चय किया था। कुछ भी हो, महात्मा गांधी का प्रस्ताव कलकत्ते की कांग्रेस में बहुमत से पास हो गया। प्रस्ताव के पक्ष में १८८६ मत आये और विपक्ष में ८८४।

ईस्वी सन् १९२० के दिसम्बर मास में कांग्रेस का अधिवेशन

नागपुर में हुआ। यह पूर्व के अधिवेशनों से बड़ा था, और इसमें १४५८२ प्रतिनिधियो ने भाग लिया था। इसमें १०५० मुसलमान प्रतिनिधि और १६६ महिला–प्रतिनिधि भी थे। इसमें भारी उत्साह और जयजयकार के साथ महात्मा गांधी का असहयोग वाला प्रस्ताव पास हुआ। जिन नेताओं ने कलकत्ता अधिवेशन में इस प्रस्ताव का विरोध किया था उन्होंने इस वक्त इसका समर्थन किया। देशबन्धु चित्तरंजनदास ने असहयोग के प्रस्ताव को रक्खा और लाला लाजपतराय ने इसका समर्थन किया।

यह आन्दोलन प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोग के नाम से मशहूर हुआ, इसमें यह कार्यक्रम निश्चत हुआः—

(१) उपाधियां व तमगे–बिल्ले लौटा देना।

(२) सरकारी दरबार, उत्सव आदि समारम्भों से असहयोग।

(३) सरकारी व अर्द्ध सरकारी पाठशालाओं का बहिष्कार व उनकी जगह राष्ट्रीय शालाओं की स्थापना।

(४) अदालतों का बहिष्कार व पंचायतों को स्थापना।

(५) धारा सभाओं का व मतदान का बहिष्कार।

(६) विदेशी माल का बहिष्कार।

महात्मा गांधी का अनुपम प्रभाव

नागपुर कांग्रेस के समय महात्मा गांधी के प्रभाव में आशातीत वृद्धि हुई। जनता उन्हें अलौकिक महापुरुष समझने लगी। भारत के वे एक छत्र नेता माने जाने लगे। सारे देश का वातावरण "महात्मा गांधी की जय" से गूँजने लगा। भारतीय राष्ट्र के जीवन में नवचेतना आगई। भारत की करोड़ों जनता उन्हें देवता की तरह समझकर उनके पथ पदर्शन के अनुसार चलने में अपना गौरव समझने लगी। पं० जवाहरलाल

ने उस समय का ज़िक्र करते हुये "Mahatma Gandli" नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

And then Gandhiji came. He was like a powerful current of fresh air that made us stretch ourselves and take deep breaths, like a beam of light that pierced the darkness and removed the scales from our eyes like a whirlwind that upset many things but most of all the working of people's minds.

पंडित जवाहरलालजी का उपरोक्त कथन अक्षर अक्षर सत्य है। वास्तव में महात्माजी ने देश को नवजीवन प्रदान किया और नवचेतना से राष्ट्र जीवन के परमाणु को परिप्लुत कर दिया। देश में नवीन आशा और नवीन उत्साह की वायु ज़ोर से बहने लगीं। लोग स्वराज्य के सुख स्वप्न देखने लगे। महात्माजी ने जो आदर्श स्वदेश के समाने रक्खे उनसे यह आशा होने लगी कि इनके द्वारा भारत के उद्धार के साथ साथ मानव जाति को भी नवीन प्रकाश का संदेश मिलेगा। निरस्त्र भारत के लिये तो उनका अहिंसात्मक संग्राम एक दिव्यास्त्र था।

सारे देश में अद्भुत् जागृति हो गई। हिन्दू और मुसलमानों में अनुपम एकता के प्रदर्शन हुए। हज़ारों की संख्या में राष्ट्रीय स्कूल खुले। जगह जगह पंचायतें स्थापित हुईं। बेजवाड़ा कांग्रेस के अधिवेशन के के बाद कांग्रेस के सदस्यों की संख्या पचास लाख तक बढ़ गई। राष्ट्रीय संग्राम चलाने के लिये महात्माजी ने "तिलक स्वराज्य फंड" स्थापित किया, जिसके लिये उन्होंने एक करोड़ रुपये की अपील की। देश की जनता ने मुक्त-हस्त से रुपया दिया, और एक करोड़ के बदले एक करोड़ पन्द्रह लाख रुपया इकट्ठा हो गया। महात्माजी के प्रिय चर्खें ने भी तरक्की की। देश में बीस लाख चर्खें चलने लगे।

राष्ट्र में अद्भुत् जागृति

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं महात्माजी के नेतृत्व ने देश को एक प्रकार की अलौकिक नवचेतना से अनुप्राणित किया। देश के कोने कोने में स्वराज्य की भावना का प्रकाश चमकने लगा। स्वराज्य प्राप्ति की महत्वाकांक्षा ने जनता के हृदयों पर अधिकार कर लिया। देश में क्रान्ति की भावना ने वायुमण्डल को परिप्लुत कर दिया। लाला लाजपतरायजी ने ईस्वी सन् १९२० में कांग्रेस के अध्यक्ष पद में भाषण देते हुए कहा थाः—

"It is no use blinking the fact that we are passing through a revolutionary .....We are by instinct and tradition averse to revolutions. Traditionally, we are a slow-going people, but when we decide to move, we do move quickly and by rapid strides. No living organism can altogether escape revolutions in the course of its existence." अर्थात् इस बात से इन्कार करने से कोई लाभ नहीं कि हम एक क्रान्तिकारी ज़माने से गुजर रहे हैं। ···स्वभाव और परम्परा से हम क्रान्ति के ख़िलाफ़ हैं। हमारे यहाँ तो धीरे २ क़दम उठाने का चलन रहा है। लेकिन जब हम तै कर लेते हैं कि चलना है, तब हम तेज़ी से क़दम उठाकर चलते हैं। कोई भी जीवित संस्था अपने जीवन की अवधि में क्रान्ति से अछूती नहीं रह सकती।"

कहने का मतलब यह है कि चारों ओर सत्याग्रह की लहर छा गई। शीघ्र से शीघ्र देश को विदेशी सत्ता से मुक्त करने के लिये लोग उत्सुक हो गये। गांधीजी की आज्ञानुसार नई कौंसिलों के चुनाव का बहिष्कार बहुत कुछ सफल हुआ। दो तिहाई मत दाताओं ने चुनाव में हिस्सा

नहीं किया। स्कूलों के बहिष्कार में भी काफ़ी सफलता मिली। विद्यार्थी समुदाय बड़े उत्साह से असहयोग आन्दोलन में शामिल हुआ। कई वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी, जिनमें पं० मोतीलाल नेहरू और देश बन्धु चितरंजन दास, जैसे भारत प्रख्यात वकील भी शामिल थे। संसार प्रख्यात कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ टेगोर ने अपनी 'सर' की उपाधि त्याग दी। इस समय आपने वायसराय को जो पत्र लिखा, उसमें आपने स्पष्ट निर्देश किया कि राष्ट्र के इस भयङ्कर अपमान को देखते हुए कोई भी सरकारी उपाधि धारण करना एक लज्जा जनक वस्तु है। आपके पत्र का कुछ अंश निम्नलिखित है। "The time has come, when badges of hononr make our shame glaring in their incongruous context of humiliation, and, I for my part, wish to stand, short of all special distinctions, by the side of my country men, who, for their, so called insignificance, are liable to suffer degradation not fit for human beings."

इसी प्रकार इसके कुछ समय पहले मद्रास हाई कोर्ट के भूतपूर्व चीफ़ जस्टिस श्री सुब्रह्मण्य अय्यर ने अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेंट विलसन को एक पत्र लिखकर यह अनुरोध किया था कि वे भारत को स्वराज्य दिलवाने में अपने प्रभाव का पूरी तरह से उपयोग करें। और इसी समय अय्यर महोदय ने के० सी० आई० ई० की उपाधि का परित्याग किया।

कहने का मतलब यह है कि स्वराज्य को जल्दी हासिल करने के लिये जो नया लड़ाकू कार्यक्रम स्वीकार किया गया, उससे जन-आन्दोलन बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ चला। गाँधीजी ने निश्चित भविष्य वाणी करदी थी कि साल भर में स्वराज्य मिल जायगा और इसके लिये ३१ दिसम्बर १९२१ की तारीख भी उन्होंने निश्चित करदी थी। उस समय उनके अनुयाइयों

ने इस भविष्य वाणी पर विश्वास कर लिया था। सितम्बर सन् १९२१ के एक सम्मेलन में गांधीजी ने यहां तक कह दिया था कि "उन्हें साल भर के अन्दर ही स्वराज्य मिल जाने का दृढ़ विश्वास है। बिना स्वराज्य पाये ३१ दिसम्बर के बाद ज़िन्दा रहने की वे कल्पना भी नहीं कर सकते।"

यद्यपि विचारशील लोगों को एक साल में स्वराज्य प्राप्त करने की कल्पना प्रायः असम्भव सी मालूम हुई, पर बहुजन समाज ने यह विश्वास कर लिया कि स्वराज्य बहुत निकट आ पहुँचा है और एक साल में हम अपने देश के मालिक बन बैठेंगे। इससे ही सन् १९२१ में देश के हर हिस्से में जन-संघर्ष के नये नये और पहले से ज्यादा उग्र रूप दिखाई दिये। मज़दूरों में भी अद्भुत् जागृति होने लगी। आसाम-बङ्गाल रेल्वे में अभूतपूर्व हड़ताल हुई। बङ्गाल के मीदनापुर ज़िले में लगान बन्दी का आन्दोलन ज़ोर शोर से चला। पञ्जाब में सरकार के पिट्ठू महन्तो के ख़िलाफ़ अकाली आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया। इसी समय से "राष्ट्रीय सेवा दल" का संगठन शुरू हुआ। कांग्रेस या ख़िलाफ़त के अन्तर्गत अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त को मानते हुये इस दल का संगठन किया गया था, लेकिन बहुत से स्वयं सेवक वर्दी पहनते थे, कवायद करते थे और लाइन बांधकर हड़ताल चलाने या विलायती कपड़ों की दूकानों पर धरना देने या लोगों को समझाने जाते थे।

सरकार ने अपनी पूरी ताकत से सेवादल पर दमन चक्र चलाया। "स्टेट मैन" और "इङ्गलिश मैन" जैसे अर्द्ध सरकारी अखबार शोर मचाने लगे कि सरकार तो ख़तम हो गई है और "सेवा दल" ने कलकत्ते पर कब्ज़ा कर लिया है। उन्होंने इस बात की माँग की कि "सेवादल" के ख़िलाफ़ तुरन्त कारंवाई की जानी चाहिये। सरकार ने स्वयं सेवक दलों को ग़ैर क़ानूनी करार दे दिया। हज़ारों की तादाद में लोग पकड़ लिये गये। उनकी ख़ाली जगहें हज़ारों विद्यार्थियों और कारख़ानों के मज़दूरों ने

सेवादल में भर्ती होकर पूरी की। मतलब यह है कि चारों ओर असहयोग की भावना और देश को स्वतंत्र करने की अभिलाषा ने अपना पूर्णाधिकार जमा लिया। बृटिश अधिकारियों को यह भय होने लगा कि अगर स्वतंत्रता का यह आन्दोलन नगरों से ग्रामों में पहुँच गया तो उनकी सारी ताकत भी इसे दबाने में असमर्थ होगी, और उन्हें अपने बोरे-बिस्तर बाँधकर विलायत के लिये रवाना होने के लिये विवश होना पड़ेगा। इसलिये पं० मालवीयजी को बीच में डालकर महात्मा गांधी और सरकार में समझौता कराने का आयोजन हुआ। महात्मा गांधी और तत्कालीन वाइसराय के बीच में पं० मालवीय जी ने मुलाकात करवाई। उस समय लॉर्ड रीडिंग वाइसराय हुए थे। यह अप्रेल १६२१ की बात है। इस मुलाकात में वाइसराय को गांधीजी की सच्चाई और शुद्ध भाव को देखने का अवसर मिला। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि असहयोग आन्दोलन के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई करना मुनासिब न होगा। प्रसंगवश उन्होंने अली भाइयों के कुछ व्याख्यानों की ओर गांधीजी का ध्यान दिलाया, जिनसे गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन सम्बन्धी विचारों का खंडन होता था। गांधी जी को बताया गया कि इन व्याख्यानों का तात्पर्य हिंसा को सूक्ष्म रूप से उत्तेजना देने के पक्ष में लगाया जा सकता है। गांधीजी को भी जँचा कि इन भाषणों का ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है। इसलिये उन्होंने अली भाइयों को लिखा और उनसे इस आशय का वक्तव्य निकलवाया कि उनका आशय ऐसा नहीं था।

२८, २६ और ३० जुलाई १६२१ को बम्बई में महासमिति की एक महत्व पूर्ण बैठक हुई। बेजवाड़ा कार्य्यक्रम को देश में जो सफलता मिली थी उससे चारों ओर खुशियां छाई हुईं थीं। तिलक-स्वराज्य-कोष में निश्चित से अधिक १५ लाख रुपये आ गये थे। कांग्रेस सदस्यों की संख्या आधे के ऊपर पहुँच कर रह गई। मगर चर्खे करीब २ बीस लाख चलने लगे। इसके बाद अब बुनने तथा खादी सम्बन्धी विविध क्रियाओं

की ओर देश का ध्यान गया। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये विदेशी कपड़े के बहिष्कार और खादी की उत्पत्ति में सारी शक्ति लगाने का प्रश्न देश के सामने था। महा समिति ने यह भी सलाह दी कि "तमाम कांग्रेसी आगामी १ अगस्त से विदेशी कपड़ों का उपयोग छोड़ दें।" बम्बई और अहमदाबाद के मिल मालिकों से अनुरोध किया गया कि वे अपने कपड़ों की कीमत मजदूरों की मजदूरी के अनुपात से रक्खें और वह ऐसी हो जिससे गरीब भी उस कपड़े को खरीद सकें और मौजूदा दरों से तो दाम हरगिज़ न बढ़ाये जाँय।" विदेशी कपड़े मगाने वालों से कहा गया कि वे विदेशी कपड़ों के आर्डर न भेजें और अपने पास के माल को हिन्दुस्तान के बाहर खपाने का उद्योग करें।

१९२१ का महान् आन्दोलन

ईस्वी सन् १९२१ में देश में जैसी अपूर्व और व्यापक जागृति हुई वह भारतवर्ष के इतिहास में एक अद्भुत् घटना थी। राष्ट्र के वातावरण का परमाणु परमाणु 'स्वराज और स्वाधीनता' के भावों से अनुप्राणित हो रहा था। राष्ट्र में नवचेतना का मानों समुद्र उमड़ आया था। महात्मा गांधी की जय जयकार से सारा देश गूँजायमान हो रहा था। महात्मा गांधी देश के मानों एक छत्री और सर्वेसर्वा नेता के रूप में राष्ट्र का मार्ग प्रदर्शन कर रहे थे। पं० जवाहरलालजी का यह वाक्य कि "गांधी ही भारत है" सत्य रूप में प्रकट हो रहा था। उनके अहिंसात्मक असहयोग ने देश को जड़ से हिला दिया था। उन्होंने इस विराट् देश को जागृत कर उसे अपनी महान् शक्ति का भान करवाया था। न केवल राजनैतिक क्षेत्र ही में पर धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में भी नवजागृति और क्रांति की भावनायें अपना आधिपत्य जमा रहीं थीं। सदियों से पद दलित किसानों में भी नवचेतना का प्रकाश चमकने लगा था। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं बंगाल के मिदनापुर जिले में कर बन्दी का आन्दोलन शुरू हो गया था। पञ्जाब में धर्माचार्यों के भोग विलास और पतनशील जीवन के ख़िलाफ़ सिक्खों ने जोर शोर का आन्दोलन शुरू कर दिया था। विद्यार्थीगण हज़ारों की संख्या में स्कूल और कॉलेज छोड़कर गांधीजी के सत्याग्रह संग्राम के विजय झण्डे के नीचे जमा हो रहे थे। संयुक्त प्रदेश में तीन किसान नेताओं के पकड़े जाने के कारण बड़े २ प्रदर्शन हो रहे थे। पुलिस को बरेली में प्रदर्शनकारी किसानों पर गोलियाँ चलानी पड़ी, जिनसे सात किसान मारे गये और कई घायल हुये। इस घटना के दूसरे ही मास में ७० हज़ार किसान असहयोग आन्दोलन में

सम्मिलित हुए। इसी समय पंजाब में सिक्ख किसानों ने भी बहुत बड़ी तादाद में इस महान् आन्दोलन में प्रवेश किया और नानकना साहब के हत्याकांड ने उनके निश्चय को और भी दृढ़ कर दिया। सिक्खों के इस आन्दोलन के कारण अमृतसर के प्रसिद्ध स्वर्ण-मन्दिर के महन्त को स्तीफ़ा देना पड़ा, और सुधारकों की समिति ने सिक्खों के उस पवित्र मन्दिर का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया।

सिक्खों की धार्मिक दृष्टि में स्वर्ण मन्दिर से दूसरा नम्बर नानकाना साहिब के गुरुद्वारेका है। इस गुरुद्वारे के महन्त पर भी भ्रष्टाचार के बड़े बड़े आरोप थे ईस्वी सन् १९२१ के ५ मार्च को इस महन्त के खिलाफ़ बड़ा प्रदर्शन किया गया। लगभग १५० सिक्ख जब पूजा करने के लिये उक्त गुरुद्वारे में घुसे तो उक्त गुरुद्वारे के दरवाज़े बन्द कर दिये गये और उनमें से १०० सिक्ख बड़ी निर्दयता से कृत्ल कर दिये गये! इतना ही नहीं इन सिक्खों के शव पैट्रोल डाल कर जला दिये गये!! इस महान् हत्या-कांड से सारे देश में घृणा और क्रोध की लहर बह चली। अकालियों के गुस्से का तो पार न रहा। अगर महात्माजी का अहिंसात्मक असहयोग मार्ग में न आता तो इन सिक्खों द्वारा बड़ा भयङ्कर बदला लिया जाता और बड़े २ हत्याकाड संगठित होते। इसके दूसरे ही साल अर्थात् ईस्वी सन् १९२२ के अगस्त मास में अपने अधिकारों की रक्षा के लिये गुरु का बाग में सिक्खों ने जो महान् सत्याग्रह संग्राम संचालित किया वह अपने ढंग का अपूर्व था। इस समय विरोधियों द्वारा इन सत्याग्रहियों पर ऐसी निर्दयता पूर्वक मार पड़ती थी कि वे बेहोश तक हो जाते थे। पर इतने पर भी उन्होंने हिंसात्मक उपायों का अवलम्बन नहीं किया। वे महात्मा गांधी के आदर्शों पर शान्ति पूर्वक प्रतिरोध करते रहे। यहां यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि सिक्ख एक सैनिक जाति है और उस पर महात्माजी के अहिंसात्मक प्रोग्राम का जादू की तरह असर हुआ था। उन्होंने भयङ्कर से भयङ्कर आघात सहकर भी जिस शान्ति का

परिचय दिया था उसकी प्रशंसा महामना एड्रूज महोदय ने लंदन के मैनचेस्टर गार्डियन नामक पत्र में की थी और यह दिखलाया था कि सैनिक मनोवृत्ति के मनुष्यों पर भी गांधीजी ने अपने प्रेम और अहिंसा का कितना प्रभाव डाला था।

जैसा कि ऊपर कहा गया है ईस्वी सन् १६२१ में स्वराज्य आन्दोलन ने बड़े ओरों से प्रगति की। लोग एक वर्ष में स्वराज्य मिलने की अभिलाषा से उन्मत्त हो रहे थे। तिलक स्वराज्य फंड के लिये गांधीजी ने एक करोड़ की अपील की थी पर वह रकम इससे कहीं अधिक बढ़ गई। इस फंड में अमीर और ग़रीब दोनों ने मुक्तहस्त से रुपया दिया। महिलाओं ने सोना चांदी और बहुमूल्य जवाहरात के जेवरों को गांधीजी के चरणों में रखकर अपनी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रदर्शन किया। ब्रिटिश माल का बहिष्कार जोर शोर से होने लगा। विदेशी कपड़ों की बड़ी २ होलियां हुई। बम्बई में समुद्र के किनारे विदेशी कपड़ों की जो महान् होली हुई थी, वह बम्बई के इतिहास में एक अपूर्व घटना थी। देश के कई भागों में इस प्रकार की होलियां हुईं। कुछ स्थानों पर पुलिस और जनता में मुठभेड़ हुई और पुलिस ने निरस्त्र जनता पर गोलियां चलाईं।

८ जुलाई को करांची में खिलाफ़त कमेटी का अधिवेशन हुआ,जिसमें मुसलमानों ने अपने खिलाफ़त सम्बन्धी दावे पेश किये और यह प्रस्ताव पास किया कि कोई मुसलमान अङ्गरेजों की फ़ौज में भर्ती न हो और न वह फ़ौज की भर्ती ही में किसी प्रकार की सहायता दे। इस अधिवेशन में बहुत गर्मागर्म भाषण हुए और सरकार को यहां तक धमकी दी गई कि अगर उसने तुर्की के प्रति न्याय न किया तो भारतवर्ष अंग्रेजों से सम्बन्ध तोड़ कर अपने आपको एक स्वतंत्र प्रजातंत्र घोषित कर देगा। इसके कुछ अर्से बाद २८ जुलाई को बम्बई में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई और उसमें प्रिंस ऑफ वेल्स की भेंट का बहिष्कार करने का निश्चय हुआ। इस समय महात्मा गांधी ने अपने 'नवजीवन' में

यह साफ़ तौर से प्रकट किया कि भारतवर्ष का प्रिंस ऑफ वेल्स से व्यक्तिगत रूप से कोई द्वेष नहीं है। इस बहिष्कार से वे उस राज्य पद्धति का विरोध करना चाहते हैं जिसने भारतवर्ष को इस हीनावस्था पर पहुँचा दिया है, और जिसने भारतवर्ष को बुरी तरह शोषित किया है। इसके दो मास के बाद सितम्बर मास में अली बन्धु और दूसरे कई मुस्लिम नेता राज्यविद्रोही भाषण करने के उपलक्ष में गिरफ़्तार किये गये। इस गिरफ़्तारी से देश में और खास कर मुसलमानों में बड़ी सनसनी छा गई। तुरन्त ही केन्द्रवर्ती ख़िलाफ़त कमेटी (Central Khilafat Committee) की बैठक बुलाई गई और उसमें वे ही प्रस्ताव दोहराये गये जिनके कारण उक्त नेताओं की गिरफ़्तारियाँ हुई थीं। सारे देश में मुसलमानों ने सैकड़ों सभायें कर इन प्रस्तावों को दोहराया। ४ अक्टूबर को गांधीजी ने यह घोषणा की कि वे इस संघर्ष में मुसलमानों का साथ देंगे, और उनके साथ अपना मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध और भी मज़बूत करेंगे। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के ५० सदस्यों ने गांधीजी की इस घोषणा का समर्थन किया और यह प्रकट किया कि हर एक नागरिक को यह अधिकार है कि वह असहयोग के विचारों को निर्भयता से प्रकट करे। इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी प्रकट किया कि कोई भी भारतवासी ऐसे सरकार की नौकरी न करे जिसने की भारतवर्ष को नैतिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से इस हीनावस्था को पहुँचा दिया है। अलीबन्धुओं का कराँची में अभियोग चला और उन्हें तथा उनके साथियों को दो दो वर्ष की सजायें हुईं।

इन घटनाओं से देश में बड़े जोरों से विरोध की आग भड़क उठी। ४ नवम्बर को दिल्ली में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की फिर बैठक हुई और उसने गांधीजी के उक्त घोषणा पत्र का फिर से समर्थन किया। कांग्रेस कमेटी ने हर एक प्रान्त को यह अधिकार दिया कि वह अपनी ज़िम्मेदारी पर सविनय अवज्ञा शुरू कर सकता है। और इसका

प्रारंभ वह करबन्दी के आंदोलन से कर सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि एक महान् अहिंसात्मक संग्राम का सूत्रपात होने लगा। देश में विद्युत् वेग से युद्ध की भावना फैल गई। चारों ओर अहिंसात्मक लड़ाई के लिये साधन जुटाये जाने लगे और वातावरण तैयार किया जाने लगा।

प्रिंस ऑफ़ वेल्स का आगमन

ब्रिटिश सरकार ने यह समझकर कि भारतवासी स्वभावतया राज-भक्त होते हैं, उन्होंने प्रिंस ऑफ वेल्स को इसलिये भारतवर्ष भेजा कि उनकी उपस्थिति से भारतवर्ष का क्षुब्ध वातावरण कुछ शान्त हो जाय। ईस्वी सन् १६२१ के १७ नवम्बर को प्रिंस ऑफ वेल्स बम्बई उतरे। कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी ने प्रिंस के बहिष्कार के आदेश जारी कर दिये। बम्बई में यह बहिष्कार जैसा चाहिये वैसा सफल न हुआ। वहां प्रदर्शन कारियों और सरकार के पक्षपाती लोगों में संघर्ष हो गया जिसने आगे चलकर दंगे का रूप धारण कर लिया।

इसके विपरीत कलकत्ते में इस बहिष्कार आन्दोलन को अपूर्व सफलता मिली। वह यहां तक कि स्टेट्समैन और इङ्गलिशमैन सरीखे एङ्गलो इण्डियन पत्रों ने यह घोषित कर दिया कि कांग्रेस स्वयंसेवकों ने वास्तव में कलकत्ते नगर पर अपना अधिकार कर लिया है, और सरकार ने अपनी सत्ता छोड़ दी है। उन्होंने सरकार से जोरदार शब्दों में यह अनुरोध किया कि वे स्वयंसेवकों के खिलाफ़ सख़्त क़दम उठावें। फिर क्या था? चौबीस घण्टे के अन्दर २ कांग्रेस स्वयंसेवक मंडल ग़ैर क़ानूनी घोषित कर दिया गया। अन्य प्रांतों में भी इस सम्बन्ध में बङ्गाल का अनुकरण किया गया।

बङ्गाल में एक तरह से सरकार के इस दमन चक्र का स्वागत किया। दमन क्रान्ति की आग में घी का काम करता है। दमन शान्ति स्थापना के

बजाय क्रान्ति की आग को बड़े जोर से प्रज्वलित करता है। नवयुवक बङ्गाल इस दमन का मुकाबला करने के लिये तैयार हो गया। उसने निश्चय किया कि सरकार के इस चैलेंज का जवाब आन्दोलन की भयङ्करता बढ़ाकर दिया जाय। पर बङ्गाल के अनुभवी नेता देशबन्धु दास ने सावधानी से काम लेना उचित समझा। उन्होंने यह मुनासिब समझा कि किसी सख्त कदम को उठाने के पहले महात्मा गांधी और वर्किङ्ग कमेटी से सलाह मशविरा कर लेना जरूरी है। इसके अतिरिक्त देश की परिस्थिति का ज्ञान कर लेना भी आवश्यक है, जिससे यह मालूम हो जाय कि देश सरकार का सख्त अहिंसात्मक प्रतिरोध करने के लिये कहां तक तैयार है। बङ्गाल प्रान्त के विभिन्न भागों में गुप्त सर्क्युलर भेजे गये और इस बात की रिपोर्टें मँगवाई गई कि प्रान्त सरकार के खिलाफ सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने के लिये कहां तक तैयार है। एक सप्ताह के अन्दर २ सब जिलों से उत्साह दायक समाचार मिले। यह मालूम होने लगा कि प्रान्त सविनय अवज्ञा के लिये बड़ा आतुर हो रहा है। नवम्बर के अन्त में बङ्गाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बन्द कमरे में बुलाई गई। इसमें तीन सौ सदस्यों ने भाग लिया। उसमें बड़ा अपूर्व जोश और उत्साह था। उसमें सर्व सम्मति से यह निश्चय किया गया कि सरकार के दमन नीति के जवाब में तुरन्त सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर दिया जाय और संकट कालीन अवस्था में कमेटी के सारे अधिकार कमेटी के प्रेसीडेंट देशबन्धु दास को दे दिये जांय। उन्हें गिरफ्तार होने की हालत में अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने का अधिकार भी दे दिया जाय।

कहने की आवश्यकता नहीं कि देशबन्धु चित्तरंजनदास ने आंदोलन का नेतृत्व अपने हाथ में लिया, और उन्होंने स्वयं सेवकों की भर्ती के लिये अपील की। उन्होंने यह भी प्रकट किया कि उनकी धर्मपत्नी और पुत्र भी स्वयंसेवकों में भर्ती होंगे जिससे कि दूसरे लोगों को उत्साह मिले। कमेटी के कुछ सदस्यों ने यह अनुरोध किया कि जब तक एक भी

आदमी मौजूद हैं तब तक किसी स्त्री को सत्याग्रह में क्रियात्मक भाग लेने की आवश्यकता नहीं, पर देश बन्धु अपनी बात पर अड़े रहे। दूसरे ही दिन देश बन्धु के पुत्र स्वयं सेवकों का नेतृत्व करते हुए गिरफ़्तार किये गये और वे जेलखाने भेज दिये गये। इससे वातावरण में बड़ी गर्मी आ गई और स्वयं सेवक बड़े जोरों से भर्ती होने लगे। श्रीमती दास की भी बारी आई और वे अपनी ननद श्रीमती उर्मिला देवी और अपनी एक सखी मिस सुनीति देवी के साथ स्वयं सेवकों तथा स्वयं सेविकाओं का नेतृत्व करती हुई सत्याग्रह के लिये बाहर निकल पड़ी। वे सब गिरफ़्तार करली गईं और उन्हें भी जेल भेज दिया गया। इससे सारी बङ्गाल में क्रोध और घृणा की लहर बह चली। क्या बुड्ढे क्या युवक, क्या अमीर क्या गरीब सभी बहुत बड़ी तादाद में कांग्रेस स्वयं सेवक दल में भर्ती होने लगे इसका असर न केवल साधारण जनता ही पर पड़ा पर पुलिस और फ़ौज के लोग भी इस घटना से प्रभावित हुए। जब श्रीमती दास कैदियों की गाड़ी में जेल ख़ाने ले जाई जा रही थीं तब बहुत से पुलिस के कांस्टेबल उनके पास आये और उनसे विनय पूर्वक नमस्कार कर कहने लगे कि हम सरकार के इस अत्याचार के ख़िलाफ़ अपनी नौकरियों से स्तीफ़ा देने की तैयारी कर रहे हैं। सरकारी क्षेत्रों में भी सन्नाटा छा गया और सरकार बड़ी भयभीत होने लगी। उसे डर होने लगा कि अगर पुलिस फ़ौज और अन्य सरकारी नौकरों में असहयोग की भावना ने घर कर लिया और वे स्तीफ़ा देने लगे तो शासन का चलना असम्भव हो जायगा। मि० एस० एन० मल्लिक ने, जो नर्मदल के एक प्रधान नेता थे और जो पीछे जाकर भारत सेक्रेटरी की कौंसिल के सदस्य हो गये थे, श्रीमती दास की गिरफ़्तारी के विरोध में गवर्नमेंट हाउस छोड़कर चले गये। वातावरण इतना उत्तेजना मय हो गया था कि सरकार को मजबूर होकर श्रीमती दास और उनकी सहयोगिनियों को आधी रात के पहले ही छोड़ देना पड़ा। इसके दूसरे दिन हज़ारों विद्यार्थी और फैक्टरियों के

मज़दूरों ने स्वयं सेवकों में अपने नाम दर्ज़ कराये । सत्याग्रह का जोर दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा । थोड़े ही दिनों में कलकत्ते के दो बड़े जेल ख़ाने क़ैदियों से खचाखच भर गये । सरकार ने कुछ कैम्प-जेलखाने स्थापित किये और वे भी अति शीघ्र पूरे भर गये । अब तो सरकार ने सख़्त क़दम उठाने का निश्चय किया, और उसने १० दिसम्बर सन् १९२१ को देशबन्धु दास और उनके सब साथियों को गिरफ़्तार कर जेल में डाल दिया । इससे सारे देश में बड़ी सनसनी छा गई ! लोग सत्याग्रह संग्राम को और भी तेज़ी से चलाने के लिये उत्सुक होने लगे ।

अहमदाबाद की कॉंग्रेस

देश के इस उत्तेजना पूर्ण वातावरण में, अहमदाबाद में, कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में जनता का जैसा उत्साह देखा गया, वह कांग्रेस के इतिहास में अद्वितीय और अपूर्व था। जनता के जोश का समुद्र मानों उमड़ रहा था। लोग स्वराज्य की भावनाओं से परिप्लुत हो रहे थे। देशबन्धु दास इस अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुये थे, पर उनके जेल चले जाने से हकीम अजमल खां साहब ने अध्यक्ष के आसन को सुशोभित किया था। इस अधिवेशन में सारे देश को आह्वान किया गया था कि वह व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह के लिये बिलकुल तैयार रहे। देश के हर एक पुरुष और स्त्री से अपील की गई थी कि वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक मंडल (National Volunteer Corps) में भर्ती हों और सत्याग्रह संग्राम को अपनी सारी शक्ति लगाकर चलावें; सरकार के अन्याय पूर्ण कानूनों को तोड़ें और स्वेच्छा से जेलखाने जावें। इस अधिवेशन ने महात्मा गांधी को देश का डिक्टेटर नियुक्त किया और उनके हाथ में सत्याग्रह संग्राम चलाने की सारी सत्ता सौंप दी।

इस अधिवेशन में सुप्रसिद्ध मुस्लिम लीडर मौलाना हसरत मोहानी ने यह प्रस्ताव रक्खा कि भारत की राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) का अन्तिम लक्ष्य 'पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त गणतंत्र राज्य (Republic)' रक्खा जाय। महात्माजी को उस समय के लिये सम्भवतः यह प्रस्ताव असामयिक् जचा और उन्होंने इसका विरोध किया। उन्होंने इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में कहाः—

It has grieved me because it shows lack of responsibility." अर्थात् इस प्रस्ताव ने मुझे दुःखित किया है, क्योंकि इसमें जिम्मेदारी का अभाव है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन के इस विरोध के कारण उक्त प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। वास्तविक बात यह थी कि बम्बई में 'प्रिंस ऑफ वेल्स' के आगमन के समय में जो कुछ हिंसा कांड हो गया था उससे महात्माजी की कोमल आत्मा को बड़ा धक्का पहुँचा था। महात्माजी अहिंसा के पुजारी थे। उनका रोम रोम अहिंसा के महान् तत्वों से परिप्लुत था। विरोधी द्वारा भयङ्कर से भयङ्कर उत्तेजना होने पर भी अहिंसातत्व पर अटल रहना, यह उनका अपने कार्य्यकर्त्ताओं को आदेश था। अपने अनुयायियों या कार्य्यकर्त्ताओं द्वारा इस महान् तत्व की अवहेलना उनके लिये असह्य गलती था। इस लिये लोगों की बढ़ती हुई उमंगों के बावजूद भी उन्होंने अहमदाबाद कांग्रेस में बहुत ज्यादा सख्त क़दम उठाना मुनासिब नहीं समझा। इससे उग्रपन्थियों को कुछ निराशा भी हुई।

अहमदाबाद कांग्रेस के बाद १ मास तक गांधीजी परिस्थिति का विशेष अध्ययन करते रहे। इस बीच में कई प्रान्तों और जिलों के कार्य कर्त्ता उनके पास आये और उनसे करबन्दी का आन्दोलन जोर शोर से चालू करने का अनुरोध किया। मद्रास प्रान्त के गंटुर नामक जिले ने बिना महात्माजी की अनुमति लिये ही करबन्दी का आन्दोलन शुरू कर दिया। महात्माजी को यह अनुशासन हीनता अच्छी न लगी। उन्होंने तुरन्त यह आदेश भिजवाया कि सारे कर ठीक मिती पर दे दिये जावें। इसके बाद उन्होंने करबन्दी आन्दोलन के लिये गुजरात का बारडोली नामक एक जिला चुना। वह जिला सरदार बल्लभ भाई प्रभृति महात्मा जी के प्रधान सैनिकों द्वारा अहिंसात्मक असहयोग के लिये ख़ास तौर से तैयार किया गया था।

बारडोली का सत्याग्रह

गांधीजी ने भारतवर्ष में जिन जिन स्थानीय सत्याग्रहों का संचालन किया था, उनमें बारडोली का सत्याग्रह सबसे महत्त्व पूर्ण था। यही कारण है कि कुछ लेखकों ने उक्त सत्याग्रह को ऐतिहासिक सत्याग्रह कहा है। जिन मुद्दों पर यह सत्याग्रह चलाया गया था, वे किसानों के लिये जीवनभूत थे। भारत की तत्कालीन नौकरशाही ने इस सत्याग्रह को कुचलने के लिये हर प्रकार के दमनशील उपायों को काम में लिया। पर शीघ्र ही उसे मालूम हो गया कि किसी भी प्रकार के कठोर दमन से जनता की आत्मा को नहीं कुचला जा सकता।

ईस्वी सन् १६२२ में, जब कि सारे भारतवर्ष में असहयोग आन्दोलन अपने पूरे जोर शोर के साथ चल रहा था, बारडोली का संघर्ष भी बड़ा उग्र रूप धारण करता जा रहा था। महात्माजी और उनके प्रधान सैनिक सरदार वल्लभ भाई पटेल की यह अभिलाषा थी कि सत्याग्रह का सारा प्रोग्रोम बारडोली के संघर्ष में व्यावहारिक रूप में लाया जाय। अगर चोरी चोरा की दुर्घटना न हुई होती तो उस समय सत्याग्रह का महान् संग्राम चलाने का सौभाग्य बारडोली को प्राप्त हुआ होता। चोरीचोरा की दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कारण महात्माजी को यह संग्राम अनिश्चित काल के लिये स्थगित करना पड़ा। पीछे जाकर ईस्वी सन् १६२८ में बारडोली ने फिर से करबन्दी का आन्दोलन शुरू किया, जो सत्याग्रह के इतिहास में एक स्मरणीय घटना रहेगी।

बम्बई की सरकार अपने हर एक तालुके में प्रत्येक तीस वर्ष में एक

वक्त जमा बन्दी करती थी। इस जमाबन्दी के संशोधन में अक्सर भूमि-कर बढ़ाया जाता था। बारडोली और चौरासी के तालुकों में सरकार ने ३० फी सदी कर बढ़ा दिया। इसका ज़बरदस्त विरोध हुआ और सरकार ने यह बढ़ती ३० फी सदी से घटाकर २२ फी सदी करदी। पर किसानों को इससे भी सन्तोष न हुआ। उन्होंने इस भूमिकर वृद्धि की खुली जाँच के लिये सरकार से अनुरोध किया। पर सरकार ने किसानों के इस विरोध की कुछ परवा न की।

बहुत सोच विचार के बाद किसानों ने संगठित रूप से इसका विरोध करने का निश्चय किया। उन्होंने सभायें करके इस प्रकार के प्रस्ताव पास किये कि अगर सरकार अपने निर्णय पर अड़ी रहे तो उसे कर देना बन्द कर दिया जाय।

बारडोली तालुका की जन-संख्या लगभग अठ्यासी हज़ार थी और नई करवृद्धि के अनुसार उसकी भूमि कर सम्बन्धी आमदनी छः लाख सत्ताईस हज़ार होती थी। गांधीजी ने सारी परिस्थिति को अध्ययन कर बारडोली के किसानों को आशीर्वाद दिया और उनके न्यायोचित संघर्ष की सफलता के लिये शुभ कामना प्रकट की।

किसानों की प्रार्थना पर सरदार वल्लभ भाई पटेल ने उनका नेतृत्व स्वीकार किया। उन्होंने किसानों में नया जोश फूँका और उन्हें यह आदेश दिया कि वे बड़ा से बड़ा आत्मत्याग और कष्ट सहन करके सत्याग्रह संग्राम में अन्तिम विजय प्राप्त करें। श्रीयुत महादेव भाई देसाई ने अपने "Story of Bardoli" नामक ग्रन्थ में बारडोली के सत्याग्रह का बड़ा ही चित्ताकर्षक वर्णन किया है, जिसका सारांश यह है।

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने बारडोली तालुके का बड़ा ही सांगो-पांग और सुन्दर संगठन किया था। कई वर्षों तक इस तालुके के विभिन्न भागों में उनकी स्थापित की हुई सार्वजनिक संस्थायें रचनात्मक कार्य

कर रही थीं। इन्हीं संस्थाओं के अन्तर्गत सोलह शिविर "Camps" क़ायम किये गये थे। इन शिविरों की आधीनता में २५० स्वयंसेवक लोकजागृति और सेवा का कार्य्य कर रहे थे। इन स्वयं सेवकों के ज़िम्मे विशिष्ट कार्य्य रक्खे गये थे। सरदार वल्लभभाई के इस अद्भुत संगठन ने बारडोली तालुका को सत्याग्रह के लिये पूरी तरह से तैयार कर दिया था। इस तालुके के वातावरण में संघर्ष, आत्मत्याग, निर्भयता और अन्यायपूर्ण क़ानूनों की अवज्ञा आदि के तत्व पूर्ण रूप से भर गये थे। प्रत्येक दिन ब्यूलेटिन प्रकाशित होते थे जिनमें सत्याग्रहियों के लिये शिक्षायें और आदेश रहते थे। किसानों से यह प्रतिज्ञायें ली गईं थीं कि वे पूर्ण रूप से अहिंसक रहेंगे, तथा वे इस पवित्र संग्राम की बलिवेदी पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने के लिये सहर्ष प्रस्तुत रहेंगे। बारडोली में सारे तालुके के प्रतिनिधियों की एक परिषद् की गई और उसमें एक मत से यह तै किया गया कि सरकार को परिवर्द्धित कर न दिया जाय और जब तक सरकार अपने पूर्व भूमिकर लेने के लिये तैयार न हो जाय या वह एक निष्पक्ष न्यायालय द्वारा इस प्रश्न का निपटारा न करवाले तब तक यह कर बन्दी का आन्दोलन जोर शोर से चलाया जाय। यह निश्चय ईस्वी सन् १९२८ को १२ फरवरी को हुआ था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि पुरुष, स्त्रियां और बच्चे सब के सब सरदार द्वारा बुलाई गई सभाओं में बड़े उत्साह के साथ सम्मिलित होते थे। सारे बारडोली तालुके का वातावरण विद्युन्मय हो गया था। चारों ओर नवजीवन और नवोत्साह के चिन्ह दिखलाई देने लगे थे। ईस्वी सन् १९२२ के सत्याग्रह के दिनों की पुनरावृत्ति हो रही थी।

सरकार ने साम, दाम, दण्ड, भेद आदि सब उपायों का अवलम्बन कर सत्याग्रह संग्राम को कुचलने की चेष्टा की पर लोगों के दृढ़ निश्चय के सामने वे कामयाब न हुईं। उसके द्वारा किये गये लाठीचार्ज को सत्याग्रहियों ने अपने आत्मबल द्वारा बेकार सिद्ध कर दिया। लोग

खुशी से जेल जाने लगे और उसमें एक प्रकार के अपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगे। इस पर सरकार की परेशानी बहुत बढ़ गई। अब वह लोगों की एकता को तोड़ने का प्रयत्न करने लगी। लोगों की जायदादें बहुत बड़े पैमाने पर ज़ब्त की जाने लगी। तालुके के लोगों ने इन्हें लेने से इन्कार कर दिया। इस पर सरकार ने बाहर से आदमी बुलाकर इन पर बोली लगवाना शुरू की। उसने १४०० एकड़ भूमि ज़ब्त कर उसे नीलाम कर दिया। इतना ही नहीं सरकार ने पठानों को बुलाकर लोगों पर तरह तरह के अत्याचार करवाये, पर जनता पहाड़ की चट्टान की तरह अपने दृढ़ निश्चय पर अटल रही और वह टस की मस न हुई। जनता ने सरकार के प्रतिनिधियों का और उन लोगों का जिन्होंने जायदादें खरीदी थीं, पूर्णरूप से बहिष्कार कर दिया। यहां यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि गांधीजी के आदर्शानुसार इस बहिष्कार में अपने विरोधियों की भी खाद्य-सामग्री आदि जीवन निर्वाह की वस्तुओं को शामिल नहीं किया गया था।

सारे भारतवर्ष ने बारडोली के वीरों के इस महान् सत्याग्रह संग्राम के प्रति सहानुभूति प्रकट की। इस पवित्र संग्राम में वीर महिलाओं ने वैसा ही वीरता पूर्ण भाग लिया जैसा कि पुरुषों ने लिया था। बम्बई की धारा सभा के कई सदस्यों ने बारडोली में किये जाने वाले दमन के विरोध में अपने स्तीफ़े दे दिये। पार्लियामेंट में भी बारडोली के प्रश्न को लेकर काफ़ी चर्चा हुई। यहां यह ध्यान में रखना चाहिये कि सत्याग्रही किसान अहिंसक और चट्टान की तरह दृढ़ रहे। आखिर उनकी विजय हुई। साढ़े पाँच मास के निरन्तर संघर्ष के बाद सरकार ने अपने घुटने टेक दिये और गवर्नर को इस सारे प्रश्न की जाँच करने लिये एक कमेटी बैठानी पड़ी। जिन लोगों की जायदादें ज़प्त की गई थीं उन्हें अपने असली मालकों को वापस लौटा दिया गया। कमेटी ने अपनी जाँच के बाद यह पाया कि किसानों का उज्र सही है और उसने २२ फी सदी कर वृद्धि को घटाकर

केवल $6\frac{1}{4}$ फी सदी रख दिया ।

सत्याग्रह के इस महान् संग्राम ने संसार के सामने सत्याग्रह शस्त्र की महान् शक्ति को रक्खा । रैय्यत का संघर्ष न्याय के तत्व पर स्थित था और उसने अहिंसा के महान् सिद्धान्त को शुरू से आख़िर तक अपनाये हुये रक्खा । इस महान् ऐतिहासिक संग्राम की सफलता पर गांधीजी को बधाई देते हुए स्वर्गीय श्रीमती सरोजनी नायडू ने गांधीजी को लिखा था "Your dream was to make Bardoli the perfect example of Satyagraha and Bardoli has fulfilled itself in its own fashion interpreting and perfecting your dream.

गांधी जी के आन्दोलन का अद्भुत् प्रभाव

सरकार का आसन हिला

महात्मा गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन ने सारे देश में जिस अहिंसात्मक और अपूर्व क्रान्ति की लहर फैलादी थी और उससे राष्ट्र की आत्मा में जैसी अद्भुत सजीवता आगई थी, उसका उल्लेख हम गत पृष्ठों में कर चुके हैं। इस देशव्यापी क्रान्ति की भावना ने तत्कालीन सरकार के आसन को जड़ से हिला दिया था। ईस्वी सन् १९२२ की ९ फरवरी को तत्कालीन वाइसराय ने भारत सेक्रेटरी के पास लंदन को निम्नलिखित तार भेजा था । "The lower classes in the towns have been seriously affected by the non-co-operation movement...... In certain areas the peasantry have been affected, particulary in parts of Assam Valley, United Provinces, the Akali agitation............has penetrated to the rural Sikhs. A large proportion of the

Mohammedan population through out the country are embittered and sullen... .....grave possibilities... ....The Government of India are prepared for disorder of a more formidable nature than has in the past occurred and do not seek to minimise in any way the fact that great anxiety is caused by the situation". नगरों की निम्न श्रेणियां असहयोग आन्दोलन से गम्भीरता पूर्वक प्रभावित हुई हैं। आसाम, युक्तप्रान्त बिहार और उड़ीसा आदि प्रान्तों में कृषक दल पर भी इस आन्दोलन का प्रभाव पड़ा है। अकाली सिक्खों के आन्दोलन ने ग्रामों में प्रवेश कर वहां के सिक्खों को प्रभावित किया है। सारे देश में मुसलमान जनता का बहुत बड़ा भाग कटुता और उदासी से भर गया है। स्थिति की सम्भावनायें गम्भीर हैं...। भारत सरकार भूत कालीन घटनाओं से अधिक संगीन और अशांति का मुकाबला करने के लिये तैयार है। पर वह स्थिति की गम्भीरता को कम न करते हुये यह प्रकट करती है कि स्थिति से भारी चिन्ता हो रही है।

ईस्वी सन् १९२२ में गांधीजी के आन्दोलन ने तत्कालीन सरकार के आसन को किस प्रकार डोलायमान कर दिया था, इसका उल्लेख तत्कालीन बम्बई के गवर्नर ने अपनी एक मुलाकात में प्रकट किया था। यह मुलाकात उन्होंने 'ड्रियूई पियर्सन' नामक एक अखबार नवीस को दी थी और जिसका उल्लेख स्वर्गीय सी० एफ० एण्ड्रूज़ महोदय ने "New Republic" नामक पत्र में इस प्रकार किया था।

He gave us a scare! His programme filled our jails. You can't go on arresting people for ever, you know-not when there are 319, 000, 000 of them. And if they had taken his next step and

refused to pay taxes! God knows where we should have been!

Gandhi's was the most colossal experiment in world history; and it came within an inch of succeeding. But he could not control men's passions. They became violent and he called off his programme. You know the rest. We jailed him.

अर्थात् उन्होंने (गांधीजी ने) हमें आतंकित कर दिया था। उनके कार्यक्रम ने हमारी जेलों को भर दिया था। आप हमेशा लोगों को गिरफ़्तार रखने का काम जारी नहीं रख सकते। जब कि उनकी संख्या ३१,६०,००,००० है। अगर लोगों ने उनके (गांधीजी के) दूसरे कदम को अपनाया होता और कर देना बन्द कर दिया होता तो ईश्वर जानता है, हम आज कहाँ होते।"

"गांधीजी का प्रयोग, संसार के इतिहास में, बड़ा प्रचण्ड था और वह सफलता के बिल्कुल नज़दीक चला गया था। लेकिन वे (गांधीजी) लोगों के मनोविकारों को संयमित नहीं कर सके। लोग ख़ून ख़राबी पर उतर आये और इसलिये गांधीजी ने अपना आन्दोलन रोक दिया। बाकी हाल तुम्हें मालूम ही है। हमने उन्हें जेल भेज दिया।"

उपरोक्त अवतरणों से पाठकों को गांधीजी के आन्दोलन के प्रचण्ड प्रभाव का ज्ञान हुआ होगा और उन्हें यह बात भी मालूम हुई होगी कि अगर चोरीचौरा काण्ड की दुर्भाग्यपूर्ण घटना नहीं हुई होती तो देश उस समय क्रान्ति के बिल्कुल निकट पहुँच गया था।

गांधीजी का स्पष्टीकरण

हमने गत पृष्ठों में दिखलाया है कि गांधीजी अहिंसा के अवतार थे। अहिंसा के महान् तत्व के द्वारा भारत के लिये स्वराज्य प्राप्त करना

उनका आदर्श था। इससे मनुष्य जाति के सामने वे एक नया दृष्टिकोण रखना चाहते थे। भारतीय संस्कृति के उच्चत्तम आदर्श "अहिंसा" के द्वारा इस महान् राष्ट्र के लिये पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर, वे मनुष्य जाति को एक दिव्य संदेश देना चाहते थे। वे स्वराज्य के लिये भी हिंसा के मार्ग को अपनाना अपने आदर्श के अनुकूल नहीं समझते थे। वे यह बात क़तई नहीं चाहते थे कि राष्ट्र अहिंसा के दिव्य तत्व से विचलित हो। चोरी चोरा काण्ड के बाद सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित करने के लिये उन्होंने जो वक्तव्य दिया था उसमें उन्होंने निम्न लिखित पंक्तियां लिखी थीं:—

"Let the opponent glory in our humiliation and so-called defeat. It is better to be charged with cowardice than to be guilty of denial of our oath of non-violence, and sin against God.......... I would suffer every torture, absolute ostracism and death itself to prevent the movement from becoming violent or a precursor of violence." अर्थात् हमारे विरोधी को हमारे मानमर्दन और कथित् पराजय पर गौरव अनुभव करने दीजिये। अहिंसा के प्रण को भंग करने और ईश्वर के विरुद्ध पाप करने के बजाय भीरुता का आरोप सिर पर ले लेना ज्यादा अच्छा है। आन्दोलन को हिंसात्मक तथा हिंसा का परिपोषक होने के बजाय, मैं हर एक प्रकार की यंत्रणा, पूर्ण समाज बहिष्कार और मृत्यु तक सहन करने को तैयार हूं।"

— ——

चौरीचौरा का कांड

सारे भारतवर्ष में असहयोग आन्दोलन ने जो विराट् स्वरूप ग्रहण किया था, उसका उल्लेख हम गत पृष्ठों में कर चुके हैं। स्वतन्त्रता की भावना ने अमीरों के महलों से लगाकर गरीबों के झोंपड़ों तक में अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लिया था। देश में चारों ओर नवजीवन का प्रकाश चमकने लगा था। ईस्वी सन् १९२२ की पहली फरवरी को गांधीजी ने तत्कालीन वायसरॉय लॉर्ड रीडिंग को यह चुनौती (Ultimatum) भेजी थी कि अगर सरकार ७ दिन के अन्दर २ अपना हृदय परिवर्तन न करेगी तो वे बारडोली में करबन्दी का आन्दोलन शुरू कर देंगे। बारडोली के साथ २ बङ्गाल, युक्तप्रान्त और आंध्र देश भी कर बन्दी का आन्दोलन जोरशोर के साथ शुरू करने की तैयारी कर रहे थे। महात्माजी की इस चुनौती से सारे देश में एक प्रकार की अपूर्व उत्तेजना छागई थी। लोग उस क्षण के लिये बड़े उत्साह के साथ बाट जोह रहे थे कि कब वह महान् आन्दोलन शुरू किया जाय। इतने ही में आकाश से अकस्मात् वज्राघात हुआ, जिसने देश के उमड़ते हुये जोश को कुछ समय के लिये बुरी तरह से मार दिया।

ईस्वी सन् १९२२ की ४ फ़रवरी को युक्तप्रांत के चौरीचौरा नगर में उत्तेजना वश होकर लोगों की भीड़ ने पुलिस थाने में आग लगादी, और २२ पुलिसमैनों को जला दिया! जब इस दुर्घटना का समाचार महात्मा गांधी को पहुँचा तब उनके कोमल हृदय को जो धक्का लगा, उसका उल्लेख करना लेखनी द्वारा असमर्थ है। उन्होंने तुरन्त कांग्रेस कार्य समिति की बारडोली में बैठक बुलाई और इस दुर्घटना का

उल्लेख करते हुए उक्त समिति से जोरदार शब्दों में अनुरोध किया कि वह अनिश्चित समय के लिये सारे देश में सत्याग्रह संग्राम को बन्द करदे और कांग्रेस जन रचनात्मक कार्य्यों में जुट जावें। कहने की आवश्यकता नहीं कि राष्ट्र के हृदय पर इस आदेश का असर वज्राघात सा हुआ। राष्ट्र की आत्मा में स्वराज्य की प्राप्ति के लिये जो अद्भुत् विकलता उत्पन्न हो रही थी वह ठण्डी पड़ गई। राष्ट्र में घोर निराशा का साम्राज्य छा गया! राष्ट्र की आत्मा कुछ समय के लिये अपने आपको पंगु अनुभव करने लगी। सारे राष्ट्र की गतिविधियों पर मानों तुषार पात हो गया! महात्माजी पर लोगों का अपूर्व पूज्य भाव होते हुये भी लोगों को उनकी यह कार्यवाही पसन्द न आई। बाबू सुभाष चन्द्र बोस अपने "Indian Struggle" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—There was a regular revolt in the Congress Camp. No one could understand why Mahatma should have used the isolated incident at Chauri-Chaura for strangling the movement all over the country. Popular resentment was all the greater because the Mahatma had not cared to consult representatives from the different provinces and because the situation in the country, as a whole, was exceedingly favourable for the success of the civil disobedience campaign. To sound the order of retreat just when public enthusiasm was reaching the boiling-point was nothing short of a national calamity. The principal lieutenants of the Mahatma, Deshabandhu Das, Pandit MotiLal Nehru and Lala Lajpat Rai, who were all in prison, shared the popular resentment. I was with the Deshabandhu at

the time and I could see that he was beside himself with anger and sorrow at the way Mahatma Gandhi was repeatedly bungling. He was just beginning to forget the December blunder when the Bardoli retreat came as a staggering blow. Lala Lajpat Rai was experiencing the same feelings and it is reported that in sheer disgust he addressed a seventy page letter to the Mahatma from prison. "अर्थात् सत्याग्रह के स्थगितकरण के ख़िलाफ़ कांग्रेस केम्प में नियमित रूप से विद्रोह का भाव था। कोई यह बात न समझ सका कि चौरीचौरा की एकांतिक घटना के कारण महात्मा ने सारे आन्दोलन का क्यों गला घोंट दिया। लोक-विक्षोभ इसलिये भी ज्यादा था कि महात्माजी ने विभिन्न प्रान्त के प्रतिनिधियों से इस सम्बन्ध में सलाह मशविरा करने की भी चिन्ता न की और ऐसे समय में आन्दोलन बन्द किया जब कि सविनय अवज्ञा भंग करने के लिये अत्यधिक अनुकूल परिस्थिति थी। ऐसे समय में पीछे हटने की आज्ञा देना, जब कि जनता का उत्साह ज्वलंत अवस्था पर पहुँचा था, राष्ट्रीय दुर्भाग्य के सिवा और क्या हो सकता है। महात्माजी के प्रधान साथी देशबन्धु दास और लाला लाजपत राय आदि ने, जो उस समय जेल में थे, जन-विक्षोभ के साथ अपनी सहमति प्रकट की थी। मैं उस समय देशबन्धु दास के साथ था और मैंने देखा कि वे महात्माजी के इस प्रकार के कार्यों के कारण दुःखी और क्रोधित थे। वे महात्माजी द्वारा की गई दिसम्बर मास की भूल को भूल भी न पाये थे कि बारडोली की इस भूल ने उन पर वज्राघात सा असर किया। लाला लाजपतराय के भी इस सम्बन्ध में वही भाव थे और उन्होंने बड़े त्रास के साथ जेलखाने से महात्माजी को ७० पृष्ठों का एक पत्र लिखा था।"

पं० जवाहरलाल नेहरू ने Mathatma Gandhi नामक अपने नवीन ग्रन्थ में चौरीचौरा कांड की वजह से आन्दोलन के स्थगितकरण के कारण जो गुस्से की लहर देश में बह गई थी उसका उल्लेख करते हुए लिखा है:—"The sudden suspension of our movement after the Chauri Chaura incident was resented, I think, by almost all the prominent Congress leaders-other than Gandhiji of course. My father (who was in jail at the time) was much upset by it. The younger people were naturally even more agitated. Our mounting hopes tumbled to the ground, and this mental reaction was to be expected. What troubled us even more were the reasons given for this suspension and the consequences that seemed to flow from them. Chauri Chaura may have been and was a deplorable occurrence and wholly opposed to the spirit of the non-violent movement; but were a remote village and a mob of excited peasants in an out-of-the-way place going to put an end, for some time at least, to our national struggle for freedom ? If this was the inevitable consequence of a sporadic act of violence, then surely there was something lacking in the philosophy and technique of a non-violent struggle. For it seemed to us to be impossible to guarantee against the occurrence of some such untoward incident."

अर्थात् चौरीचौरा दुर्घटना के बाद जिस प्रकार अकस्मात् रूप से आन्दोलन स्थगित किया गया, उसके प्रतिमैं समझता हूं गांधीजी को छोड़

कर और प्रायः सब प्रमुख कांग्रेस नेताओं ने क्रोध का भाव प्रकाशित किया। मेरे पिता (जो उस समय जेल में थे) इससे बहुत क्रोधित हुए। युवकों का तो और भी क्रोधित होना स्वाभाविक था। हमारी बढ़ती हुई आशायें मटियामेट हो गईं। हमें जो सबसे अधिक कष्ट हुआ वह उन कारणों से हुआ जो इसके स्थगित करने के पक्ष में दिये गये थे। चौरी-चौरा अवश्य ही एक शोकजनक घटना थी और सत्याग्रह की भावना के बिलकुल विरुद्ध थी। पर क्या एक दूरवर्ती गाँव में एक उत्तेजित किसानों की भीड़ का, कोई कार्य्य हमारे राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम का इस प्रकार अन्त कर सकता है, चाहे फिर वह थोड़े ही समय के लिये क्यों न हो। यदि इस प्रकार के यत्र तत्र हिंसात्मक कार्य्य के परिणाम स्वरूप इस प्रकार की कार्य्यवाही अनिवार्य हो तो निश्चयरूप से यह समझना होगा कि अहिंसात्मक असहयोग के तत्वज्ञान और कला में कहीं कुछ कमी थी।

पं० जवाहरलालजी नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस ने उक्त वाक्यों में उस जन-क्षोभ का प्रदर्शन किया है जो चौरीचौरा कांड के कारण हुआ था। वैसे इन दोनों देश के कर्णधारों ने महात्मा गांधी के अलौकिक प्रभाव का उनकी महान् तपश्चर्या का वर्णन करते हुए उन्हें राष्ट्र पिता के नाम से सम्बोधित किया है।

गांधीजी की गिरफ़्तारी

जैसा कि ऊपर कहा गया है चौरीचौरा कांड के बाद गांधीजी ने अकस्मात् रूप से सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया। इससे सारे देश में घोर निराशा छा गई! जोश और उत्साह की जो अग्नि प्रज्वलित हो रही थी वह बुझ सी गई, या यों कहिये कि बहुत मंद सी पड़ गई। ऐसे अनुकूल समय को देखकर तत्कालीन वायसरॉय लॉर्ड रीडिंग ने

गांधीजी पर हाथ साफ़ करने का अच्छा अवसर देखा। लॉर्ड रीडिंग एक बड़े चतुर राजनीतिज्ञ थे। वे इङ्गलैंड के चीफ़ जस्टिस रह चुके थे। राजनीति के दावपेंच खेलने में वे बड़े कुशल समझे जाते थे। अहमदाबाद कांग्रेस से ही गांधीजी पर उनकी वक्र दृष्टि थी। पर उससमय गांधीजी का प्रभाव अद्भुत रूप से बढ़ रहा था। देश के कोने कोने में गांधीजी की जय जयकार हो रही थी। ऐसे समय में गांधीजी को गिरफ़्तार करना कोई हंसी खेल न था। सारे देश में भयङ्कर आग लग जाती। लॉर्ड रीडिंग अपने पूर्ववर्ती वाइसरॉय लॉर्ड चैम्सफ़र्ड से अधिक चतुर, दूरदर्शी और जन-मनोविज्ञान के जानकार थे। उनके सामने पञ्जाब का उदाहरण मौजूद था। उन्होंने उसे दोहराना न चाहा। उन्हें उस वक्त अनुकूल अवसर मिला जब कि राष्ट्र का जोश ठंडा पड़ गया था। इसके अतिरिक्त भारत सेक्रेटरी मि० मॉन्टेग्यू के स्तीफ़ा देने के कारण ऊपर से उनके रास्ते में रुकावट डालने वाला भी कोई न था। बस, फिर क्या था ? सन् १९२२ की १० मार्च को महात्मा गांधी गिरफ़्तार कर लिये गये।

महात्मा गांधी पर मुक़द्दमा चला। यह मुक़दमा ऐतिहासिक था। इस समय महात्माजी ने जो वक्तव्य दिया वह इतिहास की एक अमर वस्तु होकर रहेगी। देशबन्धु चित्तरंजनदास ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से जो भाषण दिया उसमें महात्माजी के इस अभियोग की तुलना महात्मा ईसा के अभियोग के साथ की है। यहां यह कहना भी आवश्यक है कि अंग्रेज जज मि० ब्रूमफ़ील्ड ने भी महात्माजी के साथ अत्यन्त आदर सूचक व्यवहार किया, जिसकी प्रशंसा पं० जवाहरलालजी नेहरु ने यह कह कर की है:—The Judge, an English man, behaved with dignity and feeling. अर्थात अंग्रेज जज का व्यवहार प्रतिष्ठा सूचक और भावुकतामय था। यह ऐतिहासिक मुकदमा १८ मार्च को अहमदाबाद में आरम्भ हुआ। सरोजिनी देवी ने उस नाम की एक छोटी पुस्तक की भूमिका में लिखा है;—"जिस समय गांधीजी की कृपा,

शान्त और अजेय देह ने अपने भक्त, शिष्य और सहबन्दी शंकरलाल बैंकर के साथ अदालत में प्रवेश किया तो क़ानून की निगाह में इस कैदी और अपराधी के सम्मान के लिये सब एक साथ उठ खड़े हुए।"

इसके बाद ज्योंही अभियोग पढ़कर सुनाये गये, त्योंही गांधीजी अपराध स्वीकार करने को खड़े हुए और बोले "अभियोगों में सम्राट् का नाम नहीं है, जो ठीक है। बैंकर साहब ने भी अपराध स्वीकार किया है। वैसे तो तुरन्त ही सज़ा सुनाकर मुकदमा ख़त्म हो सकता था, पर एडवोकेट जनरल ने पूरी सुनवाई पर ज़ोर दिया। किन्तु जज सहमत न हुए। वे केवल दण्ड का निश्चय करना चाहते थे। गांधीजी ने अपना लिखित बयान दिया। लेकिन उसको पढ़ने से पहले, बतौर भूमिका के, उन्होंने कुछ बातें और भी कहीं। उन्होंने कहा कि:–'यंग-इन्डिया' के साथ सम्बन्ध होने के बहुत पहले से मैं राजद्रोह का प्रचार करता आ रहा हूं।" मद्रास, बम्बई और चौरीचौरा में जो कुछ हुआ उसकी सारी जिम्मेदारी गांधीजी ने अपने ऊपर ली और कहा:-"मैं जानता हूँ कि मैं अग्नि के साथ खेल रहा हूँ और यदि मुझे छोड़ दिया जाय तो मैंने जो कुछ किया है फिर वही करूँगा। यदि मैं ऐसा न करूँ तो अपना फ़र्ज़ अदा न करूँगा। वह तो मेरे लिये धर्म सा हो गया है। मुझे दोनों में से एक बात चुननी थी। या तो मुझे एक ऐसे राज्य की सत्ता को मानना पड़ता जिसने मेरे विश्वास के अनुसार मेरे देश को कभी न पूरी होने वाली क्षति पहुँचाई है, या फिर मुझे उस समय अपने देशवासियों के क्रोधोन्माद के ख़तरे का सामना करना पड़ता, जब वे मेरे मुँह से सच्ची बात जान जाते। मैं जानता हूँ कि कभी २ मेरे देशवासियों ने पागलपन से काम लिया है। इस पर मुझे बड़ा दुःख है और यहां जो मैं खड़ा हूं, सो कोई मामूली सी सज़ा सुनने के लिये नहीं बल्कि कड़ी से कड़ी सज़ा पाने के लिये। मैं दया की प्रार्थना नहीं करता, न मैं किसी तरह का बहाना ही पेश करने को तैयार हूं। मैं तो एक ऐसे काम के

लिये जो क़ानून की निगाह में जानबूझ कर किया गया अपराध है,पर जो मेरे दृष्टिकोण से एक नागरिक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, बड़ी से बड़ी सज़ा चाहता हूं और उसके आगे सिर झुकाने को तैयार हूं। विचारक महोदय, आपके आगे केवल दो मार्ग है। या तो आप अपने पद को छोड़ दें, या यदि आप समझते हैं कि जिस शासन-व्यवस्था और जिस क़ानून के व्यवहार में आप सहायता दे रहे हैं वह देश के लिये मंगलदायी है, तो मुझे बड़े से बड़ा दण्ड दें। मुझे यह आशा नहीं है कि आप अपना मत परिवर्तन कर सकेंगे। पर मेरा बयान समाप्त होते २ आपको कुछ आभास अवश्य हो जायगा कि मेरे हृदय में ऐसी कौन सी ज्वाला धधक रही है जिसने मुझे इस भारी ख़तरनाक काम को करने के लिये तैयार कर दिया।"

इसके बाद गांधीजी ने अपना लिखित बयान पढ़ा जिसमें उन्होंने विस्तृत रूप से उन कारणों को दोहराया जिनकी वज़ह से वे राज्यभक्त से राज्यविद्रोही हुए थे।

जज महोदय ने अपना फ़ैसला सुनाते हुए कहाः—"मि० गांधी, आपने अभियोग की धाराओं को स्वीकार करते हुए मेरा कार्य अपेक्षाकृत सरल कर दिया है। पर फिर भी एक सबसे बड़ी कठिनाई है और वह है आपके उपयुक्त दंड ढूँढ कर आपको देना। भारत में किसी अन्य जज को इतनी बड़ी कठिनाई का सामना न करना पड़ा होगा।.........यह भुलाया जा नहीं सकता कि अपने देश के करोड़ों निवासियों के हृदय में आपका विशद और प्रशस्त स्थान है। वे आपको सच्चे देशभक्त और महान् नेता की दृष्टि से देखते हैं। वे भी जो आपसे राजनीति में मतभेद रखते हैं आपके आदर्शों और ऋषि-जीवन का लोहा मानते हैं।.........पर यहां आपको क़ानून के निर्धारित नियमों के अनुकूल देखना मेरा कर्त्तव्य है। ....कदाचित् भारत में ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जिन्हें इस बात का खेद न हो कि कोई भी सरकार आप ऐसी महान् आत्मा को

स्वतंत्र विचरण करने देना असंभव बना दे। पर है ऐसा ही। आप जिसके पात्र हैं, और जो जनता के हित में है, इन दोनों में मैं सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा कर रहा हूं।"

"मैं सोचता हूं कि आप अपने को तिलक की श्रेणी में रखा जाना अनुचित तो न समझेंगे।..........पर यदि किसी परिस्थिति ने सरकार को इससे पहले ही आपको मुक्त कर देना संभव किया, तो मुझसे अधिक और कोई भी व्यक्ति प्रसन्न न होगा।"

इस प्रकार गांधीजी को संबोधन कर उन्हें ६ वर्ष की सज़ा की आज्ञा सुनाई।

इस पर गांधीजी ने सहर्ष होकर कहा कि मेरे लिये यह परम सौभाग्य की बात है कि सरकार मुझे ऐसा दण्ड देकर तिलक का स्थान दे रही है। पर यह भी दण्ड मुझे बहुत हलका मालूम होता है। मैं इससे भी बड़े दण्ड की आशा करता था।"

गांधीजी की गिरफ़्तारी के बाद स्वराज्य पार्टी की स्थापना

महात्माजी की गिरफ़्तारी के बाद मार्च महिने में आगे का प्रोग्राम तै करने के लिये कांग्रेस कार्य समिति की एक बैठक हुई। इस बैठक में एक कमेटी नियुक्त हुई। जिसका नाम 'सविनय अवज्ञा जांच समिति' ("Civil Disobedience Enquiry Committee") रक्खा गया। इसका उद्देश्य यह रक्खा गया कि वह सारे देश में दौरा कर यह पता लगावे कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने के लिये देश में अनुकूल वातावरण है या नहीं। इस कमेटी ने देश के बहुत बड़े भाग में दौरा किया और अपनी रिपोर्ट पेश की। इस कमेटी के सदस्यों में बड़ा मतभेद रहा। हक़ीम अजमल खां, पं० मोतीलाल नेहरू, सरदार विट्ठल-भाई पटेल और देशबन्धु दास की योजना के अनुसार कौंसिल प्रवेश के

पक्ष में थे। इसके विपरीत श्री राजगोपालाचार्य, डा० अनसारी और श्री के० आर० अय्यंगर कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध थे। इस कमेटी की रिपोर्ट कांग्रेस के गया अधिवेशन के कुछ ही पहले प्रकाशित की गई थी।

इसी साल के अगस्त और दिसम्बर मास में दो महत्वपूर्ण घटनायें हुईं। एक तो अखिल भारतवर्षीय मज़दूर महासभा (All India Trade Union Congress) का अधिवेशन देशबन्धु दास के सभापतित्व में हुआ। इस अधिवेशन में अध्यक्ष की हैसियत से भाषण देते हुए देशबन्धु दास ने यह प्रभावशाली घोषणा की कि हम लोग जिस स्वराज्य के लिये लड़ रहे हैं, वह किसी एक दल विशेष के लिये न होगा, पर वह भारत की सकल जनता के लिये होगा। दूसरी घटना कलकत्ते में युवक परिषद् (Young men's conference,) थी, जिसने बङ्गाल युवक आन्दोलन का श्रीगणेश किया। इस कॉन्फ्रेन्स में युवकों ने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि कांग्रेस से भिन्न उनका अपना एक स्वतंत्र युवक संगठन होना चाहिये।

नवम्बर के अन्त में कलकत्ते में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस समिति की बैठक हुई, जिसमें देशबन्धु दास और महात्मा गांधी के अनुयाइयों की शक्ति की परीक्षा का नाप तोल हुआ। इसी साल के दिसम्बर मास में बड़े उत्तेजित वातावरण में गया में अखिल भारतवर्षीय महासभा (Indian National Congress) का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में महात्माजी के दल की बहुत बड़े बहुमत से विजय हुई। इसमें महात्माजी के प्रधान अनुयायी श्री राजगोपालाचार्य का प्रभाव बहुत बढ़ गया और वह गांधीवाद के प्रधान नेता माने जाने लगे।

यद्यपि देशबन्धु चित्तरंजनदास उक्त कांग्रेस के सभापति थे, पर उनकी योजना को कांग्रेस ने बहुमत से अस्वीकृत कर दिया। इस पर देशबन्धु ने अपना भावी कार्यक्रम निश्चित करने के लिये अपने समर्थकों की एक सभा बुलाई और उसमें यह निश्चय हुआ कि देशबन्धु कांग्रेस की

सदस्यता से स्तीफ़ा देकर स्वराज्य पार्टी के नाम से अपने दल का संगठन करें। इसके दूसरे दिन जब भावी कार्य्यक्रम को निश्चित करने के लिये अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस समिति (All India Congress Committee) की बैठक हुई, तब पं० मोतीलाल नेहरू ने खड़े होकर स्वराज्य पार्टी के बनने की घोषणा की। देशबन्धु दास ने अपने अध्यक्षपद से स्तीफ़ा दे दिया क्योंकि वे कांग्रेस के प्रस्ताव के खिलाफ़ अपनी योजना के अनुसार काम करना चाहते थे।

गया कांग्रेस के बाद स्वराज्य पार्टी की गतिविधि

गया कांग्रेस से स्वराज्य पार्टी के नेतागण अपने २ प्रान्तों को अपना विशिष्ट कार्यक्रम लेकर लौटे। देशबन्धु चितरंजनदास पर बङ्गाल, मध्य-प्रान्त और दक्षिण भारत में प्रचार और संगठन करने के काम का उत्तर-दायित्व रक्खा गया। पं० मोतीलाल नेहरू ने उत्तरीय भारत का और श्री सरदार विट्ठलभाई पटेल ने बम्बई प्रान्त का काम अपने हाथ में लिया। प्रचार कार्यों के लिये समाचार पत्रों की बड़ी आवश्यकता होती है। उस समय देश के प्रायः सब समाचार पत्र गांधीवादियों के हाथ में थे। इसलिये स्वराज्य पार्टी के नेताओं को भी कुछ नये पत्र प्रकाशित करने की तथा कुछ को अपनानें की आवश्यकता प्रतीत हुई। कलकत्ते में 'बङ्गलार कथा' नामक एक नया दैनिक पत्र, उक्त प्रान्त के युवक नेता श्री० सुभाष चन्द्र बोस के सम्पादकत्व में प्रकाशित किया गया। मद्रास में श्री० रंगा स्वामी अयंगर का तामिल भाषा का दैनिक पत्र 'स्वदेश मित्रम्' स्वराज्य पार्टी का प्रमुख पत्र बना और इन्हीं महाशय ने अंग्रेजी में भी एक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसका उद्देश्य स्वराज्य पार्टी के उद्देश्यों का प्रचार करना था। पूना का सबसे अधिक प्रभावशाली पत्र "केसरी" महाराष्ट्र में स्वराज्य पार्टी की नीति के प्रचार का सबसे जबरदस्त साधन बना। लोकमान्य तिलक के स्वर्गवास के बाद श्री नृसिंह चिंतामणि

केलकर इस पत्र के सम्पादक थे, और वे स्वराज्य पार्टी के खास स्तम्भों में से एक थे।

जब सारे देश में नेताओं के दौरों द्वारा तथा समाचार पत्रों द्वारा स्वराज्य पार्टी के पक्ष में काफ़ी प्रचार हो चुका तब ईस्वी सन् १९२३ के मार्च मास में पं० मोतीलाल नेहरू के इलाहाबाद वाले आनन्द भवन में स्वराज्यवादियों की एक कॉन्फ्रेन्स हुई, जिसमें स्वराज्य पार्टी का विधान और उसका कार्यक्रम निश्चित किया गया। जब कॉन्फ्रेन्स की इस बैठक में पार्टी के विधान का प्रश्न उपस्थित हुआ तब वहां पार्टी के अन्तिम लक्ष्य के सम्बन्ध में कुछ मतभेद उपस्थित हुआ। कुछ लोग औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में थे और युवकदल पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में था। कांग्रेस की नीति, अन्तिम उद्देश्य के सम्बन्ध में, अस्पष्ट थी। उसने केवल यह प्रकट किया था कि स्वराज्य हमारा अन्तिम ध्येय है, पर स्वराज्य की स्पष्ट व्याख्या उसने न की थी। इस सम्बन्ध में स्वराज्य पार्टी के नेताओं ने अधिक व्यावहारिकता से काम लिया। दोनों दलों में इस बात पर समझौता हो गया कि पार्टी का तत्कालिक ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्य और अन्तिम ध्येय पूर्ण स्वतंत्रता हो।

एक अर्से तक स्वराज्यवादी दल और गांधीवादी अपरिवर्तन-वादियों में विरोध चलता रहा। स्वराजिस्टों ने पहले से अपनी स्थिति अधिक मज़बूत करली। महात्माजी की दूरदृष्टि ने देशहित के लिहाज़ से यह उचित समझा कि दोनों दलों के मेल ही में देश की भलाई रही हुई है। ईस्वी सन् १९२३ में उन्होंने तत्कालीन कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना महम्मद अली को यह संकेत किया कि वे दोनों दलों के बीच समझौता करवादें। फिर क्या था? ईस्वी सन् १९२३ के सितम्बर मास के दिल्ली में होने वाले कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में दोनों दलों का समझौता हो गया, और यह तय हुआ कि कांग्रेस जनों को आने वाले चुनावों में भाग लेने की इजाज़त देदी जाय, और धारा सभाओं में सब मिल कर सरकार

का विरोध करें। हां, कांग्रेस एक संस्था के रूप में इसकी जिम्मेदारी न ले।

दिल्ली के कांग्रेस अधिवेशन से स्वराज्य दल के लोग प्रसन्न होकर लौटे। ६ मास के कठिन परिश्रम के बाद उन्हें सफलता मिली। पर उस वक्त नये चुनाव होने में केवल दो मास बाकी रह गये थे। उन्हें इन चुनावों के जीतने में विकट मिहनत का सामना करना पड़ा। भाग्य प्राय: वीरों का साथ देता है; यह कहावत स्वराज्यवादियों पर पूर्णरूप से चरितार्थ हुई। इन्हें बड़े विरोधी वातावरण में काम करना पड़ा, पर आखीर उन्हें अच्छी सफलता मिली। मध्यप्रांत, बङ्गाल में उनका आशा से अधिक बहुमत हो गया। केन्द्रीय धारा सभामें भी वे बड़ी संख्या में पहुँचे।

जिस प्रकार स्वराज्यवादियों को प्रान्तीय कौंसिलों और केन्द्रवर्ती धारा सभा में आशातीत सफलता मिली, वैसे ही स्थानीय संस्थाओं में (म्यूनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड आदि में) भी उन्हें बड़ी सफलता मिली। इन पर एक तरह से स्वराज्यवादियों का प्रभुत्व हो गया। ईस्वी सन् १६२४ के जनवरी मास में महात्मा गांधी को आन्त्रशोथ (Appendicites) का रोग भयङ्कर रूप से हो गया। कर्नल मेडॉक उन्हें तुरन्त पूना के सासून अस्पताल में ले आये और बड़ी कुशलता के साथ उनका ऑपरेशन किया। कर्नल मेडॉक ने इस समय जैसी उच्च उदाशयता और कुशलता का परिचय दिया, उसकी प्रशंसा खुद महात्मा गांधी ने की थी। इस ऑपरेशन के बाद सरकार ने गांधीजी को बिना शर्त छोड़ दिया। कुछ दिन वे जुहू (बम्बई) में रहे। वहां पं० मोतीलाल नेहरू व देश बन्धु दास से धारा-सभा प्रवेश के सम्बन्ध में उनकी बहुतेरी चर्चा हुई। मतभेद तो नहीं मिटा, लेकिन महात्माजी ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि जब कांग्रेस ने धारा-सभा में जाने की मंजूरी दे दी है तो अब किसी को उसमें आपत्ति नहीं करनी चाहिये, बल्कि भरसक सहायता करनी चाहिये। इधर दास-नेहरू ने यह मंजूर किया कि हम सब महात्माजी के विधायक

कार्यक्रम में सहायक होंगे। बल्कि उन्होंने यहां तक लिखित अभिवचन दिया कि जब हमें यह प्रतीत होगा कि धारा-सभाओं से कुछ काम नहीं बनता तो हम उन्हें छोड़कर चले आवेंगे और महात्माजी के नेतृत्व में कांग्रेस के नियमानुसार सविनय-अवज्ञा अथवा सत्याग्रह आन्दोलन में अग्रसर हो जावेंगे। १९२४ में बेलगांव के अधिवेशन में कांग्रेस ने इस समझौते को मंजूर कर लिया। इससे महात्माजी की गैरहाज़िरी में कांग्रेस में जो दल बन गये थे, उनका फिर गठबन्धन हो गया। बेलगांव में महात्माजी ही कांग्रेस के सभापति थे। उसके बाद थोड़े ही दिनों में उन्होंने बङ्गाल में जाकर देशबन्धु की सहायता से सत्याग्रह के दूसरे मोर्चे की तैयारी की थी। मगर दुर्भाग्य से १९२५ में देशबन्धुदास का देहावसान हो गया। इससे सारे देश में और विशेष कर बङ्गाल में जो दूसरे सत्याग्रह की तैयारी की जारही थी, उसमें ढिलाई आ गई।

देशबन्धु दास की शोकदायक और आकस्मिक मृत्यु से स्वराज्य पार्टी को जो जबरदस्त धक्का लगा, उसका अनुमान करना भी कठिन है। देशबन्धु की मृत्यु के बाद पं० मोतीलालजी नेहरू उक्त पार्टी के एक प्रकार से सर्वाधिकारी नेता हुए। स्वराज्य-पार्टी की नीति मान्टेगू सुधारों के सम्बन्ध में यह थी कि जब तक सरकार कांग्रेस से इसके विषय में समझौता न करले तब तक मंत्रि-मंडल न बनाया जाय। १९२६ की गौहाटी कांग्रेस के अध्यक्ष श्रीनिवास अयंगर ने अपने भाषण में कहा था कि मंत्री पद अस्वीकार करने की नीति सार्वकालिक या बिला-शर्त नहीं है। देशबन्धु दास ने फरीदपुर में जो शर्तें रक्खी थीं, वे जब तक मंजूर न हो जाँय तब तक इस नीति में परिवर्तन करना न सम्भव है और न इष्ट ही। धारा सभा में अड़ङ्गा-नीति, बाहर रचनात्मक संगठन और अन्त में सत्याग्रह ऐसा तिहरावल इस मांग के पीछे था। प्रत्येक मांग के पीछे कुछ शक्ति होनी चाहिये। उसकी परिणति प्रत्यक्ष प्रतिकार तक होनी चाहिये। इसके लिये कांग्रेस का अनुशासन मानना और सत्याग्रह

के समय महात्मा गांधी का नेतृत्व मँजूर करना आवश्यक था। इन मुद्दों को स्वराज्य–पार्टी ने कभी नहीं छोड़ा। यही कारण है कि महात्मा गांधी और स्वराज्य पार्टी का सहयोग दिन २ दृढ़ होता गया और अन्त को १९२९ में जब यह साबित हो गया कि ब्रिटिश सरकार धारा सभा के विरोध के फल–स्वरूप स्वराज्य की मांग पूरी करने को तैयार नहीं होती तब लाहोर कांग्रेस में पं० मोतीलाल नेहरू ने महात्माजी को दिये हुए आश्वासन को पूरा किया और धारा सभा के बहिष्कार का तथा महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह करने का प्रस्ताव कांग्रेस में पास हुआ।

ईस्वी सन् १९२२ से लेकर १९२८ तक स्वराज्य पार्टी व असहयोग दल अपने २ ढंग से स्वराज्य की लड़ाई लड़ते रहे, पर प्रत्यक्ष अहिंसात्मक लड़ाई की नौबत तब तक न आई जब तक कि साईमन कमीशन ने भारत में पदार्पण न किया। साईमन कमीशन के सम्बन्ध में किसी अगले अध्याय में प्रकाश डालने की चेष्टा की जायगी।

राष्ट्रीय जीवन में सुस्ती

हिन्दू मुस्लिम दंगे

चौरीचौरा कांड के बाद सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित करने का बारडौली में जो निर्णय हुआ, उसका देश के बढ़ते हुए जीवन पर उस समय जैसा घातक प्रभाव पड़ा था, उसका उल्लेख हम गत पृष्ठों में कर चुके हैं। कांग्रेस के सारे आन्दोलन में एक प्रकार की निर्जीवतासी आ गई थी। ईस्वी सन् १९२४ में गांधीजी ने कहा था कि कांग्रेस अपने एक करोड़ मेम्बर बनाना चाहती थी लेकिन उसके दो लाख से ज्यादा मेम्बर नहीं हैं। हम राजनीतिज्ञ सरकार के विरोध के सिवाय जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते। उस साल गांधीजी ने मेम्बरी के लिये सूत कातने की शर्त रक्खी। इसके अनुसार कांग्रेस कमेटियों के चुने हुये सदस्यों को हर महीने २००० गज़ सूत कातकर देना चाहिये था। १९२५ तक इस शर्त के अनुसार केवल १० हजार मेम्बर ही बन पाये। इसके बाद इस शर्त को अनिवार्य न रखकर केवल इच्छा पर छोड़ दिया गया। "बॉम्बे क्रॉनिकल" ने लिखा कि "चारों तरफ़ गतिरोध और जड़ता फैल गई है।" उसी साल लाला लाजपतराय ने भी उलझन और परेशानी का ज़िक्र किया था। उन्होंने कहा थाः—"देश की राजनैतिक हालत देखकर आशा और उत्साह नहीं बढ़ता। लोगों पर पस्तहिम्मती छाई हुई है। मालूम होता है कि हर चीज़ टूटकर बिखर रही है। राजनीतिक पार्टियां, लोगों के सिद्धान्त, उनके काम, इन सब में जैसे घुनसा लग गया है।" इस सुस्ती के ज़माने में साम्प्रदायिक हवा चलने लगी। "मुस्लिम लीग" फिर कांग्रेस

से अलग हो गई। उसके विरोध में "हिन्दू महा सभा" हिन्दूहितों का समर्थन करने लगी।

मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि जनता के बढ़ते हुए जोश पर जब रोक लगादी जाती है तो वह अपने असली मार्ग को छोड़ कर किसी विकृत मार्ग में प्रवाहित होने लगता है। यही स्थिति उस समय हुई। उक्त अवरुद्ध जोश हिन्दू मुस्लिम दंगों में प्रकट होने लगा। ईस्वी सन् १९२६ के मई और जुलाई मासों में कलकत्ते में हिन्दू-मुस्लिम दंगों ने बड़ा भीषण रूप धारण कर लिया। इन दंगों का आरंभ उस समय हुआ जब एक आर्य्यसमाजी जुलूस बाजा बजाते हुए एक मस्जिद के पास से गुज़र रहा था। आर्य्य समाजियों का दावा था कि वे कई वर्षों से यह जुलूस निकाल रहे हैं। इसके विपरीत मुसलमानों ने यह प्रकट किया कि बाजे बाजों से हमारी नमाज़ में हरकत आती है। कई दिन तक ये दंगे चलते रहे और दोनों तरफ़ के कई आदमी मारे गये। अख़ीर दोनों दलों ने थक कर समझौता कर लिया। कलकत्ते की तरह और भी कई स्थानों में भयङ्कर दंगे हुए, जिनमें कोहाट और मुलतान के दंगे विशेष उल्लेखनीय हैं। कहने का मतलब यह है कि इन दंगों ने राष्ट्रीय वातावरण को बहुत गंदा कर दिया था।

उग्रवादी शक्तियों का उदय

इस समय के निराशामय वातावरण में आशा की एक झलक दिखलाई दी। सारे भारतवर्ष के नवयुवकों में जागृति की एक नवीन लहर फैली। विभिन्न प्रान्तों में युवक आन्दोलन बड़े ज़ोर शोर के साथ चलने लगा। पंजाब में युवकों ने "नवजीवन भारत सभा" नामक एक संस्था क़ायम की और उसके झण्डे के नीचे उन्होंने अपना स्वातंत्र्य आन्दोलन चलाया। यहां यह कहना आवश्यक है कि भगतसिंह सरीखे

वीर युवक इस सभा के सदस्य थे। मध्यप्रान्त के नागपुर नगर में नवयुवकों ने अपनी ज़िम्मेदारी पर शस्त्र सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू किया। इसका उद्देश्य उस शस्त्र क़ानून का भंग करना था जिसके अनुसार भारतवासियों के लिये शस्त्रों के रखने की मनाई थी। इस आन्दोलन के नेता श्री अव्यारी थे, जो एक कांग्रेस के लोक प्रिय कार्य्य कर्त्ता थे और जिन्हें पीछे जाकर जनरल की उपाधि दी गई थी। अन्य प्रान्तों में भी युवक आन्दोलन के संगठन ज़ोर शोर से होने लगे। युवक आन्दोलन के साथ मज़दूर आन्दोलन ने भी ज़ोर पकड़ा। मज़दूर आन्दोलन के साथ समाजवाद का प्रचार होने लगा। हिन्दुस्थान की राजनीति में यह एक नयी बात थी और नौजवानों तथा गर्म दल के राष्ट्रवादियों पर इसका बड़ा असर पड़ा। सन् १९२८ में हड़तालों की लहर आई और मज़दूर-संघों का काम ज़ोरों से चल पड़ा। इसके पहले "मज़दूरों-किसानों की पार्टी" बन चुकी थी और सन् १९२६-२७ में वह राजनीति के मंच पर आ गई थी। सन् १९२८ की हड़तालों में ३, १६, ४७,००० दिनों का नुक़सान हुआ। पिछले पाँच वर्षों की सारी हड़तालें मिलाकर भी इतने दिन जाया नहीं हुए थे। बम्बई के सूती मज़दूरों की लड़ाकू "गिरणी कामगार यूनियन" क़ायम हुई। सालभर में ६२,००० मज़दूर उसके मेम्बर हो गए। इस संस्था को सरकार ने भी माना था। देशभर में मज़दूर-संघों के मेम्बर पहले से ७० फ़ी सदी ज्यादा बढ़ गये। साईमन कमीशन के ख़िलाफ़ प्रदर्शन करने में सबसे ज्यादा राजनैतिक काम मज़दूर वर्ग ने किया। मज़दूर-संघों में लड़ाकू वर्ग-चेतना बढ़ चली। सन् १९२९ की ट्रेड यूनियन कांग्रेस में नरम दल की जीत हुई।

युवक तथा मज़दूर आन्दोलन का प्रभाव कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन पर भी पड़ने लगा। ईस्वी सन् १९२७ के अन्त में पं० जवाहर लाल नेहरू अपने योरोप के डेढ़ वर्ष के लम्बे प्रवास से वापस लौटे। जहां

उन्होंने समाजवादियों और समाजवादी विचार-धाराओं से सम्पर्क स्थापित किया था। ईस्वी सन् १९२७ के अन्त में मद्रास कांग्रेस के अधिवेशन में युवकों में उग्र प्रवृत्तियों का बहुत कुछ ज़ोर देखा गया। इस कांग्रेस के अधिवेशन में कांग्रेस का ध्येय 'पूर्ण स्वाधीनता' घोषित किया गया। इसी समय साइमन कमीशन के बहिष्कार का भी प्रस्ताव पास हुआ। इसके साथ यह भी तै किया गया कि एक सर्वदली सम्मेलन हो और वह हिन्दुस्थान के लिये विधान बनाये। कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय "साम्राज्य विरोधी लीग" में शामिल होना स्वीकार किया। पं० जवाहर लाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस, जो नौजवानों के ख़ास नेता थे और कांग्रेसी गर्मदल के अगुवा थे, कांग्रेस के मंत्री बने।

आन्दोलन की उग्रता

ईस्वी सन् १९२६ के मध्य में अंधकार के बाद फिर प्रकाश की झलक दिखलाई दी। श्री निवास अयंगा के प्रयत्नों से कलकत्ते में एकता परिषद् (Unity Conference) हुई जिसमें इस बात का विचार किया गया कि हिन्दू मुस्लिम एकता फिर से स्थापित करने के लिये किन अमली उपायों को काम में लिया जाय। बङ्गाल में जहां जातीय-विद्वेष के बादल घने रूप से छाये हुए थे, नये युग का प्रकाश दिखलाई देने लगा। अगस्त मास में बंगाल के धारा सभा में मिनिस्टरों के ख़िलाफ़ अविश्वास का प्रस्ताव लाया गया और इससे मिनिस्टर लोग सरकारी पदों से बाहर फेंक दिये गये। इसी समय कलकत्ते से ७० मील की दूरी पर खड़गपुर में बंगाल नागपुर रेल्वे के मज़दूरों की बड़ी भारी हड़ताल हुई। खड़गपुर की वर्कशॉप सबसे बड़ी थी। वहां मज़दूरों का संगठन इतना ज़बरदस्त था कि कम्पनी को उसके सामने घुटने टेकने पड़े और उनकी माँगों को मँज़ूर करना पड़ा।

नवम्बर मास में कलकत्ते में जो एकता परिषद् (Unity Con-

ference) हुई उसने हिन्दू मुसलमानों के सम्बन्ध फिर से मैत्रीपूर्ण करने की कोशिश की और उसमें वह एक हद तक सफल भी हुई। इसके एक महीने बाद जब बंगाल कांग्रेस कमेटी की वार्षिक सभा हुई उसमें जोश और उत्साह के चिन्ह साफ़ साफ़ दिखलाई देने लगे।

साइमन-कमीशन का बहिष्कार

ईस्वी सन् १९२७ के नवम्बर मास में तत्कालीन वायसरॉय लॉर्ड इर्विन ने भारतीय विधान कमीशन (Indian Statutory Commission) की नियुक्ति की घोषणा की। यह नियुक्ति गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट १९१९ (Government of India Act 1919) के अनुसार की गई थी, जिसका आशय यह है कि हर दस वर्ष में भारत की राजनैतिक अवस्था की ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा जाँच की जाय। इस कमीशन ने सर जॉन साइमन (अध्यक्ष), व्हिसकौन्ट बर्नहेम, लॉर्ड स्ट्रेथकोन, एडवर्ड केडोगेन, मि० स्टिफन वाल्स, मेजर एटली और कर्नल लेनफॉक्स थे। कर्नल वाल्श ने पीछे जाकर स्तीफ़ा दे दिया और उनके स्थान पर मिस्टर वरनॉन हार्टशॉर्न नियुक्त किये गये। कमीशन के ७ सदस्य में दो मज़दूर दल के, एक उदार दल का और शेष अनुदार दल के थे। कहने का मतलब यह है कि इसमें पार्लियामेंट के सबही दलों का प्रतिनिधित्व था। इस कमीशन का कार्यक्रम यह रक्खा गया था कि वह तत्कालीन भारतीय शासन की पद्धति का, भारत में शिक्षावृद्धि और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की जाँच करे और इस बात का पता लगावे कि भारत उत्तरदायी शासन प्रणाली के कहां तक योग्य है, और यहां की प्रचलित शासन प्रणाली में कौन २ से सुधार अभीष्ट हैं।

इस कमीशन में एक भी भारतवासी न रक्खा गया। भारत की शासन-प्रणाली निश्चित करने के लिये जो कमीशन मुकर्रिर हो, उसमें एक भी भारतीय प्रतिनिधि न हो, यह प्रजातंत्र के तत्व के विरुद्ध बात थी। इससे भारतवासी बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने इसे अपना

राष्ट्रीय अपमान समझा। सब प्रान्तों के और सब दलों के नेताओं ने इसका विरोध किया। यह स्वाभाविक ही था कि कांग्रेस इस कमीशन (साइमन कमीशन) का विरोध करे। पर नरम दल के नेताओं ने भी इसके बहिष्कार का समर्थन किया। सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में उदारदल वालों की दिसम्बर मास में इलाहबाद में जो सभा हुई, उसमें यह कहा गया कि इस कमीशन में किसी भारतवासी का न रक्खा जाना, भारत की जनता का घोर अपमान है और इसमे निश्चय रूप से उन्हें तुच्छ मानने की भावना काम कर रही है। इससे भी बुरी बात यह है कि इसमें भारतवासियों का उनके अपने निजी देश का विधान बनाने के कार्य में सहयोग देने का अधिकार तक छीन लिया गया है। इसी साल बम्बई में सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में फिर से उदार संघ (Liberal Federation) का अधिवेशन हुआ और उसमें भी साइमन कमीशन के बहिष्कार का निश्चय हुआ। इसी साल के दिसम्बर मास में कलकत्ते में मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ, उसमें एकता परिषद् की तरह हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रस्ताव पास हुआ।

इसके अतिरिक्त इस परिषद् में साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव हुआ और यह भी तय हुआ कि मुसलमानों के लिये सीट्स रक्षित रक्खी जाकर संयुक्त-निर्वाचन पद्धति का तत्व स्वीकार कर लिया जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमें राष्ट्रीय मुसलमानों की बड़ी विजय हुई। इसका कारण यह था कि मि० जिन्ना और अली भाई सरीखे प्रभाव शाली मुस्लिम नेताओं ने इस परिषद् में भाग लेकर संयुक्त-निर्वाचन पद्धति का समर्थन किया था। इसी मास में कानपुर में अखिल भारतवर्षीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और उसमें पहले वक्त कम्यूनिस्टों ने यह प्रस्ताव पास किया कि भारत एक स्वतंत्र समाजवादी जनतंत्र (Independent Socialist

Republic) बनना चाहिये और इङ्गलैंड के ब्रिटिश ट्रेड यूनियन से अपना सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये। दिसम्बर मास के अंत में डॉक्टर अनसारी की अध्यक्षता में मद्रास में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में साइमन कमीशन के पूर्णरूप से बहिष्कार करने का प्रस्ताव पास हुआ। इसके साथ साथ इसमें यह भी निश्चय हुआ कि कांग्रेस की कार्यकारिणी एक सर्वदल सम्मेलन का आयोजन करे और उसमें वह भारतवर्ष के लिये एक ऐसे विधान का ढांचा तैय्यार करे जो सब दलों को स्वीकृत हो। इसी में एक प्रस्ताव यह भी पास हुआ जिसमें भारतवर्ष का अन्तिम ध्येय पूर्ण स्वतंत्रता रक्खा गया।

साइमन कमीशन के उक्त-विरोधात्मक प्रस्ताव ने सरकार की आँखें खोलीं। कमीशन के भारत आने के कुछ ही अर्से बाद याने इस्वी सन् १९२८ के फरवरी मास के बाद सर जॉन साइमन ने वाइसराय को यह सुझाया कि भारतवासियों के विरोध को कम करने के लिए यह आवश्यक है कि कमीशन एक संयुक्त-स्वतंत्र परिषद् के रूप में विचार विमर्ष करे। इसमें कमीशन के सदस्यों के अतिरिक्त कुछ चुने हुये भारतीय प्रतिनिधि भी रहें। सर शंकरन नायर के पत्र का उत्तर देते हुए सर जॉन साइमन ने यह भी लिखा कि भारतीय धारा सभा द्वारा नियुक्त कमेटी की रिपोर्ट भी कमीशन की रिपोर्ट के साथ जोड़ दी जायगी। इतने पर भी सर्वदल के नेताओं ने यह बात स्वीकार न की और उन्होंने दिल्ली से जो घोषणा-पत्र प्रकाशित किया, उसमें उन्होंने यह प्रकट किया कि साइमन कमीशन के प्रति उनका विरोध ज्यों का त्यों रहेगा। भारतीय धारा सभा में स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने साईमन कमीशन के विरोध का प्रस्ताव उपस्थित किया और वह पास हो गया। प्रान्तीय धारा सभाओं में मध्य प्रान्त की धारा सभा ने भी उक्त प्रकार की कमेटी नियुक्त करने का विरोध किया।

कांग्रेस और उदार दल के विरोध के बावजूद भी मध्यप्रान्त की धारा

सभा को छोड़ कर अन्य प्रान्तों की धारा सभाओं ने साइमन कमीशन के साथ सहयोग करने के लिये कमेटियां नियुक्त कीं।

ईस्वी सन् १६२८ के फ़रवरी मास में साइमन कमीशन ने भारत भूमि पर पदार्पण किया। कांग्रेस कार्य समिति के आदेशानुसार सारे भारतवर्ष ने हड़तालों और बहिष्कार-प्रदर्शनों द्वारा उसका स्वागत किया। सारे देश में रोष और विरोध की लहर बहने लगी। जहां २ यह कमीशन गया वहां २ काले झंडों के साथ और विरोधी प्रदर्शनों के साथ इसका बहिष्कार किया गया। "साइमन पीछे जावो" की बुलन्द आवाज़ हज़ारों लाखों मनुष्यों के मुँह से निकलने लगी। सरकार ने इन प्रदर्शनों का विरोध करने के लिये मुसलमानों और दलित वर्गों के दल विशेष को प्रतिविरोधी प्रदर्शन करने के लिये संगठित किया, पर इसमें उसे सफलता न मिली। यद्यपि कमीशन बहिष्कार का यह आन्दोलन अहिंसात्मक रक्खा गया था, तब भी सरकार ने उन स्थानों में, जहां कमीशन गया था, फ़ौज और पुलिस का कड़ा प्रबन्ध रक्खा था। कहीं कहीं सरकार ने बहुत कठोर दमन नीति से काम लिया था। लाहोर में जब यह कमीशन आया, तब जनता के एक विशाल जुलूस ने, स्वर्गीय लाला लाजपतराय के नेतृत्व में,काले झण्डों से इसका स्वागत किया। पुलिस ने लाठियों और बेटन्स् से इस जुलूस पर आक्रमण किया। लाला लाजपतराय इसमें बुरी तरह से घायल हुए और कहा जाता है कि इसी के परिणाम स्वरूप उनकी असामयिक दुःखद मृत्यु हुई! इससे सारे देश में शोक का सन्नाटा छा गया! कमीशन के प्रति लोगों के घृणा भाव ने अत्यन्त गम्भीर स्वरूप धारण कर लिया। यहां यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि हमारे नेतागण केवल कमीशन का बहिष्कार कर चुप न होगये, उन्होंने एक सर्वसम्मत विधान तैय्यार कर ब्रिटिश सरकार के चेलेंज का जवाब देने का निश्चय किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ईस्वी सन् १६२८ के फ़रवरी और मार्च मासों में दिल्ली में सर्व दल सम्मेलन की बैठकें

हुई। इसमें सबसे जटिल समस्या हिन्दू, मुस्लिम, सिक्खों के प्रतिनिधित्व की थी। इसके बाद इसी साल के मई मास में फिर से बम्बई में सर्वदल सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, पर दुःख की बात है कि यह इस संबंध में कुछ प्रगति न कर सका। इस समय महात्माजी ने बड़ी बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से काम लिया। उन्होंने सम्मेलन की असफलता को प्रकाश में लाने के बजाय पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी मुक़र्रर की और उसका यह उद्देश्य रक्खा कि वह भारतीय विधान के सिद्धान्तों को निर्धारित कर एक रिपोर्ट तैय्यार करे। इस कमेटी ने इलाहाबाद में पं० मोतीलाल नेहरू के आनन्द भवन में अपनी कई बैठकें की और अख़ीर अगस्त मास में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की, जो नेहरू कमेटी की रिपोर्ट के नाम से मशहूर है। इस पर पं० मोतीलाल नेहरू, सर अली इमाम, सर तेज बहादुर सप्रू, श्री एम० एस अणे, सरदार मङ्गलसिंह, मि० कुरेशी, श्री सुभाषचन्द्र बोस के हस्ताक्षर थे। राष्ट्रीय क्षेत्रों में इस रिपोर्ट का अच्छा स्वागत हुआ। महात्मा गांधी ने पं० मोतीलाल नेहरू के पास हार्दिक अभिनन्दन का संदेश भेजा। अगस्त में होने वाले लखनऊ के सर्वदल सम्मेलन में यह रिपोर्ट रक्खी गई और वह सर्व सम्मति पास हो गई। यहां यह कहना आवश्यक है कि नेहरू कमेटी ने प्रस्तावित भारतीय विधान की धारा सभाओं में हिन्दू मुस्लिम और सिक्ख प्रतिनिधित्व के प्रश्न को हल करने में बड़ी सफलता प्राप्त की। हां, पीछे जाकर इसके सम्बन्ध में कुछ मतभेद हुए, जिनका उल्लेख यथावसर किया जायगा।

महाराष्ट्र प्रान्तीय कॉन्फरेन्स का अधिवेशन

इस्वी सन् १९२८ के मई मास में पूना में महाराष्ट्र प्रान्तीय कॉन्फरेन्स का अधिवेशन हुआ। इसके सभापति के आसन को युवक सम्राट् श्री सुभाषचन्द्र बोस ने सुशोभित किया था। आपने अपने भाषण में

मज़दूर संगठन और युवक संगठन की स्थापना पर बहुत ज़ोर दिया। इसके अतिरिक्त आपने महिलाओं के स्वतंत्र संगठन की आवश्यकता पर भी काफी प्रकाश डाला। इसी समय बम्बई के युवकों ने बम्बई प्रान्तीय युवक संघ (Youth league) की स्थापना की और वे अपने ढंग से देश को स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्रसर होने के उपायों को सोचने लगे।

इसी वर्ष अर्थात् ईस्वी सन् १९२८ में बारडोली का सत्याग्रह संग्राम सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में ज़ोर शोर से चला और उसमें बड़ी शानदार सफलता मिली। इसी महान् विजय के उपलक्ष्य में महात्मा गांधी ने श्री वल्लभभाई पटेल को 'सरदार' की गौरवशाली उपाधि से विभूषित किया।

स्वतंत्रता-संघ की स्थापना

ईस्वी सन् १९२८ के अगस्त मास में नेहरू कमेटी की रिपोर्ट पर विचार करने के लिये जो सर्वदल सम्मेलन हुआ था उस समय एक नई परिस्थिति उत्पन्न हुई। उक्त रिपोर्ट में साम्प्रदायिक समस्या के सम्बन्ध में जो निर्णय दिया गया था, उसका नवयुवक दल ने हार्दिक स्वागत किया, पर उसमें औपनिवेशिक स्वराज्य के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव था उसकी ओर उनकी स्वाभाविक अरुचि थी। नवयुवक समाज के नेता पं० जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस यह न चाहते थे कि सम्मेलन में इस प्रश्न को उठाया जाय और उसकी प्रगति में बाधा डाली जाय; क्योंकि इससे कांग्रेस के दुश्मनों को खुश होने का मौका मिलेगा। इससे उन्होंने यह उचित समझा कि नेहरू कमेटी की प्रगति में बाधा देने के बजाय Independence league कायम की जाय, जो देश को पूर्ण स्वतंत्रता करने के मार्ग में अग्रसर करे। इस सुझाव का उग्रदल वादियों ने हार्दिक स्वागत किया और देश में जगह जगह इस

संघ की शाखायें खुलने लगी और नवम्बर मास में दिल्ली में जो इसका अधिवेशन हुआ उसमें इसके उद्देश्य साफ़ तौर से घोषित कर दिये गये।

विद्यार्थी आन्दोलन

इसी समय विद्यार्थियों में भी जागृति की ज्योति फिर से चमकने लगी। साइमन कमीशन के बहिष्कार में विद्यार्थियों ने बड़े जोरशोर के साथ भाग लिया। इसके लिये कईयों पर कॉलेज और स्कूल के अधिकारियों ने अनुशासन की कार्यवाही की। बङ्गाल में विद्यार्थियों के आन्दोलन ने और भी अधिक जोर पकड़ा। इस समय विद्यार्थियों को यह महसूस होने लगा कि उनके हितों की रक्षा के लिये विद्यार्थी-संगठन की आवश्यकता है। विद्यार्थियों के इस संगठन को पं० जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस से बड़ा प्रोत्साहन मिला। कलकत्ते में बङ्गाल के विद्यार्थियों की एक प्रथम कान्फ्रेन्स हुई जिसके अध्यक्ष पद को पं० जवाहरलाल नेहरू ने सुशोभित किया था। इसके बाद सारे देश में विद्यार्थी संगठन होने लगा और उसका परिणाम यह हुआ कि विद्यार्थी-गण एक नवीन दृष्टिकोण को लेकर देश के स्वातंत्र्य संग्राम में उत्साह पूर्वक भाग लेने लगे।

मज़दूरों के असंतोष की वृद्धि; हड़तालों की बाढ़

विद्यार्थी-जगत् के असंतोष के साथ साथ मज़दूरों के असंतोष ने भी उग्ररूप धारण कर लिया। खड़गपुर की महान् हड़ताल का ज़िक्र हम गत पृष्ठों में कर चुके हैं। सन् १९२८ ई० में जब जमशेदपुर के टाटा आयर्न और स्टील वर्क्स (Tata Iron and Steel works) में जबरदस्त हड़ताल हुई, जिसमें १८००० मज़दूरों ने हिस्सा लिया। यह हड़ताल कई मास तक चली। कुछ परिस्थितियां ऐसी उत्पन्न हो गईं जिससे इसका टूट जाने का डर होने लगा। आखिर मज़दूरों ने बाबू सुभाष चन्द्र बोस से इसका नेतृत्व करने का आग्रह किया। इस पर बाबू सुभाष

चन्द्र ने इस हड़ताल के संचालन का भार अपने हाथ में लिया। अन्त में मिल मज़दूरों और मालिकों में सम्मान पूर्ण समझौता हो गया, जिस में मिल मज़दूर बड़े लाभ में रहे।

जमशेदपुर की हड़ताल से भी विशाल हड़ताल बम्बई में कपड़ों की मिलों में हुई, जिसमें ६०,००० मज़दूरों ने भाग लिया। यह हड़ताल अपनी प्रारम्भिक अवस्था में बड़ी सफल रही और इससे तत्कालीन मज़दूर तथा सरकार को बड़ी परेशानी हुई। इसके बाद कलकत्ते के पास निलुआ (Nilua) नामक स्थान में ईस्ट इण्डिया रेलवे के वर्क शॉप में हड़ताल हुई, जिसमें १०,००० मज़दूरों ने भाग लिया। जमशेदपुर में टिन प्लेट कं० (Tin Plate Co.) के कारखाने में भी एक हड़ताल हुई जिसमें ४००० मज़दूरों ने हिस्सा लिया। बज़बज़ के तेल और पेट्रोल के कारखाने के मज़दूरों में असंतोष बढ़ा और उन्होंने हड़ताल करदी। इस हड़ताल में ६,००० मज़दूरों ने योग दिया। इसी समय के लगभग कलकत्ते की जूट की मिलों में भी एक बड़ी जबरदस्त हड़ताल हुई जिसमें २००,००० मज़दूर शामिल थे।

बम्बई की जिस हड़ताल का ज़िक्र हमने ऊपर किया है, उसका संचालन साम्यवादी दल के वे युवक कर रहे थे, जिन पर पीछे जाकर मेरठ में एक बड़े षड्यन्त्र का अभियोग चला था और जो मेरठ षड्यन्त्र अभियोग (Meerut Conspiracy Case Trial) के नाम से मशहूर है। इस वक्त से साम्यवादी दल का ज़ोर बहुत अधिक बढ़ने लगा। सन् १९२८ ईस्वी के आखिर में झरिया में ट्रेड युनियन कांग्रेस (Trade Union Congress) का अधिवेशन हुआ, तब यह मालूम हुआ कि मज़दूरों में उग्र पन्थियों (Leftists) और इनमें भी विशेषतः कम्यूनिस्ट (Communists) का ज़ोर बहुत बढ़ रहा है।

सन् १९२८ ईस्वी के दिसम्बर मास में सभा समितियों की बाढ़ सी आ गई। इस मास में अखिल भारतवर्षीय युवक कांग्रेस (All

Indian Youth Congress), सर्वदल सम्मेलन (All-parties Convention) और भारतीय राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) आदि के अधिवेशन हुए। इनमें युवक सम्मेलन के अध्यक्ष का आसन श्री के० एफ० नरिमान (K. F. Nariman) ने सुशोभित किया था। श्री० नरिमन बम्बई के प्रसिद्ध वकील थे और उन्होंने उक्त प्रान्त की बड़ी सेवाएँ की थीं। आप बम्बई धारा सभा के प्रथम स्वराजिस्ट सदस्य थे, जहां आपने सरकार से मार्के का मोर्चा लिया था। बम्बई में उस समय आप बड़े लोकप्रिय थे और निडर और निःस्वार्थ देशभक्तों में आपकी गिनती की जाती थी।

इसी समय, कलकत्ते में राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) का पं० मोतीलालजी नेहरू के सभापतित्व में अधिवेशन हुआ। यह अधिवेशन बड़े उत्साह और समारोह के साथ हुआ। कहा जाता है कि पिछले सब अधिवेशनों से इस अधिवेशन में अत्यधिक प्रतिनिधि और दर्शक थे। कांग्रेस के अध्यक्ष पं० मोतीलाल नेहरू का इस समय जैसा भव्य स्वागत हुआ, वह अपूर्व था। इसमें पुराने कांग्रेस वादियों और उग्रवादियों में भारत के राजनैतिक लक्ष्य को लेकर बड़ा मतभेद उपस्थित हुआ। पुराने कांग्रेसियों ने नेहरू रिपोर्ट के स्वीकार करने पर जोर दिया और उग्रपन्थी इससे आगे बढ़ कर पूर्ण स्वाधीनता की तत्कालिक प्राप्ति पर आग्रह करने लगे। इसके विपरीत महात्मा गांधी ने भी नेहरू रिपोर्ट की स्वीकृति पर जोर दिया। उनका प्रस्ताव यह था "मौजूदा राजनैतिक स्थिति को देखते हुए नेहरू रिपोर्ट को पूर्णतया कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कर लेना अभीष्ट है, बशर्ते कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट सन् १६२६ ई० की ३१ दिसम्बर के पहले पहले उसकी सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करदे। अगर उक्त तारीख तक वह ऐसा न करे तो कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन को सङ्गठित कर देश को करबन्दी आन्दोलन के लिये तैयार करे।" बाबू सुभाषचन्द्र बोस ने इस प्रस्ताव

पर एक संशोधन रखा कि कांग्रेस स्वतंत्रता से कम किसी भी प्रस्ताव पर सन्तुष्ट न होगी और स्वतंत्रता में ब्रिटिश के साथ सम्बन्ध विच्छेद भी आ जाता है। इस संशोधन का पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य उग्रपन्थियों (Leftists) ने समर्थन किया। पर यह संशोधन बहुमत से गिर गया। संशोधन के पक्ष में ९७३ मत और विरोध में, अर्थात् मूल प्रस्ताव के पक्ष में, १३५० मत मिले। बाबू सुभाषचन्द्र बोस की इस सम्बन्ध में यह शिकायत रही कि यद्यपि कांग्रेस का बहुजन समाज संशोधन अर्थात् पूर्ण स्वतंत्रता के उपप्रस्ताव के पक्ष में था पर महात्मा जी के अनुयायियों ने इस प्रश्न को 'विश्वास' का प्रश्न बना लिया और यह प्रगट किया कि अगर महात्मा जी का प्रस्ताव गिर गया तो वे कांग्रेस से अवसर ग्रहण कर लेंगे। इससे लोग महात्माजी के प्रस्ताव पर अधिक मत देने पर मजबूर हुए।*

कलकत्ते की कांग्रेस जिस उत्साह और जोश के साथ आरम्भ हुई थी, पीछे जाकर उसमें शिथिलता आ गई। नवयुवकों को पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास न होने के कारण बड़ी निराशा हुई। प्रारम्भ में, अध्यक्ष महोदय का जो शानदार स्वागत हुआ, वह कांग्रेस के इतिहास में अपूर्व था। पर जब कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हुआ तब कांग्रेस जनों के मुखों पर निराशा की छाया दिखलाई देने लगी।

कांग्रेस पण्डाल पर मजदूरों का अधिकार

कांग्रेस के इस अधिवेशन में एक नई घटना हुई। जब कांग्रेस की कार्यवाही हो रही थी, उस समय करीब १०,००० मज़दूरों के एक जुलूस ने काग्रेस पण्डाल में बलात् प्रवेश कर दिया और वे ज़ोरों से पूर्ण स्वतन्त्रता का नारा लगाने लगे। उन्होंने यह भी प्रगट किया कि कांग्रेस, मज़दूरों के हितों के प्रश्न को भी, अपने हाथ में ले।

---

*Indian Struggle by Subhas chandra Bose. pp.222.

उग्रवादीदल और क्रान्तिकारी दल

जैसा कि गत पृष्ठों में दिखलाया गया है, उस समय नवयुवकों में उग्रवादियों (Leftists) का ज़ोर बढ़ता जा रहा था। कांग्रेस के नर्म कार्यक्रम से उन्हें सन्तोष न था। उग्रवाद (Leftism) के साथ क्रान्तिकारी भावनाएं (Revolutionary Ideas) भी ज़ोर पकड़ती गईं। इस समय क्रान्तिकारियों द्वारा दो ऐसी घटनाएँ की गईं। जिन्होंने ब्रिटिश नौकरशाही को थर्रा दिया। लाहौर में वहां के पुलिस इन्सपेक्टर मि० शॉन्डर्स (Mr. Shaunders) क्रान्तिकारियों द्वारा क़त्ल कर दिये गये। कहा जाता है कि सन् १६२८ ई० में सायमन कमीशन के विरोध में जो प्रदर्शन हुआ था और जिसमें देश के पूज्य नेता लाला लाजपतराय बुरी तरह घायल हुए थे, उसके लिये मि० शॉडर्स ही जिम्मेदार थे। दूसरी घटना, दिल्ली के असेम्बली बमकाण्ड की थी। इसमें असेम्बली के चालू अधिवेशन में बम फेंका गया था और इस सिलसिले में सरदार भगतसिंह और श्री० बटुकेश्वरदत्त नामक दो युवक पकड़े गये थे। इस घटना ने सारे देश में तहलका मचा दिया और चारों ओर गिरफ़्तारियोंकी धूम मच गई। यह घटना सन् १६२६ ई० के मध्य की है। यह क्रान्तिकारी षड्यन्त्र लाहौर षड्यन्त्र के नाम से मशहूर है। इस षड्यन्त्र के प्रति देश के विशाल नवयुवक समुदाय की न केवल दिलचस्पी ही थी, बल्कि सहानुभूति भी थी। सरदार भगतसिंह पंजाब के युवक आन्दोलन के प्रभावशाली नेता थे। नव-जीवन भारत सभा के वे मानों प्राण थे। गिरफ़्तारी के बाद और अभि-योग के समय उनकी जैसी साहसिक प्रवृत्ति रही, उससे राष्ट्र के नव-युवकों के हृदयों पर उन्होंने अपनी गहरी छाप डाली थी। सरदार

भगतसिंह उन वीर सरदार अजीतसिंह के भतीजे थे जो सन् १६०८ ई० में लाला लाजपतराय के साथ देश से निर्वासित किये गये थे।

लाहौर षड्यन्त्र का अभियोग खूब ज़ोर शोर के साथ चला। इस समय सरदार भगतसिंह और अन्य अभियुक्तों ने न्यायालय से यह मांग की कि राजनैतिक अभियुक्त होने के कारण जेल में वे अच्छा व्यवहार पाने के अधिकारी हैं, पर उनकी एक न सुनी गई। तब उन लोगों ने भूख हड़ताल करने का निश्चय किया। इन अभियुक्तों में कलकत्ते के जतीन्द्रनाथ दास नामक युवक भी थे। भूख हड़ताल के पहले इन्होंने अपने साथियों के सामने यह प्रकट किया कि खूब सोच समझ कर यह कदम उठाना चाहिये। एक बार कदम उठा लेने पर, जहाँ तक अपनी मांग पूरी न हो, पीछे पैर न हटाने का दृढ़ निश्चय कर लेना आवश्यक है। इस भूख हड़ताल पर सारे देश का वातावरण बड़ा गर्म हो गया। नवयुवक तो बहुत ही अधीर हो उठे। इस पर सरकार कुछ झुकी और वह अधूरा समझौता करने को तैयार हो गई। उसने उक्त अभियुक्तों के साथ अच्छा व्यवहार करने का आश्वासन दिया। पर ये अभियुक्त इस जिद्द पर अड़ गये कि हम केवल अपने लिये अच्छे व्यवहार की मांग नही करते, पर यह व्यवहार देश के सब राजनैतिक अभियुक्तों के साथ होना चाहिये। इस मांग पर गवर्नमेन्ट नहीं झुकी। सारे देश में इससे घोर आन्दोलन मच गया। युवक दल उत्तेजित और अधीर होकर बदला लेने की सोचने लगा। अखबारों में कड़े लेख निकले। सभाओं और प्रदर्शनों की धूम मच गई, जिनमें रानैतिक कैदियों के साथ अच्छा व्यवहार करने की सरकार से जोरदार मांग की गई। कलकत्ते में इस समय जो विशाल प्रदर्शन हुआ उनमें वहां के कई प्रमुख कांग्रेस नेता पकड़े गये। इनमें श्री सुभाषचन्द्र बोष का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन सब पर राज्य-विद्रोह के मुकद्में चलाये गये।

दिन पर दिन बीतने लगे। भूख हड़तालियों की दशा शोचनीय होने लगी। सारे राष्ट्र का हृदय पिघल गया, पर ब्रिटिश नौकरशाही ने अपना दिल पत्थर का कर लिया। इधर सब भूख हड़ताली भी अपने प्रण पर दृढ़ न रह सके। नौकरशाही के उक्त अधूरे आश्वासन पर कइयों ने भूख हड़ताल तोड़ दी। पर वीर जतीन्द्र अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। उसने आयरलेन्ड के वीर टेरेन्स मेकेस्वीनी (Terence Mc. Swiney.) की तरह अपने देश के सम्मान व स्वाधीनता के लिये भूख हड़ताल में प्राण दे देना अपना कर्त्तव्य समझा। वह सन् १९२९ ई० की १३ सितम्बर को वीरोचित मृत्यु से मरा और देश की स्वाधीनता के इतिहास में उसने अपना नाम अमर कर दिया। सारे देश ने इस वीर के महान् बलिदान के सामने अपना मस्तक झुकाया। बाबू सुभाषचन्द्र बोस अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'Indian struggle' में लिखते हैं:—

"....But he died the death of a martyr. After his death the whole Country gave him an ovation which few man in the recent history of India have received. As his dead body was removed from Lahore to Calcutta for cremation, people assembled in their thousands and tens of thousands at every station to pay their homage. His martyrdom acted as a profound inspiration to the youth of India and everywhere youth and student organistations, began to grow up. Among the many messages that were received on the occasion, was one which touched the heart of every Indian. It was a message from the family of Ter-

ence Mc Swiney, the Lord Mayor of Cork, who had died a martyr under similar conditions in Ireland. The message ran thus:- Family of Terence Mc Swiney have heard with grief and pride of the death of Jatin Das. Freedom will come.'

अर्थात् वह (जतीन्द्रदास) शहीद की मौत मरा। उसकी मृत्यु के बाद सारे देश ने उसका जैसा जयजयकार किया, वैसा भारत के आधुनिक इतिहास में बहुत ही कम लोगों के लिये किया होगा। जब उसका शव अन्तिम संस्कार के लिये लाहोर से कलकत्ते ले जाया जा रहा था, तब उसको श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने के लिये हरएक स्टेशन पर हजारों लाखों लोग इकट्ठे हुए थे। उसके बलिदान ने भारत के नवयुवकों में दिव्य प्रेरणा संचारित की और उसके फल स्वरूप हर जगह "युवक संगठनों" की बाढ़ आने लगी। इस अवसर पर जो बहुसंख्यक सन्देश मिले, उनमें एक सन्देश ऐसा था, जिसने हर एक भारतवासी के हृदय को पिघला दिया। वह सन्देश आयरलेन्ड के प्रसिद्ध वीर स्वर्गीय टेरेन्स मेकनि के कुटुम्ब की ओर से था। स्वर्गीय टेरेन्स मेकस्वीनि ने आयरलेंड में, जतीन्द्र की तरह भूख हड़ताल कर अपने प्राण त्याग किये थे। उनका संदेश यह था:—'टेरेन्स मेकस्वीनि के कुटुम्ब ने जतीन्द्र की मृत्यु के समाचार को विषाद और अभिमान के साथ सुना है। स्वतंत्रता आयेगी।'

जतीन्द्र अपनी मृत्यु के समय २५ वर्ष का था। जब वह विद्यार्थी था तब ही सन् १६२१ ई० के असहयोग आन्दोलन में उसने भाग लिया था, और इस सम्बन्ध में उसे कई वर्ष जेलखाने में काटने पड़े थे। कारागार से मुक्त होने पर वह फिर से कलकत्ते के कॉलेज में भर्ती हो गया और अपना अध्ययन चालू कर दिया। सन् १६२८ ई० में कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन के समय उसने स्वयंसेवकों की शिक्षा और संगठन में प्रमुख भाग लिया था और बङ्गाल स्वयंसेवक कोर (Bengal

Volunteer Core) में वह मेजर (Major) के पर पद प्रतिष्ठित हुआ था। इस स्वयंसेवक दल की पीछे कई शाखाएँ खुलीं और यह कहा जाता है कि इसकी उन्नति का प्राण जतिन था। स्मशान में इस दल के स्वयंसेवकों ने जतिन के शव पर सैनिक सम्मान प्रदर्शित किया।

जतिन के महान आत्म-बलिदान का समाचार दिल्ली में उस समय पहुंचा जब कि धारा सभा (Assembly) का अधिवेशन चालू था। सरकारी अधिकारियों के हृदय पर भी इस बलिदान का असर अवश्य पड़ा, मगर वह क्षणिक था। कूट नीति ने हृदय के भावों पर अधिकार कर लिया। भारत सरकार ने राजनैतिक कैदियों के साथ व्यवहार के प्रश्न को विचारार्थ अपने हाथ में लिया। जब जन साधारण की उत्तेजना कुछ शान्त हो गई तब सरकार ने इस सम्बन्ध में अपने प्रस्ताव उपस्थित किये। इस समय यह मालूम हुआ कि ये उपाय तो बिमारी से भी बुरे हैं। शुरू में तो सरकार ने राजनैतिक कैदियों के श्रेणी-विभाग करने से इन्कार कर दिया। इससे लाहोर के भूख हड़तालियों की मांग पर पानी फिर गया। सरकार ने श्रेणी-विभाग के बदले यह प्रस्ताव किया कि भविष्य में कैदी लोग A, B & C ऐसे तीन विभागों में रखे जावेंगे। 'C' श्रेणी के कैदियों के साथ साधारण अपराधियों के समान व्यवहार किया जायगा। 'B' श्रेणी के कैदियो को 'C' श्रेणी के कैदियों की अपेक्षा भोजन, पत्र-व्यवहार और मुलाकातों के सम्बन्ध में कुछ अधिक सुविधाएँ रहेंगी। 'A' श्रेणी के कैदियों के साथ 'B' श्रेणी के कैदियों की अपेक्षा अधिक उत्तम व्यवहार किया जावेगा। यह श्रेणी-विभाग कैदियों के सामाजिक पद (Social Status) के अनुसार किया जावेगा।

जब इन नियमों को कार्यान्वित किया गया तब मालूम हुआ कि ६५% राजनैतिक कैदी 'C' क्लास अर्थात् तृतीय श्रेणी में रखे जाते हैं और ३-४ फी सदी तक 'B' क्लास में और १ फी सदी 'A' क्लास

रक्खे जाते हैं। राजनैतिक क्षेत्रों में इससे यह समझा गया कि यह राजनैतिक कैदियों की एकता तोड़ने का एक कुशल षड्‌यन्त्र है, क्योंकि इससे अच्छा व्यवहार बहुत ही थोड़े कैदियों के साथ किया जाता है। हां, इन नये नियमों से एक बात अवश्य हुई, वह यह कि यूरोपियन कैदी और भारतीय कैदियों के बीच का भेदभाव मिटा दिया गया। पर व्यवहार में कहीं कहीं फिर भी यह दिखलाई देता था।

युवकों और स्त्रियों में जागृति

जैसा कि गत पृष्ठों में कहा जा चुका है राजनैतिक आन्दोलन के साथ साथ, राष्ट्र के जीवन-भूत और भावी स्तम्भ युवकों और महिलाओं में भी जागृति की दिव्य ज्योति चमकने लगी। सन् १९२९ ई० में यह जागृति और भी अधिक तेजस्विता के साथ प्रज्वलित हुई। कलकत्ते में जो युवक सम्मेलन (Youth Conference) का अधिवेशन हुआ था उसकी सफलता ने और जतिन के बलिदान ने युवक आन्दोलन में नवजीवन और नवोत्साह का संचार किया। सन् १९२९ ई० में सारे वर्ष भर, भारत के विभिन्न प्रान्तों में जोर शोर के साथ युवक संगठन होने लगे। पूना में पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में महाराष्ट्र युवक सम्मेलन (Maharastra Youth Conference) का अधिवेशन हुआ। अहमदाबाद में बम्बई प्रान्त के युवक सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षा श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय थी। इसी वर्ष के सितम्बर मास में पंजाब विद्यार्थी सम्मेलन (Punjab Students Conference) का प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसके सभापति के पद को श्री० सुभाषचन्द्र बोस ने सुशोभित किया था। इसके बाद मध्यप्रान्त के नागपुर नगर में वहां के युवकों का सम्मेलन हुआ, जिसके अध्यक्ष भी श्री सुभाषचन्द्र बोस चुने गये। इसी प्रकार दिसम्बर मास में अमरावती में बरार विद्यार्थी सम्मेलन का अधिवेशन हुआ जिसके सभापति के

शासन को भी श्री० सुभाषचन्द्र बोस ने सुशोभित किया था। मद्रास प्रान्त में भी इस प्रकार के कई युवक सम्मेलन हुए। इसी वर्ष के अन्त में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर लाहोर में अखिल भारतवर्षीय विद्यार्थी कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसके सभापति पं० मदनमोहन मालवीयजी थे।

युवकों की तरह महिला समाज में भी जागृति की अपूर्व ज्योति चमकने लगी। पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने "महात्मा गांधी" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"Many strange things happened in those days, but undoubtedly the most striking was the part of the women in the national struggle. They came out in large numbers from the seclusion of their homes and, though unused in public activity threw themselves into the heart of the struggle. The picketing of foreign cloth and liquor shops they made their preserve. Enormous processions consisting of women alone were taken out in all cities, and, generally, the attitude of the women was more unyielding than that of the men. Often they became Congress "dictators" in provinces and in local areas." अर्थात् "उन दिनों बहुत सी विचित्र घटनाएँ हुईं पर हमारी महिलाओं ने इस राष्ट्रीय संघर्ष में जो भाग लिया वह निःसन्देह सबसे अधिक आकर्षक था। वे अपने घर के पर्दे से बहुत बड़ी संख्या में बाहर निकल आईं, और यद्यपि वे सार्वजनिक प्रवृत्तियों से अनभ्यस्त थीं तो भी उन्होंने अपने आपको संघर्ष के बीच डाल दिया। विदेशी वस्त्र और शराब की दूकानों पर धरना देने (picketing) के काम

को उन्होंने युद्ध का अपना मोर्चा बनाया। भारतवर्ष के शहरों में केवल महिलाओं के बड़े बड़े जुलूस निकले और साथ रण तौर पर यह बात देखी गई कि उनकी वृत्तियाँ पुरुषों से भी अधिक न झुकने की थी। कई वक्त वे प्रान्तों और स्थानीय क्षेत्रों की 'डिक्टेटर्स' हुई।"

गुजरात की महिलाओं ने गांधीजी के झण्डे के नीचे सत्याग्रह संग्राम में सबसे अधिक भाग लिया। बङ्गाल, यू० पी०, बम्बई प्रान्त ने भी गुजरात का अनुकरण किया। राजस्थान की कुछ पर्देनशीन महिलाओं ने भी इस महान् संग्राम में अपना सहयोग दिया। ईस्वी सन् १६२८ में बाबू सुभाषचन्द्र बोस की प्रेरणा से कलकत्ते में 'महिला राष्ट्रीय संघ' नाम की एक राजनैतिक संस्था स्थापित हुई और थोड़े ही दिनों में सारे देश में ऐसी संस्थाओं का जालसा बिछ गया। महिलाओं में अपूर्व जागृति हुई।

मजदूर आन्दोलन की प्रगति

इन्हीं वर्षों में, मज़दूर आन्दोलन ने जैसी प्रगति की, उसका कुछ उल्लेख हम किसी गत अध्याय में कर चुके हैं। इस मज़दूर आन्दोलन के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध कम्युनिष्ट ग्रन्थकर्ता श्री० रजनीपाम दत्त ने अपने "India to-day." नामक ग्रन्थ में जो तथ्य पूर्ण पंक्तियां लिखी हैं, उन्हें हम यहां उद्धृत करते हैं:—

"कई विघ्न बाधाओं के बावजूद,लड़ाई के बाद हिन्दुस्तान के मज़दूर-वर्ग में धीरे-धीरे राजनीतिक चेतना फैलने लगी। शुरू की उलझनों के बाद मज़दूरों में समाजवादी और कम्युनिष्ट विचार फैलने लगे। हिन्दुस्तान की कम्युनिष्ट पार्टी अभी बहुत कमजोर थी लेकिन १६२० से ही उसका साहित्य लोगों के पास तक पहुंचने लगा था। १६२४ में श्रीपाद अमृत डांगे के सम्पादक में बम्बई से "सोशलिस्ट" नाम की पत्रिका निकलने लगी। आगे चलकर वह ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सहायक मंत्री चुने गये।

(१६४७ में डॉ० डांगे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस के सभापति चुने गये।)। सरकार ने हमला करने में देर न की। विलायत में लेबर पार्टी की सरकार थी; तभी १६२४ में डांगे, शौकत उस्मानी, मुज़फ़्फ़र अहमद, और दास गुप्ता नामक चार कम्युनिस्ट नेताओं पर क़ानपुर का मुक़दमा चलाया गया और चारों को चार-चार साल की सज़ा सुनादी गई। हिन्दुस्तान के राजनीतिक मज़दूर आन्दोलन की अग्नि-परीक्षा शुरू गई।

"पर दमन से जागरण रुका नहीं। १६२६-२७ में समाजवादी विचार चारों ओर फैल रहे थे। मज़दूर-किसान पार्टियों के रूप में मज़दूर-वर्ग का राजनैतिक और समाजवादी संगठन शुरू हो गया था, इन पार्टियों ने ट्रेड यूनियन आन्दोलन के लड़ाकू लोगों को इकट्ठा किया, और कॉंग्रेस के गरमदली लोगों से उनका एका क़ायम किया। फरवरी, १६२६ में बंगाल में पहली मज़दूर-किसान पार्टी कायम हुई। इसके बाद बम्बई, संयुक्तप्रांत और पंजाब में पार्टियां बनीं। १६१८ में ये सब पार्टियां "अखिल भारतीय मज़दूर-पार्टी" में मिलकर एक हुईं। इसका पहला अधिवेशन दिसम्बर, १६२८ में हुआ। शुरू की बहुत सी उलझनों के बावजूद मज़दूरों की नयी जागृति, जिसके पहले चिन्ह १६२७ में दिखायी दिये थे, इस प्रकार अपने राजनीतिक रूप में प्रकट हुई। इससे नई बढ़ती हुई शक्तियों का पता चलता था।"

१६२७ के वसन्त में ट्रेड यूनियन कांग्रेस का दिल्ली अधिवेशन हुआ जिसमें ब्रिटिश पार्लियामेंट के कम्युनिस्ट सदस्य शापुरजी सकलतवाला शामिल हुए। आगे चलकर इसी साल कानपुर में भी अधिवेशन हुआ। दोनों जगह पता चला कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन में लड़ाकू नेताओं की आवाज़ सुनाई देने लगी है। और यह भी बहुत जल्द साफ़ हो गया कि देश की अधिकतर ट्रेड यूनियन इन नेताओं के साथ हैं, यद्यपि वोट रजिस्टर कराने में देरी होने से १६२६ तक इस बात को बाक़ायदा स्वीकार

नहीं किया गया। बम्बई में पहली बार १६२७ का मई-दिवस मज़दूरों के त्यौहार के रूप में मनाया गया। यह इस बात का चिन्ह था कि अब हिन्दुस्थान का मज़दूर-आन्दोलन एक नई मञ्जिल पर कदम रख रहा है और सचेत होकर अपने को अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर-आन्दोलन से मिला रहा है।"

"१६२८ में मज़दूरों में बड़ी हलचल रही और उन्होंने आगे कदम बढ़ाया। पहले महायुद्ध के बाद से अब तक ऐसी प्रगति नहीं हुई थी। इस हलचल और प्रगति का केन्द्र बम्बई था। पहली बार मज़दूर-वर्ग का ऐसा नेतृत्व सामने आया जो कि कारखाने के मजदूरों के नज़दीक था, जो वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त मानकर चलता था और जो राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में अटूट इकाई की तरह काम करता था। मज़दूरों ने हृदय से इसका स्वागत किया। फ़रवरी में साइमन कमीशन के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने राजनीतिक हड़तालें और प्रदर्शन किये। इससे कुछ समय के लिये हिन्दुस्थान का मज़दूर-आन्दोलन, राष्ट्रीय आन्दोलन के आगे चलने लगा। कांग्रेस के नेता-आन्दोलन के सुधारवादी नेता-वह नहीं चाहते थे। मज़दूर आन्दोलन की इस सफलता से वे चौंक पड़े। बहुत से बम्बई के म्युनिसिपल-मज़दूर इस राजनीतिक कार्यवाही में हिस्सा लेने के लिये बर्खास्त कर दिये गये। परन्तु हड़ताल करने पर फिर उन्हें अपनी जगह मिल गई।

"मज़दूर संगठन भी बढ़ चला। बम्बई की मज़दूर सभाओं के मेम्बर १६२३ में ४८,६६६ थे। १६२६ तक, ३ साल में, उनकी संख्या बढ़कर ५६,५४४ तक ही पहुँची। ई० १६२७ में सरकारी आँकड़ों के अनुसार ७५,६०२ मज़दूर यूनियनों के मेम्बर बन गये थे। मार्च १६२८ में उनकी संख्या ६५,३२१ और मार्च १६२६ में २,००,३२५ तक पहुँच गई। इन सब में बम्बई मिल-मज़दूरों की प्रसिद्ध "गिरणी-कामगार यूनियन" सबसे आगे थी। इस लाल झन्डे की यूनियन ने

३२४ मेम्बरों से शुरूआत की थी। सरकारी लेबर बज़ट के अनुसार उसी साल दिसम्बर १६२८ तक इसके ५४,००० मेम्बर बन गये थे और १६२६ की पहली तिमाही तक मेम्बरों की संख्या ६५,००० तक हो गई थी। उसी बीच बम्बई की पुरानी "सूती मज़दूर-यूनियन" जहाँ की तहाँ पड़ी रही। इस यूनियन की १६२६ में बुनियाद पड़ी थी। ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के मंत्री श्री एन. एम. जोशी के सुधार . . नेतृत्व में वह पल रही थी। उस पर सरकार और मिल-मालिक दोनों का ही वरद-हस्त था। फिर भी सरकारी आँकड़ों के अनुसार अक्टूबर, १६२८ में उसके ८,४३६ मेम्बर थे और उसी साल दिसम्बर तक वे केवल ६,७४६ ही रह गये। इसने मज़दूरों की पसंदगी ज़ाहिर हो गई। "गिरणीकामगार यूनियन" की शक्ति का कारण उसकी मिल-कमिटियाँ थीं, जो मज़दूरों के बिलकुल नज़दीक होती थीं।"

"१६२८ की हड़तालों में ३,१५,००,००० मज़दूरी के दिन ज़ाया हुए। पिछले ५ सालों में कुल मिलाकर भी इतने दिन ज़ाया न हुए थे। इस लहर का केन्द्र बम्बई के सूती मज़दूर थे, लेकिन यह लहर समूचे हिन्दुस्तान में फैल रही थी। कुल मिलाकर उद्योग-धन्धों में २०३ झगड़े हुए। इनमें से १११ बम्बई में, ६० बंगाल में, ८ बिहार-उड़ीसा में, ७ मद्रास और २ पंजाब में हुए थे। ११० झगड़े सूती और ऊनी धन्धों में हुए थे; १६ जूटकी मिलों में, ११ इन्जीनियरी की वर्कशॉपों में, ६ रेलवे और रेलवे की वर्कशॉपों में और १ कोयले की खानों में हुए। इन सबसे बढ़कर बम्बई के सूती मिल-मज़दूरों की हड़ताल थी जिसमें बम्बई के सभी १॥ लाख कपड़ा-मज़दूर छः महीने तक हर तरह के दबाव और सरकारी हिंसा का मुक़ाबला करते रहे। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह सबसे बड़ी हड़ताल थी। उसकी शुरूआत मशीनें तेज़ चलाने के ख़िलाफ़ और मज़दूरी में ७॥ फी सदी कटौती के विरुद्ध हुई थी। आगे चलकर और बहुत सी मांगें रखी गयीं। सुधारवादी नेताओं

ने पहले हड़ताल का विरोध किया। श्री एन० एम० जोशी ने उन्हें तमाशबीन कहा था। लेकिन आगे चलकर ये लोग आन्दोलन में खींचे चले आये। हड़ताल को तोड़ने की हर प्रकार की कोशिश बेकार होने पर सरकार ने फासेट कमेटी बैठायी, जिसने ७॥ कटौती को वापिस लेने की सिफ़ारिश की और मज़दूरों की कुछ दूसरी मांगें स्वीकार की।

कम्युनिस्ट और समाजवादी आन्दोलनों से सरकारी क्षेत्रों में बड़ी चिन्ता फैल गई। सन् १९२९ ई० में तत्कालीन वायसरॉय लार्ड इरविन ने केन्द्रिय धारा सभा में भाषण करते हुए कहा कि "कम्युनिस्ट सिद्धान्तों के प्रचार से परेशानी पैदा हो रही है।" उन्होंने ऐलान किया कि सरकार उसका उपाय करेगी। सरकारी वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया कि "कम्युनिस्टों के प्रचार और प्रभाव से खास तौर से कुछ बड़े बड़े शहरों के औद्योगिक वर्गों में अधिकारियों को बड़ी चिन्ता हो रही है।"

१९२८–२९ का मज़दूर आन्दोलन

ब्रिटेन के उदारपंथियों ने यही राग अलापा। अगस्त १९२९ में मैंचेस्टर गार्जियन ने लिखा "पिछले २ वर्षों का अनुभव बताता है कि बड़े बड़े केन्द्रों में औद्योगिक मज़दूर पाप-पुण्य का विचार न करने वाले कम्युनिस्टों के प्रभाव में बहुत जल्दी आ जाते हैं।"

"इस गुहार में हिन्दुस्थान के कुछ अख़बारों ने भी अपना स्वर मिलाया। मई १९२९ में बाम्बे क्रानिकल ने घोषित किया कि "आज कल समाजवाद की फ़िज़ा है; सम्मेलनों में ख़ास तौर से किसानों और मज़दूरों की सभाओं में महिनों से समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार किया जा रहा है।"

१९२९ में सरकार ने अपना अस्त्र संभाला और वह मज़दूर आन्दोलन को कुचलने पर तुल गई। सितम्बर १९२८ में "पब्लिक सेफ्टीबिल"

पेश किया गया। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इसका उद्देश्य यह था कि "हिन्दुस्थान में कम्युनिस्टों की कार्यवाही को रोका जाय।" केन्द्रिय धारा सभा ने इस बिल को रद् कर दिया। तब १६२६ के वसन्त में वायसरॉय ने बिल को ऑर्डिनेन्स का रूप दे दिया। मज़दूरों की जांच के लिये व्हिटले-कमीशन बैठाया गया। ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट पास किया गया था, जिससे समझौता करने का सिलसिला तैयार हुआ और दूसरों की हमदर्दी में हड़ताल करने की मनाई कर दी गई और जनता के लिये आवश्यक धन्धों (पब्लिक यूटीलिटी सर्विसेज) में हड़ताल करने के अधिकार को सीमित कर दिया गया। बम्बई में दंगों की जांच कमेटी बैठाई गई और उसने सिफ़ारिश की कि बम्बई में कम्युनिस्टों की कार्रवाई के ख़िलाफ़ बहुत सख़्ती से काम लिया जाय। कमिटी ने यह सवाल भी उठाया कि ट्रेड-यूनियन ऐक्ट को सुधारा जाय जिससे कि रजिस्टर्ड ट्रेड यूनियनों में कम्यूनिस्टों को कोई ओहदा मिलने ही न पाये।"

क्रान्तिकारी आन्दोलन

महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन के साथ साथ, सशस्त्र क्रांतिकारी आन्दोलन का भी कहींकहीं ज़ोर बढ़ रहा था। प्रथम महायुद्ध के बाद जब गांधीजी ने असहयोग संग्राम प्रारम्भ किया तब बहुत से क्रान्तिकारी उनके झण्डे के नीचे आ गये थे, पर चौराचौरी कांड के बाद जब महात्माजी ने सारे देश में चलते हुए सत्याग्रह संग्राम को स्थगित कर दिया, तब इन क्रान्तिकारियों में बड़ी निराशा छा गई और उन्होंने अपने उपायों से देश को स्वतंत्र करने का निश्चय किया। चोराचोरी कांड के बाद बङ्गाल में योगेश चटर्जी, शचीन्द्र सान्याल आदि नवयुवक फिर क्रान्तिकारी दलों के संगठन में लग गये और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये उन्होंने डाके डाल कर धन एकत्रित करना शुरू किया।

कलकत्ता के शंकरीटोला डाकघर (Post office) को लूटते

समय विरेन्द्र घोष नामक नवयुवक पकड़ा गया और उसे आजीवन काले-पानी की सज़ा हुई। चौरंगी में पुलिस कमिश्नर टेगार्ट की हत्या करने की कोशिश में गोपीनाथ साहा ने गलती से किलबर्न कम्पनी के मि० डे. को गोली मार दी। गोपीनाथ पकड़े गये और उन्हें बदस्तूर फांसी हुई।

१६२५ में लखनऊ—सहारनपुर लाइन में काँकोरी स्टेशन के नज़दीक मेल ट्रेन को रोक कर क्रान्तिकारियों ने सशस्त्र पुलिस के पहरे के बावजूद सरकारी ख़ज़ाना लूट लिया। भयानक अन्धेरी रात थी, जिसमें बून्दाबान्दी भी हो रही थी। गाड़ी ज्योंहीं कांकोरी स्टेशन से थोड़ी दूर गई कि किसी ने जंज़ीर खींचकर गाड़ी रुकवा दी और मुट्ठी भर नौजवानों ने पांच मिनटों के भीतर गार्ड और ड्राइवर को पिस्तौल दिखाकर ख़ज़ाना लूट लिया और वे एक लहमें के अन्दर अन्धेरे में ग़ायब हो गये।

इस सिलसिले में कई नवयुवकों को गिरफ़्तार किया गया और उन पर अभियोग चलाया गया। जो कांकोरी षड्यन्त्र अभियोग के नाम से मशहूर है। यह अभियोग १८ मास तक लगातार चलता रहा। इसमें पं० रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी और रोशनसिंह को फाँसी की सज़ा हुई। अन्य अभियुक्तों में से शचीन्द्र नाथ सन्याल को आजीवन काला पानी की सज़ा हुई। मन्मथनाथ गुप्त आदि को १४ वर्ष के कठिन कारावास की सज़ा हुई। योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकुन्दीलाल, गोविन्द चरण काक, रामकुमारसिंह और रामकृष्ण खत्री को दस दस साल की जेल हुई। विष्णुशरण दुब्लिस, सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य को सात २ साल की सज़ा हुई। भूपेन्द्रनाथ सन्याल, रामदुलारे त्रिवेदी और प्रेम कृष्ण खन्ना को पाँच पाँच साल की सज़ा हुई। इसके अतिरिक्त प्रणवेश चटर्जी को चार साल की सज़ा हुई। यद्यपि बनवारी लाल इक़बाली गवाह बन गया था फिर भी उसको पाँच साल की सज़ा हुई। इसके अतिरिक्त जो Supplimentary मुक़दमा चला, उसमें अशफ़ाकउल्ला को फाँसी हुई।

बाद को सरकार ने कुछ व्यक्तियों के खिलाफ़ अपील की कि सजा बढ़ाई जाय। इन छः में से पाँच की सज़ा बढ़ा दी गई। यानी योगेशचन्द्र चटर्जी, गोविन्द चरण कार, मुकुन्दीलाल, सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, विष्णुशरण दुब्लिश की सज़ा बढ़ा दी गई। जिनकी सजा दस साल की थी उनकी सजा कालेपानी की करदी गई, और जिनकी सज़ा सात साल की थी उनकी दस साल की करदी गई। मन्मथनाथ गुप्त की सज़ा जज ने यह कह कर नहीं बढ़ाई कि उनकी उम्र बहुत कम थी।

जनता की ओर से फांसी को रद्द करने के लिये घोर आन्दोलन किया गया। केन्द्रीय धारा सभा के सदस्यों ने तत्कालीन वायसरॉय को दरख़्वास्त पर दरख़्वास्त देकर फ़ांसी की सज़ा को माफ़ करने की प्रार्थनाएँ कीं, पर इसमें उन्हें सफलता न हुई। आखिर १७ दिसम्बर १६२७ ई० को गोंडा जेल में उन्हें फांसी दे दी गई। इसके तीन दिन पहले, अर्थात् १४ दिसम्बर को, राजेन्द्र लाहिड़ी ने जो पत्र लिखा था उससे यह प्रकट होता था कि वे मृत्यु से कितने निर्भीक थे। वह पत्र इस प्रकार था।

"कल मैंने सुना कि प्रिवी कौंसिल ने मेरी अपील अस्वीकार करदी। आप लोगों ने हम लोगों की प्राण-रक्षा के लिये बहुत कुछ किया; कुछ उठा न रखा, किन्तु मालूम होता है कि बलि-वेदी को हमारे रक्त की आवश्यकता है। मृत्यु क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं! इसलिये मनुष्य मृत्यु से दुःख और भय क्यों माने? वह तो नितान्त स्वाभाविक अवस्था है। उतनी ही स्वाभाविक जितनी प्रातःकालीन सूर्य का उदय होना। यदि यह सच है कि इतिहास पलटा खाया करताहै तो मैं समझता हूँ कि हमारी मृत्यु व्यर्थ न जायगी। सबको मेरा नमस्कार,—अंतिम नमस्कार!"

आपका:—राजेन्द्र!

राजेन्द्र लाहिड़ी की तरह गोरखपुर जेल में पं० रामप्रसाद को भी १६ दिसम्बर को जेल में फांसी हुई। फांसी के दरवाजे पर पहुँच

कर उन्होंने कहा—"I wish the downfall of British Empire" (मैं ब्रिटिश साम्राज्य का पतनचाहता हूं)। इसके बाद तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना के बाद विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि.... आदि मंत्र का जाप करते हुए गोरखपुर के जेल में वे फन्दे में झूल गये।

फाँसी के वक्त जेल के चारों ओर बहुत कड़ा पहरा था। गोरखपुर की जनता ने उनके शव को लेकर आदर के साथ शहर में घुमाया। बाजार में अर्थी पर इत्र तथा फूल बरसाये गये और पैसे लुटाये गये। बड़ी धूम धाम से उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की गई।

फाँसी के कुछ दिन पहले उन्होंने अपने एक मित्र के पास एक पत्र भेजा था जिसमें उन्होंने लिखा था:—"१६तारीख को जो होने वाला है, उसके लिये मैं अच्छी तरह तैयार हूं। यह है ही क्या ? केवल शरीर का बदलना मात्र है। मुझे विश्वास है कि मेरी आत्मा मातृ-भूमि तथा उसकी दीन सन्तति के लिये नये उत्साह और ओज के साथ काम करने के लिये शीघ्र ही फिर लौट आयेगी।"

इसके साथ ही उन्होंने एक भाव में कविता पढ़ी और सबसे नमस्ते कहलवाया। वह कविता इस प्रकार है :

यदि देश हित मरना पड़े मुझको सहस्रों बार भी।
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी॥
हे ईश, भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो।
कारण सदा ही मृत्यु का देशीय कारक कर्म हो॥
मरते 'बिस्मिल' रोशन लहरी अशफ़ाक अत्याचार से।
होंगे पैदा सैंकड़ों उनकी रुधिर की धार से॥
उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का।
तब नाश होगा सर्वथा दुःख शोक के लवलेश का॥

(श्री मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित सशस्त्र क्रान्तिकारी चेष्टा का

रोमांचकारी इतिहास" से उद्धृत)

इसी प्रकार अशफ़ाकुल्ला को फ़ैज़ाबाद जेल में १६ दिसम्बर को फांसी हुई ! वे भी बड़ी प्रसन्नता के साथ फांसी पर लटक गये ! फांसी पर लटकते समय उन्होंने उपस्थित जनता से कहा:—

"मेरे हाथ इन्सानी खून से कभी नहीं रंगे। मेरे ऊपर जो इल्ज़ाम लगाया गया है, वह ग़लत है। खुदा के यहाँ मेरा इन्साफ़ होगा।"

अशफ़ाकुल्ला की तरह रोशनसिंह भी फांसी पर लटका दिये गये। ओ३म् का स्मरण करते हुए उन्होंने प्राण दिये।

कांकोरी षड्यन्त्र के साथ साथ, कानपुर में कम्युनिस्टों का एक षड्यन्त्र पकड़ा गया। इस षड्यन्त्र में अमृत डांगे, शौकत उस्मानी मुज़फ्फर अहमद, नलिनी बाबू आदि गिरफ़्तार हुए। इन पर यह अभियोग लगाया कि ये ब्रिटिश सरकार को उलट देने का षड्यन्त्र कर रहे हैं। इनको चार चार साल की जेल हुई।

मेरठ-अभियोग

हमने गत पृष्ठों में भारतवर्ष में होनेवाली मज़दूर जाग्रति का उल्लेख किया है। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ साथ मज़दूर आन्दोलन भी ज़ोर पकड़ता जा रहा था। १९२९ ई० के मार्च मास में तत्कालीन भारत सरकार ने मज़दूरों के कई नेताओं पर यह अभियोग लगाया कि रूस के साम्यवादियों के संकेत पर वे भारत में क्रान्ति पैदा कर सरकार को उलट देना चाहते हैं। २० मार्च सन् १९२९ ई० को बम्बई, पंजाब और संयुक्त प्रान्त में ताज़ीरात हिन्द की १२१ अ० धारा के अनुसार सैकड़ों घरों की तलाशी ली गई, और मज़दूर आन्दोलन के खास खास नेता गिरफ़्तार कर लिये गये। जो लोग गिरफ़्तार हुए, उनमें कांग्रेस महा समिति के ८ सदस्य भी थे। पहले २१ नेता पकड़े गये थे। बाद को एक गिरफ़्तारी और हुई। अभियुक्तों पर कम्युनिस्ट प्रचार द्वारा सरकार

को उखाड़ देने का अभियोग लगाया गया। इन अभियुक्तों में लन्दन के न्यूस्पार्क (New Spark) के सम्पादक मि० एच० एल० हचिन्सन (Mr. H. L. Hutchison) भी थे। अभियुक्तों की सहायता के लिये एक सेन्ट्रल डिफेन्स कमिटी भी बनाई गई थी। इस मुकद्दमे की प्रारम्भिक तहक़ीक़ात में ही कई महिने बीत गये और वर्ष का अन्त आ पहुँचा। भारत और इङ्गलैंड में इस मुकद्दमे ने बड़ा नाम पाया। मुकद्दमे के समय सरकारी प्रकाशन विभाग के सञ्चालक स्वयं उपस्थित रहते थे और मुकद्दमे सम्बन्धित प्रचार और प्रकाशन के काम को देख भाल रखते थे। यह मुकद्दमा मेरठ षड्यन्त्र के नाम से मशहूर है इस मुकद्दमें में जो लोग गिरफ़्तार किये गये थे, उनके नाम निम्नलिखित हैं:—

श्रीपाद अमृत डांगे:—ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के सहकारी मंत्री; पहले कानपुर षड्यन्त्र के अभियुक्त; गिरणी-कामगार-यूनियन के प्रधान मंत्री (अब अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस के सभापति और बम्बई के मज़दूरों के प्रतिनिधि एम० एल० ए०)।

किशोरीलाल घोष—बङ्गाल ट्रेड-यूनियन संघ के मंत्री।

डी. आर. थगड़ी—ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस के भूतपूर्व सभापति और उसकी कार्यकारिणी के सदस्य; अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के सदस्य।

एस. वी. घाटे—ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के सहकारी मंत्री (१९२०) और बम्बई के म्यूनिसिपल कर्मचारियों की यूनियन के उपसभापति।

के. एन. जोगलेकर—जी. आई. पी. रेल्वेमेन्स यूनियन के संगठन मंत्री; अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के सदस्य।

एस. एच. झाबवाला—अखिल भारतीय रेल्वेमेन्स फेडेरेशन के संगठन मंत्री; गिरणी कामगार-यूनियन के भूतपूर्व सभापति।

शौकत उस्मानी—कानपुर-षडयन्त्र के अभियुक्त; बम्बई के एक उर्दू मज़दूर-पत्र के सम्पादक।

मुज़फ्फर अहमद—ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के उप-सभापति; बङ्गाल की मज़दूर-किसान-पार्टी के मंत्री; कानपुर षड्यन्त्र में अभियुक्त।

फिलिप स्प्रैट—ट्रेड-यूनियन कांग्रेस की कार्यकारिणी के भूतपूर्व सदस्य।

बेन ब्रैडले—ब्रिटेन की संयुक्त इञ्जीनियरिंग-यूनियन की लन्दन ज़िला कमिटी के भूतपूर्व सदस्य; गिरणी-कामगार-यूनियन तथा जी. आई. पी. रेल्वेमेन्स-यूनियन की कार्यकारिणी-समितियों के सदस्य; अखिल भारतीय रेल्वेमेन्स फेडरेशन के उपाध्यक्ष; बम्बई के सूती मिल मज़दूरों की संयुक्त हड़ताल कमिटी के कोषाध्यक्ष।

एस. एस. मिरजकर—गिरणी-कामगार-यूनियन के सहकारी मंत्री।

पूरन चन्द्र जोशी—संयुक्त-प्रान्त की मज़दूर किसान-पार्टी के मंत्री;

ए. ए. आल्वे—गिरणी-कामगार-यूनियन के सभापति।

जी. आर. कसले—गिरणी-कामगार-यूनियन के कर्मचारी।

गोपाल बसक—१९२८ में सोशलिस्ट नौजवान सम्मेलन के सभापति।

डा. गङ्गाधर अधिकारी—बम्बई के समाजवादी पत्र "स्पार्क" (चिनगारी) के लेखक।

एम. ए. मजीद—खिलाफ़त आन्दोलन के समय १९२० में हिन्दुस्थान छोड़ा, रूस गये और वापस आने पर पकड़े गये। पंजाब की कीर्ति-किसान पार्टी के मंत्री और पंजाब नौजवान सभा के जन्मदाता।

आर. एस. निम्बकर—बम्बई ट्रेड्स-कौन्सिल और प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के मंत्री; अखिल भारतीय मज़दूर-किसान पार्टी के मंत्री; अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के सदस्य।

विश्वनाथ मुकर्जी—संयुक्त प्रान्त की मज़दूर-किसान-पार्टीके सभापति।

केदारनाथ सहगल—पञ्जाब कांग्रेस कमिटी के सभापति और पञ्जाब की सूबा कांग्रेस कमिटी के अर्थ-मंत्री; अखिल भारतीय नौज़वान-सभा के सदस्य।

राधा रमण मित्र—बङ्गाल जूट-मज़दूर-यूनियन के मंत्री।

धरनी गोस्वामी—बङ्गाल की किसान-मज़दूर पार्टी के सहकारी मंत्री; प्रमुख ट्रेड-यूनियन कार्यकर्ता।

गौरीशङ्कर—संयुक्त प्रान्त की मज़दूर-किसान-पार्टी की कार्यकारिणी के सदस्य।

शम्सुल हुदा—बङ्गाल ट्रांस्पोर्ट-वर्कर्स-यूनियन के मंत्री।

शिवनाथ बैनर्जी—बङ्गाल जूट-वर्कर्स-यूनियन के सभापति; पहले खड्गपुर की रेल्वे हड़ताल के सिलसिले में एक साल की सज़ा पाये हुए।

गोपेन्द्र चक्रवर्ती—ईस्ट इण्डिया रेल्वे-यूनियन के कर्मचारी; खड्गपुर रेल्वे हड़ताल के सिलसिले में १॥ साल की सज़ा पाये हुए।

सोहनसिंह जोशी—प्रथम अखिल भारतीय मज़दूर-किसान-सम्मेलन के सभापति।

एम. जी. देसाई—बम्बई के समाजवादी पत्र "स्पार्क" के सम्पादक।

अयोध्या प्रसाद—बङ्गाल की किसान-मज़दूर पार्टी के कार्यकर्ता।

लक्ष्मणराव कदम—झांसी म्यूनिसिपल-कर्मचारी-यूनियन के सङ्गठन कर्ता।

एच. एल. हचिन्सन—"न्यू स्पार्क" के सम्पादक।

३२ वें अभियुक्त का नाम लेस्टर हचिन्सन था। यह एक अंग्रेज पत्रकार थे। उन्होंने गिरफ़्तारियों के बाद "न्यू स्पार्क" का संपादन कार्य सम्भाला। तब इन पर भी मुकद्दमा चलाया गया।

पाठक देखेंगे कि गिरफ़्तार व्यक्तियों में "अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस" के उप-सभापति, एक भूतपूर्व सभापति और दो सहकारी मंत्री शामिल थे। इनके साथ बम्बई और बङ्गाल के प्रान्तीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन के मंत्री थे। 'गिरणी-कामगार-यूनियन' के सभी पदाधिकारी और 'जी. आई. पी. रेल्वेमेन्स यूनियन' तथा कुछ दूसरी यूनियनों के अधिक पदाधिकारी पकड़ लिये गये थे। बङ्गाल, बम्बई और संयुक्त प्रांत की मज़दूर किसान पार्टियों के मंत्री तथा अन्य पदाधिकारी गिरफ़्तार किये गये थे। इनमें तीन अभियुक्त अंग्रेज थे। ब्रिटेन के मज़दूर आन्दोलन के ये तीनों प्रतिनिधि हिन्दुस्थानी मज़दूरों के साथ-साथ कटघरे में खड़े हुए और बाद में उनके साथ जेल गये।

यह मुकद्दमा बराबर साढे तीन साल तक चलता रहा। इतनी लम्बी अवधि तक मज़दूर वर्ग के ये नेता जेल में सड़ते रहे। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि जिस समय यहाँ यह मुकद्दमा चल रहा था, उस समय इङ्गलैंड में मज़दूर वर्ग की सरकार थी, जिसने इस मुकद्दमे की पूरी ज़िम्मेदारी स्वीकार की थी।

सन् १९३३ ई०,के जनवरी मास में अचानक सजायें सुनादी गयीं। मुजफ़्फ़र अहमद को आजन्म कालापानी, डांगे, घाटे, जोगलेकर, निम्बकर और स्प्रेट को १२ साल के लिये काला पानी, ब्रैडले, मिरजकर और उस्मानी को १० साल का कालापानी और इस तरह की सजायें सुनायी गई थी, जिनमें सबसे कम ३ वर्ष की कड़ी कैद थी। पर जब अन्य

देशों में आन्दोलन हुआ तो अपील करने पर सजायें कम हो गईं।

बब्बर अकाली आन्दोलन

इन्हीं दिनों में बब्बर अकाली आन्दोलन देवगढ़ आन्दोलन, देवगढ़ षड्यन्त्र, दक्षिणेश्वर का बम काण्ड आदि कई घटनाएं हुईं, जिन सबका उल्लेख स्थानाभाव के कारण यहां करने में हम असमर्थ हैं।

पुलिस अफसर की हत्या

कलकत्ते के पुलिस अफसर भूपेन्द्र चटर्जी ने क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करने, उन्हें सजा दिलवाने आदि में प्रमुख भाग लिया था। ये जेलों में जाकर, धमकाकर, डराकर व फुसलाकर नजरबन्दों को मुखबिर बनाने या बयान दिलाने की चेष्टा किया करते थे। दक्षिणेश्वर के कैदी इससे जल भुन गये और उन्होंने जेल में मशहरी के डंडों से इन पर आक्रमण कर, वहीं इनका काम तमाम कर दिया; इस सम्बन्ध में अनन्त हरि मित्र और प्रबोध चन्द्र चौधरी इन दो व्यक्तियों को फांसी हुई!

विदेशों में भारतीय क्रान्तिकारियों की प्रवृत्तियाँ

भारत में स्वाधीनता प्राप्ति के लिये अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक जो भी आन्दोलन हुए उनका कुछ उल्लेख हम गत अध्यायों में कर चुके हैं।* उधर भारतीय क्रान्तिकारियों का एक दल विदेशों में भी भारतीय क्रान्ति की चेष्टा कर रहा था। उनमें राजा महेन्द्रप्रताप बरकतुल्ला, ओबेदुल्ला सिन्धी, मौलाना मोहम्मद हुसेन, मौलाना जाफर-अली आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

---

* इस विषय के विस्तृत वर्णन के लिये लेखक स्वतंत्र ग्रन्थ लिख रहा है।

भगतसिंह की गिरफ्तारी और फांसी

वीर भगतसिंह भारत के क्रान्तिकारियों के इतिहास में अपना नाम चिरस्मरणीय कर गये हैं। ये एक ऐसे युवक थे, जो वीरता की प्रतिमूर्ति थे और जिनके शरीर के हर परमाणु में देश को स्वतंत्र करने की भावना व्याप्त थी। ये अपने देश के युवकों के हृदय सम्राट् हो गये थे। एक समय था, जब कि सरदार भगतसिंह का नाम भारत के घर घर में व्याप्त हो गया था और नवयुवकों को अनुप्राणित करने में वह सबसे अधिक काम करता था। यह बात कही जा सकती है कि उनका मार्ग असामयिक था, पर उनके महान् आत्म-त्याग और उनकी विशाल देशभक्ति निःसन्देह उच्च श्रेणी की थी।

जैसा कि हम गत अध्याय में कह चुके हैं—काँकोरी-काण्ड के कुछ समय बाद ही, दिल्ली की केन्द्रीय धारा सभा के अधिवेशन के समय, दर्शकों की गेलरी से, सभा पर एक बम फेंका गया, इससे धारा सभा के कुछ सदस्य घायल हुए। इस सम्बन्ध में श्री० भगतसिंह और श्री० बटुकेश्वरदत्त नामक दो युवक पकड़े गये और हत्या करने की कोशिश करने के अभियोग में इन दोनों नवयुवकों को आजीवन कालेपानी की सज़ा हुई। सायमन कमीशन विरोधी प्रदर्शन के समय प्रदर्शन-कारी जनता पर जो लाठी चार्ज किया था और उसमें देश भक्त लाला लाजपतराय को जो गहरी चोट आई थी उसका उल्लेख गतपूर्व अध्याय में किया जा चुका है। इसी कारण से आगे चल कर इस महान् देश भक्त की मृत्यु हुई! इससे देश के नवयुवकों का खून उबल उठा। कुछ क्रान्ति-कारी नवयुवकों ने लाला लाजपत राय पर हमला करनेवाले पुलिस अफ़सर शेन्डर्स को ख़त्म कर दिया था। इस सम्बन्ध में उन लोगों पर अभियोग चला, जो लाहौर षड्यन्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस मामले में सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सज़ा हुई और अन्य कई अभियुक्तों को कड़ी सज़ायें दी गईं।

उन तीनों को फाँसी देने के विरुद्ध देश भर में प्रचण्ड आन्दोलन हुआ। असन्तोष इतना बढ़ गया था कि सरकार ने फांसी के कई दिन पहले यूरोपियन स्त्रियों को घर से बाहर निकलने को मना कर दिया था।

भगतसिंह आदि को फांसी न देने के लिये महात्मा गांधी ने भी बड़ी कोशिश की। लेकिन बड़े लाट लार्ड इर्विन ने उनकी एक न सुनी और अन्त में उन्हें फाँसी पर लटका ही दिया गया! नौजवानों में इससे इतना ज्यादा असन्तोष फैला कि लार्ड इरविन के प्राण लेने की कोशिस की जाने लगी! एक बार रेलवे लाइन पर बम रखकर उनकी स्पेशल ट्रेन को उड़ाने का प्रयत्न किया गया, मगर वे भाग्य से बच गये। सिर्फ़ उनके दो अरदली घायल हुए।

इधर कलकत्ते के मछुआ बाजार इलाके में बम बनाने का एक कारखाना पकड़ा गया। मछुआ बाज़ार बम केस काफ़ी दिनों तक चलता रहा और अन्त में निरञ्जन सेन, सतीश बोस आदि कई व्यक्तियों को कड़ी सजायें दी गईं।

उसी समय दक्षिण भारत में भी क्रान्तिकारियों का एक दल संगठित हुआ था, जिसके नेता थे, श्री राम राजू। इस दल ने पहले तो पुलिस के एक थाने को लूट लिया। पीछे छः बार इस दल के सदस्यों से पुलिस की खुली मुठभेड़ हुई। अन्त में पुलिस से सम्मुख लड़ते हुए श्री राम राजू मारे गये।

लाहौर कांग्रेस

देश की इन क्रांतिकारी घटनाओं और उग्र उत्तेजनाओं के मध्य पं० जवाहरलालजी नेहरू की अध्यक्षता में लाहोर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसकी कार्यवाही में महात्माजी का बहुत बड़ा हाथ था। महात्माजी ने इस अधिवेशन में ट्रेन-बम की दुर्घटना से बच जाने के उपलक्ष्य में वायसरॉय लॉर्ड इरविन का अभिनन्दन करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। इस प्रस्ताव का नवयुवकों की ओर से घोर विरोध हुआ। वे आवाजें कसने लगे, पर अन्त में महात्माजी के अतुलनीय प्रभाव के कारण यह प्रस्ताव पास हो गया।

नवयुवक दल के नेता बाबू सुभाषचन्द्र बोस ने यह प्रस्ताव रखा कि एक समानान्तर सरकार प्रस्थापित की जाय और इसके लिये कार्यकर्ताओं, किसानों और युवकों का संघटन किया जाय। पर यह प्रस्ताव भी पास न हो सका। इसी अधिवेशन में महात्माजी ने कांग्रेस की समिति के सदस्यों के निर्वाचन का प्रस्ताव रखा। इस सूची में १९ नाम थे, जिनमें श्री० श्रीनिवास आयंगर, श्री० सुभाषचन्द्र बोस और कुछ अन्य उग्रवादी दल के नेताओं के नाम नहीं रखे गये। इसका कारण महात्माजी ने यह बतलाया कि कार्य कारिणी में एक मत और एक दिल के आदमी होने चाहिये, जिससे कि कार्य सुचारु रूप से चल सके और कार्य में बाधा न आवे। इस पर भी नवयुवकों और उग्रवादियों ने काफ़ी असन्तोष प्रकट किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कम से कम श्री० सुभाषचन्द्र बोस और श्री० श्रीनिवास आयंगर तो कार्य-

कारिणी में रहने ही चाहिये। पर अन्त में महात्माजी की सूची स्वीकृत करली गई। कहा जाता है कि उपस्थित जनता की यह भावना बनाई गई थी कि अगर यह सूची स्वीकृत न की गई तो महात्माजी यह समझेंगे उन पर कांग्रेस का विश्वास नहीं है और सम्भव है वे कांग्रेस से जुदा हो जावें। इससे कई लोगों ने विरोधी भाव रखते हुए भी उक्त सूची के पक्ष में अपना मत दिया।

कांग्रेस के इस अधिवेशन में एक महत्वपूर्ण घटना हुई, वह यह है कि ३१ दिसम्बर को आधी रात के समय कांग्रेस के अध्यक्ष पं० जवाहर लाल नेहरू ने कड़कड़ाती हुई ठंड में लाखों आदमियों के समक्ष, जयजयकार के बीच, स्वाधीनता का झण्डा फहराया। इस घटना से कांग्रेस के वातावरण में नया जीवन आ गया और राष्ट्र जीवन के सामने आशा की ज्योति चमकने लगी।

१९३० का महान् स्वतंत्रता संग्राम

भारत के राष्ट्रीय इतिहास में ईसवी सन् १९३० का साल एक महान् संस्मरणीय घटना रहेगी। पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने Mahatma Gandhi नामक ग्रन्थ में कहा है:—

"That year 1930 was full of dramatic situations and inspiring happenings; what surprised most was the amaztng power of Gandhiji to inspire and enthuse a whole people. There was something almost hypnotic about it, and we remembered the words used by Gokhale about him: how he had the power of making heroes out of clay. Peaceful civil disobedience as a technique of action for achieving great national ends seemed to have justified itself, and a quiet confidence grew in a the 'country, shared by friend and opponent alike, that we were marching towards victory. A strange excitement filled those who were active in the movement, and some of them even crept inside the jail' "Swaraj is coming" said the ordinary convicts, and they waited impatiently for it, in the selfish hope that it might do

them some good. The warders coming in contact with the gossip of the bajzars also expected that Swaraj is near; the petty jail official grew a little more nervous अर्थात् ईस्वी सन् १६३० का साल नाटकीय स्थितियों और प्रेरणादायक घटनाओं से परिपूर्ण था। इस पर भी जिस बात ने हमें सबसे अधिक आश्चर्यचकित किया, वह गांधीजी की लोगों में प्रेरणा और उत्साह भरने की अद्भुत शक्ति थी। उनमें कुछ ऐसी चीज थी, जिसे मोहिनी कहा जा सकता है। गोखले के वे शब्द हमें याद हैं, जो उन्होंने गांधीजी के विषय में कहे थे कि उनमें मिट्टी से वीर बनाने की शक्ति है। राष्ट्रीय ध्येयों की पूर्ति के लिये एक कार्य प्रणाली के रूप में सविनय अवज्ञा आन्दोलन अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुका था और देश भर में—मित्रों और विरोधियों दोनों के हृदयों में—यह मौन विश्वास उत्पन्न हो गया था कि हम विजय की ओर प्रगति कर रहे हैं। जिन्होंने आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था, उनमें एक प्रकार की विचित्र उत्तेजना भर गई थी। वह उत्तेजना कुछ कुछ जेलों तक पहुँच गई थी। साधारण कैदी तक कहने लगे थे कि 'स्वराज्य आ रहा है। और वे इस स्वार्थ-मय दृष्टि से कि उससे उनकी कुछ भलाई होगी, व्यग्रता के साथ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जेल के वार्डर भी बाजार की चर्चाओं को सुन कर स्वराज्य के निकटतम आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जेल के छोटे कर्मचारी कुछ घबराये हुए से मालूम होते थे।"

श्री सुभाषचन्द्र बोस ने अपने The Indian Struggle नामक ग्रन्थ में इस साल को तूफ़ानी (Stormy) साल की उपमा देते हुए लिखा है:—

"With the dawn of the new year there was hope & confidence in every heart. People anxiously looked to the Working Committee for

instructions as to what they were required to do for the early attainment of independence." अर्थात् "नये साल के आरम्भ होते ही प्रत्येक हृदय में आशा और विश्वास का उदय होने लगा। लोग उत्सुकता के साथ कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति (Working Committee) के उन सुझावों की प्रतीक्षा करने लगे जिनमें शीघ्र ही स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये कार्य करने की पद्धति के आदेश हों।

कहने का भाव यह है कि देश का वातावरण बहुत ही गरम हो रहा था। राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये लोग अधीर हो रहे थे। उन्हें चैन न था। महात्मा गांधी लोक-मनोविज्ञान के बड़े विशेषज्ञ थे। उन्होंने तत्कालीन राष्ट्र की मनोवृत्ति का अध्ययन कर, लिखा था—

"Civil Disobedience alone can save the country from impending lawlessness and secret crime, since there is a party of violence in the country which will not listen to speeches, resolutions, or conferences, but believes only in direct action."

अर्थात् "देश को अराजकता और गुप्त अपराध से केवल मात्र सविनय अवज्ञा आन्दोलन ही बचा सकता है। देश में हिंसा को अपनाने वाला एक दल है, जो भाषणों, प्रस्तावों और परिषदों की एक न सुनेगा। वह केवल सीधी कार्यवाई में विश्वास रखता है।

महात्माजी के उक्त वचनों से यह प्रकट होता है कि देश में हिंसा की मनोवृत्ति का प्राबल्य हो रहा था और देश एक दूसरे मार्ग को ग्रहण करने के लिये उत्सुक हो रहा था। महात्माजी ने राष्ट्र का हिंसामय मार्ग में जाना देश–हित की दृष्टि से अच्छा नहीं समझा। अतएव उन्होंने राष्ट्र के नेतृत्व का भार अपने हाथ में लिया और अहिंसात्मक युद्ध का शंख

बड़े जोर से फूँका। आपने सन् १९३० ई० के आरम्भ में यह आदेश जारी किया कि उक्त मास की २६ तारीख को सारे देश में स्वतंत्रता-दिवस मनाया जाय और महात्माजी द्वारा तैयार किया हुआ और कांग्रेस की कार्यसमिति द्वारा मान्य "स्वाधीनता का घोषणा-पत्र' देश के हर एक प्लेटफॉर्म से पढ़ा जाय और वह लोगों के द्वारा स्वीकृत किया जाय। इस घोषणा-पत्र में स्वाधीनता की घोषणा, राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति राजभक्ति और भारतीय स्वाधीनता के लिये धर्म युद्ध (Sacred fight) करने की प्रतिज्ञा थी। यह प्रतीज्ञा इस प्रकार थीः—

स्वाधीनता का घोषणा-पत्र

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भांति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक सुविधायें प्राप्त हों, जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती है और उसे सताती है तो प्रजा को उस सरकार के बदल देने या मिटा देने का भी पूरा अधिकार है। भारत की अँग्रेज़ी सरकार ने भारतवासियों का शोषण ही नहीं किया है बल्कि उसका आधार ही गरीबों के रक्तशोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेज़ों से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिये।"

"भारत की आर्थिक बरबादी हो चुकी है। जनता की आमदनी को देखते हुए उससे बेहिसाब कर वसूल किया जाता है। हमारी औसत दैनिक आय सात पैसे है और हमसे जो भारी कर लिये जाते हैं उनका २० फी सदी किसानों से लगान के रूप में और ३ फी सदी गरीबों से नमक-कर के रूप में वसूल किया जाता है।"

"हाथ-कताई आदि ग्राम-उद्योग नष्ट कर दिये गये हैं। इससे साल में कम से कम चार महीने किसान लोग बेकार रहते हैं। हाथ की कारीगरी जाते रहने से उनकी बुद्धि भी मन्द हो गई है और जो उद्योग इस प्रकार नष्ट कर दिये गये हैं उनके स्थान पर दूसरे देशों की भांति कोई नये उद्योग जारी भी नहीं किये गये हैं।"

चुँगी और सिक्के की व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि उससे किसानों का भार और भी बढ़ गया है। हमारे देश में बाहर का माल अधिकतर अंग्रेजी कारखानों से आता है। चुँगी के महसूल में अंग्रेज़ी माल के साथ साफ़ तौर पर पक्षपात होता है इसकी आय का उपयोग गरीबों का बोझा हलका करने में नहीं किया जाता, बल्कि एक अत्यन्त अपव्ययी शासन को क़ायम रखने में किया जाता है! विनिमय की दर भी ऐसे स्वेच्छाचारी ढंग से निश्चित की गई है, जिससे देश का करोड़ों रुपया बाहर चला जाता है।

राजनैतिक दृष्टि से भारत का दर्जा जितना अंग्रेज़ों के समय में घटा है उतना पहले कभी नहीं घटा था। किसी भी सुधार-योजना से जनता के हाथ में वास्तविक राजनैतिक सत्ता नहीं आई है। हमारे बड़े से बड़े आदमी को विदेशी सत्ता के सामने सिर झुकाना पड़ता है। अपनी राय आज़ादी से ज़ाहिर करने और आज़ादी से मिलने जुलने के हमारे हक़ छीन लिये गये हैं और हमारे बहुत से देशवासी निर्वासित कर दिये गये हैं। हमारी सारी शासन की प्रतिभा मारी गई है और सर्वसाधारण को गांवों के छोटे छोटे ओहदों और मुंशीगिरी से सन्तोष करना पड़ता है।"

"संस्कृति के लिहाज़ से शिक्षा-प्रणाली ने हमारी जड़ ही काट दी और हमें जो तालीम दी जाती है उससे हम अपनी गुलामी की जंजीरों को ही प्यार करने लगे हैं।"

"आध्यात्मिक दृष्टि से, हमारे हथियार ज़बरदस्ती छीन कर हमें नामर्द

बना दिया गया। विदेशी सेना हमारी छाती पर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी प्रतिरोध की भावना को बड़ी बुरी तरह से कुचल दिया है। उसने हमारे दिलों में यह बात बिठा दी है कि हम न अपना घर सम्भाल सकते हैं और न विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा ही कर सकते हैं। इतना ही नहीं, चोर डाकू और बदमाशों के हमलों से भी हम अपने बाल-बच्चों और जान-माल को नहीं बचा सकते। जिस शासन ने हमारे देश का इस प्रकार सर्वनाश किया है, उसके अधीन रहना हमारी राय में मनुष्य और भगवान दोनों के प्रति अपराध है। किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हमें हिंसा के द्वारा स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। इस लिये हम ब्रिटिश सरकार से यथा सम्भव स्वेच्छा-पूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग न रखने की तैयारी करेंगे और सविनय अवज्ञा एवं करबन्दी तक के साज सजावेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम राज़ी राज़ी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये वग़ैर कर देना बन्द कर सकें तो इस अमानुषी राज्य का नाश निश्चित है। अतः हम शपथपूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय-समय पर जो आज्ञायें देगी उनका हम पालन करते रहेंगे।"

स्वतन्त्रता दिवस के बड़े उत्साह और समारोह के साथ मनाने के समाचार देश के कोने कोने से आने लगे। सारे देश में अपूर्व उत्साह और जीवन की ज्योति चमकने लगी। वातावरण विद्युत्-मय हो गया। स्वराज्य के अति निकट आ जाने के लोग स्वप्न देखने लगे। इतना उत्साहपूर्ण और जीवनप्रद वातावरण होने पर भी गांधीजी ने समझौते के द्वार खुले रखे। इसके लिये उन्होंने यहां तक कहा 'मैं पूर्ण स्वाधीनता के बदले स्वाधीनता के सार (Substance of Independence) से भी सन्तुष्ट हो जाऊँगा।' इस उद्देश पर पहुँचने के लिये उन्होंने यह प्रकट किया कि प्रारम्भ में निम्न लिखित ग्यारह मुद्दों का अमल में लाना आवश्यक है। वे मुद्दे ये हैं:—

(१) सम्पूर्ण मदिरा-निषेध ।

(२) विनिमय की दर घटाकर एक शिलिंग चार पेंस रख दी जाय ।

(३) ज़मीन का लगान आधा कर दिया जाय और उस पर कौंसिलों का नियन्त्रण रख दिया जाय ।

(४) नमक-कर उठा दिया जाय ।

(५) सैनिक व्यय में आरम्भ में ही कम से कम ५० फी सदी कमी कर दी जाय ।

(६) लगान की कमी को देखते हुए बड़ी बड़ी नौकरियों के वेतन कम से कम आधे कर दिये जायँ ।

(७) विदेशी कपड़े के आयात पर निषेध-कर लगा दिया जाय ।

(८) भारतीय समुद्रतट केवल भारतीय जहाज़ों के लिये सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय ।

(९) हत्या या हत्या के प्रयत्न में साधारण ट्रिब्यूनलों द्वारा सज़ा पाये हुओं के सिवा, समस्त राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जांय । सारे राजनैतिक मुक़द्दमे वापस ले लिये जायँ । १२४ अ० धारा और १८१८ का तीसरा रेग्यूलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयों को लौट आने दिया जाय ।

(१०) खुफ़िया पुलिस उठा दी जाय, अथवा उस पर जनता का नियंत्रण कर दिया जाय ।

(११) आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के आज्ञा-पत्र दिये जायँ और उन पर जनता का नियंत्रण रहे ।

सुना है, जब जनवरी १९३० ई० में ही श्री बोमनजी ने प्रधान मंत्री रेम्ज़े मेक्डॉनल्ड साहब से समझौते की बातचीत करने का बीड़ा उठाया था । तब भी गांधीजी ने उन्हें यही शर्तें बताईं थीं ।

महात्मा गांधी ने लिखा—"हमारी बड़ी से बड़ी आवश्यकताओं की यह कोई पूर्ण सूची नहीं है, पर देखें वायसराय साहब इन सीधी-सादी किन्तु अत्यावश्यक भारतीय आवश्यकताओं की पूर्ति तो करके दिखावें। ऐसा होने पर सविनय अवज्ञा की बात भी उनके कान पर नहीं पड़ेगी और जहां अपनी बात कहने और काम करने की पूरी आज़ादी होगी, ऐसी किसी भी परिषद् में कांग्रेस हृदय से भाग लेगी।" इसका यह अर्थ हुआ कि यदि ये मामूली और ज़रूरी माँगें पूरी न की गईं तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया जायगा।

गांधीजी ने यह भी कहा "अन्य देशों के लिये स्वतन्त्रता प्राप्ति के दूसरे उपाय भले ही रहे हों। परन्तु भारतवर्ष के लिये अहिंसात्मक असहयोग के सिवा दूसरा मार्ग नहीं है। परमात्मा करे, आप लोग स्वराज्य के इस मंत्र को सिद्ध और प्रकट करें और स्वाधीनता की जो लड़ाई निकट आ रही है उसके लिये अपना सर्वस्व अर्पण करने का वह आपको बल और साहस प्रदान करे।"

कांग्रेस की कार्य-समिति ने महात्मा जी को सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन चलाने का नेतृत्व दे दिया। इतना ही नहीं, वे इस आन्दोलन के सर्वेसर्वा (Dictator) बना दिये गये। सारा देश उत्सुकता भारी दृष्टि से गांधीजी की ओर देखने लगा। लाहौर कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार केन्द्रीय और विभिन्न प्रान्तों की धारा सभाओं के सदस्यों ने इस्तीफे दे दिये। हां, अली-बन्धुओं ने अपने सहधर्मी मुसलमानों से यह अपील की कि वे इस आन्दोलन में कांग्रेस का साथ न दें। इससे केवल मात्र मुट्ठीभर राष्ट्रीय मुसलमानों ने ही कांग्रेस का साथ दिया। अधिकांश मुसलमान इससे अलग रहे। मुसलमानों का यह रुख होते हुए भी शेष सारे भारतवर्ष ने गांधीजी का साथ देने में बड़ी उत्सुकता प्रकट की। सीमा प्रान्त ने अब्दुल गफ़्फार खां के नेतृत्व में अपनी सारी सेवाएँ गांधीजी को अर्पण की। २७ फरवरी १६३० को

अपने हृदय-परीक्षण के बाद गांधीजी ने अपने आन्दोलन का कार्यक्रम प्रकट किया। महात्माजी का यह कार्यक्रम बाबू सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में उनके नेतृत्व की प्रकाशमय सफलता थी और संकट के समय महात्मा जी अपनी राजनीतिज्ञता में कितने ऊंचे उठ जाते हैं, उसका यह ज्वलन्त-मान उदाहरण था। २७ फरवरी के अपने यंग इण्डिया (Young India) के अंक में महात्माजी ने लिखा था:—

"This time on my arrest, there is to be no mute passive non-violence, but non-violence of the most active type should be set in motion so that not a single believer in non-violence as an article of faith for the purpose of achieving India,s goal, should find himself free or alive at the end of the effort... So far as I am concerned, my intention is to start the movement only through the in mates of the Ashrama (meaning his own Ashrama) and those who have submitted to its discipline and assimilated the spirit of its methods."

अर्थात् "इस वक्त मेरी गिरफ़्तारी पर मूक, निष्क्रिय अहिंसा न होनी चाहिये बल्कि वह अत्यन्त सक्रिय रूप की अहिंसा होनी चाहिये, जिससे कि भारतीय स्वाधीनता के ध्येय को प्राप्त करने के उद्देश के लिये अहिंसा को धर्मतत्व के रूप में मानने वाला कोई भी व्यक्ति अपने प्रयास के अन्तिम क्षण में या तो जीवित रहे या अपना जीवन विसर्जन करदे।"

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा विचार आश्रमवासियों को और उन लोगों को, जिन्होने आश्रम की पद्धति की आत्मा को ग्रहण किया है, लेकर ही यह आन्दोलन चलाने का है। आगे चलकर महात्माजी ने यह

भी प्रकट किया कि अहिंसा की शक्तियों को रोकने का हर तरह से सम्भव प्रयत्न किया जायगा, पर अब की बार जहां एक बार सविनय अवज्ञा शुरू हुई कि वह तब तक बन्द न की जायगी जब तक एक भी सत्याग्रही जीवित रहेगा।"

महात्माजी के इस अन्तिम आश्वासन से लोगों को बड़ा धैर्य मिला। उन्हें यह विश्वास हो गया कि १९२२ में महात्माजी ने बारडोली सत्याग्रह को जिस प्रकार अकस्मात् रूप से बन्द कर दिया था, वैसा अब न होगा।

नमक-सत्याग्रह-आन्दोलन

जब महात्माजी की उक्त निम्नतम शर्तों को भी वाइसराय ने स्वीकार नहीं किया तब उन्होंने फिर से सत्याग्रह करने का निश्चय किया। इस के लिये सब से पहले उन्होंने नमक-क़ानून को तोड़ना अधिक उचित समझा, क्योंकि वे नमक-कर को ग़रीब जनता की दृष्टि से अत्यन्त अहितकर समझते थे। इस समय, अर्थात् २ मार्च सन् १९३० ई० को, उन्होंने वाइसराय को जो पत्र भेजा था, उसका कुछ अंश हम डॉ० बी० पट्टाभिसीतारामय्या द्वारा लिखित "कांग्रेस का इतिहास" नामक ग्रन्थ से उद्धृत करते हैं—"सविनय अवज्ञा शुरू करने में और जिस जोखिम को उठाने के लिए, मैं इतने सालों से सदा हिचकिचाता रहा हूं। उसे उठाने से पहले, मुझे आप तक पहुँच कर कोई मार्ग निकालने का प्रयत्न करने में प्रसन्नता है।"

"अहिंसा पर मेरा व्यक्तिगत विश्वास सर्वथा स्पष्ट है। जान-बूझकर मैं किसी भी प्राणी को दुःख नहीं पहुँचा सकता। मनुष्यों को दुःख पहुंचाने की बात ही नहीं, भले ही वे मेरा या मेरे स्वजनों का कितना ही अहित कर दें। अतः जहां मैं ब्रिटिश राज्य को अभिशाप समझता हूँ, वहां मैं एक भी अंग्रेज़ या भारत में उसके किसी भी उचित स्वार्थ को नुक़सान नहीं पहुंचाना चाहता।"

"परन्तु मेरी बात का अर्थ ग़लत न समझिए। मैं ब्रिटिश शासन को भारतवर्ष के लिए ज़रूर नाशकारी मानता हूं। परन्तु केवल इसी कारण अंग्रेज़-मात्र को संसार की अन्य जातियों से बुरा भी नहीं

समझता। सौभाग्य से बहुत-से अंग्रेज़ मेरे प्रियतम मित्र हैं। असल बात तो यह है कि अंग्रेज़ी राज्य की अधिकांश बुराइयों का ज्ञान मुझे स्पष्टवादी और साहसी अंग्रेज़ों की कलम से ही हुआ है, जिन्होंने सत्य को उसके सच्चे रूप में निडरता-पूर्वक प्रकट किया है।"

"मेरा अंग्रेज़ी राज्य के बारे में इतना बुरा ख़्याल क्यों है?

"इसलिए कि इस राज्य ने करोड़ों मूक मनुष्यों का दिन-दिन अधिकाधिक रक्त-शोषण करके उन्हें कंगाल बना दिया है। उन पर शासन और सैनिक व्यय का असह्नीय भार लाद कर उन्हें बरबाद कर दिया है।"

"राजनैतिक दृष्टि से हमारी स्थिति गुलामों से अच्छी नहीं है। हमारी संस्कृति की जड़ ही खोखली कर दी गई है। हमारे हथियार छीनकर हमारा सारा पौरुष अपहरण कर लिया गया है। हमारा आत्म-बल तो लुप्त हो ही गया था। हम सबको निःशस्त्र करके कायरों की भाँति निःसहाय और बना दिया गया।"

"अनेक देश-बान्धवों की भाँति मुझे भी यह सुख-स्वप्न दीखने लगा था कि प्रस्तावित गोलमेज़-परिषद् शायद समस्या हल कर सके। परन्तु जब आपने स्पष्ट कह दिया कि आप या ब्रिटिश मन्त्री-मण्डल पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना का समर्थन करने का आश्वासन नहीं दे सकते, तब गोलमेज़परिषद् वह चीज़ नहीं दे सकती, जिसके लिए शिक्षित भारत ज्ञानपूर्वक और अशिक्षित जनता दिल-ही-दिल में छटपटा रही है। पार्लियामेण्ट का निर्णय क्या होगा, ऐसी आशंका उठानी ही न चाहिए। ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि पार्लिमेण्ट की मंज़ूरी की आशा में मंत्री-मण्डल ने किसी खास नीति को पहले से ही अपना लिया हो।

"दिल्ली की मुलाक़ात निष्फल सिद्ध होने पर मेरे और पण्डित

मोतीलाल नेहरू के लिए १६२८ की कलकत्ता-कांग्रेस के गंभीर निश्चय पर अमल करने के सिवा दूसरा चारा ही नहीं था।"

"परन्तु यदि आपने अपनी घोषणा में औपनिवेशिक स्वराज्य शब्द का प्रयोग उसके माने हुए अर्थ में किया हो तो पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव से घबराने की ज़रूरत नहीं। कारण, ज़िम्मेवार ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने क्या यह स्वीकार नहीं किया है कि औपनिवेशिक स्वराज्य व्यवहार में पूर्ण स्वराज्य ही है, लेकिन मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की यह नीयत ही कभी नहीं थी कि भारतवर्ष को शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाय।"

"परन्तु ये तो गई गुज़री बातें हुईं। घोषणा के बाद अनेक घटनायें ऐसी हुई हैं जिनसे ब्रिटिश नीति की दिशा स्पष्ट सूचित होती है।"

"दिवाकर की भांति अब साफ़-साफ़ ज़ाहिर हो गया है कि ज़िम्मेवार ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अपनी नीति में ऐसा कोई परिवर्तन करने का विचार तक नहीं रखते जिससे ब्रिटेन के भारतीय व्यापार को धक्का पहुँचने की संभावना हो, अथवा भारत के साथ ब्रिटेन के लेन-देन की निष्पक्ष और पूरी जाँच करनी पड़े। यदि इस शोषण की क्रिया का अन्त न किया गया तो भारत दिन-दिन अधिकाधिक निस्सत्व होता ही जायगा। विनिमय की दर बात-की-बात में १८ पेंस कर दी गई और देश को कई करोड़ की हानि सदा के लिए हो गई। अर्थ-सदस्य इस निश्चय को अटल समझते हैं और जब और-और बुराइयों के साथ इस अटल निर्णय को मेटने के लिए सविनय किन्तु सीधा हमला किया जाता है तो आप चुप नहीं रह सकते। आपने भी भारतवर्ष को पीस डालनेवाली प्रणाली की ही दुहाई देकर उस उपाय को विफल करने के लिए धनी और ज़मींदार-वर्ग की मदद मांग ही ली।"

"राष्ट्र के नाम पर काम करनेवालों को ख़ुद भी समझ लेना चाहिए और दूसरों को समझाते रहना चाहिए कि स्वाधीनता की इस तड़प के पीछे

हेतु क्या है। न समझने से स्वाधीनता इतने विकृत रूप में आ सकती है और यह ख़तरा हमेशा रहेगा कि जिन करोड़ों मूक किसानों और मज़दूरों के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा है और किया जाना चाहिए, उनके लिए वह स्वाधीनता कदाचित् निकम्मी सिद्ध हो। इस कारण मैं कुछ अरसे से जनता की वांछित स्वाधीनता का सच्चा अर्थ समझा रहा हूँ।"

"मुख्य-मुख्य बातें आपके सामने भी रख दूं।"

"सरकारी आय का मुख्य भाग ज़मीन का लगान है। इसका बोझा इतना भारी है कि स्वाधीन भारत को उसमें काफ़ी कमी करनी पड़ेगी। स्थायी बन्दोबस्त अच्छी चीज़ है, परन्तु इससे भी मुट्ठी भर अमीर ज़मींदारों को लाभ है। ग़रीब किसानों को कोई लाभ नहीं। वे तो सदा से बेबसी में रहे हैं। उन्हें जब चाहा बेदख़ल किया जा सकता है।

"भूमिकर को ही घटा देने से काम नहीं चलेगा, सारी कर-व्यवस्था ही फिर से इस प्रकार बदलनी पड़ेगी कि रैयत की भलाई ही उसका मुख्य हेतु रहे। परन्तु मालूम होता है, सरकार ने जो तरीक़ा जारी किया है वह रैयत की जान निकाल लेने को ही किया है। नमक तो उसके जीवन के लिए भी आवश्यक है। परन्तु उस पर भी कर इस तरह लगाया गया है कि यों दीखने में तो वह सब पर बराबर पड़ता है, परन्तु इस हृदय-हीन निष्पक्षता का भार सबसे अधिक ग़रीबों पर ही पड़ता है। याद रहे कि नमक ही ऐसा पदार्थ है जो अलग-अलग भी और मिलकर भी, अमीरों से ग़रीब लोग अधिक मात्रा में खाते हैं। इस कारण नमक-कर का बोझा ग़रीबों पर और भी ज़्यादा पड़ता है। नशे की चीज़ों का महसूल भी ग़रीबों से ही अधिक वसूल होता है। इससे ग़रीबों के स्वास्थ्य और सदाचार दोनों पर कुठाराघात होता है। इस कर के पक्ष में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की झूठी दलील दी जाती है, परन्तु दर असल यह लगाया जाता है आमदनी के लिए।"

इसके आगे चलकर महात्माजी ने उन निराशाओं का ज़िक्र किया जो उन्हें ब्रिटिश सरकार से हुईं, और यह प्रकट किया कि अब सत्याग्रह के सिवा और कोई चारा नहीं है, क्योंकि सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य देने के लिये भी तैयार नहीं है। वाइसरॉय ने महात्मा गांधी के इस चुनौती-पत्र का बहुत ही संक्षिप्त उत्तर दिया और उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि गांधीजी क़ानून तोड़ने पर उतारू हो गये हैं।

नमक-सत्याग्रह की बात सुनकर कई लोग मज़ाक उड़ाने लगे। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध ऐंग्लो-इण्डियन पत्र "स्टेट्स मैन" (Statesman) ने अपने मुख्य अग्र-लेख में तानाकशी करते हुए लिखा था:—"महात्मा तब तक समुद्र के पानी को उबालते रहें जब तक भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य न मिल जाय।" कई कांग्रेसजनों ने भी नमक-सत्याग्रह की सफलता में बड़ा सन्देह प्रकट किया था।

दांडी का प्रयाण

अपने निश्चित कार्यक्रम के अनुसार, ६ अप्रैल सन् १९३० ई० को, महात्मा गांधी ने समुद्र में स्नान कर, नमक-क़ानून को भंग करने के लिये अपने ६६ साथियों के साथ दांडी को कूच किया। डा० बी० पट्टाभिसीतारामय्या के शब्दों में, यह एक ऐतिहासिक भव्य दृश्य था और प्राचीन काल के राम और पाण्डवों के वन-गमन की घटनाओं की स्मृति को ताज़ा करता था। श्री० सुभाषचन्द्र बोस ने भी लिखा है—
"The march to Dandi was an event of historical importance which will rank on the same level with Napoleon's march to Paris on his return from Elba or Mussolini's march to Rome when he wanted to seize political power."

अर्थात्, महात्माजी की दांडी-कूच एक ऐतिहासिक महत्व की

घटना थी, जिसकी तुलना नेपोलियन के एल्बा से वापस लौटने के बाद पेरिस की कूच के साथ, या मुसोलिनी की रोम कूच के साथ, जबकि वह राजनैतिक शक्ति हथियाना चाहता था, की जा सकती है।"

महात्माजी की इस कूच से देश के वातावरण में बड़ी चहल-पहल उत्पन्न हो गई। देश भर के समाचार-पत्रों ने इस कूच की छुटी-बड़ी घटनाओं को बड़े व्यापक रूप से प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त, महात्माजी के २०० मील पैदल जाने से, रास्ते के ग्रामों में अद्भुत ज्योति चमकने लगी। इसके साथ ही साथ सारे देश में नमक-सत्याग्रह शुरू हो गया। छोटे-छोटे गाँवों तक में नमक बना बना कर लोग नमक-क़ानून तोड़ने लगे। कलकत्ते में तत्कालीन मेयर स्वर्गीय मि० जे० एम० सेन (J.M. Sen) ने राज्यविद्रोह का क़ानून (Law of Sedition) तोड़ने का उपक्रम किया और वे खुली सभाओं में राज्य-विद्रोही साहित्य पढ़ने लगे। इसके साथ ही विदेशी वस्त्र और ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार भी ज़ोर-शोर से होने लगा। शराब की दूकानों पर ज़ोर-शोर से धरने देने का काम फिर से शुरू हुआ। दांडी कूच के कुछ दिनों बाद महात्माजी ने महिलाओं की सत्याग्रह में शामिल होने की उत्सुकता को देख कर १० अप्रैल १९३० के Young India में लिखा था:—

"The impatience of some sisters to join the good fight is to me a healthy sign........In this non-violence warfare, their contribution should be much greater than men's. To call women the weaker sex is a libel. If by strength is meant moral power, then woman is immeasurably man's superior."

अर्थात् "अच्छी लड़ाई में शरीक होने के लिये कुछ बहनों ने जो अधी-

रता प्रकट की है वह एक आरोग्यप्रद चिह्न है।……इस अहिंसात्मक युद्ध में उनकी देन मनुष्यों से अधिक महान् होनी चाहिये। महिलाओं को अबला कहना, उनका अपमान है। यदि शक्ति का अर्थ नैतिक शक्ति है तो स्त्री पुरुष की अपेक्षा बहुत ही अधिक उच्च है।"

इसके बाद, इसी लेख में महात्माजी ने महिलाओं से अपील की कि वे शराब व विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना (Picketting) दें। नशीली चीज़ों के रुक जाने से सरकार की आमदनी में २५,००,००,००० पच्चीस करोड़ और विदेशी कपड़ों के रुक जाने से ६०,००,००,००० साठ करोड़ रु० का घाटा होगा। उन्होंने महिलाओं से फुरसत के वक्त कातने और बुनने की भी अपील की, जिससे कि खादी की उत्पत्ति बढ़ सके। इस कार्य में यदि उनका अपमान हो तो वे उसे अपने अभिमान की वस्तु समझें।

महात्माजी की इस अपील का देश में चारों ओर प्रचार किया गया और इसका जादू-सा असर हुआ। इसका असर उन महिलाओं पर भी हुआ जो पुराने विचारों की और रईस खान्दानों की थीं। पूज्य पंडित मालवीयजी की धर्मपत्नी भी, जो पुराने विचारों की आदर्श महिला थी, इस संग्राम में कूद पड़ीं और प्रसन्नता-पूर्वक जेलखाने चली गईं। चारों तरफ से हज़ारों स्त्रियां देश की स्वतंत्रता की भावना को लिये हुए संग्राम-क्षेत्र में उतर पड़ीं। शराब-बन्दी का आन्दोलन करनेवाली मिस मेरी केम्बेल भारतीय महिलाओं की इस स्फूर्तिमय जाग्रति को देख एकदम आश्चर्य-चकित हो गईं। उन्होंने २२ जून १९३१ के लन्दन के 'मैंचेस्टर गार्डियन' नामक पत्र में दिल्ली की महिलाओं द्वारा किये जानेवाले सत्याग्रह-संग्राम का उल्लेख करते हुए लिखा था कि सिर्फ़ दिल्ली से १६०० महिलाएँ अपने देश की आज़ादी के खातिर जेल जाने गईं।

इङ्गलैंड के सुप्रसिद्ध मज़दूर नेता मि० एच० एन० ब्रेल्सफोर्ड और

मि० जॉर्ज स्लोकोहम ने कहा था कि अगर सविनय अवज्ञा-आन्दोलन से और कुछ काम न होता, तो भी उसने एक महान् कार्य किया होता। महिलाओं के इस अपूर्व उत्साह और आत्मत्याग ने पुरुषों में भी अद्भुत उत्साह और स्फूर्ति का संचार किया और वे भी लाखों की संख्या में देश की स्वतंत्रता के महान् संग्राम में कूद पड़े।

जैसे जैसे दिन बीतते गये, वैसे वैसे देश में अहिंसात्मक युद्ध और आत्म-त्याग की भावना ज़ोर पकड़ती गई। गांधीजी ५ अप्रैल १९३० ई० को अपने लक्ष्य स्थान दांडी पहुंचे। वहां उन्होंने नमक बनाकर सरकार के अन्यायपूर्ण नमक-क़ानून को तोड़ा। सारे देश ने गांधीजी का अनुकरण किया। देश के कोने-कोने में हज़ारों स्थानों में नमक-क़ानून तोड़ा गया। इसके लिये लोग हर तरह की सज़ा भुगतने और कष्ट सहन करने को तत्पर हो गये। सरकार ने भी दमन का दौरदौरा शुरू किया और अपना ऑर्डिनेन्स-राज्य स्थापित किया। मार्च १९३० के पहले सप्ताह में, सरदार वल्लभ भाई गिरफ़्तार किये गये और उन्हें तीन मास की सज़ा हुई।

बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता श्री सेनगुप्ता गांधीजी के दांडी पहुँचने से पहले ही गिरफ़्तार कर लिये गये। इसी समय मेरठ षड्यन्त्र-केस भी ज़ोर-शोर के साथ चल रहा था। लगभग ६०,००० आदमी इस महान् संग्राम में आगे बढ़ते हुए गिरफ्तार हुए और वे प्रसन्नतापूर्वक जेलखाने चले गये। पुराने जेलखाने ठसाठस भर गये और नये जेलखाने क़ायम किये गये। उनमें भी इतने सत्याग्रही पहुँचे कि तिल रखने को जगह न रही।

नमक-सत्याग्रह के साथ कई प्रान्तों में अन्य प्रकार के सत्याग्रह भी आरम्भ हुए। मध्य-प्रान्त और बम्बई प्रान्त के कुछ हिस्सों में जंगल के नियमों के ख़िलाफ़ लोगों ने सत्याग्रह किया और उन्होंने टिम्बर काटना शुरू किया। गुजरात, युक्त-प्रान्त और बंगाल के कुछ हिस्सों

में भूमिकर-बन्दी का आन्दोलन ज़ोर-शोर से आरम्भ हुआ। भारत के सीमा-प्रान्त में वहां के सुप्रसिद्ध नेता अब्दुल गफ़्फ़ारखां के नेतृत्व में सरकार-विरोधी आन्दोलन बड़ी प्रबलता के साथ चला। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि पठान जैसी लड़ाकू क़ौम ने भी महात्मा-जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर, अहिंसा का पूरी तौर से पालन किया। सीमान्त-गांधी अब्दुल गफ़्फ़ारखाँ ने खुदाई खिदमतगार नामक स्वयं-सेवकों का एक दल संगठित किया। इस दलने उक्त प्रान्त में बड़ी मुस्तैदी से काम किया और पठानों में बड़ी जाग्रति फैलाई। हज़ारों लाखों पठान सत्याग्रह के विजयी झण्डे के नीचे जमा होने लगे। इससे भारत सरकार बड़ी परेशान होगई।

अब सरकार ने अमानुषिक दमन के द्वारा इस आन्दोलन को कुच-लने का निश्चय किया। राष्ट्रीय सप्ताह के समय प्रदर्शनकारियों पर कई स्थानों में गोलियाँ चलाई गईं। पेशावर, मद्रास और कुछ अन्य स्थानों में भी गोलियाँ चलने के समाचार आये। रत्नागिरी, सिरोहा, पटना, कलकत्ता, शोलापुर आदि सैकड़ों स्थानों से सरकारी दमन की खबरें मिलीं। सत्याग्रहियों पर लाठी-चार्ज किये गये जिससे कई सत्याग्रहियों की खोपड़ियाँ फूट गईं और उनसे खून की धाराएँ बह निकलीं। जेलों में भी सत्याग्रहियों पर लाठियों की वर्षा की गई। कहीं-कहीं पर भयंकर रूप से गोलियाँ चलाई गईं। सीमा-प्रान्त के मुख्य नगर पेशावर में प्रदर्शनकारियों पर २३ अप्रैल को इतने ज़ोर से गोली वार हुआ कि कई सौ आदमी मौत के घाट उतर गये। इस घटना का कारण यह हुआ कि सीमाप्रान्त के कुछ स्थानीय नेताओं की गिरफ़्तारी से वहां शान्तिपूर्ण प्रदर्शन होने लगे। इससे तत्कालीन अधिकारियों ने अपने मस्तिष्क का संतुलन खो दिया। उन्होंने प्रदर्शन-कारियों की भीड़ को बिखेरने के लिये सशस्त्र गाड़ियां (Armoured Cars) भेजीं; इन गाड़ियों में गोरे सैनिक थे। बिना सूचना दिये

हुए, ये गाड़ियां भीड़ में घुस पड़ीं। गोलियाँ चलाई गईं, जिनसे तीन आदमी मरे और कई घायल हुए। इससे भीड़ ने भी अपना संयम खो दिया और उसने गाड़ियों में आग लगा दी। इस पर सैनिकों को भीड़ पर गोली चलाने का हुक्म दिया गया। भीड़ हटी नहीं और उसने अपनी छाती पर गोलियों की मार सही। इससे एक ही दिन में कई सौ आदमी मारे गये और कई सौ घायल हुए।

इस पर कांग्रेस की जांच-समितिने जांच करने के लिये श्री विट्ठल-भाई पटेल की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी को सरकार ने सीमा-प्रान्त जाने की अनुमति न दी। इस पर इसने सीमा-प्रान्त के निकटस्थ पंजाब प्रान्त के कुछ स्थानों में रह कर जांच का काम शुरू किया और अपनी रिपोर्ट तैयार की, जिसको सरकार ने जब्त कर लिया।

इन्हीं दिनों में एक सनसनीखेज़ घटना हुई। सीमा-प्रान्त के सत्याग्रहियों पर गढ़वाली सैनिकों ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया। इस पर उनके शस्त्र छीन लिये गये और फ़ौजी अदालत द्वारा उन्हें लम्बी और कड़ी सज़ाएँ दी गईं।

देश की उठती हुई क्रान्तिकारी भावनाओं को देखकर सरकार ने बङ्गाल ऑर्डिनेन्स एक्ट को फिर से कार्यान्वित कर दिया। १६१० को प्रेस एक्ट को ताज़ा कर अखबारों के गलों को घोट दिया। गांधीजी का Young India नामक साप्ताहिक पत्र साइक्लोस्टाईल पर निकलने लगा। इस समय गांधीजी ने लिखा था—"भारतवर्ष इस समय फ़ौजी शासन के पर्दे में रह रहा है। भारत मानों एक विशाल जेलखाना बन गया है।"

सरकार ने किसी कारणवश गांधीजी को एक मास तक गिरफ़्तार नहीं किया। अतएव गांधीजी ने कराड़ी नामक स्थान पर डेरा लगा कर

ग्रामीणों में प्रचार करना शुरू किया तथा उन्हें नमक-कानून भंग करने के लिये उत्तेजित किया। इसके बाद उन्होंने वाइसरॉय को पत्र लिख कर यह सूचित किया कि वे धरासना के नमक के अड्डों पर धावा कर उन पर अधिकार करने का आयोजन कर रहे हैं। उन्होंने उक्त पत्र में यह भी प्रकट किया कि नमक सार्वजनिक सम्पत्ति है और सरकार को उस पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त लोगों को नमक मुफ्त मिलना चाहिये।

गांधीजी ने ताड़ के पेड़ों को काटना भी शुरू किया, जिनसे शराब बनाई जाती थी। स्वतः उन्होंने पहले पहल ताड़ के पेड़ की जड़ में कुल्हाड़ी मारी। इससे लोग बहुत प्रभावित हुए और उनका अनुकरण करने लगे। कर्नाटक में तो ताड़ के पेड़ों को काटने का सत्याग्रह ही आरम्भ हो गया।

देशव्यापी गति-विधियों के बाद ४ मई १९३० को आधी रात के समय एकाएक गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये और वे यरवदा जेल में भेज दिये गये। जब तक वे जेल में नहीं पहुँच गये, तब तक इने-गिने आदमियों को ही उनकी गिरफ्तारी का समाचार मिला। चलते समय गांधीजी ने यह संदेश दिया—

"मरो पर मारो मत"

'लन्दन टेलिग्राम' के सम्वाददाता ने गिरफ्तारी के दृश्य का बहुत सुन्दर वर्णन किया है—

"जब हम ट्रेन का इन्तज़ार कर रहे थे, वह समय कुछ अजीब सा था, क्योंकि हम समझते थे कि वह दृश्य जिसके देखनेवाले केवल हम ही लोग थे, एक ऐतिहासिक वस्तु हो जायगी। वह एक अवतार की गिरफ्तारी थी—झूठ या सच, करोड़ों हिन्दुस्तानी गांधीजी को एक पुण्यात्मा सन्यासी मानते थे। कौन कह सकता है कि सौ साल बाद एक

महान् आत्मा के रूप में इस व्यक्ति की पूजा ३० करोड़ हिन्दुस्थानी न करेंगे। हम इन विचारों को दूर न कर सके। सुबह इस अवतार को गिरफ़्तार और नज़रबन्द होते देखकर मन न जाने कैसा हो रहा था।"

गिरफ़्तारी का असर राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय भी हुआ। सारे देश में हड़ताल हुई। बम्बई की सारी मिलें बन्द हो गईं। G.I.P और B. B. & C. I. R. के कारखाने के मज़दूरों ने हड़ताल करदी। बम्बई के कपड़े के व्यापारियों ने ६ रोज़ की हड़ताल का ऐलान किया! शोलापुर में जोश अधिक बढ़ गया। ६ पुलिस चौकियां फूँक दी गईं। पुलिस की गोली से बहुत से आदमी मारे गये। कलकत्ते में भी गड़बड़ हुई।

विदेशों में भी महात्माजी की गिरफ़्तारी का असर पड़ा। पनामा में रहनेवाले भारतीयों ने २४ घण्टे की हड़ताल की। सुमात्रा में भी हड़ताल हुई। फ्रांस के तमाम अख़बार गांधीजी और उनके आन्दोलन सम्बन्धी समाचारों से भरे थे। बॉयकॉट का असर जर्मनी में भी हुआ। वहां के मिल-मालिकों के भारतीय एजण्टों ने सामान भारत भेजने से मना कर दिया।

गांधीजी की गिरफ़्तारी के बाद सत्याग्रह चलाने का नेतृत्व अब्बास तैयबजी ने लिया और वे भी १२ मई १९३० को गिरफ़्तार कर लिये गये। अब्बास तैयबजी एक प्रतिष्ठित वृद्ध पुरुष थे, जो बड़ौदा के दीवान रह चुके थे। इनके बाद श्रीमती सरोजनी नायडू ने नेतृत्व सम्भाला।

गांधीजी और दूसरों की गिरफ़्तारी का समाचार सारे देश में विद्युत् वेग से फैला। नमक-क़ानून तोड़ने की धून सी मच गई। गुजरात, बम्बई, महाराष्ट्र और कर्नाटक के धरासना, बाडला, सिरोडा और सनिकट्टा आदि के नमक के अड्डों पर धावे शुरू हो गये। धरासना पर जब धावा हुआ उस समय उस स्थान पर कई विदेशी पत्रों के संवाददाता मौजूद

थे। मिस्टर ब्रेल्सफोर्ड और मिस्टर स्लोकोहम ने धावा करने वाले अहिंसक स्वयंसेवकों की अपूर्व सहनशीलता और अनुशासन की बड़ी प्रशंसा की थी। स्वयंसेवकों ने अपने रक्त से नये इतिहास का निर्माण किया था। धरासना पर जो धावा हुआ उसमें २५०० स्वयंसेवकों ने भाग लिया। २६० पुलिस के लाठी प्रहार से बुरी तरह घायल हुए और इनमें से २ की तत्काल मृत्यु हो गई। वाडला के नमक के चट्टों पर १५००० मनुष्यों ने धावा किया, जिनमें स्वयंसेवक व ग़ैर स्वयंसेवक दोनों थे। यहां १२० जन पुलिस की लाठियों की मार से ज़ख्मी हुए। सनिकट्टा में १०,०००—१२,००० मनुष्यों ने नमक के डिपो (Salt Depot) पर धावा बोला और वे सैंकड़ों मन नमक उठा कर ले गये।

इन धावों में स्वयंसेवकों ने अपने अहिंसा-व्रत का पूरी तरह से पालन किया और पुलिस की ओर से भयङ्कर उत्तेजना होने पर भी उन्होंने उन पर हाथ नहीं उठाया।

"न्यू फ्रीमैन" (New Freeman) के संवाददाता मिस्टर मिलर ने धरासना के रोमाञ्चकारी दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"During eighteen years of reporting......I have never witnessed such harrowing scenes as at Dharasana. Sometimes the scenes were so painful that I had to turn away momentarily. One surprising feature was the discipline of the volunteers. It seemed they were thoroughly imbued with Gandhi's non-violent Creed."

अर्थात् "अट्ठारह वर्ष के मेरे सम्वाददाता के जीवन में मैंने जैसे हृदय-विदारक दृश्य धरासना में देखे, वैसे और कहीं नहीं देखे। कभी-कभी वे

दृश्य इतने दुःखद होते थे कि मुझे उनसे अपना मुँह फिरा लेना पड़ता था। इसमें बड़ी विचित्र बात स्वयंसेवकों का अनुशासन थी। ऐसा मालूम होता था कि इन स्वयंसेवकों ने गांधीजी के अहिंसा-धर्म को पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लिया है।"

मि० हुसैन, श्री के० नटराजन्, श्री० जी० के० देवधर आदि ने स्वयं अपनी आँखों से इन नृशंस अत्याचारों को देखकर यह वक्तव्य दिया:—

"सत्याग्रहियों को तितर-बितर करने के लिये यूरोपियन घुड़सवार अपने हाथों में लाठी लेकर तेज़ी से घोड़ा दौड़ाते हुए निकल जाते थे। वे लोग आसपास के गाँवों तक में धावा करते थे। गांवों की गलियों तक में तेज़ी से घोड़े दौड़ाये जाते थे। इस प्रकार मर्द, औरत, यहां तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी भगाये जाते थे। लोग भाग कर मकानों में छिप जाते थे। अगर वे छिप नहीं पाते थे तो लाठियों से बुरी तरह पीटे जाते थे।"

इतने पर भी लोगों ने बड़ी सहनशीलता से काम लिया। उन्होंने गांधीजी की अहिंसा-नीति को न छोड़ा। कई वक्त स्वयंसेवकों के साथ ही साथ बेचारे निर्दोष दर्शक भी पुलिस की लाठियों के शिकार बनते थे।

भयंकर दमन नीति

सरकार ने इस समय भयंकर दमन नीति से काम लेना शुरू किया। उसने सैकड़ों कांग्रेस कमिटियों को ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया। देश में चारों ओर लाठीचार्ज और गोलीबारी की धूम मच गई। केन्द्रीय धारा सभा में मि० एस० सी० मित्र के प्रश्न के उत्तर में मि० एच० जी० हेग ने बतलाया कि केवल अप्रेल और मई मास में १६ स्थानों में गोलियाँ चलाई गईं, जहां १११ मारे गये और ४२२ घायल हुए। इससे पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि अहिंसात्मक आन्दोलन को

कुचलने के लिये कितनी कठोर दमन-नीति से काम लिया गया था।

इसी समय मि० स्लोकोइम नामक एक अंग्रेज़ सज्जन ने गांधीजी और सरकार के बीच समझौता कराने का प्रयत्न किया। उन्हें गांधीजी से मिलने की इजाज़त मिल गई और वे सरकार का प्रस्ताव लेकर गांधीजी के पास पहुँचे। पर उनका प्रयत्न सफल न हुआ। इसके बाद जून, जुलाई और अगस्त मास में सर तेज़बहादुर सप्रू और मि० मुकुन्दराव जयकर ने समझौते के कई प्रयत्न किये। पंडित मोतीलाल नेहरू और पंडित जवाहरलाल नेहरू गांधीजी से परामर्श करने के लिये यरवदा जेल ले जाये गये, पर इस बातचीत का भी कोई नतीजा नहीं निकला। मिस्टर होरेस एलेक्ज़ेण्डर ने भी समझौते का प्रयत्न किया, पर वे भी असफल हुए।

असहयोग का यह महान् आन्दोलन ४ मार्च १६३० ई० से ४ मार्च १६३१ ई० तक चलता रहा। भारत के राष्ट्रवादियों ने इसमें अपने देश की स्वाधीनता के पवित्र उद्देश को लेकर बड़े बड़े कष्ट सहन किये और वे हिंसात्मक मार्ग से यथासंभव दूर रहे। इसके विपरीत, ब्रिटिश सरकार ने तमाम आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर भारत की आत्मा को कुचलने का निश्चय किया। उसने ऑर्डिनेन्स, लाठीचार्ज, गोलीबारी और अन्य आतंकवादी उपायों से काम लेने में कोई कसर उठा न रखी। हमारी महिलाओं ने बहुत बड़ी तादाद में इस महान् आन्दोलन में भाग लिया। हज़ारों की संख्या में वे जेल गईं और लाठियों के प्रहारों को उन्होंने सहन किया। कई महिलाओं को पुलिस ने रात के वक्त घनघोर जंगलों में ले जा कर छोड़ दिया।

इस एक वर्ष में नमक-कानून तोड़ा गया, नमक के गोदामों पर अहिंसात्मक धावे किये गये, सरकार के ऑर्डिनेन्स तोड़े गये। भारतवर्ष के कुछ भागों में कर-बन्दी के आन्दोलन हुए, प्रेस-कानून भंग कर अख़बार और पर्चे निकाले गये, विदेशी वस्त्रों व वस्तुओं का बहिष्कार

किया गया, सरकार के साथ असहयोग किया गया और धारा-सभाओं का बहिष्कार किया गया। इस वर्ष भर के महान् आन्दोलन ने एक प्रकार की नैतिक विजय प्राप्त की और इससे लोगों में आत्म-विश्वास उत्पन्न हुआ तथा वे सत्याग्रह की अपूर्व शक्ति को समझने लगे।

चटगांव के अस्त्रागार पर सशस्त्र आक्रमण

इधर महात्माजी का अहिंसात्मक आन्दोलन ज़ोर-शोर से चल रहा था और उधर बंगाल में क्रांतिकारियों का ज़ोर बढ़ रहा था। भारत के विदेशी शासन को नष्ट करने के लिये बंगाल के नवयुवक हिंसात्मक और सशस्त्र क्रान्ति के आयोजन कर रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने भारत में जिस अन्धाधुन्धी के साथ अपना दमन-चक्र चला रखा था वह इस क्रान्ति की ज्वाला को सुलगाने में घी का काम कर रहा था। सन् १६३० ई० की १८ अप्रैल को बंगाल के चटगांव नगर में करीब ७० नौजवानों ने मिलकर एक साथ पुलिसलाइन, टेलीफोन एक्सचेंज और एफ० आई० हेड क्वार्टर्स पर आक्रमण कर दिया। ये चार टुकड़ियों में बँटे थे। यह कब्ज़ा करने का काम ६ बज कर ४५ मिनिट से १० बज कर ३० मिनट के अन्दर करीब पौन घण्टे में हुआ। सबसे पहले टेलीफोन और तार, जो चटगांव से ढाका तथा कलकत्ता का सम्बन्ध जोड़ते थे, काट डाले गये और उनमें आग लगादी गई। एक टुकड़ी जब यह काम कर रही थी तो दूसरी टुकड़ी ने रेल की कुछ लाइनें काट दीं। जो दल एफ० आई० हेडक्वार्टर्स में गया था, उसने सर्जन मेजर, एक सन्तरी तथा एक सिपाही को वहीं का वहीं मार डाला। वहां पर जितनी भी राइफलें, पिस्तौलें आदि मिलीं उनको इन्होंने अपने कब्ज़े में कर लिया और एक लेविसगन भी ले ली। पुलिस लाइन वाली जो टुकड़ी थी वह सबसे बड़ी थी। उसने पुलिसलाइन के संतरी को मार डाला, मैगज़ीन लूट ली और वहां आग लगा दी।

इन क्रान्तिकारियों के नेता सूर्यसेन, अम्बिका चक्रवर्ती, अनन्तसिंह और गणेश घोष आदि थे। इस क्रान्तिकारी दल को लूट में काफ़ी हथियार मिल चुके थे। इन लोगों का उद्देश था कि यदि समूचा भारत न हो सके तो उसका एक अंश चटगांव ही, स्वतंत्र कर दिया जाय। इसी उद्देश्य से इस दल के लोगों को सैनिक शिक्षा दी गई और पूरी तैयारी करके इन्होंने आक्रमण किया था। इस दल का अपना गुप्तचर विभाग भी था।

१२ बजे के लगभग शस्त्रागार लूटने का समाचार पाकर ज़िला मजिस्ट्रेट महोदय अपनी मोटर में बैठ कर घटनास्थल पर आये, लेकिन आक्रमणकारियों की ओर से उन पर भी गोलियां चलाई गईं। यद्यपि वे तो साफ़ बच गये लेकिन उनका ड्राइवर घायल हुआ और एक कॉन्स्टेबल वहीं मर गया।

इस बीच में अन्य उच्च अधिकारियों को अपनी तैयारी के लिये काफ़ी समय मिल चुका था। उन्होंने गुरखा सैनिकों और मशीनगनों को साथ लेकर आक्रमणकारियों का मुकाबला किया, लेकिन वे सब लोग उत्तर की ओर पड़ने वाली पहाड़ियों की तरफ खिसक गये। पलटन उनका पीछा करती हुई आगे बढ़ी और एक बड़ा सा घेरा डालकर उनके ऊपर चढ़ने लगी।

क्रान्तिकारियों ने जलालाबाद पहाड़ पर अपना सदर मुकाम बनाया। २२ अप्रैल को फ़ौज के सिपाहियों ने चारों ओर से पहाड़ पर चढ़ने की कोशिश की। सबेरे से शाम के ४ बजे तक लड़ाई होती रही। १६ क्रान्तिकारी इस समर में शहीद हुए। फ़ौज के भी लगभग २० आदमी काम आये। इस लड़ाई में जो युवक मारे गये उनके नाम ये हैं:—

(१) श्री० नरेशराय (आयु २१ वर्ष) (२) श्री० त्रिशेन महाचार्य (आयु २० वर्ष) (३) श्री० पुलिन विकास घोष (आयु १६ वर्ष)

(४) श्री० जतीनदास (आयु १८ वर्ष) (५) श्री० हरगोपालबाल (आयु १८ वर्ष) (६) श्री० मधुसूधन दत्त (आयु १७ वर्ष) (७) श्री० नरेशराय (आयु १७ वर्ष) (८) श्री० मोती (आयु १७ वर्ष) (९) श्री० कम्मू (आयु १७ वर्ष) (१०) श्री० गोके (आयु १७ वर्ष) (११) श्री० प्रवासनाथ दास (आयु १६ वर्ष) (१२) श्री० विकास (आयु १६ वर्ष) (१३) श्री० दस्तीदार (आयु १६ वर्ष) (१४) श्री० त्रिपुरासेन (आयु १५ वर्ष) (१५) श्री० हरिगोपाल बाल (आयु १४ वर्ष)।

कई युवक भाग निकले। फ़ौज ने उनका पीछा किया। दोनों पक्षों का मुकाबिला और युद्ध बराबर होता रहा जिसमें एक-एक स्थान पर अनेक क्रान्तिकारी खेत रहे। खेत रहने वालों की संख्या ४० के लगभग पहुँच गई थी और सब की आयु ऊपर वर्णन किये गये नवयुवकों के समान ही थी।

अन्त में इस दल के प्रमुख कार्य कर्ता गेरेन घोष इत्यादि भी पकड़ लिये गये। श्री० अनन्तसिंह ने स्वयं आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार ३० आदमियों पर ट्रिब्यूनल अदालत के सामने चटगांव शस्त्रागार केस चलाया गया। अदालत ने १२ आदमियों को काले पानी का, दो व्यक्तियों को दो दो वर्ष के कारावास का और ६ व्यक्तियों को छोड़ देने का हुक्म दिया।

इतने पर भी वहां शान्ति नहीं हुई। करीब ६ महीने बाद २५ सितम्बर १९३२ ई० को कई क्रान्तिकारियों पहाड़ तली के यूरोपियन क्लब पर आक्रमण किया। एक यूरोपियन मारा गया और १३ घायल हुए। क्रान्तिकारियों की नेत्री कुमारी प्रीतिलता बहुत घायल हो गई, मगर अपने को उन्होंने पुलिस के हाथों गिरफ़्तार नहीं होने दिया और गोली खाकर वहीं आत्म-हत्या कर ली।

नौ महीने बाद, गाहराला नामक गांव में गुरखा फ़ौजी सिपाहियों

ने सूर्यसेन को गिरफ्तार कर लिया। कुमारी कल्पना दत्त, मणिदत्त और शान्ति चक्रवर्ती फ़ौजी घेरे को तोड़ कर भाग गईं। कुछ दिनों बाद कल्पनादत्त, मणिदत्त और तारकेश्वर दस्तीदार गिरफ़्तार कर लिये गये।

अब दूसरा चटगाँव षड्यन्त्र केस चला। इस बार सूर्यसेन और तारकेश्वर दस्तीदार को फांसी और कल्पनादत्त को आजीवन कैद की सजाएँ मिलीं।

किन्तु इतने पर भी क्रान्तिकारियों का एक दम ख़ातमा नहीं किया जा सका। कहा जाता है कि गुप्तचर विभाग का इंस्पेक्टर असानुल्ला चटगाँव की जनता पर भयानक अत्याचार कर रहा था। पल्टन के मैदान में एक दिन हरिपद भट्टाचार्य नामक १९ वर्ष के एक लड़के ने उसे गोली मारदी। हरिपद पकड़ा गया।

क्रिकेट के मैदान में, अंग्रेजों पर कुछ लड़कों ने बम फेंके। इस पर अंग्रेजों ने गोलियां चला कर दो लड़कों को मार डाला। इस सिलसिले में कृष्ण चक्रवर्ती और हरेन्द्र चौधरी को फांसी हुई।

कहने का तात्पर्य यह है कि देश पर महात्मा गांधी का अलौकिक प्रभाव होने पर भी तथा अहिंसा के दिव्य और महान् सिद्धान्त का प्रचार होने पर भी देश में कहीं कहीं ऐसी घटनाएँ होती रहीं जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

प्रथम गोलमेज कॉन्फरेन्स

इधर भारतवर्ष में अहिंसात्मक आन्दोलन का ज़ोर बढ़ रहा था और बड़ी सनसनीखेज़ घटनाएँ हो रही थीं, उधर सरकार ने लन्दन में प्रथम गोलमेज़ कान्फ्रेंस करने का आयोजन किया। स्वयं श्रीमान् सम्राट् ने इस कान्फ्रेंस का उद्घाटन किया और प्रधान मंत्री ने अध्यक्ष का पद ग्रहण किया। इस कान्फ्रेन्स में इङ्गलैंड के तीनों राजनैतिक दलों के प्रमुख व्यक्ति और भारत की प्रमुख जातियों तथा कांग्रेस के अतिरिक्त अनेक दलों के सदस्य मौजूद थे। यहां यह ध्यान में रखना चाहिये कि ये सज्जन देशवासियों की ओर से निर्वाचित नहीं किये गये थे वरन् सरकार ने उन्हें नामज़द किया था। इस कान्फ्रेन्स के समय इङ्गलैंड में मज़दूर दल का मन्त्रि-मण्डल था जो भारत के प्रति कुछ सहानुभूति रखता था। इससे भारत के सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री० सी० वाई० चिन्तामणि ने अपने "Eighty Years of Indian Politics" नामक ग्रन्थ में यह अनुमान लगाया है कि अगर इस कान्फ्रेन्स में कांग्रेस के प्रतिनिधि भाग लेते तो कुछ सफलता हो सकती थी।

कुछ भी हो यह कान्फ्रेन्स बिना किसी परिणाम के समाप्त हो गई। इसने न कोई निर्णय किया न कोई सिफ़ारिश ही की। कान्फ्रेन्स की उपसमितियों ने कुछ सिफ़ारिशें अवश्य की थीं। सर चिन्तामणि के मतानुसार अगर पार्लियामेण्ट उन्हें स्वीकार कर लेती तो वे भारत को स्वराज्य के पद पर अग्रसर करने में कुछ सहायक होतीं, परन्तु वे स्वीकृत नहीं हुईं।

गांधी–इर्विन पैक्ट

प्रथम गोलमेज़ परिषद् के बाद २५ जनवरी १६३१ ई० को गांधीजी और कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य जेल से छोड़ दिये गये। माननीय मि० श्रीनिवास शास्त्री ने गांधीजी से अनुरोध किया कि वे लॉर्ड इर्विन को मुलाक़ात के लिये लिखें। लॉर्ड इर्विन ने गांधीजी को मुलाक़ात का अवसर दिया। इसके बाद गांधीजी और लार्ड इर्विन की निरन्तर कई मुलाक़ातें हुईं और आख़िर ४ मार्च को दोनों के बीच एक समझौता हुआ, जो गांधी–इर्विन पैक्ट के नाम से मशहूर है। इस समझौते के सम्बन्ध में जो सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई वह निम्नलिखित है:—

सरकारी विज्ञप्ति

सर्वसाधारण की जानकारी के लिये कौंसिल सहित गवर्नर जनरल का निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया जाता है:—

(१) वाइसराय और गांधीजी के बीच जो बातचीत हुई उसके परिणाम स्वरूप, यह व्यवस्था की गई है कि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन बन्द हो, और सम्राट्-सरकार की सहमति से भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें भी अपनी तरफ़ से कुछ कार्रवाई करें।

(२) विधान-सम्बन्धी प्रश्न पर सम्राट्–सरकार की अनुमति से यह तय हुआ कि हिन्दुस्तान के वैध शासन की उसी योजना पर आगे विचार किया जायगा जिस पर गोलमेज़ परिषद् में पहले विचार हो चुका है। वहां जो योजना बनी थी, संघ-शासन उसका एक अनिवार्य अङ्ग है; इसी प्रकार भारतीय उत्तरदायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसंख्यक जातियों की स्थिति तथा भारत की आर्थिक साख और ज़िम्मेदारियों की अदायगी जैसे विषयों के प्रतिबन्ध या संरक्षण भी उसके आवश्यक भाग हैं।

(३) १६ जनवरी १६३१ के अपने वक्तव्य में प्रधान मंत्री ने जो

घोषणा की है उसके अनुसार ऐसी कारंवाई की जायगी जिससे शासन-सुधारों की योजना पर आगे जो विचार हो उसमें कांग्रेस के प्रतिनिधि भी भाग ले सकें।

(४) यह समझौता उन्हीं बातों के सम्बन्ध में है जिनका सविनय अवज्ञा-आन्दोलन से सीधा सम्बन्ध है।

(५) सविनय अवज्ञा अमली रूप में बन्द करदी जावेगी और (उसके बदले में) सरकार अपनी तरफ़ से कुछ कारंवाई करेगी। सविनय अवज्ञा-आन्दोलन को अमली तौर पर बन्द करने का मतलब है उन हलचलों को बन्द कर देना, जो किसी भी तरह उसको बल पहुँचाने वाली हों, खासकर नीचे लिखी हुई बातें:—

(अ) किसी भी क़ानून की धाराओं का संगठित भंग।

(ब) लगान और अन्य करों की बन्दी का आन्दोलन।

(स) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का समर्थन करनेवाली ख़बरों के पर्चे प्रकाशित करना।

(द) मुल्की और फ़ौजी (सरकारी) नौकरों को या गाँव के अधिकारियों को सरकार के ख़िलाफ़ अथवा नौकरी छोड़ने के लिये उभाड़ना।

(६) जहां तक विदेशी कपड़े के बहिष्कार का सम्बन्ध है, दो प्रश्न उठते हैं—एक तो बहिष्कार का रूप और दूसरा बहिष्कार करने के तरीके। इस विषय में सरकार की नीति यह है—भारत की माली हालत को तरक्की देने के लिये आर्थिक और व्यावसायिक उन्नति के हितार्थ जारी किये गये आन्दोलन के अनुरूप भारतीय कला-कौशल को प्रोत्साहन देने में सरकार की सहमति है और इसके लिये किये जाने वाले प्रचार और शान्ति से समझाने-बुझाने व विज्ञापनबाज़ी के उन उपायों में रुकावट डालने का कोई इरादा नहीं है, जो किसी की वैयक्तिक स्वतंत्रता

में बाधा न उपस्थित करें और जो क़ानून व शान्ति की रक्षा के प्रतिकूल न हों। लेकिन विदेशी माल का बहिष्कार (सिवा कपड़े के, जिसमें सब विदेशी कपड़े शामिल हैं,) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के दिनों में—सम्पूर्णतः नहीं तो प्रधानतः—ब्रिटिश माल के विरुद्ध ही लागू किया गया है, और वह भी निश्चित रूप से राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिये दबाव डालने की ग़रज़ से।

(७) विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल का व्यवहार करने और शराब आदि नशीली चीज़ों के व्यवहार को रोकने के लिये काम में लाये जाने वाले उपायों के सम्बन्ध में तय हुआ है कि ऐसे उपाय काम में नहीं लिये जायेंगे जिनसे क़ानून की मर्यादा का भंग होता हो। पिकेटिंग उग्र न होगा और उसमें ज़बरदस्ती, धमकी, रुकावट डालना, विरोधी प्रदर्शन करना, सर्वसाधारण के कार्यों में खलल डालना या ऐसे किसी उपाय को ग्रहण नहीं किया जायगा, जो साधारण क़ानून के अनुसार जुर्म हो। यदि कहीं इन उपायों से काम लिया गया तो वहां की पिकेटिंग तुरन्त रोक दी जायेगी।

(८) गांधीजी ने पुलिस के आचरण की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया है और इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट अभियोग भी पेश किये हैं, जिनकी सार्वजनिक जांच कराई जाने की उन्होंने इच्छा प्रकट की है। लेकिन मौजूदा परिस्थिति में सरकार को ऐसा करने में बड़ी कठिनाई दिखाई पड़ती है और उसको ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा किया गया तो उसका लाज़िमी नतीजा यह होगा कि एक दूसरे पर अभियोग-प्रति-अभियोग लगाये जाने लगेंगे, जिससे पुनः शान्ति स्थापित होने में बाधा पड़ेगी। इन बातों का ख़याल करके गांधीजी इस बात पर आग्रह न करने के लिए राज़ी हो गये हैं।

(९) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के बन्द किये जाने पर सरकार जो कुछ करेगी वह इस प्रकार है:—

(१०) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जो विशेष क़ानून (ऑर्डिनेन्स) जारी किये गये हैं, वे वापस ले लिये जायँगे।

ऑर्डिनेन्स नं० १ (१९३१), जो कि आतंकवादी-आन्दोलन के सम्बन्ध में है, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता है।

(११) १९०८ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट एक्ट के मातहत संस्थाओं को गैर क़ानूनी करार देने के हुक्म वापस ले लिये जायँगे, बशर्ते कि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जारी किये गये हों।

बर्मा की सरकार ने हाल में क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के मातहत जो हुक्म जारी किया है वह इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता है।

(१२) १. जो मुक़दमे चल रहे हैं उन्हें वापस ले लिया जायगा, यदि वे अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में चलाये गये होंगे और ऐसे अपराधों से सम्बन्धित होंगे जिनमें हिंसा सिर्फ़ नाम के लिए होगी या ऐसी हिंसा को प्रोत्साहन देने की बात होगी।

२. यही सिद्धान्त ज़ाब्ता फ़ौजदारी की ज़मानती धाराओं के मातहत चलने वाले मुक़दमों पर लागू होगा।

३. किसी प्रान्तीय सरकार ने वकालत करनेवालों के ख़िलाफ़ सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में 'लीगल प्रेक्टिशनर्स एक्ट' के अनुसार मुक़दमा चलाया होगा या इसके लिए हाईकोर्ट से दरख्वास्त की होगी तो वह सम्बन्धित अदालत में मुक़दमा लौटाने की इजाज़त देने के लिए दरख्वास्त देगी, बशर्ते कि सम्बन्धित व्यक्ति का कथित आचरण हिंसात्मक या हिंसा को उत्तेजना देनेवाला न हो।

४. सैनिकों या पुलिसवालों पर चलने वाले हुक्म-उदूली के मुक़दमे, अगर कोई हों तो, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आयेंगे।

(१३) १. वे कैदी छोड़े जायँगे, जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में ऐसे अपराधों के लिए कैद भोग रहे होंगे जिनमें नाम-मात्र की हिंसा को छोड़कर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो।

२. पूर्वोक्त १. क्षेत्र में आनेवाले किसी कैदी को यदि साथ में जेल का कोई ऐसा अपराध करने के लिए भी सज़ा हुई होगी कि जिसमें नाम-मात्र की हिंसा को छोड़कर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो, तो वह सज़ा भी रद्द कर दी जायगी, या यदि इस अपराध सम्बन्धी कोई मुक़द्दमा चल रहा होगा तो वह वापस ले लिया जायगा।

३. सेना या पुलिस के जिन आदमियों को हुक्मउदूली के अपराध में सज़ा हुई है—जैसा कि बहुत कम हुआ है—वे इस माफ़ी के क्षेत्र में नहीं आयेंगे।

(१४) जुर्माने, जो वसूल नहीं हुए हैं, माफ़ कर दिये जायँगे। इसी प्रकार ज़ाब्ता फ़ौजदारी ज़मानती धाराओं के मातहत निकले हुए ज़मानत-ज़ब्ती के हुक्म के बावजूद जो ज़मानत वसूल नहीं हुई होंगी उन्हें भी माफ़ कर दिया जायगा।

जुर्माने या ज़मानतों की जो रक़में वसूल हो चुकी हैं, चाहे वे किसी भी क़ानून के मुताबिक हों, उन्हें वापस नहीं किया जायगा।

(१५) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में किसी ख़ास स्थान के निवासियों के ख़र्चे पर जो अतिरिक्त-पुलिस तैनात की गई होगी उसे प्रान्तिक सरकारों के निश्चय पर उठा लिया जायगा। इसके लिए वसूल की गई रक़म, असली ख़र्चे से ज़्यादा हो तो भी, लौटाई नहीं जायगी, लेकिन जो रक़म वसूल नहीं हुई है वह माफ़ कर दी जायगी।

(१६) (अ) वह चल-सम्पत्ति, जो ग़ैर-क़ानूनी नहीं है और जो

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में ऑर्डिनेन्सों तथा फ़ौजदारी-क़ानून की धाराओं के मातहत अधिकृत की गई है, यदि अभीतक सरकार के क़ब्ज़े में होंगी तो लौटा दी जायगी।

(ब) लगान या अन्य करों की वसूली के सिलसिले में जो चल-सम्पत्ति ज़ब्त की गई है वह लौटा दी जायगी, जब तक कि ज़िले के कलक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि बकैयादार अपने ज़िम्मे निकलती हुई रक़म को उचित अवधि के भीतर-भीतर चुका देने से जान-बूझ कर हीला-हवाला करेगा। यह निर्णय करने में कि उचित अवधि क्या है, उन मामलों का ख़ास ख़याल रक्खा जायगा जिनमें देनदार लोग रकम अदा करने के लिए राज़ी होंगे पर सचमुच उन्हें उसके लिये समय की आवश्यकता होगी, और ज़रूरत हो तो उनका लगान भी लगान-व्यवस्था के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार मुल्तवी कर दिया जायगा।

(स) नुकसान की भरपाई नहीं की जायगी।

(द) जो चल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी या सरकार-द्वारा अंतिम रूप से जिसका भुगतान कर दिया गया होगा, उसके लिए हर्जाना नहीं दिया जायगा और न उसकी बिक्री से प्राप्त रकम ही लौटाई जायगी, सिवा उस सूरत में कि जब बिक्री से प्राप्त होने वाली रकम उस रकम से ज्यादा हो जिसकी वसूली के लिये सम्पत्ति बेची गई हो।

(इ) सम्पत्ति की ज़ब्ती या उस पर सरकारी क़ब्ज़ा क़ानून के अनुसार नहीं हुआ है, इस बिना पर कानूनी कार्यवाही करने की हरेक व्यक्ति को छूट रहेगी।

(१०) (अ) जिस अचल-सम्पत्ति पर १९३० के नवें ऑर्डिनेन्स के मातहत क़ब्ज़ा किया गया है उसे ऑर्डिनेन्स की धाराओं के अनुसार लौटा दिया जायगा।

(ब) जो ज़मीन तथा अन्य अचल-सम्पत्ति लगान या अन्य करों की वसूली के सिलसिले में ज़ब्त या अधिकृत की गई है और सरकार के कब्ज़े में है, वह लौटा दी जायगी, बशर्ते कि ज़िले के कलक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि देनदार अपने जिम्मे निकली रकम को उचित अवधि के भीतर-भीतर चुका देने से जान बूझकर हीला-हवाला करेगा। यह निर्णय करने में कि उचित अवधि क्या है, उन मामलों का ख़याल रक्खा जायगा जिनमें देनदार लोग रकम अदा करने के लिये रज़ामन्द होंगे पर सचमुच उन्हें उसके लिये समय की आवश्यकता होगी, और जरूरत हो तो उनका लगान भी लगान-व्यवस्था के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार मुल्तवी कर दिया जायगा।

(स) जहां अचल संपत्ति बेच दी गई होगी, जहाँ तक सरकार से सम्बन्ध है, वह सौदा अन्तिम समझा जायगा।

नोट:—गांधीजी ने सरकार को बतलाया है, जैसी कि उन्हें ख़बर मिली है और जैसा कि उनका विश्वास है, इस तरह होने वाली बिक्री में कुछ अवश्य ऐसी हैं जो गैर क़ानूनी तरीके से और अन्यायपूर्ण हुई हैं। लेकिन सरकार के पास इस सम्बन्धी जो जानकारी है उसे देखते हुए वह इस धारणा को मंज़ूर नहीं कर सकती।

(द) सम्पत्ति की ज़ब्ती या उस पर सरकारी कब्ज़ा क़ानून के अनुसार नहीं हुआ है, इस बिना पर क़ानूनी कार्यवाही करने की हरेक व्यक्ति को छूट रहेगी।

(१८) सरकार का विश्वास है कि ऐसे मामले बहुत कम हुए हैं, जिनमें वसूली क़ानून की धाराओं के अनुसार नहीं की गई है। ऐसे मामलों के लिये, अगर कोई हों, प्रान्तिक सरकारें ज़िला अफ़सरों के नाम हिदायतें जारी करेंगी कि स्पष्ट रूप से इस तरह की जो शिकायत सामने आये उसकी वे तुरन्त जांच करें और अगर यह साबित हो जाय

कि ग़ैर-क़ानूनीपन हुआ है तो अविलम्ब उसको रफ़ा-दफ़ा करें।

(१९) जिन लोगों ने सरकारी नौकरियों से इस्तीफ़ा दिया है उनके रिक्त-स्थानों की जहाँ स्थायी-रूप से पूर्ति हो चुकी होगी वहां सरकार पुराने (इस्तीफ़ा देने वाले) व्यक्ति को पुनः नियुक्त नहीं कर सकेगी। इस्तीफ़ा देने वाले अन्य लोगों के मामलों पर उनके गुण-दोष की दृष्टि से प्रान्तिय सरकारें विचार करेंगी, जो फिर से नियुक्ति की दरख्वास्त करने वाले सरकारी कर्मचारियों व ग्रामीण अधिकारियों की पुनःनियुक्ति के बारे में उदार-नीति से काम लेंगी।

(२०) नमक-व्यवस्था सम्बन्धी मौजूदा क़ानून के भंग को गवारा करने के लिए सरकार तैयार नहीं है, न देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए नमक-क़ानून में ही कोई ख़ास तबदीली की जा सकती है।

परन्तु जो लोग ज्यादा गरीब हैं उनके सहायतार्थ, इस सम्बन्ध में लागू होने वाली धाराओं को वह (सरकार) इस तरह विस्तृत कर देने को तैयार है, जैसे कि अब भी कई जगह हो रहा है, जिससे जिन स्थानों में नमक बनाया या इकट्ठा किया जा सकता है उनके आसपास के इलाकों के गांवों के बाशिन्दे वहां से नमक ले सकेंगे; लेकिन यह सिर्फ उनके अपने उपयोग के ही लिए होगा, बेचने या बाहर के लोगों के साथ व्यापार करने के लिए नहीं।

(२१) यदि कॉंग्रेस इस समझौते की बातों पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो, उस हालत में, सरकार वह सब कारंवाई करेगी जो, उसके परिणाम-स्वरूप, सर्व-साधारण तथा व्यक्तियों के संरक्षण एवं क़ानून और व्यवस्था के उपयुक्त परिपालन के लिये आवश्यक होगी।"

ईसवी सन् १९३१ के ४ मार्च की रात को २॥ बजे उक्त समझौता लेकर गांधीजी वाइसरॉय भवन से लौटे और उन्होंने सारी घटनाएँ

कार्य-समिति को सुनाईं। यह समझौता १५ दिन के गम्भीर वादानुवाद के बाद तैयार हुआ था। श्रीयुत डॉ० पट्टाभिसीतारामय्या के शब्दों में इस समझौते में गांधीजी और लॉर्ड इर्विन के श्रेष्ठतम गुणों का श्रेष्ठतम प्रदर्शन हुआ था।

५ मार्च की शाम को गांधीजी ने अमेरिकन, अंग्रेज़ और भारतीय पत्रकारों के सामने एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने लॉर्ड इर्विन के सौजन्य की, उनके अपार धैर्य की और उनके अपूर्व शिष्टाचार की बड़ी प्रशंसा की और उन सारी परिस्थितियों का वर्णन किया, जिनके कारण यह समझौता सम्पन्न हुआ।

समझौते की प्रतिक्रिया

गांधी–इर्विन पैक्ट से, जहाँ तक हमारी जानकारी है, साधारण जनता में संतोष उत्पन्न हुआ। नरमदल के नेताओं में इससे प्रसन्नता हुई। संसार के सबसे बड़े साम्राज्य के प्रतिनिधि के साथ एक भारतीय नेता का बराबरी के नाते से समझौता करना आधुनिक भारतीय इतिहास में एक नई बात थी। कुछ क्षेत्रों में भारतीय राष्ट्रनीति की यह विजय थी। बम्बई की कांग्रेस सरकार के भूतपूर्व गृहमंत्री और गुजराती के सुप्रसिद्ध लेखक श्री के० एम० मुन्शी ने "I follow the Mahatma" नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

"It was the greatest event in Indian history for centuries. An Indian representing the whole of India had entered into an agreement with the representative of the greatest empire in modern times." अर्थात् सदियों में भारतीय इतिहास में यह सबसे बड़ी घटना हुई, जब कि सारे भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व करने वाला एक भारतीय आधुनिक समय के सबसे बड़े साम्राज्य के प्रतिनिधि के साथ समझौता करने में प्रवृत्त हुआ।

गरमदल के राष्ट्रनेताओं ने और ख़ासकर स्वतन्त्रता के लिये अधीर नवयुवकों ने इसे पसन्द नहीं किया। नवयुवक-समाज के हृदय-सम्राट् श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस को इस समझौते से बड़ी अरुचि हुई। पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने "Mahatma Gandhi" नामक अंग्रेज़ी ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"On the night of the fourth of March we waited till midnight for Gandhi's return from the Viceroy's House. He came back about 2 a m and we were wakened and told that an agreement had been reached.

We saw the draft. I knew most of the clauses, for they had been often discussed, but at the very top, clause 2 with its reference to safeguards, etc. gave me a tremendous shock. I was wholly unprepared for it. I said nothing then, and we all retired.'' अर्थात् "४ मार्च को आधीरात तक हम वाइसरॉय-भवन से गाँधीजी के लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। वे लगभग रात के २ बजे आये और हमें जगा कर बतलाया गया कि समझौता हो गया है।"

"हमने समझौते के मसौदे को देखा। मैं उसकी बहुत सी धाराओं को जानता था, क्योंकि उनके विषय में अक्सर वादानुवाद हुआ करता था। किन्तु ठीक शीर्ष स्थान ही में धारा २ को देखकर मुझे जबरदस्त धक्का लगा। उसमें संरक्षण आदि का उल्लेख था। मैं उसके लिये बिलकुल तैयार न था। फिर भी उस वक्त मैंने कुछ भी न कहा और हम सब सोने के लिये चले गये। आगे चलकर फिर नेहरूजी इसी ग्रन्थ में लिखते हैं:—

'The question of our objective of independence also remained? I saw in that clause 2 of the settlement that even this seemed to be jeopardized. Was it for this that our people have behaved so gallantly for a year? Were all our brave words and deeds to end in this? The independence resoultion of the congress, the pledge of January 26, so often repeated? So I lay and pondered on that march night, and in my heart there was a great emptiness as of something precious gone, almost beyond call."

अर्थात् "हमारे लक्ष्य–स्वतंत्रता–का प्रश्न भी था। मुझे समझौते की धारा २ से मालूम पड़ा कि इस से यह लक्ष्य भी ख़तरे में पड़ गया। क्या इसी के लिये हमारे लोगों ने सारे वर्ष भर तक इतनी वीरतापूर्ण लड़ाई लड़ी थी? क्या हमारे सारे वीरता भरे शब्दों और कार्यों का यहीं अन्त होने वाला था? क्या इसी के लिये स्वतंत्रता दिवस प्रस्ताव पास किया गया था और क्या इसी के लिये २६ जनवरी की प्रतिज्ञा इतनी बार दुहराई गई थी? मार्च मास की उस रात को लेटा लेटा मैं इन्हीं बातों पर विचार करता रहा और मुझे अपने हृदयमें बड़ी शून्यता का अनुभव होने लगा, मानों कोई बहुमूल्य वस्तु चली गई है और जिसके वापस मिलने की आशा नहीं है।

सरदार वल्लभभाई पटेल इस समझौते के ज़मीनों सम्बन्धी अंश से सहमत न थे।

कहने का भाव यह है कि गांधी-इर्विन समझौते को गांधीजी के कुछ अनन्य भक्तों ने भी नापसन्द किया था। पर जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, सर्वसाधारण जनता ने इसे महात्माजी की विजय समझी

थी। इस बात को "India Today" के लेखक सुप्रसिद्ध कम्यूनिस्ट ग्रन्थकार श्री आर० रजनी पामदत्त तक भी स्वीकार करते हैं। आप लिखते हैं:-

The fact that British Government had been compelled to sign a public treaty with the leader of the national Congress, which it had previonsly declared an unlawful association and sought to smash, was undoubtedly a tremendous demonstration of the strength of national movement. This fact produced at first a widespread sense of elation and victory, except among the more politically conscious sections, who understood what had happened and saw that all the struggle and sacrifice had been thrown away at the negotiating table.

अर्थात् "ब्रिटिश सरकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के, जिसे उसने पहले एक गैर क़ानूनी संगठन करार दिया और नष्ट करने का प्रयत्न किया नेता के साथ एक सार्वजनिक समझौता (संधि) करने को बाध्य हुई, यह बात निःसंदेह राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति का अत्यन्त शक्तिशाली (महान्) प्रदर्शन था। इस बात ने सर्व प्रथम हर्ष और विजय की व्यापक भावना को जन्म दिया, किन्तु अधिक सचेतन राजनैतिक दृष्टि वाले दल इस प्रकार की भावना से दूर रहे क्योंकि जो कुछ हुआ था उसे वे समझ गये थे और उन्होंने देखा कि सारा संघर्ष और बलिदान समझौते की बहस में ही विलीन हो गया था।"

कराँची की कांग्रेस

गांधी-इर्विन समझौते के कुछ ही समय बाद कराँची में कांग्रेस का अधिवेशन किया गया। कांग्रेस के खुले अधिवेशन में उक्त समझौते का प्रस्ताव रखने का काम पं० जवाहरलाल नेहरू को सौंपा गया। कहना न होगा कि नेहरूजी के सामने बड़ा धर्म-संकट उपस्थित हुआ। उनके मनोजगत में द्वन्द्व होने लगा। उन्होंने अपने इसी मनोद्वन्द्व (Mental Conflict) की अवस्था में उक्त प्रस्ताव रखा। गांधीजी के अलौकिक प्रभाव और महान् व्यक्तित्व के कारण उक्त प्रस्ताव बड़े बहुमत से पास हो गया। समझौते के कट्टर विरोधी सुभाषचन्द्र बोस तक ने इसका विरोध करना उचित न समझा। इसका कारण उन्होंने यह बतलाया कि ऐसा करने से राष्ट्रीय एकता के भंग होने का डर था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस के प्रतिनिधियों का बहुत बड़ा हिस्सा समझौते के पक्ष में था। इसमें उग्रवादियों (Leftists) की हार और गांधीजी की भारी विजय हुई। पं० नेहरू अपने "Mahatma Gandhi" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"The Karachi congress was an even greater personal triumph for Gandhiji than any previous congress had been. The President, Sardar Vallabh-Bhai Patel, was one of the most popular and forceful men in India with the prestige of victorious leadership in Gujrat, but it was the Mahatma who dominated the scene."

अर्थात्, "कराँची की कांग्रेस गांधीजी के लिये पहले की सब कांग्रेसों की अपेक्षा सबसे बड़ी वैयक्तिक विजय थी। कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल भारत के सबसे अधिक लोकप्रिय और शक्तिशाली व्यक्तियों में से थे, जिन्हें गुजरात के विजयी नेतृत्व का गौरव प्राप्त था। पर इसमें सारे दृश्य का प्रभुत्व महात्माजी कर रहे थे।"

कांग्रेस के इस अधिवेशन में गांधी-इर्विन समझौता और द्वितीय गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स के प्रस्ताव मुख्य थे, जो बहुत बड़े बहुमत से पास हो गये। गांधीजी द्वितीय गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स के लिये भारतवर्ष की ओर से एकमात्र प्रतिनिधि चुने गये।

इसके अतिरिक्त इस अधिवेशन में जो दूसरा महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ, वह जनता के मौलिक अधिकारों के विषय में था। उग्रवादी दल इस प्रस्ताव को पास करवाने में अधिक उत्सुकता प्रकट कर रहा था। उसे पिछले दिनों की कुछ घटनाओं से यह आशङ्का होने लगी थी कि कांग्रेस अपने 'पूर्ण स्वाधीनता' के आदर्श से धीरे-धीरे खिसक कर 'औपनिवेशिक स्वराज्य' की ओर गति कर रही है। स्वयं पं० जवाहरलाल नेहरू इन मौलिक अधिकारों के प्रस्ताव में बड़ी दिलचस्पी प्रकट कर रहे थे। उनके विचारानुसार यह एक ऐसा विषय था जिसपर राष्ट्र को अपने विचार स्पष्टतया प्रकट कर देने चाहिए थे और सर्वसाधारण में इस विषय का ज्ञान फैलाने के साधन भी उपस्थित किये जाने चाहिए थे।

एक और प्रस्ताव जिस पर कांग्रेस ने विचार किया, वह बन्दियों की रिहाई के बारे में था। उस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि बन्दियों की रिहाई के सम्बन्ध में सरकार केवल कंजूसों जैसी नीति ही नहीं बरत रही है, वरन् उन वादों से भी मुकर रही है और उन शर्तों को भी तोड़ रही है, जो उसने समझौते के सिलसिले में की थीं। इसलिये कांग्रेस ने अपना यह दृढ़ मत प्रकट किया कि "यदि सरकार और कांग्रेस के समझौते का उद्देश्य ग्रेट-ब्रिटेन और भारत में सद्भावना

बढ़ाना है और यदि यह समझौता ग्रेट ब्रिटेन की शासनाधिकार छोड़ने की वास्तविक इच्छा को प्रकट करता है तो सरकार को चाहिये कि वह सब राजनैतिक बन्दियों, नज़रबन्दों तथा विचाराधीन बन्दियों को, जो समझौते की शर्तों में नहीं भी आते हैं, रिहा करदे, और उन सब राजनैतिक अयोग्यताओं को हटा ले जो सरकार ने भारतीयों पर, चाहे वे भारत में हों या विदेशों में, उनके राजनैतिक विचारों या कार्यों के कारण लगा रखी हैं।"

कांग्रेस ने सरकार को यह भी याद दिलाया कि "यदि वह इस प्रस्ताव के अनुकूल कार्य करेगी तो जनता का वह रोष जो हाल की फांसियों के कारण उत्पन्न हो गया है, कुछ कम हो जायगा।"

भगतसिंह को फाँसी

सरदार भगतसिंह की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों और उन पर लगाये गये आरोपों का गत पृष्ठों मे उल्लेख किया जा चुका है। महात्मा गांधी ने सरदार भगतसिंह और उनके साथियों की फ़ाँसी को रुकवाने का भरसक प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके। करांची कांग्रेस के अधिवेशन के प्रारम्भ होने के पहले ही, सरदार भगतसिंह और उनके दो साथी, राजगुरु और सुखदेव, फाँसी पर लटका दिये गये थे। इससे काँग्रेस में शोक की घनघोर घटा छाई हुई थी, और तत्कालीन भारत सरकार के इस कृत्य के ख़िलाफ़ सारे देश में क्रोधाग्नि प्रबल रूप से धाँय-धाँय जल रही थी। डा० बी० पट्टाभिसीतारामय्या का यह कहना बिलकुल सत्य है कि "उस समय भगतसिंह का नाम भारत भर में उतना ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय था जितना गांधीजी का।" कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में सरदार भगतसिंह और उनके साथियों की वीरता और आत्म त्याग की बड़ी प्रशंसा की।

विद्यार्थीजी का बलिदान

कांग्रेस के इसी अधिवेशन में कानपुर के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र

"प्रताप" के सम्पादक श्री० गणेश शंकरजी विद्यार्थी की कानपुर में मुसलमानों द्वारा हत्या होने का सम्वाद मिला। इससे भी कांग्रेस में महाशोक का वातावरण छा गया। विद्यार्थीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्षपाती थे, और वे हिन्दुओं की क्रोधाग्नि से मुसलमानों की रक्षा करने गये थे, पर मुसलमानों के झुण्ड ने बड़ी निर्दयता के साथ उनकी हत्या कर डाली। उनकी लाश भी बड़ी छिन्न-भिन्न अवस्था में मिली।

गणेशजी के बलिदान से सारे देश में शोक छा गया। राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी। उन्होंने "प्रताप" के द्वारा देश की राष्ट्रीय भावना में प्राण फूँकने का बृहत् कार्य किया था। देशी राज्यों की प्रजा के लिये भी उन्होंने अपनी आवाज़ बुलन्द की थी। उनका सौजन्य और उनका महान् त्याग राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

द्वितीय गोलमेज़ कान्फ्रेन्स और गांधीजी

जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं महात्मागांधी को कांग्रेस ने द्वितीय गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स के लिये चुना था। महात्माजी ११ सितम्बर को मार्सेलीज़ टापू में पहुँचे और वहां से उनके कुछ अंग्रेज़ मित्र, लन्दन तक उनके साथ हो लिये। वे १२ सितम्बर से लगाकर १ दिसम्बर १९३१ तक लन्दन में रहे और उन्होंने गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स में १२ भाषण दिये। इसके अतिरिक्त उन्होंने संघ-निर्माण-समिति (Federal Structure Committee) के सामने ८ और अल्पदल-समिति (Minorities Committee) के सामने दो भाषण दिये। १५ सितम्बर को संघ-निर्माण-समिति के सामने भाषण देते हुए उन्होंने कहा था:—

"...Time was when I prided myself on being and being called a British subject. I have ceased for many years to call myself a British subject; I would far rather be called a rebel than a suject. But I have now aspired—and I still aspire—to be a citizen, not in the Empire but in a Commonwealth, in a partnership, If God wills it, an indissoluble partnership, but not a partnership superimposed upon one nation by another."

अर्थात्, "एक वक्त था जब मैं अपने आपको ब्रिटिश प्रजाजन

कहलाने में अभिमान का अनुभव करता था। कई वर्षों से मैंने अपने आपको ब्रिटिश प्रजाजन कहना बन्द कर दिया है। अब मैं ब्रिटिश प्रजाजन के बजाय विद्रोही कहलाना अधिक पसन्द करूंगा। अब मैं साम्राज्य के बजाय एक समानतंत्र (कॉमन वेल्थ) या ऐसी साझेदारी का नागरिक होने की आकांक्षा रखता हूँ जो कि एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र पर लादी न गई हो; और सम्भव हो तथा ईश्वरीय इच्छा हो तो वह साझेदारी अभंग हो।"

द्वितीय गोलमेज़ परिषद् के प्रतिनिधियों और अन्य बातों को देख कर महात्माजी का रहा सहा आशावाद भी ख़तम होने लगा। उन्हें इस बात पर भी दुःख हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस को अखिल भारतवर्ष की प्रतिनिधि संस्था न मानकर अन्य दलगत संस्थाओं की तरह, एक संस्था मानली थी।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार ने अपनी राजनैतिक चतुरता से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जिससे साम्प्रदायिक समस्या सुलझने के बजाय और उलझ गई। सन् १९३१ के ८ अक्टोबर को महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिक समस्या पर बोलते हुए गोलमेज़ परिषद् में निराशापूर्ण उद्गार प्रकट किये थेः—

"It is with deep sorrow and deeper humiliation that I have to announce utter failure on my part to secure an agreed solution of the Communal question through informal conversation among and with the representatives of different groups.... But to say that the conversations have to our utter shame failed is not to say the whole truth. Causes of failure were inherent in the composition of the Indian deligation. We are almost all not

elected representatives of the parties or groups we are presumed to represent, we are here by nomination of the Government. Nor are those whose presence was absolutely necessary for an agreed solution to be found here."

अर्थात्, "मैं गहरे दुःख और अधिक गहरे अपमान के साथ यह प्रकट करता हूँ कि मैं विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों के साथ अनियमित वार्तालाप के द्वारा साम्प्रदायिक समस्या का सर्वसम्मत हल निकालने में असमर्थ रहा हूँ। पर यह कहना कि ये वार्तालाप असफल हुए हैं, सर्वांश में सत्य नहीं है। भारतीय प्रतिनिधियों का जिस प्रकार संयोजन किया गया है। इसमें इस असफलता के कारण निहित हैं। जिन दलों या पार्टियों के हम प्रतिनिधि माने गये हैं, उनके हम प्रायः सब ही चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं। यहां हम सरकार द्वारा मनोनीत होकर आये हैं। यहां वे लोग भी नहीं हैं जिनकी उपस्थिति सर्वसम्मत हल निकालने में आवश्यक थी।"

कहने का भाव यह है कि इस कॉन्फ्रेन्स में महात्माजी को सफलता नहीं मिली। अल्पदल की कमेटी की दूसरी बैठक होने के पहले ही अल्पदल की जातियों के प्रतिनिधियों ने आपस में मेल-जोल कर एक समझौता कर लिया जो "अल्पदल का समझौता" (Minorities Pact) के नाम से प्रसिद्ध है। यह समझौता ब्रिटिश सरकार की सहमति से किया गया था। इसमें सिक्खों ने भाग नहीं लिया। इस समझौते में दलित जातियों के लिये धारा सभाओं में विशिष्ट संरक्षित स्थान रखे गये और उनके लिये भिन्न निर्वाचन पद्धति भी स्वीकार की गई। १९३१ की १३ नवम्बर को प्राइम मिनिस्टर मि० रेम्ज़े मेक्डानल्ड की अध्यक्षता में अल्पदल कमेटी (Minorities Committee) की बैठक हुई, जिसमें अध्यक्ष महोदय ने कहा कि अल्पदल का यह समझौता भारतवर्ष के ११,५०,००,००० आदमियों को मान्य है।

मि० रेम्ज़े मेक्डानल्ड ने महात्माजी के द्वारा गत बैठक में की गई आलोचना का जवाब देते हुए यह प्रकट किया कि साम्प्रदायिक समस्या के हल न होने से भारतवर्ष के विधान-निर्माण की प्रगति में बाधा आ रही है। इस पर महात्मा गांधी ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में अध्यक्ष महोदय को चुनौती देते हुए कहा कि कांग्रेस न केवल ब्रिटिश भारत की वरन् सारे भारतवर्ष की ८५% जनता का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने इस बात को दोहराया कि कांग्रेस किसी भी ऐसे हल को स्वीकार करने के लिये तैयार है जो हिन्दू मुसलमान और सिक्खों को मान्य हो, पर वह किसी ऐसे विशिष्ट संरक्षण में सहयोग न देगी जो किसी अन्य अल्पसंख्यक दल को दिया जायगा। महात्माजी ने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि सरकार साम्प्रदायिक समस्या का अन्तिम निर्णय करने के लिये एक न्याय-समिति (जुडीशियल ट्रिब्यूनल) मुकर्रर करदे।

ईस्वी सन् १९३१ की १३ अक्टूबर को संघ-निर्माण समिति (Federal Structure Committee) के सामने महात्माजी ने सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court for India) के सम्बन्ध में कांग्रेस का दृष्टिकोण रक्खा। आपने इस बात पर ज़ोर दिया कि संघ न्यायालय (Federal Court) का अधिकार-क्षेत्र बहुत व्यापक और विशाल होना चाहिये। उसका अधिकार-क्षेत्र केवल संघीय कानूनों (Federal Laws) तक ही सीमित न होना चाहिये। १७ नवम्बर १९३१ को महात्माजी ने कांग्रेस की यह मांग रक्खी कि फ़ौज और वैदेशिक मामलों पर स्वराज्य-सरकार का पूर्ण अधिकार होना चाहिये।

ईस्वी सन् १९३१ की १९ नवम्बर को गांधीजी ने उक्त संघ-निर्माण-समिति के सामने ब्रिटेनवासियों के लिये रक्खे गये व्यापारिक संरक्षणों का ज़ोरदार शब्दों में विरोध किया और यह बतलाया कि वे

संरक्षण भारतवासियों के हितों के लिए घातक हैं। उन्होंने जातीय पक्ष-पात की घोर निन्दा की और फ़ौजदारी मुक़दमों में यूरोपियनों को दिये जाने वाले विशेषाधिकारों का घोर विरोध किया।

२५ नवम्बर को गोलमेज़ परिषद् के सामने अपना दूसरा भाषण देते हुए महात्माजी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारत की भावी राष्ट्रीय सरकार भारत के विदेशी क़र्ज़ की ज़िम्मेदारी लेने के पहले उसकी निष्पक्ष जांच को आवश्यक समझेगी। इस संबंध में उन्होंने कराँची कांग्रेस द्वारा नियुक्त "भारत के सरकारी क़र्ज़ की जाँच-समिति" (Public Debt Enquiry Committee) की रिपोर्ट का उल्लेख किया। गाँधी जी ने १ शिलिंग ६ पैंस की विनिमय दर मुक़र्रर करने का विरोध किया और कहा कि भारतवासियों की माँग के अनुसार वह दर १ शिलिंग ४ पैंस होनी चाहिये। आगे चलकर गांधीजी ने भारत की आर्थिक व्यवस्था के अधिकार के विषय में बोलते हुए यह प्रकट किया:—

"I would want complete control of the Indian finance if India was really to have responsibility at the centre. In my opinion, unless we have control over our own purse, absolutely unrestricted, we shall not be able to shoulder the responsibility, nor will it he a responsibility worth the name."

"अगर भारत को केन्द्रवर्ती शासन में वास्तविक उत्तरदायित्व प्राप्त हो तो मैं भारत की अर्थ-व्यवस्था (Finance) पर पूर्ण अधिकार चाहूंगा। मेरी राय में अगर हमें अपनी थैली पर पूर्णतया बाधा रहित अधिकार न होगा तो हम उत्तरदायित्व का बोझ उठाने में समर्थ न होंगे और न ऐसा उत्तरदायित्व अपने नाम को ही सार्थक करेगा।"

इसी दिन एक दूसरे भाषण में महात्माजी ने यह प्रकट किया कि

गम्भीर विचार के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि प्रान्तीय स्वराज्य और केन्द्रीय उत्तरदायित्व (Provincial autonomy and Central responsibility) साथ-साथ चलने चाहिएँ। क्योंकि विदेशी हुकूमत द्वारा शासित सुदृढ़ केन्द्रवर्ती शासन और सुदृढ़ प्रान्तीय स्वराज्य परस्पर विरोधी तत्व हैं।

केन्द्रवर्ती शासन के उत्तरदायित्व पर भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा:—

"I want that responsibility at the centre that will give me, as you all know, control of the army and finance. I know that I am not going to get that here and now and, I know there is not a British man ready for that. Therefore, I Know I must go back and yet invite the nation to a Course of suffering."

"अर्थात्, "जैसा कि आप सब लोग जानते हैं, मैं ऐसा उत्तरदायित्व चाहता हूँ जिसमें फ़ौज और अर्थ-व्यवस्था पर अधिकार रहे। मैं जानता हूं कि यहां अभी मुझे वह न मिलेगा और मैं यह भी जानता हूँ कि कोई ब्रिटिशजन इसके लिये अभी तैयार नहीं है। इसलिये मैं समझता हूँ कि मुझे वापिस जाना चाहिये और राष्ट्र को कष्ट सहन करने के लिये आमंत्रित करना चाहिये।"

३० नवम्बर को गांधीजी ने गोलमेज़-परिषद् के सामने ब्रिटिश अधिकारियों को सम्बोधन करते हुए कहा—"आपने यद्यपि कांग्रेस को निमंत्रित किया है पर आपने उसके उस दावे को अस्वीकृत कर दिया है कि वह सारे भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व करती है।" साम्प्रदायिक समस्या का ज़िक्र करते हुए गांधीजी ने यह अप्रिय सत्य कहा—"जब तक विदेशी सत्ता की कील रहेगी तब तक वह जाति जाति और वर्ग वर्ग

को लड़ाती रहेगी और कभी सच्चा हल न निकलने देगी। वह ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करती रहेगी जिससे उन जातियों में सच्ची मित्रता का संबंध स्थापित न हो सके। राष्ट्रीय मांग का ज़िक्र करते हुए गांधीजी ने कहाः—

"Call it by any name you like, a rose will smell as sweet by any other name, but it must be the rose of liberty that I want and not the artificial product."

अर्थात्, "उसे आप जिस नाम से चाहें पुकारिये, गुलाब का दूसरा नाम रखने पर भी वह उसी प्रकार मीठी सुगंध देता रहेगा, पर वह गुलाब स्वतंत्रता का होना चाहिये, जिसे मैं चाहता हूं। वह कृत्रिम पदार्थ न होना चाहिये।" इसके बाद गांधीजी ने स्वतंत्रता की मांग करते हुए गद्‌गद् स्वर से कहा, "I want to become a partner with the English people; but I want to enjoy precisely the same liberty that your people enjoy."

अर्थात्, "मैं अंग्रेज़ जनता के साथ भागीदार होना चाहता हूँ। पर मैं ठीक वही स्वतंत्रता चाहता हूँ जिसका तुम्हारे लोग उपभोग करते हैं।" भारतीय आतंकवादियों का ज़िक्र करते हुए गांधीजी ने कहा, "क्या आप उन लेखों को नहीं देख रहे हैं जिन्हें आतंकवादी अपने खून से लिख रहे हैं।" आख़िर गांधीजी ने अत्यन्त भावुकता के साथ उपस्थित सदस्यों को संबोधन करते हुए ये उद्‌गार प्रकट किये, "मैं आशा के ख़िलाफ़ आशा करता हूँ, मैं अपनी सारी शक्तिभर यह कोशिश करूंगा जिससे मेरे देश के लिये सम्मानपूर्ण समझौता हो जाय। मेरे लिये यह सुख और सांत्वना का विषय न होगा कि मुझे फिर से लड़ाई का नेतृत्व ग्रहण करना पड़े। पर अगर आग में से गुज़रने ही की परिस्थिति उत्पन्न हुई तो मैं इसको सबसे अधिक आनन्द और संतोष के

साथ स्वीकार करूँगा; और मैं यह समझूँगा कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ वह ठीक है और जो कुछ मेरा देश कर रहा है वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिये कर रहा है।"

गाँधीजी ने भारतीय स्वतन्त्रता के लिये ज़ोरदार आवाज़ उठाई और जो कुछ उनसे करते बना वह उन्होंने किया, पर वे सफल न हुए। इसका कारण यह था कि इस समय मज़दूर-दल के मंत्रि-मण्डल का अन्त हो चुका था और उसके स्थान पर नई सरकार बन चुकी थी जो कहने भर को तो 'संयुक्त' थी, परन्तु वास्तव में अनुदार दल की ही थी। इस बार की कॉन्फ्रेन्स में ब्रिटिश सरकार का जो प्रतिनिधि-मण्डल था, उसका रुख पिछले सालवाले प्रतिनिधि-मण्डल से बहुत भिन्न था। मि० वैजवुड बैन का स्थान सर सैमुअल होर ने ग्रहण कर लिया था। इन दोनों नामों के उल्लेख से ही यह प्रकट हो जाता है कि ब्रिटेन के रुख़ में कितना अन्तर आ गया था। कुल मिला कर दूसरी कॉन्फ्रेन्स पहली कॉन्फ्रेन्स की अपेक्षा अधिक असंतोषजनक रही। पहली कॉन्फ्रेन्स मज़दूर-दल की सरकार तथा मि० वैजवुड बैन जैसे भारत-मंत्री के समय में हुई थी, और उसके बाद एक ओर तो सत्याग्रह-आन्दोलन रोका गया तथा दूसरी ओर राजनैतिक क़ैदी छोड़े गये थे। दूसरी कॉन्फ्रेन्स अनुदार दल की सरकार तथा सर सैमुअल होर जैसे भारत-मंत्री के समय में हुई और उसके बाद एक ओर तो फिर से सत्याग्रह का प्रारम्भ हुआ और दूसरी ओर दमन—सन् १९३० से भी अधिक भयानक दमन—का आश्रय लिया गया।

इसके अतिरिक्त उस समय की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति वर्तमान समय की तरह अनुकूल न थी। वर्तमान स्वतन्त्रता प्राप्ति में जहाँ हमारे राष्ट्र के महान् आत्म-त्याग ने काम किया वहाँ वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने भी बड़ी बहुमूल्य सहायता की। यह एक वास्तविक सत्य है जिसकी कोई इतिहासवेत्ता उपेक्षा नहीं कर सकता।

महात्माजी का भारत आगमन

गोलमेज़ परिषद् से असफल होकर सन् १९३१ ई० की २८ दिसंबर को खाली हाथ महात्माजी बम्बई पहुँचे। बम्बई में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने उनके भव्य स्वागत की तैयारियाँ कर रखी थीं। इस समय बम्बई में उनका जो शानदार स्वागत किया गया वह ऐसा था जिससे बड़े बड़े सम्राटों का मस्तक भी झुक जाय। उनका जुलूस बम्बई के इतिहास में एक अपूर्व घटना थी। जनता ने लाखों की तादाद में अपने प्रिय नेता का हार्दिक स्वागत किया। उसी दिन शामको आज़ाद मैदान में उनका सार्वजनिक व्याख्यान हुआ जिसमें जनता का समुद्र उमड़ पड़ा था। कहा जाता है कि २ लाख से ऊपर उत्सुक जनता इस भाषण को सुनने के लिये एकत्रित हुई थी। महात्मा गाँधीजी ने अपने व्याख्यान में गोल-मेज़ परिषद् में उन्हें जो कड़वे अनुभव हुए, उनका वर्णन किया। इसके अतिरिक्त इस भाषण में उन्होंने अपनी यह भयंकर प्रतिज्ञा दोहरायी—

"हिन्दू जाति से अछूतों को जुदा करनेवाले किसी भी प्रयत्न को मैं बरदाश्त नहीं करूँगा, बल्कि मौका पड़ने पर उसके विरोध में मैं अपनी जान तक दे दूँगा।"

गाँधीजी से मिलने के लिये और उन्हें अपने-अपने प्रान्त की दुःख-गाथा सुनाने के लिये भिन्न-भिन्न प्रान्तों से अनेक प्रतिनिधि आये हुए थे। गाँधीजी बराबर तीन दिन तक उनकी बातों को सुनते रहे और अपनी अनुपस्थिति में उत्पन्न हुई परिस्थिति का ध्यानपूर्वक अध्ययन करते रहे। इन प्रतिनिधियों से उन्हें मालूम हुआ कि देश में चारों ओर भयंकर दमन और आर्डिनेन्सों का बोलबाला हो रहा है। इस समय सहृदय लार्ड

इर्विन ने अवसर ग्रहण कर लिया था और उनके स्थान पर लॉर्ड विलिंगडन भारत के गवर्नर जनरल का काम कर रहे थे। उन्होंने गाँधी-इर्विन समझौते की शर्तों को ताक में रख कर भयंकर दमन के द्वारा स्वातन्त्र्य-आन्दोलन को कुचलने का निश्चय कर लिया। पंडित जवाहरलाल नेहरू महात्माजी का स्वागत करने बम्बई जा रहे थे कि रास्ते में ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया।

इस बीच देश की आर्थिक स्थिति भी बहुत खराब हो गई थी। खेतों की पैदावार के भाव गिर जाने से किसानों की आर्थिक अवस्था बहुत ही गिर गई थी। इतने पर भी सरकार कर बढ़ाने पर तुली हुई थी। इन सब बातों से उन्हें परिचित कराया गया। उन्हें बतलाया गया कि युक्त-प्रान्त और सीमा-प्रान्त में भी ऑर्डिनेन्स जारी कर दिये गये थे। आरज़ी सुलह के दिनों में राज्य का गाड़ा इन ऑर्डिनेन्सों से ही हांका जा रहा था। गाँधीजी मज़ाक में कहा करते थे, "यह तो लॉर्ड विलिंगडन का दिया नये साल का तोहफ़ा है।" पर वह एक सत्याग्रही की भांति शान्ति के लिये अपनी पूरी कोशिश किये बग़ैर ही देश को नई मुसीबतों में डालनेवाले पुरुष न थे। सुबह से लेकर शाम तक गाँधीजी का सारा समय तमाम प्रान्तों से आये हुए शिष्ट-मण्डलों से मिलने में ही बीतता था, जो सरकारी अफ़सरों द्वारा प्रत्येक प्रान्त में किये गये अत्याचारों की कथाएँ सुनाते थे। देश में भयंकर मन्दी और घोर संकट था। फिर भी कर्नाटक को इतने लम्बे समय तक युद्ध में लगे रहने पर भी कोई रिआयत नहीं दी गई। आन्ध्र में लगान बढ़ाया जानेवाला था और मद्रास के गवर्नर ने तो यहाँ तक धमकी दे रखी थी कि अगर लोग लगान रोकने की बात करेंगे तो ऑर्डिनेन्स जारी कर दिये जायँगे। इस तरह की दुःख-गाथाएँ गाँधीजी को सुनाई जा रही थीं। उन्हें भी अपने दुखड़ों की कहानी लोगों को सुनानी थी, जो उन पर लन्दन में बीते थे। वे गोलमेज़-परिषद् में जाना ही नहीं चाहते थे। जो बातें इस परिषद्

में होनेवाली थीं उनकी छाया जुलाई और अगस्त में ही नज़र आने लग गई थी। पर कांग्रेस की कार्य-समिति ने इस बात पर ज़ोर दिया कि उन्हें जाना ही चाहिए। समझौते का भंग होने पर भी बाद में उन्हें परिषद् में जाने से इन्कार करने का मौका मिल गया था। पर मज़दूर-सरकार चाहती थी कि उन्हें किसी प्रकार जहाज़ पर चढ़ा कर लन्दन रवाना कर ही दिया जाय।

इन सारी परिस्थितियों को सुन कर गाँधीजी बहुत दुखित हुए और उन्होंने तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड विलिंगडन को निम्न-लिखित तार दिया और उनसे मुलाक़ात देने के लिये अनुरोध किया।

"I was unprepared on landing yesterday to find the Frontier and the U. P Ordinances, shootings in the Frontier and arrests of valued comrades in both and on the top, the Bengal Ordinance awaiting me. I do not know whether I am to regard these as an indication that friendly relations between us are closed or whether you expect me still to see and receive guidance from you as to the course I am to pursue in advising the Congress."

अर्थात्, "कल जहाज़ से उतरने पर मुझे मालूम हुआ कि सीमा-प्रान्त और युक्तप्रान्त में ऑर्डिनेन्स जारी कर दिये गये हैं। सीमाप्रान्त में गोलियाँ चलाई गई हैं। मेरे अनमोल साथी गिरफ़्तार कर लिये गये हैं और सबसे बढ़कर, बंगाल का ऑर्डिनेन्स मेरी राह देख रहा है। मैं इसके लिये तैयार न था। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं इनसे यह समझूँ कि हमारी पारस्परिक मित्रता का ख़ातमा हो चुका, या यह कि आप अब भी मुझसे यह उम्मीद करते हैं कि मैं आपसे मिलूँ

और इस परिस्थिति में मैं कांग्रेस को क्या सलाह दूं, इस विषय में आपसे परामर्श और मार्ग-प्रदर्शन प्राप्त करूँ।

वाइसरॉय के प्राइवेट सेक्रेटरी ने ३१ दिसम्बर को महात्माजी के तार का लम्बा-चौड़ा जवाब दिया, उसका एक अंश यह है:—

"His Excellency feels bound to emphasise that he will not be prepared to discuss with you any measures which the Government of India, with the fullest approval of His Majesty's Government, found it necessary to adopt in Bengal, the United Provinces and the North-West Frontier Province."

अर्थात्, "श्रीमान् वाईसरॉय इस बात पर ज़ोर देने के लिये बाध्य हैं कि वे आपसे किसी भी ऐसी कार्रवाई के विषय में बातचीत करने के लिये तैयार नहीं हैं, जो कार्रवाई भारत सरकार ने श्रीमान् सम्राट् की सरकार की पूर्ण अनुमति से बंगाल, युक्त-प्रान्त और सीमा-प्रान्त में करना आवश्यक समझा है।"

वाइसरॉय का यह तार मिलने पर पहली जनवरी १९३२ को कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई और उसमें जो प्रस्ताव पास हुआ उसका कुछ अंश निम्नलिखित है:—"कार्य-समिति ने महात्मा गांधी की यूरोप-यात्रा का हाल सुना और बंगाल तथा युक्त-प्रान्त में जारी किये गये असाधारण ऑर्डिनेन्सों के कारण देश में पैदा हुई परिस्थिति पर विचार किया। साथ ही सरकारी अधिकारियों द्वारा खान अब्दुलगफ़्फ़ार ख़ाँ, शेरवानी साहब, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे अनेक लोगों की गिरफ़्तारियों और सीमाप्रान्त में निर्दोष लोगों पर चलाई जाने वाली गोलियों, जिनसे कितने ही लोग जान से मारे गये तथा कितने ही

घायल हुए, के कारण पैदा हुई परिस्थिति पर भी विचार किया। कार्य-समिति ने महात्मा गांधी के तार के जवाब में वाइसरॉय द्वारा भेजे गये तार को भी देख लिया।"

कार्य-समिति का यह मत है कि ये तमाम घटनाएँ और दूसरे प्रान्तों में घटी हुई अन्य छोटी-मोटी घटनाएँ तथा वाइसरॉय साहब का तार, ये सब सरकार के साथ कांग्रेस का सहयोग तब तक के लिये बिलकुल असम्भव बना रहे हैं, जब तक कि सरकार की नीति में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हो जाता। ये कार्य और वाइसराय का तार साफ़-साफ़ ज़ाहिर करते हैं कि नौकरशाही हिन्दुस्तान की जनता के हाथों में यहां की हुकूमत सौंपना नहीं चाहती, बल्कि उनके द्वारा वह उलटे राष्ट्र की तेजस्विता को मिटा देना चाहती है। उनसे यह भी प्रकट होता है कि सरकार एक ओर जहां कांग्रेस से सहयोग की उम्मीद करती है, वहां दूसरी ओर उस पर विश्वास भी नहीं करना चाहती।

"बंगाल में हाल ही में आतंकवादी घटनाएँ हुई हैं, उनकी निन्दा करने में कांग्रेस किसी से पीछे नहीं रही है। पर साथ ही वह सरकार के द्वारा किये गये आतंकवाद की निन्दा भी उतने ही ज़ोर के साथ करती है। सरकार की यह दमन-नीति हाल ही में जारी किये गये ऑर्डिनेन्स और क़ानूनों से प्रकट है। अभी-अभी कुमिल्ला में दो लड़कियों द्वारा जो हत्या हुई है उससे राष्ट्र को नीचे देखना पड़ा है, ऐसी कांग्रेस की राय है। ये कार्य ऐसे समय ख़ास तौर पर और भी हानिकारक हैं, जबकि देश कांग्रेस के ज़रिये, जो कि उसकी सबसे बड़ी प्रतिनिधि संस्था है, स्वराज्य-प्राप्ति के लिये अहिंसा से काम लेने को वचन-बद्ध हो चुकी है। पर कांग्रेस कार्य-समिति कोई कारण नहीं देखती कि महज़ इतनी सी बात पर, सिर्फ़ कुछ लोगों के अपराध पर, बंगाल ऑर्डिनेन्स जैसे अति-रिक्त क़ानून जारी करके तमाम लोगों को दंडित किया जाय।"

"इसका असली इलाज तो है इन अपराधों के प्रेरक कारणों का ही,

जो कि प्रकट हैं, इलाज करना। यदि बंगाल ऑर्डिनेन्स के अस्तित्व का कोई कारण नहीं है तो युक्त-प्रान्त और सीमा-प्रान्त के ऑर्डिनेन्सों के लिये तो उससे भी कम कारण है।"

"कार्य-समिति की राय है कि युक्त-प्रान्त में किसानों को छूट दिलाने के लिये कांग्रेस द्वारा अवलम्बित उपाय उचित हैं और उचित प्रमाणित किये जा सकते हैं। कार्य-समिति का यह निश्चय मत है कि गम्भीर आर्थिक संकटों से पीड़ित लोग, जैसा कि स्वीकार किया जा चुका है कि युक्त-प्रान्त के किसान पीड़ित हैं, यदि अन्य वैध साधनों से राहत पाने में असफल हों, जैसे कि वे युक्त-प्रान्त में असफल हुए हैं, तो उन सबका यह निर्विवाद अधिकार है कि वे लगान देना बन्द कर दें। महात्मा गांधी से बातचीत करने और कार्य-समिति की बैठक में सम्मिलित होने के लिये बम्बई आते हुए युक्त-प्रान्त की प्रान्तीय समिति के सभापति श्री शेरवानी तथा महासभा के कार्य-संचालक प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू को गिरफ़्तार करके तो सरकार अपने ऑर्डिनेन्स द्वारा कल्पित सीमा से भी आगे बढ़ गई है, क्योंकि इन सज्जनों के बम्बई में युक्तप्रान्त के कर बन्दी के आन्दोलन में भाग लेने का तो किसी प्रकार कोई प्रश्न था ही नहीं।"

"सीमा-प्रान्त के संबंध में स्वयं सरकार की बताई बातों से भी न तो ऑर्डिनेन्स जारी करने और न ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ार ख़ां और उनके साथियों को गिरफ़्तार करने तथा बिना मुक़दमा चलाये जेल में रखने का कोई आधार दिखाई देता है। कार्य-समिति इस प्रान्त में निरपराध और निःशस्त्र लोगों पर की गई गोलीबारी को निष्ठुर और अमानुषिक समझती है और वहाँ की जनता को उसके साहस और सहन-शक्ति के लिये बधाई देती है। कार्य-समिति को ज़रा भी संदेह नहीं है कि यदि सीमा-प्रान्त की जनता भारी उत्तेजना दिये जाने पर भी अपनी अहिंसा-वृत्ति को क़ायम रख सकेगी तो उसका रक्त और उसके कष्ट भारत की

स्वतंत्रता के कार्य्य की प्रगति में सहायक होंगे।"

"कार्य-समिति भारत-सरकार से मांग करती है कि जिन बातों के कारण उसे ये ऑर्डिनेन्स पास करने पड़े हैं और सामान्य अदालतों और व्यवस्था-तंत्र को एक ओर रख देने तथा इन ऑर्डिनेन्सों के अन्तर्गत और बाहर जो कारवाइयां हुईं, उनके औचित्य के संबंध में वह एक खुली और निष्पक्ष जाँच करावे। यदि उचित जांच-समिति को गवाह पेश करने की सब सुविधाएँ दी जायँ, तो वह इस समिति के सामने गवाह पेश करके सहायता देने के लिये तैयार रहेगी।"

आगे चलकर कार्य-समिति ने इस बात पर अफ़सोस प्रकट किया कि सरकार ने देहली समझौते को बार-बार भंग किया, और वह चेतावनी दी कि अगर सरकार की ओर से कांग्रेस की मांग का समुचित प्रत्युत्तर न मिला तो वह समिति राष्ट्र को भद्र अवज्ञा (Civil disobedience) का आन्दोलन करने के लिये आह्वान करेगी।

इस दिन महात्मा गांधी ने वाइसरॉय को दुबारा पत्र भेज कर यह अनुरोध किया कि वे अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और बिना किसी शर्त के मुलाक़ात (Interview) का अवसर दें। गांधीजी ने अपने पत्र के साथ कार्य-समिति के प्रस्ताव की नक़ल भी भेजी और साथ ही यह भी सूचित किया कि अगर श्रीमान् वाइसरॉय मुझसे मिलना उचित समझेंगे तो इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का कार्य बातचीत होने के समय तक स्थगित रक्खा जायगा।

ईस्वी सन् १९३२ की २ जनवरी को वाइसरॉय ने महात्माजी को सूचित किया कि भद्र अवज्ञा की धमकी के साथ मुलाक़ात देने का प्रस्ताव वाइसरॉय किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकते। इस पर महात्माजी ने वापस वाइसरॉय को लिखा कि प्रामाणिक विचारों के प्रकाशन को धमकी कहना एक दम ग़लत है।

इस प्रकार गांधीजी और वाइसराय की मुलाक़ात संबंधी लिखा-पढ़ी का अन्त हुआ।

४ जनवरी को भारत सरकार ने अपनी नीति और प्रवृत्तियों के समर्थन में एक वक्तव्य प्रकाशित किया।

गांधीजी और सरदार पटेल की गिरफ़्तारी

फिर क्या था ? सरकार ने वार करना शुरू कर दिया, गांधीजी और सरदार पटेल गिरफ्तार कर लिये गये। इतने ही पर सरकार को संतोष न हुआ। उसने सैकड़ों हज़ारों कांग्रेस कमेटियों, राष्ट्रीय स्कूलों, किसान कमेटियों, सेवा-दलों और इस प्रकार की अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं को गैर-क़ानूनी घोषित कर दिया। उनके भवनों और कार्यालयों पर अधिकार कर लिया। इतना ही नहीं, इन कार्यालयों का सामान और जायदादें भी ज़ब्त कर नीलाम कर दी गईं। कांग्रेस के कोषों पर भी अधिकार कर लिया गया। लोगों को यह सूचित किया गया कि वे कांग्रेस को किसी प्रकार की आर्थिक सहायता न दें और न कांग्रेस स्वयं-सेवकों को अपने घरों में आश्रय दें। अगर वे ऐसा करेंगे तो दंड के पात्र होंगे। राष्ट्रीय साहित्य ज़ब्त किया गया, राष्ट्रीय समाचार-पत्र बंद कर दिये गये, दूकानदारों और व्यापारियों को सख़्त हिदायतें दी गईं कि वे कांग्रेस स्वयं-सेवकों के कहने पर अपनी दूकानें बंद न करें।

इसके अतिरिक्त एक सप्ताह के अंदर-अंदर कांग्रेस से संबंध रखने वाले हज़ारों देशभक्त मनुष्य गिरफ्तार कर जेलों में ठूँस दिये गये। सरकारी गणना के अनुसार जनवरी में १४८०० और फरवरी में १७८०० कांग्रेस जन और कांग्रेस स्वयं-सेवक गिरफ्तार किये गये। भारतवर्ष की जेलें ठसाठस भर गईं। धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होती रहीं, सब मिलकर लगभग एक लाख से ऊपर सत्याग्रहियों को कठोर कारावास की सज़ाएं हुईं। इससे चौगुनी संख्या अर्थात् चार लाख मनुष्य अमानुषिक

लाठी-प्रहारों के शिकार हुए। कहने का मतलब यह है कि सरकार ने अहिंसात्मक प्रतिकार को पूरी तरह कुचल देने का दृढ संकल्प कर लिया। गुजरात के रास ग्राम में और कर्नाटक के अंकोला और सिद्दपुर नगरों में लोगों ने करबंदी का आन्दोलन आरम्भ किया और उन्हें घोरतम दमन का सामना करना पड़ा। ईस्वी सन् १९३० और ३१ में जैसा दमन किया गया था उससे इस साल का दमन अत्यधिक भयंकर था।

अहिंसात्मक युद्ध का ज़ोर

ज्यों ज्यों सरकारी दमन बढ़ता गया त्यों त्यों भद्रअवज्ञा (Civil Disobedience) का ज़ोर भी बढ़ता गया। सरकारी प्रतिबंध के होते हुए भी सभाएँ और परिषदें होती रहीं। पुलिस के लगाये हुए प्रतिबंधों को तोड़कर हज़ारों की संख्या में लोग जुलूस निकालने लगे। ब्रिटिश माल, ब्रिटिश बैंक और ब्रिटिश बीमा कम्पनियों के कार्य्यालयों पर ज़ोर-शोर के साथ पिकेटिंग किया जाने लगा। आम रास्तों पर राष्ट्रीय झंडे को सलामी दी जाने लगी और भयंकर मार सहकर भी कांग्रेस स्वयं-सेवक सरकारी इमारतों पर राष्ट्रीय झण्डा फहराने का वीरतापूर्वक प्रयत्न करने लगे। सरकारी क़ानून को तोड़कर सारे देश में नमक

बनाया जाने लगा। कांग्रेस के उन मकानों पर जिन पर सरकार ने कब्ज़ा कर लिया था, अहिंसात्मक धावा कर फिर से अधिकार करने के प्रयत्न किये जाने लगे। ज़ाब्ता फ़ौजदारी की १४४ दफ़ा की खुले आम अवज्ञा की जाने लगी। चौकीदारी टैक्स देने से लोगों ने इन्कार कर दिया। ताड़ी के पेड़ हज़ारों की संख्या में काटे जाने लगे। राष्ट्रीय जीवन की ज्योति को प्रबल और स्थिर रखने के लिए झण्डा दिवस, गांधी दिवस, मोतीलाल दिवस, शहीद दिवस, शोलापुर दिवस, स्वतंत्रता दिवस, आदि एवं सरकारी आज्ञाओं का उल्लंघन कर बड़ी धूमधाम से मनाये जाने लगे। नमक के गोदामों पर ज़ोर-शोर से अहिंसात्मक हमले होने लगे। १५ मई को वाडला के नमक के गोदाम पर बड़े ज़ोर-शोर के साथ आक्रमण हुआ। २६ मई को सारे देश में बड़ी धूमधाम के साथ स्वदेशी दिन मनाया गया, जिसमें "भारतीय माल खरीदो" के नारे ज़ोर-शोर से लगाये गये। ४ जुलाई को अखिल भारतवर्षीय बंदी-दिवस मनाया गया और उसमें राजनैतिक कैदियों के साथ सहानुभूति प्रकट की गई। ८ अप्रैल को इलाहाबाद में राष्ट्रीय सप्ताह बड़े उत्साह के साथ मनाया गया और पं० मोतीलालजी नेहरू की पत्नी और हमारे वर्तमान प्राइम मिनिस्टर पं० जवाहरलालजी नेहरू की माता के नेतृत्व में कांग्रेस का एक जुलूस निकाला गया, जिस पर पुलिस ने लाठियां बरसाईं और उसके फलस्वरूप श्रीमती नेहरू भी घायल हुईं। जिस डाक्टर ने उस समय श्रीमती नेहरू की परीक्षा की उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा था:—

"Her injuries were caused by something like a lathi. She has received half a dozen injuries, including a bad cut on her head which caused profuse bleeding."

अर्थात्, "उनके घाव लाठी जैसी किसी चीज़ से हुए हैं। उन्हें

कोई आधे दर्जन घाव लगे हैं, जिनमें सिर पर का एक बुरा घाव भी है, जिसमें से बहुत ही ज्यादा खून बहा था।"

श्रीमती नेहरू के घायल होने के समाचार से सारे देश में क्रोध की भारी लहर बह गई। एक सम्माननीय महिला के ऊपर इस प्रकार से होनेवाले अत्याचारों को लोग घृणा के साथ धिक्कारने लगे।

इन्हीं दिनों में सरकारी रोक के होते हुए भी लोगों ने पं० मदन-मोहन मालवीय के सभापतित्व में दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन करने का निश्चय किया। महामना मालवीजी तो अलाहाबाद से दिल्ली जाते हुए रास्ते ही में गिरफ़्तार कर लिये गये। पुलिस की कड़ी देख-रेख के बावजूद भी विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधि सैकड़ों की संख्या में दिल्ली पहुँच गये। चांदनी चौक के घंटाघर के पास अहमदाबाद के श्री रणछोड़-दास अमृतलाल की अध्यक्षता में अल्प समय के लिये कांग्रेस का अधिवे-शन हुआ। अधिवेशन के प्रस्ताव, जो पहले से ही छपा लिये गये थे, जनता में बाँटे गये। कांग्रेस के इस अधिवेशन में फिर से स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ और कांग्रेस कार्य-समिति के भद्रअवज्ञा ज़ोरशोर से शुरू करने के प्रस्ताव का सर्वानुमति से समर्थन हुआ। इतना हो जाने पर पुलिस मौके पर पहुँची और उसने लाठियां बरसा कर सभा को तितर-बितर कर दिया, और बहुत बड़ी संख्या में कांग्रेस जनों को गिरफ़्तार कर लिया।

पं० मदनमोहन मालवीयजी ने इस समय, अर्थात् ईस्वी सन् १९३२ की २ मई को, गत चार मास की कांग्रेस प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालनेवाला एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसका सारांश निम्नलिखित है:—

"२० अप्रैल तक गत चार मासों में समाचार-पत्रों की रिपोर्टों के अनुसार ६६६४६ व्यक्ति, जिनमें ४८२५ स्त्रियाँ और बहुत से बच्चे भी थे, गिरफ़्तार किये जाकर विविध प्रकार की कारावास की सज़ाओं से दंडित

हुए। इनमें उन लोगों की संख्या सम्मिलित नहीं है जो दूरस्थ ग्रामों में अपने देश के लिये संघर्ष करते हुए गिरफ़्तार होकर दंडित हुए। कांग्रेस के अनुमान के अनुसार अस्सी हज़ार आदमियों से ऊपर उक्त अवधि में गिरफ़्तार हुए। जेल ठसाठस भर गये, और कई साधारण क़ैदी इसलिये छोड़ दिये गये कि राजनैतिक क़ैदियों के लिए जगह हो जाय। इनमें उन लोगों को भी मिला देना चाहिए जिनकी गत १० दिनों में देहली कांग्रेस के अधिवेशन के समय गिरफ़्तारियाँ हुईं। समाचार-पत्रों की रिपोर्ट के अनुसार उक्त चार मास में पुलिस ने २६ स्थानों में गोलियाँ चलाईं, जिसके फलस्वरूप बहुसंख्यक आदमी मारे गये। इसके अतिरिक्त ३२५ स्थानों मे निरस्त्र जनता की भीड़ पर लाठीचार्ज हुए। ६३३ घरों की तलाशियाँ हुईं। १०२ मनुष्यों की जायदादें ज़ब्त कर ली गईं। समाचारपत्रों के गले इस प्रकार घोंट दिये गये जैसे पहले कभी नहीं घोंटे गये थे। १६३ ऐसे मामलों के समाचार मिले, जिनमें छापाखाने ज़ब्त हुए, अख़बारों से ज़मानतें माँगी गईं, समाचारपत्रों के कार्य्यालयों की तलाशियां हुईं तथा सम्पादकों और समाचारपत्रों के प्रबन्धकों की गिरफ़्तारियाँ हुईं। कई समाचारपत्र बंद कर दिये गये। बहुसंख्यक सार्वजनिक सभाएँ और अहिंसक स्त्री-पुरुषों के जुलूस लाठी-चार्जों के द्वारा, और कहीं-कहीं गोलीबारी के द्वारा बिखेर दिये गये।" (Indian Recorder)।

महामना मालवीयजी द्वारा कथित अत्याचारों के अतिरिक्त और भी कई अत्याचार हुए। करांची, सीमाप्रान्त तथा हरीपुरा के जेलों में राजनैतिक क़ैदियों को कोड़ों की सज़ाएँ दी गईं, जिनमें से कुछ बेहोश तक हो गए। बंगाल के राजशाही जेल में राजनैतिक क़ैदियों को कई प्रकार की पाशविक यंत्रणाएँ दी गईं। राजमंदरी जेल में लाहौर षड्यंत्र केस के एक क़ैदी के कोड़े लगाए गए, बिलारी जेल में राजनैतिक कैदियों पर लाठियों से हमले किये गये। अजमेर ज़िले के देवली ग्राम के बंदी-शिविर

(Detention Camp) में जेल के गार्डों द्वारा राजनैतिक क़ैदियों पर हमले हुए, जिनके कारण बहुत से नज़रबंद क़ैदी घायल हुए। भारत सरकार के तत्कालीन गृह-सचिव एच० जी० हेग ने धारा सभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रकट किया कि बंगाल में सभाओं या लोक-समूहों को बिखेरने के लिये सत्रह बार, युक्तप्रान्त में सात बार, बिहार में तीन बार, मद्रास प्रान्त में एक बार और सीमा-प्रान्त में एक बार गोलियाँ चलाई गईं। बम्बई प्रान्त में गोलीबारी से ३५ आदमी मारे गये और ६६ घायल हुए। कहने का भाव यह है कि भारतीय राष्ट्र पूर्ण आत्म-त्याग और कष्ट-सहन के साथ अपनी स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहा था, कि इस बीच में महात्मा गांधी के उपवास के कारण इस लड़ाई में फिर से शिथिलता आ गई, और देश की प्रवृत्ति एक दूसरे प्रश्न की ओर झुकी।

महात्मा गांधी का अनशन

११ मार्च को गांधीजी ने सर सेमुअलहोर को पत्र लिखकर यह प्रकट किया कि १९३१ के १३ नवम्बर को गोलमेज़ परिषद् के सामने मैंने यह कहा था कि अगर दलित जातियों को उनके प्रधान अंग हिन्दुओं से पृथक् निर्वाचन का अधिकार देकर उनसे अलग कर दिया गया तो मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूँगा। मैं अब भी अपने इस कथन पर दृढ हूँ और अगर ऐसा किया गया तो मैं मृत्यु पर्यन्त

उपवास कर अपने प्राण दे दूंगा। इसके जवाब में १३ अप्रैल को सर सेमुअलहोर ने महात्माजी को जवाब देते हुए लिखा कि ब्रिटिश सरकार इस विषय पर अन्तिम निर्णय पर पहुँचने के पहले पूर्ण रूप से विचार करेगी। पर इन सब आश्वासनों के होते हुए भी १७ अगस्त १९३२ को प्रधान मंत्री का साम्प्रदायिक निर्णय प्रकाशित हो गया। इस निर्णय में दलित जातियों के लिए पृथक् निर्वाचन और विशिष्ट सीटों की व्यवस्था थी। यहां यह कहना आवश्यक है कि गांधीजी दलित जातियों के सबसे बड़े मित्र थे। उनके शरीर के अणु-अणु में दलित जातियों का हित समाया हुआ था। वे अक्सर भगवान से प्रार्थना करते थे कि मृत्यु के बाद मेरा जन्म दलित कुटुम्ब में हो। उन्होंने ही इनका नाम हरिजन रक्खा था, जो बड़ा आदर सूचक है। वे हिन्दू जाति को बराबर कोसा करते थे और कहा करते थे कि अछूत या दलित जाति हिन्दू समाज के लिए एक कलंक की वस्तु है। पर यहां उन्होंने दलितों या हरिजनों के पृथक् निर्वाचन का जो विरोध किया, इसका कारण यह न था कि वे इन्हें मानवोचित अधिकारों से वंचित रखना चाहते थे। उन्होंने इसलिये विरोध किया कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने हिन्दू जाति की एकता को नष्ट करने के लिए ऐसा किया था। इसीसे उन्होंने यरवदा जेल में ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय के विरुद्ध आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। बस फिर क्या था? गांधीजी के प्राणों को बचाने के लिए हिन्दू जाति के नेता दौड़ पड़े। पं० मदनमोहन मालवीयजी, सर तेजबहादुर सप्रू, सर एस० जी० राजा, ने बड़ी दौड़-धूप करना शुरू कर दिया। मालवीयजी ने नेताओं की बैठक बुलाई। विलायत में एण्ड्रूज़, लैन्सबरी तथा पोलक ने शोर मचाना शुरू किया। सारे देश ने २० सितम्बर को हरिजन-दिवस मनाया। गांधीजी को छोड़ देने की बात हुई, परन्तु गांधीजी ने किसी भी शर्त पर अनशन तोड़ने से इन्कार कर दिया। पूना में सम्मेलन शुरू हुआ। श्री राजगोपालाचारी, श्री चुन्नीलाल मेहता, पं० मदनमोहन

मालवीय, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री जयकर, श्री अम्बेडकर, श्री राजा, श्री राजेन्द्रप्रसाद, श्री हृदयनाथ कुँजरू आदि नेता इसमें शामिल हुए। उपवास के पांचवें दिन एक समझौता हुआ। सरकार ने इस समझौते को मान लिया।

उसी दिन कवि-सम्राट् गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी गांधीजी से मिलने के लिए पधारे। गांधीजी ने उन्हें बड़े प्रेम से गले लगाया। इस अवसर का प्रत्यक्षदर्शी की तरह वर्णन करते हुए महात्माजी के अनन्य भक्त श्री व्रजकृष्ण चांदीवाला अपने "बापू के चरणों में" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

"उस दिन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और बापू का मिलन देखने योग्य था। गुरुदेव अपना लंबा चोगा पहने, झुकी कमर पर पीछे की ओर हाथ रखे बड़े धीमे-धीमे क़दम बढ़ाते हुए बापू के पलंग के पास पहुँचे। बापू ने थोड़ा-सा उठ कर उन्हें छाती से लगा लिया और उनकी सफ़ेद दाढ़ी पर बालकों की तरह हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर बाद थक कर वे सो गए।

आख़िर शाम को चार बजे इंस्पेक्टर जनरल गवर्नमेंट हाउस से पत्र लेकर आया, जिसमें लिखा था कि अंग्रेज़ी सरकार ने समझौते की शर्तें मान ली हैं। बापू ने पत्र पढ़कर सरदार पटेल को दे दिया और थोड़ी देर विचार करने के बाद उपवास खोलने का निश्चय किया।

उपवास खुलने की तैयारियां शुरू हुईं। कविवर ने सबसे पहले बंगाली में एक भजन गाया। फिर उपनिषदों के मंत्र पढ़े गये, "वैष्णव जन" वाला भजन गाया गया और पूज्य बा के हाथ से दिये गए मौसमी के रस से बापू ने उपवास खोला। सबको मिठाई और फल बांटे गये। उस समय वहाँ एक मेला सा लगा हुआ था।

कहने का भाव यह है कि इसी दिन, अर्थात् २६ सितम्बर को, गांधीजी

ने उपवास खोल दिया। इससे भारत राष्ट्र एक महान् चिंता से मुक्त हुआ।

इस समझौते से पृथक् निर्वाचन का प्रायः अन्त हो गया। प्रधान मंत्री के निर्णय के अनुसार हरिजनों को जितना प्रतिनिधित्व मिला था उसकी मात्रा में भारी वृद्धि हो गई। महात्माजी के इस उपवास से हिन्दू जाति में अपने एक दलित अंग के प्रति सहानुभूति के भाव उदय होने लगे। हरिजनों में भी आत्म-विश्वास का भाव पैदा हुआ और वे यह समझने लगे कि हमें भी अन्य जातियों की तरह मानवाधिकार प्राप्त होने चाहिएँ।

एकता सम्मेलन

ईस्वी सन् १९३२ के २६ सितम्बर को महात्माजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये अपील की। महामना मालवीयजी ने इस अपील को कार्यान्वित करने के लिए एकता-परिषद् का आह्वान किया। तदनुसार उक्त वर्ष की पहली नवम्बर को इलाहाबाद में कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री विजयराघवाचार्य की अध्यक्षता में एकता-परिषद् की बैठक हुई, जिसमें हिन्दू और मुसलमानों के बहुसंख्यक प्रतिनिधि शामिल हुए। यह परिषद् सद्भावनापूर्ण वातावरण में आरम्भ हुई। हिन्दू-मुस्लिम समझौते की बातचीत में संतोषकारक प्रगति हो रही थी कि उसमें कुछ विघ्न उपस्थित हुए। एक तो यह कि मुसलमानों के एक दल विशेष ने इस एकता के प्रयत्न का तीव्र विरोध करना शुरू किया और दूसरा यह कि बंगाल का प्रश्न हल न हो सका, क्योंकि यूरोपियन लोग अपनी किसी सीट को छोड़ने के लिए तैयार न थे। मुसलमान भी ५१ फ़ी सदी सीटों के लिए अड़े हुए थे। पूरा तथा स्थायी समझौता हो सकना तो कठिन दिखाई दिया, परन्तु अनेक बातों के संबंध में सद्भावनापूर्ण समझौता हो गया और एक कमेटी बंगाल विषयक बातों का निर्णय करने के लिए

कलकत्ता गई। जिन बातों पर समझौता हो गया था उनमें एक बात यह थी कि केन्द्रीय धारा सभा में ब्रिटिश भारत के मुसलमानों को ३२ प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। समझौते की एक और बात यह थी कि सिंध को एक पृथक् प्रांत बना दिया जाय, परन्तु उसके खर्च के लिए भारत सरकार की ओर से सहायता न दी जाय और वहाँ के अल्प-संख्यक हिन्दुओं की रक्षा की समुचित व्यवस्था कर दी जाय। दुर्भाग्य से समझौते की यह बात ज़ाहिर हो गई और जब सम्मेलन की कमेटी की कलकत्ता में बैठकें हो रही थीं, तभी सर सैमुअल होर ने लंदन में घोषणा कर दी कि ब्रिटिश सरकार ने यह निर्णय कर लिया है कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में मुसलमानों को ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत यानी एक तिहाई प्रतिनिधित्व मिलेगा और सिंध को पृथक् प्रान्त बनाकर उसे भारत-सरकार से आर्थिक सहायता भी दी जायगी। हिन्दुओं की रक्षा की व्यवस्था की कोई बात नहीं कही गई। इस घोषणा का जादू सा असर हुआ और जो कमेटी कलकत्ता में समझौता कराने का प्रयत्न कर रही थी, उसका फ़ौरन खातमा हो गया। एक सम्प्रदाय को अब समझौते की आवश्यकता ही क्या रह गई थी?

तीसरी गोलमेज़ कान्फ्रेन्स

इसी वर्ष अर्थात् ईस्वी सन् १९३२ में एक और गोलमेज़ कान्फ्रेंस हुई। यह कान्फ्रेन्स १७ नवम्बर को आरम्भ होकर २४ दिसम्बर को समाप्त हो गई। आख़िरी दिन का अधिवेशन सर्वसाधारण के लिये भी खुला था। इस कान्फ्रेन्स में इङ्गलैंड के मज़दूर दल ने सहयोग न दिया, क्योंकि वह प्रगतिशील नीति से और भी पीछे हट रही थी। अब की बार सदस्यों की संख्या बहुत कम कर दी गई थी और उसमें प्रतिक्रियावाद का बोलबाला रहा। पिछली दो कान्फ्रेन्सों के जिन सदस्यों की उपस्थिति अधिकारियों को वांछनीय नहीं ज्ञात हुई, उन्हें अब की बार निमंत्रित नहीं किया गया। सर सैमुअल होर को माननीय श्रीनिवास

शास्त्री जैसे सज्जनों को भी निमंत्रित करने की आवश्यकता नहीं महसूस हुई। इस कान्फ्रेन्स से जैसे निष्कर्षों की आशा की जा सकती थी, वैसे ही वे थे। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:-

(१) जहां तक ब्रिटिश भारत का सम्बन्ध है, भारतीय संघ की धारा सभा (Federal Legislature) में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत रहेगा।

(२) भारतीय संघ (Federation) कब स्थापित होगा, इसकी कोई निश्चित मिति प्रकट करना संभव नहीं है।

(३) सिंध और उड़ीसा पृथक् प्रान्त होंगे।

(४) रक्षा बजट को स्वीकृत करने में धारा सभा के मत की अनिवार्य आवश्यकता न होगी।

(५) यदि भारत के बाहर भारतीय हितों के अतिरिक्त भारत की सेनाओं का उपयोग किया जायगा तो उसमें संघ के मंत्रि-मंडल और संघ की धारा सभा का निर्णय लिया जायगा, पर सम्राट् को इस बात का पूर्ण अधिकार रहेगा कि वे भारत के बाहर भी भारतीय सेनाओं का उपयोग कर सकेंगे।

आतंकवादी आन्दोलन का ज़ोर

हमने गत पृष्ठों में १९२९ तक की कुछ प्रमुख क्रान्तिकारी घटनाओं का उल्लेख किया है। ईस्वी सन् १९३० से ३२ तक कई क्रान्तिकारी घटनाएँ हुईं। ८ अगस्त सन् १९३० ई० को झाँसी के कमिश्नर को बम से उड़ाने का असफल प्रयत्न किया गया, जिसके लिए लक्ष्मीकान्त शुक्ल की गिरफ़्तारी हुई। ईस्वी सन् १९३० में लाहौर शहर और लाहौर छावनी के बीच में दो क्रान्तिकारियों और पुलिस के बीच गोलियाँ चलीं, जिसमें विश्वेश्वरनाथ नामका एक युवक मारा गया। २३ दिसम्बर १९३० को लाहौर में एक ऐसी घटना हुई जिसने सरकारी क्षेत्रों में तहलका मचा दिया। पंजाब के तत्कालीन गवर्नर पंजाब विश्वविद्यालय से दीक्षान्त भाषण देकर लौट रहे थे कि उन पर हरिकिशन नामक एक युवक ने पिस्तौल चलाकर उन्हें घायल कर दिया। इसी समय पुलिस इन्स्पेक्टर चन्दनसिंह को भी गोली मारी गई, जिससे कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। इस अपराध के लिये ९ जून १९३१ को हरिकिशन को फाँसी दी गई। ९ अक्टूबर १९३० को बम्बई में क्रान्तिकारियों के एक दल ने सार्जण्ट टेलर और उनकी पत्नी पर गोली चलाकर उन्हें घायल कर दिया। ३० अगस्त १९३० को चटगांव में एक सोलह वर्षीय युवक ने पुलिस इन्स्पेक्टर खानबहादुर असनुल्लाह पर गोलियाँ चलाईं, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि चटगाँव शस्त्रागार कांड को अधिक बढ़ाने में इस युवक का हाथ था। इस का नाम हरिपद भट्टाचार्य था, जिसे आजन्म काले पानी की सज़ा हुई थी। सन् १९३० की १४ जून को डा० नारायण बैनर्जी आदि पर मछुआ बाज़ार बम केस चला, जिसमें १० अभियुक्तों को सज़ा हुई।

कलकत्ते के खुफ़िया विभाग के इन्स्पेक्टर जनरल पर गोपीमोहन शाह नामक एक क्रान्तिकारी के आक्रमण का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इसके बाद १५ अगस्त १९३० को अनुजसिंह गुप्ता और दिनेश मंजुदा नामक दो क्रान्तिकारी युवकों ने मि० टेगर्ट की गाड़ी पर दो बम फेंके। मि० टेगर्ट बाल-बाल बच गये, अनुज वहीं गोली से मार दिया गया और दिनेश को आजन्म काले पानी की सज़ा हुई। ता० २९ अगस्त सन् १९३० को ढाका में बंगाल के पुलिस जनरल इन्स्पेक्टर मि० लौमैन पर विनयकृष्ण बोस नामक एक बंगाली युवक ने गोलियाँ चलाईं जिनसे उनका काम तमाम हो गया। ८ दिसम्बर १९३० को कलकत्ते की राइटर्स बिल्डिंग में (जहां सरकारी दफ्तर है) जेल के इन्स्पेक्टर जनरल मि० सिम्पसन पर कुछ क्रांतिकारी युवकों ने ६ गोलियाँ दाग कर उन्हें मार डाला।

यहां यह बात स्मरण रखने योग्य है कि इस बिल्डिंग में कड़ा प्रबंध होते हुए भी ये युवक एक बड़े पुलिस अफ़सर की हत्या करने में सफल हुए। इन्हीं युवकों ने जुडीशियल सेक्रेटरी मि० नेलसन पर भी गोलियाँ चलाईं, पर वे बच गये। इनमें से दो युवकों ने आत्महत्या करली और शेष को सजाएँ हुईं। बंगाल सरकार की रिपोर्ट के अनुसार ईस्वी सन् १९३० में १० राजनैतिक हत्याएँ हुईं और उनके कारण ५१ क्रांतिकारी फांसी पर लटकाये गए। २ जनवरी सन् १९३१ को कानपुर में अशोककुमार नामक एक क्रान्तिकारी ने टीकाराम नामक पुलिस इन्स्पेक्टर पर गोली से वार किया पर वे बच गए। ईस्वी सन् १९३१ में बिहार के पटना नगर में पुलिस ने बम का एक कारखाना पकड़ा। इस समय पुलिस पर बम फेंका गया, जिसके कारण एक सब-इन्स्पेक्टर मारा गया। इसमें ११ व्यक्तियों पर मुकद्दमा चला जिन्हें विभिन्न प्रकार की सजाएँ हुईं। इसी साल अर्थात् ईस्वी सन् १९३१ में बिहार में मोतीहारी षड्यंत्र चला जिसमें कुछ युवकों पर क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों के आरोप

लगाये गये थे। बिहार के हाजीपुर गाँव में एक ट्रेन-डकैती भी हुई, जिसका संबंध क्रान्तिकारियों से था। १ अगस्त १९३१ को बिहार के पटना नगर में एक बम फटा, जिससे रामबाबू नामक एक व्यक्ति सख़्त घायल हुआ। इसी साल २२ जुलाई को पूना में बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर सर अर्नेस्ट हार्सन पर वासुदेव बलवन्त नामक एक महाराष्ट्र युवक ने दो गोलियाँ चलाईं, पर गवर्नर महोदय ईश्वर की कृपा से बाल-बाल बच गये। इस युवक को ८ वर्ष की सज़ा हुई। ७ अप्रैल सन् १९३१ को मिदनापुर के ज़िला मजिस्ट्रेट जेम्स पैडी पर प्रदर्शनी में किसी ने गोलियाँ दागी। इससे कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई। २७ जुलाई को बंगाल के चौबीस परगनों के डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज मि० गार्लिक को उन्हीं की अदालत में विमलदास नामक एक क्रान्तिकारी ने गोली से मार दिया। विमल भी वहीं गोली से मार दिया गया! कहा जाता है कि इसी ने मिदनापुर के मजिस्ट्रेट मि० जेम्स पैडी की हत्या की थी। अगस्त १९३१ में ढाका के कमिश्नर मि० एलेक्ज़ैंडर कैसल्स पर एक युवक ने गोली से वार किया। २८ अक्टूबर १९३१ को ढाका के मजिस्ट्रेट मि० एल० जी० डर्नो पर दो युवकों ने गोली चलाई। २९ अक्टूबर को बंगाल यूरोपियन एसोसिएशन के मि० विलियम्स पर विमलदास नामक एक क्रान्तिकारी युवक ने दो गोलियां चलाई जिनसे उनको साधारण चोट आई। इस अभियोग में विमलदास को १० साल की सज़ा हुई। २४ दिसम्बर १९३१ को कुमारी शान्ति घोष और कुमारी सुनीति चौधरी नामक दो क्रान्तिकारी युवतियों ने मि० बी० जी० स्टीवेन्स नामक मजिस्ट्रेट पर उनके कमरे में गोलियाँ चलाईं जिनसे मि० स्टीवेन्स की वहीं मृत्यु हो गई। यह पहला अवसर था कि युवतियों ने इस प्रकार की आतंकवादी प्रवृत्ति में भाग लिया। ६ फरवरी सन् १९३२ को वीणादास नामक एक छात्रा ने बंगाल के गवर्नर पर कलकत्ता विश्व-विद्यालय के भवन में ५ गोलियां चलाईं। गवर्नर महोदय विश्वविद्यालय

में दीक्षान्त भाषण दे रहे थे और उक्त वीणादास उपाधि-पत्र लेने आई हुई थीं। गवर्नर महोदय तो बाल-बाल बच गये पर सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक डा० दिनेशचन्द्र सेन को साधारण चोट आई। वीणादास गिरफ्तार कर ली गई और उसे भारी सज़ा दी गई। ३० अप्रैल सन १९३२ को बंगाल के मिदनापुर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० डगलस को दो नवयुवकों ने उन्हीं के दफ्तर में गोलियाँ चलाकर मार डाला। इनमें से एक घातक पकड़ा गया। इसी समय के लगभग कोमिला के अतिरिक्त पुलिस सुपरिंटेण्डेंट मि० एलिसा की भी हत्या की गई।

आतंकवादियों की इन कार्रवाइयों को रोकने के लिए सरकार ने बड़े कड़े क़दम उठाये। बंगाल के कई ज़िलों में, जहां आतंकवाद का दौर-दौरा था, सरकार ने फ़ौजें तैनात कीं। नागरिकों पर कठोर नियंत्रण लगाए गये। चटगांव, मिदनापुर और चौबीस परगना के ज़िलों पर सामूहिक जुर्माने किये गए। अंडमान टापू, जहां पहले काले पानी की सज़ा पाये हुए क़ैदी रक्खे जाते थे, फिर से खोल दिया गया। इसका जनता ने घोर विरोध किया पर सरकार ने एक न सुनी।

मज़दूर कान्फ्रेन्स

इसी वर्ष अर्थात् ईस्वी सन् १९३२ में दो महत्वपूर्ण मज़दूर कॉन्फ्रेन्सों के अधिवेशन हुए। १९ जुलाई को पहला अधिवेशन इण्डियन ट्रेड यूनियन फेडरेशन का हुआ, जिसकी अध्यक्षता मि० वी० वी० गिरी ने की। इसमें जो प्रस्ताव पास हुए उनमें से एक भारत के भावी शासन विधान में मज़दूरों की स्थिति के संबंध में था। दूसरा अधिवेशन ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस का १२ सितम्बर को श्री जे० एन० मित्र के सभापतित्व में हुआ। इस अधिवेशन में साम्प्रदायिक निर्णय और ओटावा पैक्ट का घोर विरोध किया गया, और कहा गया कि ये देशहित के लिए बड़े घातक हैं।

ईस्वी सन् १९३३ का राजनैतिक आंदोलन

ईस्वी सन् १९३३ के आरम्भ में राजनैतिक आन्दोलन की गति-विधि पूर्व वर्ष की तरह ज़ोर-शोर के साथ चलती रही। २६ जनवरी को स्वतंत्रता दिवस बहुत धूमधाम और उत्साह के साथ मनाया गया। स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में सिर्फ़ एक कलकत्ता नगर में ३७० गिरफ़्तारियाँ हुईं। पुलिस को सभाओं और प्रदर्शनों को भंग करने के लिए कई बार लाठीचार्ज करना पड़ा। हुगली ज़िले के बदनगंज नामक ग्राम में कांग्रेस जुलूस को भंग करने के लिए पुलिस ने गोलियाँ चलाईं। गुजरात के बोरसद नामक नगर में स्वतंत्रता दिवस प्रदर्शन के उपलक्ष में महात्मा गांधी की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबा गांधी महिलाओं के एक जुलूस का नेतृत्व करती हुई गिरफ़्तार की गईं। उन पर मुक़दमा चलाया गया और उन्हें ६ मास की सज़ा हुई।

श्वेतपत्र

१७ मार्च ईस्वी सन् १९३३ को ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत के वैधानिक सुधारों के संबंध में एक श्वेतपत्र प्रकाशित हुआ। इस श्वेतपत्र की आयोजना इतनी प्रतिक्रियापूर्ण तथा असंतोषजनक थी कि भारत के प्रत्येक उन्नतिशीलदल ने उसे स्वीकृति के लिए पूर्णतः अयोग्य बतलाया। प्रायः सभी भारतीय नेताओं ने उसकी कठोर भाषा में निंदा की। उसमें और गोलमेज़ कान्फ़्रेन्स की कमेटियों की अनेक

सिफ़ारिशों में कोई सादृश्य ही नहीं दिखाई पड़ता था। जुलाई १९२० में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में भाषण देते हुए लॉर्ड इर्विन ने जो कुछ कहा था, उसका एक अंश निम्नलिखित आशयका था:—

"ब्रिटिश सरकार का यह विश्वास है कि कान्फ्रेन्स के मार्ग से ऐसे निष्कर्षों पर पहुंच सकना संभव है जो दोनों देशों और सभी राजनैतिक दलों तथा हितों को सम्मानपूर्वक मान्य हो सकें......इस प्रकार के जिस किसी भी समझौते पर कान्फ्रेन्स पहुँच सकेगी, उसी के आधार पर ब्रिटिश सरकार प्रस्ताव तैयार करके उन्हें पार्लियामेंट के सम्मुख उपस्थित करेगी। ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य यह नहीं है कि कान्फ्रेन्स में कोरा वाद-विवाद ही हो कर रह जाय, बल्कि यह है कि दोनों देशों के प्रतिनिधि मिल कर ऐसा समझौता कर सकें जिसके आधार पर पार्लियामेंट के सम्मुख उपस्थित करने के लिए निश्चित प्रस्ताव तैयार किये जा सकें।"

दुःख की बात है कि ब्रिटिश सरकारने उक्त आश्वासन की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में भारतीय सदस्यों द्वारा प्रकट किये गए विचारों की अवहेलना की गई। इस पत्र की आयोजना में भारतवासियों की हार्दिक आकांक्षाओं को निर्दयतापूर्वक कुचला गया। आयोजना पर विचार करने के लिए पार्लियामेंट की एक सिलेक्ट कमेटी नियुक्त की गई और उसके साथ कुछ भारतीयों को भी नामज़द कर दिया गया, जो गवाहों से ज़िरह करने में तो भाग ले सकते थे, परन्तु कमेटी के वाद-विवाद तथा विचार-विनिमय में नहीं। ब्रिटिश भारत के सब भारतीय प्रतिनिधियों ने मिलकर हिज़ हाइनेस आगाखां के नेतृत्व में एक संयुक्त-वक्तव्य कमेटी के विचारार्थ पेश किया और सर तेजबहादुर सप्रू ने अलग से एक दूसरा वक्तव्य। इन सज्जनों के वक्तव्यों में कोई गैर-वाजिबी माँगें नहीं पेश की गई थीं। परन्तु कमेटी ने उन्हें ऐसी बेपरवाही से उड़ा दिया जैसे वह कोई पागलों का प्रलाप हो। कमेटी ने बहुमत

से जो प्रस्ताव पास किये वे प्रायः वही थे जो श्वेतपत्र में किये गए थे। जहां कहीं उसने उससे भिन्न मत प्रकट किया, वह भारत के अनुकूल न होकर और भी प्रतिकूल था। कमेटी के नये प्रस्तावों में सबसे अधिक आपत्तिजनक बात यह थी कि केन्द्रीय धारा सभा के सदस्यों का निर्वाचन सीधा वोटरों द्वारा न होगा। घोर सम्प्रदायवादियों तथा प्रतिक्रियावादियों के अतिरिक्त सभी सार्वजनिक संस्थाओं तथा सभी व्यक्तियों ने कमेटी की रिपोर्ट की कड़ी से कड़ी निन्दा की।

कलकत्ते में कांग्रेस का विशेषाधिवेशन

देश की राष्ट्रीय प्रवृत्तियों पर विचार करने के लिए ईस्वी सन् १९३३ की ११ अप्रैल को पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेषाधिवेशन करने का आयोजन किया गया। ईस्वी सन् १९३२ के कांग्रेस अधिवेशन की तरह सरकार ने इस अधिवेशन पर भी प्रतिबंध लगा दिया। कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष पं० मालवीयजी तथा उसके अन्य मुख्य संचालक श्री एम० एस० अणे, डा० आलम, डा० सैयद मुहम्मद आदि गिरफ्तार कर लिये गये। इनकी गिरफ्तारी के बाद श्रीमती जे० एम० सेनगुप्ता ने २५०० कांग्रेसजनों के साथ निर्दिष्ट स्थान में पहुँच कर कांग्रेस के अधिवेशन की रस्म पूरी की और उनके सभापतित्व में सभा की गई। इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुए उनमें मुख्य मुख्य ये थेः—

१. कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है।

२. इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए भद्रअवज्ञा आन्दोलन करना।

३. विदेशी वस्त्र और सब प्रकार के ब्रिटिश माल का बहिष्कार करना। इसके अतिरिक्त इसमें श्वेतपत्र के प्रति घोर विरोध का प्रस्ताव पास हुआ।

यह सभा समाप्त भी न होने पाई थी कि पुलिस का एक बड़ा दल

मौके पर आ पहुंचा और उसने श्रीमती सेनगुप्ता और अन्य २५० कांग्रेसजनों को गिरफ़्तार कर लिया। इनमें ४० महिलाएँ थीं। पुलिस को इन गिरफ़्तारियों से ही सन्तोष न हुआ, उसने सभा को भी लाठी द्वारा भंग कर दिया। पं० मालवीयजी ने इस समय की देश की उठती हुई भावनाओं पर प्रकाश डालते हुए जो वक्तव्य प्रकाशित किया था, उसका सारांश निम्नलिखित है:—

"गत पन्द्रह मास में लगभग १०००२० व्यक्ति गिरफ़्तार किये गये, जिनमें कई हज़ार स्त्रियाँ और बच्चे भी थे। यह एक खुला रहस्य है कि जब सरकार ने दमन का प्रारम्भ किया था तब उसने यह सोचा था कि वह छः सप्ताह के अन्दर कांग्रेस को कुचल देगी। १५ मास बीत गये हैं, पर वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुई है। और १५ मास निकल जाने पर भी, मुझे आशा है, वह सफल न होगी।" कहने का भाव यह है कि मालवीयजी सरीखे कांग्रेस के सबसे पुराने और गंभीर नेता के उक्त वक्तव्य से यह स्पष्टतया मालूम होता है कि राष्ट्र उस समय अपने देश की स्वाधीनता के लिए हर प्रकार का आत्म-त्याग और कष्ट-सहन करने के लिए तैयार था। देश में उत्साह की आंधी आ रही थी, इतने ही में कुछ घटनाएँ ऐसी हुईं जिनके कारण इन प्रवृत्तियों का कुछ समय के लिए दिशापरिवर्तन हो गया।

महात्मा गांधी का २१ दिन का उपवास

राष्ट्र की इन्हीं प्रवृत्तियों के बीच एकाएक यह समाचार मिला कि महात्मा गांधी ने ८ मई १९३३ को अपनी आत्म-शुद्धि के लिए २१ दिन का उपवास आरम्भ कर दिया है। इस उपवास को आरम्भ करने के पहले महात्माजी ने जो वक्तव्य दिया वह निम्नलिखित है:—"यह अपनी और अपने साथियों की शुद्धि के लिए, जिससे वे हरिजन-कार्य में अधिक सतर्कता और सावधानता के साथ काम कर सकें, हृदय से की गई प्रार्थना है। इसलिए मैं अपने भारतीय तथा संसार भर के मित्रों से अनुरोध करता हूँ कि वे मेरे लिए मेरे साथ प्रार्थना करें कि मैं इस अग्नि-परीक्षा को सकुशल पार करूँ, और चाहे मैं मरूँ या जिऊं, मैंने जिस उद्देश्य से उपवास किया है वह पूरा हो। मैं अपने सनातनी भाइयों से अनुरोध करता हूँ कि वे प्रार्थना करें कि इस उपवास का परिणाम मेरे लिए चाहे जो कुछ हो, कम से कम वह सुनहरी ढकना जिसने सत्य को ढक रक्खा है, हट जाय।" उन्होंने एक पत्र-प्रतिनिधि से कहा "किसी धार्मिक आन्दोलन की सफलता उसके आयोजकों की बौद्धिक या भौतिक शक्तियों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि आत्मिक शक्ति पर निर्भर करती है, और उपवास इस शक्ति की वृद्धि करने का सबसे अधिक सुनिश्चित उपाय है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं महात्माजी के जीवन का आधार भारत की आध्यात्मिक वृत्ति थी, जिसे आजकल के भौतिकवाद के ज़माने में समझना बहुत ही मुश्किल है। वे अंतरात्मा की आवाज़ को सबसे

अधिक महत्त्व देते थे और उसी के अनुसार कार्य करते थे। भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों में भी इस प्रकार की बातें पाई जाती थीं। पर साधारणतया उस समय महात्माजी की यह कार्रवाई पसन्द नहीं की गई। गांधीजी ने उपवास आरम्भ करने के पहले पं० जवाहरलाल नेहरू को एक तार भेजा था जिसे पढ़कर पंडितजी का हृदय द्रवीभूत हो गया, और उन्होंने गांधीजी को निम्नलिखित तार भेजा:–

"Your letter What can I say about matters, I do not understand? I feel lost in strange country where you are the only familiar landmark and I try to grope my way in the dark, but I stumble. Whatever happens, my love and thoughts will be with you."

आपका पत्र मिला। उन मामलों के संबंध में मैं क्या कह सकता हूँ, जिन्हें मैं खुद नहीं समझता? इस अज्ञात देश में, जहां आप ही एक मात्र परिचित मार्ग दर्शक हैं, मैं अपने को खोया हुआ सा पाता हूँ। मैं अंधकार में अपने मार्ग को ढूँढ़ने का प्रयत्न करता हूँ किन्तु ठोकर खाकर गिर पड़ता हूँ। जो हो, मेरा प्रेम और मेरे विचार आपके साथ होंगे।" इसके बाद पं० जवाहरलाल नेहरू ने गांधीजी को एक दूसरा तार भेजाः—

"Now that you are launched on your great enterprise, may I send you again love and greetings, and assure you that I feel more clearly now that whatever happens, it is well, and whatever happens, you win."

अर्थात्, "अब जब कि आपने अपना महान् उपवास आरम्भ कर दिया

है, मैं आपको अपना प्रेम और बधाइयां भेजता हूँ, और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अब मैं और भी अधिक स्पष्ट रूप से अनुभव करता हूँ कि जो कुछ होगा अच्छे के लिए ही होगा, और जो कुछ होगा उसमें आपकी विजय होगी।"

महात्माजी ने इस उपवास को सफलता के साथ पूरा किया। उपवास करने के पहले ही दिन वे जेल से छोड़ दिये गए, और उनके आदेशानुसार छः सप्ताह के लिए सविनय अवज्ञा का आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। (Autobiography of Pundit jawaharlal Nehru)

बाबू सुभाषचन्द्र बोस ने अपने "The Indian Struggle" नामक अंग्रेज़ी ग्रन्थ में लिखा है कि महात्माजी के इन उपवासों को लेकर विदेशों में भारत के ख़िलाफ़ काफ़ी प्रचार किया गया। इस समय श्री सुभाषचन्द्र बोस १५ मास की कठोर सज़ा पूरी कर स्वास्थ्य-लाभ के लिए आस्ट्रिया की राजधानी विएना (Vienna) में पहुँचे थे। वहां उन्होंने इन आलोचनाओं को सुना था, जिनमें यह दिखलाया गया था कि भारतवर्ष में अछूतों के प्रति कितना निर्मम और निर्दय व्यवहार किया जाता है, और उनके मानवोचित अधिकारों पर कितना कुठाराघात किया जाता है। इसके लिये महात्माजी के उपवास का उदाहरण दिया जाता था।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, महात्माजी ने पहले पहल छः सप्ताह के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया था, पर आगे चल कर उन्होंने यह अवधि छः सप्ताह के लिए अर्थात् जुलाई के आख़िर तक और बढ़ा दी। यह आन्दोलन स्थगित करने के समय उन्होंने भारत सरकार से यह अनुरोध किया कि वह अपने द्वारा जारी किये गए दमनकारी ऑर्डिनेन्सों को वापस ले ले, और सविनय अवज्ञा वाले क़ैदियों को मुक्त कर दे। पर सरकार ने उनकी एक न सुनी और वह अपनी हठ पर दृढ़ रही।

श्री सुभाषचन्द्र और श्री विट्ठलभाई का वक्तव्य

जब भारतवर्ष में ये घटनाएँ घट रही थीं तब श्री सुभाषचन्द्र बोस, जैसा कि ऊपर कहा गया है, यूरोप के विएना नगर में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। इसी समय भारतीय धारा-सभा के अध्यक्ष स्वर्गीय श्री विट्ठलभाई पटेल अमेरिका में भारत के पक्ष में प्रबल प्रचार करते हुए स्वास्थ्य लाभ करने के लिए विएना पहुँचे। इन दोनों देशभक्तों को महात्माजी का सविनय अवज्ञा आन्दोलन बंद करने का कार्य पसंद न आया। इन्होंने निम्नलिखित संयुक्त वक्तव्य निकला:-

"The latest action of Mr. Gandhi in suspending Civil Disobedience is a confession of failure..........We are clearly of the opinion that Mr. Gandhi as a political leader has failed. The time has come for a radical reorganisation of the Congress on a new principle, with a new method, for which a new leader is essential."

अर्थात्, "भद्र अवज्ञा आन्दोलन को बंद करने का गांधीजी का सब से पिछला कार्य असफलता की स्वीकृति है।......हमारा निश्चित मत है कि राजनैतिक नेता के रूप में गांधीजी असफल हो चुके हैं। वह समय आ गया है जब कि नवीन सिद्धान्त के आधार पर नवीन पद्धति को ग्रहण कर, कांग्रेस का सर्वथा मौलिक प्रकार का पुनर्गठन किया जाना चाहिए, जिसके लिए एक नये नेता की आवश्यकता है।"

कहने का मतलब यह है कि महात्माजी के कुछ अनन्य भक्तों ने भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगित करने को पसंद नहीं किया। पहले पहल पं० जवाहरलाल नेहरू को भी उनका यह कार्य नहीं रुचा, पर वे महात्माजी के अनेक चमत्कारपूर्ण कार्यों से प्रभावित हो चुके थे,

इसलिए यद्यपि उनकी बुद्धि महात्माजी के इस प्रकार के पुराने ढंग के कार्यों का साथ नहीं देती थी पर उनका हृदय उनका साथ देता था। वे अपने "Mahatma Gandhi" नामक अंग्रेज़ी ग्रन्थ में लिखते हैं:–

"But Congress at present meant Gandhiji. What would he do? Ideologically he was sometimes amazingly backward, and yet in action he had been the greatest revolutionary of recent times in India. He was a unique personality, and it was impossible to judge him by the usual standards, even to apply ordinary canons of logic to him. But, because he was a revolutionary at bottom and was pledged to political independence for India, he was bound to play an uncompromising role till that independence was achieved. And in this very process he would release tremendous mass energies and would himself, I half hoped, advance step by step toward the social goal."

अर्थात्, "वर्तमान समय में कांग्रेस का अर्थ ही गांधीजी है। वे क्या करेंगे? विचार-धारा की दृष्टि से कभी कभी वे आश्चर्यजनक रूप से पिछड़े हुए मालूम होते थे। पर क्रियात्मक रूप में भारतवर्ष में वे आधुनिक समय के सबसे बड़े क्रान्तिकारी थे। उनका व्यक्तित्व अपूर्व था और उन्हें साधारण मापदंडों से जांचना असम्भव था; यहां तक कि उन पर तर्कशास्त्र के साधारण नियम भी लागू नहीं किये जा सकते थे। पर चूंकि वे मूल में क्रान्तिकारी थे और भारतीय स्वतंत्रता के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे, अतएव जब तक स्वाधीनता की प्राप्ति न हो जाय तब तक वे अपने पथ पर अटल रहने के लिए बाध्य थे। मुझे आशा थी

कि वे इसी प्रक्रिया में जनता की महान् शक्ति को प्रस्फुटित कर देंगे और धीरे-धीरे सामाजिक लक्ष्य की ओर खुद भी आगे बढ़ेंगे।

पूना कान्फ्रेन्स

इसी वर्ष अर्थात् ईस्वी सन् १९३३ के जुलाई मास में पूना में उन प्रमुख कांग्रेसजनों का एक सम्मेलन हुआ जो जेल से बाहर थे। इसमें अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस समिति के बहुत से सदस्यों ने भाग लिया। इसमें एक दल तो भद्र अवज्ञा का आन्दोलन स्थगित करने के पक्ष में था और दूसरा दल उक्त आन्दोलन को और भी अधिक ज़ोर-शोर और तेज़ी से चलाने के लिए आग्रह कर रहा था। पहले दल का इसमें बहुमत था और वह स्वराज्यवादियों की नीति को पुनर्जीवित करके धारा सभाओं के अंदर सरकार से टक्कर लेने की योजना का पक्ष समर्थन कर रहा था। बहुत वाद-विवाद के बाद सारा मामला गांधीजी के निर्णय के ऊपर छोड़ दिया गया। गांधीजी ने एक वक्त और वाइसराय से मिल कर समझौता करने का निश्चय किया। उन्होंने यह भी प्रकट किया कि अगर इस समझौते में असफलता हुई तो वे अपने विश्वसनीय साथियों के साथ व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की आयोजना करेंगे। गांधीजी ने यह भी प्रकट किया कि वातावरण अनुकूल न होने के कारण इस वक्त हमें सामूहिक सत्याग्रह छोड़ देना पड़ेगा। पूना कान्फ्रेन्स के बाद गांधीजी ने वाइसरॉय से मुलाकात के लिए अनुरोध किया, पर इसमें उन्हें सफलता न मिली। वाइसरॉय ने बड़ा रूखा सा जवाब दिया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

व्यक्तिगत सत्याग्रह का दूसरा नाम योग्य व्यक्तियों का सत्याग्रह (Quality Satyagraha) है। महात्मा गांधी के मतानुसार इस सत्याग्रह में वे ही लोग सम्मिलित हो सकते थे जिन्होंने सत्याग्रह के महान् तत्त्व को आत्मसात् कर लिया था और जिन्होंने इसकी शिक्षा पाई थी। इसी सिद्धान्त के आधार पर महात्माजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की आयोजना की। कार्यवाहक-सभापति की आज्ञानुसार सारी कांग्रेस संस्थाएं और युद्ध-समितियाँ उठा दी गईं। इस सत्याग्रह के संबंध में डा० बी० पट्टाभि सीतारामय्या द्वारा लिखित और श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा अनुवादित "कांग्रेस का इतिहास" नामक ग्रन्थ में जो कुछ वर्णन दिया गया है उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरम्भ इस प्रकार किया कि उनके पास जो वस्तु सबसे अधिक मूल्यवान् थी उसका परित्याग कर दिया। इस प्रकार उन्होंने उस कष्ट में भाग लेने की चेष्टा की जिसे आन्दोलन के दौरान में हज़ारों ग्रामीणों ने सहा था। उन्होंने साबरमती आश्रम तोड़ दिया और आश्रम के निवासियों को और सारे काम छोड़ कर युद्ध में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने सारा आश्रम खाली कर दिया और उसकी जंगम सम्पत्ति कुछ संस्थाओं को सार्वजनिक उपयोग के लिए दे दी। वह किसी दूसरे से लगान आदि न दिलाना चाहते थे; इसलिए वह ज़मीन, इमारत और खेती सरकार को देने को तैयार हो गये। सरकार की ओर से केवल उस पत्र की पहुँच में एक पंक्ति भेज दी गई।"

साबरमती आश्रम का दान

जब सरकार ने गांधीजी का दान स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने आश्रम को हरिजन-आन्दोलन के निमित्त अर्पण कर दिया। इस संबंध में गांधीजी का वह वक्तव्य याद आता है जो उन्होंने १६३० में दांडी यात्रा के अवसर पर दिया था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक स्वराज्य न मिल जायगा, तब तक वह आश्रम को वापस न जायेंगे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और एक बार को छोड़कर, जब वह अपने एक बीमार मित्र को देखने गए थे, १२ मार्च १६३० के बाद आश्रम में फिर क़दम न रक्खा। इस प्रकार आश्रम को हरिजन संघ के अर्पण कर उन्होंने पार्थिव जगत से बांध रखने वाली इस अन्तिम वस्तु को, जिसके प्रति सम्भव था उनके हृदय में मोह बना रहता, त्याग कर दिया।

१ अगस्त १६३३ को गांधीजी रास नामक गांव की, जो १६३० की फरवरी में श्री वल्लभभाई की गिरफ्तारी के बाद से प्रसिद्ध पा चुका था, यात्रा करने वाले थे। पर एक दिन पहले ही आधी रात के समय गांधीजी को उनके ३४ आश्रम-वासियों के साथ गिरफ़्तार कर लिया गया। गांधीजी चार अगस्त की सुबह को छोड़ दिये गये और उन्हें यरवदा गांव की सीमा छोड़कर पूना जाकर रहने का नोटिस दिया गया। इस आज्ञा की निश्चय ही अवहेलना की गई और रिहाई के आधे घंटे के भीतर गांधीजी फिर गिरफ़्तार कर लिये गये और उन्हें साल भर की सज़ा दी गई। "उनकी गिरफ़्तारी और सज़ा के बाद ही व्यक्तिगत सत्याग्रह सारे प्रान्तों में आरम्भ हो गया और पहले ही हफ़्ते में सैकड़ों कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार हो गये। कांग्रेस के कार्यवाहक अध्यक्ष श्री अणे अकोला से यात्रा करते समय अपने १३ साथियों के साथ १५ अगस्त को गिरफ़्तार कर लिये गये, और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर की बारी आई। परन्तु उन्होंने गिरफ़्तारी से पहले

आज्ञा जारी की कि कार्यवाहक अध्यक्ष का पद और डिक्टेटरों की नियुक्ति का सिलसिला तोड़ दिया जाय, जिससे युद्ध सचमुच व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप धारण करले। गांधीजी ने जो मार्ग दिखाया था उस पर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देश भर में कांग्रेस कार्यकर्त्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियों के अटूट तांते ने युद्ध को जारी रक्खा।"

गांधीजी का फिर से अनशन

जैसा कि पहले कहा गया है गांधीजी को व्यक्तिगत सत्याग्रह करने के उपलक्ष में एक वर्ष की सज़ा हुई और वे यरवदा की जेल में भेज दिये गये। पहले की तरह उन्हें इस बार जेल में हरिजन कार्य करने की सुविधाएँ न दी गईं। गांधीजी इस बात पर अड़ गये और वे पहले की तरह हरिजन कार्य की सुविधाओं के लिये ज़ोर देने लगे। सरकार भी अपनी ज़िद पर अड़ गई। इस पर गांधीजी ने फिर से उपवास करना शुरू कर दिया। एक सप्ताह के उपवास के बाद उनकी हालत बहुत खराब हो गई और ऐसा मालूम होने लगा मानो इस उपवास में उनके शरीर का अन्त हो जायगा। उन्हें स्वयं मृत्यु के दर्शन होने लगे। उन्होंने अपने पास का कुछ सामान अस्पताल की दाइयों को दे दिया। इधर सरकार भी चिन्तित हुई। वह यह सोचने लगी कि अगर बंदी अवस्था में गांधीजी का देहान्त हो गया तो सारी दुनिया में उसकी बदनामी होगी। इसलिए उसने उन्हें छोड़ने का निश्चय किया। कहा जाता है कि दीनबंधु सी० एफ० एण्डूज़ गांधीजी

के उपवास का हाल सुनकर विलायत से भारत आये और उन्होंने गांधीजी को छुड़ाने का सफल प्रयत्न किया। पं० जवाहरलालजी ने भी इस वक्त गांधीजी की जान बचाने का बहुत कुछ श्रेय एण्ड्रूज महोदय को दिया।

इसी समय इलाहाबाद में पं० जवाहरलालजी की माता सख्त बीमार हो गईं। उनकी अवस्था चिन्ताजनक होने से पंडितजी को सरकार ने जेल से छोड़ दिया। वे अपनी माता के पास कुछ दिन ठहर कर सीधे गांधीजी के पास पूना पहुँचे। उस समय गांधीजी बहुत कमज़ोर दिखलाई दिये, यद्यपि उनका स्वास्थ्य धीरे २ सुधर रहा था।

जेल से बाहर आकर गांधीजी ने यह घोषित किया, "चूंकि अगस्त १९३३ में मुझे एक साल की सज़ा हुई थी, और मैं उस अवधि के पहले ही जेल से छोड़ दिया गया हूँ, अतःएव मैं एक वर्ष पूरा होने तक, अर्थात ईस्वी सन् १९३४ के अगस्त मास तक, सत्याग्रह न करूंगा।"

ईस्वी सन् १९३३ के जुलाई मास में जब महात्माजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह करना शुरू किया था, उस समय उन्होंने यह प्रकट किया था कि कांग्रेस को इस समय जो असफलता हो रही है उसका कारण उसकी गुप्त कार्यवाही है। इसके अतिरिक्त महात्माजी का यह भी ख्याल हो चला था कि कांग्रेस-संगठन में अनैतिकता का दौरदौरा हो रहा है। यही कारण था कि कांग्रेस के तत्कालीन कार्यकारी अध्यक्ष श्री अणे महोदय ने महात्माजी के संकेत पर देश के कांग्रेस संगठनों को भंग कर दिया था। इससे देश में बड़ी निराशा छा गई थी। देश की इस निराशामय-स्थिति में फिर से जीवन लाने के लिये डा० अन्सारी और डा० बी० सी० राय ने ईस्वी सन् १९३४ के मार्च मास में अपने विचारों के कांग्रेस सदस्यों की एक परिषद् बुलाई, इस समय पं० जवाहरलाल नेहरु कलकत्ते में राजविद्रोहात्मक भाषण देने के कारण

ईस्वी सन् १९३४ के जनवरी मास में फिर से जेलखाने में बंद दिये गए थे। इसलिए उनकी उपस्थिति और प्रभाव का यह परिषद् फ़ायदा न उठा सकी। तो भी इस परिषद् में अगले चुनावों को लड़ने के लिए स्वराज्यपार्टी को फिर से जीवित करने का प्रस्ताव पास हुआ। सरकार के ऑर्डिनेन्सों के कारण और जनता के मंद उत्साह के कारण सविनय अवज्ञा का अन्दोलन सफलता पूर्वक चलाने के लिए परिस्थिति अनुकूल न थी। इसके दूसरे ही मास बिहार के रांची नगर में बड़े पैमाने पर कांग्रेस जनों की एक सभा की गई, जिसमें दिल्ली परिषद् के प्रस्तावों पर स्वीकृति की मोहर लगाई गई। यहाँ इस बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि दिल्ली कान्फ्रेन्स के पहले पूना के श्री नृसिंह चिंतामणि केलकर और बम्बई के श्री जमनादास मेहता के प्रयत्न से बम्बई में डिमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी की कान्फ्रेन्स हुई थी, जिसमें अगले चुनावों को लड़ने का निश्चय किया गया था। कहा जाता है कि इस कान्फ्रेन्स का समर्थन महाराष्ट्र के कई ज़िलों ने किया था।

ईस्वी सन् १९३४ के मई मास में तीन वर्ष के अरसे के बाद बिहार के पटना नगर में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई गई। इस समय महात्मा गांधी ने भी कई परिस्थितियों के कारण कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के धारासभा-प्रवेश के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था। इसी बीच में सरकार ने भारत की धारा सभा को भंगकर नवम्बर मास में आम चुनाव (General election) करने की घोषणा कर दी।

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी ने इसी बैठक मे यह निश्चय किया कि कांग्रेस के निर्वाचनों का अधिकार स्वराज्य पार्टी को देने के बजाय वह स्वतः ही अपना एक पार्लियामेंटरी बोर्ड स्थापित करे जो इन निर्वाचनों के संबंध मे निर्णय करे। इसके अतिरिक्त कांग्रेस कमेटी

ने सविनय अवज्ञा का आंदोलन को रोकने का प्रस्ताव पास किया और महात्माजी को यह अधिकार दिया कि वे जब उचित समझें तब स्वयं व्यक्तिगत सत्याग्रह कर सकते हैं। महात्माजी ने भी इस समय यह प्रकट किया कि मौजूदा परिस्थितियों में वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो सविनय अवज्ञा की ज़िम्मेदारी को ले सकते हैं।

साम्प्रदायिक निर्णय पर मतभेद

मि० मेकडॉनल्ड के प्रधान मंत्रित्व में ब्रिटिश सरकार ने जिस प्रकार का साम्प्रदायिक निर्णय किया, उससे हिन्दुओं पर घोर अन्याय हुआ। इसके अतिरिक्त इस निर्णय ने जैसा विषवपन और जैसा सत्यानाश किया, उसे भारत की आनेवाली पीढ़ियाँ तक घृणा के साथ स्मरण करेंगी। भारत की एकता को तोड़ने का यह एक घृणित षड्यंत्र था, जिसकी सृष्टि अंग्रेज कूट नीतिज्ञों और सम्प्रदायवादी मुसलमानों ने की थी। सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहासकार मि० एडवर्ड टॉमसन ने लिखा है—

During the round table conference there was rather an obvious understanding and alliance between the more intransient Muslims and certain particularly undemocratic British Political circles. That alliance is constantly asserted in India to be the real block to progress. I believe I could prove

that this is largely true. And their is no question that in former times we frankly practised "divide and rule" method in India.

अर्थात्, "गोलमेज़ परिषद् के समय अधिक दुराग्रही मुसलमानों और कुछ जनतंत्रविरोधी ब्रिटिश राजनैतिक क्षेत्रों के बीच प्रत्यक्ष मैत्री हो गई थी। इस मैत्री का प्रभाव भारत की प्रगति के रास्ते में हमेशा रोड़े के रूप में पड़ा। मैं विश्वास करता हूँ और साथ ही मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि यह बात बहुत अंशो में सच है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्व समय में भी हमने भेद नीति (Divide and rule) से खुले तौर पर काम लिया था।"

कलकत्ता विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष, केन्द्रीय धारा सभा में राष्ट्रीय दल (Nationalist Party) के नेता डा० पी० एन० बैनर्जी अपने "मुस्लिम पोलिटिक्स" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:–

"By the Communal Award an attempt was made to create divisions among the different sections of the people of India."

अर्थात्, "साम्प्रदायिक निर्णय के द्वारा भारतवर्ष के विभिन्नदलों में फूट डालने का प्रयत्न किया गया है।" आगे चलकर इन्हीं महाशय ने अपने इसी ग्रन्थ में लिखा है कि यह सारा षड्यंत्र भारतवर्ष को हमेशा के लिए गुलाम बनाये रखने के लिये किया गया था।

तत्कालीन भारत सचिव लॉर्ड बर्कनहेड (Lord Birken head) ने तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड इर्विन को जो पत्र लिखा था, उसका कुछ अंश यह है:–

"We have always relied on the non-boycotting Moslems, on the depressed community, on the

business interests and and on many others to break down the attitude of boycott."

अर्थात्, "हम लोग बहिष्कार न करने वाले मुसलमानों, दलित जातियों और व्यापारी स्वार्थों तथा इसी प्रकार के अन्य समुदायों पर बहिष्कार की मनोवृत्ति को भंग करने के लिये निर्भर रहे हैं।"

इसी विषय पर मि० एटली ने भाषण देते हुए जो कुछ कहा था उसका आशय यह है:—"आखिरकार, साम्प्रदायिक निर्णय का आधार काम चलाऊ ही नहीं होना चाहिये। इस निर्णय ने मुसलमानों के साथ पक्षपात किया है और हिन्दुओं के साथ अन्याय किया है। साम्प्रदायिक निर्णय तो केवल इसलिए होना चाहिए कि विभिन्न अल्पमतवालों को उचित संरक्षण (Protection) मिल सके, लेकिन साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन से घोर साम्प्रदायिकता बढ़ेगी। संयुक्त निर्वाचन से ही साम्प्रदायिकता के विष को बढ़ने और फैलाने से रोका जा सकता है।

लॉर्ड ट्रेबोलगी ने अपने भाषण में कहा:—"जिस साम्प्रदायिक मन मुटाव की चर्चा आज हम इतने ज़ोरों से सुन रहे हैं उसका नाम भी मोंटेग्यू चेम्सफ़ोर्ड सुधारों के पहले नहीं सुना जाता था। आज जब कि हम एक हल ढूँढने का प्रयत्न कर रहे हैं तो दूसरी ओर से कुछ टुकड़ों के लिये विभिन्न दलों को लड़ा कर साम्प्रदायिक समझौते को असम्भव बनाया जा रहा है। कहा जाता है कि वे आपस में समझौता नहीं कर सकते तो क्या किया जाय? अगर वे आपस में नहीं मिल सकते तो क्या यह हमारा फ़र्ज़ हो जाता है कि हम उनके ऊपर इस निर्णय को लाद ही दें, वह निर्णय जो कि हमेशा के लिए उन दोनों जातियों को अलग कर देगा? मैं बहुत गम्भीरता पूर्वक यह सब कह रहा हूं। क्या हम संयुक्त निर्वाचन के लिए उन पर ज़ोर नहीं डाल सकते?"

इसी प्रकार श्री सुभाषचन्द्र बोस सरीखे उग्र नेताओं तक ने इस निर्णय को हिन्दुओं के लिये घोर अन्याय युक्त बतलाया था। यहां यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि श्री जिन्ना ने ईस्वी सन् १९२९ के मार्च में होने वाले मुस्लिम लीग के अधिवेशन में समझौते के लिए जो १४ मुद्दे रक्खे थे, वे प्रायः सब के सब इस साम्प्रदायिक निर्णय में स्वीकृत कर लिये गए थे।

भारत के राष्ट्रीय अन्दोलन का संचालन प्राय: हिन्दू ही कर रहे थे। वे हिन्दू युवक ही थे जो भारत की स्वाधीनता के लिए फांसी पर लटके थे और जिन्होंने काले पानी के घोर दुःखों को सहा था। हिन्दुओं ने इस राष्ट्र में स्वाधीनता की ज्योति को जगाया था और उसके लिए बड़े से बड़ा आत्म-त्याग किया था। अतःएव, देश में फूट डालकर राष्ट्रवादी हिन्दुओं को कमज़ोर करने का ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों का यह षड्यंत्र था। इसी नीचतम उद्देश्य को लेकर ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने जनतंत्र के महान् सिद्धान्तों का किस प्रकार घात किया, इसका पता निम्नलिखित तथ्यों से चलेगा।

बंगाल और पंजाब में यद्यपि मुसलमानों का बहुमत है पर हिन्दू और मुसलमानों की संख्या में ज्यादा अन्तर नहीं है। इसलिए इन प्रान्तों में अल्प मत को मताधिक्य (Weightage) मिलना चाहिए था, जैसा कि हिन्दू बहुमत वाले प्रान्तों में मुसलमानों को मिला था। पर हिन्दू अल्पमतवाले इन दो प्रान्तों में ऐसा नहीं किया गया।

बंगाल में मुसलमान ५४.८ प्रतिशत और हिन्दू ४४.८ प्रतिशत थे। यूरोपियन केवल ०.०१ प्रतिशत थे। मुसलमानों को ५४.८ प्रतिशत होने की हालत में धारा सभा में २५० सीटों में से ११९ सीटें मिलीं। हिन्दुओं को ४४.८ प्रतिशत होने की हालत में ८० सीटें प्राप्त हुईं। इसे दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि इस साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार जहां मुसलमानों को कुल सीटों में से ४७.६ फ़ी सदी सीटें

प्राप्त हुई, वहां हिन्दुओं को ३२ फ़ी सदी प्राप्त हुईं। संख्या और न्याय की दृष्टि से हिन्दुओं को ११२ और मुसलमानों को १३७ सीटें प्राप्त होनी चाहिए थीं। जहां दोनों का यह अन्तर संख्या के मान से २५ होना चाहिए था, वहां वह ३१ रक्खा गया। अगर मि० मेगडानल्ड निष्पक्ष और न्यायप्रिय होते तो हिन्दू और मुसलमानों की सीटों की संख्या का अनुपात बराबर रखते। यहां एक मज़ेदार बात और भी ध्यान में रखने योग्य है और वह यह है कि बंगाल में यूरोपियन लोगों की संख्या अत्यन्त अल्प अर्थात् ०.०१ प्रतिशत थी, पर उन्हें ११ सीटें दी गई, अर्थात् उन्हें ११०००० फ़ी सदी अधिक मताधिक्य (Weight age) दिया गया। इनका सारा भार भी हिन्दुओं पर पड़ा। उन्हें अपने वास्तविक अधिकार से हाथ धोने के लिये मजबूर होना पड़ा। यही हालत पंजाब की थी। वहां भी हिन्दुओं को बेहद नुकसान उठाना पड़ा।

अब आप उन प्रान्तों की बात लीजिए जहां हिन्दू बहुमत में थे और मुसलमान अल्पमत में। हम नीचे बिहार, युक्त-प्रान्त, उड़ीसा, मध्य प्रान्त, मद्रास और बम्बई प्रान्तों को लेते हैं, जहां हिन्दुओं का बहुमत और मुसलमानों का अल्पमत था।

प्रान्त	धारा सभा की सीटों की कुल संख्या	मुसलमानों की सीटें	मुसलमानों की संख्या का अनुपात	मुस्लिम प्रतिनिधित्व का अनुपात
बिहार ...	१५२	३६	१५	२५-६
युक्त-प्रान्त ...	२२८	६४	१५	२८-०
उड़ीसा ...	६०	४	२	६-६
मध्य प्रान्त ...	११२	१४	५	१२-५
मद्रास ...	२१५	२८	८	१३-०
बम्बई ...	१७५	२६	१०	१६-५

उपर्युक्त तालिका से पाठकों को यह पता लगेगा कि हिन्दू बहुमत वाले प्रान्तों में मुसलमानों को कितना अधिक मताधिक्य दिया गया था, और मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों में हिन्दुओं को मताधिक्य तो दूर रहा, अपनी संख्या के अनुपात से भी कम सीटें मिलीं।

अब केन्द्रीय धारा सभा को लीजिएगा। भारतवर्ष में मुसलमानों की संख्या २४ फ़ी सदी थी और उन्हें ३३। फ़ी सदी सीटें दी गई थीं।

कहने का मतलब यह है कि मेगडॉनल्ड के इस साम्प्रदायिक निर्णय ने जनतंत्र के सिद्धान्त का बुरी तरह घात किया। मुसलमान तथा अन्य अल्पमत वाली जातियों को जनतंत्र के सिद्धान्त के अनुसार निर्वाचनाधिकार पाने का पूरा-पूरा हक़ था। पर इसका यह मतलब नहीं कि एक बहुत बड़े बहुमत वाले दल को अल्पमत वाले दल में परिणत कर दिया जाय और अल्प मत वाले दल को बहुमत वाले दल में। यह एक ऐसा अन्याय था, जिसका समर्थन किसी भी जनतंत्र की राजनीति से नहीं किया जाता। इस निर्णय ने भारतीय समाज में भयंकर विष का काम किया, जिसके कुफल आज भी हम लोग भोग रहे हैं।

साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध

कांग्रेस कार्य-समिति की पटनावाली बैठक के बाद बम्बई और बनारस में उसकी बैठकें हुईं। इस समय इस साम्प्रदायिक निर्णय को लेकर कांग्रेस के सदस्यों में बड़ा मतभेद उपस्थित हुआ। महामना पं० मदनमोहन मालवीय और श्री अणे महोदय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि श्वेतपत्र की तरह इस साम्प्रदायिक निर्णय पर भी घृणा का प्रस्ताव पास होना चाहिए। पर कार्य-समिति के अन्य सदस्यों ने, श्री सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में, अपने मुस्लिम सदस्यों से प्रभावित

होकर इस बात का आग्रह किया कि कांग्रेस न तो इस निर्णय को स्वीकार करे और न अस्वीकार ही करे । सुभाष बाबू ने लिखा है:—

"The rest of the Working Committee, under the influence of the Moslem members, maintained that the Congress should neither accept nor reject the Communal Award, though they admitted that the Award was thoroughly obnoxious."

अर्थात्, "कार्य-समिति के शेष सदस्यों ने मुस्लिम सदस्यों से प्रभावित होकर इस बात का समर्थन किया कि कांग्रेस को न तो साम्प्रदायिक निर्णय को स्वीकार करना चाहिए और न अस्वीकार ही, यद्यपि उन्होंने यह मंज़ूर किया कि यह निर्णय पूर्णरूपेण घृणास्पद था । आगे चलकर सुभाष बाबू फिर लिखते हैं:—

"Whatever the reason may be, the fact remains that today they are holding a pistol at the Working Committee, and because of their insistence, the Committee has been forced to take up this ridiculous attitude of neither accepting nor rejecting the Award."

अर्थात्, "चाहे कुछ भी कारण हो, पर यह एक वास्तविक तथ्य है कि वे (मुस्लिम सदस्य) आज कार्य-समिति की ओर पिस्तौल ताने हुए हैं, और उनके आग्रह के कारण कार्य-समिति साम्प्रदायिक निर्णय को न तो स्वीकार करने और न अस्वीकार करने के हास्यास्पद रुख को स्वीकार करने के लिए बाध्य हुई है । आगे चलकर सुभाष बाबू ने इस विनाशकारी निर्णय के प्रति और भी तीव्र घृणा प्रदर्शित

† The Indian Struggle, Page 372

की है, और उन्होंने कांग्रेस कार्य-समिति की इस निर्बल मनोवृत्ति के प्रति हार्दिक दुःख प्रकट किया है।

पं० मालवीयजी और अणे महोदय के इस्तीफ़े

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, साम्प्रदायिक निर्णय को लेकर कांग्रेस कार्य-समिति में तीव्र मतभेद उपस्थित हुआ। पं० मालवीयजी और अणे महोदय ने कांग्रेस कार्य-समिति और पार्लियामेण्टरी बोर्ड से इस्तीफ़े देकर कांग्रेस के अन्तर्गत राष्ट्रीय दल (Congress Nationalist Party) को संगठित करने का आयोजन किया, और इसका उद्देश्य यह रक्खा गया कि वह साम्प्रदायिक निर्णय और श्वेतपत्र का विरोध करे। इस दल ने १६ अगस्त १६३४ को कलकत्ते में पं० मदन-मोहन मालवीय के सभापतित्व में अपनी कान्फ्रेन्स का अधिवेशन किया। इसके स्वागताध्यक्ष सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्री और देशभक्त सर पी० सी० रॉय थे। इस निर्णय से बंगाल के हिन्दुओं पर घोर अन्याय हुआ था, इसलिए उस वक्त इस अधिवेशन को अच्छी सफलता मिली।

समाजवादी दल की स्थापना

इसी अरसे में अर्थात् मई १६३४ में भारतवर्ष में पहले-पहल समाजवादी दल (Socialist Party) की स्थापना हुई। १७ मई १६३४ को पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में इसका अधिवेशन हुआ। इसके बाद अनेक प्रान्तों में इसकी अनेक शाखाएँ स्थापित हुईं। इस दल की स्थापना पर महात्मा गांधी ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया था उसकी कुछ पंक्तियाँ हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

"मैंने साम्यवादी दल का स्वागत किया है, जिसमें मेरे बहुत से आदरणीय और आत्म-त्यागी साथी मौजूद हैं। यह सब होते हुए भी उनका जो प्रामाणिक कार्यक्रम छपा है, उसके विषय में मेरा मौलिक

मतभेद है। किन्तु मैं उनके साहित्य में प्रतिपादित सिद्धान्तों के प्रचार को अपने नैतिक प्रभाव से नहीं रोकना चाहता। मैं उन सिद्धान्तों को स्वतंत्रता के साथ प्रकट करने में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, चाहे उनमें से कुछ सिद्धान्त मुझे कितने ही नापसन्द क्यों न हों।"

कांग्रेस से गांधीजी का अवसर ग्रहण

ईस्वी सन् १९३४ की ८, ९ और १० सितम्बर को वर्धा में कांग्रेस कार्य-समिति और कांग्रेस पार्लियामेण्टरी बोर्ड की बैठकें हुईं। उनमें कांग्रेस के दो दलों में समझौता कराने के प्रयत्न हुए, पर उनमें सफलता न मिली। इसी समय यह मालूम हुआ कि गांधीजी देश की सक्रिय राजनीति से विराम लेने की बात सोच रहे हैं। साम्प्रदायिक निर्णय को लेकर कांग्रेस में जो दो दल हो गये थे उनसे गांधीजी को बड़ा आघात पहुँचा था। उस समय गांधीजी के कट्टर अनुयायी श्रीराजगोपालाचार्य ने ७ सितम्बर को इस संबंध में जो वक्तव्य प्रकाशित किया था, उसका कुछ अंश इस प्रकार है:-

"गांधीजी के कांग्रेस का नेतृत्व छोड़ने की अफ़वाह का कारण यह है कि गांधीजी सब प्रकार के हिंसा के तत्वों से कांग्रेस को शुद्ध करके उसके विधान में सुधार करने का विचार कर रहे हैं......। अगर कांग्रेस आनेवाले अधिवेशन के बाद उनके सुधारों को स्वीकृत न करेगी तो वे शुद्ध अहिंसात्मक कार्यकर्त्ताओं के द्वारा अपना एक स्वतंत्र संगठन आरम्भ करने के लिए प्रस्तुत हो जायंगे।"

राजाजी के इस वक्तव्य के प्रकाशित होने के ठीक दस दिन बाद स्वयं गांधीजी ने एक वक्तव्य निकाला जिसमें उन्होंने कांग्रेस से अपने अवसर ग्रहण करने की अफ़वाह का समर्थन किया। हां, उन्होंने यह भी प्रकट किया कि मित्रों के अनुरोध से आनेवाले बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन तक वे अपने इस विचार को कार्यान्वित न करेंगे। गांधीजी ने उसी समय कांग्रेस में फैले हुए भ्रष्टाचार पर भी दुःख प्रकट किया और उन्होंने कांग्रेस-विधान में निम्न-लिखित संशोधन करने का आग्रह

किया । हम गांधीजी के शब्दों में ही उन संशोधनों को यहां दोहराते हैं:-

"मैं चाहता हूँ कि मैंने जिन सब विषयों की चर्चा की है उनको कार्यरूप में परिणत कराने के लिए कुछ प्रस्ताव विषय-समिति में पेश करके कांग्रेस के भाव की परीक्षा करूँ। पहला संशोधन जो मैं पेश करूँगा, वह यह होगा कि 'उचित और शान्तिमय' शब्दों के बदले 'सत्यतापूर्ण' और 'अहिंसात्मक' शब्द रक्खे जायँ। मैं ऐसा न करता, 'अगर उचित और शान्तिमय' के बदले इन दो विशेषणों का मेरे सरल भाव से प्रयोग करने पर उनके विरुद्ध तूफ़ान न खड़ा कर दिया जाता। अगर कांग्रेसी वस्तुतः हमारे ध्येय की प्राप्ति के लिये सच्चाई और अहिंसा की आवश्यकता समझते हैं, तो उन्हें इन स्पष्ट विशेषणों को स्वीकार करने में हिचक न होनी चाहिए।"

"दूसरा संशोधन यह होगा कि कांग्रेस की मताधिकार योग्यता चार आने के बदले हर महीने कम से कम १९ नम्बर का अच्छा बटा हुआ २००० तार (एक तार=४ फुट) सूत हर महीने देने की रक्खी जाय, और वह सूत मतदाता खुद चरखे या तकली पर कात कर दें। अगर किसी मेम्बर की ग़रीबी साबित हो तो उसको कातने के लिए काफ़ी रुई दी जाय, ताकि वह उतना सूत कातकर दे सके। इसके पक्ष और विपक्ष की दलीलें यहां दोहराने की ज़रूरत नहीं है।"

"तीसरा संशोधन जो मैं पेश करना चाहता हूँ, वह यह होगा कि किसी ऐसे कांग्रेसी को कांग्रेस के निर्वाचन में मत देने का अधिकार न होगा जिसका नाम ६ महीने तक बराबर कांग्रेस रजिस्टर पर न रहा हो, और जो पूरी तरह से आदतन खादी पहननेवाला न रहा हो।"

बम्बई का कांग्रेस अधिवेशन

ईस्वी सन् १९३४ के अक्टूबर मास की २६, २७ और २८ तारीख को देश रत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में बम्बई में कांग्रेस का

अधिवेशन हुआ। यहां यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि साढ़े तीन साल के अरसे के बाद कांग्रेस का यह नियमपूर्वक अधिवेशन होने जा रहा था। गांधीजी के कांग्रेस से अवसर ग्रहण करने का प्रश्न भी इसमें उपस्थित होनेवाला था। कांग्रेस के अन्तिम लक्ष्य के संबंध में देश के राजनैतिक दलों में जो मतभेद हो रहा था, उसके संबंध में भी इस अधिवेशन में विचार किया जाने वाला था। साम्प्रदायिक निर्णय और श्वेतपत्र के संबन्ध में भी इसमें काफ़ी वादानुवाद होनेवाला था। इन्हीं सब बातों को लेकर चारों तरफ़ से लोग इसमें शामिल होने के लिए जमा हो रहे थे। इस अधिवेशन में काफ़ी गरमागरम बहस हुई। इस अधिवेशन में यह निर्णय किया गया कि कौंसिलों के चुनावों में भाग लिया जाय। कांग्रेस में अपने चुनाव लड़ने और उस संबंध की तमाम कार्यवाही करने के लिए एक पार्लियामेण्टरी बोर्ड भी बना दिया गया। इसी समय कांग्रेस में रचनात्मक कार्य-क्रम की ओर भी ध्यान दिया गया और ग्राम-उद्योगों को उन्नत करने की ओर भी ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त इस अधिवेशन में निम्न-लिखित प्रस्ताव भी पास किया गया—"कांग्रेस का कोई भी सदस्य किसी पद या किसी भी कांग्रेसी कमेटी के चुनाव के लिए खड़ा न हो सकेगा, यदि वह पूरे तौर से हाथ की कती-बुनी खादी आदतन न पहनता हो।" बम्बई कांग्रेस में सबसे पहली बार श्रम-मताधिकार का प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था:—

"कोई भी व्यक्ति किसी भी कांग्रेस कमेटी की सदस्यता के लिये उम्मीदवार बन कर खड़ा होने का हक़दार न होगा, यदि उसने चुनाव की नामज़दगी की तारीख़ को समाप्त होनेवाले ६ महीनों में कांग्रेस की ओर से या कांग्रेस के लिए लगातार कोई ऐसा शारीरिक श्रम न किया हो जो प्रति मास मूल्य में अच्छे कते हुए १० नंबर के २०० गज़ सूत के बराबर हो। कार्य-समिति समय समय पर प्रान्तीय कांग्रेस

कमेटियों तथा अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघ से सलाह लेकर यह निर्धारित करेगी कि कताई के अतिरिक्त दूसरा कौन सा श्रम स्वीकार किया जायगा।" गांधीजी की अलहदगी ने इस बात का तकाज़ा किया कि गांधीजी में विश्वास का एक प्रस्ताव पास किया जाय; तत्संबंधी प्रस्ताव इस प्रकार था:–

"यह कांग्रेस महात्मा गांधी के नेतृत्व में अपने विश्वास को फिर प्रकट करती है। उसका यह दृढमत है कि कांग्रेस से अलग होने के निश्चय पर उन्हें फिर विचार करना चाहिए। लेकिन चूंकि उन्हें इस बात के लिए राजी करने के सब प्रयत्न विफल हुए हैं, यह कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध उनके निर्णय को मानते हुए राष्ट्र के लिए की गई उनकी बेजोड़ सेवाओं के प्रति धन्यवाद प्रकट करती है, और उनके इस आश्वासन पर संतोष प्रकट करती है कि उनका परामर्श और पथ-प्रदर्शन आवश्यकतानुसार कांग्रेस को प्राप्त होता रहेगा।"

गांधीजी का अवसर ग्रहण

ईस्वी सन् १९३४ में बम्बई अधिवेशन के समय गांधीजी ने कांग्रेस से अवसर ग्रहण कर लिया। इतना ही नहीं, वे कांग्रेस के चार आने-वाले सदस्य भी न रहे। कांग्रेस के नेता अपनी विकट समस्याओं को सुलझाने में, उनके अवसर ग्रहण करने की स्थिति में भी, उनसे पथ-प्रदर्शन ग्रहण करते रहते थे। अवसर ग्रहण के काल में गांधीजी ने अपनी सारी शक्तियों को हरिजन–उद्धार, शिक्षा–प्रचार और खादी-प्रचार आदि रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगाया। इस समय भी उन्होंने देश की ठोस सेवाएँ कीं और राष्ट्र के जीवन का निर्माण करने में महान् कार्य किया।

अन्य राजनैतिक दलों की प्रवृत्तियाँ

इसी साल, अर्थात् ईस्वी सन् १९३४ के दिसम्बर मास में, मि० जे०

एन० बसु की अध्यक्षता में मद्रास में लिबरल फेडरेशन (Liberal Federation) का अधिवेशन हुआ, जिसमें श्वेत-पत्र और साम्प्रदायिक निर्णय पर घृणा के प्रस्ताव पास किये गये। अखिल भारतवर्षीय महिला-कान्फ्रेन्स का अधिवेशन कलकत्ते में बड़ी धूमधाम के साथ हुआ, जिसमें भारतवर्ष के सब प्रान्तों की महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस कान्फ्रेन्स में समाज-सुधार और स्त्री-शिक्षा संबंधी प्रस्ताव पास हुए। जिनेवा की अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी में अपना प्रतिनिधि रखने के विषय पर भी इसमें विचार हुआ। कानपुर में मज़दूर-संघ कांग्रेस (Trade Union Congress) का अधिवेशन हुआ, जिसमें मज़दूरों के कष्ट-निवारण के संबंध में प्रस्ताव पास हुए। इसी अधिवेशन में बम्बई की कपड़े की मिलों के मज़दूरों के कष्टों पर विचार किया गया, और यह निर्णय किया गया कि अगर सन्तोषकारक समझौता न हो तो मज़दूर अपनी मांगों को स्वीकृत कराने के लिये आम हड़ताल कर दें। इस पर बम्बई में बड़ी जबरदस्त हड़ताल हुई और इस हड़ताल के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए अन्य स्थानों में भी मज़दूरों की हड़तालें हुईं। बम्बई की हड़ताल के उपलक्ष में मज़दूरों के कई अग्रगण्य नेता गिरफ़्तार कर जेलों में डाल दिये गये। पंजाब में भी दमन का दौर-दौरा शुरू हुआ। वहां की 'क्रांति' नामक मज़दूर संस्था और कृषक दल ग़ैर क़ानूनी घोषित कर दिये गए। बंगाल में भी सरकार ने क्रान्ति-कारियों की आतंकवादी प्रवृत्तियो को कुचलने के लिए सख़्त क़दम उठाये। अब आतंकवादियों को हत्या करने के प्रयत्न में तथा हथियार और विस्फोटक-द्रव्य रखने के अपराध में मृत्यु-दंड दिये जाने की योजना की गई।

प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों की स्थापना

ई० सन् १९३५ ब्रिटिश पार्लियामेंट ने श्वेतपत्र (White Paper) के आधार पर ही नया 'गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट' पास किया, जिसमें फैडरल शासन और प्रान्तीय स्वायत्त शासन की व्यवस्था थी। इसी को 'भारतीय शासन विधान' के नाम से पुकारा जाता था। इसी विधान के अनुसार ईस्वी सन् १९३७ में धारा-सभाओं के लिये साधारण चुनाव किये गये। ११ प्रान्तों में से ५ प्रान्तों में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। दो प्रान्तों में किसी एक दल के मिल जाने से उनका भारी बहुमत हो जाता था। कांग्रेस की ऐसी मज़बूत स्थिति हो गई थी कि उन प्रान्तों में उसे मंत्रि-मंडल बनाने के लिये अल्पमत के सहयोग की आवश्यकता ही न थी।

इतने पर भी कांग्रेसी प्रान्तों ने प्रारम्भ में अपने मंत्रिमंडल बनाने से इन्कार किया। इसका कारण यह था कि प्रान्त के गवर्नरों को अत्यधिक अधिकार दिये गये थे। उन अधिकारों के अनुसार वे कांग्रेस मंत्रि-मंडलों के शासन-कार्य में बहुत-कुछ हस्तक्षेप कर सकते थे। इस प्रकार सरकार ने पहले-पहल गुड़िया मंत्रि-मंडल बनाये, जो इधर-उधर के अल्पमत वाले दलों में से बनाये गये थे। पर वे अपना काम न चला सके। इस पर वाइसरॉय ने कांग्रेस को यह आश्वासन दिया कि गवर्नर उनके शासन-कार्य में किसी विशिष्ट अवसर को छोड़ कर हस्तक्षेप न करेंगे, और उनका कार्य सुचारु रूप से चलने देंगे।

मन्त्री मण्डलो के मिनिस्टों ने बड़े उत्साह और उमंग के साथ अपना कार्य शुरू किया। कांग्रेस आदर्शों को कार्यान्वित करने के लिये और प्रगतिशील शासन के द्वारा अधिक से अधिक लोकहितकारी कार्यों को सफलता पूर्वक करने के लिए वे बड़े आतुर हो रहे थे। इस बात को इङ्गलैंड के सुप्रसिद्ध विधान-शास्त्री मि० कूप लैंड ने अपने "Indian Politics" नामक ग्रन्थ के दूसरे भाग में स्वीकार किया है। वे लिखते हैं:—

"In the early days of their career most of the Ministers and their official subordintes were working under peculiarly and on ous conditions. In the first place, Ministers had committed them selves to a heavy programme of reform both by legislation and in the conduct of the executive machine and they were naturally anxious to press on with it as quickly as possible. For many months the lights in their various departments were burning well into the night."

"अपने कार्य-काल के आरंभ में नये मंत्रिगण और उनके मातहत अफ़सर विशिष्ट प्रकार कठिन परिस्थितियों में कार्य कर रहे थे। विधान-निर्माण और शासन-तंत्र संचालन के कार्य द्वारा सुधार के भारी कार्य क्रम को सफल बनाने के लिए वे प्रतिज्ञा बद्ध थे। अतएव वे स्वभावतः ही कार्य को आगे बढ़ाने में बड़े आतुर हो रहे थे। उनके कई विभागों में कई मास तक रात में भी काफ़ी समय तक दीपक जलते रहते थे।"

कहने का मतलब यह है कि हमारे कांग्रेस मन्त्रियों ने उस समय लोक-सेवा को अपना प्रधान लक्ष्य बनाकर बड़ी लगन के साथ कार्य

किया। परिश्रम से वे कभी न अघाये।

जैसी कि हमारे मंत्रि-मंडलों से आशा थी, उन्होंने शासनारूढ़ होते ही बहुत से प्रतिबंधक और दमनकारी क़ानूनों को रद्द किया, कम्यूनिस्ट और दूसरी राजनैतिक संस्थाओं पर लगे हुए प्रतिबंधों को हटाया और अख़बारों से ली गई ज़मानतों को वापस लौटाया। राजनैतिक कैदियों पर चलाये गए मुक़द्दमों को स्थगित किया या वापस लिया। बम्बई के १६३२ वाले आकस्मिक अधिकारों के क़ानून को और ईस्वी सन् १६३० के बिहार उड़ीसा के सार्वजनिक सुरक्षा क़ानून को रद्द किया। प्रायः सब कांग्रेस-शासित प्रान्तों के राजनैतिक कैदी मुक्त कर दिये गए। मद्रास में फरवरी १६३८ तक सब के सब राजनैतिक कैदी मुक्त कर दिये गए। बम्बई में भी ऐसाही हुआ। उक्त वर्ष के जून मास तक वहाँ भी सब राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गये। युक्त-प्रान्त और बिहार में ईस्वी सन् १६३८ के फरवरी मास तक बहुत से कैदी छोड़ दिए गये। इस समय तक किन्हीं विशिष्ट कारणों से २५ राजनैतिक कैदी युक्त प्रदेश में और २३ कैदी बिहार के जेलखानों में रह गये। इन लोगों ने भूख हड़ताल कर दी, कांग्रेस का उपदल इन दोनों प्रान्तों की सरकारों पर ज़ोर डालने लगा कि वे इन कैदियों को तुरन्त मुक्त कर दें, चाहे इनकी राजनैतिक विचार धारा कैसी ही क्यों न हो। उधर उक्त प्रान्तों के गवर्नर इनकी मुक्ति के मार्ग में अड़ंगा लगा रहे थे, और इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि कैदियों को उनके अपराधों की पात्रता की जांच कर छोड़ना चाहिए। कांग्रेस के हाई-कमांड ने भी ने भी मंत्रिमंडल को इन कैदियों को छोड़ने की प्रेरणा की। युक्त-प्रान्त के प्रधान मंत्री पं० पन्त महोदय ने साहस पूर्वक इन १५ कैदियों को भी जेल से मुक्त करने का आदेश दिया। बिहार के के मंत्री-मंडल ने भी आपका अनुकरण किया।

इन दो प्रान्तों के मंत्री मंडलों की इस कार्यवाहीसे भारत सरकार बड़ी

चिन्तित हुई, उसने यह समझा कि अगर युक्त-प्रांत और बिहार के क्रान्तिकारी कैदी भी छोड़ दिये जायेंगे तो उसका असर बंगाल और पंजाब पर भी पड़ेगा, जिनकी सीमाएँ इन दोनों प्रान्तों से मिली हुई हैं। इस समय बंगाल और पंजाब के कई क्रान्तिकारी तथा आतंकवादी कैदियों ने भूख हड़ताल भी कर रक्खी थी। इन्हीं सब बातों से प्रभावित होकर भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल ने यह प्रकट किया कि कांग्रेस प्रान्तों के राजनैतिक कैदियों को छोड़ने का प्रश्न अन्त-प्रान्तीय महत्व रखता है और इस लिये उन्होंने युक्त-प्रान्त और बिहार के गवर्नरों को यह आदेश दिया कि वे अपने मंत्रि-मंडल द्वारा पास किये गये क्रान्तिकारी कैदियों को छोड़ने के प्रस्ताव को स्वीकार न करें। इस पर दोनों कांग्रेस प्रान्तों के मंत्री-मंडलों ने स्तीफे दे दिये।

इसी समय हरीपुरा में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। युक्त-प्रान्त और बिहार के मंत्रिगण उक्त अधिवेशन में पहुँचे। वहां इस बात पर गरमा गरम बहस हुई और उग्रवादी कांग्रेस जनों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि राजनैतिक कैदियों की मुक्ति का प्रश्न व्यापक होना चाहिए। उसकी परिधि अहिंसात्मक आन्दोलन वाले कैदियों तक ही परिमित न रहनी चाहिए। उग्रवादी और क्रान्तिकारी कैदियों को भी इस बंधन-मुक्ति में शामिल करना चाहिए। इसके अतिरिक्त इसमें इस बात की भी चर्चा हुई कि उक्त-दोनों कांग्रेस प्रान्तों की सहानुभूति में अन्य कांग्रेसी प्रान्तों के मंत्री-मंडल भी इस प्रश्न को लेकर स्तीफ़ा दे दें।

महात्मा गांधी ने भी इन प्रश्नों में दिलचस्पी ली। वे इसके पहले ही बंगाल के गवर्नर से राजनैतिक कैदियों को छोड़ने की क्रमवर्धमान नीति संबंध में लिखा पढ़ी कर रहे थे। गवर्नर ने उक्त दोनों प्रान्तों के मंत्री-मंडलों के स्तीफे स्वीकार नहीं किये। इसी बीच में वाइसराय ने भी एक वक्तव्य निकाला, जो काफ़ी सौम्य था और जिसमें समझौता करने का भाव झलकता था। इस पर दोनों प्रान्तों के मंत्रिगणों ने अपने

स्तीफ़े वापस ले लिये। अब सवाल यह रह गया कि सब बचे हुए क़ैदी एक साथ छोड़े जांय या क्रमागत रूप से मुक्त किये जावें। युक्त-प्रान्त में १५ क़ैदियों में से १२ क़ैदी १ मास के अन्दर अन्दर छोड़ दिये गये और शेष ३ क़ैदी मार्च मास के अन्त में छोड़ गये। बिहार में १० क़ैदी तत्काल छोड़ दिये गये और एक को छोड़कर शेष सब मार्च के मध्य में मुक्त कर दिये गये।

युक्त-प्रान्त और बिहार कांग्रेस मंत्रि-मंडल बनने के बाद जो क़ैदी छोड़े गये उनमें मेरठ षड्यंत्र के क़ैदी भी थे। इसी समय गढ़वाल के वे फ़ौजी क़ैदी भी मुक्त कर दिये गये जिन्होंने कांग्रेस प्रदर्शन कारियों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया था।

कांग्रेस सरकारों के अन्य सुधारः–

प्रान्तीय कांग्रेस सरकारों का सबसे पहला ध्यान भारतीय राष्ट्र की रीढ़ किसानों के सुधार की ओर गया। ईस्वी सन् १९३६ के लखनऊ वाले कांग्रेस के अधिवेशन में यह कहा गया था कि देश के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या किसानों की घोर दरिद्रता, उनकी क़र्ज़दारी और बेकारी है। ईस्वी सन् १९३७ में कांग्रेस ने अपने निर्वाचन-घोषणा-पत्र में यह साफ़ तौर से प्रकट किया था कि कांग्रेस का उद्देश्य कृषि-सुधार और कृषकों की उन्नति है, इसके अतिरिक्त भूमि-कर और अन्य प्रकार की लागों को कम कर किसानों के बोझ को अधिक से अधिक घटाना, यह कांग्रेस कार्य-क्रम का प्रधान अंग रहेगा। कांग्रेस भूमिपर किसानों का स्वामित्व समझेगी। भूमिकर की ग़ैर वसूली पर किसानों को दीवानी क़ैद में न डाला जायगा। बिहार में १९११ के बाद भूमिकर में जितनी वृद्धि हुई थी वह सब रद्द कर दी गई। ज़मींदारों के अधिकार बहुत कुछ कम कर दिये गए, बेगार प्रथा को जुर्म करार दे दिया गया। किसानों पर की जाने वाली कुर्कियाँ कम कर दी गईं। किसानों से लिया जाने वाला सूद बहुत कम कर दिया गया। खेती की वैज्ञानिक पद्धतियों

को प्रोत्साहन दिया गया, जिससे की खेती की पैदावार बढ़ सके। ऐसी व्यवस्थाएँ की गईं जिनसे किसान अपने भूमि के अधिकार से च्युत न किया जा सके। मि० आर कूपलैंड सरीखे ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ने भी कांग्रेस सरकारों के इन सुधारों की प्रशंसा की है और लिखा है:–

"It can certainly be said that the Congress Governments did a great deal to improve and secure the status of many millions of agricultural tenants".

"यह बात निश्चय पूर्वक कही जा सकती है कि करोड़ों, किसानों की दशा सुधारने में कांग्रेस सरकारों ने बहुत कुछ कार्य किया।"

इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायतें क़ायम कर कांग्रेस सरकारों ने ग्राम-स्वराज्य पद्धति के महान् आदर्श को कार्यान्वित करने का प्रशंसनीय कार्य किया। अकेले बम्बई प्रान्त में १५०० ग्राम पंचायतें क़ायम की गईं।

शराब-बंदी या मद्य निषेध

महात्मा गांधी ने अपने कई व्याख्यानों और लेखों में राज्य के आदर्शों को प्रकट करते हुए इस बात पर ज़ोर दिया था कि किसी भी सभ्य सरकार का यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह जनता के नैतिक चरित्र के धरातल को ऊंचा उठावे। इस कार्य में उन्होंने शराब-बंदी या मद्यनिषेध को भी प्रमुख स्थान दिया था। उन्होंने डंके की चोट यह प्रकट किया था कि मद्य प्रचार से होने वाली सरकारी आमदनी अनैतिक और अधार्मिक है।

उस समय की हमारी प्रान्तीय सरकारों ने महात्माजी के इस उच्च आदर्श को पालन करने का भरसक प्रयत्न किया। यहां यह कह देना आवश्यक है कि प्रान्तीय सरकारों की आमदनी में

का १७ फी सदी हिस्सा आबकारी से प्राप्त होता था। बम्बई में २६ फी सदी, मद्रास में २५ फी सदी और युक्त-प्रान्त में १३ फी सदी आमदनी आबकारी से उपलब्ध होती थी।

सरकार के सामने सुधार की नई नई योजनाएँ थीं और इन्हें सफल करने के लिए बहुत बड़े खर्च की आवश्यकता थी। शासन-संचालन में आर्थिक दृष्टि से इस शराब बंदी के कार्य से सरकार के सामने निःसंदेह नई समस्याएँ और नई कठिनाइयां उत्पन्न हुईं। शराब बंदी से एक बहुत बड़ी आमदनी तो कम हो ही गई, पर इसे कार्यान्वित करने के लिए जो खर्च होने लगा उसका भी बहुत बड़ा भार शासन पर पड़ने लगा। अकेले बम्बई प्रान्त की बात लीजिये, शराब बंदी के प्रारम्भिक कार्य में ही उक्त सरकार को ३० लाख रुपया खर्च करना पड़ा। जब यह स्कीम सारे बम्बई प्रान्त में लगाई गई तो उसे १ करोड़ ४० लाख का नुकसान होने लगा। संयुक्त प्रान्त, बिहार, मद्रास आदि प्रान्तों को भी इस कार्य में बहुत बड़ा आर्थिक बलिदान करना पड़ा, पर महात्माजी के आदर्श को सामने रख कर उन्होंने इस कार्य को किया।

दलित जातियां या हरिजन

महात्मा गांधी ने राष्ट्र के करोड़ों हरिजनों के उधार के कार्य को अपने रचनात्मक कार्य का प्रधान अंग बना रक्खा था। महात्माजी के पूर्व वर्ती सुधारक राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द ने भी इनके सुधार के लिए ज़ोरदार आवाज उठाई थी और आर्यसमाज ने इस दशा में प्रशंसनीय कार्य भी किया था, पर महात्माजी ने इस कार्य को विशाल पाये पर करने का आयोजन किया। हमारी उस समय की प्रान्तीय सरकारों ने भी महात्माजी के आदर्शों का अनुकरण कर इस दशा में आगे बढ़ने का साहस पूर्ण कार्य किया। हरिजनों को ऊंचा उठाने के लिए उनमें शिक्षा-प्रचार का अच्छा आयोजन किया गया।

हरिजनों को साधारण स्कूलों में भर्ती होकर उच्च जाति के हिन्दुओं के साथ बराबर बैठने का अधिकार दिया गया। बम्बई में सब हरिजन-पाठशालाएँ साधारण पाठशालाओं में परिणत कर दी गई, जिससे कि हरिजनों में रही हुई लघुता की भावना मिट जावे और साधारण विद्यार्थियों में उन्हें बराबरी का समझने की भावना उत्पन्न हो। बिहार, उड़ीसा और मद्रास की स्कूलों को सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त करने के लिए यह शर्त आवश्यक रक्खी गई कि वे अन्य विद्यार्थियों की तरह हरिजन विद्यार्थियों के लिए भी समान रूप से सुविधाएँ रक्खें। कई प्रान्तीय सरकारों ने और खास कर संयुक्त प्रान्त की सरकार ने हरिजन विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के लिए उन्हें छात्र-वृत्तियां दीं, उनकी फ़ीस माफ की गई, इतना ही नहीं उन्हें पाठ्य पुस्तकें तक सरकार की ओर से दी गईं। इसके अतिरिक्त हरिजनों की अस्पृश्यता दूर करने के लिए उन्हें मंदिर-प्रवेश के अधिकार दिये गये। इसके लिए कुछ प्रान्तों ने विशिष्ट एक्ट भी पास किये थे।

प्रान्तीय सरकारें और शिक्षा-प्रचार

कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारों ने शिक्षा प्रचार की ओर भी समुचित ध्यान दिया। उन्होंने उस समय की वर्तमान शिक्षा-पद्धति में कई त्रुटियाँ और दोष देखे। विदेशी सरकार के द्वारा हमें जो शिक्षा दी जाती थी उसका हमारे नित्य प्रति के व्यावहारिक जीवन के साथ नाम मात्र का संबंध था। नैतिक चरित्र का विकास करने वाली सामग्री का भी उसमें अभाव था। महात्मा गांधी ने इन्हीं त्रुटियों को लक्ष्य में रख कर ऐसी शिक्षा-योजना बनाई जिसमें विद्यार्थियों के मानसिक विकास के साथ साथ उन्हें ऐसी शिक्षा दी जा सके जिसका संबंध शारीरिक श्रम और उत्पादन-कार्य से हो, ताकि वे आगे चलकर अपने जीवन में अपने पैरों पर खड़े होने की योग्यता प्राप्त कर सकें। इस शिक्षा-योजना का नाम "वर्धा योजना" (Wardha Scheme) है। इसका दूसरा नाम

बुनियादी तालीम (Basic Education) है। गत बीस वर्षों में अमेरिका और ब्रिटेन में इस प्रकार की शिक्षा ने काफी तरक्की की थी। इस योजना के संबंध में युक्त-प्रान्त के शिक्षा-विभाग की ईस्वी सन् १९३८ की रिपोर्ट में लिखा थाः—

":This scheme is not a politcal stunt or a party slogan, but an adaptation to Indian needs of educational changes which have won acceptance in Europe and America and have revolutionised the elementary stage of education in England."

"यह योजना केवल राजनैतिक (Stunt) या किसी दल का नारा ही नहीं है पर यह उन शिक्षा संबंधी परिवर्तनों का भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप अनुकूलीकरण है, जिन्हें यूरोप और अमेरिका ने अपनाया है, और जिसने इंगलैंड की प्रारम्भिक शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये हैं।

युक्त-प्रान्त, बिहार और बम्बई की सरकारें इस बुनियादी शिक्षा के प्रचार में अग्रगामी थीं। बिहार में ईस्वी सन् १९३८ के अंत में तत्कालीन शिक्षा सचिव डा० सैयद महमूद की अध्यक्षता में "बुनियादी शिक्षा समिति" (Basic Education Board) का निर्माण हुआ। पटना का ट्रेनिंग स्कूल इस शिक्षा प्रचार का केन्द्र बना और ईस्वी सन् १९३९ के आरम्भ ही में बिहार की कांग्रेस सरकार ने प्रयोग के लिए बुनियादी शिक्षा की ५० पाठशालाएँ (Basic schools) खोलने की मंजूरी दी। इस शिक्षा-पद्धति के लिए अध्यापकों को भी शिक्षा देने का प्रबंध किया गया। युक्त-प्रान्त ने भी इस दिशा में उत्साह पूर्वक आगे क़दम रक्खा। वहां के सुयोग्य प्रधान मंत्री तथा शिक्षा-मंत्री श्री गोविन्द बल्लभ पन्त और श्री सम्पूर्णानन्दजी ने इसमें बड़ी दिलचस्पी ली। अलाहाबाद में पटना की तरह ईस्वी सन् १९३८ के

अगस्त मास में बुनियादी शिक्षा के लिए एक कॉलेज (Basic Training College) खोला गया, और पचासों बेसिक स्कूलों की भी स्थापना की गई। इस शिक्षा-पद्धति के लिए अध्यापक तैयार करने की भी योजना बनाई गई और उसे कार्यान्वित किया गया। बम्बई की कांग्रेस-सरकार ने भी इस ओर प्रशंसनीय क़दम रक्खा और उसने बुनियादी शिक्षा की ८७ पाठशालाएँ खोलीं। शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारों के समय में प्रशंसनीय उन्नति हुई, जिसका यहां उल्लेख करना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं है।

प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों की प्रशंसा

प्रान्तीय कांग्रेस-सरकारों ने अपने कार्यकाल में जिस योग्यता से शासन-शकट को संचालित किया तथा समाज-सुधार के कार्य में उन्होंने जिस तेज़ी के साथ आगे क़दम रखने का प्रयत्न किया, उसकी प्रशंसा बड़े बड़े अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने भी की है। मि० कूपलैण्ड अपने "इंडियन पॉलिटिक्स" (Indian Politics Part, 2 page 156) नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"The achievements of the Congress regime in the field of social reform were its most remarkable feature and they were the direct result of the full popular government established by the new constitution."

"कांग्रेस-शासन ने समाज-सुधार के क्षेत्र में ,जो सफलताएँ प्राप्त कीं, वे बहुत ही अद्भुत थीं और नये विधान ने जो लोकप्रिय सरकार स्थापित की थी उसका वे प्रत्यक्ष परिणाम थीं।

आगे चलकर यही महाशय फिर लिखते हैं:—

"Among the Congress Ministers and members

of the legislatures and their supporters at large, there was a genuine zeal for social reform. It was not only that the party had pledged itself at the polls and wanted to satisfy the electorate on whom the continuance of its power depended; it wanted no less to satisfy itself. A new spirit of public service was abroad. In evoking it and cnabling it to fulfil itself in action, democratic self Government was shown its best side."

"कांग्रेस मंत्रियों, धारा सभाओं के सदस्यों और उनके साहयकों में समाज-सुधार के लिए सच्ची लगन थी। इसका कारण केवल यही नहीं था कि वे अपने मतदाताओं को, जिन पर उनकी स्थिति अवलंबित थी, सन्तुष्ट करना चाहते थे, वरन् वे अपना भी आत्म-सन्तोष चाहते थे। सार्वजनिक सेवा का नवीन भाव उदय हो रहा था और उसको कार्यान्वित करने में जनतंत्रात्मक स्वशासन अपने सर्वोत्कृष्ट पहलू को प्रकट कर रहा था।

भारत के तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड लिनलिथगो ने ईस्वी सन् १६३६ के १७ अक्टूबर वाले अपने वक्तव्य में कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारों के कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा था–

"That they haye done so, he said, on the whole with great success.........no one can question.

सर्वांगीन दृष्टि से, उन्होंने (कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने) अपना कार्य बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न किया।''''''इसमें कोई संदेह नहीं।

कृषक तथा मज़दूर आन्दोलन

जैसा कि गत पृष्ठों में दिखलाया जा चुका है, कांग्रेस के जन-आन्दोलन के साथ कृषक तथा मज़दूर-आन्दोलन भी किसी न किसी रूप में चलते रहे। ये आन्दोलन महात्माजी के अहिंसात्मक आन्दोलन की परिधि में रहते थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। कभी-कभी इन आन्दोलनों में अहिंसा-तत्व का उल्लंघन भी होता था। इनमें यह भी देखा गया कि मज़दूरों या किसानों पर प्रभाव रखने वाले कुछ कार्यकर्त्ता इनके अज्ञान का फ़ायदा उठाकर इन्हें पथभ्रष्ट कर देते थे, जिससे आन्दोलन की शुद्ध मर्यादा का कभी-कभी भंग हो जाता था।

कांग्रेस मंत्रि-मंडल के समय में भी कृषक और मज़दूर आन्दोलनों ने ज़ोर पकड़ा था, यद्यपि कांग्रेस सरकारों ने इन दोनों दलों की भलाई और सुधार के लिये हर प्रकार के प्रयत्न किये।

ईस्वी सन् १९३७ और ३८ में कई कांग्रेस मंत्रि-मंडलों के प्रान्तों में कृषक और मज़दूर आन्दोलन की आग भड़की थी। बिहार ने इसमें सर्व प्रथम भाग लिया था। कृषक और मज़दूर नेताओं ने कांग्रेस मंत्रि-मंडलों की नीति के प्रति असन्तोष प्रकट करना शुरू कर दिया। कृषकों और मज़दूरों में यह प्रचार किया जाने लगा कि देश में रूस की तरह कृषकों और मज़दूरों का राज्य होना चाहिए, जमींदारी प्रथा का एकदम नाश हो जाना चाहिए। कृषकों और मज़दूरों की कौंसिलें बनानी चाहिए और उन्हीं के द्वारा देश का शासन-सूत्र संचालित होना चाहिये। यह आन्दोलन ईस्वी सन् १९३८ में और भी बढ़ा। इसने

बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया। कई स्थानों में दंगे हुए। ईस्वी सन् १९३९ में इस आन्दोलन ने और भी अधिक भयंकर रूप धारण किया। कृषक स्वयं-सेवक लाल झंडा उड़ाते हुए प्रान्त भर में घूमते रहे और कृषक और मज़दूर-राज्य के नारे लगाते रहे।

संयुक्त-प्रान्त में भी इस समय कृषक-आन्दोलन ज़ोर-शोर से चलने लगा। लोग कांग्रेस सरकार से अनुरोध करने लगे कि चुनाव के समय आप लोगों ने प्रान्त भर में भूमिकर कम से कम कर देने का तथा ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन करने का जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिये। आन्दोलन का ज़ोर इतना बढ़ा कि ईस्वी सन् १९३७-३८ में मिनिस्टरों को प्रान्त में दौरे करने पड़े और उन्होंने किसानों को सारी परिस्थिति समझा कर उन्हें शांत रहने का अनुरोध किया। ईस्वी सन् १९३८ की पहली मार्च को लगभग ২০ हज़ार किसानों ने लखनऊ में जमा होकर सचिवालय (Secretariat) को घेर लिया। इस समय प्रधान मंत्री ने बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता के साथ उन्हें समझाया और उनके कष्टों के साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्हें यथा-शक्ति दूर करने का आश्वासन दिया। कृषकों का वह विशाल झुंड प्रधान मंत्री-महोदय से आश्वासन पाकर वापस लौट गया। बम्बई प्रान्त और मध्यप्रान्त में भी कृषक-आन्दोलन हुए, पर उन्होंने इतना उग्र रूप धारण न किया।

मज़दूर आन्दोलन की उग्रता

कांग्रेस मंत्रि-मंडल के समय में, अर्थात् ईस्वी सन् १९३७ के नवम्बर मास में, अहमदाबाद में ४० हज़ार मिल मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। यहां यह कह देना आवश्यक है कि अहमदाबाद का मज़दूर-संघ महात्मा गांधी की प्रेरणा से बना था, और उसके तत्कालीन मंत्री श्री गुलज़ारीलाल नंदा बड़े योग्य व्यक्ति और मज़दूरों की समस्याओं के बड़े विशेषज्ञ थे। मज़दूरों के हितों की भावना से वे ओत-प्रोत थे।

इस संघ ने मज़दूरों का पक्ष लेकर बड़ी बड़ी लड़ाइयां सफलता के साथ लड़ीं और मज़दूरों के हितों की रक्षा की। किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, मज़दूरों की अज्ञता का फ़ायदा उठाकर और उन्हें सोने के पहाड़ दिखला कर उनकी भावनाओं को उत्तेजित कर देना विशेष कठिन काम नहीं है; यही इस समय किया गया। फिर भी कांग्रेस नेताओं की सहायता से स्थिति को काबू में किया गया और वहां की स्थिति को नाजुक होने से बचा लिया गया।

ईस्वी सन् १९३७ के अगस्त मास में संयुक्त-प्रान्त के कानपुर नगर में मज़दूर आन्दोलन ने बड़ा उग्र रूप धारण किया। इस आन्दोलन के नेता और प्रेरक कम्यूनिस्ट थे। संयुक्त-प्रान्त के सुयोग्य प्रधान मंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने बीच में पड़कर मिल मालिकों और मज़दूरों में समझौता करा दिया, पर इस समझौते ने केवल अस्थायी सुलह का काम दिया। इसी साल के सितम्बर मास में कानपुर में मज़दूरों की दूसरी हड़ताल हुई, जिसमें १० हज़ार मज़दूरों ने भाग लिया, पर कुछ सप्ताह के बाद पं० नेहरू की अपील पर यह हड़ताल भी समाप्त हो गई। कुछ दिन तक शांति रही पर यह शांति १६ मई १९३८ को भंग हो गई। इस दिन १६ हज़ार मज़दूरों ने हड़ताल की, और आगे चलकर इसमें ४२ हज़ार मज़दूर और शामिल हो गये। शीघ्र ही कानपुर की सब मिलें बंद हो गईं। बम्बई की तरह संयुक्त-प्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने मज़दूरों की शिकायतों तथा कष्टों की जांच करने के लिये एक जांच कमेटी नियुक्त की और उसकी रिपोर्ट के अधिकांश को उसने स्वीकृत कर लिया।

यद्यपि कांग्रेस सरकार ने उक्त कमेटी की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया था पर मिल मालिक उससे सहमत न हुए। इस पर मिल मालिकों और मज़दूरों में बड़ा लम्बा-चौड़ा वादानुवाद हुआ और आखिर जून मास में मिल मालिकों को झुककर समझौता करना पड़ा।

इसी समय कुछ आतंकवादियों ने विद्यार्थियों को भड़काना भी शुरू किया। इनमें "The war Bugle" "The Echo of Revolution." नामक पुस्तिकाएँ बाँटी गईं। उत्तेजनात्मक भाषण भी दिये गये, जिससे विद्यार्थियों में काफ़ी उत्तेजना फैली। ईस्वी सन् १६३६ के जनवरी मास में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने पुलिस के व्यवहार से क्रोधित हो पुलिस पर हमला किया, पुलिस कैम्प को जला दिया और कुछ कांस्टेबलों को घायल कर दिया।

साम्प्रदायिक दंगे

कांग्रेस मंत्रि-मंडलों ने साम्प्रदायिक एकता और शांति के लिये पूरे पूरे प्रयत्न किये, उन्होंने बड़ी निष्पक्षता से काम लिया, पर फिर भी देश के दुर्भाग्य से उस समय भी यह देश साम्प्रदायिक वैमनस्य से मुक्त न रहा। ईस्वी सन् १६३७ के अक्टूबर मास से लगाकर ईस्वी सन् १६३६ के सितम्बर मास के अंत तक हिन्दू-मुस्लिम दंगों की संख्या ५७ के लगभग थी। इनमें १२ बिहार में, १४ संयुक्त-प्रान्त में, ११ मध्यप्रान्त में, ८ मद्रास में, ७ बम्बई में, १ उड़ीसा में और १ सीमा-प्रान्त में हुआ। इनमें लगभग १७०० आदमी घायल हुए और १६० की मृत्यु हुई। इसी समय ग़ैर कांग्रेसी प्रान्तों में भी काफ़ी हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। सब मिलाकर इनकी संख्या २८ थी, जिनमें १७ पंजाब में, ७ बंगाल में, ३ आसाम में और १ सिंध में हुआ। इनमें ३०० मनुष्य हताहत हुए और ३६ की मृत्यु हुई।

१९३८ का कांग्रेस अधिवेशन

ईस्वी सन् १९३८ में नवयुवकों के हृदय सम्राट् श्री सुभाषचन्द्र बोस के सभापतित्व में कांग्रेस का अधिवेशन गुजरात के हरीपुरा नामक ग्राम में हुआ। यह ग्राम सरदार पटेल का मूल निवासस्थान था। यद्यपि हरीपुर एक छोटा गांव था तथापि वहां कांग्रेस का अधिवेशन बड़े समारोह और धूमधाम के साथ हुआ। उत्साह का मानों समुद्र उमड़ रहा था। इस अधिवेशन में संघ-योजना (Federation) को स्वीकार न करने का प्रस्ताव पास किया गया।

त्रिपुरी का कांग्रेस अधिवेशन

हरीपुरा अधिवेशन के बाद दूसरा अधिवेशन त्रिपुरी में करने का निश्चय हुआ। इसकी अध्यक्षता के लिए श्री सुभाषचन्द्र बोस का नाम फिर से रक्खा गया। यह बात कांग्रेस के सत्तारूढ़ महानुभावों को पसन्द न आई। उन्होंने सुभाषचन्द्र बोस पर बहुत कुछ ज़ोर डाला पर वे अपनी बात पर अड़े रहे और उन्होंने यह स्पष्टतया कहा कि जनतंत्र के सिद्धान्त के अनुसार मुझे खड़ा रहने का हर हालत में अधिकार है। श्री बोस के विरोध में डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या खड़े किये गये। यहां यह कहना आवश्यक है कि कांग्रेस के सारे शक्तिशाली नेताओं ने श्री बोस का विरोध और श्री पट्टाभी का ज़ोरदार समर्थन किया था। महात्मा गांधी सरीखी महान् विभूती भी श्रीपट्टाभि के पक्ष में थी। इतने पर भी चुनाव में श्री बोस विजयी हुए; इससे उनकी महान् लोक प्रियता का पता लगता है और यह मालूम होता है कि भारतीय राष्ट्र के हृदय में इस देशभक्त युवक नेता के प्रति कितना महान् आदर और सम्मान था। श्री बोस अपने विश्वासों और मतों पर

हिमालय की तरह दृढ़ रहे और उन्होंने बड़े से बड़े प्रभावों से अप्रभावित रहकर अपने सिद्धान्तों के साथ समझौता करने की कमज़ोरी कभी न दिखलाई।

द्वितीय महायुद्ध और कांग्रेस की नीति

ईस्वी सन् १६३६ में यूरोप का द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ। इङ्गलैंड और फ्रान्स ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। यहां यह बात स्मरण रखने योग्य है कि इसके पहले कांग्रेस इस बात का प्रस्ताव पास करती आ रही थी कि वह किसी साम्राज्यवादी युद्ध में अपना सहयोग और सहायता न देगी। भारतवर्ष उस समय ब्रिटिश साम्राज्य की आधीनता में था, इसलिए इङ्गलैंड के साथ साथ ब्रिटिश राज्य-प्रतिनिधि वाइसरॉय ने भारतवर्ष की ओर से उसके लोक-प्रतिनिधियों की स्वीकृति लिये बिना ही जर्मनी के ख़िलाफ़ युद्ध-घोषणा कर दी। इससे स्थिति बड़ी पेचीदा हो गई। ईस्वी सन् १६३५ के 'भारत एक्ट' के मुताबिक इस समय प्रान्तों में जो कांग्रेस मंत्री-मंडल शासन कर रहे थे, उनकी स्थिति बहुत कठिन हो गई।

तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड लिनलिथगो ने इस बात के लिये अपील की। इस समय राष्ट्र के सामने एक प्रकार की समस्या खड़ी हो गई। युद्ध में एक तरफ़ साम्राज्यवादी शक्तियां थीं और दूसरी तरफ़ नाज़ीवादी शक्तियां। नाज़ीवादी शक्तियों के साथ प्रगतिशील विचार-धारा का सहयोग न था, क्योंकि ये एकाधिकार (Dictatorship) पर निर्भर थीं। इङ्गलैंड आदि के लिये यह कहा जाता था कि यद्यपि ये साम्राज्यवादी शक्तियाँ हैं, पर फिर भी इनमें कुछ जनतंत्र का सिद्धान्त मौजूद है। इसलिए प्रगतिशील राजनैतिक दलों की भावना उस समय जर्मनी की

अपेक्षा इङ्गलैंड के साथ कुछ अधिक थी। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद अपने "Mahatma Gandhi and Bihar" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"There are many amongst congressmen and in the country at large who sympathized with England. But it was difficult for anyone to render help on behalf of the people, particulary because India had been made a belligerent without her consent and because, in world war, promises and pledges given during the war had not been kept and fulfilled. Lord Linlithgow invited Mahatma Gandhi who expressed his sympathy and even offered unconditional support by which he realy meant moral support and not actual help in the conduct of the war with men, money and matarial."

"अर्थात्, कांग्रेसी लोगों में और देश में भी ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो इङ्गलैंड के साथ सहानुभूति रखते हैं। पर किसी के लिये भी जनता की ओर से सहायता देना कठिन था। इसका कारण ख़ास तौर से यह था कि भारतवर्ष को उसकी स्वीकृति के बिना ही युद्ध-रत राष्ट्र (Belligerent) बना लिया गया था, और इसके अतिरिक्त प्रथम महायुद्ध में जो वचन और आश्वासन दिये गए थे उनका भी पालन नहीं किया गया। लॉर्ड लिनलिथगो ने महात्मा गांधी को निमंत्रित किया था, जिन्होंने अपनी सहानुभूति प्रकट करने के साथ साथ बिना शर्त ही सहायता देने का भी अभीवचन दिया था। पर इस सहायता से उनका मतलब नैतिक सहायता से था, न कि ऐसी सहायता से, जिसमें युद्ध संचालन के लिए दिये गये जन, धन और युद्ध सामग्री का समावेश हो। कांग्रेस की कार्य-समिति ने बड़े वादानुवाद के बाद यह तै किया कि ब्रिटिश सरकार से अपने युद्ध के उद्देश्य साफ़ करने के

लिये कहा जाय और उससे यह भी अनुरोध किया जाय कि वह यह बतला दे कि नई व्यवस्था में भारतवर्ष की क्या स्थिति रहेगी। अगर वह ऐसा करने से इन्कार करे तो कांग्रेस के प्रान्तीय मंत्रि-मंडल इस्तीफ़ा दे दें। इसके अतिरिक्त कांग्रेस के सामने यह भी सवाल था कि अहिंसात्मक नीति स्वीकार करने की हालत में वह किसी हिंसात्मक युद्ध में सहयोग दे सकती है या नहीं। अगर यह भी मान लिया जाय कि कांग्रेस अपनी पूर्व-नीति और प्रस्तावों से बाहर जाकर लड़ाई में मदद भी करे, तो क्या ब्रिटिश गवर्नमेंट भारत को स्वतंत्रता देकर उसे अपने अन्तिम राजनैतिक लक्ष्य पर पहुँचाने में सहायता देगी? जब तक लोगों को यह विश्वास न हो जाय कि युद्ध में दी गई सहायता के बाद उन्हें स्वाधीनता मिलेगी तब तक वे इस सहायता के कार्य में पर्याप्त उत्साह नहीं दिखला सकते।

महात्मा गांधी का दृष्टि-कोण इस संबंध में यह था कि अगर भारत ने अपनी करोड़ों जनता का नैतिक सहयोग मित्र शक्तियों को दिया तो वह मित्र राष्ट्रों की विजय के लिये एक बड़ा नैतिक धरातल उत्पन्न कर देगा। महात्मा गांधी किसी सौदेबाज़ी पर यह नैतिक सहायता देना न चाहते थे। उनका खयाल था कि यह कार्य बिना किसी शर्त के होना चाहिए। इससे भारतवर्ष के पक्ष में इस प्रकार का वातावरण पैदा हो जायगा जो स्वाधीनता को अपनी ओर खींच लायगा।

कांग्रेस कार्य-समिति का दृष्टिकोण महात्माजी से कुछ भिन्न था। वह ब्रिटिश सरकार की ओर से युद्ध के उद्देश्यों के संबंध में और भारत की स्वाधीनता में उन उद्देश्यों को किस प्रकार कार्यान्वित किया जायगा, इस संबंध में स्पष्ट घोषणा का होना आवश्यक समझती थी। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की स्पष्ट घोषणा की मांग को स्वीकार नहीं किया और इसके फलस्वरूप प्रान्तीय मंत्रि-मंडलों ने त्याग-पत्र दे दिये। कुछ मास तक वाइसरॉय और गवर्नर इस बात की प्रतीक्षा करते रहे

कि शायद परिस्थिति की जटिलता को देखकर कांग्रेस अपने पूर्व-निश्चय पर पुनर्विचार करने के लिये तैयार होकर पुनः शासन का भार सम्भाल ले, पर उसने ऐसा न किया। इस पर १९३५ के भारतीय संविधान की धारा के अनुसार गवर्नरों ने अपने अपने प्रान्तों का शासन-भार अपने ऊपर ले लिया; क्योंकि इसके सिवा उनके पास दूसरा चारा ही न था। कांग्रेस का देश में भारी बहुमत था, देश का अत्यधिक जनमत उसके साथ था, इसलिए कांग्रेसी प्रान्तों में दूसरे दल के मंत्रि-मंडल का बनना सम्भव न था। अगर गवर्नर धारा सभाओं को तोड़ कर दूसरा चुनाव करने का निश्चय करते तो भी उन चुनावों में कांग्रेस ही की भारी विजय होती और उसी का बहुमत होता। इसलिये यह उपाय भी नाकामयाब होता। इन्हीं सब बातों का विचार कर गवर्नरों ने प्रान्तीय शासन की सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी अपने हाथ में ले ली, और ईस्वी सन् १९४६ तक सर्वसत्ताधारी रूप में वे अपना शासन-कार्य चलाते रहे।

यद्यपि गवर्नरों ने सम्पूर्ण शासन भार अपने हाथ में ले लिया तथापि ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस कार्य-समिति अपने अपने ढंग से इस बात का प्रयत्न करती रही कि दोनों में सम्मान पूर्वक समझौता हो जाय। रामगढ़ कांग्रेस अधिवेशन के कुछ मास के बाद कांग्रेस कार्य-समिति ने,अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के समर्थन पर, दुबारा फिर यह प्रकट किया कि अगर केन्द्रवर्ती शासन में लोक प्रतिनिधियों को वास्तविक सत्ता दी जाय और इसी अरसे में योग्य वैधानिक परिवर्तनों का आश्वासन दिया जाय तो कांग्रेस युद्ध में सक्रिय सहायता देने के प्रश्न पर पुनर्विचार करने के लिये तैयार है। महात्मा गांधी जनता की ओर से इस प्रकार का आश्वासन देने के लिए तैयार न थे और उक्त उद्देश्य के लिये होने वाली उक्त-अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में वे शामिल न हुए। उनका कांग्रेस कार्य-समिति से मौलिक मतभेद था, पर ब्रिटिश गवर्नमेंट ने कांग्रेस का प्रस्ताव स्वीकार न किया,

अतएव कांग्रेस कार्य-समिति और महात्मा गांधी के बीच के मतभेद का प्रश्न ही न रहा।

महात्मा गांधी और कांग्रेस स्थिति को ज्यों की त्यों चलने देने के पक्ष में न थे। आखिर माहात्मा गांधी की सलाह से अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी ने यह निश्चित किया कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस के दृष्टिकोण की उपेक्षा करती है और उसने बिना जमानत लिये भारतवर्ष को युद्ध में घसीटा है, ऐसी दशा में कांग्रेस को युद्ध-प्रयास के खिलाफ़ प्रचार करने के अपने अधिकार को काम में लाना चाहिए।

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी ने महात्मा गांधी से अनुरोध किया कि वे सविनय अवज्ञा का आन्दोलन शुरू कर दें महात्मा जी ने उक्त-कमेटी की यह बात स्वीकर कर ली। पर इस समय उन्होंने विशेष सावधानी से काम लेना उचित समझा। वे इस आन्दोलन को विशुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन रखना चाहते थे। इस समय उनके मतानुसार इस आन्दोलन का विशुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन की मर्यादा से थोड़ा भी बाहर चला जाना देश के लिये अमंगलकारी था। इस लिये उन्होंने इसे सामूहिक आन्दोलन के बजाय व्यक्तिगत सत्याग्रह के रूप में चलाना अधिक उचित समझा।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

जैसा कि पहले कहा गया है महात्माजी ने कई परिस्थितियों को लक्ष्य में रखकर इस समय सामूहिक सत्याग्रह के बजाय वैयक्तिक सत्याग्रह को ही उचित समझा। इस समय ब्रिटिश सरकार बिना राष्ट्र की स्वीकृति के और बिना राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति का आश्वासन दिये सेना में लोगों की भर्ती कर रही थी और युद्ध की सहायता के लिये भारतवासियों से धन संग्रह भी कर रही थी। महात्माजी ने इस कार्य के खिलाफ़ आवाज़ उठाना इसलिए मुनासिब समझा कि यह सारा

कार्य भारतीय लोक-प्रतिनिधियों की बिना सम्मति के किया जा रहा था और कांग्रेस की मांग की उपेक्षा की जारही थी। व्यक्तिगत सत्याग्रह के द्वारा लोगों में साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ़ प्रचार करने का खास कार्यक्रम रक्खा गया था।

इस व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिये महात्माजी ने श्री विनोबा भावे को चुना महात्माजी ने श्री विनोबा को सर्व प्रथम सत्याग्रही चुनने के संबंध में अपने साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' में जो लेख लिखा था उसमें उन्होंने श्री विनोबा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उनके उन गुणों का उल्लेख किया था, जिनका एक सच्चे सत्याग्रही में होना आवश्यक है।

श्री विनोबा भावे बड़ोदा के निवासी हैं। इन्होंने ईस्वी सन् १९१६ में इन्टर मीजियेट क्लास में अध्ययन करते हुए कालेज छोड़ा था। इसके बाद आप तपश्चर्या करने हिमालय पहाड़ पर चले गये थे। आपने मराठी भाषा में गीता का बड़ा सुन्दर अनुवाद किया था। इसके बाद आप महात्माजी के सम्पर्क में आये और इन्होंने अपने उच्च जीवन के द्वारा महात्माजी के हृदय पर बड़ा प्रभाव डाला। आपका जीवन तपस्वी जीवन था और वह एक सच्चे सत्याग्रही के योग्य था। डॉ॰ पट्टाभि सीतारामय्या अपने "Gandhi and Gandhism," के प्रथम भाग में लिखते हैं:—

"Individual civil dis-obedience had begun in the person of Vinoba Bhave a satyagrahi of 32 years standing, a scholar of wide learning, an asectic of stern discipline, a devotee of khadder and village industries and the formost amongst the disciples of Gandhi. In simple yet effective language; in measured and unfaltering tones,

Vinoba has delivered his four speeches against participation in war effort."

इसका आशय यह है कि श्री विनोबा भावे से व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया था। श्री विनोबा भावे ३२ वर्ष की प्रतिष्ठा के सत्याग्रही थे। वे बहुश्रुत विद्वान्, कठोर अनुशासन का पालन करने वाले तपस्वी, खद्दर और देहाती उद्योगधंधों के भक्त और गांधीजी के सबसे अग्रगण्य शिष्य थे। उन्होंने सरल तथा प्रभावशाली भाषा में, नपे-तुले तथा धाराप्रवाही शब्दों में युद्ध-प्रयास में सम्मिलित होने के ख़िलाफ़ चार भाषण दिये। विनोबा भावे गिरफ़्तार कर लिये गये और उन्हें ३ मास की सादी सज़ा दी गई। अब तक श्री विनोबा भावे का नाम देश के इने-गिने आदमी ही जानते थे, पर इस व्यक्तिगत सत्याग्रह के बाद उनकी ख्याति सारे देश में फैल गई और वे एक बड़े विशुद्ध सत्याग्रही समझे जाने लगे। डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या अपने उक्त अंग्रेज़ी ग्रन्थ में आगे चलकर फिर लिखते हैं:—

"Today his name is familiar to millions of his contemporaries in India and tomorrow his name will be revered by posterity as that of the chosen disciple of Mahatma Gandhi for the purest sacrifice at the altar of the motherland."

"आज उनका नाम भारतवर्ष के उनके समकालीन लाखों-करोड़ों आदमियों में प्रख्यात है, और कल उनका नाम आनेवाली संतानें महात्माजी के चुने हुए सत्याग्रही के रूप में और अपनी मातृभूमि के लिये सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध आत्म-बलिदान करने वाले के रूप में बड़े आदर के साथ लेंगी।"

ता० २१ अक्टूबर ईस्वी सन् १६४० को श्री विनोबा भावे सत्याग्रह करते हुए गिरफ़्तार कर लिये गए। उनके बाद पं० जवाहरलाल नेहरू

की बारी थी, मगर वे पहले ही गिरफ्तार किये जा चुके थे। इसलिए उनके बाद गांधीजी ने एक साधारण व्यक्ति श्री ब्रह्मदत्त से सत्याग्रह करवाया। इस सत्याग्रह में ब्रिटिश सरकार के युद्ध-प्रयत्न में सहायता न करने के विषय में तथा सत्याग्रह ही युद्ध का मुकाबला करने का सबसे बड़ा साधन है, आदि भावों को लेकर जो नारे और भाषण तैयार किये गए थे, उन्हीं का प्रचार जनता में करने का सत्याग्रहियों को आदेश दिया गया था। इसके अतिरिक्त यह भी आदेश दिया गया था कि प्रत्येक सत्याग्रही अपने सत्याग्रह करने की तिथि और स्थान की सूचना मजिस्ट्रेट को दे दे।

जो सत्याग्रही गिरफ्तार न किये जावें, उनके लिये यह आदेश था कि वे युद्ध के विरुद्ध नारा लगाते हुए और युद्ध-प्रयास में सहायता देने के विरुद्ध प्रचार करते हुए दिल्ली पहुँचें।

इसके अतिरिक्त गांधीजी ने धारा सभाओं के सब निर्वाचित सदस्यों को तथा अन्य संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों को सत्याग्रह करने का आदेश दिया था। साथ ही यह भी आदेश था कि जो सत्याग्रही जेल से छूटकर आवें, वे फिर से सत्याग्रह कर जेल जावें।

इस प्रकार वैयक्तिक सत्याग्रह करते हुए तीस हज़ार से ऊपर सत्याग्रही जेल गये। इनमें ११ कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्य, १७६ अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य, २२ केन्द्रवर्ती धारा-सभा के सदस्य, २९ भूतपूर्व प्रान्तीय कांग्रेस मंत्री और ४०० प्रान्तीय धारा सभाओं के सदस्य थे।

क्रिप्स-योजना

ईस्वी सन् १९४२ के ११ मार्च को ग्रेट ब्रिटेन के तत्कालीन प्राइम-मिनिस्टर मि० चर्चिल ने भारतवर्ष को क्रिप्स मिशन भेजने की घोषणा की थी। उस समय की परिस्थितियों पर पहले कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। जापान ने उस समय मलाया और बर्मा के कुछ हिस्से को जीत कर उस पर अधिकार कर लिया था। १५ फरवरी को सिंगापुर का पतन होकर उस पर जापान का विजयी झंडा फहराने लगा था। ७ मार्च को ब्रिटिश सेना जापानी सेना द्वारा परास्त होकर रंगून खाली करने के लिये बाध्य हुई थी। अंग्रेज़ों के भारतवर्ष पर अधिकार करने के बाद, इतिहास में, यह पहला अवसर था कि इस देश पर भूमि और समुद्र से बाह्याक्रमण होने का भय सिर पर नाच रहा था। इसके अतिरिक्त भारत की आन्तरिक स्थिति भी ख़राब हो रही थी। कांग्रेस और सरकार का संघर्ष बड़ा तीव्र रूप धारण कर रहा था। सरकार के दमनकारी उपायों से स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती जा रही थी। सरकार और भारतीय नेताओं के सामने बड़े जटिल प्रश्न उपस्थित हो रहे थे। क्या बाह्याक्रमण का मुक़ाबला भारतवर्ष अपने संयुक्त मोर्चे के द्वारा कर सकेगा? क्या जनता और तत्कालीन अंग्रेज़ सरकार एक दिल होकर इस आपत्ति का मुक़ाबला करेंगे? ये प्रश्न उस समय देश के विचारवान् लोगों की ज़बान पर थे। इसके अतिरिक्त युद्ध की व्यूह-रचना की दृष्टि से उस समय भारतवर्ष का बड़ा महत्त्व था। अगर यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि भारतवर्ष पर सारे ब्रिटिश साम्राज्य का जीवन निर्भर था। इन्हीं सब बातों को दृष्टि में रख कर मि० चर्चिल ने एक सुधार-योजना के साथ क्रिप्स मिशन को भारतवर्ष भेजा था।

क्रिप्स महोदय एक उच्च श्रेणी के ब्रिटिश राजनीतिज्ञ हैं। आप उस समय रूस के राजदूत बनाकर भेजे गये थे जिस समय रूस की प्रवृत्ति जर्मनी के पक्ष में और ब्रिटेन आदि के विरुद्ध थी। रूस का रेडियो मित्र-देशों के विरोध में ज़ोरदार प्रचार कर रहा था। ऐसी स्थिति को क्रिप्स महोदय ने अपनी राजनैतिक प्रतिभा से बदल दिया। उन्होंने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे उस समय रूस केवल ब्रिटेन आदि का मित्र ही नहीं बन गया, किंतु उसके और जर्मनी के बीच में युद्ध ठन गया। इससे कुछ समय के बाद युद्ध की परिस्थिति बिलकुल बदल गई और युद्ध के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हो गया। अगर ऐसा न होता तो आज संसार के मानचित्र का दूसरा ही रूप होता।

क्रिप्स को भेजने में ब्रिटिश सरकार ने यह भी सोचा कि क्रिप्स ब्रिटिश समाजवादी दल के नेता होने से वे सम्भवतः भारतीय लोकमत पर अधिक प्रभाव डाल सकेंगे। इसके अतिरिक्त मि० क्रिप्स भारत के प्रधान नेता पं० जवाहरलाल नेहरू के मित्र थे। इससे पूर्व जब आप भारतवर्ष आये थे तब आप पंडितजी के पास ही मेहमान के रूप में ठहरे थे। इन्हीं सब बातों को सोचकर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने क्रिप्स के नेतृत्व में अपना मिशन भेजा था।

ईस्वी सन् १९४२ के २३ मार्च को क्रिप्स महोदय अपने मिशन के साथ हवाई जहाज़ से नई दिल्ली उतरे। तुरन्त आप वाइसरॉय भवन में पहुँचे और वहां आप दो दिन तक ठहरे। वहीं आप प्रान्तीय गवर्नरों से मिले, जो आपसे मिलने ही के लिए अपने अपने प्रान्तों से आये हुए थे। इसके अतिरिक्त आप वाइसरॉय की कार्यकारिणी सभा के सदस्यों से मिले और उन्हें अपनी सुधार-योजना से अवगत कराया। २५ मार्च को आप क्वीन विक्टोरिया रोड नं० ३ वाले अपने मुक़ाम पर पहुँचे और वहां आपने कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना अब्दुलकलाम आज़ाद से भेंट की। मौलाना साहब के बाद आप

मुस्लिम लीग के अध्यक्ष जिन्ना साहब से मिले। दोनों ही को आपने अपने प्रस्तावों के मसविदों की प्रतियाँ दीं और उनके महत्व को समझाया। कहने का मतलब यह है कि आप सारे सप्ताह भर विभिन्न राजनैतिक और साम्प्रदायिक दलों के नेताओं से मिलते रहे। देशी राज्यों के प्रजा-प्रतिनिधियों से भी आप मिले। सभी को आपने अपने प्रस्तावों की प्रतियाँ दीं।

सर स्टेफोर्ड क्रिप्स के भारत पहुँचने तक यहां के समाचारपत्रों में उनके प्रस्तावों के संबंध में कोई खास आलोचना न हुई थी। अगर हुई भी थी तो बहुत ही कम। पर ज्योंही सर स्टेफोर्ड क्रिप्स भारत पहुंचे और लोगों ने उनके प्रस्तावों के संबंध में उड़ती हुई खबरें सुनीं तो उनके खिलाफ़ कई प्रकार की आलोचनाएँ निकलने लगीं। लोगों को मालूम हुआ कि सर स्टेफोर्ड की योजना यदि कार्यान्वित की गई तो भारतवर्ष एक संयुक्त संघ के बजाय कई संघों में विभाजित हो जायगा और उसकी एकता बुरी तरह से छिन्नभिन्न हो जायगी। इसके अतिरिक्त उनके प्रस्तावों में भारतवर्ष को जो कुछ दिया जाने वाला था वह युद्ध के बाद था। इसलिए महात्माजी ने इस योजना को अगली मिती की हुंडी (Post-dated cheque) कहा था।

२६ मार्च को सर स्टेफोर्ड ने समाचारपत्रों के प्रतिनिधियों को निमंत्रित किया और अपनी योजना की प्रतियां उनके हवाले कीं। इस समय चारों ओर से सर स्टेफोर्ड क्रिप्स पर प्रश्नों की झड़ियाँ बरसने लगीं। सर स्टेफोर्ड, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, बड़े राजनीतिज्ञ, गम्भीर विद्वान् और सभा चतुर थे। उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ प्रश्नों का उत्तर देते हुए अपनी प्रस्तावित योजना का समर्थन किया। इतना ही नहीं उन्होंने-उपस्थित प्रेस प्रतिनिधियों को अपने उत्तरों से बहुत कुछ सन्तुष्ट भी किया। मि० सुब्रह्मण्य अपने "Why Cripps Failed" नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"He then answered the hundreds of searching questions showered at him from all sides. It was a gallant attempt to stem the tide which had already started flowing against him, and it was a tribute to his ability and agility that he very nearly succeeded in convincing his audience that the scheme was, after all, not so bad as the forecasts had made it out to be. The provinces had indeed for the first time, secured the right to stay away from federation, and even form an alternative federation of their own. Defence, it was true, continued to be reserved as the responsibility of his Majesty's Government. But the scheme had some attractive features. With further elucidation on obscure points, some difficult negotiations and even hard bargaining, it was thought, it might he licked into acceptable shape. This was the first reaction in the country to the Draft Declaration."

अर्थात्, "चारों तरफ़ से होनेवाले सैकड़ों छानबीन भरे प्रश्नों की बौछारों का उन्होंने उत्तर दिया। यह कार्य चारों तरफ़ से आने वाले एक विरोधी तूफ़ान का धैर्य-पूर्ण मुकाबला था। इसके अतिरिक्त यह उनकी योग्यता और कार्यतत्परता के लिए एक बड़ी प्रशंसा की बात थी कि वे अपने श्रोताओं को इस बात का विश्वास दिलाने में क़रीब क़रीब सफल हो गये थे कि उनकी योजना इतनी ख़राब नहीं थी जितनी कि उसके संबंध की भविष्य वाणियों में बतलाई गई थी। अवश्य ही,

प्रान्तों ने इस योजना के अनुसार पहली बार संघ से अलग रहने का अधिकार प्राप्त किया था और इतना ही नहीं उन्हें अपना वैकल्पिक संघ बनाने का अधिकार भी दिया गया था। यह सच है कि देश-रक्षा के कार्य का उत्तरदायित्व श्रीमान् सम्राट की सरकार के लिए ही सुरक्षित रक्खा गया था। किंतु इस योजना के कुछ आकर्षक पहलू भी थे। कुछ अस्पष्ट मुद्दों के स्पष्टीकरण से, कुछ कठिन समझौतों से तथा मुश्किल चीज़ों से, आदान प्रदान से, यह विल भी स्वीकार करने योग्य बनाया जा सकता था। यह प्रस्तावित मसविदे की घोषणा की, इस देश में होनेवाली, प्रथम प्रतिक्रिया थी।"

क्रिप्स के प्रस्तावित मसविदे में मूल योजना और उसकी प्रस्तावना थी। प्रस्तावना में कहा गया था कि भारत के भविष्य के संबंध में ब्रिटिश सरकार जो वचन देती आ रही है उसको अब उक्त सरकार कार्यान्वित करना चाहती है। वह स्पष्ट शब्दों में यह आश्वासन देना चाहती है कि भारतवर्ष में स्वशासन की सिद्धि के लिये वह जल्दी से जल्दी क़दम उठाना चाहती है। उसका उद्देश्य यह है कि भारतवर्ष में ऐसे संघ का निर्माण किया जाय जिसका सम्बंध ब्रिटिश संयुक्त-राज्य और उसके उपनिवेशों से हो, और जो सामान्य रूप से सम्राट् के प्रति निष्ठा रखता हुआ हर बात में उनके बराबरी का दर्जा रखता हो। साथ ही अपने घरेलू या बाहरी मामलों में वह किसी भी रूप में इनके आधीन न हो।

मूल योजना में इस समस्या के दो पहलुओं पर विचार किया गया था। एक तो यह कि महायुद्ध समाप्त होने के बाद नये संघ का किस प्रकार निर्माण किया जाय और दूसरा यह कि देश की रक्षा के लिये लोगों का किस प्रकार प्रभावोत्पादक सहयोग प्राप्त किया जाय। इसमें यह भी कहा गया था कि युद्ध बंद होने के बाद तुरंतही एक विधान-सभा का संगठन किया जाय, जो देश के लिये विधान बनाने का कार्य

करे। यह विधान-सभा युद्ध के बाद होने वाले चुनावों में निर्वाचित प्रान्तीय धारा सभाओं के सदस्यों द्वारा निर्वाचित हो, अर्थात् इसके सदस्य प्रान्तीय धारा सभाओं के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किये जायँ। धारा सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या प्रान्तीय धारा सभाओं के कुल सदस्यों की संख्या की $\frac{1}{10}$ हो। देशी राज्य भी ब्रिटिश भारत की तरह अपनी संख्या के अनुपात से विधान सभा के लिये अपने प्रतिनिधि नियुक्त करें। ब्रिटिश भारत के सदस्यों की तरह ही उनके अधिकार होंगे।

इसके अतिरिक्त क्रिप्स योजना में प्रान्तों को यह अधिकार दिया गया था कि अगर कोई प्रान्त संघ में सम्मिलित न होना चाहे तो वह अपनी पूर्व-स्थिति में रह सकता है, पर इसके लिये ६० फ़ी सदी जनता का मत होना चाहिये। इस योजना की दूसरी धारा में श्रीमान् सम्राट् की सरकार और विधान-सभा के बीच होने वाली संधि का ज़िक्र किया गया था। इसमें ब्रिटिश सरकार के हाथ से भारतवासियों के हाथ में दिये जाने वाले सम्पूर्ण उत्तरदायित्व की शर्तों के उल्लेख के साथ साथ जातीय और धार्मिक अल्प-संख्यक समुदायों (Minorities) की रक्षा का उल्लेख भी किया गया था, और कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार ने पहले ही से इस संबंध में उन्हें जो अभिवचन दिये थे, उनके परिपालन का आश्वासन इस संधि में रहेगा। इस संधि के अनुसार भारतीय संघ के लिए इस बात में कोई रुकावट न डाली जायगी कि वह ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के अन्य सदस्य-राज्यों के साथ अपनी इच्छानुसार अपना सम्बंध रख सके।

क्रिप्स के प्रस्तावों में भारत के नवीन यूनियन को यह भी अधिकार दिया गया था कि अगर वह चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से जुदा हो सकता है। बातचीत के दौरान में एक अवसर ऐसा आया जब ऐसा मालूम होने लगा कि भारत के नेता इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लेंगे। पर

ऐसा न हुआ। इसका कारण यह था कि एक तो इन प्रस्तावों में वर्णित सुधार तत्काल कार्यान्वित न होने वाले थे। दूसरा यह था कि प्रान्तों को प्रधान संघ से उनकी इच्छानुसार अलग होने का जो अधिकार इन प्रस्तावों में दिया गया था, वह हमारे नेताओं को उस समय मान्य न था।

ब्रिटिश सरकार इससे पहले भारत को दिये गये वचन तोड़ चुकी थी, इसलिये हमारे नेताओं को इस बात का संदेह था कि अपना काम निकालने के बाद ब्रिटिश सरकार भारत को स्वराज्य देगी या नहीं।

इतने पर भी वह बातचीत, जैसा कि पहले कहा गया है, समझौते के बहुत कुछ निकट पहुँच गई थी। पर आखिर देश रक्षा (Defence) और मध्यवर्ती सरकार (Interim Government) के संगठन के प्रश्न को लेकर मतभेद उपस्थित हो ही गया और बातचीत टूट गई। सर स्टेफोर्ड भारत छोड़कर चले गये। उनके प्रस्तावों को न केवल कांग्रेस ही ने किन्तु अन्य दलों ने भी अस्वीकृत कर दिया था।

"भारत छोड़ो" आन्दोलन

सर स्टेफोर्ड क्रिप्स के इस प्रकार चले जाने से भारत के वातावरण में क्रोध और अशान्ति की ज्वाला बड़े ज़ोरों से भड़क उठी। हमारे राष्ट्रीय नेता स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये आख़िरी क़दम उठाने को प्रस्तुत हो गये। महात्मा गांधी ने इन दिनों में 'हरिजन' में जो लेख लिखे, उनमें से स्वतन्त्रता की ज्वालाएँ निकल रही थीं। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने

अपने "Mahatma Gandhi and Bihar" नामक ग्रंथ में लिखा है:-

"In those days Gandhi's writings were emitting fire and the whole country was on the tiptoe of expectancy of great things to happen."

अर्थात्, "इन दिनों गांधीजी के लेख आग बरसा रहे थे, और सारा देश महान् घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहा था।" ७ और ८ अगस्त सन् १९४२ को बम्बई के गोवालिया टैंक मैदान के एक विशाल सुसज्जित भवन में दिन के २ बजकर ४५ मिनट पर स्वतंत्रता के महान् प्रश्न पर अन्तिम विचार करने के लिये अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस समिति का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इसमें उक्त कांग्रेस समिति के २५० सदस्य और लगभग १० हज़ार दर्शक उपस्थित थे। महात्मा गांधी दिन के ठीक ३ बजे सभा-भवन में पधारे और उपस्थित विशाल जनता ने तुमुल जय-ध्वनि के साथ उनका स्वागत किया। सारा राष्ट्र इस समय नवजीवन से अनुप्राणित हो रहा था, और वह बड़ी तृषा-पूर्ण दृष्टि से बम्बई के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा था।

इस समय कांग्रेस महासमिति ने उस ऐतिहासिक प्रस्ताव पर विचार किया जो "भारत छोड़ो" के नाम से प्रसिद्ध है। वह एक लम्बा और विस्तृत प्रस्ताव था जिसमें भारत की स्वतंत्रता को फ़ौरन स्वीकार करना केवल भारत के ही हित में नहीं, बल्कि संयुक्त-राष्ट्रों के हित की सफलता के लिये भी भारत से ब्रिटिश राज्य उठा लेने के लिये विचार-पूर्ण तर्क दिये गये थे। उसमें कहा गया था कि भारत में ब्रिटिश राज्य के जारी रहने से भारत का पतन हो रहा है, वह कमज़ोर बनता जा रहा है और उसकी अपनी रक्षा करने तथा विश्व-स्वतंत्रता के पक्ष में योग देने की शक्ति दिन-पर दिन घटती जा रही है।"......

आगे चलकर इसी प्रस्ताव में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया गया था कि ब्रिटिश शक्ति भारतवर्ष से हट जाय और भारतीय स्वतन्त्रता की

घोषणा होने पर स्वतंत्र भारत में एक ऐसी कामचलाऊ सरकार (Provisional Government) बन जाय जो प्रमुख विभिन्न दलों के सहयोग से निर्मित हो और जिसका मुख्य कार्य अपनी समस्त सशस्त्र और अहिंसात्मक शक्तियों से तथा मित्र-राष्ट्रों के सहयोग से भारत की रक्षा करना तथा बाह्य आक्रमण का विरोध करना हो। यह सरकार विधान-परिषद् की योजना तैयार करेगी और वह विधान-परिषद् भारत के सभी वर्गों द्वारा स्वीकृत किये जाने योग्य विधान बनायेगी। यह विधान एक संघीय विधान होगा जिसकी विभिन्न इकाइयों को अधिक से अधिक स्वराज्य और अवशिष्ट अधिकार प्राप्त होंगे। स्वतंत्रता भारत को इस योग्य बना देगी कि वह जनता की संयुक्त इच्छा-शक्ति और बल की सहायता से आक्रमण का सफलता पूर्वक विरोध कर सके।"

आगे चलकर महासमिति ने भारतीय स्वतंत्रता का आदर्श रखते हुए अपने प्रस्ताव में कहाः—

"The freedom of India must be the symbol of and prelude to this freedom of all other Asiatic nations under foreign domination. Burma, Malaya Indo-China, Indonesia, Iran and Irak must also attain their complete freedom."

अर्थात्, "भारतीय स्वतंत्रता विदेशी सत्ता की अधीनता में रहने वाले तमाम एशियाई देशों की स्वतंत्रता की प्रतीक और भूमिका होनी चाहिए। बर्मा, मलाया, इंडो-चाइना, इंडोनेशिया, ईरान और इराक आदि को भी अपनी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिए।"

इसके अतिरिक्त प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि संसार की भावी शांति, सुरक्षा और सुव्यवस्थित प्रगति के लिये यह आवश्यक है कि स्वतंत्र राष्ट्रों का एक विश्व संघ (World federation) स्थापित किया

जाय। इसके बिना आधुनिक संसार की समस्याओं का हल नहीं हो सकता।

इस प्रकार का विश्व-संघ अपने घटक राष्ट्रों (Constituent Nations) की स्वतंत्रता की रक्षा करेगा; एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र पर होने वाले आक्रमण और शोषण को रोकेगा; राष्ट्रीय अल्प संख्यक दलों (National minorities) की रक्षा करेगा; पिछड़े हुए प्रदेशों और लोगों की प्रगति में सहायक होगा और सब की भलाई अर्थात सर्वोदय के लिये संसार के साधनों का उपयोग करेगा। इस प्रकार का विश्व-संघ स्थापित होने पर सब देशों में निरस्त्रीकरण सम्भव हो सकेगा, जल-सेनाओं और हवाई सेनाओं की आवश्यकता न रहेगी और विश्व-संघ की रक्षाकारी शक्ति संसार-शांति को स्थापित करेगी और आक्रमणों को रोकेगी।

इन प्रस्तावित आदर्शों के साथ साथ ही कांग्रेस की महासमिति ने भारतीय स्वाधीनता के अपने अखंड अधिकार को प्रकट करते हुए इसकी प्राप्ति के लिये विशाल पाये पर सामूहिक अहिंसात्मक सत्याग्रह करने का निश्चय किया और यह प्रकट किया कि गत २२ वर्षों के शांतिमय संघर्ष से राष्ट्र ने जो शक्ति संचित की है, उस सारी शक्ति को वह संगठित रूप से इस संघर्ष में लगादे। यह संघर्ष गांधीजी के नेतृत्व में चलाया जाय। इसके लिए महासमिति ने गांधीजी से प्रार्थना की कि वे इस महान् संघर्ष का नेतृत्व ग्रहण करें।

इसके अतिरिक्त कांग्रेस महासमिति ने लोगों से अपील की कि वे भारतीय स्वतंत्रता के पवित्र उद्देश्य के लिये इस संघर्ष के कारण आने वाली तमाम कठिनाइयों और खतरों को बड़ी बहादुरी और सहनशीलता के साथ सहन करें।

इस महान् संघर्ष के संचालन में एक समय ऐसा आ सकता है कि जब ऊपर से हिदायतें प्राप्त न हो सकें, और कांग्रेस कमेटियों की

कार्यवाहियां बन्द हो जायं। ऐसी स्थिति में हरएक पुरुष और स्त्री अपना नेतृत्व स्वयं करें और वे तब तक आगे बढ़ते रहें जब तक राष्ट्र को स्वाधीनता और मुक्ति न मिल जाय। अंत में कांग्रेस महासमिति ने भारतवर्ष के भावी शासन के संबंध में अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए स्पष्ट रूप से यह कहा कि समूहिक संघर्ष से वह अपने लिए अधिकार प्राप्त करने की आकांक्षा नहीं रखती वरन् वह सारे देश के लिए यह आकांक्षा रखती है।

महासमिति के इस प्रस्ताव के समर्थन में सबसे पहले मौलाना आज़ाद बोले। उन्होंने बड़े ज़ोरदार शब्दों में यह प्रकट किया कि 'भारत छोड़ो' के नारे का मतलब पूर्ण स्वतंत्रता से न तो कम है और न ज्यादा। इसका मतलब भारतवासियों के हाथ में पूर्ण राज्यसत्ता का हस्तान्तरित होना है। इसके लिये वे ब्रिटिश और संयुक्त राष्ट्रों (United Nations) से यह आखिरी अपील कर रहे हैं। अगर उनकी आंखें अंधी नहीं है और कान बहरे नहीं हैं तो वे इस मांग को स्वीकार करें।"

मौलाना साहब के बाद पं० जवाहरलाल नेहरू उठे और उन्होंने इस ऐतिहासिक प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा—"जो क़दम हम उठा रहे हैं उसे पीछा हटाने का कोई सवाल ही नहीं है। अगर हमारे विपक्षियों में सद्भावना हो तो सब मामला ठीक हो जायगा और युद्ध की सारी गति-विधि में परिवर्तन हो जायगा। कांग्रेस तूफ़ानी महासागर में कूद रही है; या तो वह भारत की स्वतंत्रता को लेकर निकल आयेगी या वह रसातल में ही चली जायगी। यह लड़ाई आखरी दम तक लड़ी जायगी।"

पं० जवाहरलाल के बाद सरदार पटेल बोले और उन्होंने ब्रिटिश सरकार की भारतीय नीति पर कड़े आक्षेप किये। सरदार पटेल के बाद महात्मा गांधी उठे और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उन्होंने बड़े गम्भीर स्वर से बोलना शुरू किया—

"अगर आप स्वराज्य और स्वतंत्रता चाहते हैं; अगर आप दिल से यह महसूस करते हैं कि जो कुछ मैं आपके सामने रख रहा हूँ, वह सही और ठीक है, तो आपको उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। इस तरह आप मुझे पूरा सहयोग दे सकते हैं।"

आगे चल कर महात्माजी ने फिर कहा 'दूसरी बात जो मैं आप से कहना चाहता हूँ,वह यह है कि आप अपनी ज़िम्मेदारी को समझिये। कांग्रेस महा समिति के सदस्य पार्लियामेण्ट के सदस्यों की तरह हैं। कांग्रेस सारे भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व करती है। वह अपने जन्म-काल ही से किसी विशिष्ट प्रान्त की नहीं, किन्तु सारे राष्ट्र की है। यही कारण है कि आप लोगों की ओर से मैं यह दावा पेश करता आ रहा हूँ कि आप न केवल कांग्रेस के रजिस्टर्ड सदस्यों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं वरन् सारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

दूसरे दिन ८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस महासमिति की दूसरी बैठक हुई, जिसमें उक्त प्रस्ताव बहुत बड़े बहुमत से पास हुआ। केवल ३० मत प्रस्ताव के विरोध में आये। इस प्रस्ताव में जो संशोधन रखे गये, वे या तो वापस ले लिये गये या अस्वीकृत हो गये।

प्रस्ताव के पास हो जाने के बाद राष्ट्र को सम्बोधन करते हुए महात्मा गांधी गम्भीरता-पूर्वक बोले—"मैं इस संबंध में आपका नेतृत्व करने का कार्य अपने कंधों पर लेता हूँ। यह कार्यभाग मैं आपके कमाण्डर की हैसियत से नहीं वरन् आपके एक विनीत सेवक की हैसियत से लेता हूँ। जो सबसे अच्छी सेवा करता है वही मुखिया बनता है। मैं इस दृष्टि से राष्ट्र का मुख्य सेवक हूँ, और इसी दृष्टि से अपने इस कार्य को और इस पद को देखता हूँ।"

इसके बाद महात्मा गांधी ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहा कि "अगर सारे संयुक्त राष्ट्र मेरा विरोध करें; अगर सारा भारतवर्ष भी मुझे

यह विश्वास दिलावे कि मैं ग़लती पर हूँ, तो भी मैं आगे बढ़ता हुआ चला जाऊँगा। मेरा यह कार्य न केवल हिन्दुस्तान के लिये होगा किन्तु सारे संसार के लिये होगा।"

अन्त में गांधीजी ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में श्रोताओं को सम्बोधन करते हुए कहा:—

"Here is a Mantra-a short one-that I will give you. Yoh may imprint it on your hearts and let every breath of yours give expression to it. The Mantra is this "We shall do or die."We shall either free India or die in attempt. We shall not live the perpetuation of slavery. Every true Congressman or woman will join the struggle with an inflexible determination not to remain alive to see the country in bondage and slavery. + + + + Let everyman and woman live every moment of his or her life hereafter in the consciousness that he or she eats or lives for achieving freedom and will die, if need be, to attain that goal. With God and your own conscience as witness that you will no longer rest till freedom is achieved and wll be prepared to lay down your lives in the attempt to achieve it. He who loses his life shall gain, he who will seek to save it shall lose it. Freedom is not for the faint hearted."

अर्थात्, "यहाँ एक छोटा सा मन्त्र है जो मैं आपको देता हूँ। इसे आप अपने हृदयों पर अंकित कर लीजिये और इसे आप अपने हरएक

श्वास-प्रश्वास द्वारा प्रकट कीजिये। वह मंत्र यह है "हम करेंगे या मरेंगे।" या तो हम भारत को स्वतंत्र करेंगे या इसके प्रयत्न में मर जायेंगे। हम गुलामी को देखने के लिये ज़िन्दा न रहेंगे। हर एक कांग्रेसी स्त्री-पुरुष को यह अटल निश्चय कर लेना चाहिये कि वह अपने देश को बन्धन या दासता में देखने के लिये ज़िन्दा न रहेगा।" + हर एक स्त्री और पुरुष को अपने जीवन की इस भावना में जीना चाहिये कि वह स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये जीता है और वक्त आने पर उस महान् उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मरने को तैयार है। अपनी अन्तरात्मा को साची रख कर, ईश्वर के सामने यह प्रतिज्ञा ले लीजिये कि आप तब तक चैन न लेंगे जब तक कि स्वतंत्रता की प्राप्ति न हो जाय और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये आप अपने प्राण न्यौछावर करने को तैयार रहेंगे। इस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये जो अपना जीवन-दान देगा वह अपना इष्ट सिद्ध करेगा और जो इस महान् कार्य में अपनी जान बचाने की कोशिश करेगा वह उसे खो देगा। स्वतंत्रता दुर्बल हृदय के लिये नहीं है।"

८ अगस्त १९४२ को "भारत छोड़ो" का उक्त प्रस्ताव कांग्रेस महासमिति द्वारा बहुत बड़े बहुमत से पास हो गया, पर महात्माजी ने संघर्ष शुरू करने के पहले फिर भी वाइसरॉय को समझौते का एक मौका और देना चाहा। उन्होंने वाइसरॉय को मुलाकात के लिये लिखा और यह आशा प्रकट की कि अगर वाइसरॉय की ओर से अनुकूल प्रतिक्रिया हुई तो उसके आधार पर फिर से समझौते की बातचीत करने में उन्हें कोई आपत्ति न होगी। पर इसमें गांधीजी सफल न हुए।

भारत सरकार ने महासमिति के चैलेंज को स्वीकार कर लिया। उन्होंने समझौते के द्वार बन्द कर दिये और भारतवर्ष के तमाम कांग्रेसी नेताओं को जेलों में ठूँस देने का निश्चय कर लिया।

महात्माजी और अन्य नेताओं की गिरफ्तारी

९ अगस्त की सुबह के लगभग ५ बजे बिड़ला-भवन में जहां महात्माजी ठहरे हुए थे, पुलिस से भरी हुई ३ मोटरकारें पहुँचीं। पुलिस कमिश्नर मि० बटलर अपने साथ महात्मा गांधी, स्वर्गीय श्री महादेव भाई देसाई और मीरा बहन की गिरफ्तारी और नज़रबन्दी के तीन वारण्ट लाये। महात्मा गांधी ने बिस्तर में ही अपनी प्रार्थना की। महात्मा गांधी के पूछने पर मि० बटलर ने उनसे कहा कि आप अपनी तैयारी में आधा घंटा ले सकते हैं और इस समय में अपने नित्य के नियमानुसार बकरी के दूध और फलों के रस का कलेवा कर सकते हैं। बिदा होते समय महात्मा गांधी को माला पहनाई गई और उनके ललाट पर तिलक किया गया। इसके बाद वे और उनके साथी पुलिस की मोटर में सवार होकर रवाना हुए।

इसी दिन सुबह मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, स्वर्गीय श्रीमती सरोजनी नायडू और कांग्रेस महासमिति के अन्य सदस्यगणों की भी गिरफ्तारियां हो गईं। सारे भारतवर्ष में, ९ अगस्त को, सूरज निकलने के पहले, हज़ारों कांग्रेस कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियाँ हो गईं। दमन के दौरदौरे ने बड़ा भयंकर रूप धारण कर लिया। उधर जनता का आन्दोलन भी देश व्यापी हो गया। ज्योंही नेताओं की गिरफ्तारी के समाचार पहुंचे कि सारे देश में बड़ी ज़बरदस्त आग भड़क उठी। यह आग बम्बई से शुरू होकर धांय-धांय करती हुई मद्रास, मध्यप्रान्त, बिहार, यू० पी०. और बंगाल तक पहुँच गई। इसने शहरों की सीमा को पार कर देहातों तक अपना प्रभाव डाला। कई कस्बों और गांवों में सरकारी झंडों के बजाय कांग्रेस के तिरंगे झंडे उड़ने लगे। पुलिस चौकियां और अन्य सरकारी इमारतें जलाई गईं। रेलवे की सड़कें तोड़ी गईं। तार काटे गये और विभिन्न प्रान्तों में कई स्थानों पर पंचायती

राज्य क़ायम किये गये। ऐसा मालूम होने लगा मानो ब्रिटिश सरकार का राज्य उठ गया है और जनता का राज्य क़ायम हो गया है।

ब्रिटिश शासन को पंगु बनाने के लिये रेलवे लाइनों को काफ़ी क्षति पहुँचाई गई। ईस्ट इंडियन रेलवे को भारी क्षति पहुँची और उसकी गाड़ियों का चलना बहुत दिनों तक रुक गया। बी० एण्ड० एन० डब्ल्यू० रेलवे का तो सारा कारोबार ही रुक गया। जनता ने उस पर अधिकार कर लिया। कई स्थानों में इञ्जिन पर तिरंगे झण्डे लगा दिये गये और सैंकड़ों आदमियों को बग़ैर टिकट बिठाकर गार्ड और ड्राइवर को गाड़ी ले जानी पड़ी। पूरे बिहार प्रान्त और यू० पी० के पूर्वी ज़िलों में इस आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। बंगाल सारे उत्तरी हिन्दुस्तान से बिलकुल अलग हो गया।

युक्तप्रान्त और बिहार में इस आन्दोलन ने बड़ा उग्र रूप धारण किया। कहा जाता है कि युक्तप्रान्त के बलिया नगर में सरकारी अधिकारियों ने आत्म-समर्पण कर दिया और वहां जन-राज्य का झंडा उड़ने लगा। जेल और कचहरियों पर जनता ने अधिकार कर लिया। यू० पी० की सैंकड़ों पुलिस चौकियों और थानों पर कुछ समय के लिये जनता का अधिकार हो गया था।

श्रीयुत् क्षेमचन्द्र "सुमन" अपने "कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास" नामक ग्रन्थ में बलिया के अगस्त आन्दोलन के संबंध में लिखते हैं— "अगस्त आन्दोलन में बलिया का सबसे प्रमुख हाथ है। ९ अगस्त को वहां के समस्त कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार कर लिये गये। १० अगस्त से १२ अगस्त तक बलिया में भारी दमन के बावजूद भी हड़ताल रही। लोग जुलूस निकालते रहे। १२ अगस्त से सारे ज़िले में तार काटने, रेल की पटरियाँ उखाड़ने, पुल तोड़ने और यातायात के साधन नष्ट करने का काम आरम्भ हो गया। १४ तारीख़ की शाम तक पूरे बलिया ज़िले का सारे प्रान्त से संबन्ध विच्छेद हो गया। १५ अगस्त को ज़िला

कांग्रेस के दफ़्तर पर कांग्रेस का फिर से अधिकार हो गया। १६ अगस्त को कांग्रेस के हुक्म पर सारे बाज़ार खुले। पुलिस ने शासन-सत्ता की प्रतिष्ठा समाप्त होते देखकर गोली चलादी। फलस्वरूप १६ अगस्त को बलिया में ब्रिटिश सरकार का शासन समाप्त हो गया। जनता ने कलक्टरी, खज़ाने और जेल पर कब्ज़ा कर लिया। ज़िले के सब कांग्रेसी जेल से रिहा कर दिये गये। २० अगस्त को चित्तू पांडे की अध्यक्षता में नवीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुईं। इस सरकार के अधीन ग्राम-पंचायतों ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। २२ अगस्त तक बलिया में जनता की सरकार चलती रही। अस्तु, २२-२३ की बीच की रात को गोरी पलटन ने बलिया में प्रवेश किया, लूट, फूँक और मारपीट का दौर दौरा शुरू हो गया। सारे ज़िले पर लगभग १२ लाख रुपया जुर्माना किया गया और २६ लाख से भी अधिक जबरदस्ती वसूल किया गया। ४६ आदमी मारे गये, १०६ मकान फूँक दिये गए और लगभग ३८ लाख रुपये की हानि समस्त जिले को उठानी पड़ी।"

बलिया की तरह जौनपुर, ग़ाज़ीपुर, आज़मगढ़, बनारस आदि में भी यही हुआ। लगभग १० दिन तक ऐसा मालूम होता था कि अंग्रेज़ी शासन की व्यवस्था बिलकुल टूट गई है। उसकी पुलिस और फ़ौज में इस आन्दोलन का सामना करने का बल नहीं रह गया है।

यू० पी० की ही भांति बिहार में भी, पूरी तीव्रता के साथ, यह आन्दोलन चला। बिहार के प्रत्येक ज़िले में आन्दोलन की लपटें पहुँचीं और लगभग सब जगह पुलिस और शासक कुछ दिन तक आन्दोलन पर अधिकार नहीं पा सकें। बिहार के इस संघर्ष के संबंध में डा० राजेन्द्रप्रसाद अपने "Mahatma Gandhi and Bihar" में लिखते हैं:—

"One special feature of this movement was interruption of all cammunications. This was most

wide-spread and effective. In Bihar, for weeks trains did not run, telegraph and post offices did not function and British rule became confined to district towns in a great part of the province. Railway lines and telegraph wires were torn up, railway stations damaged and police stations actually taken possession of by the people in many districts of Bihar and the eastern part of the United Provinces.

अर्थात्, "यातायात के साधनों को नष्ट करना इस आन्दोलन का खास कर्तव्य था। यह कार्य बहुत ही व्यापक और प्रभावशाली था। बिहार में कई सप्ताह तक रेलगाड़ियों का चलना बंद रहा। तार घर और डाक खानों का काम बंद हो गया। प्रान्त के बहुत बड़े हिस्से में ब्रिटिश राज्य केवल ज़िले के नगरों तक ही सीमित रह गया। रेलवे लाइनें और तार तोड़ दिये गये। रेलवे स्टेशनों को तोड़ फोड़ के द्वारा नुकसान पहुँचाया गया। बिहार के बहुत से ज़िलों में और युक्त-प्रान्त के पूर्वीय हिस्सों में पुलिस थानों पर वास्तविक रूप से जनता ने अधिकार कर लिया।"

युक्तप्रान्त और बिहार की तरह बंगाल के मिदनापुर ज़िले के तमलूक सब डिविज़न में इस आन्दोलन ने भयंकर रूप धारण किया। यह प्रदेश विस्फोट का केन्द्र बन गया। "भारत छोड़ो" के प्रस्ताव तथा नेताओं की गिरफ़्तारी ने इसमें आग लगादी। सारे ज़िले में घोर अशांति व्याप्त हो गई, बड़े बड़े जुलूस निकाले गये और विशाल प्रदर्शन किये गये। इन प्रदर्शनों में दस दस हज़ार आदमियों तक की भीड़ हो जाती थी। इसके अतिरिक्त बड़ी बड़ी सभाएँ कर लोगों ने ब्रिटिश शासन के समाप्त होजाने, तथा देश के पूर्ण स्वतंत्र हो जाने की घोषणाएँ कीं।

२८ तारीख की रात को तमलुक तथा पंचकुरा की मुख्य मुख्य सड़कों को अवरुद्ध करने के लिए बड़े बड़े पेड़ काट कर उन पर गिरा दिये गये। कुशघाटी से बालूघाट जानेवाली सड़क की भी यही हालत हुई। ३० छोटे छोटे पुल तोड़ डाले गये और अनेक स्थानों पर सड़कें काट डाली गईं। ४७ मील तक तार तथा टेलीफ़ोन का लगाव भी छोड़ डाला गया और १६४ खंभे उखाड़ डाले गये। कोशी तथा हुगली नदियों में चलने वाली नावें तोड़ फोड़कर नदी में डुबा दी गईं। इसके अतिरिक्त इस सब-डिविज़न में निम्नलिखित स्थान जला दिये गये तथा नष्ट कर दिये गये, १ थाना, दो पुलिस नाके, दो सब-रजिस्ट्री ऑफिस, तेरह पोस्ट ऑफिस, नौ यूनियन बोर्ड ऑफिस, दस पंचायत ऑफ़िस, बारह शराब की दूकानें, चार डाक बंगले तथा महिषादल राज्य के तेरह ऑफिस। २५० चौकीदारों की वर्दियां जला डाली गईं। तेरह सरकारी अफ़सरों को गिरफ़्तार किया गया, उनमें पुलिस अफ़सर भी थे। अपने सरकारी पदों से इस्तीफ़ा देने की प्रतिज्ञा करने पर इन्हें छोड़ दिया गया और उनके घर पहुँचने का किराया दे दिया गया। उनमें से किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया गया। छः राइफ़लें तथा कुछ तलवारें विद्रोहियों के हाथ लगीं।

सरकार की ओर से प्रकाशित पुस्तिका "Some facts about the Disturbance in India 42-43" में इसके संबंध में निम्न-लिखित बातें कही गई हैं:—

'बंगाल प्रान्त के मिदनापुर ज़िले में विद्रोहियों के कार्यकलाप से प्रकट होता था कि उनके कार्य पूर्व-निश्चित-योजना के अनुसार चल रहे थे। उनके पीछे गंभीर विचारशीलता तथा दीर्घ-दृष्टि नज़र आती थी। चेतावनी भेजने के उनके तरीके सर्वथा मौलिक थे। किसी बात को फैलाने तथा किसी गुप्त योजना को कार्यान्वित करने के उनके ढंग स्पष्टतया पूर्वनिश्चित संकेतों के अनुसार थे। युक्त-प्रान्त, बिहार तथा

बंगाल की तरह दक्षिण भारत में भी अगस्त क्रान्ति की ज्वाला बड़े ज़ोरों से भभक उठी। बम्बई प्रान्त के सतारा नामक नगर में जनता ने एक समानान्तर 'पत्री सरकार' की स्थापना करली थी, जिसमें लगभग ३०० गांव थे। इस सरकार का एक गुप्तचर विभाग भी था और एक अदालत भी थी। ब्रिटिश सरकार ने वहां पर जो-जो दमन किये वे बड़े रोमांचकारी थे।

भारत की राजधानी दिल्ली में भी इस आग की लपटें पहुँचीं। १२ अगस्त को जनता के एक झुन्ड ने रेलवे अकाउट्स क्लीयरिंग ऑफ़िस, जो 'पीली कोठी' के नाम से प्रसिद्ध था, जला दिया। इनकम टैक्स के दफ्तर और पोस्ट ऑफिसों को भी क्षति पहुँचाई गई। जनता का रोष जब बढ़ता ही गया तो विवश होकर अधिकारियों ने गोरी पलटन बुलाई। उसने अन्धाधुन्ध गोलियों की वर्षा की, जिससे सब ओर आतङ्क फैल गया।

ब्रिटिश भारत की तरह देशी रियासतों में भी यह आन्दोलन चला। उड़ीसा प्रान्त की रियासतों में तो इस आन्दोलन ने बड़ा ही उग्र रूप धारण किया। ग्वालियर कोचीन, ट्रावनकोर, कोल्हापुर, मिरज, मैसूर, भोपाल, इन्दौर, कोटा, तालचर आदि रियासतों में बड़े जोर के आन्दोलन हुए। इन में हज़ारों लाखों आदमियों ने हिस्सा लिया। इन्दौर के मंडलेश्वर नामक नगर के जेल को तोड़कर वहां से कई बंदी नेता बाहर निकल आये, जो पीछे से फिर गिरफ़्तार कर लिये गये। कोटा में शहर पर जनता ने कब्ज़ा कर लिया। जनता ने शहर की दीवारों पर कब्ज़ा करके उसका रास्ता बंद कर दिया। शहर की दीवार के पास जो तोपें रक्खी थीं उन पर भी जनता ने अधिकार कर लिया। यह सारा कार्य राज्य के तत्कालीन दीवान की अदूरदर्शिता पूर्ण नीति के कारण हुआ। वैसे, वहां के महाराजा और प्रजा के बीच आत्मीयता का संबंध था। पीछे जाकर महाराजा की सद्भावना-पूर्ण

नीति के कारण राज्य और प्रजा में समझौता हो गया।

मेवाड़ में भी इस आन्दोलन की ज्वालाएं पहुँचीं। जनता ने महाराणा साहब से अनुरोध किया कि वे ब्रिटिश सरकार से अपना संबंध तोड़ दें और अपने राज्य में जिम्मेदार सरकार स्थापित कर दें। यहां २०० गिरफ्तारियां हुईं। उड़ीसा की तालचर रियासत में आन्दोलन ने भीषण रूप धारण किया। इस रियासत में खुला विद्रोह हुआ और बहुत दिन तक चलता रहा। यहां रेल की लाइनें काट दी गईं, यातायात के साधनों पर जनता ने कब्ज़ा कर लिया, सरकारी इमारतों पर तिरंगे झंडे उड़ने लगे और सब थानों पर जनता का अधिकार हो गया। इतना ही नहीं, वहां जनता ने एक समानान्तर सरकार भी कायम कर दी, जिसके अधीन गांव के मुखिया, चौकीदार आदि ने काम करना शुरू कर दिया। पीछे जाकर इस रियासत में भयंकर दमन शुरू हुआ और मशीनगन तक से काम लिया गया। हवाई जहाज़ से बम तक फेंके गये। इस दमनचक्र से यह आन्दोलन समाप्त हो गया। उड़ीसा की ढेंकनाल रियासत में २ सितम्बर को लोगों के झुन्ड ने विष्णुपद नायक नामक एक व्यक्ति के नेतृत्व में चाँदपुर थाने पर आक्रमण कर पुलिसवालों की सब बंदूकें छीन लीं।

कहने का मतलब यह है कि भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में क्रांति की यह ज्वाला बड़े ज़ोरों से भभक उठी थी। कई स्थानों में सरकारी इमारतों पर कांग्रेसी झन्डे लहराने लगे और थोड़े समय के लिये ऐसा मालूम होने लगा मानो लोगों ने अपना शासन कायम कर लिया है। कई स्थानों में समानान्तर सरकारें स्थापित कर ली गईं। यह सारा कार्य योग्य नेतृत्व के अभाव में हुआ। इसलिए इसका प्रभाव अल्पस्थायी रहा।

भीषण दमन-चक्र

तत्कालीन भारत सरकार भी इस परिस्थिति से अनजान न थी।

उस समय सुभाषबाबू के नेतृत्व में एक बड़ी और सुसंगठित सेना भारत की सीमाओं पर पहुँच चुकी थी। ब्रिटिश सरकार उसके मुक़ाबले की तैयारी कर रही थी। भारतवर्ष के बाहर भी चारों ओर युद्ध की ज्वाला सुलग रही थी। भारत की ब्रिटिश सरकार ने इन सारी परिस्थितियों का मुक़ाबला करने के लिये ज़बरदस्त सैनिक संगठन कर रक्खा था। उसने अपने इन सारे साधनों को और शक्ति को उक्त अगस्त-आन्दोलन का दमन करने में लगा दिया। चारों ओर गोलीबार। और लाठीचार्ज का ज़ोर-शोर हो गया। कुछ स्थानों में वायुयानों द्वारा जनता की भीड़ पर बम भी बरसाये गये! कुछ स्थानों में मशीनगनों के द्वारा निःशस्त्र जनता को भूना गया! जनता के घर जलाये गये! उन्मत्त-सैनिकों ने लूटमार की और कई स्थानों में स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण तक किया! ज़ुल्म और अत्याचारों से देश का वातावरण व्याप्त हो गया। श्रीयुत आर० आर० दिवाकर अपने "Satyagraha, its Teachnique and History" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"It is estimated that more than 2000 unarmed and innocent people were shot down and about 6000 injured by the police and military, tens of thousands wounded by lathis; about 1,50,000 were jailed and about 15 lakhs of rupees were imposed as collective fines. There is no record of tortures, burning of houses, looting and other atrocities by the police and the military"

अर्थात्, "अनुमान किया जाता है कि दो हजार से ऊपर निरस्त्र लोग पुलिस द्वारा गोलियों से मार डाले गये और छः हजार आदमी जख्मी किये गये! लाखों आदमी लाठियों से घायल किये गये, १,२०,००० आदमियों को जेल की सज़ाएं हुईं और १५ लाख रुपये

का सामूहिक जुर्माना किया गया। इसके अतिरिक्त लोगों को पुलिस और फ़ौज के द्वारा जो तरह तरह की यातनाएँ दी गईं, उनके घर बार जलाये गये और अन्य अत्याचार किये गये, उनका ठीक ठीक रिकार्ड नहीं है।"

डॉ॰ पट्टाभिसीतारामय्या अपनी "60 years of congress" नामक पुस्तिका में लिखते हैं:—

"Government was not over-scrupulous in their reprisals. Houses were burnt, crowds were shot at and in five cases-three in Bengal, one in Bihar and one in Orissa-machineguns were fired from aeroplanes and unfortunately in one instance the fire was directed against a gang of innocent Railway workmen. It would take a volume to describe the charges of atrocities and crimes levelled against each other by the people and the Government."

"सरकार ने बदला लेने में किसी भी प्रकार की सावधानी से काम न लिया। घर जलाये गये, जनता की भीड़ पर गोलियाँ बरसाई गईं और पांच स्थानों में-बंगाल में, ३—बिहार में १ और उड़ीसा में १ पर वायुयानों से मशीनगनों द्वारा गोले बरसाये गये। दुर्भाग्य से एक स्थान पर निरपराध रेलवे मज़दूरों के एक झुंड पर इस प्रकार की गोलावारी की गई। लोगों द्वारा सरकार पर और सरकार द्वारा लोगों पर जो आरोप और प्रत्यारोप किये गये हैं, उनका वर्णन करने के लिये एक बड़े पोथे की आवश्यकता होगी।"

कहने का मतलब यह है कि सरकार ने अपनी पूरी शक्ति के साथ

आन्दोलन को कुचला। बंगाल के मिदनापुर नामक नगर के आन्दोलन का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। यहां पर भयंकर दमन-चक्र शुरू हुआ। जनता पर बड़े बड़े अत्याचार किये गये। बंगाल के तत्कालीन अर्थमंत्री श्री श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने इन अत्याचारों के विरोध में अपने पद से स्तीफ़ा दे दिया। अपने स्तीफे के संबंध में उन्होंने ६ नवम्बर सन् १९४२ को बंगाल के तत्कालीन गवर्नर को जो पत्र लिखा था। उसका एक अंश इस प्रकार है:—

"But in Midnapore repression has been carried on in a manner which resembles the activities of the Germans in occupied teritories. Hundreds of houses have been burnt down by the police and the armed forces. Reports of outrages on women have reached us. Muslims have been instigated to loot and plunder Hindus houses; The protectors of law and order have themselves carried on similar operations."

अर्थात्, "मिदनापुर में जिस प्रकार का दमन किया जा रहा है उसकी तुलना जर्मनों द्वारा अधिकृत प्रदेशों में किये जानेवाले दमन से की जा सकती है। पुलिस और सशस्त्र फौज़ के द्वारा सैकड़ों घर जला दिये गए। स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचारों के समाचार भी हमारे पास पहुंचे हैं। मुसलमानों को हिन्दू घरों को लूटने के लिए प्रोत्साहित किया गया। क़ानून और व्यवस्था के रक्षकों ने स्वयं इस प्रकार की कार्यवाहियां कीं।"

बंगाल में, जैसा कि डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने लिखा है, घोर दमन के द्वारा जनता की आत्मा को कुचलने का प्रयत्न किया गया।

बंगाल की तरह युक्तप्रान्त में भी अमानुषिक दमन प्रारम्भ हुआ। बलिया की क्रान्ति का ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं, पर वह क्रान्ति अस्थायी रही। इस क्रान्ति को कुचल देने के लिये भारत की अंग्रेज़-सरकार ने मि० स्मिथ और कर्नल नेदरसोल के नेतृत्व में एक सेना भेजी। उसने सबसे पहले उन आन्दोलनकारियों की गिरफ़्तारियां की, जो इस क्रान्ति का नेतृत्व कर रहे थे। इस सेना ने बलिया के नागरिकों पर बड़े बड़े अत्याचार किये। जो लोग क्रान्ति के मददगार थे उनके घर तक जलाये गये। उनके मकान लूटे गये। चौक में लोगों को नंगा कर उनको बेंत लगाये गये! बलिया शहर में गोली चली जिससे ९ आदमी मारे गये। बलिया के रसड़ा नामक थाने में तीन आदमियों को बाड़े में बन्द कर उन्हें गोलियों से मार डाला गया। बैरिया थाने के हाते में शान्त भाव से बैठी हुई जनता पर गोलियां चलाई गईं। २२ आदमी मारे गये। कौशल्याकुमार नामक एक युवक झण्डा फहराते हुए संगीन से मार डाला गया! लूट-खसोट,मारपीट का बाज़ार गरम हो गया। लोगों के खुले आम बेंत लगाये गये! किरचें भोंकी गईं! हाथी के पाँव में बांध कर लोग घसीटे गये!

बलिया की तरह गोरखपुर, आज़मगंज, मधुबन, गाज़ीपुर, महमदाबाद, शेरपुर आदि स्थानों में भी जनता की भीड़ पर गोलियां बरसाई गईं और तरह तरह के अत्याचार किये गये। गाज़ीपुर में बहुत से आदमी पेड़ों से लटका कर मारे गये, कोड़ों से पीटे गये और स्त्रियों के गहने छीने गये। इतना ही नहीं स्त्रियों के साथ बड़े अमानुषिकता पूर्ण दुष्कर्म किये गये! बनारस में २३ स्थानों पर २०२ बार गोली चलाई गई, जिससे १८ आदमी मरे और ८९ घायल हुए। ७ आदमियों को कोड़े लगाये गये, १८ को सार्वजनिक रूप से बेंतों से पीटा गया और ११७ को निर्वासित किया गया। औरतों को थाने में बन्दकर उनके साथ बलात्कार किया गया! ढाई लाख से अधिक

का सामूहिक जुर्माना किया गया।

युक्तप्रान्त और बंगाल की तरह मध्यप्रदेश, बिहार, बम्बई प्रान्त, गुजरात, आदि भारत के विभिन्न प्रान्तों में अमानुषिक दमन के द्वारा लोक-आन्दोलन को कुचलने का प्रयत्न किया गया और उसमें सरकार को अस्थायी सफलता भी हुई।

होम मेम्बर का वक्तव्य

ईस्वी सन् १९४२ के आन्दोलन के संबंध में तत्कालीन होम मेम्बर ने जो वक्तव्य दिया उससे निम्नलिखित बातें मालूम हुईं:—

(१) ६०२२९ आदमी गिरफ़्तार किये गये।

(२) पुलिस और फ़ौज की गोलियों से ९४० आदमी मारे गये।

(३) पुलिस और फ़ौज की गोलियों से १६३० आदमी ज़ख्मी हुए।

(४) १८००० मनुष्य भारत रक्षा क़ानून के मातहत नज़रबंद किये गये।

इसके अतिरिक्त होम मेम्बर के वक्तव्य से यह भी मालूम हुआ कि ६० स्थानों में फ़ौज बुलाई गई और ५३८ अवसरों पर पुलिस या फ़ौज को गोलियां चलानी पड़ीं तथा ५ स्थानों मे वायुयानों द्वारा जनता की भीड़ पर गोले बरसाये गये। ऊपर हमने सरकारी वक्तव्य के अनुसार मरे हुए और घायल व्यक्तियों के आंकड़े दिये हैं, पर लोगों का अन्दाज़ा इससे बहुत ज्यादा रहा है।

श्रीयुत तारिमी सरकार ने अपने "India in Revolt" नामक ग्रन्थ में मृत और घायलों की संख्या २५००० से ऊपर बतलाई है।

शासन को हिला दिया

ईस्वी सन् १९४२ को इस महान् आन्दोलन ने देशव्यापी रूप धारण कर ब्रिटिश शासन को हिला दिया था। इस आन्दोलन ने ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को यह विश्वास करा दिया कि भारतवर्ष अब संगीनों के बल पर गुलाम नहीं रक्खा जा सकता। उस समय राष्ट्र के सब कर्णधार नेता जेलों में बन्द थे और इसलिये इस आन्दोलन का जैसा चाहिये वैसा योग्य नेतृत्व न हो सका। महात्माजी के अहिंसात्मक सिद्धान्त का कहीं कहीं अतिक्रमण किया गया और इसके फलस्वरूप यत्र तत्र कुछ हिंसाकांड भी हुए। पर ये हिंसाकांड उन हिंसाकांडों के मुक़ाबले में नगण्य थे जो तत्कालीन नौकरशाही के द्वारा संगठित किये गये थे तो भी हमारे प्रधान नेताओं ने उन पर दुःख प्रकट किया। अगर उस समय हमारे बड़े बड़े नेता बाहर होते तो सम्भव था कि जनता द्वारा अहिंसा के सिद्धान्त का इतना अतिक्रमण न हुआ होता।

बंगाल का भीषण अकाल

ईस्वी सन् १९४२ में बंगाल में बड़ा भीषण अकाल पड़ा, जिसने लाखों मनुष्यों की बली ली! कहा जा सकता है कि यह अकाल मनुष्य-कृत था। अगर तत्कालीन बंगाल सरकार और उसके अधिकारीगण प्रजाहित की भावनाओं से अनुप्राणित होकर योग्य प्रबन्ध करते तो यह बला बहुत कुछ कम होकर लाखों मनुष्यों की प्राणरक्षा हो सकती थी।

जैसा कि हमारे पाठक जानते हैं, इस्वी सन् १६४२ में ब्रह्मा अंग्रेजों के हाथ से निकल गया और उस पर जापानियों का अधिकार हो गया। हजारों लाखों शरणार्थी ब्रह्मा से भागकर बंगाल आने लगे। सरकार ने बंगाल को "भय का क्षेत्र" (Danger Zone) समझ कर वहां से अनाज हटाना शुरू कर दिया। इसके अतिरिक्त बंगाल की खाड़ी से किश्तियों और यातायात के साधनों के हटाये जाने से यातायात में बड़ी गड़बड़ हो गई। इन सब विपरीत परिस्थितियों के अतिरिक्त उस समय बंगाल में बड़ा तूफान भी आया जिसमें हजारों आदमी बेघरबार हो गये! और एक लाख पशु मर गये ब्रह्मा से चावलों की आयात बन्द हो जाने से भी बंगाल की मुसीबतें और भी बढ़ीं। इन सब परिस्थितियों के बावजूद भी अगर बंगाल सरकार योग्य प्रबन्ध करती और पूंजीपति अपने नीचत्तम स्वार्थ का त्यागकर मानवहित की भावना से प्रेरित होते, तो हमारा विश्वास है कि बंगाल पर आई हुई यह विपत्ति इतना उग्र रूप धारण न करती।

भारत के तत्कालीन स्टेट सेक्रेटरी मि० एमरी ने "हाउस ऑफ कॉमन्स" में वक्तव्य देते हुए यह प्रकट किया था कि बंगाल में इस अकाल के कारण प्रति सप्ताह एक हजार मनुष्य भूख से मरते हैं और उन्होंने जनवरी में अपने बयान में यह कहा था कि इस अकाल के कारण लगभग १० लाख मनुष्य अपनी संसार-यात्रा संवरण करने के लिये बाध्य हुए। पर उस समय जिन राष्ट्र-सेवक लोगों ने अकाल-ग्रस्त बंगाल में दौरा किया उनके कथन के आधार पर डॉ० एम० एस० नटराजन एम० ए०, पी० एच० डी० ने अपनी "Famine in Retrospect" नामक पुस्तक में यह अनुमान लगाया है कि उस समय बंगाल में अकाल से मरनेवाले लोगों की संख्या २,००,०० प्रति सप्ताह से कम न थी। इसके कुछ उदाहरण आपने अपनी पुस्तिका में दिये हैं। बंगाल के चाँदपुर नामक मुफस्सल के गांव में, जहां की जनसंख्या केवल २२०००

थी, औसतन २६७ आदमी प्रति सप्ताह मरते थे। तमलूक के उपविभाग में लगभग ६० हजार मनुष्य काल कवलित हुए और मृत्यु संख्या का परिमाण और भी बढ़ता जा रहा था नंदीग्राम नामक नगर में, जहां की जनसंख्या १४७, ९४६थी४३००० मनुष्य भूख से तड़फ तड़फ कर प्राण देने को विवश हुए! कलकत्ता नगर की मृत्यु संख्या साधारण तौरसे ५५० प्रति दिन थी, वह इस अकाल के समय बढ़कर २००० प्रतिदिन हो गई। गांव के गांव वीरान हो गये! उक्त-लेखक महोदय ने अनुमान लगाया है कि इस अकाल ने ३५,००,००० आदमियों से कम की बलि न ली।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के (Anthropology Department) ने बहुत खोज-पड़ताल के बाद अकाल से होने वाली मृत्यु संख्या को लगभग ३५,००,००० ही बतलाया है। उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा है—

"The probable total number of deaths above the normal comes to well-over three and a half million."

बंगाल की तरह उड़ीसा प्रान्त में भी अकाल ने बड़ा भीषण रूप धारण किया। उड़ीसा कांग्रेस पार्टी की केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य श्रीयुत बी० दास ने अपने भाषण में कहा था।

"To save Bengal the Indian Government Committed another disastrous crime against the Oriyas last May, in declaring free trade which brought about the famine conditions in Orissa."

अर्थात्, "गत मई मास में बंगाल को बचाने के लिये भारत सरकार ने खुले व्यापार की घोषणा कर एक भयंकर अपराध किया जिसने उड़ीसा प्रान्त में अकाल की स्थितियां उत्पन्न कर दीं।" दास

महोदय ने साथ ही यह भी प्रगट किया कि उक्त प्रान्त को अतिरिक्त अन्न उत्पन्न करनेवाला प्रान्त (Surplus Province) घोषित कर, उड़ीसा सरकार ने एक महापाप किया। इसका परिणाम यह हुआ कि न तो बंगाल को बचाया जा सका और उड़ीसा को अप्रतिहत हानि पहुँची। उड़ीसा प्रांत के बालसौर और गंजम ज़िलों में अकाल ने बड़ा ही भयानक रूप धारण किया।

माननीय मि० कुंजरू ने १६ नवम्बर १६४३ को राज्य-परिषद (council of State) में भाषण देते हुए कहा था।

That deaths had occured in both these districts which had not been allowed to be reported in the newspaper by the Government."

अर्थात्,"इन दोनों ज़िलों में मृत्युएँ हुईं। सरकार ने उनकी रिपोर्टें समाचार पत्रों में प्रकाशित न होने दीं।

दक्षिण भारत के कई ज़िलों में भी उस समय अकाल की विभीषिका ने अपना उग्र रूप धारण किया था। २३ जनवरी १६४३ ईस्वी को पं० हृदयनाथ कुंजरू ने अपने वक्तव्य में कहा था :—

"It makes one shudder to think that from malabar to Travancore about ten million peoples have been in a state of semi-starvation."

अर्थात्, "यह विचार कर हृदय कांप जाता है कि मलाबार से ट्रावनकोर तक के प्रदेशों में १,००,००,००० मनुष्य आधे भूखे रहते हैं।

व्याधियों की वृद्धि

भूखे मनुष्य में रही हुई रोग-प्रतिकारक शक्ति का बहुत कुछ ह्रास हो जाता है। इससे बीमारियां ज़ोर पकड़ती हैं और मृत्यु-संख्या में

बड़ी वृद्धि हो जाती है। बंगाल और मलाबार आदि प्रान्तों में अकाल की भीषणता के साथ-साथ हैजा, मलेरिया आदि बीमारियों ने भी हजारों व्यक्तियों के प्राण लेना शुरू किया। बंगाल के बरहमपुर नामक दो हजार की बस्तीवाले कस्बे में, उस समय मलेरिया से ६०० आदमियों की मृत्यु हुई। इसी प्रकार बंगाल के फरीदपुर नामक नगर में सन् १६४३ ई० के जनवरी से सितम्बर मास तक के नौ महीनों में ३०,००० मनुष्य मलेरिया से मरे। चटगांव में ३,००० आदमी हैजा और मलेरिया के शिकार हुए। नोआखाली जिले में, जिसकी जन संख्या लगभग २१,००,००० है, २ लाख मनुष्य उक्त बीमारी से काल के गाल में चले गये! और अन्य २ लाख इन्हीं बीमारियों से पीड़ित थे। फरीदपुर जिले में ८ मास में २४६६७१ मनुष्य मलेरिया से पीड़ित हुए और उनमें से ३०,०८७ आदमियों की मृत्यु हुई। बंगाल मुस्लिम लीग के रिलीफ कमेटी (Relief Committee) के तत्कालीन सेक्रेटरी चौधरी मौज़म हुसेन M. L. C. ने अपने २१ दिसम्बर के वक्तव्य में कहा था कि मुंशीगंज (जिला ढाका), नील फमरी (जिला रंगपुर) और कण्डी (जिला मुरशिदाबाद) नामक नगरों में ८०,००० मनुष्य भूख और मलेरिया के बलि चढ़े। इन्हीं महोदय ने बरीसाल ज़िला के बोला नामक सब-डिविज़न में मलेरिया से मरने वालों की संख्या ४०,००० बतलाई है। इस संख्या का समर्थन कलकत्ते के तत्कालीन मेयर सैयद बदरूज्ज़ोहा (Syed Badruzzoha) ने भी किया था। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा था कि मुर्शिदाबाद के कण्डी सब-डिविज़न की लगभग ५,००,००० की जन संख्या में ८०,००० मनुष्य मलेरिया और दूसरी बीमारियों के शिकार हुए।

शायद उक्त महाशयों का कथन अतिशयोक्तिपूर्ण माना जाय, इस लिए हम बंगाल की सेना के तत्कालीन ऑफिसर कमांडिंग जनरल स्टुअर्ट के ४ दिसम्बर १६४३ के दिन ब्रॉडकास्ट किये हुए भाषण का एक अंश यहां उद्धृत करते हैं:—

"That the reports you have seen in the newspapers of the numbers requiring medical treatment and clothing are not exaggegrated. Malnutrition, coupled with advent of the cold weather and shortage of personal clothing and blankets, has made a large percentage of the poorer classes easy victim of malaria, cholera and pneumonia, which are rampant throughout a large number of districts. Quite recently I paid surprise visits to a number of out-of-the-way villages on the banks of Brahmputra river and its tributaries. The distress in these villages was acute. The people had died and are still dying from the results of malnutrition & Malaria."

अर्थात्, "समाचारपत्रों में आपने वैद्यकीय चिकित्सा और वस्त्र चाहने वाले बहुसंख्यक लोगों की जो रिपोर्ट देखी है उनमें अतिशयोक्ति नहीं है। अपर्याप्त पोषण सर्द हवा और वस्त्र व कम्बल की कमी ने सहज ही बहुसंख्यक गरीब लोगों को मलेरिया, हैज़ा और न्यूमोनिया का शिकार बना दिया। कई जिलों में ये बीमारियां फैली हुई हैं। अभी-अभी मुख्य रास्तों से दूर ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों के किनारों पर बसे हुए गांवों का मैंने अकस्मात दौरा किया, तो मुझे इन गांवों का कष्ट बहुत ही उग्र मालूम पड़ा। लोग अपर्याप्त पोषण और मलेरिया से पहले मर चुके हैं और अब भी मर रहे हैं।

बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स के अध्यक्ष श्री जे. के. मित्र ने अपने एक वक्तव्य में कहा था:—"ब्रिटिश साम्राज्य का दूसरा नगर भूखों मरते हुए अर्धनग्न मनुष्यों की शिकारगाह बन रहा है। इस नगर में

हजारों मनुष्य अन्न की तलाश में आये हुये हैं। मुफ़स्सल की स्थिति कलकत्ते से भी भयंकर है। लोग अत्यन्त गरीब होने के कारण अपने मृत प्रियजनों की दाह-क्रिया करने में भी असमर्थ हो रहे हैं। वे शवों को नदियों और नालों में फेंक देते हैं। बंगाल के बहुत से सुन्दर जलाशय और नाले उन हजारों मनुष्यों के शवों से भर गये हैं, जो भूख और भूखजनित रोगों के शिकार हुए हैं। उन्हें कौवे और गीद्ध खा रहे हैं! बहुत से सुन्दर क्षेत्र छिन्न भिन्न और सड़ी हुई लाशों और मुर्दों की खोपड़ियों से भर गये हैं और अपना बीभत्स रूप प्रकट कर रहे हैं! मानवता के इतिहास में ऐसे करुणापूर्ण और हृदयद्रावक दृश्य क्वचित ही देखने को मिले होंगे।"

भूखे माता-पिता द्वारा बच्चों की बिक्री

इस विशाल अकाल ने इतना भयंकर रूप धारण कर लिया था कि माताएँ अपनी गोद के लाड़ले बच्चों को चन्द रुपयों में ही बेच देती थीं। कलकत्ते के प्रसिद्ध पत्र 'स्टेट्समैन' ने इस प्रकार की हृदयद्रावक घटनाओं के कई उदाहरण दिये थे। उसने लिखा था कि बर्दमान में एक स्त्री ने अपनी तीन माह की लड़की को ५) रु० में बेचने का निश्चय किया था। एक रास्ते चलते हुए आदमी को इस दृश्य पर दया आ गई और उसने कुछ रुपये देकर बच्ची की रक्षा की। 'युनाइटेड प्रेस' ने रिपोर्ट की थी कि तीन वर्ष से लगाकर तेरह वर्ष की लड़कियां सैकड़ों की संख्या में वैश्याओं के हाथ बेची जा रहीं थीं। इनका मूल्य एक से दो रुपये तक होता था। कई स्थानों पर ऐसे उदाहरण देखे गये कि केवल एक वक्त के भोजन के लिये स्त्रियाँ अपने सतीत्व को भ्रष्ट करने को विवश हुईं। मिसेज़ रेड ने लिखा है कि पूर्वीय बंगाल के चांदपुर आदि स्थानों में भूखों मरती हुईं स्त्रियां अपने लाड़ले बच्चों को थोड़े से पैसों में बेचती हुईं देखी गईं थीं। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिसेज रेड ने अपनी

आंखों से देखे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि बंगाल का यह अकाल इतना भीषण और हृदयद्रावक था कि इसकी तुलना संसार के बुरे से बुरे अकाल के साथ की जा सकती है।

इस अकाल का कारण तात्कालीन ब्रिटिश सरकार के बड़े-बड़े जिम्मेदार अधिकारियों की स्वार्थान्धता और घोर अव्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त पूंजीपतियों की नीचतम स्वार्थ लिप्सा और लोभवृत्ति ने भी हजारों लाखों लोगों को इस निकृष्टतम अवस्था में पहुंचाने में सहायता की थी।

यह अकाल मनुष्यकृत था और उसकी जिम्मेदारी तत्कालीन बंगाल सरकार और स्वार्थान्ध पूंजीपतियों के सिर पर थी। बंगाल सरकार ने इस कार्य में अपराधजन्य उपेक्षा (Criminal negligence) की। महात्मा गांधी ने पच्चीस जनवरी १९४२ के 'हरिजन' में सरकार को चेतावनी देते हुए लिखा था:—

"The greatest need of the immediate present is to feed the hungry and clothe the naked. There is already scarcity in the land both of food and clothing."

अर्थात, "वर्तमान समय की सबसे बड़ी तात्कालिक आवश्यकता भूखों को खिलाना और नंगों को कपड़ा देना है। देश में इस समय अन्न और वस्त्र दोनों की कमी है।"

बंगाल धारा सभा के सदस्य माननीय मि० बी० आर० सेन ने अपने वक्तव्य में कहा था, "इस्वी सन् १९४२ के अन्त में स्थिति बड़ी गंभीर हो गई थी, और चावल का भाव युद्ध के पहिले के समय से दस गुना बढ़ गया था। इतनी भयानक स्थिति होने पर भी सरकार की नींद न खुली।"

इस सारे काण्ड में सरकार के जिम्मेदार अधिकारियों की केवल लापरवाही न थी, वरन् उसकी स्वार्थान्धता ने भी स्थिति को बिगाड़ने में बड़ा काम किया था। बंगाल का अकाल ब्रिटिश शासन का एक काला धब्बा था।

महात्मा गांधी का उपवास

गिरफ़्तारी के बाद महात्मा गांधी आगाखाँ पैलेस में रक्खे गये थे। उनके साथ इनकी धर्मपत्नी सती साध्वी कस्तूरबा और उनके पुत्रतुल्य शिष्य महादेव भाई देसाई थे। दोनों ही का वहां देहांत हो गया। इससे महात्माजी के हृदय को बड़ा आघात पहुँचा।

नज़रबन्दी में छः मास रहने के बाद महात्मा गांधी ने तत्कालीन वॉयसरॉय लॉर्ड लिनलिथगो को पत्र लिखने के बाद १० फरवरी १९४३ को इक्कीस दिन का उपवास करना आरम्भ किया। यह उनका चौदहवां उपवास था, जो उन्होंने अपनी ७६ वर्ष की अवस्था में आरम्भ किया था। इस उपवास की चर्चा यूरोप और अमेरिका के पत्रों में भी खूब हुई थी। सारे भारतवर्ष में चिन्ता की लहर बहगई थी। लोगों को सन्देह था कि इतनी वृद्धावस्था में महात्माजी की जीवन-नौका उपवास के इस संकट से पार हो सकेगी या नहीं। पर तत्कालीन भारत सरकार टस की मस न हुई। पर ईश्वर की कृपा से महात्माजी का यह उपवास ३ मार्च १९४३ को समाप्त हो गया। इसके बाद कई मास के मास गुजर गये, पर ब्रिटिश की न्यायबुद्धि जागृत

न हुई। सहृदय संसार की सहानुभूति, इसमें सन्देह नहीं, भारतीय आकांक्षाओं के साथ थी। अमेरिका के समाचार पत्रों ने महात्माजी के आन्दोलन और भारतीय राजनैतिक आकांक्षाओं के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रकट करते हुए, भारत सम्बन्धी ब्रिटिश नीति के परिवर्तन पर बड़ा जोर दिया था। अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेण्ट रूज़वेल्ट के वैयक्तिक प्रतिनिधि मि० विलियम फिलिप्स भारतवर्ष आये और उन्होंने महात्मा गांधी से जेल में भेंट करने की इच्छा प्रदर्शित की, पर भारत सरकार ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति न दी। मि० फिलिप्स ने रूज़वेल्ट को भारत के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट दी उसमें उन्होंने भारत की तत्कालीन स्थिति के संबंध में अच्छा प्रकाश डाला। पर रूज़वेल्ट महोदय अपने देश की कई समस्याओं में उलझे रहने के कारण भारत को कोई क्रियात्मक सहायता न दे सके। हां, चीन ने भारत के प्रति सहानुभूति का भाव दिखलाया, पर उसकी निज की स्थिति बहुत कमजोर होने के कारण वह कुछ सहायता न कर सका। रूस ने जोरदार शब्दों में भारतीय राजनैतिक आकांक्षाओं के लिये आवाज उठाई, पर विशिष्ट अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण वह भी किसी प्रकार की प्रत्यक्ष सहायता न कर सका। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति से भारत को तत्कालीन प्रत्यक्ष लाभ न हो सका, पर इससे ब्रिटिश सरकार पर अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा। कहा जाता है कि शिमला की कॉफ्रेंन्स इसी अप्रत्यक्ष प्रभाव का फल था।

गांधीजी की बीमारी

ईस्वी सन् १९४४ के मई मास में गांधीजी भयंकर रूप से बीमार हुए। उनकी स्थिति बड़ी चिंताजनक हो गई, इससे भारत सरकार ने ६ मई सन् १९४४ को उन्हें जेल से मुक्त कर दिया।

उन्होंने जेल से छूटते ही यह घोषित किया कि ८ अगस्त १९४२ के कांग्रेस प्रस्ताव में भारत के लिए जो राष्ट्रीय मांग रखी गई थी, वह

अब तक कायम है। लंदन के न्यूज क्रॉनिकल के संवाददाता मि० जेन्डर को मुलाकात देते हुए गांधीजी ने यह प्रकट किया कि उक्त प्रस्ताव के आधार पर वे ब्रिटिश सरकार से समझौते की बात करने के लिए तैयार हैं।

इसी बीच लॉर्ड लिनलिथगो के स्थान पर लार्ड ह्वेवल भारत के वायसरॉय के पद पर अधिष्ठित हुये। प्रारम्भ में उन्होंने ने भी वही राग अलापना शुरू किया, जो उनके पूर्ववर्ती वायसरॉय ने अलापा था। उन्होंने १५ अगस्त १९४४ को गांधीजी को जो पत्र लिखा, उसमें उन्होंने यह प्रकट किया कि भारतीय स्वाधीनता के लिए केवल कांग्रेस और मुस्लिमलीग का समझौता ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसके लिये अन्य पार्टियों का सर्वसम्मत समझौता भी आवश्यक है।

गांधी जिन्ना वार्तालाप
के पूर्व की स्थिति

गांधी-जिन्ना वार्तालाप के विषय में लिखने के पहले यह आवश्यक है कि उस समय की परिस्थिति पर कुछ प्रकाश डाला जाय। इस वार्तालाप के समय कई मुस्लिम बहुमत प्रान्तों में जिन्ना साहब की स्थिति बिलकुल डांवाडोल हो रही थी। पंजाब की यूनियन पार्टी ने बहुत बुरी तरह से जिन्ना साहब की मुस्लिम लीग को औंधे मुँह गिराया था और पंजाब के मुसलमानों पर जिन्ना साहब का प्रभाव शून्यवत् हो रहा था। यही हाल बंगाल का था। बंगाल के मुसलमानों पर वहां के तत्कालीन मुस्लिम नेता श्री फ़ज़लुलहक़ का सबसे अधिक प्रभाव था। ये मि० जिन्ना के विरोधी थे और यही कारण था कि उस समय पंजाब की तरह बंगाल में भी मि० जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग का प्रभाव नाम मात्र को शेष रह गया।

भारत के उत्तर पश्चिम प्रान्त में खाँ बन्धुओं की निःस्वार्थ सेवा ने वहां के मुसलमानों को मन्त्र-मुग्ध कर रखा था। उस प्रान्त में खाँ बन्धुओं के जाज्वल्यमान् प्रकाश के आगे जिन्ना साहब की लीग बिलकुल निःसत्व और निष्प्रभ हो रही थी। खां बन्धु सच्चे और कट्टर कांग्रेसवादी थे। उनका वहां के मुसलमानों पर अद्भुत् प्रभाव था। महात्माजी के सिद्धान्तों के द्वारा उन्होंने मुसलमानों को, वहाँ के पठानों को, अहिंसात्मक नीति अपनाने में बड़ी सफलता प्राप्त की थी। यही कारण था कि उक्त प्रान्त "कांग्रेसी प्रान्त" हो गया था।

ऐसे सुनहरे अवसर का लाभ उठाकर अगर कांग्रेस, लीग सरीखी ओर

साम्प्रदायिक संस्था को निःसत्व कर राष्ट्रीय मुसलमानों की शक्ति बढ़ा कर, एक राष्ट्रवादियों का सुदृढ़ संगठन करने में अपने प्रभाव का उपयोग करती तो आज देश के ये दुर्भाग्यपूर्ण टुकड़े न हुए होते और आज लाखों करोड़ों मनुष्यों को बेघरबार होकर इस प्रकार की भयानक आपत्तियों का सामना न करना पड़ता। दुःख इस बात का है कि उस समय भारत के एकराष्ट्रवादी जनों के संगठन का प्रयत्न और राष्ट्रीय मुसलमानों को उत्तेजना देकर,भारत की राष्ट्रीय शक्ति को एकता के सूत्र में सम्बद्ध करने के बजाय, हमारे देश के नेताओं ने मुस्लिम लीग जैसी घोर साम्प्रदायिक संस्था को जनतन्त्र के सिद्धान्त की अवहेलना कर सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। देश के लिये यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी और इसका कुफल आज सारा देश जिस प्रकार भुगत रहा है, वह प्रत्यक्ष है। हमें आश्चर्य होता है कि विशुद्ध जनतन्त्र के पोषक हमारे सम्माम्य और पूज्य नेताओं ने ऐसी गंभीर भूल कैसे की। हम यह स्वीकार करते हैं कि मुस्लिमों को उनके न्यायोचित अधिकार प्रदान करना प्रत्येक देशहितैषी का कर्तव्य है। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि जो नागरिक अधिकार इस देश में पैदा होनेवाले एक हिन्दू को प्राप्त हैं, वही एक मुसलमान को भी प्राप्त होने चाहिये, और दूसरे सभ्य और उन्नत देशों में विशुद्ध जनतन्त्र के सिद्धान्त के अनुसार अल्पसंख्यकों (Minorities) विशेषाधिकार प्राप्त हैं, वे यहां के मुसलमानों को और अल्पसंख्यकों को अवश्य दिये जाने चाहिये। पर तीन चौथाई संख्यावाले एक बहुमत समाज को शासन संगठन में अल्पमत में परिवर्तित कर एक चौथाई अल्पमत समाज को बहुमत में परिणित कर देना जनतन्त्र के महान् सिद्धान्त की बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण अवहेलना थी। स्वनामधन्य बाबू सुभाषचन्द्र बोस (नेताजी) तथा अन्य कई निर्भीक और देश भक्त महानुभावों ने इस नीति को देश के लिये और राष्ट्र के लिये आत्मघातक बतलाया था। यहां तक कि सन् १९४६ ई० में मेरठ

कांग्रेस के अध्यक्ष श्री कृपलानी महोदय ने अपने सभापति के भाषण में बड़े जोरदार शब्दों में कहा थाः—

"The Congress must yield to the demands of the minorities, Muslims or any other, but not at the expense of the good of the nation. Such yielding in the past has largely been responsible for our present troubles. Also when facts are conflicting and confusing, it is best to fall back upon basic moral principles. Some compromise may be made only when there is no doubt about facts. The basic principles involved in the communal conflict are those of nationalism and democracy. Nationalism, historically, is a greater principle than communalism and democracy, higher than sectional domination. In whatever, therefore, we do, we must not allow the communal and undemocratic principles to triumph over nationalism and democracy. Viewed thus I have doubt that the Congress was wrong in accepting separate electorates which are anti-national and undmocratic. I believe much of our troubles could have been avoided had we boldly refused to accept the undemocratic and anti-national principle of separate electorates. The communal conflict has to day not only a serious but a vicious aspect. It is quitic possible that to avoid immediate trouble we may

accept principles that cut at the root of nationality and democracy. If we do so, we shall not only be betraying the nation, but ultimately the Muslim and other communities. I hope our elders will guard themselves and the country against being coerced or cajoled into making any anti-national and undemocratic compromises in the future."

अर्थात्; "कांग्रेस को मुस्लिम और दूसरे अल्पसंख्यकों की मांगें स्वीकार करनी चाहिये। पर यह कार्य राष्ट्र के हित के बलिदान पर नहीं होना चाहिये। भूतकाल में इस प्रकार की मांगों को स्वीकार करना ही बहुत कुछ वर्तमान विपत्तियों का कारण है। इसके अतिरिक्त जब तथ्य परस्पर विरोधी और व्याकुलतामय हों तब मौलिक नैतिक सिद्धान्तों को आधार बनाना ही सर्वश्रेष्ठ होता है। हां, समझौता केवल मात्र वहीं करना चाहिये, जहाँ तथ्यों के सम्बन्ध में कुछ सन्देह न हो। साम्प्रदायिक संघर्ष में हमें राष्ट्रीयता और जनतन्त्र के सिद्धान्तों से काम लेना चाहिये। ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्रीयता की साम्प्रदायिकता की अपेक्षा महान् सिद्धान्त है और जनतन्त्र वर्गगत प्रभुत्व से महान् है। इस दृष्टि से विचार करने पर, मैं यह बात निःसन्देह कह सकता हूँ कि कांग्रेस ने पृथक् निर्वाचन पद्धति को स्वीकार करने में गलती की थी, जोकि अराष्ट्रीय और जनतन्त्र के सिद्धान्त का विरोधी है। मेरा विश्वास है कि हमारी बहुत सी आपत्तियां टल गई होतीं, अगर हम पृथक् निर्वाचन जैसे अजनतन्त्रात्मक और अराष्ट्रीय तत्व को स्वीकार करने से इन्कार कर गये होते। वर्तमान साम्प्रदायिक संघर्ष ने न केवल गम्भीर रूप धारण कर लिया है वरन् उसने एक शापात्मक स्थिति प्राप्त करली है। यह बिलकुल सम्भव है कि तत्कालीन विपत्ति को टालने के लिये हम

ऐसे सिद्धान्त को स्वीकार करलें जो राष्ट्रीयता और जनतन्त्र की जड़ ही को काट देता हो। अगर हम ऐसा करते हैं, तो हम न केवल राष्ट्र के प्रति ही विश्वासघात करते हैं पर हम मुस्लिम और अन्ततः दूसरी जातियों को भी धोका देते हैं। मुझे आशा है कि हमारे बड़े लोग भविष्य में अराष्ट्रीय और अजनतन्त्रीय समझौता करने के फेर में न पड़ेंगे।"

दूसरी बात यह है कि जिस मुस्लिम लीग और उसके नेता श्री जिन्ना के साथ कांग्रेस ने समझौता करने की इतनी उत्सुकता प्रकट की, वे भारतीय स्वाधीनता के लिए इतने उत्सुक न थे। मुस्लिम लीग के जिन्ना अब पहले के राष्ट्रवादी जिन्ना न थे, जिन्होंने एक समय लोकमान्य तिलक को अपना सहयोग देकर स्वतन्त्र भारत के लिये अपनी आवाज बुलन्द की थी। जिन्ना साहब की पूर्व की राष्ट्र प्रवृत्तियों के लिये देश को उनके प्रति बड़ा आदर था। वे राष्ट्र के कर्णधारों में से एक थे, पर पीछे जाकर, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, उनमें बड़ा परिवर्त्तन हो गया। दुःख की बात है कि एक राष्ट्रवादी नेता एक घोर सम्प्रदायवादी मुस्लिम लीग के नेता के रूप में परिवर्तित हो गया और उन्होंने देश की आजादी के मार्ग में रोड़े अटकाने में कोई कसर न रखी। इतना ही नहीं, वे अपने इस काम में बाहर से भी प्रेरणा पाने लगे। यहां हम इस सम्बन्ध में एक रहस्य पर प्रकाश डालना चाहते हैं जो लूईस फीशर ने (Hindustan Standard) नामक पत्र में लेख लिखकर प्रकट किया था। इसी प्रकार लन्दन के "Daily Hearld" में पार्लियामेंट के मेम्बर मि० माइकल फूट (Michal Foot) ने जो लेख लिखा था, उसका एक अंश यहां उद्धृत किया जाता है:—

"Winston Churchill remains the implacable enemy of India's independence. He has never disguised his views. Many members of his party differed

with him on the question of Indian freedom, but Churchill's imperialistic policy dominates.

"Mohamed Ail Jinnah has not in recent years given any proof of a devotion to the cause of India's liberation from foreign rule. Nor has the Muslim League over which he presides. Landlords, who bulk large in the counsels of the League stand to loose by the establishment of a new India, which would certainly alter the present land tenure to the disadvantage of landlords, Muslims, as well as Hindus, and to the advantage of all peasants.

"What could be more natural, therefore, than that Churchill and Jinnah should have been in correspondence, in recent months, over the fate of India? They have quietly exchanged letters and messages. It was shortly after the receipt of one such secret commuincation from Churchill that the Muslim League reconsidered its acceptance of the British Cabinet Mission's long-term proposals and decided instead to boycott the coming Assembly which is to draw up a constitution for a new free India.

अर्थात्, विन्सटन चर्चिल भारतीय स्वाधीनता के घोर शत्रु रहे हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपना अभिप्राय कभी नहीं छुपाया। उनके दल के बहुत से सदस्य भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर उनसे मतभेद रखते हैं, पर चर्चिल की साम्राज्यवादी नीति ही की बोलबाला है।"

"मुहम्मद अली जिन्ना ने इन वर्षों में विदेशी शासन से भारत को मुक्त करने के उद्देश्य में किसी प्रकार का अनुराग नहीं दिखलाया। इसी प्रकार मुस्लिम लीग ने भी, जिसके वे अध्यक्ष हैं, इस सम्बन्ध में कोई अनुराग प्रकट नहीं किया। भू-स्वामी या जमींदारों की, जो कि मुस्लिम लीग में बहुतायत से हैं, नवभारत के निर्माण से, बहुत कुछ स्वार्थहानि होना सम्भव है। नवभारत निर्माण से मुसलमान और हिन्दू जमींदारों की वर्तमान भूमि भोगावधि में निश्चय पूर्वक परिवर्त्तन होगा, जो किसानों के लिये लाभदायक होगा।"

"अतएव इससे अधिक और क्या प्राकृतिक हो सकता है कि भारत के भाग्य निर्माण के सम्बन्ध में चर्चिल और जिन्ना का पत्र व्यवहार रहा हो। उन्होंने चुपचाप पत्रों और सन्देशों का व्यवहार किया हो। चर्चिल से इस प्रकार का एक गुप्त संदेश पाकर मुस्लिम लीग ने ब्रिटिश केबीनेट मिशन के दीर्घ कालीन प्रस्ताव की अपनी स्वीकृति पर पुनर्विचार करने का निश्चय किया और यह तय किया कि भावी विधान सभा का, जो कि स्वतंत्र भारत का विधान बनाने के लिये बनाई जायगी, बहिष्कार किया जाय।"

कहने का मतलब यह है कि मुस्लिम लीग जैसी सम्प्रदायवादी और देश को पराधीन रखने का षड्यन्त्र करने वाली एक संस्था से कांग्रेस का तथा उसके नेताओं का जनतन्त्र के पवित्र सिद्धान्त को ताक में रख कर समझौता करने के लिये लालायित होना एक गम्भीरतम् भूल थी।

सन १९४४ ई० की १० जुलाई को मध्य प्रान्त के पंचगनी नामक हिल स्टेशन के दिलखुश मुकाम से महात्मा जी ने मि० जिन्ना को गुजराती भाषा में एक पत्र लिखा जिसमे उन्होने श्री जिन्ना को भेंट के लिये अनुरोध किया और यह लिखा कि जहाँ आप चाहें वहाँ हम लोग मिलें। पत्र के अन्त में महात्मा जी ने लिखा कि आप मुझे भारतीय मुसलमानों और इस्लाम का दुश्मन न समझें। मैं हमेशा आपका और मनुष्य जाति का

मित्र और सेवक रहा हूँ। आप मुझे निराश न करेंगे।

जिन्ना महोदय ने २४ जुलाई १९४४ ई० को इस पत्र का जवाब महात्मा जी को दिया। इसमें उन्होंने महात्माजी को यह सूचित किया कि वे महात्मा जी से अगस्त मास के मध्य में बम्बई में अपनी कोठी पर मिल सकते हैं।

मूलत: १९ अगस्त प्रथम मुलाकात के लिये मुकर्रिर हुई। पर जिन्ना महोदय की बीमारी के कारण, उक्त तारीख की मुलाकात स्थगित करदी गई। अतएव ९ सितम्बर को प्रथम गांधी जिन्ना मुलाकात और २७ सितम्बर को आखिरी मुलाकात हुई। इस बीच में गांधीजी और जिन्ना साहब में १४ मुलाकातें हुईं। मगर इनका कोई फल नहीं हुआ। जहां जिन्ना साहब सभ्यता, संस्कृति, आचार विचार, धर्म, इतिहास और परम्परा की दृष्टि से हिन्दू और मुसलमानों को विभिन्न राष्ट्रों के रूप में स्वीकार करने पर अपना सारा जोर लगा रहे थे, वहां गांधीजी इस बात पर बड़ी हिचकाहट पैदा कर रहे थे और वे इस द्विराष्ट्र सिद्धान्त को देश के लिये बड़ा ख़तरनाक समझते थे। गांधीजी ने २२ सितम्बर १९४४ ई० जिन्ना साहब को जो पत्र लिखा उसका एक अंश यह है:————

"......The more I think about the two nation's theory the more alarming it appears to be. The book recommended by you gives me no help. It contains half-truths and its conclusions or inferences are unwarranted. I am unable to accept the proposition that the Muslims of India are a nation distinct from the rest of the inhabitants of India. Mere assertion is no proof. The consequences of accepting such a proposition are dangerous in the extreme. Once the principle is admitted there

would be no limit to claims for cutting up India into numerous divisions which would spell India's ruin.........''

अर्थात "जितना अधिक मैं द्विराष्ट्र सिद्धान्त पर विचार करता हूँ उतना ही अधिक वह मुझे भयावह मालूम पड़ता है। आपने इस सम्बन्ध में, मुझसे जिस पुस्तक की सिफ़ारिश की है, उससे मुझे कोई मदद नहीं मिल सकती। उसमें तो अर्द्ध सत्य भरे हुए हैं और उसके नतीजे और अनुमान अनधिकृत हैं। मैं इस तथ्य को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ कि भारतवर्ष के मुसलमान भारत के अवशेष निवासियों से एक भिन्न राष्ट्र के रूप में अपना अस्तित्व रखते हैं। केवल दृढ़ वचन (Assertion) ही किसी बात का प्रमाण नहीं होता। इस प्रकार के तथ्य को अर्थात द्विराष्ट्र सिद्धान्त को स्वीकार करना अत्यधिक भयावह है। अगर एक मर्तबा यह तत्व स्वीकार कर लिया गया तो भारतवर्ष के विभाजन के लिये अनगणित दावे उपस्थित होंगे और उससे भारत का नाश हो जायगा।"

गांधीजी के इस पत्र का जिन्ना ने बड़ा कड़ा और रूखा जवाब दिया और यह साफ़ संकेत किया कि अगर समझौता हो सकता है तो मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन के प्रस्तावानुसार द्विराष्ट्र के सिद्धान्त पर ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त जिन्ना साहब ने कांग्रेस को सार्वदेशिक प्रतिनिधि संस्था मानने से भी इन्कार किया और कहा कि कांग्रेस केवल सवर्ण हिन्दुओं (Caste Hindus) की प्रतिनिधि सभा है न कि सारे हिन्दुस्तान की। जहां गांधीजी ने अपने पत्र-व्यवहार में अपनी स्वाभाविक नम्रता और विनयशीलता का परिचय दिया, वहाँ जिन्ना साहब ने कड़े से कड़े शब्दों का उपयोग किया और गांधीजी के पत्रों में प्रदर्शित भावों को परस्पर विरोधी बतलाया।

गांधीजी ने चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के फार्मूला पर, जिसका वर्णन आगे दिया गया है, सहमत होकर उसके आधार पर समझौता

करने के लिये जिन्ना साहब से अनुरोध किया पर उन्होंने गांधीजी के इस अनुरोध को भी अस्वीकार कर दिया। आखीर गांधी जिन्ना वार्तालाप, जैसा कि दूरदर्शी राजनीतिज्ञों का अनुमान था, पूरी तरह से असफल हो गया। २८ सितम्बर को प्रेस कॉन्फ्रेन्स के सामने अपना वक्तव्य देते हुए, गांधीजी ने अपनी इस असफलता पर प्रकाश डाला। ४ अक्टूबर १६४४ को जिन्ना ने महात्माजी के वक्तव्य का कड़े शब्दों में विरोध किया। कहने का भाव यह है कि गांधीजी के बहुत अधिक झुक जाने पर भी जिन्ना साहब टस से मस न हुए और वे अपने विचार पर हिमालय की चट्टान की तरह अटल रहे।

राजाजी का फार्मूला

श्री राजगोपालाचार्य राष्ट्र के प्रधान कर्णधारों में से एक हैं। वे बड़े राजनीतिज्ञ और शासनपटु हैं। गांधीवादियों में उनका उच्च स्थान रहा है, यद्यपि कभी कभी गांधीजी से उनका मतभेद भी रह चुका है। हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धी उनके फार्मूला का उल्लेख यथा अवसर हम करते आये हैं। अन्य महान् नेताओं की तरह उनके उद्देश्य पर आक्षेप न करते हुए, हमें यह कहने के लिए विवश होना पड़ता है कि देश हित के दूरवर्ती परिणामों को देखते हुए उनका यह फार्मूला देश के लिये हितकर नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने इस फार्मूला में एक प्रकार से देश के विभाजन को स्वीकार किया है। इस फार्मूला के सम्बन्ध में श्री राजगोपालाचार्य "Gandhi Jinnah Talks" ग्रन्थ की अपनी भूमिका में लिखते हैं।

" Since April 1942, I strove to find a just and acceptable solution which would bring tne Musilm League and the Congress together and enable them jointly to assault the Imperialistic citadel I have

worked hard withou: fear or favours. I have tried to understand the case of the Muslim and the case of the Congress and to be just to both parties. This claim may not be accepted either by the Muslim league leader or by the leaders of Hindu communalists. But I believe that impartial judges will see some justice in the claim"

"At one time I felt that the congress failed to see the reasonableness and the restraint of the Muslim claim and I fought hard and persistently to make the Gongress and Mahatma Gandhi perceive what I felt was just in the demand of the League and whilst I was convinced must be conceded in order to make any porgress in the struggle for Indian Independence. When in march 1943 Gandhiji accepted my proposal, I thought the battle was over. But then the position was reversed and it was Mr. Jinnah whose consent I could not get to the only possible settlement conceivable in the terms of the Muslim League demand."

अर्थात "अप्रैल १९४२ ई० से मैं ऐसे न्यायपूर्ण और स्वीकार करने योग्य समाधान के लिये कोशिश कर रहा था जो मुस्लिम लीग और कांग्रेस को परस्पर मिला दे जिससे कि वे दोनों मिलकर साम्राज्यवादी दुर्ग पर आक्रमण करने में समर्थ हो सकें। मैंने इसके लिये बिना किसी भय या पक्षपात के परिश्रमपूर्वक कार्य किया। मैंने मुसलमानों और कांग्रेस के मसले समझने की और दोनों दलों के प्रति न्यायपरायण रहने

की कोशिश की। मेरा यह दावा, मुस्लिम लीग के नेता या हिन्दू साम्प्रदायवादियों के नेता, चाहे स्वीकार न करें, पर मैं यह विश्वास करता हूँ कि निष्पक्ष न्यायकर्ता इस दावे में कुछ न्याय-तत्व देखेंगे।"

"एक समय मुझे यह भी मालूम होने लगा कि कांग्रेस, मुस्लिमों के दावे के औचित्य को समझने में असफल रही है और मैं कांग्रेस और महात्मा गांधी को लीग की मांग के औचित्य का विश्वास दिलाने के लिये निरन्तर कठोर संघर्ष करता रहा और इस बात का प्रयत्न करता रहा कि लीग की वह माँग, जिसके औचित्य में मुझे विश्वास था, भारतीय स्वाधीनता की प्रगति के लिये स्वीकृत कर ली जाय। जब मार्च १९४३ ई० में गांधी जी ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर ली तो मैंने समझा लड़ाई ख़त्म हो चुकी। पर इसके बाद स्थिति बदल गई और मैं मि० जिन्ना की, इस संभाव्य समझौते के लिये जो कि मुस्लिम लीग के मांग की दृष्टि से बहुत कुछ बुद्धिगम्य था, सम्मति प्राप्त न कर सका।"

उपरोक्त अवतरण से पाठकों को श्री राजगोपालाचार्य की मनोवृत्ति का सहज ही में पता चल सकता है। इसी मनोवृत्ति को लेकर राजाजी ने भारत विभाजन का जो फ़ार्मूला तैयार किया था वह निम्न लिखित है:—

सी० आर० फ़ारमूला

'(१) आज़ाद हिन्दुस्थान के विधान के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातों को ध्यान में रख मुस्लिम लीग भारतीय स्वतन्त्रता की मांग को स्वीकार करती है। वह बीच के समय के लिये अस्थायी सरकार के बनाने में कांग्रेस के साथ सहयोग करेगी।

(२) युद्ध समाप्त होने पर एक कमीशन बिठाई जायेगी जो कि भारत के उत्तर-पश्चिम और पूर्वी क्षेत्रों की सीमा बाँधेगी जिसमें मुसलमान आबादी बहुसंख्यक है। ऐसे सीमाबद्ध क्षेत्रों में, बालिग़ मताधिकार के आधार पर तमाम बसने वालों का मतसंग्रह किया जायेगा। अथवा इसी प्रकार का कोई और ढंग निकाला जायगा जिससे हिन्दुस्तान से अलग प्रभुत्व

पूर्ण 'स्टेट' क़ायम करने के प्रश्न पर मत जाना जा सके। अगर बहुमत चाहता है कि हिन्दुस्तान से अलग प्रभुत्व-पूर्ण 'स्टेट' क़ायम की जाय तब इस निर्णय को अमल में लाया जावेगा, लेकिन उस समय सीमान्त के ज़िलों को अधिकार रहेगा कि वे जिस 'स्टेट' में शामिल होना चाहें, हो सकें।

(३) हर एक पार्टी को जन-मत संचय के पूर्व प्रचार करने का पूर्ण अधिकार रहेगा।

(४) अलग होते समय रक्षा, वाणिज्य और यातायात तथा दूसरे आवश्यक मामलों के सम्बन्ध में आपसी समझौता हो जावेगा।

(५) आबादी का स्थान-परिवर्तन पूर्ण स्वेच्छा पर निर्भर होगा।

(६) ऊपर लिखी बातें तभी लागू होंगी जब कि ब्रिटेन भारत के शासन के लिये पूर्ण अधिकार और जिम्मेदारी दे दे।

मुस्लिम-राजनीति

जैसा कि हमारे इतिहास के पाठकों को ज्ञात होगा कि ईस्वी सन् १८५७ के राष्ट्रीय विद्रोह में हिन्दू और मुसलमान दोनों ने हिस्सा लिया था। उक्त विद्रोह के दमन के बाद ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य मुसलमानों को दमन करने में विशेष रहा था। ब्रिटिश की कूटनीति हमेशा यह रही थी कि हिन्दू-मुसलमानों में कभी हिन्दुओं को बढ़ावा दे देना और कभी मुसलमानों को। "फूट डालो और राज्य करो" यह उनकी नीति का प्रधान सूत्र रहा था। ईस्वी सन् १८५७ के बाद भारत के कुछ आदर्शवादी व्यक्तियों में भारत की स्वतन्त्रता की भावना जागृत हुई थी। प्रारम्भ में वर्तमान मुस्लिम राजनीति के जनक और अलीगढ़-मुस्लिम विश्वविद्यालय के उत्पादक सर सैय्यद अहमदने बंगाल के आदर्शवादी और भारत की स्वतन्त्रता की भावना रखने वाले बंगाली राजनीतिज्ञों की जो प्रशंसा की थी, उसके सम्बन्ध में मि० अहमद लिखित "मुसलमानों का रोशन-मुस्तकबाल" नामक ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद ओ. एस. मुकर्जी ने अपने "मुस्लिम पॉलीटिक्स" नामक ग्रन्थ में दिया है, उसका कुछ अंश यह है।

"He thought that it was through them (Bengalis) that there was great improvement in education and spread of the ideas of patriotism and freedom in the country. He used to say that they were the head and crown of all the people of India and he felt pride for them."

अर्थात् उनके विचारानुसार बंगालियों ही के द्वारा देश में शिक्षा-सुधार और स्वदेश-भक्ति और देश की स्वाधीनता के भावों का प्रचार हुआ। वह कहा करते थे कि बंगाली भारतवर्ष के लोगों के शिरोमणि हैं और वे उनके लिए अभिमान अनुभव करते थे।

सरसैय्यद अहमद के उन दिनों के भारतीय-राष्ट्र के सम्बन्ध में जो विचार थे, उक्त ग्रन्थ में उन पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है।

"The word nation is applicable to people who live in a country...Remember that the words Hindu and Musalman denote religious faith, otherwise, Hindus, Musalmans and even Christians, who live in this country, all constitute, on this account, one nation. Now the time is gone when only on account of difference in religion the people living in a country should be regarded as of two different nations" (Ahmed Tufail: Musalman Ka Roshan mustaqbal P. 283)

अर्थात् "राष्ट्र शब्द उन लोगों को लागू होता है जो देश में रहते हैं। याद रक्खो हिन्दू और मुस्लिम शब्द धार्मिक विश्वास के सूचक हैं। वैसे हिन्दू मुसलमान और यहां तक कि ईसाई भी जो इस देश में रहते हैं, एक ही राष्ट्र को बनाते हैं। अब वह समय चला गया जब एक ही देश में रहने लोग धर्मभेद के कारण दो अलग राष्ट्र कहलावें, (तुफैल मुसलमानों का रोशन मुस्तकबल)।

आगे चलकर एक दूसरे अवसर पर सर सैय्यद अहमद ने फिर कहा था:—

In the word nation, I include both Hindus and

Mohamedans, because that is the only meaning I can attach to it. With me it is not worth considering what is their religious faith, because we do not see any thing of it. What we do see is that we inhabit the same land, are subject to the rule of the same governors, the fountains of benefit for all are the same and the pangs of famine also we suffer equally. These are the different grounds upon which I call both these races, which inhabit India by one word, i.e. Hindumeaning to say that they are inhabitants ot Hindusthan." (Mehta and Patwardhan The Communal Triangle in India P.23)

अर्थात् मैं राष्ट्र शब्द में हिन्दू मुसलमान दोनों को शामिल करता हूँ मैं इसका केवल मात्र यही अर्थ समझता हूँ। मेरे लिये इस बात का कोई मूल्य नहीं कि उनके धार्मिक विश्वास क्या हैं। हमें जो कुछ देखना है, वह यह है कि हम एक ही जमीन पर बसते हैं, एक ही प्रकार के शासकों के अधीन हैं, हमारे सब के हित का मूलस्रोत एक ही है और अकाल के समय हम सब एक सा ही कष्ट उठाते हैं। इन्हीं विभिन्न मुद्दों के ऊपर मैं इन दोनों जातियों को हिन्दू यानी हिन्दुस्थान के निवासी समझता हूँ।"

सर सैय्यद अहमद ने, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, प्रारम्भ में हिन्दू मुस्लिमों को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता के खातिर गौहत्या का भी-निषेध किया था। उन्होंने एक अवसर पर कहा था :—

" Slaughtering cows for the purpose of annoying Hindus is the height of cantankerous folly. If fri-

endship may exist between us and them, that friendship is far to be preferred to the sacrifice of cows" (Cumming sir John: Palitical India P. 89)

अर्थात् " हिन्दुओं को व्यथा पहुँचाने के लिए गौवध करना भयंकर है। अगर हम में और उनमें मित्रता रहे तो गौ बलिदान की अपेक्षा उस मित्रता को अधिक पसन्द करना चाहिए। "

सर सैय्यद अहमद के उक्त विचारों के उद्धरणों से पाठकों को उनके प्रारम्भिक विचारों का कुछ ज्ञान हुआ होगा।

पर पीछे जाकर ब्रिटिश की "भेद डालो और राज करो," (Divide and rule) की नीति ने काम किया और सर सैय्यद अहमद अपने विचार बदलने के लिये बाध्य हुए। मि० बेक नामक एक अंग्रेज व्यक्ति ने सर सैय्यद के विचारों को बदलने में बड़ा काम किया। उसने उन्हें एक राष्ट्रीय मुसलमान से एक कट्टर मुसलमान में बदल दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन सर सैय्यद अहमद ने एक दफा जो यह लिखा था कि:—

"No nation can get respect and honour so long as it does not attain equality with the ruling race and does not take part in the Government of its own land." (Ahmed Sir Syed: Tahzibul Akhlaq)

अर्थात् कोई राष्ट्र जब तक शासक जाति के साथ बराबरी का दर्जा प्राप्त न करले और वह अपने देश के शासन में हिस्सा न ले सके, तब तक वह प्रतिष्ठा और आदर प्राप्त नहीं कर सकता", वही सर सैय्यद अहमद यह सोचने लगे कि ब्रिटिश के साथ रहने ही में मुसलमानों की मुक्ति निर्भर है। इतना ही नहीं, ईस्वी सन् १८८७ में, लखनऊ में होने वाली

मुस्लिम शिक्षा-परिषद् में आपने जो भाषण दिया उसमें भारतवर्ष के लिये निर्वाचन पद्धति का सख्त विरोध किया। आपने उस आन्दोलन का भी विरोध किया जो भारतवर्ष में सिविल सर्विस परीक्षा का केन्द्र स्थापित होने के लिये किया जारहा था। आपका यह ख़याल था कि भारतवर्ष में यह परीक्षा शुरू हो जाने से बहुत से निम्न श्रेणी के लोग इसमें घुस जायेंगे और यह बात भारत के लिये अहितकर होगी। कहने का मतलब यह है कि आधुनिक मुस्लिम मनोवृत्ति के जन्मदाता सर सैय्यद अहमद मि० बेक की प्रेरणा से पूरे २ प्रतिक्रियावादी बन गए। राष्ट्र के सामूहिक हित के बजाय केवल मात्र मुसलमानों का हित ही उनका लक्ष्यबिन्दु बन गया। वे यहां तक कहने लगे कि भारतवर्ष जनतन्त्र शासनप्रणाली के लिये उपयुक्त नहीं है।

"The introduction of the democratic institutions was unsuited to India, because the people living in India do not belong to a single nation,, (Tufail Ahmed:Musalmanon Ka Roshan Mustaqbel)

सर सैय्यद अहमद को अपने हाथ का खिलौना बना कर बेक (Beck) ने हिन्दू मुसलमानों में फूट डालने का जोरशोर से प्रयत्न शुरू कर दिया। उसने मुसलमानों को गलत सलत समझाकर हिन्दुओं के विरुद्ध उनके दस्तख़त लेना शुरू किया। उसने मुसलमानों के दिमाग़ में यह बात भरने की कोशिश कि हिन्दू बहुमत में हैं, इसलिये भारत का शासन हिन्दुओं का राज्य होगा और मुसलमानों के अधिकार उनके शासन में पैरों तले रोंधे जायेंगे। हिन्दू राज में गौकशी बंद करदी जायगी। इस तरह उसने लाखों मुसलमानों के हस्ताक्षरों से युक्त एक आवेदन पत्र ईस्वी सन् १८६० में पार्लियामेन्ट को भेजा (Tufail Ahmed)

मि० बेक ने उत्तरीय भारत में एक संस्था कायम की जिसका नाम "Anglo-Oriental Defence Association of upper In-

dia" था। खुद बेक इस संस्था का सेक्रेटरी बना। इस संस्था के उद्घाटन के समय उसने जो भाषण दिया, उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

"During the last few years two agitations are growing in the country; one is the Indian National Congress and the other is the movement against slaughter of cows. The first of these movement is against Englishmen and the second against the Muslims. The aim of the Congress is the transfer of political power from the hands of the British to some groups amongst the Hindus, weakening of the army and reduction in the cost of its maintenance. The Muslims can have no sympathy with such objects (Tufail Ahmed)

अर्थात गत थोड़े से वर्षों देश में दो आन्दोलन चलरहे हैं। एक आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का है और दूसरा गोवध के विरुद्ध है। इनमें पहला आन्दोलन अंग्रेज़ों के खिलाफ़ है और दूसरा मुस्लिम के खिलाफ़ है। कांग्रेस का उद्देश्य ब्रिटिश के हाथों से हिन्दुओं के कुछ दलों में राजसत्ता का हस्तान्तर करना, शासक जाति को कमजोर करना, लोगों को शस्त्रादि देना और फ़ौज का खर्चा घटा कर उसे कमजोर करना है। मुसलमानों की इन उद्देश्यों के साथ कोई सहानुभूति नहीं है।

बेक नें हमेशा हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट डालकर अंग्रेजी राज्य को मज़बूत करने के विविध षड्यंत्र रचे। वह मुसलमानों में यह भ्रांति उत्पन्न करने लगा कि हिन्दु मुस्लिम एकता के बजाय अंग्रेज मुस्लिम एकता मुसलमानों के हित के लिये ज्यादा श्रेयस्कर है। उसने अपने व्याख्यान में कहा था :—

"It is imperative for the Musalmans and the

British to unite with the object of fighting them and the introduction of democratic form of Government should be opposed as it is unsuited to this country. We must carry on propaganda for the spread of loyalty to the Government and Anglo. Muslim unity." (Tufail Ahmed)

अर्थात " मुसलमानों और अंग्रेजों को उनसे (हिन्दुओं) लड़ने के लिये एक हो जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त-भारत में जनतंत्र का भी विरोध होना चाहिये, क्योंकि वह इस देश के लिए अनुपयुक्त है। हमें सरकार के प्रति राजभक्ति का भाव फैलाने के लिये और अंग्रेज मुस्लिम एकता के लिये प्रचार-कार्य करना चाहिये।"

बेक ने मुसलमानों की ओर से इंगलैंड और भारत में एक साथ सिविल सर्विस परीक्षा की व्यवस्था होने के ख़िलाफ़ भारतीय मुसलमानों की ओर से इंगलैंड को एक आवेदन पत्र भेजा। ब्रिटिश अधिकारियों ने इसे अपने फायदे की चीज समझ कर स्वीकार कर लिया। इस पर मुस्लिम रक्षा समिति ने (Mohamedan Defence Association) ने एक प्रस्ताव पास किया और इस कार्य के लिये ब्रिटिश अधिकारियोंको धन्यवाद दिया और प्रकट किया कि भारत में सिविल सर्विस परीक्षा का होना ब्रिटिश राज्य की दृढ़ता को हानि पहुँचाना है।

कहने का अर्थ यह है कि—अलीगढ़ कॉलेज के मुस्लिम राजनितिज्ञ राष्ट्र के हित-शत्रुओं के हाथों में खेले और उन्होंने अपने देश और जाति की सामूहिक हित कामना के बजाय जातिगत क्षुद्र स्वार्थों को अधिक महत्व देकर राष्ट्र में फूट के बीज बोये। वे बेक के हाथ के सहज ही में खिलौने बन गये। बेक ने अंग्रेज जाति के हित के लिये इस की एकता को तोड़ने का भीषण षड्यंत्र किया। ईसवी सन् १८६२ में इंग्लैन्ड में व्याख्यान देते हुए उसने कहा था:——

While Anglo-Muslim unity was possible, Hindu Muslim unity was impossible."

अर्थात् अंग्रेज-मुस्लिम एकता सम्भव है पर हिन्दू-मुस्लिम एकता असम्भव है, (Tufail Ahmed)

ईस्वी सन् १८६८ में आधुनिक मुस्लिम मनोवृत्तियों के जनक सर सैय्यद अहमद का शरीरान्त होगया। सर सैय्यद अहमद ने राष्ट्रीय एकता के बजाय केवल मात्र मुस्लिम स्वार्थों का पक्ष समर्थन कर संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना को जन्म दिया। उन्होंने मुसलमानों से यह कहा कि पहले तुम मुसलमान हो और तुम्हें अपने संगठन पर सबसे अधिक जोर देना चाहिए। सर सैय्यद अहमद की मृत्यु के दूसरे ही साल ईस्वी सन् १८-६६ में बेक का भी देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के बाद इंग्लैंड के पत्र ने उसको श्रद्धांजली अर्पण करते हुए लिखाथा:——

"An English man, who was engaged in building up the Empire in a far off land and died like a a soldier doing his duty."

अर्थात् (मि०बेक) एक ऐसा अंग्रेज़ था जिसने सुदूरवर्ती भूभाग पर साम्राज्य संगठन करने का कार्य किया और वह एक सिपाही की तरह अपना कर्त्तव्य करते हुए मरा।

उपरोक्त विवरण से पाठकों को सर सैय्यद अहमद और बेक की प्रवृत्तियों का ज्ञान हुआ होगा। इन्हीं प्रवृत्तियों के वातावरण में सर सैय्यद अहमद द्वारा अलीगढ़ कॉलेज की नींव डाली गई और उसका लक्ष्यबिन्दु विशाल राष्ट्रीय भावना रखने के बजाय संकीर्ण जातीयता का संगठन रक्खा।

लार्डमिन्टो की कूटनीति

सुप्रख्यात् अफ्रीकाप्रवासी नेता स्वामी भवानी दयालजी ने डा०

धर्मदेव शर्मा और श्री ओंकारनाथ दिनकर लिखित "पाकिस्तान" नामक ग्रन्थ पर एक तथ्यपूर्ण भूमिका लिखि है, उसमें उन्होंने भूतपूर्व वाइस-रॉय लार्ड मिन्टो की उस कूटनीति पर प्रकाश डाला है, जो हिन्दू और मुसलमानों को जुदा करने के लिये खेली गई थी। स्वामी जी की सर अली इमाम के साथ ईस्वी सन् १६३१ में जो बातचीत हुई थी, उस पर प्रकाश डालते हुए श्री स्वामी जी ने अपनी उक्त भूमिका में लिखा है "सन् १६३१ मे जब मैं प्रत्यागत प्रवासियों के संबन्ध में भारत का दौरा करते हुए पटना गया था तो वहां स्वर्गीय सर अली इमाम के सभापतित्व मेंमेरा व्याख्यान हुआ था, । उस समय सर अली इमाम लण्डन की गोल मेज परिषद् में जाने की तैय्यारी कर रहे थे। उनके घर पर मुलाकात होने पर उन्होंने "सर्चलाईट" के सम्पादक श्री मुरली मनोहर प्रसाद की मौजूदगी में मुझ से जो कुछ कहा था उससे लॉर्ड मिन्टो की भेद नीति पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है"।

"मेरे यह पूछने पर कि वे कब विलायत के लिये रवाना हो रहे हैं, जवाब मिला कि "मुझसे मुल्क और कौम के साथ भूल से एक गुनाह हो गया है, उसी के प्रायश्चित के लिये मैं राउन्ड टेबल कॉन्फ्रेन्स में जा रहा हूँ"।

"गुनाह? कैसा गुनाह?" मैंने आश्चर्य से पूछा। उत्तर मे सर अली इमाम ने जो कहानी सुनाई, वह उन्ही की जबानी सुनियेः-"लॉर्ड मिन्टो ने सर आगाखाँ वगैरह के साथ मुझे भी तार देकर कलकत्ता बुलाया गया था और मुल्क की मौजूदा हालत की तस्वीर खींच कर हमे यह समझाया कि हिन्दुओं की राष्ट्रीयता अंग्रेजों के लिये उतनी खतरनाक नहीं है, जितनी कि मुसलमानों के लिये। यदि हिन्दुओं की राष्ट्रीय तमन्ना पूरी हो गई तो अंग्रेज तो अपना बोरिया बांध कर इंगलैंड चले जायेंगे, पर मुसलमान कहां जायेंगे? उनको तो हर हालत मे यहीं रहना होगा। इसलिये ब्रिटिश सरकार को मुसलमानों के लिये फिक्र हो रही है। अगर जल्दी कोई

उपाय न हुआ तो मुसलमानों की खैर नहीं है। ब्रिटिश हुकूमत के बाद इस देश पर लोकतंत्र के अनुसार हिन्दुओं के बहुमत की सरकार बनेगी और मुल्क की हुकूमत में अल्पमत मुसलमानो का कोई हक और अख्तियार न होगा। उनको पुश्त-दर पुश्त के लिये हिन्दुओं की गुलामी करनी पड़ेगी और उनकी ठोकरें खानी पड़ेंगी। इस मुसीबत से बचने का सिर्फ एक ही उपाय है कि मुसलमान हिन्दुओं से अलहदा एक राष्ट्र (क़ौम) होने का दावा करें और इस हैसियत से लेजिस्लेटिव कौंसिल में मुसलमानों के लिये अलग मत देने और चुनाव करने की मांग पेश करें। इससे उनकी सियासी हकीयत हमेशा के लिये बकरार रहेगी। अभी तो कुछ बिगड़ा नहीं है। मुसलमान नेता एक डेपुटेशन लेकर मेरे पास आवें और मेरे कथनानुसार मांग पेश करें। बाकी सब काम मैं बना लूंगा।"

लार्ड मिन्टो के प्राइवेट सेक्रेटरी कर्नल डंलाप स्मिथ और अलीगढ़ कॉलेज के तत्कालीन प्रिंसिपाल मि० आर्चिबाल्ड ने गुप्त मंत्रणा कर इस षड्यंत्र की सृष्टि की थी।

ईस्वी सन् १६०६ के १० अगस्त को प्रिन्सिपल आर्चिबाल्ड ने अलीगढ़ कॉलेज के तत्कालीन सेक्रेटरी नवाब मोहसिन उल-मुल्क को इस सम्बन्ध में जो चिट्ठी लिखी थी, उसका कुछ अंश यहां उद्धृत किया जाता है:—

"Col. Dunlop Smith Private Secretary to the vicerory, has written to me that the viceroy is agreeable to receive a deputation of Muslims and has advised me to send a formal letter requesting a permission to wait on the Viceroy. In this connection I shall like to make a few suggestions.

The first point is the sending of the petition.

I think that it will be enough if it is signed by some Muslim leaders.

The second point is who should be the membres of the deputation. They should consist of the representatives of all the provinces.

The third point to be considered is the text of address. I would suggest here that we begin with a solemn expression of loyalty. We should offer thanks to the Government for its decision to take a step in the direction of self-government and open the door to offices for Indians. But our apprehension should be expressed that the principle of election, if introduced, would prove injurious to the interest of the Muslim minority. It should respectfully be suggested that the system of nomination or representation by religion be introduced. But in all these matters I must remain in the background, and this move should come from yon. You know how anxious I am for the good of the Muslims and I would, therefore, render all help with the greatest pleasure. I can perpare for you the draft of the address. If it is prepared in Bombay I can go through it as you are away. I know how to phrase these things in proper language. But Nawab sahib, please remember that if we want to take any great and powerful action in the short time at our

disposal we must act quickly." (Tufail Ahmed)

"अर्थात वाइसरॉय के प्राईवेट सेक्रेटरी कर्नल डनलप स्मिथ ने मुझे लिखा है कि वाइसरॉय मुसलमानों के डेपुटेशन का स्वागत करने के लिये मंजूर हैं। औरउन्होंने मुझे इस के लिये इजाजत लेने के लिये एक औपचारिक पत्र लिखने की सलाह दी है। मैं इस सम्बन्ध मे आपको कुछ सुझाव देना चाहता हूँ।

पहला सुझाव आवेदन पत्र भेजने के संबंध में है। मेरी राय में इस आवेदन पत्र पर कुछ मुस्लिम नेताओं के हस्ताक्षर होना काफ़ी है।

दूसरा मुद्दा यह है कि इस डेपुटेशन में कौन सदस्य होने चाहिए। सब प्रान्तों के प्रतिनिधियों का यह डेपुटेशन बनना चाहिए।

तीसरा सुझाव अभिनन्दन पत्र के मज़मून के संबंध में था। इसके संबंध में मेरा सुझाव यह है कि हमें इसे राज्य-भक्ति के पवित्र उद्‌गारों के साथ शुरू करना चाहिए। हमें सरकार को स्वराज्य की ओर क़दम उठाने के लिये तथा भारतवासियों के लिये पदों के द्वार खोल देने के लिये धन्यवाद देना चाहिए। हमें यह भी भय प्रकट कर देना चाहिए कि अगर निर्वाचन का तत्व स्वीकार कर लिया गया तो वह मुस्लिम अल्प संख्यक जाति के लिये हानिकारक होगा। हमें आदर के साथ उसमें यह सुझाव रखना चाहिए कि मनोनीत करने की पद्धति और धर्मानुसार प्रतिनिधित्व ही हितकर है।

इन सब बातों के पेश करने के लिये मुझे अप्रकट रूप से पीछे रहना चाहिए और यह सब प्रस्ताव प्रस्ताव द्वारा सामने लाये जाने चाहिए। आप जानते हैं मैं मुसलमानों की भलाई के लिये कितना चिन्तित हूँ और उन्हें मदद करने में मुझे सबसे अधिक खुशी होगी। मैं आपके लिये एक अभिनन्दन पत्र का मसविदा भी तैयार कर सकता हूँ। मैं योग्य भाषा में विषय को जमाना जानता हूं। नवाब साहब, आप कृपा कर यह स्मरण रखिये

कि अगर हम थोड़े समय में बड़ी और शक्तिशाली कार्यवाही करना चाहते है तो हमें झटपट कर्मक्षेत्र में जुटजाना चाहिए।" यह आवेदनपत्र तैयार किया गया और ईस्वी सन् १९०६ की पहली अक्टूबर को हिज हाईनेस आगाखां के नेतृत्व में लोर्ड मिन्टो से मुसलमानों का एक डेपुटेशन मिला। मौलाना मोहम्मद अली ने ईस्वी सन् १९२३ की कोकोनन्डा कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष के नाते से जो भाषण दिया था,उसमें इस डेपुटेशन की कार्यवाही को Command performance कहा था। इस डेपुटेशन के स्वागत के संबंध में लेडी मिन्टो ने अपनी डायरी में जो कुछ लिखा है उसका एक अंश नीचे उद्धृत किया जाता है:——

The Mohamedan population, which numbers 62 millions, who have always been intensely loyal, resent not having proper representation and consider themselves slighted in many ways; preference having been given to the Hindus. The agitators have been most anxious to foster this feeling and have naturally done their utmost to secure the co-operation of this vast community. The younger generation were wavering, inclined to throw in their lot with advanced agitators of the Congress... The Mohamedans decided before taking action, that they would bring an address before the Viceroy, mentioning their grievances. The meeting was fixed for today and about to delegates from all parts of India have arrived. The ceremony took place this morning in the Ball room. The girls and I went in by a side door to hear the

proceedings while Minto advanced up to the room and took his seat on the dais. The Agha Khan ... was selected to read the very long but excellent address stating all their grievances and aspirations. Minto then read his answer......"You need not ask my pardon for telling me that representative institutions of the European typeare entirely new to the people of India .....I should be very far from welcoming all the political machinery of the western world among the hereditary traditions and instincts of Eastern races ...The pith of your address, as I understand it, is a claim that any system of representation, whether it affects a Municipality, a District Board or Legislative Council, in whice it is proposed to iniroduce or increase an electoral organisation, the Mohamedan community should be represented as a Community. You point out that in many cases electoral bodies, as now constituted, cannot be expected to return a Mohamedan candidate, and that if by chance they did so, it could only be at the sacrifice of such candidate's views to those of a majority, opposed to his own community, whom he would in no way represent and you justly claim that your position should be estimated not merely on your numerical strength,

but in respect to the political importance of your community and the service it has tendered to the Empire, I am entirely in accord with you."

यह बड़ा ही घटनापूर्ण दिवस था, जैसा कि कुछ लोगों ने मुझ से कहा कि भारतीय इतिहास का यह युग परिवर्तनकारी दिन था। भारतवर्ष के सब वर्गों और धर्मों के लोगों में जैसी अशान्ति और असंतोष छा रहा है, उससे हम सब लोग परिचित हैं। मुसलमानों, जिनकी आबादी लगभग छः करोड़ बीस लाख है और जो हमेशा बहुत ही राज्यभक्त रहे हैं, इस बात पर क्रोध प्रकट करते हैं कि उन्हें योग्य प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। उनका कई तरह से निरादर किया गया। हिन्दुओं के प्रति अधिक अनुराग दिखलाया गया। आन्दोलन कर्ताओं ने बहुत ही चिन्ता के साथ इस भावना को उत्तेजित किया है और उन्होंने इस विशाल जाति का सहयोग प्राप्त करने के लिये स्वाभाविक रूप से भरसक प्रयत्न किया हैं। मुस्लिमों की नवयुवक पीढ़ी साधारणतया हिचक रही थी। वह कांग्रेस के प्रगतिशील आन्दोलन कर्त्ताओं के साथ अपना किस्मत लगा देना चाहती थी। मुसलमानों ने किसी भी प्रकार की कार्यवाही करने के पहले यह निश्चय किया कि वे वाइसरॉय की सेवा में अभिनन्दन पत्र भेंट करेंगे, जिसमें कि उनके कष्टों का उल्लेख होगा। उनकी मीटिंग आज के लिये मुकर्रीर है और सारे भारतवर्ष के प्रान्तों से उनके लगभग ७० प्रतिनिधि यहां पहुच गये है।, उनका उत्सव आज सुबह नाचघर (Ball Room) मे हुआ है। लड़कियां और मैं बाजू के दरवाज़ों से कार्यवाही को सुनने के लिये गईं, जहां मिन्टो उच्चासन (Dais) पर बैठे हुए थे। आगाखां उस बहुत बड़े और उत्कृष्ट अभिनंदन को, जिसमें उनके कष्टों और आकांक्षाओं उल्लेख था, पढ़ने के लिये चुने गए। मिन्टो ने इसके बाद अपना उत्तर पढ़ा जिसमें उन्होंने कहा:—

"आपने जो मुझ से यह कहा कि भारतवर्ष के लोगों के लिये यूरोप के

ढंग की प्रतिनिधि संस्थायें बिलकुल नई हैं। इसके लिये आपको मुझसे क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं। मैं पूर्वीय देशों के व्यक्तियों की परम्परा और स्वाभाविक वृत्ति को देखते हुए उनमें पाश्चात्य देशों का राजनैतिक तंत्र प्रचलन करने की भावना का स्वागत नहीं कर सकता। आपके अभिनंदन पत्र का सारभूत तत्व, जैसा कि मैं समझा हूं, यह है कि आप दावा करते हैं कि प्रतिनिधित्व की किसी भी प्रणाली में, चाहे वह म्यूनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या धारासभा से संबंध रखती हो, जाति की दृष्टि से मुसलमानों का योग्य प्रतिनिधित्व होना चाहिए। आपने यह निर्देश किया है कि निर्वाचित संस्थाओं में, जैसाकि वर्तमानों का उनका संगठन है, मुसलमान उम्मेदवारों के निर्वाचित होकर आने की उम्मीद नहीं है। अगर अवसरवश इस प्रकार का कोई उम्मीदवार चुनकर भी आजावे तो उसे बहु संख्यकों के प्रति अपने मत का बलिदान करना पड़ेगा, जो कि उसकी कौम के ख़िलाफ़ होगा। इस तरह वह उम्मीदवार अपनी कौम का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। आपने अभी जो यह दावा किया है कि आपकी स्थिति की गणना आपके संख्या-बल पर नहीं लगाना चाहिए, पर आपकी कौम के महत्व और उसने साम्राज्य की जो सेवा की है उस पर लगाना चाहिए। मैं आपके मत से पूर्णतया सहमत हूं।" लेडी मिन्टो ने अपनी डायरी में एक ब्रिटिश अफ़सर के उस पत्र का उल्लेख किया है जो उनके पति लॉर्ड मिन्टो को उसी दिन मिला था। इस पत्र में लिखा था:—

I must send your Excellency a line to say that a very big thing has happened today. A work of statesmanship that will affect India and Indian history for many a long year. It is nothing less than the pulling back of 62 millions of people from joining the ranks of the seditious opposition.

(Lady Minto's Diary).

मैं आप श्रीमान् को यह लिखता हूँ कि आज एक बहुत बड़ी घटना हुई है। यह एक ऐसी राजनितिज्ञता का काम है, जो बहुत वर्षों तक भारत-वर्ष और भारतवर्ष के इतिहास को प्रभावित करेगा। इस कार्य से राजविद्रोहियों की विरोधी कक्षा से छः करोड़ बीस लाख मनुष्यों को इनने वापस अपनी ओर खींच लिया है।

इंगलैन्ड के भूतपूर्व प्रधानमंत्री मि० रेमजे मेकडॉनल्ड ने अपने "The Awakening of India नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

"The Mohamedan leaders are inspired by certain Anglo-Indian officials and, these officials have pulled wires at Simla and in London and of malice afore-thought sowed discord between Hindu and Mohamedan communities" (The Awakening of India).

अर्थात् इन मुसलमान नेताओं को एंग्लो इन्डियन अफसरों के द्वारा प्रेरणा मिली थी और इन अफसरों ने शिमला और लंदन से षड्यंत्र का जाल रचा था और उन्होंने बड़ी दुर्भावना से हिन्दू और मुसलमानों में फूट के बीज बोए।

इसके परिणाम स्वरूप कुछ मुस्लिम नेता संकीर्ण जातीयता के क्षुद्र भावों के सहज ही बलिदान दब गये। मुस्लिम नेताओं की संकीर्ण भावनाओं का ब्रिटिश कूट नीति ने पूरा पूरा फ़ायदा उठाने का प्रयत्न किया। इसी संकीर्णता के परिणाम स्वरूप ईस्वी सन् १९०६ में कांग्रेस से पृथक् मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। उसके उद्देश्य को श्री हुमायूँ कबीर ने अपनी पुस्तक "Muslim Politics" के पृष्ट २ पर बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है। वे लिखते हैं :——

"Founded in 1906 A. D. by a group of well-to-do and aristocratic Musalmans, it was intended to keep the Muslim inlelligensia and middle classes away from the dangerous politics into which the Indian National congress was just then embarking. It raised the cry of special Muslim interests and pleaded that these could not be safe-guarded except by co-operation with the British."

अर्थात " धनी और उच्चवर्ग के मुसलमानों के एक दल द्वारा सन् १९०६ में स्थापित की गई मुस्लिम लीग का उद्देश्य यह था कि पढ़े लिखे और मध्यमवर्ग के मुसलमानों को उस खतरनाक राजनीति से पृथक् रखा जाय, जिसमें राष्ट्रीय कांग्रेस उस समय प्रवेश कर रही थी। उसने विशेष मुस्लिम हितों की रक्षा की आवाज़ उठाई और कहा कि ब्रिटिश के साथ सहयोग किये बिना मुस्लिम अधिकारों की रक्षा नहीं हो सकती" ।

ईस्वी सन् १९२३ में अंजुमन इस्लामियां, डेरा गाज़ीखां के प्रधान सरदार मोहम्मद खां गुल ने सीमा प्रान्तीय जांच कमेटी के सामने साक्षी देते हुए कहा था:-" इनके (मुसलमानों के) विचार में हिन्दू मुस्लिम एकता वास्तविक रूप में कभी नहीं हो सकती। इसका कभी घटित होना सम्भव ही नहीं। हम समझते हैं कि सीमाप्रान्त पृथक् ही रहना चाहिए। वह अंग्रेजी राज्य और इस्लाम के बीच की कड़ी रहनी चाहिए। यदि आप वास्तव में मुझ से पूछें कि आपकी सम्मति क्या है तो मैं अंजुमन के सदस्य के नाते कहूंगा कि हम लोग हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग २ ही देखना चाहेंगे। तेईस करोड़ हिन्दू लोग दक्षिण में रहें और आठ करोड़ मुसलमान उत्तर में रहें। कन्याकुमारी अन्तरीप से लेकर आगरे तक का सारा भाग हिन्दुओं को दे दिया जाय और आगरे से पेशावर तक का सब भाग मुसलमानों को दे दिया जाय। कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दू मुसलमान अपने अपने

स्थान परिवर्तन करलें। वे एक देश को छोड़कर दूसरे स्थान में जा बसें।

कहने का मतलब यह है कि ब्रिटिश कूटनीति और साम्प्रदायवादी मुस्लिम नेताओं की संकीर्ण भावना और स्वार्थी भावना ने देश की एकता को तोड़ने का निकृष्टतम कार्य किया, जिसका कुफल आज करोड़ों भारतवासी भुगत रहे हैं।

मुस्लिम राज्यसंघ की कल्पना

ऊपर की पंक्तियों में भारत की एकता को तोड़कर उसे निर्बल बनाने की ब्रिटिश कूटनीति पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। ब्रिटिश कूटनीति के साथ २ इस कार्य में उन मुस्लिम नेताओं की इस भावना ने भी सहायता पहुँचाई है, जो एशिया में एक सुविशाल मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे।

मि० सैय्यद जमालुद्दीन ने, जिनकी मृत्यु सन् १८६७ में हुई थी, मुस्लिम विश्व-संघ (Pan Islamism) की योजना बनाई थी, जिसके अनुसार अफ्रीका के पश्चिमी तट पर स्थित मास्को देश से लेकर एशिया के पूर्वी द्वीप समूह और हिन्द-चीन तक समस्त मुस्लिम राज्यों के संगठन का प्रबल प्रयत्न किया गया था, जिसके अनुरूप ही आगे चलकर सुप्रसिद्ध कवि डा० मोहम्मद इक़बाल ने लिखा था:——

"चीनों अरब हमारा, हिन्दोस्तां हमारा।
मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहां हमारा" ॥

ईस्वी सन् १६३० को इलाहाबाद में होने वाले मुस्लिम लीग के अधिवेशन के प्रधान पद से भाषण देते हुए उन्होंने कहा था:—

Personally I would go further than the demand embodied in it (The resolution of the all parties

Muslim conference, Delhi, 1928). I would like to see the Punjab, North west Frontier Province, sind and Bluchistan amalgamated into a single state. Self-Government within the British Empire or without the British Empire, the formation of consolidated North-west Indian Muslim State appears to me to be the final destiny of the Muslims at least of the North west India."

"अर्थात व्यक्ति-गत रूप से मैं सर्व दल मुस्लिम कान्फ्रेन्स दिल्ली के सन् १९२८ के प्रस्ताव में की गई मांगों से आगे बढ़ जाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि पंजाब, सीमाप्रान्त, सिन्ध, बलोचिस्तान को एक राज्य में संगठित देखूं। हमारा यह स्वराज्य चाहे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हो, चाहे उसके बाहर, पर उत्तरी-पश्चिमी भारतीय संगठित मुस्लिम राज्य मेरे लिये मुसलमानों का अन्तिम ध्येय है। यदि सबका नहीं तो उत्तर पश्चिमीय भारत के मुसलमानों का तो है ही"।

पाकिस्तान की उत्पत्ति

अंग्रेजी के सुप्रख्यात् विश्व कोष में पाकिस्तान पर एक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है, जिससे मालूम होता है कि पाकिस्तान की आदि कल्पना का जन्म एक पंजाबी मुसलमान रहमतअली के मस्तिष्क से हुआ था। मि० रहमतअली केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे। कहाजाता है कि पाकिस्तान में वे अफगानिस्तान, काश्मीर, सिन्ध और बिलोचिस्तान को शामिल करना चाहते थे। पीछे जाकर उनकी इस कल्पना में परिवर्तन हुआ और पाकिस्तान का अर्थ पवित्र भूमि से लगाया जाने लगा।

२८ जनवरी १९२३ ईस्वी को चोधरी रहमतअली ने "Now or Never" (अभी या कभी नहीं) नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की

जिसमें सबसे प्रथम पाकिस्तान की योजना का प्रतिपादन किया गया। सबसे पहले इसी पुस्तक में मुसलमानों को एक पृथक् राष्ट्र (Nation) कहा गया और जैसा कि हम पूर्व में लिख आये हैं, भारत के उत्तरी-पश्चिमी प्रान्तों को मिलाकर पाकिस्तान बनाने का यह आयोजन किया गया। इस पुस्तक का ब्रिटिश पार्लियामेंट के मेम्बरों और अन्य अधिकारियों में बहुत प्रचार किया गया। इस प्रचार और प्रोपेगैण्डा के लिये एक साधारण विद्यार्थी रहमतअली के पास धन कहां से आता था, इस विषय पर डॉ० शौकतउल्ला अन्सारी ने अपनी पुस्तक "Pakistan" के पृष्ठ १८० पर लिखा है।

At that time it was generally believed among Indian students at Cambridge that ch. Rahamat Ali, who was not persuing any specific course of studies and had no ostensible means of support, but at the same time had ample funds for his some what luxurious entertainments of celebrities and propagandist activities, derieved his inspiration and funds from the India office. This seems to be confirmed by the fact that although in India no one had heard or talked of Pakistan and the Muslim delegation (to the Round Table conference) showed no interest in it, yet the Diehard Press and the Churchill Lloyd Group waxed eloquent and.........questions were asked in the Houses at parliament on several occasions"

अर्थात् "उस समय कैम्ब्रिज के भारतीय विद्यार्थियों का साधारणतः यह विश्वास था कि चौधरी रहमतअली को, जो कि न तो कोई विशेष पढ़ाई

कर रहे थे और न जिनके पास अपने व्यय चलाने के लिये स्पष्ट साधन थे, लेकिन फिर भी जो प्रोपैगेण्डा और मजेदार दावतों आदि में खूब रुपया उड़ाते थे, इन सब बातों के लिये प्रेरणा और धन (लन्दन) के भारतीय कार्यालय से मिलता था। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है की यद्यपि तब तक भारत में पाकिस्तान का नाम न तो किसी ने सुना था और न कोई उसकी चर्चा थी और न गोलमेज कान्फ्रेंस के मुस्लिम प्रतिनिधियों ने उसके प्रति कोई रुचि दिखलाई थी, तो भी इङ्गलैण्ड का चर्चिल आबद दल और कट्टर पंथी प्रेस उसका बढ़ा चढ़ा कर वर्णन कर रहे थे और पार्लियामेन्ट की दोनों सभाओं में इस पर अनेक बार प्रश्न किये गये थे।"

कुछ भी हो, पाकिस्तान की योजना ने ज़ोर पकड़ा और हमारे कांग्रेस के नेताओं की कमज़ोरी और मुस्लिम संतुष्टिकरण नीति के कारण यह योजना दिन बा दिन बलवती होती गई और अंत में फलरूप में प्रकट होकर उसने देश पर जो महान् विपत्ति ढाई उसका उदाहरण संसार के इतिहास में मिलना मुश्किल है। जो कांग्रेस नेता साम्प्रदायिकता के नाम से नाक मसोसते थे उन्होंने मुस्लिम साम्प्रदायिकता के सामने सिर झुका कर एक महान् अनर्थ को परिपुष्ट किया।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि पाकिस्तान की योजना को फलने फूलने के लिये क्षेत्र मिलता गया। ईस्वी सन् १९३८ के अक्टूबर मास में मि० जिन्ना के सभापतित्व में सिन्ध प्रान्तीय मुस्लिम लीग ने करांची में भारत में दो राष्ट्र (Two Nations) के सिद्धान्त को माना और माँग की कि भारत को दो भागों में बाँट दिया जाय। एक हिन्दू राष्ट्र-संघ और दूसरा मुस्लिम-राष्ट्र संघ।

२२ अक्टूबर सन् १९३९ ई० में मुस्लिम लीग की वर्किङ्ग कमेटी ने दावा किया कि कांग्रेस समस्त भारत की प्रतिनिधि संस्था नहीं है किन्तु समस्त भारत के मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था केवल मुस्लिम

लीग है।

२६ मार्च सन् १६४० ई० को लाहौर में मुस्लिम लीग ने अपने वार्षिक अधिवेशन में भारत के विभाजन का (उर्दू ज़बान में पाकिस्तान) का प्रस्ताव पास किया और फिर १ सितम्बर सन् १६४० ई० को लीग की वर्किङ्ग कमेटी ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि

"The partition of India is the only solution of the most difficult problem of Indias future Constitution.

अर्थात भारत के भावी विधान की सबसे कठिन समस्या का एक मात्र हल भारत का विभाजन है।

२२ फरवरी सन् १६४१ ई० को मुस्लिम लीग की वर्किङ्ग कमेटी ने अपने उसी प्रस्ताव को फिर दुहराया और अन्त में अप्रैल सन् १६४१ में ऑल इन्डिया मुस्लिम लीग ने अपने मद्रास के अधिवेशन में पाकिस्तान को मुस्लिम लीग का मुख्य ध्येय मान लिया। जहां मुस्लिम लीग का ध्येय तब तक A Federation of free democratic states था, वहां अब इन शब्दों को दूर हटाकर उसमें पाकिस्तान को अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया।

यही नहीं, मुस्लिम-लीग इसके बाद कांग्रेस को केवल हिन्दू-संस्था कहने लगी और उसका ध्येय हिन्दू राज्य की स्थापना बताने लगी जैसा कि उसने अपनी दिल्ली वर्किङ्ग कमेटी की बैठक में २२ फरवरी सन् १६४२ ई० के प्रस्ताव में लिखा है। इसी प्रकार २० अगस्त सन् १९४२ के प्रस्ताव में कहा गया कि कांग्रेस का उद्देश्य तो 'Establishing a Congress Hindu domination in India' है। आगे और भी स्पष्ट लिखा है:—

"The present Congress Movement is not dire-

cted for securing independence for all but for the establishment of a Hindu Raj and to deal a death blow to the muslim goal of Pakistan"

अर्थात् वर्तमान कांग्रेस आन्दोलन सबकी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये नहीं है। किन्तु वह तो हिन्दू-राज्य की स्थापना करने और मुसलमानों के पाकिस्तान के ध्येय को नष्ट करने के लिये है।"

उपरोक्त-अवतरणों से पाठकों को ज्ञात हुआ होगा कि कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक साधारण विद्यार्थी की कल्पना ने आगे चलकर हिन्दुस्तान के विभाजन द्वारा एक सबसे बड़ा मुस्लिम राज्य स्थापित कर दिया। ब्रिटिश अधिकारियों ने अपनी फूट नीति के द्वारा इस वृक्ष को फलने फूलने में अप्रत्यक्ष रूप से काफ़ी सहायता पहुँचाई। भारत के तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट लॉर्ड बर्कनहैड ने तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड इरविन को जो पत्र लिखा था, उसमें इसका रहस्य भली प्रकार प्रकट होता है। उक्त-पत्र में लिखा गया था:—

We have always relied on the non-boycotting Moslems. on the depressed community, on the business interests and on many others to break down the attitude of boycott You and Simon must be the judges whether or not it is evpedient in these lines to make a breach in the wall of antagonism." (Birkenhead: The Last Phase)

अर्थात् हम बहिष्कार की प्रवृत्ति को नष्ट करने के लिये हमेशा मुसलमानों, दलित वर्गों और व्यवसायिक जनों पर निर्भर रहे हैं। आप और सायमन इस बात के निर्णायक (Judges) हो सकते हैं कि विरोध की दीवार में छेद करने के लिए यह आवश्यक है या नहीं।"

मि० जिन्ना और पाकिस्तान

मि० जिन्ना पहले राष्ट्रवादी मुसलमान थे। आप उन लोगों में से थे, जो लोकमान्य तिलक के दाहिने हाथ समझे जाते थे।

प्रारम्भ में आप पाकिस्तान के विरोधी थे, रहमत-उल्ला के प्रस्ताव की आपने मज़ाक तक उड़ाई थी। पर पीछे आकर आप पाकिस्तानी योजना के प्रधान नेता बन गये। आप में यह परिवर्तन क्यों हुआ, इस विषय पर स्वर्गीय डा० सच्चिदानन्द सिंह द्वारा संपादित "हिन्दुस्तान रिव्यू" (H. Reviw) के ईस्वी सन् १९४६ के सितम्बर मास के अंक में प्रकाश डाला गया है।

डा० सिंह ने उक्त लेख में पं० जवाहरलाल जी नेहरू की जिन्ना परिवर्तन संबंधी निम्नलिखित वक्तव्य का खंडन किया है। पं० जवाहर लाल नेहरू का वह कथन इस प्रकार है:—

"Jinnah left the congress not because of any difference of opinion on the Hindu, Moslem question but because he could not adapt himself to the new and a more advanced ideology, and even more so because he disliked the crowds of sun dressed people talking in Hindustani who filled the Congress, His idea of politics was of a superior vriety, more suited to the legislative chamber or to a committee room For some years he fell completely out of the picture and even decided to leave India for good. He settled down in England and spent several years there,"

अर्थात् जिन्ना ने इसलिये कांग्रेस को न छोड़ा कि उनका हिन्दु

मुस्लिम प्रश्न पर कोई मतभेद था, वरन उन्होंने कांग्रेस को इसलिये छोड़ा कि वह उसकी प्रगतिशील विचारधारा के अनुकूल अपने आपको न बना सके। इसके अतिरिक्त इसका एक बड़ा कारण यह भी था कि वे फटे टूटे कपड़े पहने हुए और हिन्दुस्तानी बोलने वाले लोगों के उन झुंडों को नापसंद करते थे जिन्होंने कांग्रेस को भर रखा था। उनकी राजनीति संबंधी भावना शान शौकत वाली थी जो विधान भवन या समिति भवन के लिये विशेष उपयुक्त थी। कुछ वर्ष तक वे बिलकुल तस्वीर के बाहर हो गये। यहां तक कि उन्होंने भारतवर्ष को हमेशा के लिये छोड़ने का निश्चय किया। वे इङ्गलैंड में जाकर बस गये और उन्होंने वहां कई वर्ष बिताये।"

जिन्ना-परिवर्तन के संबंध में पं० जवाहरलाल नेहरू के अनुमान के साथ स्वर्गीय डा० सिंहा ने अपना मतभेद प्रकट किया था। डॉ० साहब का कथन है कि पं० जवाहरलाल ने जो कुछ लिखा है वास्तविकता उस से विपरीत है। प्रारम्भ ही से मि० जिन्ना की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा यह रही थी कि वे जीवन के हर क्षेत्र में प्रथम और सर्वोपरि नेता के रूप में रहें। ईस्वी सन् १९२० में राजनैतिक कार्यक्षेत्र में महात्मा गांधी के उतर पड़ने से और देशभर में उनका व्यापक और असाधारण प्रभाव फैल जाने से, जिन्ना साहब की महत्वाकांक्षा के सफल होने के चिन्ह दिखलाई न पड़ने लगे।

ईस्वी सन् १९२० के दिसम्बर मास में नागपुर में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन में महात्माजी के असहयोग का प्रस्ताव का विरोध करते हुए श्री जिन्ना महोदय ने गांधी जी को "महात्मा गांधी" कहने के बजाय "मि० गांधी" संबोधित किया। इस पर जनता में बड़ा हो हल्ला मच गया। सारी जनता चिल्लाने लगी कि "मि० गांधी" नहीं "महात्मा गांधी कहो। जिन्ना टस से मस न हुए और जनता के विरोधी नारे बराबर लगते रहे। मि० ए० ए० रहूफ ने 'Ineet I:

Jinnah नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में इस घटना का विशद विवेचन किया है। और डा० सिंहा ने भी जिन्ना साहब की मूल प्रकृति को देखते हुए अपने लेख में इसका समर्थन किया है। मि० रऊफ ने यह दिखलाया है कि इस घटना का मि० जिन्ना के चित्त पर बड़ा कटु असर हुआ और इसी कारण उन्होंने इंगलैंड में बसकर प्रिवी कौंसिल में वकालात करने का निश्चय किया। वे कई वर्ष तक वहां रहे और भारतवर्ष में अपने अवसर को देखते रहे। कुछ वर्षों के बाद मुस्लिम लीग में फूट पड़ी और जिन्ना साहब को उस पर अधिकार जमाने का अवसर मिल गया। परिस्थितियों ने उनका साथ दिया और वे भारत के अधिकांश मुसलमानों के नेता माने जाने लगे।

उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि सर मुहम्मद इक़बाल के विचारों का प्रभाव जिन्ना पर पड़ा। सर इक़बाल ने जिन्ना साहब को यह जचा दिया कि जब तक मुसलमानों का अलग स्वतंत्र राष्ट्र यहां स्थापित न होगा तब तक उनका उद्धार होना असम्भव है। उन्हें बहुमत वाले गैर मुस्लिमों के आधीनता में रहना पड़ेगा। सर मुहम्मद इक़बाल ने जिन्ना साहब को जो पत्र लिखा था उसका एक अंश निम्नलिखित है:—

"The congress derides the political existence of Muslims in no unmistakable terms, The other political body (the mahasabha whom I regard as the real representative of the masses of the Hindus) has declared more than once that a united Hindu Muslim nation is impossible in India. In these circumstances, it is obvious the only way to peaceful India is a redistribution of the country on the lines of racial, linguistic and religious, affinities. Many British statesmen also realzse this,

I remember, Lord Lothian told me that my scheme was the only possible solution of the troubles of India. I agree with you that our community is not yet sufficiently organised and disciplined, But I feel that it would be highly advisable for you to indicate in your address at least the line of action that Muslim of North West India would be finally driven to take."

अर्थात् कांग्रेस मुसलमानों के राजनैतिक अस्तित्व की खुले शब्दों में मज़ाक उड़ाती है। दूसरी राजनैतिक संस्था ने (महासभा) जिसे मैं हिन्दू जन समाज की वास्तविक प्रतिनिधि संस्था समझता हूँ, एक से अधिक बार यह घोषित किया है कि हिन्दू-मुसलमानों का संयुक्त राष्ट्र बनना असम्भव है। ऐसी परिस्थितियों में शान्त भारत (Peaceful India) बनने के लिये केवल एक ही रास्ता रह जाता है और वह यह है कि जातीगत, भाषागत और सांस्कृतिक आधार पर भारत का पुनर्विभाजन कर दिया जाय। बहुत से ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भी इस बात को महसूस करते हैं। मुझे स्मरण है कि लॉर्ड लोथियन ने मुझ से कहा था कि आपकी स्कीम ही भारतीय उलझनों को ठीक करने का एकमात्र संभव हल है। मैं आपके साथ इस बात से सहमत हूँ कि हमारी क़ौम अभी तक पूरी तरह से सुसंगठित और अनुशासित नहीं हुई है। मेरे विचार से आप के लिये यह योग्य होगा कि आप अपने भाषण में उत्तर पूर्वीय भारत के मुसलमानों के लिये ऐसे कार्य-क्रम का संकेत कर दें जिससे आख़ीर में वे स्वीकार कर लें।

इसके बाद इस विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए सर इक़बाल ने आगे चल कर लिखाः—

"To my mind, the new constitution with its

idea of a single federation, is completely hopeless. A separate Federation of Muslim Provinces, reformed on the lines suggested above is the only course by which we can secure a peaceful India and save muslims from the domination of Non-muslims. Why should not the muslim of north-west India and Bengal be considered as nations entited to self-determination ?

"मेरे ख़याल में नया विधान' जिसमें एक संघ राज्य की कल्पना का समावेश है, बिलकुल ही निराशाजनक है। मुस्लिम प्रान्तों का संघराज्य जैसा कि ऊपर सुझाया गया है शान्तिमय भारत के निर्माण का एक मात्र रास्ता है और यही रास्ता मुसलमानों को गैर मुस्लिमों के प्रभुत्व से बचा सकता है। उत्तर पश्चिम भारत और बंगाल के मुसलमान आत्मनिर्णय का अधिकार-प्राप्त स्वतंत्र राष्ट्र क्यों न समझे जायँ"।

जिन्ना साहब के जीवनी लेखक ने लिखा है कि मुहम्मद अली जिन्ना के मन पर इक़बाल के उक्त पत्रों ने बड़ा प्रभाव डाला। इसके कुछ वर्षों बाद ही जिन्ना साहब ने अपने एक वक्तव्य में कहा था:—

"We are different in everything. We differ in our religion, our civilisation and culture. our history, our language, our architecture, our music our jurisprudence and laws, our food, our society, our dress-in every way we are different. We can't get together in the ballot box."

हम हर बात में जुदे हैं, हमारा धर्म, हमारी सभ्यता और संस्कृति,

हमारा इतिहास, हमारी भाषा, हमारा वास्तुशास्त्र, हमारा संगीत, हमारा न्याय विज्ञान (Jurisprudence), हमारे क़ानून, हमारा भोजन, हमारा समाज और हमारी पोशाक हर बात में हम (हिन्दुओं) से भिन्न हैं। हम मतपेटिका (Ballot Box) में एक नहीं हो सकते।

यह मि० जिन्ना के दो राष्ट्रवाद की घोषणा थी, जिसको बिना समझे बूझे लाखों मुसलमानों ने स्वीकार कर लिया। इसके आगे चलकर ईस्वी सन् १९४० के मुस्लिम लीग के अधिवेशन में द्विराष्ट्रवाद अर्थात् मुसलमानों के लिये स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्र स्थापित करने की आवाज़ ज़ोर से बुलन्द की गई। इसके बाद इस विषय को लेकर लीग ने घोर आन्दोलन किया। कांग्रेस नेता जैसे जैसे दबते गए और जैसे जैसे वे जिन्ना की तलवार के सामने अपना सिर झुकाते गये, वैसे वैसे जिन्ना साहब अकड़ते गये। बिहार के सुप्रसिद्ध नेता स्वर्गीय श्री० सच्चिदानन्द सिंह ने लिखा है:—

"Such was the manifesto of Jinnahs totally false two nation theory-wrong in almost every detail, but which was swallowed avidly, without test or analysis for want of capacity by millions and millions of Muslims all over India-particularly strange to say in the Muslim minority provinces and embodied in a resolution at the session of the League, held at Lahore in 1940 which was shouted at the pitch of their voice as their war-cry and slogan by the Muslim Leaguers, until the congress leaders fed up with the situation and frightened by the League's threat of a civil war, yielded assent to Lord Mount Batten's suggestion

in 1947 to the formation of Pakistan."

इस प्रकार का जिन्ना का नितान्त असत्य द्विराष्ट्रवाद सिद्धान्त का यह घोषणापत्र था। हर बात में यह गलत था, पर उसे सारे हिन्दुस्तान के लाखों करोड़ों मुसलमानों ने बिना उसकी परीक्षा और विश्लेषण किये बड़ी व्यग्रता से निगल लिया था। यहां यह बात खास तौर से विचित्र थी कि अल्प संख्यक मुस्लिम प्रान्तों के मुसलमानों ने इसमें अग्रगण्य हिस्सा लिया और ईस्वी सन् १९४० के मुस्लिम लीग के अधिवेशन के प्रस्ताव में इस सिद्धान्त को ग्रन्थित कर दिया। मुस्लिम लीगर्स ने ऊँची आवाज से इसे युद्ध का नारा बना लिया। कांग्रेस नेताओं ने लीग की गृहयुद्ध की धमकी से भयभीत होकर अखीर ईस्वी सन् १९४७ की लॉर्ड माउन्ट बेटन की पाकिस्तान निर्माण योजना को झुक कर स्वीकार कर लिया। इसका विस्तृत विवेचन आगे चलकर किया जायगा।

देसाई-लियाकत-समझौता

गांधी-जिन्ना वार्तालाप के असफल होने के बाद जनवरी १९४४ में देसाई-लियाकतअली समझौता हुआ। देसाई से मतलब श्री स्वर्गीय भूलाभाई देसाई से है, जो कांग्रेस के दृष्टिकोण को प्रकट करते थे मुस्लिम लीग की ओर से तत्कालीन मुस्लिम लीग के अध्यक्ष और वर्तमान पाकिस्तान के प्राइममिनिस्टर से है। दोनों नेताओं ने कांग्रेस-लीग एकता कराने के समझौते के एक मसविदे पर दस्तखत किए। इसके पहिले श्री भूलाभाई देसाई ईस्वी सन् १९४५ में दो बार वायसराय से मिले थे। इसी बीच उन्होंने वर्धा में गांधी जी से और एक बार मुस्लिम-लीग पार्टी के उपनेता व अपने मित्र लियाकतअली खाँ से भी मुलाकात की थी। २२ अप्रेल १९४५ को श्री भूलाभाई देसाई ने पेशावर में सीमाप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन में अपनी योजना के सम्बन्ध में रहस्योद्‌घाटन किया। अगस्त, १९४२ के बाद भारत के किसी भी प्रांत में होने वाला यह पहला राजनैतिक सम्मेलन था।

सम्मेलन में उपस्थित किए गए मुख्य प्रस्ताव में कांग्रेस के नेताओं की रिहाई तथा केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का अनुरोध किया गया था। प्रस्ताव पर भाषण करते हुए श्री भूलाभाई देसाई ने कहा कि केन्द्र में अंतर्कालीन-सरकार स्थापित करने के प्रस्ताव पहले से ही ब्रिटिश सरकार के सम्मुख उपस्थित हैं। आपने मांग की कि ब्रिटेन को घोषणा कर देनी चाहिए कि भारतीय सरकार और उसके प्रतिनिधियों का पद अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अन्य सरकारों व उनके प्रतिनिधियों के समान होगा।

ईसाई और लियाकत अली समझौते की धाराएँ निम्न लिखित थी।

'कांग्रेस और लीग इस बात को स्वीकार करती हैं कि वे केन्द्रीय-शासन में अन्तर्कालीन सरकार बनाने में सहमत होंगी'

'इस प्रकार की सरकार का संगठन निम्न लिखित होगा।

(१) केन्द्रीय-शासन में कांग्रेस और लीग द्वारा मनोनीत सदस्यों की संख्या समान होगी। जो लोग इसमें मनोनित किये जावेंगे उनके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य हों।

(२) इसमें अल्पसंख्यक दलों के प्रतिनिधि भी रहेंगे। (खास तौर से परिगणित जातियों और सिक्खों के)

(३) इसमें प्रधान सेनापति भी रहेंगे।

यह अंतर्कालीन सरकार वर्तमान भारतीय शासन एक्ट के अनुसार बनाई जायगी और उसी के अनुसार उसका ढांचा रहेगा। यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि अगर अंतर्कालीन केबिनेट अपना कोई विशेष प्रस्ताव धारा सभा में पास न करवा सके तो वह गवर्नर जनरल तथा वायसरॉय द्वारा उनके समरक्षित अधिकारों के बल पर उसे पास नहीं करवायेगी।

(४) केन्द्र में सरकार बन जाने के बाद उन तमाम प्रांतों में भी जिनमें धारा ९३ के अनुसार शासन चलाया जा रहा है, कांग्रेस और लीग के संयुक्त मंत्रिमण्डल बनाए जावेंगे।

उपरोक्त समझौते से यह पता चलेगा कि हमारे कांग्रेस के नेता लीग जैसी साम्प्रदायिक संस्था के सामने जनतन्त्र के उच्च सिद्धान्तों का परित्याग कर किस प्रकार झुकते रहे। जब कांग्रेस हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि सब समुदायों का प्रतिनिधित्व करने का उचित दावा करती है, तब केवल मात्र मुस्लिमों का प्रतिनिधित्व करने वाली एक साम्प्रदायिक संस्था के प्रतिनिधियों अर्थात् मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों की संख्या किसी शासन संस्था में किस न्याय से बराबर हो सकती थी, यह

समझ में नहीं आता। इस पर भी तुर्रा यह कि कांग्रेस के मनोनीत सदस्यों में एक मुसलमान का होना भी आवश्यक समझा गया था। क्योंकि कांग्रेस हिन्दुओं की तरह मुस्लिमों की प्रतिनिधि संस्था होने का भी दावा करती थी। इसलिये कांग्रेस की ओर से जनतन्त्र के सिद्धान्त की दृष्टि से एक मुसलमान का होना आवश्यक था। पर इस सारी कार्यवाही में बड़े बहुमतवाले हिन्दु समाज के अधिकारों की किस बुरी तरह से अवहेलना की गई थी, यह बात विशुद्ध जनतन्त्र आदर्शों की दृष्टि से प्रत्यक्ष है। उस समय कुछ नेताओं के इस भूलभरी कार्यवाही के विरोध में कोई आवाज उठाता तो वह 'साम्प्रदायिक' शब्द से कलंकित किया जाता था।

तत्कालीन वायसरॉय स्वर्गीय वेवेल महोदय देसाई-लियाकतअली के समझौते का उक्त प्रस्ताव लेकर विलायत गये और उन्होंने वहां के ब्रिटिश अधिकारियों से इस विषय पर काफी वादानुवाद किया। १४ जून १६४५ को वायसराय ने कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई की घोषणा की और अपने ब्राडकास्ट भाषण में उन्होंने केन्द्रीय सरकार को कायम करने के लिये हिन्दू मुस्लिम प्रतिनिधियों की संख्या में समानता की। गांधीजी इस पर कुछ चौंके और उन्होंने १५ जून १६४५ को एक वक्तव्य देकर यह प्रकट किया कि अगर कांग्रेस लीग समानता की चर्चा (PARITY) के स्थान पर हिन्दू-मुस्लिम समानता का प्रश्न उठाया गया तो सारा प्रस्ताव बेकार हो जायगा। इसके बाद १० जून को जो पत्र गांधीजी ने वायसराय को लिखा था उसमें उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था:—"यदि सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की समानता के प्रस्ताव में परिवर्तन नहीं किया गया, तो आप अनजाने में परन्तु निश्चय ही सम्मेलन का उद्देश्य असफल कर देंगे। हां, कांग्रेस और लीग की समानता समझ में आती है।"

शिमला कॉन्फ्रेन्स

भारतवर्ष की सब राजनैतिक पार्टियों में समझौता करने के लिये, शिमलामें कॉन्फ्रेंस बुलाई गई। इसका उद्देश्य यह था कि यह वायसराय को इस बात का परामर्श दे कि उनकी नई कार्यकारिणी में अधिक से अधिक राष्ट्र का प्रतिनिधित्व किस प्रकार प्राप्त किया जाय। इस कॉन्फ्रेन्स में प्रान्तीय सरकारों के प्रधान मंत्री और केन्द्रवर्ती धारा सभा के कांग्रेस पार्टी के और मुस्लिम लीग के नेता, राष्ट्रीय दल के नेता और यूरोपियन ग्रुप के नेता निमंत्रित किए गए थे। भारतवर्ष के दो प्रधान संगठन-कांग्रेस और मुस्लिम लीग-के प्रधान नेताओं के रूप में महात्मा गांधी और मि० जिन्ना को निमंत्रित किया गया था। परिगणित जातियों की ओर से मि० शिवराज को और सिक्खों की ओर से मास्टर तारासिंह को निमंत्रित किया गया था। यहां यह कहना आवश्यक है कि कांग्रेस पार्टी के प्रतिनिधियों ने इस कॉन्फ्रेन्स को सफल कर एक सर्व सम्मत समझौता करने का बड़ा प्रयत्न किया, पर मि० जिन्ना के दृढ़ आग्रह के कारण इसमें सफलता न मिली। इस कॉन्फ्रेन्स की असफलता को लार्ड वेवल ने अपने १४ जुलाई के भाषण में स्वीकार किया था। इस कॉन्फ्रेन्स की असफलता के सम्बन्ध में कांग्रेस के प्रेसिडैण्ट डा० पट्टाभिसितारमैय्या अपने '60 years of Congress' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि:—

That the responsibility for its failure lay upon Mr. Jinnah, who refused to furnish his list of nominees to the Executive Council and who in

the alternative did not agree to the names included therein by Lord Wavell himself for the League, was made unequivocally clear by the Viceroy in his valedictory address delivered on 14th. July. It was well that the Viceroy declared his dissent from Jinnah's claim that the League alone should represent the Muslims. It was really a pity that the parties assembled in Simla from the League and the Congress could not agree upon a joint list of names for the Executive Council, for that would have meant a joint programme, concerted action for the attainment of independence and possibly joint electorates in the near future. It would have meant clearly one composite nationalism, one common plan of emancipation and one combined effort which was bound to succeed. When this failed, separate lists also failed of their purpose.

अर्थात् इस कॉन्फ्रेन्स की असफलता की जिम्मेदारी मि० जिन्ना के सिर पर पड़ती है। क्योंकि उन्होंने कार्य-कारिणी कौन्सिल के लिये अपने मनोनीत सदस्यों की सूची देने से इन्कार किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने मुस्लिम लीग के लिए लॉर्ड वेवल द्वारा सुझाए गए नामों को भी स्वीकार करने में अपनी असहमति प्रकट की। इस बात को वायसरॉय ने अपने १४ जुलाई वाले भाषण में स्पष्टतया प्रकट किया है। वाइसरॉय ने जिन्ना के इस दावे को अस्वीकार कर दिया था कि शिमला में कांग्रेस और लीग की जो पार्टियाँ इकट्ठी हुईं थीं वे कार्य-कारिणी कौन्सिल

के लिए सदस्यों की एक संयुक्त सूची बनाने में असमर्थ रहीं। अगर यह सूची बन जाती तो स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये और सम्भवतः निकट भविष्य में संयुक्त निर्वाचकों को चुनने के लिये एक संयुक्त कार्य-क्रम बन गया होता और सबोंने मिलकर अपने महान् उद्देश्य की सिद्धी के लिए कार्य किया होता। इससे सावयव राष्ट्रीयता, और राष्ट्र मुक्ति की एक सर्व सामान्य योजना का निर्माण होता जो अवश्य ही सफल होती पर वह असफल होगई और इससे इस उद्देश्य के लिए बनाई गई विभिन्न सूचियां असफल रहीं। लार्ड वेवल ने, जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, इस असफलता की सारी जिम्मेदारी अपने सिर पर ली और उन्होंने शिमला कॉन्फ्रेन्स के बाद पहली और दूसरी अगस्त १९४५ को अपने प्रान्तीय गवर्नरों की कॉन्फ्रेन्स की।

कहने का मतलब यह है कि मि० जिन्ना अपने आग्रह पर अड़े रहे और वे उस समय अन्तर्कालीन सरकार बनाने के लिए सहमत न हुए। वे इस बात पर जोर देते रहे कि जब तक लीग के लाहौर वाले अधिवेशन के प्रस्तावानुसार मुसलमानों को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार न दिया जायगा तब तक वे अन्तर्कालीन सरकार के बनाने में अपनी स्वीकृति न देंगे। वाइसराय ने जिन्ना को यह विश्वास दिलाया कि अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना से पाकिस्तान सम्बन्धी उनके आग्रह मे कोई फर्क न पड़ेगा। इस पर मि० जिन्ना इस बात पर जोर देने लगे कि अन्तर-कालीन सरकार में हिन्दुओं और मुसलमानों की बराबर संख्या रहे। वे मुसलमानों के १/३ प्रतिनिधित्व से असहमत रहे।

उन्हें यह समझाया गया कि हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या का अनुपात २५ और ६० है। ऐसी स्थिति में दोनों का प्रतिनिधित्व बराबर होना जनतन्त्र के सिद्धान्त की अवहेलना है। पर वे टस से मस न हुए। वे वाइसरॉय के ऊपर यहां तक दबाव डालने लगे कि अगर कांग्रेस उक्त प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं करती है तो कार्य-कारिणी कौन्सिल

में सभी मुसलमान सदस्य मनोनीत कर दिये जावें। पर वाइसराय ने इस बात को स्वीकार न किया। इसका विरोध न केवल कांग्रेस ही ने किया वरन् पंजाब की यूनियनिष्ट पार्टी के नेता मलिक खिज़र हयातखां तक ने किया। वाइसरॉय ने इसपर कॉंफ्रेन्स की असफलता की घोषणा कर दी। उस समय ऐसा मालूम होने लगा मानों जिन्ना साहब का देश की वैधानिक प्रगति में रोड़े अटकाने का अधिकार ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार कर लिया हो; क्योंकि उनके आग्रह के कारण शिमला कॉंफ्रेन्स ठप करदी गई।

ब्रिटेन में मजदूर राज्य की स्थापना

इसी बीच इङ्गलैंड में पार्लियामेन्ट का चुनाव हुआ। जिसमें चर्चिल पार्टी की करारी हार हुई और मज़दूर पार्टी की अत्यधिक बहुमत से विजय हुई। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि चर्चिल पार्टी के अनुदार दल की अपेक्षा मज़दूर दल की भारतवर्ष की राजनैतिक आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति होना स्वाभाविक था, यद्यपि लोगों को मजदूर पार्टी की प्रामाणिकता पर भी कुछ न कुछ सन्देह था। पर उसकी पिछली कार्यवाहियों से यह स्पष्टतया सूचित होता है कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिये उसने प्रामाणिकता से कार्य किया। उसने यह समझ लिया कि अब भारतवर्ष को दासत्व की शृङ्खला में जकड़े रखना असम्भव है और इंग-

लैंड और भारतवर्ष के हित में यही उचित है कि भारतवर्ष को स्वतन्त्र कर दिया जाय, जिससे दोनों देशों में शत्रुता का वातावरण हटकर मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित होजाय।

इसी समय अर्थात् अगस्त १६४५ को जापान की पराजय होकर मित्र राष्ट्रों की सर्वाङ्गीन विजय हुई। अब ६३ धारा का चालू रखना मजदूर सरकार ने उचित न समझा। वह भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के प्रश्न को हल कर देना चाहती थी। उसने वाइसरॉय लार्ड वेवल को विचार विमर्श के लिये इंगलैंड को निमंत्रित किया।

लॉर्ड वेवल इंगलैंड में मंत्रीमंडल से सलाह मशविरा कर भारतवर्ष लौट आए और उन्होंने निम्नलिखित घोषणा की।

१ केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव, जो युद्ध के कारण स्थगित कर किए गए थे, आगामी शीत काल में किए जावें।

२ श्रीमान् सम्राट् की सरकार उक्त चुनावों के समाप्त होने पर विधान निर्माणकारी सभा की योजना करेगी।

३ निर्वाचनों के बाद तत्काल ही प्रान्तीय धारा-सभाओं के प्रतिनिधियों के साथ विचार विमर्श कर यह निश्चय करेगी कि १६४२ की घोषणा में कथित प्रस्ताव (क्रिप्स के प्रस्ताव) उन्हें स्वीकृत हैं या नहीं। उनकी स्वीकृत या संशोधित योजना किस रूपमें बनाई जावें।

४ भारतीय देशी राज्यों के साथ विचार विमर्श कर यह निर्णय किया जावे कि विधान निर्माण कारी सभा में किस प्रकार वे अपना योग दे सकते हैं।

५ ब्रिटिश सरकार भारत और ग्रेट ब्रिटेन के बीच होने वाली सन्धि के मुद्दों पर विचार करने के लिए अग्रसर होगी।

भारत के तत्कालीन स्टेट सेक्रेटरी लार्ड पैथिक लारेन्स ने अपने

ब्राड कास्ट के भाषण में कहा थाः—"ईस्वी सन् १९४६ का वर्ष भारतवर्ष के इतिहास में एक निर्णायक वर्ष था।" उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया कि ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष को स्वतन्त्रता देने का निश्चय कर लिया है और चुनाव के पश्चात् वाइसराय ऐसी कार्य-कारिणी कौन्सिल बनावेंगे जिसमें सब राजनैतिक दलों का सहयोग होगा।

तत्कालीन केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा सभाओं के निर्वाचनों में कांग्रेस को अपूर्व सफलता मिली। यहां तक कि वह उत्तर पश्चिम प्रान्त में, जहां मुसलमानों की संख्या ९५ फी सदी है, अपना मन्त्रीमंडल बनाने में बड़ी सफलता पूर्वक समर्थ हुई। सिन्ध, पंजाब और बंगाल को छोड़कर अन्यत्र सब प्रान्तों में कांग्रेस ने अपने मन्त्रिमंडल बनाए। सिन्ध और पंजाब में संयुक्त मन्त्रिमण्डल बने, जिनमें मुस्लिमलीग का प्रतिनिधित्व न हो सका। कहने का मतलब यह है कि निर्वाचनों में कांग्रेस की शानदार विजय हुई और मुस्लिम लीग अन्य प्रान्तों की तो बात ही क्या खास मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों में भी, सिवा सिन्ध प्रान्त के, अपना मन्त्रिमंडल बनाने में कामयाब न हो सकी।

केबिनेट–मिशन

जैसा कि पहले लिख चुके हैं ब्रिटेन के चुनाव में चर्चिल पंथी अनुदार दल की पराजय होकर मजदूर दल की सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से बाध्य होकर भारत में अपना केबिनेट–मिशन भेजने का निश्चय किया। इस मिशन के भेजे जाने के समय १५ मार्च सन् १९४६ को तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० एटली ने अपने एक वक्तव्य में कहा था:—

‘,My colleagues are going to India with the intention of using their utmost endeavours to help her to attain her freedom as speedily and fully as possible. What form of Government is to replace the present regime is for India to decide; but our desire is to help her to set up forthwith the machinery for making that decision.........

“I hope that the Indian people may elect to remain within the British Commonwealth. I am certain that she will find great advantages in doing so.........

“But if she does so elect, it must be by her own free will. The British Commonwealth and Empire is not bound together by chains of external compulsion. It is a free association of free

peoples. If, on the other hand, she elects for independence, in our view she has a right to do so. It will be for us to help to make the transition as smooth and easy as possible."

"मेरे सहयोगी भारतवर्ष को यथा-सम्भव शीघ्र से शीघ्र और पूर्ण रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के उनके प्रयत्न में उन्हें पूर्ण रूप से मदद देने की भावना से भारतवर्ष जा रहे हैं। वहां के वर्तमान शासन के बदले में कौनसा शासन स्थापित हो, इसके निर्णय करने का काम खुद भारतवर्ष का होगा।"

"मुझे आशा है कि भारतवर्ष ब्रिटिश कॉमनवैल्थ में रहने का निर्णय करेगा। मुझे विश्वास है कि ऐसा करने में उसका बड़ा लाभ है।"

"पर अगर वह ब्रिटिश कामनवेल्थ में रहना पसंद न करे तो वह यह निर्णय भी अपनी स्वतंत्र इच्छा से कर सकता है। ब्रिटिश कामनवेल्थ और साम्राज्य बाह्य बलात्कार की श्रृङ्खला द्वारा संगठित नहीं है। वह स्वतंत्र लोगों की स्वतंत्र संसद् है। अगर वह पूर्ण स्वतंत्रता को पसंद करता है तो हमारी राय में उसे ऐसा करने का अधिकार है। हमारा काम उसके इस संक्रान्ति मार्ग को यथा संभव सरल और मंजुल बनाने में सहायता देने का है।"

उक्त-उद्देशों को प्रकट कर ब्रिटेन की मजदूर सरकार ने भारत सिक्त्तर लार्ड पेथिक लॉरेन्स, सर स्टेफॉर्ड क्रिप्स, मि० बी० बी० एलेक्जेण्डर का एक केबिनेट मिशन भारत को भेजा।

१५ मार्च को दिल्ली में प्रेस कॉन्फ्रेन्स के सामने अपना वक्तव्य देते हुए केबिनेट-मिशन ने यह प्रगट किया कि वे खुले दिल से निष्पक्ष होकर यहां आये हैं। उन्होंने अपने आप को किसी मत विशेष से बद्ध नहीं किया है। दूसरे सप्ताह उन्होंने लार्ड वेवल और प्रान्तीय गवर्नरों से

विचार विमर्श किया। पहली अप्रेल से उन्होंने भारतीय नेताओं से वादानुवाद करना शुरू किया और यह वादानुवाद १७ अप्रेल तक चालू रहा। इस दर्मियान में केबिनेट-मिशन ने ४७२ भारतीय नेताओं से भेंटकर विचार विमर्श किया। कहने का मतलब यह है कि लगभग १ मास तक केबिनेट-मिशन ने भारतवर्ष की प्रत्येक राजनैतिक विचार धारा के प्रतिनिधियों से मिलकर देश के भावी शासन के सम्बन्ध में खूब विचार विमर्श किया। मिशन के एक सदस्य लॉर्ड पेथिक लारेंस ने एक वक्तव्य में कहा—"जैसे मैं और मेरे साथी भारत की भूमि पर पदार्पण करते हैं, हम इस देश की जनता के लिए ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश राष्ट्र का एक संदेश लाए हैं और यह संदेश मैत्री तथा सद्भावना का है। हमें विश्वास है कि भारत एक महान् भविष्य के द्वार पर खड़ा है। इस भविष्य में वह स्वयं स्वाधीन रहकर पूर्व में स्वाधीनता की रक्षा करेगा और संसार के राष्ट्रों के मध्य अपने विशेष प्रभाव का उपयोग करेगा।"

"हम सिर्फ़ एक ही उद्देश्य लेकर आए हैं। हम लॉर्ड वेवल के साथ भारतीय नेताओं तथा भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों से बातचीत करके यह निश्चय करना चाहते हैं कि अपने देश के शासन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने की आपकी जो आकांक्षा है उसे आप किस प्रकार पूरी कर सकते हैं। हम चाहते हैं कि जिम्मेदारी का हस्तांतरण हम इस भांति करें, जिससे यह कार्य हमारे लिए सम्मान और अभिमान का कारण बन जाय।"

"ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश राष्ट्र की यह इच्छा है कि जो भी वचन दिए गए हैं उन्हें बिना किसी अपवाद के पूरा किया जाय और हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि अपनी बातचीत के मध्य हम ऐसी कोई बात न कहेंगे जो स्वाधीन राष्ट्र के रूप में भारत की मर्यादा के विरुद्ध हो।"

"इस तरह अपने भारतीय सहयोगियों के समान ही हमारा लक्ष्य होगा और आगामी सप्ताहों में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम कोई प्रयत्न बाकी नहीं छोड़ेंगे।"

केबिनेट मिशन ने अपने प्रस्ताव राष्ट्र के विभिन्न दलों के नेताओं के सामने रक्खे, जिनका सारांश निम्नलिखित है:—

"प्रान्त निम्न तीन समूहों (ग्रुपों) में रखे जायंगे:—'ए'—मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त, उड़ीसा। 'बी'—पंजाब सीमा-प्रान्त, सिन्ध, 'सी' बंगाल, आसाम। 'ए' में १६७ आम और २० मुस्लिम प्रतिनिधि रहेंगे। 'बी' में ६ आम, २२ मुस्लिम और ४ सिख प्रतिनिधि रहेंगे। 'सी' में ३४ आम और ३६ मुस्लिम प्रतिनिधि रहेंगे। रियासतें ९३ प्रतिनिधि भेजेंगी, किन्तु चुनाव का तरीका अभी निश्चित होना बाकी है। इन कुल ३८५ प्रतिनिधियों में दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा कुर्ग और ब्रिटिश बिलोचिस्तान के एक एक प्रतिनिधि को जोड़ना चाहिए। ये ३८९ प्रतिनिधि शीघ्र ही नई दिल्ली में एकत्र होकर अपने अध्यक्ष तथा पदाधिकारियों का चुनाव करेंगे और एक सलाहकार समिति भी नियुक्त करेंगे। इसके बाद वे नवीन भारत की नींव रखने का कार्य हाथ में लेंगे।

"प्रारम्भिक कार्यवाही के लिए एकत्र होने के बाद प्रतिनिधि तीन भागों (सेक्शनों) में बँट जायँगे जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। वे अपने समूह के प्रान्तों के लिए विधान तैयार करेंगे। वे यह भी निश्चय करेंगे कि इन प्रान्तों के लिए समूह (ग्रुप) विधान की व्यवस्था की जाय अथवा नहीं और अगर ऐसा किया जाय तो समूह को किन विषयों का प्रबंध सौंपा जाय। इसके सब सदस्य फिर एकत्र होकर भारतीय संघ का विधान तैयार करेंगे।

"हर प्रान्त में प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा विधान-परिषद् के सदस्यों

का चुनाव करेगी। इस प्रकार बंगाल से वहाँ की व्यवस्थापिका सभा आम सीटों के लिए २७ और मुस्लिम सीटों के लिए ३३ मुसलमानों का चुनाव करेगी। व्यवस्थापिका सभा के मुसलमान सदस्य ३३ मुसलमानों का और अन्य सदस्य बाकी २७ सीटों के लिए अन्य सदस्यों का चुनाव करें। उड़ीसा में वहाँ की व्यवस्थापिका सभा ६ आम सीटों के लिए ही प्रतिनिधियों का चुनाव करेगी, क्योंकि इस प्रान्त में मुस्लिम सीटें नहीं हैं। सिंध में व्यवस्थापिका सभा के मुसलमान सदस्य तीन मुस्लिम प्रतिनिधियों का और शेष सदस्य एक गैर-मुस्लिम सदस्य का चुनाव करेंगे। संयुक्त प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा के मुसलमान सदस्य ८ प्रतिनिधियों का और शेष सदस्य ४७ गैर-मुस्लिम प्रतिनिधियों का चुनाव करेंगे। पंजाब के अंक में ८ गैर-मुस्लिम, १६ मुस्लिम और ४ सिख हैं। सिखों को प्रतिनिधित्व केवल यहीं दिया गया है। उनका चुनाव व्यवस्थापिका सभा के सिख सदस्य करेंगे।

चुनाव की पद्धति आनुपातिक प्रतिनिधित्व की रहेगी, जिसमें एकाकी हस्तांतरित मत-प्रणाली को आधार माना जायगा।

प्रारम्भ में मुस्लिम लीग के नेता मि० जिन्ना ने केबिनेट-मिशन के प्रस्तावों को ठीक समझा और उन्होंने उनमें पाकिस्तान को बीज रूप में देखा। पर पीछे जाकर मुस्लिम लीग और उसके नेता मि० जिन्ना ने उन्हें अस्वीकृत कर दिया। २६ जुलाई सन् १९४६ ई० में बम्बई में लीग की जो बैठक हुई, उसमें एक प्रस्ताव पास कर केबिनेट-मिशन की दीर्घ और अल्पकालीन दोनों प्रकार की योजनाओं को अस्वीकृत कर दिया। इतना ही नहीं उसने अपनी इसी बैठक में पाकिस्तान के उद्देश्य की सिद्धी के लिये-सीधी कार्यवाही की नीति का अनुसरण करने का निश्चय किया। भविष्य में होने वाली घटनाओं का कुछ संकेत जिम्मेदार मुस्लिम लीगी नेताओं के भाषणों से मिल सकता था। उदाहरण के लिए मुस्लिम लीग सभा के एक सदस्य सर फिरोज़ खाँ नून ने

कहा था:—

"We are on the threshold of a great tragedy, because neither Hindus nor the British realize the depth of our feelings......Even if we have to die fighting we shall see that our children will never be slaves of Akhand Hindustan......If the British Cabinet Mission in conspiracy with Banias leaves India with a piece of paper signed between them for peace in this country, that will be as short-lived as the one Mr. Chamberlain negotiated with Hitler at Munich. If Britain puts us under a Hindu raj, let us tell Britain that the destruction and havoc that the Muslims will do in this country will put into the shade what Chengiz Khan did."

अर्थात्, "हम एक बड़े संकट के द्वार पर हैं। क्योंकि न तो हिन्दू और न अंग्रेज ही हमारी भावनाओं की गहराई को समझ रहे हैं। यदि हमें लड़ते लड़ते मर भी जाना पड़े तो भी हम इस बात का ध्यान रक्खेंगे कि हमारे बच्चे कभी अखंड हिन्दुस्तान के गुलाम न हों। यदि ब्रिटिश मंत्रिमंडल मिशन बनियों के साथ साज़िश करके देश की शान्ति के लिए केवल उन दोनों के हस्ताक्षरवाला एक कागज़ का टुकड़ा छोड़ जाय, तो वह शान्ति उतनी ही अल्पस्थायी होगी जितनी कि मि० चेम्बरलेन के द्वारा म्यूनिच मे हिटलर के साथ की गई संधि। यदि ब्रिटेन हमें एक हिन्दू राज्य के अधीन रखता है तो हम ब्रिटेन से कह देना चाहते हैं कि मुसलमान लोग इस देश में जो सर्वनाश और विध्वंस मचायेंगे, उसके सामने चंगेजखां के द्वारा किया गया विध्वंस भी फीका

पड़ जायगा।"

श्री जिन्ना ने अपने व्याख्यान में लीग की सीधी कार्यवाही का समर्थन करते हुए कहा था:—

"That the time has now come for the Muslim nation to resort to direct action to achieve Pakistan."

अर्थात्, "अब समय आगया है कि पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए मुस्लिम राष्ट्र सीधी कार्यवाही को अंगीकार करे।"

आगे चलकर मि० जिन्ना ने फिर कहा:—

"By this resolution recommending direct action, the League was bidding "good by" to constitutional methods, the direct action was not to get out of the slavery under the British but against "the contemplated future of caste-Hindu domiation."

अर्थात् "यह प्रस्ताव, जिसमें सीधी कार्यवाही की सिफ़ारिश की गई है, उसके अनुसार लीग आन्दोलन की सारी वैधानिक पद्धतियों से अखीरी दुआ सलाम कर रही है। सीधी कार्यवाही का उद्देश्य केवल ब्रिटिश की गुलामी से मुक्त होना ही नहीं है, वरन् सवर्ण हिन्दुओं की गुलामी से भी छुटकारा पाना है।" इसी प्रकार के विचार अन्य मुस्लिम नेताओं ने भी प्रकट किये थे। मि० सोहरावर्दी ने कहा था कि मुसलमान "मृत राष्ट्र नहीं है और उनके द्वारा जो प्रतिरोध होगा वह केवल शब्दों द्वारा न होगा।" बम्बई के मि० इस्माइल चुन्दरीगर ने बड़े जोश के साथ यह प्रकट किया था कि ब्रिटिश को यह कोई अधिकार नहीं है कि वह मुसलमानों को ऐसे लोगों के आधीन करे, जिनपर उन्होंने सैकड़ों वर्षों

तक राज्य किया था। मुहम्मद इस्माइल ने यह घोषित किया कि भारतीय मुसलमान 'जीहाद' अर्थात् 'पवित्र युद्ध' के लिए कर्म-क्षेत्र में उतर रहे हैं। शौकत हैयातखाँ ने कहा कि मुसलमानों को अगर अवसर दिया जाय तो वे अपनी वीरता के हाथ दिखाने के लिए तैयार हैं। मुस्लिम लीग के अप्रेल मास १९४२ के अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया था:—

"The Muslim nation will never submit to any constitution for a United India and will never participate in any single constitution making machinery set up for the purpose."

It demanded that the zones comprising Bengal and Assam in the North-East and the Punjab, the N. W. Frontier Province, Sindh and Baluchistan in the North-west of India......where the Muslims are in a dominant majority, be constituted into a sovereign State"; that "two separate constitution making bodies be set up by the peoples of Pakistan and Hindustan for the purpose of framing their respective constitution. The League promised its co-operation in the formation of an Interim Government at the centre only when its main demands were conceded."

अर्थात् मुस्लिम राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र के किसी विधान को स्वीकार न करेगा और न वह इस उद्देश्य के लिए बनाए हुए किसी विधान-तन्त्र में सहयोग देगा। उसका यह दावा है कि बंगाल, आसाम, पंजाब,

सीमाप्रान्त, सिंध, बिलोचिस्तान आदि प्रान्तों में, जहां मुस्लिम बहुमत है, एक पूर्ण प्रभुता प्राप्त मुस्लिम राज्य का संगठन किया जाय और पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के दो भिन्न विधानों को बनाने के लिए दो विभिन्न विधान सभाओं का निर्माण किया जाय।

केबिनेट मिशन और अन्तर्कालीन सरकार

केबिनेट-मिशन ने अपने वक्तव्य में भारतवर्ष में अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना के लिए उत्सुकता प्रकट की। मि० जिन्ना इस बात पर ज़ोर देते रहे कि अन्तर्कालीन सरकार के संगठन में हिन्दू और मुसलमानों की संख्या बराबर रहे। उन्होंने १२ जून को वाइसरॉय को जो पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया था कि केबिनेट मिशन के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए यह सबसे अधिक आवश्यक है कि अन्तर्कालीन सरकार में हिन्दू और मुसलमानों की संख्या में समता (Parity) का सिद्धान्त स्वीकार किया जाय। इसके सिवा केबिनेट मिशन की योजना स्वीकार करने के लिए मुस्लिम लीग अपना अन्तिम निर्णय प्रकट नहीं कर सकती।

कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद ने १६ जून को वाइसरॉय को जो पत्र लिखा उसमें उन्होंने समता (Parity) के सिद्धान्त का विरोध किया। उन्होंने अपने पत्र में लिखा था:—

"My committee regret that they are unable to accept your suggestions for the formation of the Provisional National Government. These tentative suggestions emphasise the principle of "Parity" to which we have been and are entirely opposed. In the composition of the cabinet suggested by you there is "parity" between the Hindus including the scheduled castes and the Muslim League, that is the number of the caste Hindus is actually less than the nominees of the Muslim League. The position thus is worse than it was in June 1945 at Simla, where, according to your declaration then, there was to be "parity" between caste Hindus and Muslims, leaving additional seats for the scheduled caste Hindus. The Muslim seats then were not reserved for Muslim League only but could include non-League Muslims. The present proposal thus puts the Hindus in a very unfair position and at the same time eliminates the non-League Muslims. My committee are not prepared to accept any such proposal. Indeed we have stated repeatedly we

are opposed to "parity" in any shape or form.

अर्थात् "मेरी कमेटी इस बात पर दुःख प्रकट करती है कि वह काम चलाऊ राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने के लिये, आपके सुझाव स्वीकृत करने में असमर्थ है। ये प्रयोगात्मक सुझाव 'सम संख्या' के प्रतिनिधित्व पर जोर देते हैं, जिनके कि हम पूर्णतया विरोधी हैं। आपके सुझाव के मुताबिक मन्त्रिमंडल के निर्माण में परिगणित-जातियां और हिन्दुओं की सम संख्या मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के बराबर रक्खी गई है अर्थात् सवर्ण हिन्दुओं की संख्या मुस्लिम लीग के मनोनीत सदस्यों से भी कम रक्खी गई है। यह स्थिति १६४५ के जून मास की स्थिति से भी खराब है, जिसमें आपने यह घोषणा की थी कि सवर्ण हिन्दू और मुसलमानों के बीच समसंख्या "Parity" होनी चाहिए और अतिरिक्त स्थान परिगणित सवर्ण हिन्दुओं (Scheduled caste Hindus) के लिए छोड़ देना चाहिए। उस समय की योजना में मुस्लिमों के स्थान (Seats) केवल मुस्लिम लीग ही के लिए रक्षित नहीं रक्खे गए थे, पर उनमें गैर-लीगी मुसलमान भी शामिल किये गए थे।"

इसी पत्र में आगे चलकर मौलाना साहिब ने यह प्रकट किया कि कमेटी की राय में मिलीजुली सरकार (Coalition Government) की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसका दृष्टिकोण और कार्य-क्रम (Programme) समान रहे, इसके अतिरिक्त मौलाना साहिब ने अपने पत्र में गुटबाजी (Grouping) का विरोध करते हुए यह प्रकट किया कि देश का बहुत बड़ा जन समाज इस प्रकार की गुटबंदी (Grouping) के खिलाफ़ है और वह इसपर अपना तीव्र क्रोध प्रकट कर रहा है। सीमाप्रान्त और आसाम ने इस प्रकार की अनिवार्य गुट-बाजी के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई है। सिक्ख इस गुट-बाजी में आपने आप को अकेला पाते हैं और उनमें इसके खिलाफ़ भार आन्दोलन उठ रहा है। सिक्ख लोग पंजाब में अल्प-संख्यक होने

के कारण इस गुटबाजी के कारण बहुत ही निःसहाय हो जावेंगे। हम भी उनके इस विरोध के साथ सहानुभूति रखते हैं। क्योंकि हम खुद भी इस प्रकार की प्रान्तों की गुट-बाजी को अपने मौलिक सिद्धान्तों के ख़िलाफ समझते हैं।"

मौलाना आज़ाद ने यूरोपियनों को दिये जाने वाले प्रतिनिधित्व के विशेषाधिकारों का भी विरोध किया।

इस प्रकार पत्र व्यवहार और वादानुवाद के होते हुए भी कांग्रेस और लीग एक मत न हो सकी और तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड वेवल ने इन दोनों महान् राजनैतिक दलों में समझौता न होने के कारण अपनी असफलता की घोषणा की और इस सफलता की सारी जिम्मेदारी अपने सिर पर ली। १५ जून को वाइसरॉय ने श्री जिन्ना को यह सूचित किया कि कांग्रेस प्रतिनिधियों के साथ अन्तर्कालीन सरकार के निर्माण में उनकी जो बातचीत हो रही थी वह असफल होगई है और वे इस सम्बन्ध में कल अपना वक्तव्य प्रकाशित कर रहे हैं।

१५ जून का वाइसरॉय ने मौलाना आज़ाद को जो पत्र लिखा उसमें उन्होंने यह प्रकट किया कि:—"हम भारतीय स्वाधीनता के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए हर सम्भव उपाय को काम में ले रहे हैं। हमने यह पहिले ही प्रकट कर दिया है कि सबसे पहिले भारतवासियों के प्रतिनिधियों के द्वारा नये विधान बनने की आवश्यकता है।"

"केबिनेट मंत्रि-मंडल और मैं गुट-बाजी के सिद्धान्त के सम्बन्ध में आपकी जो आपत्तियां हैं, उनसे सभी परिचित हैं, मैं आप पर यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि १६ मई के केबिनेट-मिशन के वक्तव्य में प्रान्तों की गुटबाजी को अनिवार्य नहीं रक्खा गया है। उसने इस बात को प्रान्तों के प्रतिनिधियों के निर्णय पर छोड़ा है, हां, उसमें जो व्यवस्था रक्खी गई है वह यह है कि कुछ विशिष्ट प्रान्तों के प्रतिनिधि गण अपने

वर्गगत रूप में विचार-विमर्श करने के लिए मिलें और वे यह निर्णय करें कि वे अपने गुट बनाना चाहते हैं या नहीं। व्यक्तिगत प्रान्तों को इतना होने पर भी यह स्वतन्त्रता रहेगी कि वे चाहें तो गुटबाजी से अपने आपको अलग करलें।"

जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है अन्तर्कालीन सरकार के निर्माण के सम्बन्ध में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में कोई समझौता न हो सका। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश शासकों ने बीच में हस्तक्षेप कर अपना निर्णय १६ जून को दे दिया। उनके द्वारा प्रस्तावित अन्तर्कालीन सरकार के निर्माण में पांच कॉंग्रेस के प्रतिनिधि, पाँच मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि और चार अल्पसंख्यकों (Minorities) के प्रतिनिधि रक्खे गये। अल्प सख्यकको में सिक्ख, ईसाई, हरिजन और पारसी का समावेश था। हरिजनों का प्रतिनिधि कांग्रेस का प्रतिनिधि मान लिया गया। इस प्रकार इस अन्तर्कालीन सरकार में कांग्रेस के छः प्रतिनिधि रक्खे गये।

अन्तर्कालीन सरकार के इस प्रस्तावित निर्माण का चारों ओर से घोर विरोध होने लगा। २४ जून को कांग्रेस ने इस योजना का बहिष्कार कर दिया, पर उसने संविधान सभा में सहयोग देना स्वीकार कर लिया। कांग्रेस की कार्य-समिति ने अपने २६ जून के प्रस्ताव में केबिनेट मिशन की योजना पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट घोषणा की कि कांग्रेस का ध्येय तुरन्त पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति करना है और इसके लिये मिशन की योजना पर्याप्त नहीं है। कांग्रेस समिति के उक्त प्रस्ताव में प्रस्तावित संविधान सभा में प्रवेश करने का निर्णय इस उद्देश्य से किया गया कि उसमें जाकर स्वतन्त्र और संयुक्त जनतांत्रिक भारतवर्ष के लिये संविधान बनाया जाय। इस प्रस्ताव में यह भी साफ़ कर दिया गया कि क़ानूनी परामर्शों से अनुमोदित मिशन की योजना की अपनी व्याख्या को लेकर कांग्रेस संविधान सभा में प्रवेश कर रही है और वह

प्रान्तों की अनिवार्य गुटबन्दी को स्वीकार करने के लिये तैय्यार नहीं है।

इस घोषणा के बाद केबिनेट मिशन और वाइसरॉय ने अन्तर्कालीन धात्री सरकार (Interim Car:taker Government) का निर्माण किया, जिसमें सरकारी अधिकारी ही रक्खे गये।

२६ जून को केबिनेट मिशन भारत से रवाना होगया। इसके बाद कांग्रेस और लीगियों में कशमकश चलती रही। देश में साम्प्रदायिक विद्वेष की आग और भी जोर से भड़कने लगी। मुस्लिम लीग ने अपनी सीधी कार्यवाही का कार्यक्रम भयंकर रूप से आरंभ कर दिया। इससे कलकत्ते और बंगाल में जैसी खून खराबी हुई, उसका विस्तृत उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। बिहार में भी यह आग जोरों से भड़की। मुस्लिम लीग की आक्रमणात्मक नीति का जोरशोर से प्रयोग होने लगा। इससे साधारण जनता ही क्या, पर सरदार पटेल जैसे गांधीवादी नेता भी विचलित हो गये और उन्होंने मेरठ कांग्रेस के अपने भाषण में बड़े जोरदार शब्दों में कहा कि तलवार का जवाब तलवार से दिया जायगा।

कहने का भाव यह है कि देश में प्रतिक्रियावादी शक्तियों और अराजकता का दौरा दौरा होगया। इससे ब्रिटिश सरकार ने राजनैतिक समझौता करने में फिर से उत्सुकता दिखलाई। ईसवी सन् १९४६ के अगस्त मास में पंडित नेहरू के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार ने एक नवीन अन्तर्कालीन सरकार का निर्माण किया। इसमें मुसलिम लीग का सहयोग न था। अक्टूबर मास में मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि भी इसमें शामिल होगये। यह नवीन अन्तर्कालीन सरकार मिल जुलकर काम करने में सफल न हो सकी। मुस्लिम लीग के प्रतिनिधिगण इस सरकार को सहयोग देने के बजाय उसके पथ में तरह तरह के अड़ंगे लगाने लगे। ऐसा मालूम होने लगा मानों यह नवीन सरकार

थोड़े ही समय में अपना अन्तिम श्वास लेकर काल कवलित हो जायगी।

ईस्वी सन् १९४६ के दिसम्बर मास में ब्रिटिश सरकार ने लन्दन में भारतीय नेताओं का एक सम्मेलन किया। इसमें एटली, वेवल, नेहरू और जिन्ना ने भी भाग लिया। पर इस सम्मेलन में भी भारतीय गति-रोध का कोई हल नहीं निकला। इस सम्मेलन में यह घोषित किया गया कि "अगर ऐसी संविधान सभा, जिसमें भारतीय बहुजन समाज का प्रति-निधित्व नहीं है, कोई संविधान बनावे तो श्रीमान् सम्राट् की सरकार उसे देश के अनिच्छुक हिस्सों पर जबरदस्ती लागू नहीं कर सकती"।

इस घोषणा से तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की देश को विभाजन करने की अप्रत्यक्ष मनोवृत्ति पर प्रकाश गिरता है। इससे मुस्लिम लीग की अड़ंगा लगाने की नीति को बल मिला।

पर इसके साथ ही भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन ने भी जोर पकड़ा। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने भी ब्रिटिश सरकार को भारतीय नेताओं के साथ समझौता करने के लिये बाध्य किया।

ईस्वी सन् १९४७ के फरवरी मास में ब्रिटिश सरकार ने यह निर्णय किया कि भारतीय समस्या का शीघ्रातिशीघ्र हल किया जाय। तत्कालीन वायसरॉय लार्ड वेवल को वापस बुला लिया गया और उनके स्थान पर लॉर्ड माउन्टबेटन को हिन्दुस्तान का वायसरॉय और गवर्नर जनरल बनाकर भेजा। लार्ड माउन्ट बेटन निःसन्देह लार्ड वेवल से अधिक दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ और विकट परिस्थिति को संभालने में दक्ष थे। उन्होंने भारतीय नेताओं से अधिक से अधिक अपना आत्मियता का सम्बन्ध बढ़ाया। गांधीजी, नेहरूजी और सरदार पटेल पर उन्होंने अपने सौजन्य और राजनीतिज्ञता की छाप डाली। इसी बीच में ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मन्त्री मिस्टर एटली ने २० फरवरी को

यह घोषणा की:—

"His Majesty's Government wish to make it clear that it is their definite intention to take the necessary steps to effect the transference of power into responsible Indian hands by a date not later than June, 1948."

अर्थात्, "श्रीमान् सम्राट् की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि वह ज़िम्मेदार भारतीय हाथों में इस्वी सन् १९४८ के जून मास तक राज्यसत्ता का हस्तांतरण कर देने के लिये आवश्यक कदम उठायेगी।"

लॉर्ड माउन्टबेटन ने भारत में पदार्पण करते ही यह प्रकट किया कि वे यहां राज्यसता हस्तान्तर करने आये हैं, और वे इसे पूरा करके ही वापिस लौटेंगे। उन्होंने केबिनेटमिशन की योजना को विकसित कर अपनी योजना बनाई, जो इस्वी सन् १९४७ के जून मास में प्रकाशित की गई। यह योजना ईस्वी १९४७ के अगस्त मास में अमल में आने वाली थी। इस योजना में भारत के विभाजन की कार्य-प्रणाली और भारत को शीघ्रातिशीघ्र राज्यसत्ता हस्तान्तरण करने की योजना सम्मिलित थी। माउन्ट बेटन की योजना को भारतवर्ष के दोनों राजनैतिक प्रमुख दलों ने स्वीकार कर लिया। यद्यपि पं० नेहरू ने इस योजना पर प्रसन्नता प्रकट न की जैसा कि उन्होंने उस समय कहा था:—

"It is with no joy in my heart that I commend these proposals."

अर्थात् "मैं इन प्रस्तावों की सिफ़ारिश प्रसन्नता के साथ नहीं कर रहा हूँ।" मि० जिन्ना ने इस योजना का ज़िक्र करते हुए कहा था कि:—

"We can not say or feel that we are satisfied

or that we agree with some of the matters dealt with by the plan."

अर्थात्, "हम यह नहीं कह सकते कि हम योजना में कथित कुछ विषयों से हम सन्तुष्ट या सहमत हैं।

सरदार बलदेव सिंह ने सिक्खों की ओर से कहा कि:—

"It would be untrue if I were to say that we are altogether happy. The British plan does not please every body, not Sikh community any way.

अर्थात्, "अगर मैं यह कहूँ कि हम इस योजना से सन्तुष्ट हैं तो यह गलत होगा। ब्रिटिश योजना प्रत्येक को सन्तुष्ट नहीं करती। वह सिक्ख समाज को भी किसी तरह सन्तुष्ट नहीं करती।

उग्र दल के भारतीय राजनीतिज्ञों ने माउन्ट बेटन योजना को निराशा जनक बतलाया था। कम्यूनिस्ट पार्टी ने अपने वक्तव्य में कहा था:—

"The new British plan for the dismemberment of India is a desperate move against the freedom movement."

अर्थात्, "भारत के अंग-विच्छेद के सम्बन्ध की ब्रिटिश योजना स्वतन्त्रता के आन्दोलन के विरुद्ध एक गहरी चाल थी।"

ब्रिटेन के प्रायः सभी राजनैतिक दलों ने इस योजना का स्वागत किया था। चर्चिल ने, जो कि भारतीय आकांक्षाओं के हमेशा विरोधी रहे हैं, इस योजना की बड़ी सराहना की और उन्होंने तत्कालीन प्राइममिनिस्टर मि० एटली का माउन्ट बेटन को भारतवर्ष का वायसरॉय बनाने के उपलक्ष्य में अभिनन्दन किया। लंदन के सुप्रसिद्ध पत्र 'टाईम्स' ने लिखा कि माउन्ट बेटन की योजना का इंगलैंड के सभी दलों द्वारा

जैसा भव्य स्वागत हुआ है, उससे प्राइमिनिस्टर के गालों में आनन्द के कारण सुर्खी आ गई है।

इङ्गलैन्ड के उदार दल के सुप्रसिद्ध पत्र 'मैनचेस्टर गार्डियन' ने लिखा था कि जब से पार्लियामेंट का आरम्भ हुआ है तब से चर्चिल और एटली कभी इतने एकमत न हुए, जितने कि इस समय हुए हैं। लंदन के 'डेली हेरल्ड' पत्र ने लिखा था कि लंदन नगर उक्त योजना को अपना आशीर्वाद दे रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय संसार में भी इस योजना का अच्छा स्वागत हुआ। अमेरिका और अन्य देशों के समाचार पत्रों ने इसका स्वागत किया। हाँ, उग्र और कम्यूनिस्ट समाचार पत्रों ने इसका विरोध किया। राइटर की एजन्सी ने उस समय जो तार भेजा था उसमें कहा गया था:—

"Left wing newspapers have been unfavourable in all countries."

अर्थात्, सब देशों के उग्रदल के समाचार पत्र उस योजना के प्रतिकूल हैं। सोवियेट समाचार पत्रों ने यह प्रकट किया था कि ब्रिटेन भारत वर्ष को जो स्वतन्त्रता दे रहा है वह नाम मात्र की असत्य स्वतन्त्रता है।

यद्यपि पं० जवाहरलाल नेहरू को इस योजना से विशेष सन्तोष न हुआ था, पर परिस्थितियों का विचार कर सामूहिक रूप से भारतीय नेताओं ने इसे स्वीकार कर लिया। महात्मा गांधी ने भी इस योजना को कार्यान्वित करने की राय दी।

इस योजना के अनुसार देश का जिस प्रकार विभाजन हुआ, उस पर आगे चलकर हम प्रकाश डालेंगे। इस योजना को जल्दी से जल्दी कार्यान्वित करने के लिये। १५ अगस्त १९४७ को इस योजना के अनुसार भारत और पाकिस्तान के दो नए अधि राज्य (Dominions)

घोषित कर दिये गये।

भारतवर्ष के स्वतन्त्र अधिराज्य की स्थापना से देश में चारों ओर आनन्द और उत्साह का साम्राज्य छा गया। सारे संसार ने इस महान् दिवस के उपलक्ष्य में भारतवर्ष का हार्दिक अभिनन्दन किया। अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस आदि संसार प्रायः सभी राष्ट्रों के शासकों ने तार भेज कर भारत का अभिनन्दन किया। संसार के कोने कोने से इस अवसर पर भारत के प्राइममिनिस्टर पं० जवाहरलाल नेहरू के पास हजारों की संख्या में बधाई के तार पहुँचे।

भारतवर्ष मे भी चारों ओर अद्भुत् आनन्द, उत्साह और उमंग का समुद्र उमड़ पड़ा। स्थान-स्थान पर हजारों लाखों मनुष्यों ने मिलकर अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए हर्षोल्लास किया। भारत के इतिहास में सैकड़ों वर्षों के बाद यह महान् अवसर आया और इसने अंतर्राष्ट्रीय संसार में भारत को अपने योग्य स्थान पर बैठाया।

संविधान सभा का संगठन

भारत वर्ष के लिए एक सर्व सामान्य संविधान बनाने के लिए भारतीय प्रतिनिधियों की एक संविधान सभा के निर्माण के लिए सबसे पहले पं० जवाहरलाल नेहरू ने आवाज उठाई थी। ब्रिटिश सरकार की केबिनेट मिशन ने भी इसकी आवश्यकता का अनुभव किया। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भारतीय स्वतन्त्रता के बिल (Indian Independence Bill) के द्वितीय वाचन के समय ब्रिटिश प्राइममिनिस्टर मि० एटली ने कहा था:—

"इस बिल का उद्देश्य केवल ब्रिटिश सत्ता का त्याग ही नहीं है, वरन् इसका उद्देश्य भारत को स्वातन्त्रता प्राप्त करने में सहायता देने का ब्रिटिश का जो महान् उद्देश्य है, उसकी सिद्धि करना है।" आगे चल कर मि० एटली ने फिर कहा:-"इस बिल का उद्देश्य पूर्ववर्ती बिलों से भिन्न है। इस बिल के द्वारा भारतवर्ष के प्रतिनिधियों को वह अधिकार प्राप्त होगा, जिसके द्वारा वे अपना संविधान आप बना सकें और संक्रमण काल की कठिनाइयों को पार कर सकें।" केबिनेट मिशन ने भी संविधान सभा की योजना रक्खी। उसके अनुसार इस्वी सन् १६४६ में संविधान सभा का संगठन हुआ, पर उस समय इस सभा को पूर्ण प्रभुता (Sovereignty) प्राप्त न थी, उसका कार्य-क्षेत्र आधारभूत सिद्धान्तों (Basic principles) और कार्य विधि (Procedure) तक ही सीमित था। इस्वी सन् १६४७ के भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट ने इसे पूर्ण प्रभुता के अधिकार प्रदान किये और उसे तमाम प्रतिबन्धों से मुक्त कर दिया। पं. जवाहरलाल नेहरु ने इसके उद्देश्य प्रकट करते हुए कहा:—

"This constituent Assembly declares its firm and solemn resolve to proclaim India as an Independent Sovereign Republic and to draw up for her future governance a Constitution;"

अर्थात् यह संविधान सभा अपने दृढ़ और पवित्र निश्चय के साथ भारत को स्वतन्त्र और पूर्णप्रभुताप्राप्त जन-तन्त्र घोषित करती है और उसके भावी शासन के लिए एक संविधान बनाने का प्रस्ताव करती है। केबिनेट मीशन ने भी संविधान-सभा के उद्देश्यों और संगठन के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव रक्खे, वे निम्न लिखित थे।

१—विधान-सभा में ३८६ सदस्य होंगे। इसमें से २९२ सदस्य ब्रिटिश भारत के प्रान्तों से चुने जायेंगे। इनका चुनाव सीधा जनता द्वारा न होगा। चुनाव का आधार साम्प्रदायिक होगा, जिसके अनुसार प्रान्तीय सभाओं में जो मुस्लिम, सिख और अन्य गुट हैं, उन्हें आबादी के अनुसार सीटें दी जायेंगी। देशी राज्यों को ९३ सीटें दी जायेंगी। देशी राज्यों के प्रतिनिधि कैसे चुने जायेंगे, यह आपस में बातचीत करके तय किया जायगा।

२—प्रान्त तीन गुटों में बांटे जायेंगे।

क—वह गुट जिसमें हिन्दू बहुमत के इलाके होंगे; (मद्रास, बम्बई, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त और उड़ीसा)।

ख—वह गुट जिसमें उत्तर-पश्चिम का मुस्लिम बहुसंख्यक इलाका होगा, (अर्थात् पंजाब, सीमान्त-प्रदेश, सिंध और बिलोचिस्तान)।

ग—एक दूसरा गुट उत्तर-पूर्वी मुस्लिम बहुसंख्यक इलाकों का होगा (बंगाल और आसाम). इन गुटों के प्रतिनिधि अलग अलग मिलकर तय करेंगे कि इस गुट के सूबों का विधान क्या होगा। नया विधान बन जाने पर और उसके अनुसार पहला चुनाव हो जाने पर ही प्रान्तो को

अधिकार होगा कि वे गुट के बाहर निकल सकें।

६—अल्प संख्यक लोगों के लिये एक सलाहकार समिति होगी।

७—यूनियन की संविधान सभा तय करेगी कि यूनियन का संविधान क्या होगा। जिन प्रस्तावों में बड़ी साम्प्रदायिक समस्याओं का उल्लेख होगा, उन्हें पास करने के लिये मौजूदा प्रतिनिधियों का बहुमत और दोनों जमातों में से दोनों का वोट देना जरूरी होगा।

उपरोक्त सुझावों के अनुसार संविधान सभा का संगठन हुआ, जिसमें पहले पहल कॉंग्रेस और लीग दोनों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। पीछे जाकर, पाकिस्तान बन जाने पर, इसमें कॉंग्रेस का प्रतिनिधित्व मात्र रहा।

इसके उद्देश्य भी बहुत व्यापक होगये, जिनका उल्लेख पं० जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा के उद्देशों में किया था।

इस संविधान सभा के प्रथम अध्यक्ष बिहार के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध नेता डा० सच्चिदानन्दसिंह थे। पीछे जाकर इसके अध्यक्ष पद को भारत के अत्यन्त लोकप्रिय नेता डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने सुशोभित किया।

इस संविधान सभा ने विभिन्न वैधानिक समस्याओं को हल करने के लिए विभिन कमेटियाँ कायम कीं। इन कमेटियों ने विचार विमर्श करने के बाद अपनी रिपोर्टें संविधान सभा में पेश कीं और उन्ही रिपोर्टों के आधार पर विधान का मसौदा बनाने का निश्चय किया गया। ईस्वी १९४७ के २९ अगस्त को संविधान सभा ने एक प्रस्ताव पास कर संविधान का मसौदा तैयार करनेवाली (Drafting committee) कमेटी नियुक्त की।

विभिन्न उपसमितियों द्वारा प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर संविधान सभा ने जो निर्णय किए उन्हीं को आधारभूत रखकर उक्त ड्राफ्टिंग कमेटी

को भारत वर्ष के लिए संविधान तैयार करने का काम सौंपा गया। इस कमेटी के द्वारा संविधान का जो मस्विदा या प्रारूप बनाया गया उसमें तीन सौ पन्द्रह धारायें (Articles) और आठ परिशिष्ट थे। यह संविधान सभा के सामने रक्खा गया और सदस्यों द्वारा इस पर काफी विचार-विमर्श और वादानुवाद होने के बाद कई संशोधनों के साथ यह पास हुआ। इस्वी सन् १९४९ के २६ नवम्बर को यह अन्तिम संविधान के रूपमें प्रकाशित हुआ। इस्वी सन् १९५० की २६ जनवरी से राज्य शासन में इसका व्यावहार आरम्भ हो गया। भारतीय राज्यशासन का यह संविधान मूलभूत जीवन है और उसी के आधार पर सारे शासन की नींव रक्खी गई है।

भारत का यह संविधान संसार के अन्य सब राष्ट्रों के संविधानों से बड़ा है। इसमें २२ अध्याय और ८ परिशिष्ट हैं। इस संविधान में भारत को एक पूर्ण प्रभुताप्राप्त प्रजान्तत्रीय जनतन्त्र (Sovereign Democratic Republic.) घोषित किया गया है। इसका स्वरूप जनतन्त्रात्मक है। न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व आदि महान् तत्व, जो प्रजातन्त्र के खास लक्षण हैं, इस संविधान के लिये जीवनभूत माने गए हैं। इस संविधान के द्वारा जो राज्यसंस्था कायम की गई है, उसकी आधारभूत नींव प्रजातन्त्र या लोक राज्य के महान् सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। भारतवर्ष के इस लोक-तन्त्रात्मक राज्य का संचालन वयस्क मताधिकार, मौलिक मानव-अधिकार और स्वतन्त्र न्याय-पद्धति आदि महान् सिद्धान्तों के आधार से किया जाता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble) में यह स्पष्टतया घोषित कर दिया गया है कि उक्त संविधान भारतीय लोगों के द्वारा प्रस्तावित किया गया है। संविधान सभा ने अपने उद्देश्यजन्य प्रस्ताव (objectives Resolution) द्वारा यह स्पष्टतया प्रकट कर दिया है कि केन्द्रीय सरकार और प्रान्तों की पूर्णप्रभुता का आधार जनता पर रहेगा। कहने

का तात्पर्य यह है कि लोगों के द्वारा प्राप्त सत्ता पर यहां के जनतन्त्र का आधार रहेगा और उसका संचालन वैधानिक सरकार के द्वारा किया जायगा।

यह संविधान केन्द्र (centre) और राज्यों (States) में संसदीय शासन (Parliamentary Government) प्रस्थापित करेगा। इसमें एक वैधानिक राष्ट्रपति होगा जो अपने मन्त्रिमंडल के परामर्श पर कार्य करेगा। राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा।

मंत्रि मंडल में उस दल या संयुक्त दल के नेता रहेंगे, जिस दल को धारासभा का बहुमत प्राप्त होगा।

मंत्रिमंडल में प्रधान मंत्री की बड़ी अधिकारयुक्त स्थिति रहेगी। वह अपने मंत्रियों को नियुक्त कर सकता है और उनमें अधिकार विभाजन कर सकता है। वह किसी मंत्री को पदच्युत कर सकता है। कहने का भाव यह है कि मंत्रिमंडल राज्य की नौका का संचालक है।

मंत्रि मंडल का उत्तरदायित्व सामूहिक होगा। वह सामूहिक रूप ही से कार्य करेगा।

मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान में जनता के मौलिक-अधिकारों पर बड़ा जोर दिया गया है। ईस्वी सन् १६३५ का भारत सरकार के अधिनियम (Government of India Act) में मौलिक अधिकारों का समावेश न था। साईमन कमीशन और संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में संविधान पत्र में मौलिक अधिकारों को सम्मिलित करने का विरोध किया था। साईमन कमीशन ने लिखा था:—

"We are aware such provisions have been

inserted in many constitutions, notably in those of the European states formed after the war. Experience, how-ever, has not shown them to be of any practical value. Abstract declarations are useless, unless there exist the will and the means to make them effective."

अर्थात् हमें ज्ञात है कि इस प्रकार की व्यवस्थाएँ बहुत से संविधानों और खास कर उन राज्यों के संविधाने में सम्मिलित की गई है, जो राज्य युद्ध के बाद बने हैं। पर अनुभव ने उन्हें किसी व्यावहारिक उपयोग का नहीं पाया है। कोरी घोषणाएँ तब तक बेकाम रहती है जब तक कि उन्हे कार्यान्वित करने के लिए दृढ़ संकल्प और साधन उपस्थित न हों। इसके विपरीत दूसरा मत यह था कि संविधान पत्र में मौलिक अधिकारों का जोड़ा जाना जनहित की दृष्टि से आवश्यक है, क्योंकि ये राज्य के आधारभूत तत्व हैं। इनके द्वारा राज्य को अपने अधिकारों के प्रयोग में नैतिक मर्यादायें प्राप्त होती हैं। यह अधिकार मानव की भलाई और विकास के लिए आवश्यक हैं। जिस विधान मे इन अधिकारों की गारन्टी दी गई है उसे सभ्य संसार आदर की दृष्टि से देखता है। भारतीय संविधान ने भी इन अधिकारों को सम्मानपूर्ण स्थान दिया है। वे अधिकार ये हैं:—

१—समानाधिकार (Right of Equality)

२—स्वातन्त्र्य-अधिकार (Right of Freedom)

३—धर्म स्वातंत्र्य का अधिकार (Right to Freedom of Religion)

४—संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and Educational Rights)

५—सम्पत्ति का अधिकार (Right to property)

६—संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Right to Constitutional Remedies)

इन अधिकारों का विस्तृत विवेचन भारतीय संविधान में किया गया है। यह दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि हमारे शासकों और अधिकारियों द्वारा इन अधिकारों की कई बार अवहेलना हुई है, जिसकी आलोचना कई वक्त हाईकोर्टों के जजों को भी अपने फैसलों में करनी पड़ी है।

देश–विभाजन

देश-विभाजन की कल्पना पर हम गत अध्यायों में प्रकाश डाल चुके हैं। लंदन में एक साधारण मुस्लिम विद्यार्थी के द्वारा किस प्रकार पाकिस्तान की कल्पना का जन्म हुआ और पीछे मि० जिन्ना और मुस्लिम लीग के द्वारा किस प्रकार उसका विकास हुआ इस पर पहले काफी लिखा जा चुका है।

रूस के सर्वाधिकारी स्टालिन ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "Marxsim and the national and colonial question". में यह दिखलाया है कि किसी देश के सीमास्थित प्रान्तों को केन्द्र से अलग कर पूर्ण स्वायत्त शासन दे देने से उस देश को बाह्य आक्रमण का भय बढ़ जाता है और उसकी स्वतन्त्रता हमेशा के लिए खतरे में पड़ जाती है। कामरेड स्टालिन ने अपने उक्त ग्रन्थ में लिखा है कि:—

"The demand for the secession of the border regions from Russia as the form that should be given to the relations between the centre and the border regions must be rejected, not because it

is contrary to the very definition of the establishment of an alliance between the centre and the border regions, but primarily because it is fundementally opposed to the interests of the peoples both of the centre and the border regions."

अर्थात्, सीमाप्रान्तीय प्रदेशों की रशिया से जुदा होने की मांग ठुकरा देना चाहिए। इसका कारण यह है कि यह न केवल केन्द्रवर्ती शासन और सीमा प्रान्तीय शासन की मैत्री के विरुद्ध है वरन् यह केन्द्रवर्ती और सीमाप्रान्तीय प्रदेशों के हित के भी विरुद्ध है।"

हेरोल्ड लास्की ने भारत विभाजन के संबन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा था कि:—

"In the present world conditions you cannot have Balkanizaiion of India which complete sovereigenty of separate Muslim majority provinces as embodied in the Pakistan demand will mean."

"अर्थात्, संसार की वर्तमान परिस्थितियों में आप भारतवर्ष के बाल्कन प्रदेश की तरह टुकड़े-टुकड़े कर नहीं रह सकते। पाकिस्तान की मांग में अन्वित पूर्ण प्रभुता प्राप्त जुदे मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्तों को अलग करने का अर्थ भारत के टुकड़े करना है।

कहने का मतलब यह है कि संसार के विचारशील लोग किसी भी राष्ट्र के विभाजन को उसके लिए महान् अनर्थकारी समझते हैं। क्योंकि इससे देश की स्वतन्त्रता हमेशा के लिए खतरे में पड़ जाती है।

भारतवर्ष और द्विराष्ट्र-सिद्धान्त

मि० जिन्ना के 'द्विराष्ट्र-सिद्धान्त' पर पिछले पृष्ठों में प्रकाश डाला

जा चुका है। मि० जिन्ना ने मुस्लिमों की संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज और धर्म की भिन्नता पर जोर देते हुए मुस्लिमों के लिए हिन्दुओं से भिन्न राष्ट्र कायम करने के लिए घोर आन्दोलन किया और पाकिस्तान की स्थापना की। पर वास्तव में हिन्दू और मुस्लिम भिन्न भिन्न धर्म के अनुयायी होते हुए भी भिन्न राष्ट्र नहीं थे। भारतीय मुसलमानों की ६०% फीसदी जन संख्या में वे लोग हैं जो पहिले से हिन्दू थे, और जिनके पूर्वजों को राजनैतिक मजबूरियों के कारण इस्लाम धर्म स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा था। सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता प्रोफेसर खुदाबक्श ने लिखा है।

"Moreover, say what you will, a large number, in fact the largest portion of the Mohamedan population are Hindu converts to Islam." (quoted by Dr. S. Sinha in his some eminent Bihar contemporaries)".

अर्थात, आप चाहे जो कहें, पर मुसलमानों की अधिकांश संख्या-वास्तव में सबसे बड़ी संख्या-उन हिन्दुओं की है जो धर्म परिवर्तन कर इस्लाम धर्म के अनुयायी बना लिये गये थे।

पर इन सब ऐतिहासिक तथ्यों को एक तरफ रख कर मुस्लिम लीग और उसके नेता देश के विभाजन पर अड़े रहे और अन्त में देश का विभाजन हुआ, और उसके साथ ही देश में जो दुर्भाग्य पूर्ण जो घटनाएँ घटीं वे मानव इतिहास में सदैव के लिए कलंक रूपी मानी जावेगी! अब हम देश विभाजन की व्यवहारिक कार्य पद्धति पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक हैं।

देश-विभाजन की व्यवहारिक कार्य पद्धति

श्री जिन्ना ने पाकिस्तान सीमा की जो मनोसृष्टि की थी, उसमें

पंजाब, उत्तर-पश्चिमीय सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान, सिंध, बंगाल और आसाम का समावेश होता था। ईस्वी सन् १६४३ की २३ सितम्बर को मुस्लिम लीग के तत्कालीन सेक्रेटरी मि० लियाकतअली खाँ ने इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये थे। इसके दो वर्ष पश्चात् अर्थात् ६ नवम्बर ईस्वी सन् १६४५ को मि० जिन्ना ने अमेरिका के एसोसियेटेड प्रेस के संवाददाता को वक्तव्य देते हुए प्रकट किया था।

"Geographically Pakistan would embrace all of the north-west India, on the eastern side of India would be the other portion of Pakistan composed of Bengal and Assam provinces."

"अर्थात् भौगोलिक दृष्टि से पाकिस्तान में सारे उत्तर-पश्चिम हिन्दुस्तान का समावेश हो जाता है। भारतवर्ष के पूर्वीय भाग में पाकिस्तान का दूसरा हिस्सा होगा, जिसमें बंगाल और आसाम का समावेश होगा।"

मुस्लिम लीग विभाजन की उक्त योजना पर जोर देती रही। उसके नेताओं ने इस योजना के कार्यान्वित न होने पर भयंकर गृहयुद्ध की धमकियाँ दीं पर इसमें वे सफल न हो सके। पंजाब और बंगाल के हिन्दू बहुमत जिलों और मुस्लिम बहुमत जिलों को दो विभिन्न गुटों में बांट कर उक्त दो प्रान्तों के विभाजन की योजना कार्यान्वित करने के लिए तत्कालीन भारत सरकार ने ३० जून १६४७ को दो कमीशन मुकर्रर किये और भारत के दो प्रमुख राजनैतिक दलों के नेताओं की सलाह के अनुसार उनकी शर्तें निश्चित कर दीं।

पंजाब कमीशन में सर सिरिल रैडक्लिफ (अध्यक्ष), मि० जस्टिस दीन मोहम्मद, मि० जस्टिस मुहम्मद मुनीर, मि० जस्टिस मेहरचन्द महाजन, मि० जस्टिस तेजासिंह (तेजसिंह) सदस्य गण शामिल थे। जब

कि बंगाल कमीशन में अध्यक्ष महोदय और मि० जस्टिस बी० के० मुकर्जी, मि० जस्टिस सी० सी० विश्वास, मि० जस्टिस अबू सालेह मुहम्मद अकरम और मि० जस्टिस एस० ए० रहमान शरीक थे। उक्त दोनों सीमा कमीशनों को यह हिदायत दी गई थी कि वे एक दूसरे से लगे हुए मुस्लिम या गैर-मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों को निश्चित कर उसी आधार पर सीमाओं की रेखा खींचें। उन्हें यह भी आदेश दिया गया था कि ऐसा करने में वे दूसरी बातों का भी ध्यान रक्खें। इसके अतिरिक्त आसाम के सिलहट जिले के विवाद-ग्रस्त प्रदेश के संबंध में सर्व जनमत ग्रहण (Plebisicite) का परिणाम यदि उक्त जिले के पूर्वीय बंगाल में मिलाये जाने के पक्ष में हो तो बंगाल सीमा कमीशन को चाहिए कि वह सिलहट जिले मुस्लिम बहुमत वाले भागों तथा आसाम से लगे हुए जिलों के परस्पर मिले हुए मुस्लिम बहुमत वाले भागों का भी निर्धारण करे। इन कमीशनों को अपना निर्णय देने से पूर्व अनेक तथ्यों और परस्पर विरोधी विचारों के घने जंगल को पार करना पड़ा। प्रारम्भिक बैठकें हो जाने के बाद सीमा कमीशनों ने विभिन्न राजनैतिक संस्थाओं को अपनी मांगे और मत पेश करने के लिए निमंत्रित किया और पीछे से खुले इजलास में उनके दावों को सुना। भारत की राष्ट्रीय कॉंग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा और सिक्खों ने विभाजन के संबंध में अपने भिन्न भिन्न वक्तव्य दिए।

भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों के परस्पर विरोधी दावों और मांगों के कारण कमीशनों को निःसन्देह बड़ी जटिल समस्या का सामना करना पड़ा। बंगाल के अनेक प्रदेश विवाद का विषय बन गये थे। बंगाल के बारह जिलों के दो विभाग बिना किसी विशेष विवाद के गैर मुस्लिम बहुमत वाले और मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेश स्वीकार कर लिये गये थे। गैर मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों में मिदनापुर, बांकुर, हुगली, हावड़ा, और बर्दवान थे।

इसके वीपरीत मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों में चटगांव, नौआखाली टिपेरा, ढाका, मैमनसिंह, पबना, और बोगरा थे। इनके अतिरिक्त बंगाल के शेष पन्द्रह जिलों के लिए, जिनमें कलकत्ता भी शामिल था, विरोधी दलों ने अपने अपने दावे पेश किये। इसी तरह पंजाब के पांच भागों में से सारा लाहौर, मुलतान और जालन्धर तथा अंबाला डिविजन में रोपर तहसील का एक भाग झगड़े की जड़ बन गए।

स्वयं कमीशन के सदस्यों में ही मतभेद होने से कार्य और भी जटिल हो गया। सर सिरिल रैडक्लिफ ने गवर्नर जनरल को भेजी गई अपनी रिपोर्ट में कहा है कि:—

"सदस्यों में परस्पर इतना अधिक मतभेद है कि 'सीमा-निर्धारण' की समस्या का सर्वसम्मत हल प्राप्त करना असंभव है।" अन्यतथ्यों के अर्थ विषयक मतभेदों के कारण कमीशन के लिए सर्वमान्य हल निकालना असंभव हो गया। ऐसी परिस्थिति में कमीशनों के सदस्यों ने अंत में यह तय किया कि अध्यक्ष महोदय भारत स्वतन्त्रता एक्ट के अन्तर्गत स्वयं अपना निर्णय दें, जो उन्होंने १७ अगस्त १९४७ को प्रकट किया।

रैडक्लिफ़ महोदय का निर्णय

भारत और पाकिस्तान दोनों की सरकारोंने पहले ही उस निर्णय को अमल में लाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। चाहे फिर यह निर्णय कुछ भी हो। तदनुसार भारत और पाकिस्तान दोनों ने रैडक्लिफ महोदय के निर्णय को नियमानुसार क्रियान्वित करने का निश्चय किया। फिर भी दोनों में से एक भी इस निर्णय से सतुष्ट न हुआ। भारत सरकार के असंतुष्ट होने के विशेष कारण थे। इसलिये उसने घोषित किया कि "यह निर्णय असंतोषजनक और अन्याय पूर्ण होने के कारण

वह योग्य उपायों से उसकी शर्तों में संशोधन कराना चाहती है।" भारत सरकार का ता० ७ सितम्बर १९४७ का विशेष घोषणा-पत्र (Gazette Extraordinary.)]

सीमा-विभाजन के सम्बन्ध में स्वयं कमीशन के सदस्यों में मतभेद था। इससे कार्य और भी जटिल होगया। सर सिरिल रेडक्लिफ ने गवर्नर जनरल को अपनी जो रिपोर्ट भेजी, उसमें इस मतभेद का स्पष्ट उल्लेख था। कमीशन के कुछ सदस्यों का यह मत था कि कमीशन को आसाम का कोई भी मुस्लिम बहुमत वाला प्रदेश या ऐसा भूमि-खण्ड जो पूर्वीय बंगाल से लगा हुआ हो, आसाम से अलग कर पूर्वीय बंगाल में जोड़ देने का अधिकार-प्राप्त था। इस दृष्टिकोण का कारण यह था कि उन सदस्यों ने "आसाम से लगे हुए जिले" इन शब्दों का अर्थ लगाया, 'आसाम के वे जिले जो पूर्वीय बंगाल से जुड़े हुए हों।'

दूसरों का यह मत था कि आसाम के हिस्सों को उससे अलग कर पूर्वीय बंगाल में मिला देने का कमीशन को दिया गया अधिकार सिलहट जिले तथा उससे लगे हुए आसाम के अन्य परस्पर जुड़े हुए मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों (यदि कोई हों) तक ही सीमित था। अध्यक्ष महोदय इस दूसरे दृष्टिकोण से सहमत थे। बहुत वाद-विवाद के बाद अन्त में कमीशन ने यह निर्णय किया कि उसका काम सिलहट और उससे लगे हुए आसाम के जिलों को, मुस्लिम और गैरमुस्लिम बहुमत वाले (एक दूसरे से लगे हुए) प्रदेशों के आधार पर, पूर्वीय बंगाल और आसाम के बीच में बांट देना है।

सर सिरिल रेडक्लिफ का यह ख्याल था कि सिलहट का विभाजन करने के लिए कुछ भू-भागों को अदल-बदल होना आवश्यक है। इस लिए उन्होंने जिले के बीच से एक रेखा खींच दी और पूर्वीय बंगाल के

नये प्रान्त को इस रेखा के उत्तर और पश्चिम के प्रदेश देना निश्चित किया। फिर भी भारत और पाकिस्तान की सरकारें सिलहट जिले सम्बन्धी रैडक्लिफ निर्णय के अर्थ के बारे में सहमत नहीं हैं और यह मामला अभी तक संयुक्त सीमा-कमिशन के वाद-विवाद का विषय बना हुआ था। हाल ही में भारत सरकार ने इस निर्णय के अनुसार पाकिस्तान में गये हुए कुछ प्रदेश के वापस मिलने की मांग की है।

मुस्लिम लीग ने यूनियन और सब डिविजन के आधार पर दो नक्शे तैयार किये और भागीरथी तथा ब्राह्मणी नदियों को सीमा-रेखा मान लेने की मांग पेश की। वास्तव में उसने बर्दवान जिले को छोड़ कर लगभग सारे पूर्वि बंगाल के प्रान्त की मांग की। इसके विपरीत कांग्रेस ने पश्चिमी बंगाल के लिए कुल ७७,४४२ वर्गमील में से ४९,१४४ वर्गमील क्षेत्रफल के प्रदेश की मांग की। हिंदू महासभा ने इस में फरीदपुर और मालदा जिलों के कुछ और भी हिस्से मांगे। किन्तु रैडक्लिफ निर्णय में पुराने बंगाल प्रान्त का लगभग ३५-४ प्रतिशत क्षेत्रफल और ३५-१ प्रतिशत जन-संख्या पश्चिमी बंगाल को देना निश्चय किया गया। बंगाल की कुल मुस्लिम जन-संख्या में से १६-०६ प्रतिशत पश्चिमी बंगाल में और ८३-९४ प्रतिशत पूर्वीय बंगाल में रही, जबकि बंगाल के इन दोनों भागों में गैर-मुस्लिम जनता क्रमशः ५८-२२ और ४१-७८ प्रतिशत थी। सारा बर्दवान डिविजन और राजशाही डिविजन का दार्जिलिंग जिला पश्चिमी बंगाल में शामिल किये गये। नदिया, जेसोर, दीनाजपुर, जलपाईगुड़ी और मालदा के पांच जिले दोनों प्रान्तों के बीच में बांट दिये गये।

पंजाब—

पंजाब के संबंध में कांग्रेस, मुस्लिम लीग और सिक्खों की मांगें बहुत ही भिन्न भिन्न प्रकार की थीं। कांग्रेस ने अपनी मांगें सिक्खों के

सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन की रक्षा, युद्ध और बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा तथा आर्थिक सुव्यवस्था आदि के विचारों के आधार पर की थी। इस लिए उसने पूर्वीय पंजाब के लिए चिनाब नदी से पूर्व के भाग के लिए मांग पेश की। इसके अतिरिक्त सिक्खों ने अपने पवित्र मन्दिरों की रक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर दिया तथा कांग्रेस द्वारा मांगे हुए हिस्सों में उन्होंने मौंटगोमरी और लायलपुर के ज़िले तथा मुलतान डिविज़न के खानवाल, विहारी और मैलसी सब डिविज़न भी जोड़ दिये। इसके विपरीत मुस्लिम लीग ने न केवल रावलपिंडी, मुलतान और लाहौर के तीन डिविज़नों की मांग की, किन्तु जालंधर और अंबाला डिविज़नों की कई तहसीलें भी मांगी। पश्चिमी पंजाब के उस हिस्से की, जिसके लिए मुस्लिम लीग ने अपना दावा पेश किया था, कुल जनसंख्या २ करोड़ ४४ लाख थी, जिसमें से ६१-८६ प्रतिशत मुसलमान थे। अध्यक्ष महोदय के कथनानुसार एक ओर व्यास और सतलज तथा दूसरी ओर रावी नदी के बीच का प्रदेश ही वास्तव में विवाद का मुख्य विषय था। नहरों तथा सड़कों और रेलों के जाल के कारण, जो लाहौर और अमृतसर की भौगोलिक स्थिति के कारण वहां धीरे धीरे बिछ गया था, सीमा-निर्धारण का कार्य अत्यन्त कठिन हो गया।

फिर भी रैड क्लिफ-निर्णय में एक रेखा खींच दी गई, जिसके परिणाम स्वरूप १३ ज़िले, जिन में पूरे जालंधर और अंबाला डिविज़न, लाहौर डिविज़न का अमृतसर ज़िला, गुरदासपुर ज़िले की तीन तेहसीलें (पाठनकोट, गुरदासपुर और बताला (Batala) तथा लाहौर ज़िले की कसूर तेहसील का एक हिस्सा शामिल थे, पूर्वीय पंजाब को देना निश्चित हुआ।

सचाचार पत्रों की समालोचनाएँ

भारतीय समाचार पत्रों ने रैडक्लिफ-निर्णय की बड़ी तीव्र आलोचना की। "अमृत बाज़ार पत्रिका" ने उसे "लौटते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद

के द्वारा हिन्दू और मुसलमानों को लगाई गई लात" कहा। "हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड" ने उसे "अत्यंत असंगत, अनियमित और स्वेच्छाचार पूर्ण" कह कर उसकी तीव्र निंदा की। "हिन्दू" ने लिखा कि 'वह गैर मुस्लिमों के लिए अन्याय पूर्ण है'। फ्री प्रेस जरनल ने लिखा—"यह समझ में नहीं आता कि सर रैडक्लिफ ने अपना निर्णय ऐसी गैर जिम्मेदारी के साथ क्यों दिया। इस निर्णय ने तो प्रान्त की जनसंख्यात्मक रचना के सिद्धान्त को ही, जो विभाजन का आधार था, बदल दिया है। इसकी सारी जिम्मेदारी सीमा कमीशन के दूसरे सदस्यों पर है, जिन्होंने अपने मतभेदों के कारण अध्यक्ष महोदय की पूर्वधारणाओं और मिथ्या कल्पनाओं को खुल कर खेलने का अवसर दिया है।" लीडर के मतानुसार "यह निर्णय बंगाल और पंजाब के हिन्दुओं के लिए उसी तरह अन्यायपूर्ण है, जैसे कि ब्रिटिश शासन-सत्ता के पिछले सभी निर्णय रहे हैं।" मुस्लिम लीग के पत्र 'डॉन' ने अपने "सीमा विषयक हत्या" शीर्षक संपादकीय लेख में लिखा कि पाकिस्तान एक अन्यायपूर्ण निर्णय और लज्जास्पद पक्षपात के कारण ऐसे व्यक्ति से ठगा गया है, जिस से तटस्थ होने के कारण न्याय की आशा की गई थी।" किंतु इन सब विरोधों के होते हुए भी सभी इस बात पर सहमत थे कि कम से कम अभी तो शान्ति पूर्वक इस निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए और पीछे से आपस में बातचीत के द्वारा आवश्यक परिवर्तन होते रहेंगे।

कमीशन के निर्णय से असन्तोष

यद्यपि देश में शान्ति-स्थापना की दृष्टि से राष्ट्र-नेताओं ने रैडक्लिफ कमीशन के निर्णय को स्वीकार कर लिया था, पर उससे किसी भी समुदाय को सन्तोष न हुआ। बंगाल के हिन्दुओं की शिकायत थी कि इस निर्णय के अन्तर्गत पश्चिमीय बंगाल का लगभग ४००० वर्गमील क्षेत्रफल कम होगया है। उन्होंने खुलना के, जो एक हिन्दू बहुमत

वाला ज़िला था, पूर्वीय बंगाल में मिला दिये जाने का विरोध किया। चटगांव के पहाड़ी इलाकों के, जिनकी ६७ प्रतिशत जनता ग़ैर-मुस्लिम थी, छिन जाने पर क्रोध प्रकट किया। दार्जिलिंग और जलपाईगुड़ी के ज़िलों को शेष पश्चिमी बंगाल से बिलकुल अलग होजाना भी उनके असन्तोष का कारण था। इस निर्णय के परिणाम स्वरूप जनसंख्या का अत्यन्त अन्यायपूर्ण विभाजन हुआ। क्योंकि जहां कुल मुस्लिम जनसंख्या का १६% भाग पश्चिमी बंगाल में रह गया था, वहां पूर्वीय बंगाल में हिन्दुओं तथा अन्य ग़ैर मुस्लिमों की जन संख्या का ४२% भाग पूर्वीय बंगाल में रहा; अर्थात् पश्चिमीय बंगाल में जितने मुसल-मान थे उससे लगभग तिगुने अर्थात् ४२% हिन्दू तथा ग़ैर मुस्लिम पूर्वीय बंगाल में रहे। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि पूर्वीय बंगाल में यद्यपि हिन्दू अल्प संख्या में थे, पर फिर भी उनकी और मुसलमानों की संख्या में नाम मात्र का ८% प्रतिशत अन्तर था। इसके विपरित पश्चिमीय बंगाल में मुसलमान बहुत ही अधिक अल्पमत में थे; अर्थात् उनकी और हिन्दुओं की संख्या में ८४% का फ़र्क था। यह विषय भी तीव्र आलोचना का विषय बन गया था।

मुसलमानों को रैडक्लीफ निर्णय से इतना अधिक लाभ होजाने पर भी सन्तोष न था। कलकत्ता, मुर्शिदाबाद और नदिया के कुछ हिस्सों के अपने हाथ से निकल जाने का उन्हें बड़ा अफ़सोस था। उन्होंने यहां तक धमकी देदी थी कि अगर पाकिस्तान सरकार ने पाकिस्तान की सीमा विषयक हत्या को स्वीकार भी कर लिया तो जनता उसे कदापि स्वीकार न करेगी।

कहने का मतलब यह है कि रेडक्लिफ निर्णय ने किसी दल को सन्तुष्ट न किया। उसने हिन्दुओं पर घोर अन्याय किया। इतना ही नहीं उसने प्रान्त की आर्थिक व्यवस्था पर तथा रेलों और सड़कों के याता-

घात के साधनों पर भी, जिनका केन्द्र कलकत्ता नगर था और जो एक संयुक्त आधार पर बने हुए थे, कुठाराघात किया।

इस विभाजन से सारा औद्योगिक बङ्गाल पश्चिमीय बङ्गाल के अन्तर्गत आगया। जूट, रूई, शक्कर, लोहा, फौलाद, तथा कागज़ के कारखाने पश्चिमी बंगाल में रह गये। इसके अतिरिक्त कोयले, लोहे और अन्य खनिजों की खानें पश्चिमी बंगाल के हिस्से में आईं।

इसके विपरीत गन्ना, पाट, सरसों और सम्भवतः चावल की फसलों की दृष्टि से वह घाटे में रहा।

अब पूर्वीय बंगाल की बात लीजिए। कृषि के विचार से पश्चिमीय बंगाल की अपेक्षा उसकी स्थिति अधिक उत्तम है। उसका कृषि-प्रदेश पश्चिमीय बंगाल की अपेक्षा लगभग दूना है। वह बंगाल के कुल जूट का ७० प्रतिशत उत्पन्न करता है। उसमें हुगली के अतिरिक्त सभी बड़ी नदियां हैं। वहां पश्चिमी बंगाल की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है और वहां सिंचाई की सुविधाएं भी अधिक उत्तम हैं। इस प्रकार वहां की भूमि पश्चिमी बंगाल की अपेक्षा अधिक उर्वर और उपजाऊ है। पड़ी हुई बंजर (ऊसर) भूमि का अनुपात तुलनात्मक दृष्टि से कम है। जहाँ पश्चिमी बंगाल में शहरी जनसंख्या अधिक है, जहां के लगभग २२ प्रतिशत लोग शहरों में रहते हैं वहां पूर्वीय बंगाल में यह संख्या केवल ४ प्रतिशत है।

शिक्षा और संस्कृति की दृष्टि से पश्चिमी बंगाल अधिक सम्पन्न (समृद्ध) है। कलकत्ता विश्वविद्यालय, विश्वभारती, कलकत्ता मेडिकल कॉलेज, बंगाल इन्जीनियरिंग कॉलेज आदि सुप्रसिद्ध शिक्षा संस्थाएँ तथा संस्कृति के केन्द्र इसी प्रान्तमें हैं। कलकत्ता बंगाल प्रांत का सबसे बड़ा नगर है। वह एक बहुत बड़ा व्यापार-व्यवसाय का केन्द्र और अत्यन्त भव्य नगर है। यहां इस

के सभी देशों के लोग दिखाई पड़ते हैं। पूर्वीय बंगाल से आये हुए शरणार्थियों और अतिरिक्त सरकारी नौकरों के कारण पश्चिमी बंगाल की कठिनाइयां बहुत बढ़ गई थीं और अब उन लोगों के लिए भोजन, मकान, नौकरी आदि की व्यवस्था करने की बड़ी भारी समस्या पश्चिमी बंगाल के सामने खड़ी हो गई थी।

भौगोलिक संहति की दृष्टि से पश्चिम बंगाल को रैडक्लिफ-निर्णय से भारी नुकसान हुआ है। उसके दो टुकड़े हो गये। इससे उनका और आसाम के साथ का सीधा सम्पर्क असंभव हो गया है और इस सीमा के प्रदेश के यातायात के साधनों की नवीन व्यवस्था अत्यंत आवश्यक हो गई। बाहर के आक्रमणों से रक्षा की दृष्टि से पूर्वीय बंगाल पर अधिक भारी जिम्मेदारी आ पड़ी। क्यों कि वह सब तरफ विदेशी सीमाओं से घिरा हुआ है और पश्चिमी पाकिस्तान से केवल समुद्र और आकाश-मार्ग से ही जुड़ा हुआ है।

पंजाब में जनता की प्रतिक्रियाः—

पंजाब की गैर-मुस्लिम जनता और विशेष रूप से सिक्खों में इस निर्णय ने घोर असंतोष उत्पन्न किया, क्योंकि इससे उनका जातीय सुसंगठन छिन्न-भिन्न हो गया। वे अपने पवित्र मंदिरों और धार्मिक स्थानों से वंचित हो गये तथा शेखुपुरा, लायलपुर और मोंटगोमरी की नहरों की बस्तियाँ (Canal colonies) और लगभग आधा मझहा-जो सिक्खों की मातृभूमि है—उनके हाथ से जाते रहे। इन नहरों की बस्तियों को उन्होंने अपने पचास वर्ष के अथक परिश्रम से तैयार किया था। इस निर्णय ने प्रान्त के ५६:४४ के आधार पर विभाजन कर उन लोगों की मांग की भी सर्वथा उपेक्षा की। इसी तरह हिन्दू लोग भी लाहौर और उसके आसपास के जिलों के अपने हाथ से चले जाने के कारण अत्यंत असंतुष्ट हुए,क्योंकि यह प्रदेश उनकी खेती-बाड़ी, सामा-

जिक और राजनैतिक कार्य-कलाप तथा व्यापार, बीमा कंपनियों और बैंकों का केन्द्र था। मुसलमानों ने भी अपनी ओर से इस बात के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई कि मंडी हाइड्रो-इलेक्ट्रिक प्रोजेक्ट पश्चिमीय पंजाब के ही हाथ में न रही और प्रकल्पित पश्चिमी पंजाब की (............) चार तेहसीलें भी उससे अलग कर दी गईं और उनके बदले में कोई भूमि पश्चिमी पंजाब को न दी गई।

विभाजन के परिणामस्वरूप पूर्वीय पंजाब को संयुक्त पंजाब की पांच नदियों में से तीन पर अधिकार प्राप्त हो गया तथा पूरे प्रान्त की लगभग ४५ प्रतिशत जनसंख्या, ३८ प्रतिशत क्षेत्रफल, और ३१ प्रतिशत आमदनी उसके हिस्से में आई। इसके विपरीत पश्चिमी पंजाब में लगभग ५५ प्रतिशत जनसंख्या, और ६२ प्रतिशत क्षेत्रफल सम्मिलित हुआ और पुराने प्रान्त की लगभग ६९ प्रतिशत आमदनी पर उसका अधिकार हो गया। संयुक्त पंजाब की मुख्य मुख्य नहरें, नहरों से सिंचित उपजाऊ भूमि का करीब ७० प्रतिशत भाग और उसमें होनेवाली भारी आय पश्चिमीय पंजाब को मिली। उसे प्रधान जंगल, खनिज पदार्थ और रबड़ के सामान, डाक्टरी चीर-फाड़ के औज़ार तथा खेल के सामान आदि के कारखाने प्राप्त हुए। शीशम के पेड़ और प्रान्त के यातायात के संयुक्त साधनों का बहुत बड़ा भाग उसके हिस्से में आया। प्रान्त का एक मात्र विश्वविद्यालय, प्रधान शिक्षा-संस्थाएं, अस्पताल तथा खेतीबाड़ी और शिल्प संबंधी संस्थाएं प्राप्त करने का उसे सौभाग्य मिला। इस कारण पश्चिमी पंजाब तुलनात्मक दृष्टि से अधिक बड़ा, समृद्ध और अनाज पैदा करने वाला प्रान्त है और यहाँ जनसंख्या का घनत्व प्रति मील केवल २९५.५ है जब कि पूर्वीय पंजाब में ३२८ है।

विभाजन के बाद सामूहिक रूप में लोगों के स्थानान्तरित होने (देशान्तरगमन) के कारण पूर्वीय पंजाब में मज़दूरी और सामान की

कमी हो गई और पश्चिमी पंजाब को शिल्प, व्यवसाय और शिक्षण सम्बन्धी प्रतिभा की क्षति हुई। अनेक प्रकार के उद्योगों के संबंध में ऐसा हुआ कि लगभग सारी श्रमिक जनता एक ओर चली गई जब कि व्यापारी, उद्योगपति और विक्रेता आदि दूसरी ओर चले गये। इस प्रकार दोनों प्रान्तों को नुकसान हुआ; किन्तु छोड़कर चले जाने वाले गैरमुस्लिम लोगों की विशाल स्थावर जंगम संपत्ति, उपजाऊ भूमि, कारखाने और व्यापारिक पेढ़ियां पश्चिमी पंजाब को प्राप्त होने से उसे अधिक लाभ रहा।

पूर्वी पंजाब को अपना नया जीवन अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में आरम्भ करना पड़ा। राजधानी के अभाव में प्रान्तीय मंत्री-मंडल के लिये योग्य स्थान निश्चित करने में बड़ी कठिनाई हुई। व्यापक अव्यवस्था और उचित यातायात साधनों के अभाव के कारण कभी कभी प्रान्त की सारी शासन-व्यवस्था के उच्छिन्न हो जाने का भय प्रतीत होने लगा। क़ानून और व्यवस्था को कायम रखने वाले महकमों को भी भारी धक्का पहुँचा। पुलिस के मुसलमान नौकरों ने, जो संख्या में ६० प्रतिशत थे, शुरू से ही स्पष्ट रूप से अपना विरोध प्रकट किया और अन्त में सरकार का साथ छोड़ दिया। पूर्वीय पंजाब की सरकार को, पश्चिमी पंजाब से सामूहिक रूप में आनेवाली विशाल जनसंख्या और अतिरिक्त सरकारी नौकरों के वहां चले आने के कारण भयंकर उथल पुथल का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त मुसलमान किसानों के प्रान्त छोड़ कर चले जाने से तथा दंगों से होने वाली आर्थिक हानि के कारण प्रान्त की आमदनी में भारी घाटा हुआ। कुछ बातों में दोनों प्रान्तों पर विभाजन के एकसे असर हुए हैं। पुलिस का खर्च बढ़ जाने के सिवा दोनों प्रान्तों को जनता को स्थानान्तरित करने और लाखों शरणार्थियों को पीछा बसाने और उनको आराम पहुँचाने के कार्य में बड़ा भारी खर्च करना पड़ रहा है। दोनों प्रान्तों में कौमी दंगे हुए, भारी मार

काट मची। रेलवे लाइनें, तार आदि काट डाले गये। व्यापार बर्बाद हो गया तथा लोगों के जान माल की भारी हानी हुई। स्वतंत्रता के स्वर्ण-प्रभात में ही उत्पात खड़े हो गये तथा गरीब, अमीर, स्त्री, बूढ़ों, बच्चों सब का सम्मिलित करुण क्रन्दन सुनाई पड़ने लगा! यह सब धार्मिक और साम्प्रदायिक जोश के अन्धे पागलपन का परिणाम था, जिसका बीज 'दो राष्ट्र' वाले विषाक्त सिद्धान्त के द्वारा बोया गया था।

साम्प्रदायिक-उपद्रव

देश विभाजन के बाद लोगों को यह आशा हो चली थी कि मुस्लिम लीग को उसकी स्वप्नसृष्टि का पाकिस्तान मिल गया है और इसलिए अब साम्प्रदायिक उपद्रवों का अन्त हो जायगा। उभय देशों में हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रेम से रहने लगेंगे। पर लोगों की यह आशा दुराशा में परिणित हुई। हाँ, भारत में महात्मा गांधी अपनी सारी शक्ति खर्च करके हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने प्रार्थना के समय अपने दिए गये भाषणों में हिन्दुओं से बार बार यह अपील की कि वे अत्याचार का बदला अत्याचार से न लें, वरन् वे भारत में रहने वाले मुसलमानों को अपना भाई समझकर उनकी जान और माल की रक्षा करें। मानवता के इसी महान् उद्देश्य की रक्षा के कारण उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा!

कहने का मतलब यह है कि जहाँ भारत के सर्व प्रधान नेता मानवता के महान् सिद्धान्त का सन्देश दे रहे थे, वहाँ मुस्लिम-लीग के नेता 'द्विराष्ट्र-सिद्धन्त' को लेकर देश में घोर हिंसा का प्रचार कर रहे थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के दूसरे ही दिन अर्थात् १६ अगस्त १९४६ को मुस्लिम-लीग ने "सीधी कार्यवाही" की घोषणा करदी। इससे सारे देश में जो रक्तपात और अत्याचार हुए, उसका उदाहरण इतिहास में मिलना

मुश्किल है। सबसे पहले वह आग कलकत्ते में भड़की और इसके परिणाम स्वरूप हजारों नागरिकों की क्रूरता-पूर्वक हत्या की गई! मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही ने कलकत्ते में दो दिन तक भय और अत्याचार का साम्राज्य कायम कर दिया! कलकत्ते के सुप्रसिद्ध एङ्गलो-इन्डियन पत्र Statesman ने १८ अगस्त १९४६ के अंक के अपने सम्पादकीय लेख में लिखा था कि:—

"It was obvious from an early hour, that some of those who were set on disrupting the city's peace were privileged. The bands of ruffians rushing about in lorries, stopping to assault and attack and generally spreading fear and confusion, found the conveyances they wanted. On a day when no one else could get transport for their lawful avocations,these men had all they wanted; it is not a ridiculous assumption that had been provided for in advance."

अर्थात् प्रातःकाल से ही यह स्पष्ट था कि जो लोग शहर की शान्ति भंग करने पर उतारू हो रहे थे, उनमें से कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें विशेष अधिकार प्राप्त थे। बदमाशों के झुन्ड के झुन्ड लारियों में इधर उधर चारों ओर चक्कर काट रहे थे और वे जहाँ तहाँ अपनी लारियों को रोककर लोगों पर आक्रमण कर भय, आतंक और व्यग्रता फैला रहे थे। इन्हें अपनी इच्छानुसार वाहन मिल जाते थे। जिस दिन किसी को भी अपने उचित कार्य के लिए सवारी मिलना असम्भव था, उस दिन इन आदमियों को जो कुछ वे चाहते थे सब मिल जाता था। यह अनुमान करना असंगत न होगा कि उन्हें पहले से ही सारी सामग्री दे दी गई थी।

स्टेट्समैन के उक्त उद्धरण से मुस्लिमलीग की शरारतभरी कार्यवाही पर काफ़ी प्रकाश गिरता है। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस समय यह राक्षसी कांण्ड होरहा था उस समय बंगाल में मुस्लिमलीग का मंत्रिमंडल था, जिसने खुल कर गुन्डों की मदद की और उन्हें हिन्दुओं पर आक्रमण और विविध प्रकार के अत्याचार करने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित किया।

क्रिया की प्रतिक्रिया होना प्राकृतिक नियम है। दो तीन दिन के बाद हिन्दुओं ने भी अपना संगठन किया और उन्होंने गुन्डों का डटकर मुकाबला किया। पीछे जाकर उन्होंने अपनी आत्मरक्षा करते हुए इन गुण्डों की मरम्मत भी की।

बंगाल के अन्य जिलों में उपद्रव

कलकत्ते के कुछ समय बाद मुस्लिम-लीग ने पूर्वीय बंगाल और नोआखाली में अपनी सीधी कार्यवाही (Direct Action) का दौर दौरा शुरू किया। रक्तपात, लूटखसोट, आगज़नी, स्त्रियों का सतीत्व हरण, जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन की अत्याचार पूर्ण कार्यवाहियाँ शुरू हो गईं। चारों ओर हाहाकार मच गया! इन अत्याचारों के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित After Partition नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

Some time after the great Calcutta Killing, the champions of Direct Action were active in a quiet and peaceful districts of East Bengal, Noakhalie, where the Hindus were a mere handful, barely 18% of the total population. The depredation started on october 10, 1946, and over 700

villages including some in the bordering district of Tippearh and Sandwip Island in the Bay of Bengal were subjected to looting and arson. Forcible conversion, abduction and rape of women completed the tragedy. The attack was launched at the same time on the same day and in the same fashion on all the main villages; large mobs armed with deadly weapons, in many cases fire-arms, surrounded the localities where the Hindus lived.

अर्थात् कलकत्ते के महान् हत्याकाण्ड के कुछ समय के बाद 'सीधी कार्यवाही' के योद्धाओं ने पूर्वीय बंगाल, नोआखाली, जहां हिन्दुओं की संख्या मुट्ठी भर अर्थात् १८ फी सदी थी, अपनी गतिविधि प्रकट की। १० अक्टूबर १९४६ को लूटमार आरम्भ हुई ! सात सौ गांवों में, जिनमें टिपारा और संद्वीप जैसे बंगाल की खाड़ी के सीमावर्ती द्वीप भी सम्मिलित थे, लूटमार और आगजनी का दौरा दौर होगया ! बलात् धर्म परिवर्तन, स्त्रियों का अपहरण, बलात्कार, आदि ने इस दुःखान्तक नाटक की पूर्ति की। यहां यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि एक ही समय में सब ग्रामों में एक साथ हमले हुए। हथियार बन्द लोगों के बड़े बड़े झुन्डों ने घातक हथियारों और आग्नेयास्त्र अर्थात् बन्दूकों के साथ गांवों के उन सब मुहल्लों को घेर लिया, जहां हिन्दू बसे हुए थे।

उपरोक्त अवतरण से पाठकों को उन राक्षसी अत्याचारों का ज्ञान होगा जो उस समय निर्दोष हिन्दुओं पर किए गए थे। सैकड़ों हजारों हिन्दुओं की निर्मम हत्याएं की गईं ! सैकड़ों स्त्रियों का सतीत्व अपहरण किया गया और उनकी तरह तरह से बेइज़्ज़ती की गई ! हिन्दुओं के घर जलाए गए और उनकी सम्पत्ति लूटी गई। छोटे छोटे बच्चे भी इन आततायियों की क्रूरता के शिकार हुए ! हिन्दुओं में चारों ओर हाहाकार मच गया

और जिस सरकार (मुस्लिम लीगी सरकार) की ओर वे अपनी रक्षा के लिए देख सकते थे, वह उनकी रक्षक की बजाय भक्षक सिद्ध हुई। विनाश, लूटमार, बलात्कार और आगज़नी की घटनाओं से सारा वायु-मंडल परिप्लुत हो गया।

इन दारुण दृश्यों की कथाएं सुनकर मानवता के अवतार महात्मा गांधी का हृदय द्रवीभूत होगया। वे पूर्वीय बंगाल पहुँचे और उन्होंने नोआखाली जिले का, अपने कुछ साथियों के साथ, नंगे पैर दौरा किया। यहाँ हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि महात्मा गांधी की रक्षा के लिये तत्कालीन मुस्लिम-लीग के प्रधान मंत्री ने योग्य प्रबन्ध किया। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व का प्रभाव उन संकटग्रस्त जिलों की जनता पर आवश्य पड़ा, और वहाँ के वायुमंडल में कुछ सुधार अवश्य हुआ।

बिहार में साम्प्रदायिक उपद्रव

क्रिया की प्रतिक्रिया होना, यह प्रकृति का अटल नियम है। ईस्वी सन् १८६५ में दक्षिण प्रदेश में हिन्दू-मुस्लिमों के जो दंगे हुए थे, उनके कारणों और उपायों पर प्रकाश डालते हुए लोकमान्य तिलक ने अपने सुप्रसिद्ध पत्र 'केशरी' में एक लेखमाला प्रकाशित की थी, जिसमें उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम समस्याओं पर राजनैतिक दृष्टि से बहुत ही गम्भीर और वास्तविक प्रकाश डाला था। वे कोरे आदर्शवाद के गगन-मंडल में न उड़े, पर वास्तविकता की कठोर भूमि पर खड़े रहकर उन्होने समस्याओं का विश्लेषण किया था। उन्होंने इस क्रिया प्रतिक्रिया पर भी व्यावहारिक और क़ानूनी दृष्टि से विचार करते हुए यह दिखलाया था कि मूल अत्याचार कर्त्ता जितना अपराधी होता है, उतना वह व्यक्ति नहीं होता जो अपने पर या अपने समाज पर किएगए अत्याचारों का प्रतिक्रिया के रूप में बदला चुकाता है। यद्यपि इसमें भी अत्याचार और ज्यादतियाँ होती हैं। जिनका न्याय और मानवता की दृष्टि से समर्थन नहीं किया जासकता।

दूसरी बात यह है कि इसमें मूल अपराधी बच जाते हैं और कई निरपराध मनुष्यों को केवल एक समाज विशिष्ट के सदस्य होने के कारण दुःख और कष्ट उठाने पड़ते हैं।

बंगाल में हिन्दुओं पर जो भयंकर अत्याचार हुए, उनकी प्रतिक्रिया बिहार में हुई, जहाँ कि हिन्दुओं की बहु संख्या है। यहाँ हिन्दुओं ने बंगाल का बदला चुकाने के लिये मुसलमानों पर आक्रमणादि किये। हिंसा कान्ड भी हुए। पर बिहार के अति सम्माननीय और प्रिय नेता डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद और उनके अन्य साथियों ने अपनी जान हथेली में रख कर मुसलमानों की रक्षा की। पं० जवाहर लाल नेहरू भी उस समय वहाँ पहुँचे और उन्होंने उपद्रवों को शान्त करने की भरपूर चेष्टा की।

यहाँ यह देखना चाहिये कि जहाँ लीगी सरकार ने हिन्दुओं पर अत्याचार करवाने में मुस्लिम उपद्रवकारियों की अप्रत्यक्ष साहायता की, वहाँ हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने बिहार में मुसलमानों की पूरी पूरी रक्षा की।

सीमाप्रान्त और पंजाब के उपद्रव

बिहार के उपद्रव के बाद उत्तर पश्चिमीय सीमाप्रान्त और पश्चिमीय पंजाब में, जहाँ हिन्दू अल्प संख्या में थे, भयंकर उपद्रव हुए। हिन्दुओं, सिक्खों की सैकड़ों हजारों की संख्या में निर्दयता पूर्वक हत्याएं की गईं! इन हत्याओं के स्त्रियां और बालक भी बलि पड़े थे। हिन्दुओं और सिक्खों के धर्म-मन्दिर और मकान जलाए गए! स्त्रियों के साथ बलात्कार और अन्य विविध अत्याचार किये गये! स्त्रियां सैंकड़ों और हजारों की संख्या में उड़ाई गईं, और उनमें से अधिकांश मुसलमानों के साथ विवाह करने में बाध्य की गईं। यहाँ के भीषण अत्याचार नोआखाली से भी अधिक बढ़ गए! सारा वायुमंडल हाहाकार और करुण क्रंदन से व्याप्त हो गया! भारत सरकार द्वारा प्रकाशित

'After Partition' नामक पुस्तिका में लिखा है।

"The Bihar trouble, on the other hand, was followed by riots and mass murders in the North-West Frontier Province and west Punjab, where the Hindu and Sikh minorities were subject to sufferings similar to those of Noakhali. From the facts available, it would be justified to assure that the disturbances in the punjab were carefully planned as part of a well-planned conspiracy to install the Muslim League Ministry in the Punjab. This was looked upon as first step towards the establishment of Pakistan".

"अर्थात् पंजाब के उपद्रव के बाद ही उत्तर पश्चिमीय सीमाप्रान्त और पश्चिमीय पंजाब में दंगों और सामूहिक हत्या काण्डों का दौर दौरा हुआ। इन प्रान्तों में हिन्दू और सिक्खों की अल्प संख्या (Minorities) थी और उन्हें नौआखाली की तरह कष्ट उठाने में बाध्य होना पड़ा था। इस सम्बन्ध में जो तथ्य उपलब्ध हुए हैं, उनसे यह अनुमान करना उचित होगा कि पंजाब के उपद्रव, मुस्लिमलीगी मंत्रि-मंडल को पंजाब में प्रतिष्ठित करने के लिये, एक सुयोजना पूर्ण षड्यंत्र का सावधानता पूर्वक किया गया एक हिस्सा था। पाकिस्तान स्थापित करने की ओर आगे बढ़ाया हुआ यह पहला कदम समझा गया था।"

यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि इन राष्ट्र घातक दुर्घटनाओं से प्रभावित होकर हमारे नेताओं ने देश विभाजन की योजना को विषाद पूर्ण हृदय के साथ स्वीकार किया। परिस्थिती इतनी बिगड़ चुकी थी कि डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी जैसे अखण्ड भारत के समर्थकों ने भी देश विभाजन के कार्य को स्वीकार किया था। महात्मा गांधी के हृदय-

मन्दिर में तो इस विभाजन से अन्धकार सा छा गया था ! उनका यह विषाद और घोर आत्मिक-यन्त्रणा उनके लेखों और व्याख्यानों में प्रकट होती है।

हमें दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि कांग्रेस ने जनतन्त्र के विशुद्ध और उच्च सिद्धान्त की उपेक्षा कर और अपनी सीमा से बाहर जाकर मुस्लिम लीग और मि० जिन्ना को संतुष्ट करने की नीति को अपनाया और योग्य अवसर आने पर राष्ट्रीय मुसलमानों को प्रोत्साहन देने के बजाय, एक कट्टर साम्प्रदायिक संस्था मुस्लिमलीग से जोड़ तोड़ करने की चेष्टा की। यही नीति देश विभाजन का मुख्य कारण बनी। दूसरी बात यह है कि मुस्लिमलीग और उसके नेता मि० जिन्ना साहिब ने देश के सामूहिक हित के बजाय अपने कौमी हित को सर्वोपरि महत्व दिया और उन्होंने एक कौम को दूसरी कौम के खिलाफ़ खड़ा कर देश के वातावरण को जातीय द्वेष से परिप्लुत किया। यह देश के विभाजन का सबसे बड़ा कारण था।

पूर्वीय पंजाब में साम्प्रदायिक उपद्रव

पश्चिमीय पंजाब के उपद्रवों और अत्याचारों की पूर्वीय पंजाब में भी, जहाँ मुस्लिम अल्प मत में थे, प्रतिक्रिया शुरू हुई। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस समय उक्त प्रान्त में हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों पर जो ज्यादतियाँ हुईं, मानवता की दृष्टि से उनका समर्थन नहीं किया जा सकता। पर इन उपद्रवों के सम्बन्ध में पाकिस्तान समाचार पत्रों और रेडियो द्वारा जो समाचार प्रकाशित किये गए, वे अतिरंजित थे। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित Alter Partition नामक पुस्तिका में लिखा है:—

"The riots in west Punjab had their natural repercussions in East Punjab of which exagger-

ated reports were published in the Pakistan Press, and broadcast by the Pakistan radio. These reports were completely silent about the fact that the happenings in East Punjab and Delhi were a direct reaction of the West Punjab atrocities. Their effect was to further intensify the force of destruction in West Punjab."

अर्थात पश्चिमीय पंजाब के दंगों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया पूर्वीय पंजाब में हुई, जिनके अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण पाकिस्तान के समाचार पत्रों में प्रकाशित तथा पाकिस्तान रेडियो द्वारा ब्राडकास्ट किये गए। इन विवरणों में यह बात कतई न दिखलाई गई कि पूर्वीय पंजाब और देहली में होने वाली घटनाएँ पश्चिमीय पंजाब में होने वाले अत्याचारों की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया थी। उनका परिणाम यह हुआ कि पश्चिमीय पंजाब की विनाशक शक्तियों को और भी उत्तेजन मिला।

पं० नेहरू की पूर्वीय पंजाब में यात्रा

ईस्वी सन् १९४७ के १७ अगस्त को भारत के प्रधान मंत्री पं० नेहरू अकस्मात् रूप से पूर्वीय पंजाब गए। अम्बाला में, उन्होंने पूर्वीय और पश्चिमीय पंजाब के मुल्की और फौजी अफसरों की कॉन्फ्रेन्स की, और इसके बाद वे पाकिस्तान के प्रधान मंत्री मि० लियाकतअली खाँ के साथ लाहौर पहुँचे, जहाँ उन्होंने घटनाओं का विश्वसनीय विवरण प्राप्त किया। पं० नेहरू ने स्थिति का पर्य्यवेक्षण कर कहा:—

"We heard ghastly tales and we saw thousands of refugees, Hindu, Muslim, and Sikh. Anti-social elements were abroad, defying all authority and destroying the very structure of society."

अर्थात् हमने भयानक कहानियाँ सुनीं और हिन्दू, मुस्लिम, तथा सिक्ख शरणार्थियों को हजारों की संख्या में देखा। समाज विद्रोही तत्त्व खुले तौर से घूम रहे थे और वे हुक्मत की अवहेलना कर सोसाइटी के ढाँचे तक को नष्ट कर रहे थे।

ईस्वी सन १६४७ के २४ अगस्त को पंडितजी ने पूर्वीय पंजाब का दूसरा दौरा किया और उन्होंने जगह जगह भाषण देकर लोगों से शान्त रहने की अपील की। उन्होंने यह स्वीकार किया कि पूर्वीय पंजाब से उपद्रवों के समाचार आ रहे हैं और वहाँ की स्थिति बिगड़ती जा रही है। पर इसका इलाज बदला लेने से न होगा। अगर पश्चिमीय पंजाब में पूरी शांति हो गई तो हम अपनी शक्तियों को पश्चिमीय पंजाब के अल्प दल वालों की रक्षा में लगावेंगे।

दिल्ली में साम्प्रदायिक उपद्रव

ईस्वी सन १६४७ के सितम्बर मास के प्रारम्भ ही से दिल्ली का वातावरण अत्यन्त उत्तेजनामय हो रहा था। जैसे जैसे शरणार्थी हजारों की संख्या में पश्चिमी पंजाब से दिल्ली आकर अपने अपार कष्टों की कहानी सुनाते थे, वैसे वैसे इस उत्तेजना की ज्वाला अधिक से अधिक प्रज्वलित होती थी। भारत के उपप्रधान मंत्री सरदार पटेल ने वायु मंडल में उत्तेजना के भावों को देखा और उन्होंने लोगों से शान्ति रक्षा की अपील करते हुए कहाः—"मैं यह पूर्णरूप से जानता हूँ कि शरणार्थियों को जिन दुःखद घटनाओं का सामना करना पड़ा है, वे इतनी क्रूरता और अत्याचार पूर्ण हैं कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्हें, उनके कुटुम्बियों और सम्बन्धियों को ऐसे घोर नरक का दारुण दुःख उठाना पड़ा है, जिससे यह मालूम होता है कि मानव जंगली पशु की वृत्ति में किस प्रकार परिणित हो जाता है। इतना होने पर भी मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप बदले की भावना न रखें। क्योंकि

इससे सरकार की शक्तियां शरणार्थियों की सहायता के बजाय शान्ति रक्षा के काम में लगेंगी।

४ सितम्बर १९४७ को दिल्ली की स्थिति और भी बिगड़ी और वहाँ आगज़नी और छुरेबाज़ी की घटनाएँ हुईं। इससे सरकार को कर्फ्यू लगाना पड़ा और नगर की शान्ति रक्षा के लिये सैना बुलवानी पड़ी। ५ सितम्बर को सारे शहर में उपद्रव फैल गए और वातावरण अत्यन्त विक्षुब्ध हो गया। ६ सितम्बर शनिवार को जहाँ तहाँ आगज़नी और छुरेबाज़ी की घटनाएँ होने लगीं। दिल्ली के चीफ़-कमिश्नर ने परिस्थिति को सम्भालने के लिए सख्त कदम उठाए। सरदार वल्लभभाई पटेल ने ब्राडकॉस्ट द्वारा दिल्ली के लोगों से अपील की कि वे शान्ती रक्षा के लिए अपनी सारी शक्तियां लगादें। १५ सितम्बर तक शहर में शान्ती स्थापित होगई।

इसी समय पुलिस ने मुसलमानों के एक शस्त्रागार का पता लगाया और यहाँ मुसलमानो ने पुलिस और फौज़ का कई घंटों तक सशस्त्र मुक़ाबला किया।

लौकिक राज्य

ईस्वी सन् १९४७ की २६ सितम्बर को पं० जवाहर लाल नेहरू ने एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए लोगों को उनकी संस्कृति और सभ्यता का स्मरण दिलाया और कहा कि मुस्लिम लीग ने देश की असीम हानि की है और इससे लोगों के कुछ दल विशेष हिन्दू राज्य की मांग करने लगे हैं। पर ऐसा करना मुस्लिम-लीग की विजय है।

ईस्वी सन् १९४७ के १२ अक्टूबर को नई दिल्ली में प्रेस कॉन्फ्रेन्स के सामने पण्डित जी ने यह वक्तव्य दिया:—

"So far as India is concerned we have very clearly stated both as Government and otherwise that we can not think of any state wich might be called a communal or religious State. We can only think of a sercular non-communal democratic State, in which every individual, to whatever religion he may belong, has equal rights and opportunities."

'अर्थात् जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है हमने सरकार और अन्य दृष्टियों से यह साफ़ तौर से प्रकट कर दिया है कि हम किसी ऐसे राज्य की कल्पना नहीं कर सकते, जिसे साम्प्रदायिक या धार्मिक कहा जाय। हम केवल मात्र लौकिक, असाम्प्रदायिक जनतन्त्रात्मक, राज्य ही के विषय में, सोच सकते है, जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे फिर वह किसी भी

धर्म का अनुयायी हो, समान अधिकार और अवसर प्राप्त हो सकें"। आगे चलकर फिर पण्डितजी ने कहा:—

"We want a secular democratic State. That has been the ideal of the Indian National Congress ever since it started 65 years ago & we have consistentely adhered to it."

अर्थात् 'हम लौकिक जनतन्त्रात्मक राज्य चाहते हैं। राष्ट्रीय कांग्रेस का ६५ वर्ष से अर्थात् अपने जन्म काल से यही आदर्श रहा है और हमने हमेशा उसका पालन किया है।'

पाकिस्तान में हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार

पाकिस्तान में हिन्दुओं पर जैसे अत्याचार होरहे थे, उनका उल्लेख हम गत पृष्ठों में कर चुके हैं। इन अत्याचारों की विभीषिका दिन व दिन बढ़ती ही गई। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'After Partition' नामक पुस्तिका में इन अत्याचारों में सम्बन्ध के लिखा है:—

"Across the border, life was becoming impossible for the non-Muslim minorities. Assurances of safety and security were offered to the minorities by the leaders of Pakistan, but these assurances were devoid of any reality and were made to mislead international opinion. Even agreements made with the Government of India regarding evacuation by the two Dominions were being flouted by Pakistan. The refugees, for instance, were being searched and personal effects like sewing machines

crockery, ornaments and even wearing apparels were being seized. In West Panjab and N. W. F. Province the non-Muslims were being subjected to all manner of indignities and the Government did nothing to improve the situation. According to official reports received by East Punjab Government, 'females were separated from their males at Jhelam. Males were all herded together and cut down with axes and saws, as orders were issued not to waste a round on Kaffirs. The women-folk were then allotted so many to each group of Pathans." In Gujrat area the number of abducted girls was estimated at 4,000. At certain places general traffic in women proceeded and abducted women were sold in the open market. Refugee trains were attacked, passengers killed, girls forcibly taken away and property looted, practically, every day. Miss Mridula Sarabhai, who did rescue work in West Punjab, herself noticed quite a number of girls being taken away by Pathans from trains.

अर्थात् सीमा के उस पार गैर-मुस्लिम अल्पदलवालों का जीवन असम्भव होरहा था। पाकिस्तान के नेताओं द्वारा उक्त अल्पदलवालों को अभय और सुरक्षा के आश्वासन दिये जारहे थे। पर यह आश्वासन किसी भी प्रकार के सत्य से विहीन थे, और वे अन्तर्राष्ट्रीय मत को गुमराह करने के लिए यह दिए जारहे थे। भारत सरकार के

साथ दो अधिराज्यों द्वारा रिक्तीकरण के विषयों में जो समझौते हुए थे, उनकी पाकिस्तान द्वारा अवहेलना हो रही थी। उदाहरण के लिए शरणार्थियों की जामा तलाशी ली जारही थी, और उनका वैयक्तिक सामान—जैसे सीने की मशीनें, खाने पीने के बर्तन और पहिनने के जेवर आदि छिन लिए जाते थे। पश्चिमीय पंजाब और उत्तर-पूर्वीय प्रदेश में गैर-मुस्लिमों को सब प्रकार की बेइज्जतियों का शिकार होना पड़ता था, और सरकार इस स्थिति को सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं कर रही थी। पूर्वीय पंजाब की सरकार को इस सम्बन्ध में जो विवरण प्राप्त हुए थे, उनमें लिखा था कि:—"झेलम में स्त्रियां उनके मर्दों से जुदा की जाती हैं। मर्दों को एक साथ इकट्ठा कर उन्हें कुल्हाड़ियों और करौलों से काट डाला जाता है! इसके बाद स्त्रियों को पठानों के दलों के सुपुर्द कर दिया जाता है। गुजरात में अपहरण की हुई स्त्रियाँ बेची जा रही थीं या उन्हें खुले बाजार में नीलाम किया जारहा था। शरणार्थियों की रेलगाड़ियों पर हमले किए जारहे थे और मुसाफिरों को कत्ल किया जारहा था। इसके बाद लड़कियों का जबरदस्ती अपहरण किया जाता था और सम्पत्ति लूटी जाती थी। यह घटनाएं नित्यप्रति होती थीं। कुमारी मृदुला साराभाई ने, जो पश्चिमीय पंजाब में कष्ट निवारण का कार्य कर रही थीं, पठानों द्वारा कई लड़कियों का अपहरण होते देखा था।"

कहने का भाव यह है कि पाकिस्तान में हिन्दुओं पर उस समय जैसे राक्षसी अत्याचार हुए, उनका उदाहरण इतिहास में मिलना कठिन है। मानवता का पतन किस सीमा तक हो सकता है, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है।

देश-विभाजन

और विशाल जन समूह का आवगामन

देश विभाजन के बाद लोगों को शान्ति-स्थापना की आशा हो चली थी, पर देश के परम दुर्भाग्य से यह आशा घोर दुराशा में परिणत हुई। मुस्लिम लीग की 'सीधी-कार्यवाही' के कार्यक्रम से पाकिस्तान में हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार होने लगे और उनका वहां रहना असँभव हो गया। ऐसी स्थिति में भारत सरकार ने यह उचित समझा कि पाकिस्तान से हिन्दुओं को सुरक्षित रूप से भारत में लाया जाय। उसने अपना कार्यक्रम आरम्भ कर दिया और रेल्वे, मोटरलॉरियों और वायुयानों के द्वारा नित्यप्रति लगभग ५० हजार से ऊपर की संख्या में हिन्दू पंजाब से भारतवर्ष आए आने लगे। इसके अतिरिक्त तीस तीस चालीस-चालीस हजार के हिन्दुओं के बड़े बड़े क़ाफ़िले लायलपुर और मान्टगुमरी जिलों से नित्य प्रति दो-दो सौ मील का कठिन प्रवास कर भारतवर्ष की सीमा में आने लगे। ईस्वी सन् १९४७ के १८ सितम्बर से लगा कर २९ अक्टूबर तक अर्थात् ४२ दिनों में गैर-मुस्लिमों के ८४६००० स्त्री पुरुष सैकड़ों, हजारों बैलगाड़ियों और ढ़ोरों के साथ फ़ौज के संरक्षण में भारतवर्ष आए। इनके अतिरिक्त २७ अगस्त से ६ नवम्बर के बीच में भारत सरकार ने ६७३ ट्रेने दौड़ाई, जिनके द्वारा २७९९३९८ शरणार्थियों ने पाकिस्तान से आकर भारतवर्ष में प्रवेश किया। ४२७००० गैर-मुस्लिमों और २१७००० मुसलमान शरणार्थियों को क्रम से सैनिक वाहन के द्वारा पाकिस्तान से लाया गया तथा पाकिस्तान पहुँचायागया

१२ सितम्बर से ७ दिसम्बर तक २७५०० शरणार्थियों को हवाई विमानों द्वारा भारत लाया गया। भारत सरकार के हवाई विमानों ने शरणार्थियों को यहाँ लाने में ६६२ उड़ानें कीं। ६००००० गैलन पैट्रोल इन उड़ानों में खर्च हुआ।

६ जनवरी १९४८ से अर्थात करांची के उपद्रवों के पहले से ही हिन्दू और सिक्खों का रिक्तीकरण (Evacuation) शुरू हो गया था। ५ जनवरी १९४८ तक हवाई विमानों, जहाजों और रेलों के द्वारा ४७८००० हिन्दू और सिक्ख सिंध छोड़कर भारतवर्ष आए। सारी जहाजी ताकत इन्हें लाने में खर्च की गई।

दिसम्बर १९४७ के मध्य तक सैनिक रिक्तीकरण-संगठन के प्रबन्ध में पश्चिमीय पंजाब और उत्तर-पश्चिमीय सीमाप्रान्त से हिन्दुओं और सिक्खों के बड़े बड़े जत्थे भारतवर्ष आते रहे। हाँ, सिन्ध से आने वाले शरणार्थियों की गतिविधि अपेक्षाकृत धीमी रही। इसका कारण यह था कि सिंध सरकार ने सिंध छोड़ कर आनेवाले शरणार्थियों के लिए अनुमति पत्र (Permit) का लेना आवश्यक कर दिया था। उन्हें इनकम टैक्स अधिकारियों, तहसीलदारों, म्युनिसपैलटियों और मुल्की अधिकारियों से यह प्रमाणपत्र लेना पड़ता था कि सम्बन्धित शरणार्थियों पर खानगी किसी प्रकार का कर्ज नहीं है। उनकी ओर इनकमटैक्स, म्युनिसिपिल-टैक्स या अन्य किसी प्रकार का सरकारी कर बकाया नहीं है। उनसे इस बात की जमानत भी मांगी जाती थी कि उनकी तरफ किसी बैंक का बकाया नहीं है और उनके पास मुस्लिमों के जेवर गिरवी नहीं है।

शरणार्थियों का स्वागत

भारतवर्ष में आए हुए शरणार्थियों का यहां की जनता ने उस समय हार्दिक स्वागत किया। विभिन्न स्थानों पर भारतीय जनता के द्वारा

शरणार्थियों के भोजन का प्रबन्ध किया गया। भारत सरकार ने भी प्रारम्भ में काफ़ी दिलचस्पी ली और उसने पूर्वीय पंजाब, देहली, युक्तप्रदेश, बम्बई, राजपूताने के राज्य आदि में एक सौ साठ केम्प खोल कर १२,५०,००० शरणार्थियों का प्रबन्ध किया, जिनका रोजाना खर्चा लाखों रुपया प्रतिदिन था। ईस्वी सन् १९४७, ४८ में केन्द्रीय सरकार ने शरणार्थियों के कष्ट निवारण के लिए १० करोड़ रुपया अपने बजट में स्वीकृत किया। इसके अतिरिक्त प्रान्तों और देशी राज्यों के केम्पों में, वहां की सरकारों ने भी इस कार्य में लाखों रुपए खर्च किए। कुरुक्षेत्र की शरणार्थी कैम्प का चार्ज ईस्वी सन् १९४७ के नवम्बर मास में केन्द्रीय सरकार ने ले लिया। इस कैम्प में २०००० शरणार्थी थे। सिन्धी शरणार्थियों के लिए भी प्रारम्भ में केन्द्रीय सरकार ने प्रबंध किया। इसके ५ माह पश्चात् यह प्रबन्ध सम्बन्धित प्रान्तीय सरकारों और राज्यों के हाथ सौंप दिया गया। शरणार्थी कैम्पों का अधिकत्तम खर्च भारत सरकार ने सहन किया।

विभिन्न शरणार्थी कैम्पों में १८०१९४८ तक भारत सरकार द्वारा शरणार्थी शिविरों को दिए गये। इसके अतिरिक्त मुसलमानों द्वारा खाली किए गए घरों, धार्मिक स्थानों और स्कूलों और कॉलेजों की इमारतों में शरणार्थी ठहराए गए। कई शरणार्थी अपने रिश्तेदारों के यहां भी ठहरे।

भारत सरकार और पाकिस्तान सरकार के बीच यह समझौता हुआ था कि शरणार्थियों के आवागमन के समय हर एक सरकार अपनी अपनी राज्य सीमा में सब शरणार्थियों के लिए खाद्य और जीवन की अन्य आवश्यक सामग्री की पूर्ति करेगी। भारत सरकार ने अपना यह वचन पूरी तरह से पालन किया। उसने शरणार्थी शिविरों में ठहरे हुए मुस्लिम और गैर-मुस्लिम शरणार्थियों को समानरूप से भोजन दिया। इतना ही नहीं उसने दोनों प्रकार के शरणार्थियों के लिए डॉक्टरी

चिकित्सा का भी प्रबन्ध किया। पर पाकिस्तान सरकार ने इस ओर बिलकुल ध्यान न दिया।

भारत सरकार का शरणार्थियों के कार्य में भारी खर्च होने लगा। अकेले कुरुक्षेत्र के शिविर में लगभग तीन हजार मन आटा रोज खर्च होता था। कुछ सार्वजनिक संस्थाओं ने भी इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने पंजाब और सिंध के शरणार्थियों की सुरक्षा और प्रबन्ध में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। भारतवर्ष के अन्य स्थानों में भी यह संस्था शरणार्थियों की सहायता में अपनी शक्ति लगाती रही।

पंजाब में बहुत ही सख्त ठंड गिरती है। थके थकाए और मांदे शरणार्थियों की इस ठंड से रक्षा करने के लिए सरकार के पुनर्वास महकमें के द्वारा पूर्वीय पंजाब, दिल्ली और कुरुक्षेत्र में हजारों की संख्या में ब्लांकेट भेजे गए। पश्चिमीय पंजाब के शिविरों में ठहरे हुए गैर-मुस्लिम शरणार्थियों के लिए दस हजार ब्लान्केट हवाई विमानों द्वारा पहुँचाए गए। भारतीय शरणार्थी शिविरों में ठहरे हुए शरणार्थियों में लाखों गज विभिन्न प्रकार के वस्त्र बांटे गए। इतना ही नहीं, बने बनाए शर्ट, जर्सी और पाजामें भी बहुत बड़ी संख्या में शरणार्थियों में बांटे गए।

७ जनवरी १९४८ तक १५ लाख बने बनाए वस्त्र वितरण किए गए। इसके अतिरिक्त कुछ संस्थाओं ने घर घर से वस्त्र इकट्ठे कर शरणार्थियों में तक्सीम किए।

कहने का भाव यह है कि संसार के इतिहास में इतना विशाल जन-परिवर्तन कभी न हुआ। सरकारी प्रबंध में कई त्रुटियां होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस महान् और कठिन समस्या का उस समय उसे सामना करना पड़ रहा था, वह अपने ढंग की बेजोड़ थी। जिस समय इस विशाल जन-समूह का परिवर्तन हो रहा था उस समय सर-

कार का शासन-तन्त्र देश के विभाजन के कारण छिन्न भिन्न हो रहा था और इससे सरकार की कठिनाइयां अनन्त गुणी बढ़ गईं थीं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा था:—

"In future history it will be said that vast and colossal as this problem was, something which might shake the very foundations of Government and the social order, the people of India stood up to it bravely, tackled it and, I hope, ultimately solved it to the advantage of the Nation."

अर्थात् भावी इतिहास में यह कहा जायेगा कि जो समस्या देश के सामने उपस्थित हुई थी, वह इतनी प्रकान्ड और विशालकाय थी कि उससे शासन की नींव और सामाजिक व्यवस्था छिन्न भिन्न हो सकती थी। भारतवर्ष के लोगों ने इसका बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया और इसे हाथ में लेकर राष्ट्र के लाभ में इसे हल किया।"

महात्मा गांधी का शान्ति संदेश

जब साम्प्रदायिक उपद्रवों ने देश के वातावरण को विक्षुब्ध कर रखा था और पाकिस्तान की घटनाओं से भारतीयों के मन स्वाभाविक रूप से बदला लेने की ओर प्रवृत्त होरहे थे, उस समय महात्मा गांधी भारतीय जनता को अहिंसा के दिव्य सिद्धान्त का संदेश दे रहे थे। वे लोगों को अत्याचार का बदला अत्याचार से न लेकर प्रेम के दिव्यास्त्र द्वारा अपने विरोधियों को जीतने का पाठ पढ़ा रहे थे। वे लोगों को समझा रहे थे कि देश के पार पाकिस्तान में मुसलमानों के द्वारा किए गए अत्याचारों का बदला भारतीय मुसलमानों से लेना न्यायसंगत नहीं है।

महात्मा गांधी आदर्शों के उच्च स्तर पर खड़े रह कर भारतीय जनता को मानवता का संदेश दे रहे थे और उसमें देवत्व की भावना का विकास करने का प्रयत्न कर रहे थे। यद्यपि देश के वातावरण को पूरी तरह से शान्त करने में वे सफल न हुए, पर फिर भी उन के उपदेशों के कारण देश की शान्ति-स्थापना में बड़ी सहायता मिली। दिल्ली में प्रार्थना के समय दिए गए उनकी भाषणों से कई लोगों का हृदय-परिवर्तन हुआ और उनमें मानवता का विकास हुआ।

२ अक्टूबर को महात्मा गांधी का जन्म-दिन सारे देश में बड़ी धूम धाम से मनाया गया और उनके अहिंसा के दिव्य सिद्धान्त का प्रचार किया गया।

देशी राज्यों का विलीनकरण

भारतवर्ष की ५०० से ऊपर रियासतों का विलीनीकरण सरदार पटेल ने जिस राजनीतिज्ञता के साथ किया, वह भारतवर्ष के इतिहास में एक विशेष स्थान रखेगा।

सन् १९४७ ई० के जुलाई मास में पार्लियामेन्ट ने जो भारतीय स्वातंत्र्य एक्ट स्वीकृत किया उसकी एक धारा यह है:—

"The suzerainty of His Majesty over the Indian states lapses and with it, all treaties and agreements in force at the date of the passing of this Act between His Majesty and the rulers of Indian States, all functions exercisable by His Majesty at that date with respect to Indian states, all obligations of His Majesty existing at that date towards Indian States or the rulers thereof and all powers, rights, authority or Jurisdiction exercisable by His Majesty at that date in or in relation to Indian states by treaty, grant, usage, sufferance or otherwise."

इसका आशय यह है कि श्रीमान् सम्राट् की भारतीय रियासतों पर जो प्रभुता थी, उसकी समाप्ति हो चुकी है। इसके साथ ही वे सारे सन्धिपत्र व समझौते भी, जो भारतीय राज्यों और श्रीमान् सम्राट् के

बीच इस एक्ट के पास होने तक अमल दरामद में थे, समाप्त हो चुके हैं। श्रीमान् सम्राट् की भारतीय राज्यों तथा उनके शासकों पर सन्धि-पत्र, अनुदानपत्र, लोक व्यवहार और संमति द्वारा जो अधिकार, स्वत्व और अधिकारक्षेत्र प्राप्त थे, उन सबकी भी समाप्ति हो चुकी है।"

भारतीय स्वातंत्र्य एक्ट (Indian Independence Act) द्वारा भारत सरकार को रियासतों के विलिनीकरण का अधिकार प्राप्त हो जाने पर भी, यह कार्य बड़ा प्रचंड और अनेक उलझनों से युक्त था। पर सरदार पटेल ने इसे बड़ी दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता से हल किया। १५ अगस्त १९४७ ई० को सरदार पटेल के इस कार्य के लिये लॉर्ड माउन्टबेटन ने संविधान सभा में कहा था:—

"It was tackled successfully by the far-sighted statesman. Sardar Vallabhbhai patel."

अर्थात् "दूरदर्शी राजनीतिज्ञ सरदार पटेल ने सफलता के साथ इस समस्या को सुलझाया।"

स्टेट मिनिस्ट्री

एक दो देशी राज्यों को छोड़कर प्रायः सभी देशी राज्य भारतीय संघ के साथ सम्बन्धित थे। अतएव उनका विलीनीकरण भारतीय संघ में हुआ। इसके लिए भारत सरकार ने सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में एक अलग विभाग खोला, जिसका नाम स्टेटस् मिनिस्ट्री विभाग रक्खा गया।

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने देशी राजाओं से अपील की कि वे भारतीय संघ में सम्मिलित हो जावें और संविधान में अपने राज्य के प्रतिनिधि भेजें। उन्होंने राजाओं से यह अनुरोध किया कि वे प्रगतिशील समय के साथ अपनी गति करें और अपनी सर्वोपरि सत्ता को अपनी

प्रजा की सर्वोपरि सत्ता में परिणत करदें। जनतन्त्रात्मक राज्य में सर्वोपरिसत्ता का आधार 'लोक' होते हैं, व्यक्ति विशेष नहीं। कहने का भाव यह है कि जहां सरदार पटेल अपनी युक्ति-प्रयुक्तियों से राजाओं के अन्तः करण-परिवर्तन की सफल चेष्टा कर रहे थे, वहां देशी राज्य के प्रजाजन भी अपने राज्यों में घोर आन्दोलन कर भारतीय संघ में सम्मिलित होने का अपना दृढ़ निश्चय प्रकट कर रहे थे। थोड़े से राजाओं को छोड़कर प्रायः सभी राजाओं ने समय की गति को पहचान कर सरदार पटेल के अनुरोध के प्रति अपनी अनुकूल प्रतिक्रिया प्रकट की। लार्ड माउन्ट बेटन के शब्दों में यह कार्य राजाओं की राजनीतिज्ञता और दूरदर्शिता का सूचक था।

१५ अगस्त १९४७ ई० तक १३६ सलामी वाली रियासतों ने प्रवेश पत्र (Instrument of Accession) पर अपने हस्ताक्षर कर भारतीय संघ में सम्मिलित होगये। सिर्फ दो रियासतें हैदराबाद और काश्मीर उस समय संघ में सम्मिलित न हुईं। जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान में सम्मिलित होना स्वीकार किया। इससे वहां के प्रजा-जनों में घोर आन्दोलन हुआ। यहां यह कहना आवश्यक है कि जूनागढ़ रियासत का भारत के साथ सन्निकट सम्बन्ध था और उसका भारतीय संघ में भी शामिल होना ही योग्य था। इसके अतिरिक्त नवाब ने वहां के प्रजाजनों की सम्मति भी न ली थी। अतएव जूनागढ़ के प्रजाजनों ने नवाब के इस कार्य का घोर विरोध करना शुरू किया।

सारे प्रजा जनों ने नवाब के खिलाफ़ विद्रोह का झण्डा उठाया। नवाब भयभीत होकर अपनी रियासत का चार्ज दीवान और पुलिस कमिश्नर को सौंपकर पाकिस्तान भाग गए। प्रजा का आन्दोलन दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता गया। दीवान और पुलिस कमिश्नर स्थिति को न सम्भाल सके। अतएव उन्होंने राजकोट के रेजिनल कमिश्नर से यह प्रार्थना की कि वे राजकोट का शासन सूत्र सम्भालने के

लिए भारत सरकार से अनुरोध करें।

९ नवम्बर १९४७ को जूनागढ़ का शासन भारत सरकार ने अपने हाथ में लेलिया और ईस्वी सन् १९४८ के १२ फरवरी से लगाकर २४ फरवरी तक वहां का सर्वजनमत ग्रहण किया गया। कुछ मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर सारे जन समाज ने जूनागढ़ के भारतीय संघ में विलीन होने के पक्ष में अपना मत दिया। खास जूनागढ़ नगर में, जहां के मतदाताओं की संख्या २००९६१ (२१६०६ मुसलमान और १७८३६६ गैर मुस्लिम) थी और जहां १९०८७० मतदाताओं ने अपने मत डाले, १९०७७९ मत भारतीय संघ में विलीनीकरण के पक्ष में आये। केवल ९१ मत पाकिस्तान के पक्ष में गए। इससे जनतन्त्र के महान् सिद्धान्त के अनुसार जूनागढ़ राज्य भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया गया।

देशी राज्य और उत्तरदायित्व पूर्ण शासन

भारतीय स्वाधीनता के साथ देशी राज्यों की प्रजा में भी स्वतन्त्र होने की भावना ज्वलन्त रूप से जागृत हो उठी। कई राजाओं ने समय की गति को पहचान कर अपनी प्रजा को उत्तरदायित्व पूर्ण शासन प्रदान कर दिया। कुछ राजा हिचकते रहे। इस पर सरदार वल्लभ भाई पटेल ने उन राजाओं को चेतावनी देते हुए कहा कि:—

"It has already become obvious that if a Ruler lags behind in the movement for the establishment of full responsible Government, he will do so to his disadvantage and to the disadvantage of his people;"

अर्थात् यह बात स्पष्ट है कि उत्तरदायित्व पूर्ण शासन स्थापित करने

में यदि कोई राजा पीछे रहेगा तो वह अपना और अपने लोगों का अहित करेगा।

देशी राज्यों का विलीनीकरण

देशी राज्यों का विलीनीकरण भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्व पूर्ण घटना है। जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं कि सरदार पटेल की बड़ी दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता ने एक रक्तहीन क्रान्ती के द्वारा इस कार्य को बड़ी सफलता के साथ सुसम्पन्न किया। विलीनीकरण की योजना के अनुसार २३ रियासतें जिनका क्षेत्र फल २३६४३ वर्ग मील और जिनकी जन-संख्या ४०.५ लाख के ऊपर थी, उड़ीसा प्रान्त में विलीन कर दी गईं।

दो रियासतें, जिनका क्षेत्र फल ६२३ वर्गमील, कुल लोक-संख्या २,००,००० लाख और वार्षिक आमदनी ४,३६ लाख थी, बिहार प्रान्त में विलीन कर दी गईं। १५ रियासतें मध्यप्रान्त में विलीन कर दी गईं। इनका क्षेत्रफल ३१८७६ वर्गमील, लोक संख्या २८,२४ लाख और वार्षिक आमदनी ८८.११ लाख थी। तीन रियासतें, जिनका कुल क्षेत्रफल १४४४ वर्गमील, कुल लोकसंख्या ४.८३ लाख और कुल वार्षिक आमदनी ३०.८१ लाख थी मद्रास में विलीन करदी गईं।

३ रियासतें, जिनका क्षेत्रफल ३७० वर्गमील, लोक संख्या ८.६७ लाख और कुल वार्षिक आमदनी ८.०५ लाख थीं, पूर्वीय पंजाब में सम्मिलित करदी गईं। ३०५ रियासतें, जिनका कुल क्षेत्रफल २४,८६४ वर्गमील, लोक संख्या ४३.१७ लाख और वार्षिक आमदनी २०७.१५ लाख थीं, बम्बई प्रान्त में विलीन करदी गईं।

जिन रियासतों का विलीनीकरण सम्भव नहीं हुआ, उनके संघ (Union) बना दिये गये। इस प्रकार का सबसे पहला रियासती संघ सौराष्ट्र का बना जिससे ४५६ रियासतें सम्मिलित हुईं और

इसके राजप्रमुख नवानगर के महाराजा बनाये गये। इस संघ (Union) का क्षेत्रफल ३२६४६ वर्गमील, लोक संख्या लगभग ३२.०६ लाख और वार्षिक आय ८ करोड़ है। इसका उद्घाटन १५ फरवरी १९४८ ई० को सरदार वल्लभ भाई पटेल ने किया था। दूसरे राज्य संघ निम्न प्रकार से बने:—

संघ	सम्मिलित रियासतें	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जन संख्या	वार्षिक आय रू०
मत्स्य	४ रियासतें, (अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली)	७,५८६	१८.३८ लाख	१८३,०६ लाख
राजस्थान	१० रियासतें (कोटा, बांसवाड़ा, शाहपुरा, बूंदी डूँगरपुर, झालावार, किशनगढ़, प्रतापगढ़, टोंक और उदयपुर)	२६,६७७	४२.६२ लाख	३१६.६७ लाख
पूर्वी पंजाब व पटियाला (PEPSU)	८ रियासतें	१०,०००	३५ लाख	५ करोड़
मध्यभारत	२२ रियासतें	४७,०००	७२ लाख	८ करोड़
विंध्यप्रदेश	३५ रियासतें	२४,५६८	३५.६९ लाख	२४३.३ लाख
हिमाचल प्रदेश	२४ रियासतें	११,२५४	१०.४६ लाख	६१.०४ लाख

उपरोक्त विवरण से रियासती संघों और प्रान्तों में सम्मिलित होने वाली रियासतों का साधारण विवरण दिया गया है। इस पर यहां कुछ अधिक प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

छोटी रियासतों का विलीनीकरण सबसे पहले उड़ीसा की रियासतों से प्रारम्भ हुआ। उड़ीसा की २३ रियासतों के शासकों ने दिसम्बर

१९४७ ई० में होने वाली कटक कान्फ्रेन्स में सरदार पटेल के अनुरोध से अपनी रियासतों को उड़ीसा में विलीन करने की स्वीकृति दी। इसके कुछ दिन बाद में ही मध्यप्रान्त के छत्तीसगढ़ जिले की १४ रियासतों के शासकों ने सरदार पटेल के अनुरोध को स्वीकार किया और उन्होंने अपनी रियासतों को १ जनवरी १९४८ ई० को मध्यप्रान्त में विलीन कर दिया। इस वक्त उड़ीसा की मयूरभंज नामक एक बड़ी रियासत का विलीनीकरण नहीं हुआ। १ फरवरी १९४८ ई० को कुछ अन्य छोटी रियासतों ने भी विलीनीकरण की स्वीकृति दे दी। मकराई रियासत मध्य प्रान्त में सम्मिलित हो गई।

२२ फरवरी १९४८ ई० को बंगनपाल नामक एक छोटी रियासत मद्रास प्रान्त में विलीन हो गई। लोहारू और पाटोदी रियासतों का पूर्वीय पंजाब में विलीनीकरण हो गया। ३ मार्च १९३८ ई० को पुदुकोटा नामक की एक बड़ी रियासत मद्रास प्रान्त में विलीन हो गई।

इसी बीच कोल्हापुर को छोड़कर दक्षिण की २६ रियासतों ने बम्बई प्रान्त में विलीन होने का निश्चय प्रगट किया। इसके पहले, इन रियासतों में से ८ ने अपना एक नया संघ बनाया था। इसके बाद बड़ौदा को छोड़कर, गुजरात की १८ रियासतों ने बम्बई प्रान्त में विलीन होने की स्वीकृति दी।

हिमाचल प्रदेश में टेहरीगढ़वाल को छोड़कर पूर्वी पंजाब की सब पहाड़ी रियासतें सम्मिलित कर दी गईं और यह प्रदेश एक चीफ कमिश्नर के आधीन रक्खा गया।

इस वक्त तक जिन छोटी रियासतों का विलीनीकरण होना बाकी था, वे सन्दूर (मद्रास), टेहरी गढ़वाल, बनारस, रामपुर (उत्तर प्रदेश) जैसलमेर (राजपूताना), कूच बिहार मणीपुर और खासी हिल स्टेट (आसाम) आदि थी। पीछे जाकर बची हुई सब रियासतें भारतीय संघ में सम्मिलित हो गईं।

कच्छ की बड़ी रियासत का शासन-भार हिन्द सरकार ने सीधा अपने हाथ में ले लिया।

राजस्थान संघ १९ मार्च १९४८ ई० में पहले पहल कोटा में बना, जिसमें कोटा, बांसवाड़ा, शाहापुरा, बूंदी, डूँगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, प्रतापगढ़ और टोंक की रियासतें शामिल हुईं। १२ अप्रेल सन् १९४८ ई० को इस इस संघ का उदयपुर में पुनर्संगठन हुआ और इसमें मेवाड़ शामिल कर लिया गया। उदयपुर के महाराना साहिबा इस पुनर्संगठित राज्य के राज्य प्रमुख बने। इस पुनर्संगठित संघ का उद्‌घाटन पं० जवाहरलाल नेहरू ने उदयपुर में किया.।

मध्यभारत में जो रियासती संघ बना, वह सबसे अधिक विशालकाय है। इसके राज्य प्रमुख महाराजा साहिब ग्वालियर हैं। इसमें ग्वालियर, इन्दौर, भोपाल, रतलाम, जावरा, सैलाना, नरसिंहगढ़, राजगढ़, आदि २२ रियासतें हैं। इसका क्षेत्रफल ४८,००० वर्गमील, जनसंख्या ७०,००,००० से ऊपर और वार्षिक आय ६ करोड़ से अधिक है। इसका उद्‌घाटनोत्सव २८ मई १९४८ ई० को ग्वालियर में पं० जवाहरलाल नेहरु ने किया था।

मत्स्यसंघ—इसना उद्‌घाटन १७ मार्च १९४८ ई० को भरतपुर में श्री० एन० वी० गाडगिल ने किया। इस नये संघ में धौलपुर, भरतपुर, अलवर और करौली की रियासतें सम्मिलित हुईं। इसके राज्यप्रमुख महाराजा धौलपुर बनाये गये।

पूर्वीय पंजाब—१९ जुलाई १९४८ ई० को पटियाला में सरदार वल्लभ भाई पटेल के कर कमलों से इस संघ का उद्‌घाटन हुआ। इसमें पटियाला, कपूरथला, नाभा, झिन्द, फरीदकोट, मालेरकोटला, कलसिया, नलागढ नामक रियासतें सम्मिलित हुईं। महाराजा पटियाला आजीवन के लिये इसके राज्यप्रमुख और महाराजा कपूरथला आजीवन के लिये उपराज्यप्रमुख बनाये गये।

हैदराबाद की समस्या

भारत को अधिराज्य का पद प्राप्त होने पर हैदराबाद की समस्या उसके सामने उपस्थित हुई। यहाँ यह प्रकट करना आवश्यक है कि हैदराबाद अपने इतिहास में कभी स्वतंत्र नहीं रहा। मुगल बादशाहत के समय इसकी उत्पत्ति हुई और वह उसके मातहत होकर रहा। उसके बाद उसने ब्रिटिश सरकार की आधीनता स्वीकार की। लॉर्ड रीडिंग के कार्यकाल में इन्हीं वर्तमान निज़ाम ने सिर उठाया और वे स्वतंत्रता का दावा करने लगे। इस पर लॉर्ड रीडींग ने इन्हें खूब झिड़का और यह प्रकट किया कि हैदराबाद ब्रिटेन के बराबर की नहीं और वह ब्रिटिश सरकार की एक मातहत रियासत है। बस, निज़ाम यह झिड़की और अपमान सह कर चुप हो लिये।

जब भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, तब यह स्वाभाविक था कि जो सम्बन्ध निजाम का ब्रिटिश सरकार के साथ था, वही सम्बन्ध स्वतंत्र भारत के साथ भी रहे। पर बहुत समझाने बुझाने पर भी निजाम इस पर राजी नहीं हुए। कई मास तक वे भारतीय संघ में प्रवेश करने का निर्णय नहीं कर सके। संघर्ष को टालने के लिये भारत सरकार ने २९ नवम्बर १९४७ ई० को निजाम के साथ एक यथास्थित समझौता (Stand still Agreement) किया। इस समझौते में यह प्रकट किया गया कि जब तक निज़ाम के साथ अन्तिम समझौता न हो, तब तक इस यथास्थित समझौते का दोनों ओर से पालन होता रहे।

उस अस्थायी समझौते से यह आशा हो चली थी कि भारतीय

अधिराज्य और हैदराबाद के बीच मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जावेंगे, पर दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका। वर्तमान निज़ाम की मुस्लिम परस्त नीति मशहूर रही है। इसके अतिरिक्त रियासत की साम्प्रदायिक नीति से प्रोत्साहन पाकर हैदराबाद में 'मज़लिस ई० इतिहाद-मुसलमीन' नामक एक मुस्लीम साम्प्रदायिक संस्था का जन्म और विकास हुआ। इसकी अधीनता में एक शक्तिशाली सैनिक स्वयं-सेवक दल था, जो रजाकार' के नाम से मशहूर था। इस दल ने साफ़ तौर से यह घोषित किया कि हैदराबाद राज्य की प्रभुता (Sove reignty) वहाँ की २०,००,००० मुस्लिम प्रजा में स्थित है और निज़ाम उसके प्रतीक (Symbol) हैं। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि हैदराबाद की कुल जनसंख्या १,६३, ०८,००० है, जिसमें मुसलमान केवल १२ प्रतिशत हैं। अगर निज़ाम न्याय दृष्टि से विचार कर भारत सरकार के साथ समझौता कर लेते तो यह संघर्ष टल गया होता। पर इस समय निज़ाम ने जो रुख अख्तियार किया वह हैदराबाद और वहाँ की प्रजा के लिये बहुत ही अहितकर सिद्ध हुआ। रज़ाकारों द्वारा रियासत की हिन्दू जनता पर भयंकर अत्याचार, लूट मार आदि होने लगे। इतने पर भी भारत सरकार ने एकाएक कड़ा कदम उठाना उचित न समझा और निज़ाम के साथ मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का पूरा पूरा प्रयत्न किया। पर उक्त मज़लिस की घोर साम्प्रदायिक नीति के कारण सफलता न मिल सकी। पं० जवाहर लाल नेहरू ने हैदराबाद को चेतावनी देते हुए कहा था कि उसे यह सोच लेना चाहिये कि वह समय की प्रबल धारा के ख़िलाफ़ खड़ा नहीं हो सकता और मध्ययुगीन सामन्तशाही शासन को चालू रखना उस स्थिति में उसके लिये बिल्कुल असंभव है, जब कि भारत के अन्य प्रान्तों और राज्यों में लोग उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का उपभोग कर रहे हैं।

रजाकारों के अत्याचार और उपद्रव दिन पर दिन बढ़ते गये। वे

और उनके नेता दिल्ली पर निजाम या आसफशाही का झन्डा उड़ाने का दुःस्वप्न देखते रहे। भारत की सीमा पर भी उनके आक्रमण होने लगे भारत सरकार के लिये यह स्थिति असह्य हो गई। इस पर भारत सरकार ने हैदराबाद पर पुलिस कारंवाई करना निश्चित किया। १३ सितम्बर १९४८ ई० को भारतीय फ़ौज ने हैदराबाद की सीमा में प्रवेश किया। हैदराबाद की सेना और रज़ाकारों द्वारा किया गया मुक़ाबला अत्यन्त निर्बल सिद्ध हुआ। ५ दिन की कशमकश के बाद रज़ाकारों और हैदराबाद की सेना ने पूर्णरूप से पराजित होकर आत्मसमर्पण कर दिया। हैदराबाद की सैनिक शक्ति के सम्बन्ध में हैदराबाद के लायकअली मन्त्रिमंडल ने प्रचार के द्वारा जो आतंक उत्पन्न कर रखा था वह कपोल-कल्पित सिद्ध हुआ। भारतीय सैना ने बहुत ही सरलता के साथ विजय प्राप्त करली।

भारत सरकार ने वहाँ का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया और उसने मेजर जनरल जे० एन० चौधरी को वहाँ का मिलिटरी-गर्नवर और श्री० डी० एस० वावले को प्रधान शासक नियुक्त किया। सैयद कासिम रिज़वी, जो इन रज़ाकारों का नेता था और सब बुराइयों की जड़ था, गिरफ्तार कर लिया गया। इस समय वहाँ जो शासन है वह भारत सरकार की देख रेख में चलता है।

काश्मीर

काश्मीर पर कबालियों का आक्रमण—काश्मीर और जम्मू की रियासतें, भौगोलिक दृष्टि से, भारत व पाकिस्तान की सीमाओं से मिली हुई हैं। भारत के साथ उसका सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध अधिक रहा है। महाराजा काश्मीर ने दोनों अधिराज्यों (Dominions of India and Pakistan) के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध रखते हुए स्वतंत्र रहने का निश्चय किया। पर इसमें उन्हें सफलता न मिली।

भारत के उत्तर-पश्चिमीय सीमा प्रान्त के निकटवर्ती प्रदेश के कबाय-लियों ने उस पर आक्रमण कर दिया। इनके इस आक्रमण में पाकिस्तान का भी अप्रत्यक्ष हाथ था। इन अफ्रिदी कबायली आक्रमणकारियों के पास नये से नये ढंग के सैनिक शस्त्रास्त्र थे। पहले पहल ये काश्मीर के पूर्व जिले में घुसे और फिर स्यालकोट और हजारा जिलों पर इन्होंने आक्रमण किया। महाराजा काश्मीर के पास इतनी फ़ौजी ताक़त नहीं थी कि जिससे इनका सफलता पूर्वक सामना किया जा सके। इससे ये आक्रमण-कारी आगे बढ़ते ही गये और काश्मीर की राजधानी श्रीनगर के निकट तक पहुँच गये। काश्मीर के डोंगरे सैनिकों ने इनका बड़ी बहादुरी से मुक़ाबला किया, पर ये संख्या में बहुत कम होने के कारण आक्रमण-कारियों का गति रोध न कर सके। इन आक्रमणकारियों के सफल हमलों के कारण एक समय यह आशंका होने लगी थी कि कहीं ये सारे काश्मीर पर छा न जावें।

महाराजा काश्मीर ने इन आक्रमणकारियों का मुक़ाबला करने में अपने आप को असमर्थ पाकर, २५ अक्टूबर १९४७ ई० को भारतीय संघ में प्रवेश करना स्वीकार कर लिया और उन्होंने भारत सरकार से यह प्रार्थना की कि वह सैनिक सहायता भेज कर काश्मीर की रक्षा करे। इसी समय महाराजा ने काश्मीर की राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्स के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला के प्रधान मन्त्रित्व में काश्मीर को उत्तरदायित्व शासन प्रदान करने की घोषणा की।

भारत सरकार ने भारत के अधिराज्य में काश्मीर का प्रवेश स्वीकार कर लिया और साथ ही, उसने यह मन्तव्य भी स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया कि शान्ति और व्यवस्था कायम हो जाने पर काश्मीर की जनता का मत ग्रहण कर काश्मीर का राजनैतिक भविष्य निश्चित किया जायगा। इसी बीच में भारत सरकार ने महाराजा की सैनिक सहायता की अपील को स्वीकार कर काश्मीर प्रदेश की सुरक्षा और लोगों के जानमाल की

रक्षा के लिये, काश्मीर को अपनी सेना भेजी। आरंभ में भारत सरकार को यह सेना वायुयानों द्वारा भेजनी पड़ी।

भारतीय सेना के काश्मीर पहुँचने पर उसका कबायली आक्रमणकारियों के साथ डट कर मुक़ाबला हुआ। पाकिस्तान की सीमा काश्मीर से लगी होने के कारण उक्त कबायलियों को पाकिस्तान से हर प्रकार की सहायता प्राप्त करने में सुविधा होती थी। ये लोग पाकिस्तान की सीमा में जाकर आश्रय ग्रहण कर लेते थे। पाकिस्तान ने इन्हें काश्मीर में जाने के लिये खुला रास्ता दे रखा था। इस पर भारत सरकार ने पाकिस्तान सरकार से यह अनुरोध किया कि वह कबायली आक्रमणकारियों को अपनी सीमा से न गुज़रने दे। ऐसा करना अन्तर्राष्ट्रीय नियम और शील के विरुद्ध है। पर पाकिस्तान सरकार ने अपनी तटस्थता की नीति बतलाते हुए इस कार्य में टालमटोल की और कबायली आक्रमणकारी पाकिस्तान के रास्ते से होकर काश्मीर पर बराबर आक्रमण करते रहे।

भारतीय फ़ौज ने, काश्मीर के पहाड़ी प्रदेश से अनभिज्ञ और अनभ्यस्त होते हुए भी, बड़ी बहादुरी से इन आक्रमणकारियों का मुक़ाबला किया और इन्हें काश्मीर के बहुत से प्रान्तों से निकाल बाहर किया। कहा जाता है कि अगर भारतीय सेना की गतिविधि इसी प्रकार चलने दी जाती और भारत सरकार सुरक्षा कौंसिल के चक्र में न पड़ती तो अगले एक आध मास में ही काश्मीर इन कबायलियों से पूर्ण रूप से मुक्त हो गया होता और आज जिन अन्तर्राष्ट्रीय उलझनों का सामना करना पड़ा रहा है, उनसे देश बच जाता।

कुछ भी हो, यह मामला सुरक्षा परिषद् (Security Council) में रखा गया और उसने बहुत वादानुवाद के बाद यह वक्तव्य प्रकाशित किया कि जम्मू और काश्मीर में शान्ति की पुनर्स्थापना के लिये भारत और पाकिस्तान की लड़ाई बन्द करने का भरसक प्रयत्न करें। सुरक्षा

कौंसिल ने अपने ५ सदस्यों का एक कमीशन भी इस कार्य के लिये नियुक्त किया।

कमीशन ने भारत और पाकिस्तान में दौरा किया और उसने शान्ती रक्षा और व्यवस्था की स्थापना तथा सर्व जनमत ग्रहण पर जोर देते हुए दोनों अधिराज्यों की सरकारों से युद्धबन्दी (Cease fire) का अनुरोध किया। भारत सरकार ने यह अनुरोध सहर्ष स्वीकार कर लिया। पर पाकिस्तान सरकार ने उस समय ऐसा करने से इन्कार कर दिया। पीछे जाकर उसे भी यह आदेश स्वीकार करना पड़ा।

सुरक्षा परिषद् ने इस मामले में जैसा पक्षपातपूर्ण रुख स्वीकार कर रखा है, वह प्रायः सब पर प्रकट है। मामला अभी तक खटाई में पड़ा हुआ है। भारतवर्ष और आक्रमणकारियों को एक स्तर में रख कर शुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से उसने जैसा अन्याय किया है, उस पर इस समय यहां लिखने की आवश्यकता नहीं।

महात्मा गाँधी की हत्या

विश्वभर में शोक की काली घटाएँ

हम गत पृष्ठों में महात्मा गांधी के उन व्याख्यानों और भाषणों की ओर संकेत कर चुके हैं, जो महात्मा गांधी अपनी प्रार्थनाओं के बाद दिल्ली में दिया करते थे। इन भाषणों में वे अहिंसा और विश्वप्रेम का संदेश देते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर देते थे। वे लोगों को यह संदेश देते थे कि अत्याचार का बदला अत्याचार से न लो वरन् प्रेम और अहिंसा की ईश्वरीय शक्ति के द्वारा अत्याचारियों के हृदय-परिवर्तन करने का प्रयत्न करो। संसार में प्रेम-साम्राज्य स्थापित कर इसे स्वर्ग बनाने की चेष्टा करो। अत्याचार का बदला अत्याचार से लेना यह मानवता के दिव्य सिद्धान्त के विरुद्ध है। अगर मुसलमान पाकिस्तान में हिन्दुओं पर अत्याचार कर पशुता का परिचय देते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हम यहां के मुसलमानों पर अत्याचार करें और अपनी पशु-प्रकृति को प्रकट करें। इन्हीं भावों को लेकर महात्मा गांधी मानव प्रकृति को दैवी प्रकृति में परिणत करने की चेष्टा कर रहे थे। मानवीय विकास के उच्चतम धरातल पर आसीन होकर वे विश्वबन्धुत्व और अहिंसा के महान् सिद्धान्त द्वारा जनता के आत्मिक धरातल को ऊँचा उठाने का प्रयत्न कर रहे थे।

जिस समय महात्मा गांधी भारतीय जनता को विश्व प्रेम का दिव्य संदेश दे रहे थे उस समय पाकिस्तान में गैर-मुस्लिमों पर भयंकर और अमानुषिक अत्याचार गुज़र रहे थे। हिन्दुओं और सिक्खों में हाहाकार मच

रहा था। ऐसे ऐसे क्रूरता और दुष्टता के कार्य हो रहे थे जिनकी कल्पना करने से भी मानवी-अन्तःकरण घोर विषाद के वातावरण से अन्धकार-मय हो जाता है। इन अत्याचारों की प्रतिक्रिया कहीं कहीं भारतवर्ष में भी होरही थी। साधारण मनुष्य-प्रकृति अपने पर या अपने समाज पर किए गए अत्याचारों से विक्षुब्ध हो उठती है। क्रिया की प्रतिक्रिया होना विज्ञान और दर्शनशास्त्र का सिद्धान्त है। इस प्रतिक्रिया का प्रभाव उस समय भारतवर्ष पर भी हो रहा था। बदले की भावनाएँ उग्र रूप धारण कर रहीं थीं। यद्यपि महात्मा गांधी के दिव्य संदेश से इस प्रतिक्रिया का प्रभाव कुछ अंशों में निर्बल हो रहा था, पर फिर भी कई लोगों के अन्तःकरण में इसने अपना आधिपत्य जमा लिया था। महात्मा गांधी के विश्व-प्रेम के संदेश उनके अन्तः करणों को शान्त करने के बजाय विक्षुब्ध कर रहे थे। श्री चांदीवाला ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि उस समय महात्मा गांधी को बहुत से ऐसे पत्र मिला करते थे जो क्रोधयुक्त भावों से भरे रहते थे और उनमें उनके लिये बुरी से बुरी गालियाँ लिखी रहती थीं।

कहने का भाव यह है कि महात्मा गांधी के उपदेशों का दो विभिन्न मनोवृत्तियों पर दो प्रकार के विभिन्न प्रभाव पड़ रहे थे। एक मनोवृत्ति, जहां उनके उपदेशों से विश्व-प्रेम की ओर गति करती हुई साम्प्र-दायिक एकता को देश के लिए हितकर समझने लगी थी, वहां दूसरी मनोवृत्ति पर इसका उलटा असर हो रहा था। यह दूसरी मनोवृत्ति महात्मा गांधी पर मुस्लिम पक्षपात का आरोप लगाकर उनको कोसा करती थी और उनके उपदेशों को देश के लिए अहितकर समझती थी। पाकिस्तान में होने वाली घटनाओं ने इस दूसरी मनोवृत्ति को काफ़ी सहायता पहुँचाई।

मनोविज्ञान का नियम है कि प्रेम से प्रेम की उत्पत्ति होती है और घृणा से घृणा की। हाँ,महापुरुषों के आत्मिक संदेश घृणा को प्रेम में परि-

वर्तित कर देते हैं। पर यह बात सर्वांश में होना सम्भव नहीं। भगवान् बुद्धदेव, महात्मा ईसा सरीखे महापुरुषों ने जहाँ संसार को बदल दिया। वहाँ उनके भी विरोधी होने के उल्लेख मिलते हैं। महात्मा गांधी के लिए भी यही बात कही जासकती है।

महात्माजी के दिव्य उपदेशों का कुछ लोगों पर उल्टा असर हो रहा था। वे महात्माजी को हिन्दू जाति का विरोधी और मुसलमानों का पक्ष-पाती समझने लगे थे। ऐसे लोगों के भी दो वर्ग थे; एक नर्म और एक उग्र। इनमें से दूसरे वर्ग के लोगों का एक छोटा सा विशेष संगठन बना, जिसने महात्मा गांधी की हत्या का षड्यन्त्र रचा था। नाथूराम गोडसे, इसी षड्यन्त्र का मुखिया था।

बम्बई सरकार और सरदार पटेल को अपनी खुफिया पुलिस द्वारा इस प्रकार के षड्यन्त्र का कुछ संकेत मिला था। उन्होंने महात्मा गांधी से कई बार यह अनुरोध किया कि वे प्रार्थना के समय पुलिस का प्रबन्ध रखने में आपत्ति न करें। सरदार पटेल ने महात्मा गांधी की हत्या के कुछ समय पहले भी इस बात पर जोर दिया था। पर महात्मा गांधी ने उनके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया और प्रार्थना के समय पुलिस का रखना उन्होंने पसन्द न किया।

सन् १९४८ की ३० जनवरी की शाम को, महात्मा गांधी दिल्ली के बिड़ला भवन के मैदान में, प्रार्थना करने के लिये, अपने नियत स्थान पर पहुँचे। ज्योंही वे प्रार्थना करने के प्लेटफार्म पर पहुँचे कि झुण्ड में से एक युवक महात्मा गांधी की ओर बढ़ा और कहने लगा "बापू" आज आप को देर हो गई है" और वह इस तरह झुकने लगा मानो वह बापू के चरणों को छूना चाहता है। पर उसने इस समय जो कार्य किया उससे विश्वभर की मानवता का अन्तःकरण दहल गया। इसी समय उसने अपनी जेब से पिस्तौल निकाल कर,

बापू पर तीन वार किये ! "बापू" 'हरे राम हरे राम' कह कर बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े ! सारा उपस्थित समाज हक्का बक्का रह गया। चारों ओर हाहाकार मच गया और लोग बापू की ओर दौड़ने लगे। कई लोगों ने, अपनी जान की परवाह न कर, हत्यारे को पिस्तोल सहित पकड़ लिया। लोग बापू को उठा कर बिड़ला भवन में ले गये। बाहर लोग बापू के जीवन रक्षा की भगवान से प्रार्थना करने लगे। बापू के शिष्य प्रशिष्य और कुटुम्बी आँखों में आँसू भर कर धड़कते हुए हृदय के साथ, बापू के शरीर के आस पास बैठ गये। चिकित्सकगण बापू को बचाने की भरसक चेष्टा करने लगे। बापू के हृदय की गति अधिकाधिक मन्द होती गई और अन्त में बापू का वह नश्वर शरीर पंचतत्व को प्राप्त हो गया ! उनकी आत्मा ने दिव्य लोक को प्रयाण किया। यह समाचार बिजली की तरह सारी दिल्ली में फैल गया और फिर सारे संसार को इस समाचार ने शोक और विषाद से आवृत कर दिया।

सरदार वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद शोक के गम्भीरत्तम भावों को लेकर बिड़ला भवन पहुँचे। आप लोगों के बाद कांग्रेसनेता गण, जो कि उस समय दिल्ली में थे, केबिनेट के सदस्यगण, विदेशी राजदूत, महात्मा गांधी के भक्त और कुटुम्बी जन तथा विशाल जन समूह देखते देखते इकट्ठा हो गया। पं० जवाहर लाल नेहरू को ज्योंही यह खबर लगी त्योंही उनके शरीर का परमाणु परमाणु शोक से विह्वल हो गया और वे शीघ्र से शीघ्र बिड़ला भवन पहुँच कर बापू के शरीर के पास बैठ गये।

दूसरे दिन बापू की अन्त्येष्टि क्रिया होने वाली थी, अतएव भारतवर्ष के निकटस्थ और दूरस्थ देशों से लाखों लोग अपने प्रिय बापू के शवके दर्शनों के लिये ट्रेनों, मोटरकारों और वायुयानों के द्वारा दिल्ली पहुँचने लगे।

बापू का शरीर एक बड़ी गाड़ी में रखा गया और वह फूलों से ढक दिया गया। बापू का मुखमण्डल वैसा ही प्रकाशमान दिखाई देता था

जैसा कि वह उनकी जीवित अवस्था में भान होता था।

स्वर्गीय गांधी जी को श्रद्धांजलियाँ

महात्मा गांधी के स्वर्गवास के समाचार से न केवल भारतवर्ष के कोने कोने में, वरन् अखिल भूमण्डल पर शोक और विषाद की घनघोर घटाएँ छा गईं ! सारे संसार ने उन्हें जो श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं, वे संसार के इतिहास में अद्वितीय और अभूतपूर्व थीं। संसार का कोई कोना ऐसा न था, जिसमें इस महापुरुष की मृत्यु के ऊपर शोक न मनाया गया हो।

महात्मा गांधी किसी देश विशिष्ट के नहीं पर संसार के महापुरुष थे। उनका विशाल हृदय अखिल मानवजाति के कल्याण और हित का प्रतीक था। उनके स्वराज्य का आदर्श अत्युच्च और दिव्य था। वे चाहते थे कि भारतवर्ष स्वराज्य प्राप्त कर, संसार को दिव्य संदेश दे और मनुष्य जाति को ऊँचा उठावे। विश्वशान्ति के वे पृष्ठपोषक थे। उनके हृदय से बहने वाला आत्मिक झरना मनुष्यजाति में शान्ति का संचार करता था। ऐसे महापुरुष की मृत्यु के ऊपर सारे संसार का शोकग्रस्त होना स्वाभाविक ही था। उनके स्वर्गवास से विश्व की ज्योति बुझ गई, यद्यपि भारतीय दर्शन के अनुसार उनकी अमर आत्मा मनुष्य जाति को अमर प्रेरणा देती रहेगी और उसके मार्ग को प्रकाशमान करती रहेगी। पं० जवाहरलाल नेहरु ने उनकी मृत्यु पर अपने व्याख्यान में विषादपूर्ण हृदय से कहा था:

"हमारे जीवन का प्रकाश चला गया। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है ! मैं भी ठीक नहीं जानता कि आपसे क्या और कैसे कहूँ। हमारा प्यारा नेता, जिसे हम बापू के नाम से पुकारते थे, हमारे राष्ट्र का पिता, आज हमारे साथ नहीं है। अब हम उसे न देख सकेंगे। अब हम उसके उपदेश के लिए और उससे शान्ति पाने को उसके पास न दौड़ सकेंगे

यह भयंकर आघात केवल मेरे लिए ही नहीं है, पर इस देश के लाखों करोड़ों मनुष्यों के लिए है। किसी उपदेश के द्वारा इस आघात के प्रभाव को कम करना आपके और मेरे लिए कठिन है।"

"मैंने कहाकि प्रकाश चला गया। पर नहीं मैं गलती पर हूँ। क्यों कि जो प्रकाश इस देश में चमक रहा था वह साधारण प्रकाश नहीं था। जिस प्रकाश ने कई वर्षों तक इस राष्ट्र को प्रकाशित किया वह प्रकाश आगे के हजारों वर्षों तक इस देश को और प्रकाशित करता रहेगा। संसार इस प्रकाश को देखेगा और संसार के अनन्तानन्त हृदयों को शान्ति देता रहेगा। यह प्रकाश तात्कालिक वर्तमान ही पर नहीं, पर सुदूर भविष्य पर अपना प्रभाव डालता रहेगा। यह एक उस जीवित और सत्य अमर पुरुष का प्रतिनिधित्व करता रहेगा, जिसने, हमें अवि-नाशी सत्य के दर्शन करवाये, जिसने हमें भूलों से बचाया और जिसने इस प्राचीन देश को स्वाधीनता प्राप्त करवाई।"

आगे चलकर अपने भाषण का अन्त करते हुए पंडित जी ने कहा कि "हमारी सबसे बड़ी प्रार्थना यह है कि हम सत्य के लिए और उस आदर्श के लिए, जिसके लिए हमारे देश का यह महापुरुष जिन्दा रहा और मरा अपने आप को समर्पित करदें। यही सर्वोत्कृष्ट प्रार्थना है जो हम उस महापुरुष के लिए और उसकी पवित्र स्मृति के लिये कर सकते हैं।

सरदार पटेल ने दुःखित हृदय से कहाः-"मेरे प्यारे भाई जवाहर लाल अभी आपके सामने बोल चुके हैं। मेरा हृदय विषाद से भरगया है! मैं आप से क्या कहूँ। मेरी जिव्हा स्तब्ध होगई है! यह दिन शोक, शर्म और मानसिक यन्त्रणा का है! आज मैं दिन के ४ बजे गांधी जी के पास गया था और उनके पास लगभग १ घंटा तक ठहरा था। पाँच बजे उन्होंने अपनी घड़ी निकाली और मुझे स्मरण दिलाया कि उनकी प्रार्थना का समय हो गया है। वे सदा की तरह ठीक समय पर अपने प्रार्थना

करने के स्थान के लिए निकले। मैं मुश्किल से घर पहुँचा ही था कि किसी ने मुझे यह दुःखद समाचार दिया कि प्रार्थना स्थानपर गांधी जी पर एक हिन्दू युवक ने ३ बक्त गोलियाँ चलाई। मैं तत्काल बिड़ला भवन पहुँचा और गांधी जी के पास बैठ गया। यद्यपि उनकी आंखें उस समय बन्द हो चुकी थीं पर उनके चेहरे पर पहिले की तरह एक अपूर्व शान्ति झलक रही थी। उनका मुखमण्डल दया, करुणा और क्षमाशीलता का दर्शन देरहा था। थोड़े समय में गांधी जी ने अपना अन्तिम श्वास लिया और उनकी जीवनयात्रा समाप्त होगई! कुछ समय से गांधीजी एक हताश मनुष्य से दिखलाई पड़ते थे और उन्होंने आखिर में उपवास का आश्रय ग्रहण किया था। अच्छा होता, अगर उपवास के समय ही उनकी जीवन लीला समाप्त होगई होती, पर हमारे भाग्य में लज्जा और मानसिक यन्त्रणा (Agony) भुगतना लिखा था। गत सप्ताह एक हिन्दू युवकने बम से उन पर आक्रमण करने की कोशिश की और वे इससे बच गए। जान पड़ता है कि आख़िर उनका वक्त आगया और सर्व शक्तिमान प्रभु ने उन्हें अपने पास बुला लिया।"

"मित्रों! यह वक्त क्रोध करने का नहीं है। यह वक्त ऐसा है जिसमें हमें अपने हृदय-शोधन की आवश्यकता है। अगर हम इस वक्त क्रोध के वशीभूत होंगे तो इसका यह अर्थ होगा कि हम अपने प्रिय गुरू के उपदेशों को उनकी मृत्यु के बाद इतनी शीघ्रता से भूलगए। मुझे कहने दीजिए कि हमने अपने महान् गुरू के पद-चिन्हों पर चलने में उनके जीवन काल ही में हिचकिचाट से काम लिया। मैं आपसे विनय पूर्वक प्रार्थना करूँगा कि आप इस समय के हिंसा पूर्ण आवेशों से बचिए। अपने गुरू के उपदेशों पर चलिए। हम लोगों के लिए सबसे कठिन परीक्षा का यह समय है। हमें अपने महान् गुरू के योग्य शिष्य होने का प्रमाण देना है। हमारे कंधों पर इस समय बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। गांधी जी शक्ति के स्तम्भ और हमारे राष्ट्र को प्रेरणा के स्रोत थे।

उनकी मृत्यु से हम जैसे उनके निकटस्थ साथियों की ऐसी जबरदस्त हानि हुई है कि जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। गांधी जी यद्यपि चले गए हैं, पर वे हमारे हृदयों में हमेशा के लिए वास करते रहेंगे।

"यद्यपि गांधी जी का भौतिक शरीर कल दिन के ४ बजे भस्मीभूत हो जायगा, पर उनकी अविनाशी और अमर शिक्षाएँ हमारे हृदयों को हमेशा प्रकाशित करती रहेंगी। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी जी की अमर आत्मा अब भी हम पर मंडरा रही है और वह भविष्य में भी हमारे राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करती रहेगी। वह पागल युवक, जिसने उनकी हत्या की है,गलती करता है, अगर वह यह समझता है कि उसने उन्हें मारकर उनके महान् मिशन का अन्त कर दिया है। शायद ईश्वर को यह मंजूर हो कि गांधी जी की मृत्यु के द्वारा ही उनके मिशन की पूर्ति और श्री वृद्धि हो।"

"मुझे विश्वास है कि गांधीजी के इस महान् बलिदान से हमारे देश के लोगों की अन्तरात्मा जागेगी और प्रत्येक भारतवासी के हृदय में इससे उच्च प्रेरणा का संचार होगा। मैं आशा करता हूं और साथ ही मैं प्रार्थना करता हूं कि ईश्वर हमें गांधी जी का जीवनोद्देश्य पूर्ण करने की शक्ति दे। इस गम्भीर घड़ी में अपने हृदय को चल विचल करने से काम न चलेगा। हम सब एक होकर खड़े रहें और बहादुरी के साथ उस राष्ट्रीय आपत्ति का सामना करें जो हम पर आ पड़ी है। हम सब फिर इस बात की प्रतिज्ञा करें कि हम गांधी जी की शिक्षाओं और आदर्शों के अनुसार अपने जीवन को बनावेंगे।

राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष और वर्तमान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने गांधी जी के स्वर्गवास पर ब्रॉडकास्ट करते हुए कहा था:—

"गांधी जी का भौतिक शरीर अब हमारे बीच में नहीं है। आज उनके वे पवित्र चरण नहीं हैं, जिन्हें हम श्रद्धा के साथ स्पर्श करते थे।

आज उनके वे हाथ नहीं है जो हमारी पीठ को थपथपाते थे और हमें आशीर्वाद दिया करते थे। उनकी आँखें जो दया और करुणा से परिपूर्ण थीं, अब हमारी ओर प्यार का संकेत न कर सकेंगी। पर जैसा कि उन्होंने हमें सिखाया था कि शरीर नाशवान है और आत्मा अमर है। यद्यपि उनकी आत्मा ने उनके शरीर को छोड़ दिया है, पर वह हमारे अच्छे बुरे कार्यों को बराबर देखती रहेगी। हमें उस कार्य को पूरा करना है, जिसे उन्होंने अधूरा छोड़ा है और इसी से हम उनकी पवित्र स्मृति का सम्मान कर सकते हैं। उनके महान् कार्य और उनका अद्वितीय व्यक्तित्व उनकी स्मृति को सदा सर्वदा के लिए अमर रखने को पर्याप्त है और उनके स्मारकों की कोई आवश्यकता दिखलाई नहीं पड़ती। पर मनुष्य को अपने संतोष के लिए भी कुछ करना पड़ता है। इसलिए यह सुझाया गया है कि वह सब रचनात्मक कार्य, जो गांधी जी की सबसे प्रिय वस्तु थी, पूरी शक्ति और भक्ति के साथ चलाया जाय। इसी रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा गांधी जी का प्रेम और अहिंसा का महान् सिद्धान्त फलेगा फूलेगा और इसी कार्यक्रम को आगे बढ़ाकर हम उनकी महान् शिक्षाओं को जीवीत रख सकेंगे।"

ऊपर हमने भारत के तीन प्रधान नेताओं ने महात्मा गांधी को जो श्रद्धाञ्जलियाँ भेंट कीं, उनका उल्लेख किया है। भारत के नेताओं ने महात्मा गांधी की स्वर्गीय आत्मा को श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पणकर अपनी भक्ति का प्रदर्शन किया था। जिनका महात्मा गांधी के साथ मतभेद था, उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा की गई राष्ट्र और मानवजाति की महान् सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पण कीं।

विदेशों में महात्मा गांधी को श्रद्धाञ्जलियाँ

ब्रिटिश सम्राट्, इगलैंड के प्राइमिनिष्टर, अमेरिका के राष्ट्रपति, रूस के राष्ट्राध्यक्ष तथा संसार के सब राष्ट्रों के शासक, संसार के महान्

नेताओं और विचारकों ने इस महान् विभूति की स्वर्गीय आत्मा के प्रति अत्यन्त पूज्य और अदारभाव के साथ अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की थीं।

गांधी हत्याकाण्ड का मुकदमा

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि प्रार्थना के समय महात्मा गांधी की पिस्तोल द्वारा हत्या करनेवाले का नाम नाथूराम गोडसे था। वह 'हिन्दुराष्ट्र' नामक पत्र का सम्पादक और शनिवार पेठ पूने का रहने वाला था। गोडसे की गिरफ्तारी के बाद पुलिस ने बड़ी सरगर्मी के साथ उस षड्यन्त्र का पता लगाने की चेष्टा की जो महात्मा गांधी की हत्या के लिये रचा गया था। पुलिस ने नारायण आप्टे, विष्णु आर० करकरे, मदनलाल पहवा, शंकर किस्तय्या, गोपाल, वी गोडसे, श्री विनायक सावरकर, दत्तात्रेय पर्चुरे को इस सम्बन्ध में गिरफ्तार किया। इनके ऊपर मुक़द्दमा चलाने के लिए गृहविभाग की मिनिस्ट्री ने बम्बई जन सुरक्षा क़ानून १९४७ की दसवीं और ग्यारहवीं धारा के अनुसार एक विशिष्ट न्यायालय ता० १३-५-१९४८ को कायम किया। इस न्यायालय की बैठकें दिल्ली के लाल किले के ऊपर होने लगीं। सरकार की ओर से मि० सी० के० दफ्तरी एडवोकेट जनरल बम्बई पैरवी करने लगे। अभियुक्तों की ओरसे मि० वी० वी० ओक,मि० के० एच० मंगले, मि० एन० डी० डांगे, मि० बी० बनर्जी, मि० मनिया, मि० एल० बी० भोपटकर, मि० जमनादास मेहता, मि० गनपतराय, मि०इनामदार, आदि एडवोकेट्स और वकील पैरवी कर रहे थे। बहुत लम्बे अर्से तक यह मुक़द्दमा चलने के बाद विशिष्ट न्यायालय के जज श्री आत्माचरण ने नाथुराम गोडसे और नारायण आप्टे को मृत्यु दंड और अन्य अपराधियों को अपने अपने अपराधों की गम्भीरता के परिमाणानुसार विभिन्न सजाएं दीं। विष्णु करकरे, गोपाल गोडसे, दत्तात्रयपर्चुरे को आजन्म कारावास की सजाएं और मदनलाल और शंकर किस्तय्या को सात सात

वर्ष की सजाएँ दीं। शंकर किरतय्या के लिए न्यायालय ने सज़ा में कुछ कमी करने की सिफ़ारिश की। वीर सावरकर के विरुद्ध कोई प्रमाण न मिलने से वे दोषमुक्त कर दिए गए। जज ने अपने फैसले में उनके लिए लिखा था :—

"He is found 'not guilty' of the offences as specified in the charge, and is acquitted thereunder. He is in custody and be released forthwith unless required otherwise."

अर्थात् चार्ज में उल्लेखित अपराध में वे (सावरकर) अपराधी नहीं पाये गए, अतएव वे मुक्त किए जाते हैं। वे अभी हिरासत में हैं और उन्हें अब छोड़ दिया जाय, अगर उनकी किसी दूसरे मामले में आवश्यकता न हो।

न्यायालय ने दिगम्बर बड्गे को सरकारी गवाह बनने के उपलक्ष में मुक्त कर दिया। अपील में ग्वालियर के डा० परचुरे भी मुक्त कर दिए गए।

भारत का समान-तन्त्र (Commonwealth) का सदस्य होना

इस्वी सन् १९४९ के अप्रेल मास में लंदनमें अधिराज्यों (dominions) के प्रधान मन्त्रियों की कान्फ्रेन्स हुई। इसमें भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरु भी शामिल हुए। बहुत वादानुवाद के बाद उन्होंने भारत के सर्वोच्च सत्ताधारी स्वतन्त्र जन-तन्त्र (Sovereign independent Republic) घोषित करते हुए, राष्ट्रों के समान-तन्त्र की (Commonwealth of Nations) सदस्यता स्वीकार की। इस सम्बन्ध में भारत सरकार की ओर से जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई, उसमें लिखा था:—

"The Government of India have declared and affirmed India's desire to continue her full membership of the Commonwealth of Nations and her acceptance of the king as the symbol of the free association of its independent member nations and as such the head of the Commonwealth."

अर्थात् "भारत सरकार ने राष्ट्रों के समान-तन्त्र की सदस्यता को चालू रखने और सम्राट् को स्वतन्त्र सदस्य-राष्ट्रों की स्वतन्त्र पार्षद् (Association) का प्रतीक और प्रधान (Head) स्वीकार करने की भारत की इच्छा को घोषित और परिपुष्ट किया है।"

भारत सरकार के इस कार्य की,देश में,अनुकूल और प्रतिकूल आलोचनाएँ हुई। उग्रदल ने (Leftists) इसकी कड़ी समालोचना की। श्री पामदत्त ने अपने 'India to day' नामक ग्रन्थ में लिखा थाः—

"With this London Declaration subsequently ratified by the Indian Assembly, India was formally linked with the camp of Anglo-American imperialism."

"अर्थात् लंदन की घोषणा और भारतीय व्यवस्थापिका सभा द्वारा उसके अनुमोदन के कारण भारत एङ्ग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवाद के शिविर से सम्बन्धित होगया है"।

बम्बई की काँग्रेस-सरकार के भूतपूर्व गृह मंत्री तथा भारत सरकार के वर्तमान कृषि-मंत्री श्री के० एम० मुंशी ने ईस्वी सन् १९४७ के १८ नवम्बर को "भारत और संसार की राजनीति" पर व्याख्यान देते हुए कहा थाः—

"As to international alignment, Britain, what ever our memories of her past rule, has been, is a staunch friend. We are tied to her by bonds of over a century of close association. The U. S. A. the great democracy is the world's unquestionable leader at the moment. Even the future of the U.N.O. is in her hands. It can help to build a powerful world federation of free nations only in close association with the U. S. A. In such associatian with Britain and the U. S. A only will India find the strength she wants."

"अर्थात् जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय पंक्तिकरण का सम्बन्ध है, ब्रिटेन हमारा पक्का मित्र रहा है और है, चाहे फिर उसके भूतकालीन शासन के सम्बन्ध में हमारी कैसी ही स्मृतियाँ रहीं हों। हम एक शताब्दी से ऊपर उसके निकटवर्ती साहचर्य में रहे हैं। अमेरिका का संयुक्तराष्ट्र एक महान् प्रजातन्त्र है और वह इस समय संसार का निःसन्देह नेता है। यू० एन० ओ० का भविष्य भी उसके साथ में है। वह स्वतन्त्र राष्ट्रों का शक्तिशाली संसार-संघ अमेरिका के संयुक्त प्रदेश के निकट सहयोग ही से बन सकता है। भारतवर्ष, ब्रिटेन और अमेरिका के संयुक्त प्रदेश के साथ रहकर ही वह शक्ति प्राप्त कर सकता है, जिसे वह चाहता है"।

हमने ऊपर भारत के ब्रिटिश समान-तन्त्र में शामिल होने के पक्ष और विपक्ष में होने वाले आलोचनाओं के दो उदाहरण दिए हैं। इससे पाठकों को दोनों प्रकार की मत-धाराओं का परिचय हो जायगा।

भारत सर्वोच्चसत्ताधारी स्वतंत्र जन-तंत्र।

(Independent Sovereign Republic)

जैसा कि हम किसी पूर्व अध्याय में कह चुके हैं, सन् १९४६ ई० में केबिनेट मिशन की योजनानुसार, संविधान सभा संगठित की गई थी। पर, इस समय यह सर्वोच्चसत्ताधारी संस्था (Sovereign Body) न थी। उसके अधिकार सीमित थे। सन् १९४७ ई० के स्वतंत्रता अधिनियम (Independence Act) ने इसे सर्वोच्च-सत्ता समर्पित की। संविधान सभा ने भारत का संविधान बनाने के जो उद्देश रखे, उसके सम्बन्ध में पं० जवाहरलाल नेहरू ने जो प्रस्ताव रखा, उसकी प्रथम धारा यह है:—

1. "This Constituent Assembly declares its firm

and solemn resolve to proclaim India as an Independent Sovereign Republic and to draw up for her future government a Consititution;

अर्थात् यह संविधान सभा भारत को सर्वोच्चसत्ताधारी स्वतंत्र तनतंत्र घोषित करने तथा उसके शासन के लिये संविधान बनाने का दृढ और पवित्र संकल्प करती है।"

इसी उद्देश को लेकर, संविधान सभा ने वैधानिक, समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिये विभिन्न कमिटियों का (Committees) निर्माण किया। इन कमेटियों ने अपनी अपनी रिपोर्ट्स पेश कीं, जिनके आधार पर, संविधान का मस्विदा बनाने का निश्चय हुआ। मस्विदा बनाने वाली कमिटि (Drafting Committee) २६ अगस्त १६४७ ई० के संविधान सभा के प्रस्तावानुसार बनाई गई। उसे यह काम सौंपा गया कि वह विभिन्न कमिटियों द्वारा प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर अपना मस्विदा तैयार करे। यह मस्विदा तैयार किया गया और संविधान सभा के सदस्यों ने इसमें कुछ संशोधन और परिवर्तन किये।

२६ नवम्बर १६४६ ई० को उक्त संविधान मस्विदा संशोधित होकर संविधान सभा द्वारा अन्तिम रूप से पास होकर भारतीय संविधान के रूप में परिणत हो गया। २६ जनवरी १६५० ई० को उक्त भारतीय संविधान के अनुसार आज भारत सर्वोच्च सत्ताधारी स्वतंत्र जनतंत्र के रूप में अपना अस्तित्व रखता है और संसार के स्वतंत्र राष्ट्रों में इस महान् राष्ट्र का एक विशिष्ट राष्ट्र हो गया है।

२६ जनवरी १६५० ई० को भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल श्री० सी० राजगोपालाचार्य ने अपने पद से अवसर ग्रहण किया और उनके स्थान पर भारत के तपे हुए नेता डा० राजेन्द्रप्रसाद इस महान्

जनतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति (President) के सर्वोच्च पद पर आसीन किये गये। इस समाचार से सारे देश में बड़ी प्रसन्नता हुई और अपने एक प्रिय और महान् नेता को राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित होता हुआ देख कर भारतीय जनता को अत्यन्त सन्तोष हुआ। डा० राजेन्द्र प्रसाद सर्व प्रिय नेता और अजातशत्रु है। उनका सारा जीवन देश की माहन् सेवाओं में बीता है और उनकी विनयशीलता अनुकरणीय है।

954
India — History —
Struggle for Freedom

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book clean and moving.

S. B. 148. N. DELHI.